प्राक्कथन

पंडित मदनमोहन मालवीय महापुरुष और श्रेष्ठ आत्मा थे। उन्होने समर्पित जीवन व्यतीत किया, तथा धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक और सास्कृतिक आदि बहुत-से क्षेत्रो में अपने लोगों की उत्कृष्ट सेवाएं की। धमकियो से निडर और प्रलोभनो से अनाकर्षित उन्होने अन्याय और क्रूरताओ से सघर्ष किया, तथा साहस और दृढता पूर्वक अपने उद्देश्य की नैतिकता पर दृढ विश्वास के साथ अपने देशवासियो के सामूहिक हित और उत्कर्प के लिए पचास वर्प से अधिक काम किया। निःसन्देह उनका व्यक्तित्व उनकी महान् उपलब्धियो से कही अधिक प्रतिष्ठित था। वे आध्यात्मिक सद्गुणो, नैतिक मूल्यो तथा सास्कृतिक उत्कर्ष के असाधारण सश्लेषण (सिंथिसिस) थे। वे निःसन्देह अजात शत्रु थे।

पंडित मालवीय जीवन और समाज का समन्वित विकास पसन्द करते थे और उन्होने उसके लिए अपनी शक्ति भर अनवरत प्रयत्न किया। रुद्धता (स्टेगनेशन), अधोगति, दरिद्रता और दुर्दशा उन्हें दु.खी करती थी, और उनका दृढ विश्वास था कि जब तक भारत विदेशी दासता के चंगुल में रहेगा, तब तक भारतीय जनता इन बुराइयो से छुटकारा नही पा सकती। उनकी धारणा थी कि स्वस्थ विकास स्वतन्त्रता का वातावरण माँगता है। विदेशी आधिपत्य और शोषण से, भारतनिवासी अग्रेजो के प्रजातीय दम्भ से, और ब्रिटिश अफसरो की नौकरशाही निरकुशता से वे घृणा करते थे। वे चाहते थे कि पुलिस राज्य कल्याण राज्य में बदल जाये, नौकरशाही ढाँचा के स्थान पर लोकतान्त्रिक संस्थाएँ स्थापित हो, आधिपत्य की भावना का अन्त हो, और हिन्दुस्तान को ब्रिटिश कामनवैल्थ में स्वतन्त्र और समान साझादारी का स्थान प्राप्त हो, तथा अपने देश की सेवा के लिए भारतीय नवयुवको को सेना में और सार्वजनिक प्रबन्ध के सब क्षेत्रो में सब स्तरो पर समान सुविधाएँ मुहैया की जायें।

राजाओ, जमीदारो और औद्योगिको के साथ मालवीयजी के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण थे। पर वे यह नही चाहते थे कि वे अधिकार और पोजीशन की इजारादरी का उपभोग करें। उनकी तो इच्छा थी कि श्रम और मानव व्यक्तित्व के गौरव को यथोचित मान्यता और सम्मान प्राप्त हो, हिन्दुस्तानी रियासतो में संवैधानिक सरकारें स्थापित की जायें, सबको स्वशासन का अधिकार दिया जाय,

वयस्क मताधिकार पर लोकतन्त्र स्थापित किया जाय, और कानून द्वारा नागरिक स्वतन्त्रताएँ सबके लिए सुनिश्चित की जायें, आर्थिक कल्याण की वृद्धि के निमित्त किसानो के लिए स्थायी काश्तकारी बन्दोबस्त किया जाय और लगान में २५ प्रतिशत कमी की जाय, शोषण और अत्याचारो से मजदूरो की रक्षा की जाय, और सबको अच्छी शिक्षा और जीवन के अच्छे साधन मुहैया किए जायें।

पंडित मालवीय ने पचीस वर्ष तक केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान-सभाओ में निर्वाचित सदस्य की हैसियत से काम किया। प्रान्तीय कौंसिल के सदस्य की हैसियत से उन्होने सरकार की प्रशासनिक और आर्थिक नीतियों की आलोचना ही नही की, बल्कि जनता की दुर्गति की ओर भी उसका ध्यान आकृष्ट किया, और जनता के भौतिक, शैक्षिक और नैतिक उत्थान के लिए काम करने की भी उससे कामना की, और उसके सामने कई योजनाएँ प्रस्तुत की।

केन्द्रीय विधायिका में पंडित मालवीय ने स्वशासन की राष्ट्रीय माँग के लिए बार-बार आग्रह किया। उन्होने अध्यादेशो के आरोपण की निन्दा तथा प्रेस विधेयक, राजविद्रोह सभा विधेयक, रौलेट बिल और पब्लिक सुरक्षा विधेयक जैसे दमनकारी विधानो का विरोध ही नही किया, बल्कि यह भी माँग की कि सबके लिए नागरिक स्वतन्त्रताएँ पुन. प्रतिष्ठित की जायें, तथा सरकार द्वारा अपने सब कार्यों मे उनका ध्यान रखा जाय। उन्होने सेना के खर्चे को कम करने का तथा सेना और लोकसेवाओ के भारतीयकरण करने का आग्रह किया, और बार-बार वित्त विधेयक को रद्द करने के लिए वोट किया, तथा सरकार की नीतियो और उसके साम्राज्यिक व्यवहार के विरुद्ध प्रोटेस्ट के रूप में सेना-विभाग तथा शासन-परिषद के बजट में कटौती के प्रस्तावो का समर्थन किया।

वे सरकार की सीमा शुल्क सम्बन्धी नीतियो के बडे आलोचक थे, जो उनके विचार में हिन्दुस्तान के सर्वोत्तम हितो में सोची नही गयी थी, बल्कि ब्रिटिश हितो को बढाना ही उनका लक्ष्य था। उन्होने सूती कपड़ों पर उत्पादक शुल्क लादने का, ब्रिटिश माल को साम्राज्यिक अधिमान देने का, हिन्दुस्तान में यूरोपियन कम्पनियो द्वारा तैयार किये गये माल को वदान्यता और आर्थिक सहायता देने का, रुपये की विनिमय दर अठारह पैस निर्धारित करने का, भारत के रिजर्व बैंक को शेयर होल्डर बैंक के रूप मे स्थापित करने का डट कर विरोध किया।

सन् १९१९ के मार्शल-ला के अत्याचारो ने तथा एकमात्र गोरो के साइमन कमीशन की नियुक्ति ने न्याय की ब्रिटिश भावना पर से उनका सब विश्वास खत्म कर दिया। इन्होंने उन्हे उन लोगो को, जिन्होने सन् १९१९ में पंजाब में अत्याचार किये थे, क्षमा प्रदान करने का विरोध करने को, तथा साइमन कमीशन का 'बाईकाट' करने के लिए जनता को आह्वान करने को ही प्रेरित नही किया, वल्कि सविनय अवज्ञा आन्दोलनो का समर्थन करने तथा उनमें भाग लेने को भी प्रेरित किया। सन् १९३७ में उन्होने काग्रेस को सलाह दी थी कि वह सन् १९३५ के भारतीय शासन विधान के अन्दर पद स्वीकार न करे, मन्त्रिमण्डल न बनाए।

धार्मिक मामलो में उनके विचार शास्त्र की प्रामाणिकता तथा उदारवाद का मिश्रण थे। सनातन धर्म के मूलभूत सिद्धान्तो की उनकी व्याख्या निश्चय ही बहुत उदार थी। वह मानवता की भावना से, सार्वजनीन प्रेम से तथा मानवहित के प्रति नि.स्वार्थ निष्ठा से ओत-प्रोत थी, और इन्हें ही वे सनातन धर्म के मूलभूत सिद्धान्त मानते थे। पर शास्त्रो के प्रति उनकी निष्ठा ने उन्हें बहुत-सी सामाजिक समस्याओ पर उस तरह पर विचार करने नही दिया जिस तरह समाजसुधारक चाहते थे कि वे करें। फिर भी हिन्दू समाज के परम्परानिष्ठ वर्ग पर उनका प्रभाव कुल मिलाकर स्वस्थ और प्रगतिशील था। उन्होने अपने ढंग पर हरिजनो के उत्थान तथा हिन्दू समाज के शेष भाग से उनके निकट सम्मिलन (इंटिगरेशन) में बहुत योगदान किया।

जबकि धर्म से सम्बन्धित सामाजिक विषयो में उन्होने शास्त्र के आदेशो का पालन करने का प्रयत्न किया, राजनीतिक और आर्थिक विषयो में उनके विचार बहुत हद तक उदार लोकतन्त्र के बुनियादी सिद्धान्तो पर आधारित थे। जान स्टुअर्ट मिल, प्रोफेसर टी. एच. ग्रीन और ग्लैडस्टन की उन पर गहरी छाप थी। हर्बर्ट स्पेंसर से भिन्न, जो पुलिस राज्य के समर्थक थे, मालवीयजी ग्लैडस्टन की तरह कल्याण राज्य के पक्ष में थे, और चाहते थे कि लोकतान्त्रिक ढंग पर संगठित सरकार जनता के कल्याण और उन्नति की वृद्धि करे। वे मिश्रित अर्थतन्त्र—स्वतन्त्र व्यवसाय और जहाँ समाज के अत्यावश्यक हितो के लिए आवश्यक हो वहा राष्ट्रीयकरण—के पक्ष में थे।

मालवीयजी उच्च कोटि के नीतिज्ञ थे। नैतिक सिद्धान्तो और नैतिक व्यवहार को वे धर्म और संस्कृति का सार समझते थे। उनका अपना व्यक्तिगत जीवन प्राचीन हिन्दुस्तान की सर्वोत्तम नैतिक परम्पराओ और उदार लोकतन्त्र

के नैतिक आदर्शों का मूर्तरूप था। वे इस तरह भौतिक पटल पर संस्कृति के प्राचीन और अर्वाचीन तत्त्वों के संश्लेपण के समर्थक थे। शिक्षा के क्षेत्र में भी मालवीयजी पूर्व और पश्चिम के संश्लेपण के पक्ष में थे। वे चाहते थे कि भारत के नवयुवक भारत के इतिहास और सस्कृति में अच्छे तौर पर शिक्षित किये जायें, उनके उत्तम आदर्शों से अनुप्राणित किये जायें, तथा पश्चिम के सचित ज्ञान और अनुभव और आधुनिक विचारधाराओ में परिशिक्षित किये जायें।

दिसम्वर सन् १८८६ में मालवीयजी काग्रेस में शरीक हुए, और सन् १९३७ तक उसके वार्षिक अधिवेशनो में करीव-करीव नियमित रूप से वे उपस्थित होते रहे और जीवन के अन्त तक वे उससे सम्वन्धित रहे। जव उसकी नीतियो और कार्यक्रमो से उनका मतभेद हुआ, तव भी उस संस्था और उसके उद्देश्यो के प्रति उनकी निष्ठा अविचल वनी रही। छ-सात वर्ष तक उन्होंने हिन्दू महासभा आन्दोलन को उत्प्रेरित किया, जिसमें साम्प्रदायिक पुट अनिवार्य ही थी। पर जैसा कि पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी 'आत्मकथा' में स्वीकार किया है, जब तक पंडित मालवीयजी उसके प्रमुख प्राण रहे, महासभा अपने सम्प्रदायवाद के वावजूद, राजनीति में प्रतिक्रियावादी नही रही (पृ० ४५८)। वे चाहते थे कि हिन्दू महासभा हिन्दू समाज के सव वर्गों में अधिक ऐक्य और संहति प्रोत्साहित करे और उन्हें एक जैव (आर्गेनिक) समष्टि के अवयवो की तरह निकट से (क्लोजली) जोडे तथा "हिन्दुओ और भारत के दूसरे सम्प्रदायो में सद्भावना प्रोत्साहित करे और संयुक्त स्वशासित भारतीय राष्ट्र की सिद्धि के लिए उनके साथ मैत्रीपूर्ण ढग से व्यवहार करे।" उन्होने 'हिन्दू राष्ट्र' और 'हिन्दू राज्य' के शब्दो में कभी नही सोचा, और दृढ निश्चय के साथ जाति और सम्प्रदाय के लिहाज के विना सव हिन्दुस्तानियो को समान भ्रातृत्व में वाधने-वाली राष्ट्रीयता का समर्थन किया।

पंडित मालवीय ने वहुत-सी रचनात्मक योजनाओ को प्रवर्तित और समर्थित किया और वहुतसी सस्थाओ को स्थापित किया, जिनमें सवसे महत्त्वपूर्ण 'वनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी' थी। वे चाहते थे कि भारत के नवयुवक अपनी वौद्धिक, भावात्मक और शारीरिक शक्तिया विकसित करें, और अपने जीवन में सामाजिक उत्तरदायित्व के विवेक का, तथा निःस्वार्थ सेवा का, और सर्वसामान्य हित के निमित्त समर्पण की भावना का पोषण करें।

पंडित मालवीय उतने उग्र भले ही न हो, जितना कुछ लोग उन्हें देखना चाहते थे, पर वे नि.सन्देह गतिशील और प्रगतिशील थे। अपनी योग्यता से अपनी

मातृभूमि और देशवासियो की भरसक सेवा की प्रखर कामना से वे स्पंदित थे, और शायद ही कोई दावा कर सके कि उन्होने हिन्दुस्तान के सार्वजनिक जीवन के इतने बहुल क्षेत्रो में उनसे अधिक सेवा की।

कुछ प्रसिद्ध और क्षमतासम्पन्न विद्वानो द्वारा भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन पर कुछ अच्छी और विस्तृत पुस्तकें जरूर लिखी गयी है। कुछ प्रभावशाली सार्वजनिक कार्यकर्ताओ के स्मरणपत्रो, भाषणो और लेखो के संग्रह भी प्रकाशित हुए है। पर कुल मिलाकर जीवनियो में भारतीय साहित्य बहुत दुर्बल है। इसलिए पडित मदन मोहन मालवीय की विस्तृत जीवनी लिखने के लिए हम प्रोफेसर मुकुट बिहारी लाल के कृतज्ञ है।

प्रोफेसर लाल भारतीय राजनीति के उत्साही विद्यार्थी है, वे लगभग पच्चीस वर्ष तक पडित मालवीय के निकट सम्पर्क में भी रहे थे, और बहुत वर्षो तक उन्होने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन तथा हिन्दुस्तान के आधुनिक, सामाजिक और राजनीतिक विचारो पर विश्वविद्यालय के विद्यार्थियो को भाषण दिये है। जैसी उनसे आशा की जा सकती थी, उन्होने उत्तम रीति से अच्छी पुस्तक लिखी है। यह हमें मालवीयजी के जीवन, व्यक्तित्व, विचारो और राष्ट्र-सेवाओ का उत्तम विवरण देती है, और उसके साथ ही इसमें बहुत से दूसरे भारतीय नेताओ के विचारो और उनकी सेवाओ का विश्लेषण भी है। इससे राष्ट्रीय आन्दोलन का काफी अच्छा परिचय भी प्राप्त हो सकता है। उन सबको जो भारतीय राजनीति के अध्ययन में रुचि रखते है मैं इस पुस्तक की सिफारिश करता हूँ।

हृदयनाथ कुजरू
१९-१-७५

नोट — अंग्रेजी से अनुवादित।

प्रस्तावना

कोई महापुरुष केवल अपने बलबूते पर मनमाने ढंग पर राष्ट्र का निर्माण नही कर सकता। उसका चिन्तन सामाजिक गतिविधि से प्रभावित होता है। उसके क्रियाकलापो और कार्यक्रम पर देशकाल की गहरी छाप होती है। उसे कतिपय सास्कृतिक मर्यादाओ का ध्यान रखना होता है, कतिपय अन्य महापुरुषों के विचारो को ग्रहण करना होता है, बहुतो से मिलकर काम करना होता है, सहयोग की इस प्रक्रिया में ही अपना योगदान करना होता है।

मालवीयजी का जीवन, चिन्तन और योगदान ऐतिहासिक तथ्यो से बंधा है। वे स्वयं व्यक्ति को समष्टि का अंग मानते थे और निःस्वार्थ सेवा द्वारा जीवन में समष्टि को आत्मसात करना मानव का पुनीत कर्त्तव्य समझते थे। उनका जीवन समाज के समरस था। उनका विकास सामाजिक स्थिति के संदर्भ में ही हुआ था। वे महापुरुष इसलिए नही थे कि उन्होने किसी निर्जन स्थान में समाज के क्रियाकलापो से उदासीन हो किसी यौगिक क्रिया द्वारा जीवनसिद्धि या आत्मज्ञान प्राप्त किया था। वे महापुरुष इसलिए थे कि उन्होंने अपने देश की आवश्यकताओ तथा जनता के सन्तापो और कष्टो को अपने जीवन में आत्मसात कर जनता की आकाक्षाओ की पूर्ति में तथा देश के गौरव की वृद्धि में अपना सारा जीवन लगा दिया था। उन्होने स्वार्थ और अहंकार त्याग कर जन-कल्याण और देशहित में जिन विचारो को ग्रहण करना और जिनके साथ काम करना उचित समझा उन्हें किया, और जिन विचारों और कार्यों का विरोध करना उचित समझा उनसे व्यक्तिगत वितंडावाद से ऊपर उठकर साहस के साथ टक्कर ली।

ऐसे जीवन के क्रियाकलापों का अध्ययन, विश्लेषण और मूल्याकन युग की स्थिति, गतिविधि और विचारधारा के संदर्भ में करना ही सम्भव और उचित है। इस पुस्तक में इस बात का प्रयत्न किया गया है। इसमें लेखक कहाँ तक सफल हुआ है इसका निर्णय तो पाठक ही कर सकते है।

किसी महापुरुष की जीवनी लिखते समय लेखक को अपनी निजी धारणाओं को अलग रखते हुए व्यापक दृष्टिकोण से महापुरुष के जीवन, व्यक्तित्व और सिद्धान्तो का निष्पक्ष पर सहानुभूतिपूर्ण विश्लेषण करना होता है। यही सर्वमा

उचित है। इस पुस्तक को लिखते समय इस बात का यथासम्भव ध्यान रखा गया है। इस प्रयास में लेखक कहाँ तक सफल हुआ है, इसका निर्णय भी पाठक ही कर सकते हैं। वह तो इतना ही कह सकता है कि उसने मालवीयजी की भावनाओ और विचारो की पृष्ठभूमि में ही उनके व्यक्तित्व, नेतृत्व और योगदान का विश्लेषण करने का प्रयत्न किया है, और पुस्तक के अन्तिम अध्याय में मालवीयजी के व्यक्तित्व और आदर्शों के महत्त्व को स्वीकार करते हुए स्पष्ट कर दिया है कि जहाँ उनके कतिपय विचारो और व्यवहारो का अनुसरण इस लोक-तान्त्रिक युग के निर्माण के लिए नितान्त आवश्यक है, वहाँ उनके बहुत से ऐसे विचार हैं जो सब लोग स्वीकार नही कर सकते। उनके आधार पर जहाँ कुछ लोग एक राष्ट्रनीति और कार्यक्रम निर्धारित कर सकते है, वहाँ दूसरे लोग उनका विरोध करते हुए दूसरा कार्यक्रम प्रस्तुत कर सकते हैं।

जैसा कि सर तेज बहादुर सप्रू ने एक सस्मरण में बताया है। मालवीयजी का जीवन और उनकी सेवाए भारत की प्रगति के एक महत्त्वपूर्ण युग की कहानी है। सन् १८६१ में मालवीयजी ने प्रयाग में जन्म लिया और इसी वर्ष ब्रिटिश साम्राज्य की सत्ता अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए सेना के बहुत से विभागो में भारतीयो की भरती बन्द कर दी गयी। भारत की सेना में ब्रिटिश सैनिको का अनुपात बढा दिया गया, तथा भारतीय सैनिको को धर्म, जाति और क्षेत्र के आधार पर इस तरह विभिन्न कम्पनियो में विभाजित कर दिया गया कि सैनिको में राष्ट्रीय भावना जागृत और पुष्ट ही न हो सके। कानून बनाने के लिए विधान कौंसिलो की व्यवस्था अवश्य की गयी, पर उन पर नौकरशाही की निरकुशता पहले से भी अधिक कडी कर दी गयी। पर इसी वर्ष, जैसा कि इस पुस्तक में बताया गया है, "भारतमाता ने मई के महीने में रवीन्द्र नाथ ठाकुर और मोतीलालजी को जन्म दिया और आगे चल कर प्रफुल्ल चन्द्र राय और मदन मोहन को जन्म दिया। इन चारो बच्चो ने अपनी प्रतिभा से माता का मस्तक ऊँचा किया, तथा साम्राज्यशाही की भावना से अनुप्राणित यूरोपियन राजनीतिज्ञो और अधिकारियो को भारत के सम्बन्ध में अपनी धारणाओ और नीतिरीति को बदलने पर मजबूर किया।"

यद्यपि सन् १८५७ के विप्लव से बीस वर्ष पहले ही राम मोहन रायजी ने उदारवादी मध्यवर्गीय चिन्तन और भारत के नवनिर्माण का सूत्रपात कर दिया था, पर सन् १८७० के बाद मध्यवर्गीय शिक्षितो ने अपने नेतृत्व में राजनीतिक सस्थाएं स्थापित करना प्रारम्भ की और अन्ततोगत्वा सन् १८८५ में इडियन

नेशनल काग्रेस के नाम से एक अखिल भारतीय राजनीतिक संस्था स्थापित की। सन् १८८६ में नवयुवक मदन मोहन ने उसमें भाग लेना प्रारम्भ किया और ५० वर्ष तक उसके तत्वावधान में भारतीय राष्ट्र की स्वतंत्रता और नवनिर्माण के लिए वे सतत प्रयत्न करते रहे और आजीवन उससे सम्बद्ध रहे। प्रारम्भ में काग्रेस के क्रियाकलापो का स्वरूप विशुद्ध सवैधानिक था, पर आगे चलकर इन प्रयत्नो ने संवैधानिक सघर्षों के साथ साथ अहिंसात्मक प्रतिरोध, सविनय अवज्ञा और सत्याग्रह का रूप भी धारण कर लिया। इन संवैधानिक प्रयत्नो और राष्ट्रीय संघर्षों में बहुत से नेताओ और हजारो कार्यकर्त्ताओ का भरपूर योगदान था। मालवीयजी का भी इनमें महत्त्वपूर्ण अंशदान था, जिसका विस्तृत विवरण इस पुस्तक में दिया गया है।

लेखक उन सब व्यक्तियो का, जिन्होने स्वतंत्रता आन्दोलन में या समाज की प्रगति में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है, महापुरुष के रूप में आदर करता है और यदि उसने उनके विचारो की कही-कही टिप्पणी की है तो उसका यह अर्थ नही कि वह उनके महत्त्व को स्वीकार नही करता। उसका अर्थ केवल इतना ही है कि घटनाओ के संदर्भ में उनकी प्रतिक्रियाओं की चर्चा आवश्यक थी और मालवीय जी की जीवनी में उन पर किये गये आक्षेपो का निरीक्षण अनिवार्य था। इसी कर्त्तव्य बुद्धि ने लेखक को मालवीयजी के कतिपय विचारो और क्रियाकलापो पर भी आलोचनात्मक विचार व्यक्त करने को बाध्य किया है। आशा है कि सहृदय पाठक क्षमा करेंगे।

मालवीयजी का योगदान और उनकी सेवाएँ बहुत ही विस्तृत थी और उनके क्रियाकलापो की सामग्री बहुत बिखरी हुई है। उन सबको इकट्ठा करना तो सम्भव नही था, फिर भी जितनी सामग्री जुटाई जा सकी है उससे मालवीयजी की सेवाओ और नेतृत्व का काफी परिचय हो सकता है। इस सम्बन्ध में लेखक अपने मित्र आचार्य सीताराम चतुर्वेदी तथा पडित राम नरेश त्रिपाठी एवं मालवीयजी के पौत्र पंडित पद्म कान्त मालवीय का विशेष रूप से आभारी है जिनकी जुटाई सामग्री इस पुस्तक के लिखने में बहुत सहायक हुई है। सर्वश्री शिवनन्दन लाल दर और सोमस्कन्दन द्वारा लिखित हिन्दू विश्वविद्यालय के इतिहास का, तथा डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद की आत्मकथा, पडित जवाहर लाल नेहरू की आटोबायोग्राफी, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की 'इण्डियन स्ट्रगिल', श्री पट्टाभि सीतारम्मैया द्वारा लिखित काग्रेस के इतिहास का भी काफी प्रयोग किया गया है। चौधरी खलीक उज्जमा की आत्मकथा तथा कई अन्य प्रसाको का भी थोड़ासा प्रयोग किया गया है। लेखक उन सबका भी आभारी है। हिन्दू विश्व-

विद्यालय की सयाजीराव गायकवाड लाइब्रेरी, काशी विद्यापीठ की भगवान दास स्वाध्यायपीठ और अभिमन्यु पुस्तकालय के अधिकारियों और कर्मचारियों का भी वह आभारी है जिन्होंने सामग्री जुटाने में लेखक की सहायता की। तारा प्रिंटिंग प्रेस और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने इस पुस्तक के छापने और प्रकाशन का भार वहन किया। लेखक इनका भी कृतज्ञ है।

लेखक पंडित हृदय नाथ कुंजरू का विशेष रूप से कृतज्ञ है। उन्होंने बहुत अस्वस्थ होते हुए भी लेखक को निरन्तर प्रोत्साहित किया और प्राक्कथन लिखकर कृतार्थ किया। कुंजरू साहब मालवीयजी के बहुत ही विश्वसनीय सहयोगी थे। इस समय कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं जिसे कुंजरू साहब से अधिक मालवीयजी के सार्वजनिक जीवन का ज्ञान हो, जिसने उनसे अधिक मालवीय जी के नेतृत्व में विभिन्न क्षेत्रों में समाज की सेवा की हो, और जिसे अपने जीवन में उनसे अधिक मालवीयजी का विश्वास प्राप्त हुआ हो। इस पुस्तक के लेखक को इन दोनों महापुरुषों के नेतृत्व में वर्षों स्वदेशी, हरिजनोद्धार और शिक्षा के क्षेत्रों में काम करने का और उनका वात्सल्य प्रेम प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है और वह उनका ऋणी है।

भाई शिवनन्दन लाल दर की निरन्तर प्रेरणा और सहायता के बिना इस पुस्तक का लिखना और प्रकाशन असम्भव ही था। लेखक उनका भी विशेष रूप से अनुगृहीत है। पुस्तक के लिखने में कुछ अन्य मित्रों से भी समय समय पर सहायता मिलती रही है। पर इस पुस्तक में जो कुछ लिखा गया है, उसका सारा उत्तरदायित्व लेखक पर है। सामग्री का चयन, विचारों का विश्लेषण सब कुछ उसका ही है।

१५ जुलाई १९७७ मुकुट बिहारी लाल

विषय सूची

१. देश की दशा
(१८५८–१८८५)

महारानी विक्टोरिया की घोषणा

सन् १८५७ के विप्लव के बाद महारानी विक्टोरिया की ओर से गवर्नर-जनरल लार्ड केनिंग ने १ नवम्बर १८५८ को प्रयाग में सगम के तट पर शाही घोषणा को प्रसारित किया। इस घोषणा में महारानी विक्टोरिया ने घोषित किया . "हम अपने - को अपनी भारतभूमि के निवासियो के प्रति कर्तव्य के उत्तरदायित्व से उसी प्रकार बधा हुआ समझती है जिस प्रकार अपनी दूसरी प्रजाओ के प्रति, और ईश्वर की अनुकम्पा से हम उन उत्तरदायित्वो को ईमानदारी और शुद्ध अन्तःकरण से पूरा करेगी। हमारी यह भी इच्छा है कि जहाँ तक सम्भव हो हमारी सब प्रजा, चाहे वह किसी सम्प्रदाय या प्रजाति की हो, स्वतत्रता और निष्पक्षता के साथ हमारी नौकरिया के पदो पर नियुक्त की जाये, जिनके कर्तव्यो के पालन के लिए वे शिक्षा, योग्यता तथा सत्यनिष्ठा से योग्य हो। हिन्दुस्तान में शान्तिपूर्ण प्रयत्न को प्रोत्साहित करना, सार्वजनिक उपयोगिता और उन्नति के कार्यों को बढ़ाना, तथा वहाँ बसनेवाली सारी प्रजा के हित के लिए शासन का सचालन करना हमारी गम्भीर कामना है। उनकी समृद्धि में हमारी शक्ति है, उनके सन्तोष में हमारी रक्षा और निश्चिन्तता है, और उनकी कृतज्ञता में हमारा पुरस्कार है। हमारी जनता के हित के लिए हमारी इन इच्छाओ को वहन करने की क्षमता ईश्वर हमें और हमारे अधीन अधिकारियो को प्रदान करे।"[1]

साम्राज्यशाही ढांचा

इस शाही घोषणा से कुछ दिन पहले ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने ईस्ट इडिया कम्पनी को उसके राजनीतिक अधिकारो से वचित कर भारत के शासन का सारा उत्तरदायित्व स्वय ग्रहण कर उसका सारा भार सम्राट् के मन्त्रिमण्डल के सुपुर्द कर दिया। भारत के प्रशासन का नियत्रण, निर्देशन तथा निरीक्षण

१. सी वाई. चिन्तामणि इण्डियन पालिटिक्स सिन्स दी म्युटिनी, १९४०, पृ. १७-१८.

ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के एक सदस्य भारतमन्त्री को हस्तान्तरित करते हुए शासन-व्यवस्था इस तरह केन्द्रित कर दी गयी कि शासन का कोई भी नया काम शुरू करना, या कोई भी नया कानून बनाना उनकी आज्ञा के विना केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारो के लिए असंभव हो गया। भारतमन्त्री की सहायता के लिए एक कौंसिल गठित की गयी, जिसके आधे सदस्य अवसर-प्राप्त अंग्रेज प्रशासव थे और आधे भारतीय व्यापार से सम्वन्ध रखनेवाले अग्रेज व्यापारी थे। इस कौंसिल के अधिकाश निर्णय पुराने कालातीत प्रशासनिक अनुभवो तथा साम्राज्य-शाही मनोवृत्ति एव ब्रिटिश व्यापार की हितकामना से प्रभावित होते थे, और यह कौंसिल भारत सरकार की उन सस्तुतियो को वदल देती थी जो नयी परिस्थिति और भारतीय जनमत के अनुकूल, पर कौसिल के सदस्यो के पुराने प्रशासनिक अनुभव के प्रतिकूल होते थे, या जिन्हें ब्रिटिश व्यापार के हित में ठीक नही समझा जाता था। इस कौंसिल के अधिकार सोमित थे, पर इसका प्रभाव वहुत व्यापक था। ब्रिटिश पार्लियामेन्ट और ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल को भारत की समस्याओ पर विस्तार के साथ विचार करने का समय ही नही मिलता था। इस इडिया कौसिल की सलाह से ही ब्रिटिश जनता तथा ब्रिटिश पार्लियामेन्ट और सम्राट् के नाम पर सारे भारतीय प्रशासन का सचालन होता था।

वरीय ब्रिटिश प्रशासक या अंग्रेज राजनीतिज्ञ ही वहुधा भारत के गवर्नर-जनरल नियुक्त होते थे। पर उसकी एक्जीक्यूटिव कौंसिल के करोव-करीव सभी सदस्य इंडियन सिविल सर्विस के अंग्रेज सदस्य ही होते थे। उनका दृष्टिकोण राज-नीतिक के बजाय प्रशासनिक ही होता था। सेनाध्यक्ष (कमाण्डर-इन-चीफ) इस कौंसिल का विशिष्ट सदस्य होता था, जिसकी मनोवृत्ति स्वभावत. सैनिक ही होती थी।

मद्रास और वम्वई के गवर्नर कभी ब्रिटिश राजनीतिज्ञ और कभी अनुभवी ज्येष्ठ अंग्रेज प्रशासक होते थे। पर इन दोनो की एक्जीक्यूटिव कौसिल के सभी सदस्य इडियन सिविल सर्विस से सम्बन्धित अग्रेज अफसर ही होते थे। अन्य प्रान्तो का सारा प्रशासन लेफ्टिनेन्ट गवर्नर या चीफ कमिश्नर के हाथ में होता था, जो सदा इंडियन सिविल सर्विस के अनुभवी प्रतिभाशील अंग्रेज सदस्य होते थे। कानून वनाने के निमित्त केन्द्रीय और प्रादेशिक एक्जोक्युटिव कौसिलो में कतिपय अतिरिक्त सदस्य वढा दिये जाते थे। ये सभी अतिरिक्त सदस्य सरकार द्वारा मनोनीत होते थे। इनमें से कुछ संभ्रान्त हिन्दुस्तानी होते थे, जो भारतीय जनता के विचारो, हितो और भावनाओ के वजाय उच्चकुलीन मनोवृत्ति और हित-

कामना का ही प्रतिनिधित्व कर सकते थे। इन हिन्दुस्तानी सदस्यो की मनोवृत्ति कितनी संकुचित होती थी, इसका अनुमान इस बात से ही हो सकता है कि जब सन् १८८२ में गवर्नर-जनरल लार्ड रिपन ने किसानो के हितो के सरक्षण के लिए एक विधेयक तैयार किया, तो उसे भारतीय सदस्यो का समर्थन प्राप्त नही हुआ, और सरकारी सदस्यो की सहायता से ही उसे पास कराया जा सका।

सन् १८६१ के इंडियन कौंसिल एक्ट के अन्दर बम्बई और मद्रास के अतिरिक्त बगाल में भी कानून बनाने के लिए एक कौसिल गठित कर दी गयी, पर संयुक्त प्रान्त में इस प्रकार की कौसिल का गठन सन् १८८६ में किया गया। इन व्यवस्थापिका कौसिलो के अधिकार सन् १८५३ की व्यवस्था के अन्दर निर्मित केन्द्रीय कौसिलके अधिकारो से भी अधिक सीमित थे, और वे उससे अधिक निस्तेज थी। वास्तव मे भारत-मन्त्री की पूर्व स्वीकृति के बिना ये कौसिलें कोई अधिनियम पास ही नही कर पाती थी, और प्रस्तुत विधेयक के अतिरिक्त किसी दूसरे विषय पर इन कौसिलो में विचार या आलोचना हो ही नही सकती थी।

सारे प्रशासन पर इडियन सिविल सर्विस का बोलबाला था। इनके सदस्यो की नियुक्ति प्रतियोगिता-परीक्षा के आधार पर होती थी। ये परीक्षाएं लन्दन में होती थी। इस खुली परीक्षाओ में भारतीय और अंग्रेज नवयुवक समान रूप से भाग ले सकते थे। ग्रीक और लैटिन भाषा और साहित्य, ग्रीस और रोम का इतिहास, इंगलैण्ड का इतिहास, तथा इंगलिश न्यायव्यवस्था का इतिहास, एवं अंग्रेजी साहित्य परीक्षा के कतिपय विशिष्ट विषय थे। २२-२३ वर्ष की आयु में इगलिस्तान जाकर प्रतियोगिता परीक्षा में अंग्रेज नवयुवको का मुकाबला करना भारतीय नवयुवको के लिए कठिन था। पर जब सन् १८६६ में श्री सत्येन्द्रनाथ ठाकुर लन्दन में जाकर प्रतियोगिता परीक्षा में सफल हुए, तब सन् १८६६ में ही परीक्षा के लिए अधिकतम आयु घटाकर २१ वर्ष कर दी गयी। इस पर भी सन् १८६९ में सर्वश्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, रमेशचन्द्र दत्त और के० जी० गुप्त ने सफलता प्राप्त की। इस पर गवर्नर-जनरल लार्ड नार्थब्रुक की इच्छा के विरुद्ध भारतमन्त्री लार्ड सालिसबरी ने अधिकतम आयु १९ वर्ष कर दी। गवर्नर-जनरल लार्ड लिटन ने एक गोपनीय पत्र में स्वीकार किया कि जिस प्रकार से लन्दन में प्रतियोगिता परीक्षा संचालित की जा रही है और जिस तरह से अधिकतम आयु घटायी गयी है, ये सब वायदे को 'निरर्थक' बनाने के लिए की गयी चालबाजियाँ है। इडियन सिविल सर्विस अंग्रेज नवयुवको से

भरी पडी थी। उन्ही का बोलबाला था। वही देश के वास्तविक प्रशासक थे। प्रशासन के सभी विभागो के उच्च पदो पर इंडियन सिविल सर्विस के सदस्य आसीन थे। फौजदारी अदालतो तथा मालगुजारी सम्बन्धी अदालतो के न्यायाधीश भी सिविल सर्विस के सदस्य ही होते थे। दीवानी अदालतो के मुनसिफ अलग से भारतीय वकीलो में से नियुक्त होते थे पर बहुत से जिला-सेशन जज तथा बहुत से हाईकोर्ट के जज भी इस सिविल सर्विस के सदस्य होते थे। प्रशासन और न्यायिक अदालतो का समुचित पार्थक्य न होने के कारण फौजदारी के मुकदमो में बहुधा न्यायदृष्टि के बजाय प्रशासनिक दृष्टि से फैसले हो जाते थे। जनता की स्वतंत्रता की रक्षा के स्थान पर पुलिस की कठिनाइयो पर अधिक ध्यान रखा जाता था। राजनीतिक मुकदमो में तो बहुधा न्याय की भ्रूण-हत्या ही हो जाती थी। दमनकारी कानूनो की मदद से राजनीतिक चहल-पहल दबा देना, उसे राज-विद्रोह घोपित करके न्यायालयो के जरिये और प्रशासनिक निरोधादेश द्वारा कुचल डालना सरकार के लिए सम्भव था। जो कानून उन्नीसवी शताब्दी के पहले चरण में शत्रुओ की गतिविधि के निरोध के लिए कम्पनी ने बनाये थे, उन्हे उस समय भी भारत की दण्ड-व्यवस्था का अंग बनाये रखना, जबकि सारे भारत पर ब्रिटिश सत्ता स्थापित हो गयी थी, न्यायबुद्धि से अधिक साम्राज्यशाही मनोवृत्ति का परिचायक था।

ब्रिटिश साम्राज्यशाही को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए सन् १८६१ में पील कमीशन की सस्तुतियो पर भारत में सेना का नया सगठन किया गया। तोपखाने में हिन्दुस्तानी सिपाहियो की भरती बन्द कर दी गयी। हिन्दुस्तानी सिपाहियो की पलटनें जाति, प्रान्त और सम्प्रदाय के आधार पर इस तरह संगठित की गयी कि उनके लिए देशभक्ति की भावना से अनुप्राणित हो मिल कर काम करना सम्भव ही न हो। फौज में गोरो की संख्या बढा दी गयी। बहुत-सी गोरी पलटनें आन्तरिक सुरक्षा के लिए नियुक्त कर दी गयी, ताकि विद्रोह को स्थानीय स्तर पर ही आसानी से दबाया जा सके। बाह्य आक्रमण से देश की रक्षा भी इन पलटनो का प्रमुख कार्य निर्धारित किया गया, पर एशिया में ब्रिटिश साम्राज्यशाहो की नीतियो को सैनिक और सामरिक प्रयोगो द्वारा परिपुष्टि ही इन पलटनो का एक वास्तविक उद्देश्य था। बडे-बडे ओहदे गोरे अफसरो के लिए सुरक्षित रखे गये, हिन्दुस्तानी सैनिक सुबेदार-मेजर से ऊँचा स्थान प्राप्त नही कर सकता था। सेनड्हर्स्ट में शिक्षा-प्राप्त सैनिक ही 'किंग कमीशन' का अधिकारी हो सकता था। पर वहाँ कोई भारतीय सैनिक

शिक्षा के लिए भरती ही नही किया जाता था। उच्च सैनिक शिक्षा के लिए भारत मे कोई सैनिक शिक्षा सस्था संस्थापित ही नही की गयी थी।

जनकल्याण की उपेक्षा

भारतीय शासन-व्यवस्था भी मूलरूप से साम्राज्यशाही पुलिस व्यवस्था थी। ब्रिटिश साम्राज्यशाही के प्रभुत्व को बनाये रखना, तथा शान्ति और सुव्यवस्था कायम रखना ही प्रशासन के प्रमुख लक्ष्य थे। ब्रिटिश प्रशासक कल्याण-राज्य के सिद्धान्त को मानते ही नही थे।

देश के आर्थिक विकास मे उनका योगदान नगण्य और नकारात्मक था। सन् १८५७ के विप्लव के पहले ही ईस्ट इण्डिया कंपनी ने अपनी एक सौ वर्ष की आर्थिक नीति द्वारा भारत की आर्थिक व्यवस्था को छिन्न भिन्न कर दिया था। बहुत से पुराने उद्योग धन्धे नष्ट-प्राय हो गये थे। औद्योगिक पदार्थों का निर्यात बहुत कम हो गया था। सारा देश बहुत हद तक कृषि-प्रधान बन गया था। विप्लव के बाद भी यह प्रक्रिया जारी रही। जनता की आर्थिक दशा बिगडती चली गयी। किसी विपत्ति को सहने की उसमें शक्ति ही न रही। इस काल में (१८५८-१८८५) डेढ करोड से अधिक व्यक्तियो की अकाल से मृत्यु हो गयी। सन् १८७६-७८ के भयानक अकाल मे ही ८२ लाख आदमियो को मौत का सामना करना पडा। इस परिस्थिति पर विचार करते हुए अकाल कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में स्वीकार किया कि 'भारतीय जनता की घोर दरिद्रता तथा अकाल की विपत्ति दोनो का कारण यही है कि अधिक जनसंख्या की जीविका केवल खेती से चलती है, और तब तक इन विपत्तियो से छुटकारा पाने का उपाय नही हो सकता, जब तक भिन्न-भिन्न प्रकार के उद्योगो का प्रसार नही किया जाता, जिनके द्वारा अधिक जनसंख्या खेती के अतिरिक्त अन्य व्यवसायो और उद्योगो से भी अपनी जीविका चला सके।' कमीशन का सुझाव था कि 'खेती के अतिरिक्त अन्य व्यवसायो की उन्नति की जाय, जिन पर ऋतुओ के परिवर्तन का कुछ भी प्रभाव न पडता हो।' इसके बाद भी सरकार ने पुराने उद्योगो के संरक्षण तथा नये उद्योगो के विकास के लिए कुछ नही किया। मुक्त व्यापार के सिद्धान्त का इस दृढ़ता से पालन किया गया कि सन् १८६९ में लार्ड लिटन ने अपनी कार्य-परिषद के सदस्यो के विरोध के बावजूद सूती कपड़ो के आयात पर लगे सीमा-शुल्क को वापस ले लिया। इसका देशी उद्योग के विकास पर बुरा प्रभाव पडा, जबकि ब्रिटेन से सूती कपड़ो के आयात में इतनी वृद्धि हुई कि जहाँ सन् १८७८-७९ में केवल ३३ लाख रुपये का कपडा भारत मे आया, वहाँ सन् १८८०-८१ मे ९४७ लाख

रुपये के सूती कपडो का आयात हुआ। लार्ड रिपन के शासन-काल मे भी वहुत-सी विदेशी वस्तुओ पर से आयात-शुल्क वापस ले लिया गया, और जब सन् १८९४ में वित्तीय कठिनाइयो के कारण सरकार को विदेशी कपडो पर आयात-शुल्क लगाना पडा, तब उसने भारत के कल-कारखानो मे तैयार होनेवाले सूती वस्त्रो पर उस शुल्क के बरावर का उत्पादन-शुल्क लगा दिया। सरकार ने रेलो के निर्माण में अवश्य ही महत्त्वपूर्ण योगदान किया, पर उसकी रेलवे नीति भी मूल रूप से देश के आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने के वजाय ब्रिटेन के व्यापार को वढाने के लक्ष्य से ही प्रेरित थी।

भूमि व्यवस्था

सन् १८५७ के विप्लव के पहले ही ईस्ट इडिया कपनी ने देश के विभिन्न क्षेत्रो में विभिन्न प्रकार की भूमि-व्यवस्था स्थापित कर दी थी। इन व्यवस्थाओ को लागू करते समय खेतिहर किसानो और मजदूरो के हितो के संरक्षण की ओर कोई ध्यान नही दिया गया था। विप्लव के वाद भी किसानो के हितो के प्रति उपेक्षा जारी रही। लगभग पच्चीस वर्ष के बाद सन् १८८२ में लार्ड रिपन ने एक अधिनियम द्वारा बंगाल प्रदेश के किसानो की रक्षा के निमित्त जमीदारो की मनमानी पर कुछ प्रतिबन्ध लगाना आवश्यक समझा। इस अधिनियम से किसानो को कुछ राहत जरूर मिली, पर यह पर्याप्त सिद्ध नही हुई। दूसरे क्षेत्रो की कृपि-व्यवस्थाओ में सन् १८८५ तक सामाजिक न्याय की दृष्टि से कोई संशोधन नही किया गया। वहा की कृषक जनता तो जमीदारो की ज्यादतियो का पूर्ववत् शिकार वनी रही।

गतिविधि

इस जमाने में "सरकार की नीति" जैसा कि श्री सी० वाई० चिन्तामणि ने बताया, "धीमी उन्नति और तगड़ी प्रतिगामिता मे वदलती रही", और उसका स्वरूप भारतीय जनमत के बजाय "ब्रिटिश सरकार और ब्रिटिश पार्लियामेंट की वदलती हुई नीतियो पर निर्भर होता था।"[1]

जहा सन् १८७४ तक कतिपय क्षेत्रो में थोडी वहुत उन्नति हुई, वहा सन् १८७४ के वाद लार्ड लिटन के जमाने में भारत को भारी अवनति का सामना करना पडा। उन्होने भारतीय जनहित और शिक्षित समाज

१. चिन्तामणि : इण्डियन पालिटिक्स सिन्स म्युटिनी, पृ० ३१-३२।

की भावनाओ की उपेक्षा करते हुए भारत पर सन् १८७९ में 'आर्म्स एक्ट' लादकर भारतीयो को बिल्कुल निहत्था कर दिया, सन् १८७८ मे 'वर्नाकुलर प्रेस एक्ट' चालू करके देशी भाषा में प्रकाशित होने वाले समाचार-पत्रो की स्वतन्त्रता नष्ट कर दी। उसी जमाने मे ब्रिटिश सरकार ने अपनी साम्राज्यशाही अग्रवर्ती नीति (फारवर्ड पालिसी) के अधीन अफगानिस्तान पर आक्रमण कर दिया, और थोड़ी-सी रकम को छोड़कर, जो ब्रिटेन के खजाने से दी गयी, युद्ध का बाकी सब खर्चा भारत को वहन करना पड़ा। उसके बाद ब्रिटेन की उदारदलीय सरकार ने लार्ड रिपन को सन् १८८० मे गवर्नर-जनरल बनाकर भेजा। उन्होने 'वर्नाकुलर प्रेस एक्ट' वापस ले लिया, तथा किसी मात्रा में स्थानीय स्वायत्त शासन की प्रणाली को चालू करने के निमित्त स्थानीय निकायो के पुनर्गठन का आदेश जारी किया। उन्होने बंगाल प्रदेश के कृषको के हितो की रक्षा के निमित्त एक अधिनियम भी पास कराया, कतिपय प्रगतिशील व्यक्तियो को विधान-सभाओ का सदस्य भी मनोनीत किया, तथा हिन्दुस्तानी मजिस्ट्रेटो को भी यूरोपियन अभियुक्तो के विरुद्ध मुकदमे सुनने का अधिकार देकर रंगभेद को अदालती मामलो मे किसी हद तक कम करने की कोशिश की। उन्हें अपने अंग्रेज अफसरो के प्रतिरोध और अंग्रेज निवासियो के विरोध और रोष का ऐसा सामना करना पड़ा कि उन्हे अपनी अवधि के एक वर्ष पूर्व ही लन्दन वापस चले जाना पड़ा, और उनके प्रयत्नो के कारण प्रजातीय भावना में कोई कमी नही हो पायी।

सर हेनरी काटन ने हिन्दुस्तानियो के प्रति अंग्रेजो के अभद्र, क्रूर और अन्यायपूर्ण व्यवहार की भर्त्सना करते हुए लिखा है कि "यदि किसी चायबागान के किसी मालिक पर किसी असहाय कुली पर दारुण प्रहार करने का अपराध लगता, तो उसकी सुनवाई चायबागान के मालिको की ज्यूरी द्वारा होती, जिसका स्वाभाविक झुकाव मालिक के पक्ष में होता, और यदि हाईकोर्ट के हस्तक्षेप के कारण उसे सजा दी जाती, तो सब अंग्रेज मिलकर दुन्द मचा देते। एंग्लो-इंडियन समाचार-पत्रो में सजा की कड़ी आलोचना होती, दोषी के खर्चे के लिए चन्दा जमा किया जाता, तथा उसकी रिहाई के लिए सरकार को प्रभावशाली अंग्रेजो के हस्ताक्षर से मेमोरियल दिया जाता"[1]।

इस तरह लार्ड रिपन की उदार नीति के बावजूद भारत की शासन-व्यवस्था महारानी विक्टोरिया की शाही घोषणा के विपरीत बनी रही। गवर्नर-जनरल

१. काटन . न्यू इण्डिया, पृ० ४८।

लार्ड लिटन ने तो अपने शासन-काल मे ही स्वीकार कर लिया था कि महारानी विक्टोरिया की घोषणा पर आधारित दावों और आकाक्षाओ को पूरा नही किया जा सकता। उन्होने एक गुप्त विज्ञप्ति में लिखा कि ब्रिटिश सरकार और भारत सरकार, दोनो ने उन सब तरीको से जो उनकी शक्ति मे थे, वायदो को जी भर तोड़ा है। इस दृष्टि से महारानी विक्टोरिया की घोषणा काल्पनिक और अव्यावहारिक थी, जबकि शासन-व्यवस्था वास्तविकता पर आधारित तथ्य था। पर घोषणा भी एक ऐसा ऐतिहासिक तथ्य था जिसके अस्तित्व को बिल्कुल भुला देना अंग्रेजो के लिए सभव नही था, और वह एक ऐसी कल्पना थी जिसे भारत की प्रगति के लिए भारतीय राजनीतिज्ञ इसी प्रकार प्रयोग कर सकते थे जिस प्रकार इगलिस्तान के राजनीतिज्ञो ने वर्तमान युग के प्रभातकाल में मध्य-युगीय सामन्तशाही 'मेगना-कार्टा' को ब्रिटिश जनता के अधिकारो और स्वतंत्रताओ की पुष्टि में प्रयोग किया था।

मध्यवर्गीय जन-जागृति

विप्लव की विफलता के बाद सशस्त्र विद्रोह की कल्पना लुप्त हो गयी। फिर भी कतिपय मौलवियो द्वारा विद्रोह के षड्यन्त्र किसी हद तक जारी रहे, पर इनकी शक्ति सन् १८७० तक बिल्कुल क्षीण हो गयी। मध्ययुगीय धारणाओ और मर्यादाओ के प्रति निष्ठावान् मौलवियो के लिए समाज को सार्थक प्रगतिशील नेतृत्व प्रदान करना, तथा नवीन उदार धारणाओ के आधार पर राष्ट्र का निर्माण करना भी संभव नही था। यही बात उन पण्डितो और पुरोहितो के सम्बन्ध मे भी कही जा सकती है जो हर परिस्थिति मे परम्परागत मान्यताओ का अक्षरश. अनुसरण आवश्यक समझते थे, और कोई नयी बात ग्रहण करने को तैयार नही थे।

अभिजात वर्ग भी, जिसे समाज के स्वाभाविक नेता होने का दावा था, समाज का सार्थक नेतृत्व करने में असमर्थ था। राजे, नवाब इतने शक्तिहीन थे कि वे अपनी परेशानियो और कठिनाइयो को भी सामूहिक रूप से भारत सरकार के सामने पेश नही कर सकते थे। एक स्थान पर इकट्ठे होकर अपनी निजी समस्याओ पर विचार-विमर्श नही कर सकते थे। जमीदारों तथा तालुकेदारो पर इस प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नही था। बगाल, विहार और उडीसा के जमीदारो ने विप्लव से पहले ही सन् १८५१ मे 'ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन' के नाम से एक सस्था गठित कर ली थी। उसने सन् १८५२ में सयुक्त ससदीय समिति (ज्वाइन्ट पार्लियामेन्टरी कमेटी) के सामने एक बहुत ही विस्तृत परिपत्र

पेश किया था, जिसमें उसने शासन की व्यवस्था और नीति की आलोचना करते हुए माग की थी कि उन्हे सुधारा जाये, और प्रतिनिधि विधान सभा स्थापित की जाय। विप्लव के बाद सयुक्त प्रान्त के जमीदारो और तालुकेदारो ने भी 'ब्रिटिश इडियन असोसिएशन' के नाम से एक सोसाइटी गठित कर ली थी। पर यद्यपि इन दोनो संस्थाओ के कतिपय प्रतिभाशाली सदस्य बहुत ही सुसास्कृतिक थे, और सास्कृतिक क्षेत्र मे उनका महत्त्वपूर्ण योगदान था, पर इन सस्थाओ के लिए युग के अनुकूल राजनीतिक नेतृत्व प्रदान करना सभव नही था। राजभक्ति उनका मूलमन्त्र था। सरकार के कर्मचारियो और अफसरो का विरोध करना उनके लिए कठिन था। इन सस्थाओ का दृष्टिकोण मूलत सामन्तवादी था, जबकि उदारवादी लोकतन्त्र युग की पुकार थी। ऐसी स्थिति में युगानुकूल नेतृत्व का समर्थन करने के बजाय अपने वर्ग के हितो और मान की पुष्टि ही उनका मुख्य कार्य था।

किसानो और मजदूरो की दशा तो बहुत ही दयनीय थी। वे असहाय और असगठित थे, और देश के नेतृत्व का भार वहन करना उनके लिए असभव था। वे न तो शासन के कुचक्रो को समझ सकते थे, और न उनका सफल सक्रिय विरोध कर सकते थे। उन्हे तो वास्तव में स्वयं अपने हितो की रक्षा और पुष्टि के लिए दूसरो के नेतृत्व और सहयोग की आवश्यकता थी। किसानो का असन्तोप दीर्घकालीन राजनीतिक आन्दोलन का रूप धारण नही कर पाता था।

इन कारणो से देश के राजनीतिक नेतृत्व का भार वहन करना आधुनिक शिक्षा-प्राप्त मध्यवर्गीय शिक्षितो का कर्तव्य बन गया। यह वर्ग बहुत छोटा और असगठित पर क्रमश विकासशील था। इसके बहुत से सदस्यो में समाज-सेवा की भावना की कमी थी। पर इसके अधिकाश सदस्य इंगलैण्ड के उदार विचारो और लोकतान्त्रिक भावनाओ से परिचित और प्रभावित थे। वे गतिशील और प्रगतिशील थे और अपने देश में ब्रिटेन के ढंग की शासन व्यवस्था प्रतिष्ठित करना चाहते थे। महारानी विक्टोरिया की शाही घोषणा उनका 'मेगना कार्टा' (महाधिकार-पत्र) था। उसकी मान्यताएँ ही उनकी मागो का आधार थी। वे राजभक्त थे, भारत की प्रगति में ब्रिटेन के योगदान को स्वीकार करते थे, ब्रिटेन के साथ अपने देश का सम्बन्ध बनाये रखना चाहते थे। पर उनके विचार मे भारतीय शासन की त्रुटियो की ओर ब्रिटिश सरकार और जनता का ध्यान आकृष्ट करना, शाही घोषणा की मान्यताओ को कार्यान्वयन करने की माँग करना, ब्रिटेन की न्याय भावना की दुहाई देना, तथा उसके आधार पर शासन की नीति-

रीति को निर्धारित करने की माँग करना, एवं भारत में ब्रिटेन के ढंग की प्रतिनिधि सस्थाओ की स्थापना की कामना करना किसी प्रकार भी राजभक्ति के विरुद्ध नही समझा जा सकता ।

राजा राम मोहन राय

इस उदारवादी मध्यवर्गीय चिन्तन का सूत्रपात विप्लव से तीस पैतीस वर्ष पहले राम मोहन राय ने किया, जिन्हे गोखले के शब्दो में 'आधुनिक उदारवाद का पिता' कहा जा सकता है । राम मोहन राय एक सामान्य जमीदार के पुत्र थे । उनके बहुत से मित्र और सहयोगी द्वारकानाथ ठाकुर जैसे उच्च कोटि के जमीदार थे । पर उनका जनजागृति आन्दोलन मूलत मध्यवर्गीय था । वे एक ऐसे मध्यवर्गीय शिक्षित समाज का निर्माण करना चाहते थे, जो प्राचीन वैदिक धर्म और भारतीय संस्कृति पर आस्था रखते हुए रूढिवाद का विरोधी हो, अन्य धर्मों और सस्कृतियो के सजीव नैतिक तथ्यो को ग्रहण करते हुए व्यापक मानवीय भावना से भारतीय समाज का नवनिर्माण करे । राम मोहन राय की जनजागृति मुख्य रूप से धार्मिक और सास्कृतिक थी । पर आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र मे भी उनका मार्ग-दर्शन महत्त्वपूर्ण था । वे रहस्यवाद, रूढिवाद तथा जटिल कर्मकाण्ड के विरोधी तथा एकेश्वरवाद, नैतिकता और सास्कृतिक संश्लेषण के समर्थक थे । वे चाहते थे कि हिन्दू समाज पाखण्ड को छोडकर केवल एक परमात्मा की पूजा करने लगे । विभिन्न धर्मों मे वर्णित नैतिक उपदेशो को रहस्यमय अंधविश्वासो और ऐतिहासिक सामग्री से अलग कर जीवन मे आत्मसात किया जाय, तथा प्रत्येक मनुष्य दूसरो के साथ वही व्यवहार करे जो अपने प्रति चाहता है । वे तर्क और शास्त्रीय प्रमाण, दोनो की मदद से सत्य की खोज करते थे, बुद्धिसंगत शास्त्रीय वाक्य को ही प्रामाणिक समझते थे, और स्वतन्त्र चिन्तन को मनुष्य का मौलिक अधिकार मानते थे । वे यह भी चाहते थे कि भारतीय नवयुवक भारतीय दर्शन और पाश्चात्य विज्ञान का साथ-साथ अध्ययन करें, अपने चरित्र का निर्माण कर सामाजिक कुरीतियो और अन्याय का विरोध करें, तथा सहिष्णुता, न्याय और पारस्परिक सौहार्द के आधार पर सामाजिक जीवन गठित करे । भारतीय समाज की उन्नति के लिए वे निर्धनो, स्त्रियो और पिछड़े वर्गों का उत्थान नितान्त आवश्यक समझते थे । वे सती प्रथा और बहुविवाह के कट्टर विरोधी तथा विधवा-विवाह के समर्थक थे । वे चाहते थे कि समाज में स्त्रियो का समुचित आदर हो, उन्हें आत्मोत्कर्ष के साधन उपलब्ध हो, पति और पिता की सम्पत्ति में उनका भी

हिस्सा हो। राजा राम मोहन राय जाति प्रथा के जटिल बन्धनों को राष्ट्रीय भावना के विकास में बाधक समझते थे, और चाहते थे कि तथाकथित कुलीन वर्ग के लोग हिन्दू धर्म की उदार भावनाओं से अनुप्राणित हो जातिगत विशिष्टता के विचार को त्याग कर सबके साथ सौहार्द और आत्मीयता का व्यवहार करें।

राजा राम मोहन राय की इच्छा थी कि सरकार निर्धनों के लिए निःशुल्क शिक्षा का प्रबन्ध करे, एवं किसानों के हितों की रक्षा की समुचित व्यवस्था करे। वे चाहते थे कि किसानों को लगान में छूट दी जाय, और राजस्व की क्षतिपूर्ति विलासिता की वस्तुओं पर अधिक कर लगा कर की जाय। वे यह भी चाहते थे कि अंग्रेजों के बजाय भारतीय सरकारी नौकरियों पर नियुक्त किये जायें। उन्होंने अपने परिपत्र में माँग की कि दीवानी न्यायालयों में भारतीय न्यायाधीश हों, जूरी व्यवस्था लागू की जाय, न्यायाधीश व लगान आयुक्त भिन्न व्यक्ति हों, न्यायाधीश व मजिस्ट्रेट एक ही व्यक्ति न हो, तथा स्थानीय सम्मानित व्यक्तियों से परामर्श के बाद दीवानी व फौजदारी कानून बनाये जायें।

२० अगस्त सन् १८२८ को उन्होंने ब्रह्म सभा स्थापित की। ब्रह्मसमाज की घोषणा में कहा गया कि एक ही प्रार्थना-भवन में सभी प्रकार के व्यक्ति बिना भेदभाव के जमा होंगे, और एक व्यवस्थित विनम्र धार्मिक व भक्ति भावना से निराकार, सर्वव्यापी ईश्वर की पूजा व स्तुति करेंगे। किसी मूर्त अथवा अमूर्त वस्तु की ईश्वर के रूप में किसी मनुष्य द्वारा पूजा नहीं की जायेगी। ब्रह्म-समाज के विद्वानों ने एक ईश्वर की संस्तुति में ब्रह्म-संगीतों की रचना की। ब्रह्म-समाज के स्वयं-सेवकों ने बाल-विवाह, बहु-विवाह व जात-पाँत की जड़ता को समाप्त करने का प्रयत्न किया।

इन प्रयासों के विरुद्ध रूढ़िवादी हिन्दुओं ने ब्रह्म-समाज की प्रतिद्वन्दी 'धर्म सभा' की स्थापना की। श्री राधाकान्त के नेतृत्व में उसने ब्रह्म-समाज और समाज-सुधार का विरोध किया। ये लोग धर्म की परम्पराओं तथा समाज की व्यवस्था में परिवर्तन या सुधार करना धर्म-विरुद्ध समझते थे। उनकी धारणा थी कि नारी की अपेक्षा पुरुष का स्थान ऊँचा है। शास्त्र के अनुसार नारी को पिता, पति या पुत्र के अधीन रहना चाहिए। सती-प्रथा के विरोधियों का विरोध करने के लिए 'धर्म सभा' ने स्वयं-सेवकों का एक दल संगठित किया।

इस विरोध की उपेक्षा करते हुए बहुत से प्रतिभाशाली नवयुवक, जिन्होंने आगे चलकर विभिन्न क्षेत्रों में समाज की महत्त्वपूर्ण सेवा की और अपनी क्षमता

के लिए यश प्राप्त किया, ब्रह्म-समाज के सदस्य बन गये। पर कुछ काल बाद ब्रह्म-समाज मे फूट पड गयी और वह तीन भागो में विभक्त हो गया। आगे चल कर नवविधान-समाज और आदिब्रह्म-समाज साधारण ब्रह्म-समाज में शामिल हो गये, और फिर एकता स्थापित हो गयी। पर विभाजन और पारस्परिक वाद-विवाद ने उनकी गति और प्रतिष्ठा को क्षति अवश्य पहुँचायी।

दादाभाई नौरोजी

राजा राम मोहन राय के निधन के आठ वर्ष पहले ४ सितम्बर सन् १८२५ को बम्बई में एक साधारण मध्यवर्गीय पारसी परिवार में दादाभाई नौरोजी ने जन्म लिया, और अपनी शिक्षा समाप्त करने से पहले ही बीस वर्ष की आयु में सार्वजनिक कार्य प्रारम्भ कर दिया। दादाभाई सच्चे मानो मे मध्यवर्गीय शिक्षित समाज की क्षमता और भावना के प्रतीक थे। उन्होने एक मध्यवर्गीय परिवार मे जन्म लेकर, एक निर्धन मध्यवर्गीय बालक की तरह आधुनिक पद्धति से शिक्षा प्राप्त कर आजीवन मध्यवर्गीय नवयुवको के साथ काम किया, उन्हे सामाजिक सेवा में प्रोत्साहित किया, उनकी राष्ट्रीय भावनाओ को अभिव्यक्त किया, तथा देशव्यापी स्तर पर उनका नेतृत्व किया। राम मोहन राय की तुलना में दादाभाई नौरोजी का योगदान धार्मिक और सास्कृतिक क्षेत्र में बहुत सीमित, पर आर्थिक और राजनातिक क्षेत्र में बहुत व्यापक था। जबकि राम मोहन राय अपने जीवन-काल मे बगाल के हिन्दू नवयुवको को ही अनुप्राणित और प्रभावित कर पाये, दादाभाई नौरोजी ने पारसी समाज के नवयुवको के साथ-साथ सारे देश के नवयुवको की राष्ट्रीय भावनाओ और आकाक्षाओ को जागृत, विकसित और पुष्ट करते हुए एक देशव्यापी राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व किया। यदि राम मोहन राय 'आधुनिक उदारवाद के पिता' थे, तो दादाभाई नौरोजी 'धर्म निरपेक्ष राष्ट्रीयता तथा मध्यवर्गीय राष्ट्रीय आन्दोलन के पिता' थे।

दादा भाई उच्च कोटि के समाज-सुधारक थे। अपने जीवन के आरभिक काल में स्त्री-शिक्षा के प्रसार, तथा पारसी धर्म की परिशुद्धि मे उनका महत्त्वपूर्ण योगदान था। पर उनकी धारणा थी कि सामाजिक उत्कर्ष के लिए राजनीतिक उत्कर्ष परमावश्यक है। अतः देश के सर्वांगीण विकास के निमित्त राजनीतिक सुधारों के लिए सतत प्रयत्न उनके सार्वजनिक जीवन का मुख्य लक्ष्य बन गया।

सन् १८५२ मे 'बाम्बे एसोसिएशन' की स्थापना-गोष्ठी में उन्होने ब्रिटिश राज्य की न्यायप्रियता के प्रति आस्था व्यक्त करते हुए न्याय व्यवस्था, राजस्व

व्यवस्था, तथा किसानो की दशा के सुधार की आवश्यकता की ओर संकेत किया, और कहा कि देश की मर्यादाओ, परम्पराओ तथा रीतियो की जानकारी न होने के कारण अंग्रेज अफसर सद्भावना रखते हुए भी ऐसे कानून और अध्यादेश जारी कर सकते है जो उनकी दृष्टि में ठीक होते हुए भी जनता को ठीक न जँचें। उन्होने कहा कि इस कठिनाई को दूर करने के लिए 'वाम्बे एसोसिएशन' जैसी सार्वजनिक संस्थाओ का निर्माण, जिनके द्वारा सरकार को जनता की प्रतिक्रियाओ का पता चलता रहे, आवश्यक है। इसके बाद बुद्धि-जीवियो की राजनीतिक संस्थाओ की स्थापना, तथा उनके द्वारा जनता की आवश्यकताओ, आकाक्षाओ और मागो की .पुष्टि उनके सार्वजनिक जीवन का मुख्य धंधा बन गया।

लोकतन्त्र के मूल सिद्धान्तो पर उनकी दृढ निष्ठा थी। वे हिंसात्मक विद्रोह या सशस्त्र क्रान्ति के वजाय शान्तिमय संवैधानिक ढग से लोकतन्त्र को प्रतिष्ठित करने के पक्ष में थे। वे प्रजातिवाद (रेशियलिज्म) के विरोधी थे। वे इस वात को स्वीकार करने के लिए तैयार नही थे कि अंग्रेजो में कुछ ऐसे स्वाभाविक विशिष्ट गुण है जो भारतीयो मे नही पाये जाते है और जिसके कारण भारतीयो में प्रतिनिधि-शासन के संचालन की क्षमता नही है। उनकी धारणा थी कि राजनीतिक स्वतत्रता प्रत्येक मानव तथा ब्रिटिश प्रजा का विशिष्ट जन्मसिद्ध अधिकार है, और दोनो हैसियतो से भारतीयो के इस अधिकार को ब्रिटेन को स्वीकार कर लेना चाहिए। उनका उदारदलीय चिन्तन मानवता की भावना से अनुप्राणित था। श्रमिक जनता के हितो और अधिकारो की समुचित रक्षा और पुष्टि वे लोकतन्त्र का कर्तव्य समझते थे। वे देशबन्धुत्व के आधार पर विभिन्न जातियो और सम्प्रदायो के भारतीयो में सौहार्द स्थापित कर भारतीय राष्ट्र का निर्माण करना चाहते थे। वे तो वास्तव में मानव समाज की एकता पर विश्वास करते थे, तथा विभिन्न राष्ट्रो और सस्कृतियो में सौहार्दपूर्ण सम्पर्क प्रतिष्ठित करने के पक्ष में थे।

महादेव गोविन्द रानडे

विप्लव के कुछ वर्षों वाद महाराष्ट्र में 'प्रार्थना-सभा' के नाम से सामाजिक जागृति का प्रादुर्भाव हुआ। यह जागृति राजा राम मोहन राय की जन-जागृति से प्रभावित थी, पर प्राचीन भागवत धर्म और महाराष्ट्र सन्तो की धारणाओ की भी इस पर गहरी छाप थी। ईश्वर पर अटल निष्ठा और मानव-प्रेम इसके मूल मन्त्र थे। 'प्रार्थना-सभा' मुख्यतः उदार मानवीय भावनाओ से अनुप्राणित

मध्यवर्गीय शिक्षितो की संस्था थी। जिन विद्वानो ने इसकी प्रगति और प्रतिष्ठा में महत्त्वपूर्ण योगदान किया, उनमें महादेव गोविन्द रानडे प्रमुख थे। वे स्वयं एक व्यापक सस्था थे। उन्होने बहुत से नवयुवको को समाजसेवा में दीक्षित किया, तथा विभिन्न सामाजिक, सास्कृतिक और आर्थिक क्षेत्रो मे स्वय प्रशंसनीय नेतृत्व प्रदान किया। उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम दशक में उन्होने हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय अर्थतन्त्र के कुछ मुख्य सिद्धान्तो को प्रतिपादित करते हुए उसकी बुनियाद डाली।

देश की औद्योगिक उन्नति के लिए रानडे ने 'औद्योगिक कान्फ्रेंस' की बुनियाद डाली, और समाज-सुधार के लिए "सोशल कान्फ्रेंस' कायम की। इन कान्फ्रेंसो में प्रतिवर्ष किसी न किसी महत्त्वपूर्ण विषय पर वे स्वयं लेख प्रस्तुत करते, और दूसरे सहयोगियो और नवयुवको को उनमें भाग लेने को प्रोत्साहित करते थे। वे उच्चकोटि के समाजसुधारक थे। समाज सुधार पर उनके लेख समाजविज्ञान के कतिपय मूलसिद्धान्तो पर आधारित, और मानवता की भावना से अनुप्राणित होते थे। सम्पूर्ण समाज का समन्वित विकास ही उनके सामाजिक नेतृत्व का लक्ष्य था। देश के समुचित आर्थिक विकास के लिए नवीन वैज्ञानिक तकनीक का बुद्धिसंगत प्रयोग, नये-नये उद्योग-धधो की स्थापना, पुराने कुटीर-उद्योगो का पुनरोत्थान और विस्तार, तथा कृपीय व्यवसाय और व्यवस्था का समुचित सुधार वे आवश्यक समझते थे। वे उदारवादी थे। पर उनका उदारवाद सामाजिक न्याय और समाजकल्याण की भावना से अनुप्राणित था। वे सामूहिक कल्याण को व्यक्तिगत हितो से कही ऊँचा स्थान देते थे। वे भारतीय संस्कृति के विकास मे मुसलमानो का योगदान स्वीकार करते थे, और चाहते थे कि सब भारतवासी प्रजाति, सम्प्रदाय और जात-पात की संकीर्णताओ से ऊपर उठ कर अपने को भारतीय समझें और पूर्ण सहयोग के साथ देशोत्थान का काम करें।

स्वामी दयानन्द और रानडे

जबकि महादेव गोविन्द रानडे ने रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत को पुष्ट किया, उनके समकालीन महर्षि दयानन्द ने निम्बार्क की तरह ईश्वर, जीव और प्रकृति–तीनो की स्वतत्र सत्ता को स्वीकार किया। जबकि रानडे ने जीवन-सिद्धि के लिए प्रार्थना द्वारा ईश्वर की उपासना, तथा जीवन में सद्‌गुणो का विकास और जनहितकारी सत्कर्मों को आवश्यक बताया दयानन्द ने इनके साथ-साथ मनोयोग और वैदिक कर्मकाण्ड का अनुसरण, एवं बुढापे मे वानप्रस्थ और सन्यास धर्म का पालन भी आवश्यक बताया। स्वामी दयानन्द ने चातुर्वर्ण्य व्यवस्था को

भी पुष्ट किया। उन्होंने ब्राह्मण के पद और गौरव के महत्त्व को भी स्वीकार किया। पर उन्होंने जन्म के बजाय गुण, कर्म और स्वभाव को वर्ण का आधार बताया। जबकि रानडे ने ऐतिहासिक विकास के सिद्धात को पुष्ट करते हुए जीवन और समाज की प्रगति के लिए ऐतिहासिक स्थिति के संदर्भ में आचार-व्यवहार में परिवर्तन आवश्यक बताया, दयानन्द ने सब मध्ययुगीय और अर्वाचीन प्रथाओ का परित्याग करके अतिप्राचीन वैदिक प्रथाओ, सिद्धान्तो तथा कर्मकाण्ड का अनुसरण हिन्दू जाति के उत्कर्ष के लिए आवश्यक बताया। वैदिक सस्कृति का पुनरुज्जीवन ही स्वामी दयानन्द का लक्ष्य था।

स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज

स्वामीजी वेद को अपौरुष्य समझते थे, उसे चार ऋषियो के माध्यम से अवतरित ईश्वरीय ज्ञान स्वीकार करते थे। वे वेदो को सम्पूर्ण ज्ञान का भण्डार मानते थे, और उनकी सत्यता और प्रामाणिकता पर उन्हे पूर्ण विश्वास था। उन्होने प्रचलित मूर्तिपूजा तथा पौराणिक आचार-विचार और कर्मकाण्ड की आलोचना करते हुए विशुद्ध वैदिक कर्मकाण्ड, उपासना पद्धति तथा आचार-व्यवहार का समर्थन किया, और उनका अनुसरण आवश्यक बताया। उन्होने अन्य धर्मो और सम्प्रदायो का भी खण्डन करते हुए उनके अनुयायियो को शुद्धि द्वारा वैदिक धर्म मे प्रवेश करने का हिन्दुओ को परामर्श दिया। वे पुरानी गुरुकुल पद्धति को आधुनिक शिक्षा-पद्धति से अधिक उपादेय समझते थे, और विद्यार्थी जीवन में ब्रह्मचर्याश्रम के नियमो के पालन की आवश्यकता पर जोर देते थे। यद्यपि वे वर्णव्यवस्था को स्वीकार करते थे, पर वे प्रचलित जातिप्रथा के विरोधी थे। स्वामीजी का व्यक्तित्व बहुत ही तेजस्वी और शक्तिशाली था। उनकी विद्वत्ता और तर्कशक्ति भी अपूर्व थी।

उनके प्रचार ने पंजाब और उत्तर भारत में आर्य-समाज के रूप में धीरे-धीरे काफी जोर पकडा, और बहुत से निम्न मध्य वर्ग के नवयुवको को विशेष रूप से प्रभावित किया। उसने जातिप्रथा के बन्धनो को ढीला किया, शूद्र समझी जानेवाली जातियो में नयी आशा और जागृति विकसित की, उन्हें आत्मशुद्धि की ओर प्रेरित किया। आर्यसमाज ने जहाँ साम्प्रदायिक असहिष्णुता और वाद-विवाद को प्रोत्साहित किया, वहाँ शिक्षा और समाज-सुधार के क्षेत्र में महत्त्व-पूर्ण कार्य किया, और बहुत से हिन्दू नवयुवको को समाज-सेवा की प्रे प्रदान की।

सनातन धर्म सभा

आर्य समाज के जवाब में 'सनातन धर्म सभा' कायम हुई । ये दोनो संस्थाएँ वेदो पर आस्था रखती थी, उन्हें अपने धर्म का मूलाधार मानती थी, और सस्कृत साहित्य के अध्ययन पर जोर देती थी, तथा प्राचीन भारतीय संस्कृति को ससार की सर्वोत्तम सस्कृति समझती थी । दोनो ही अपने पूर्वजो के गुणगान से नही थकती थी, तथा धार्मिक नित्य नैमित्तिक कार्यो और संस्कारो को विधिवत करने पर जोर देती थी । फिर भी अवतारवाद, पुराणो की प्रामाणिकता, मूर्तिपूजा, समाज-सुधार आदि विषयो पर दोनो में काफी मतभेद था । इस कारण काफी कटुता पैदा हो गयी थी । समाज-सुधार को लेकर तो विवाद वहुधा वैमनस्य और विघटन का स्वरूप धारण कर लेता था ।

रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द

उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम चरण में जिस महापुरुष ने बगाल में धर्म के प्रति निष्ठावान् व्यक्तियो को सबसे अधिक आकृष्ट किया, वे श्री रामकृष्ण परमहंस थे । उनके व्यक्तित्व में बच्चो जैसी सरलता और कोमलता के साथ-साथ सिद्धो जैसी आध्यात्मिकता का अद्‌भुत समन्वय था । वे बच्चो जैसा व्यवहार करते-करते समाधिस्थ हो जाते थे । वे प्रत्येक स्त्री में, अपनी धर्मपत्नी में भी, माता का दर्शन करते थे । वे उच्च कोटि के योगी और भक्त थे । उन्होने जिन नवयुवको को अपनी ओर आकृष्ट किया, उनमें अनेक उनके सम्पर्क मे आने से पहले अनीश्वरवादी या अज्ञेयवादी थे और आध्यात्मवाद को कोरी कल्पना मानते थे । इन सबमें प्रमुख नरेन्द्र नाथ दत्त थे, जो आगे चलकर स्वामी 'विवेकानन्द' के नाम से विख्यात हुए । उन्होने अपनी सब पुरानी भौतिकवादी कल्पनाओ को त्यागकर एक सन्यासी के भेप में देश-विदेश मे आध्यात्मवाद का प्रचार किया । उन्होने सन् १८९३ में शिकागो के 'विश्व धर्म सम्मेलन' में अपने भव्य व्यक्तित्व तथा अपनी धार्मिक और आध्यात्मिक निष्ठाओ के वल पर विश्वख्याति प्राप्त की ।

पत्रकारिता

विप्लव के वाद वीस-पच्चीस वर्ष तक समाचार पत्र ही विचारो के प्रसार के मुख्य साधन थे । यद्यपि विप्लव के पहले ही अंग्रेजी तथा देशी भाषाओ में समाचार-पत्र निकलने लगे थे, पर सन् १८५८ के बाद तो सार्वजनिक कार्य-कर्ताओ ने इस काम में विशेप दिलचस्पी लेना शुरू की । सन् १८७५ में लगभग

५२५ पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होती थी। इनमें १४७ अंग्रेजी भाषा में और ३७४ भारतीय भाषाओ में या अंग्रेजी के साथ किसी देशी भाषा में प्रकाशित होती थी। इनमें अधिकाश पत्र मासिक या साप्ताहिक थे, पर कुछ दैनिक भी थे। इनमे से कुछ यूरोपियनो और पादरियो द्वारा ईसाई धर्म के प्रचार के लिए, और कुछ यूरोपियन और एंग्लो-इण्डियन व्यापारियो द्वारा किसी प्रसिद्ध यूरोपियन के सम्पादकत्व में प्रकाशित होते थे। ब्रिटिश साम्राज्य की पुष्टि, भारत सरकार की नीति का समर्थन, तथा भारत-निवासी यूरोपियनो और एंग्लो-इडियनो के गौरव और हितो की रक्षा और पुष्टि इन पत्रो का मुख्य लक्ष्य था।

भारतीय हितो की रक्षा और वृद्धि, देश की समस्याओ का भारतीय दृष्टिकोण से विश्लेषण, जनता के कष्टो के निवारण पर आग्रह, जनता की आकाक्षाओ का समर्थन, तथा लोकतान्त्रिक विचारो का प्रसार भारतीय पत्रकारो का मुख्य उद्देश्य था। प्रजातीय अहकार से निर्मुक्त व्यवहार, पक्षपातरहित न्याय, जनहितकारी नीतियो का अनुसरण, प्रतिनिधि सस्थाओ का विकास, तथा भारत के शासन में समता और क्षमता के आधार पर भारतीय प्रजा की साझादारी इस युग के भारतीय पत्रकारो की माँगें थी।

यद्यपि अधिकाश भारतीय पत्रकार मध्यवर्गीय विचारो और आकाक्षाओ का प्रतिपादन, प्रचार और पोषण करते थे, पर ये बातें सब पत्रो के सम्बन्ध में नही कही जा सकती। मिसाल के तौर पर क्रिस्तो दासपाल द्वारा सम्पादित 'हिन्दू पेटरियट' ब्रिटिश शासन के समर्थन के साथ-साथ जमीदारो के हितो को विशेष रूप से पुष्ट करता था, और फुले द्वारा सचालित और भालेकर द्वारा सम्पादित 'दीनबन्धु' जनता की गरीबी, बीमारी और निरक्षरता को दूर करने पर ही विशेष जोर देता था। गरीब जनता के हित की रक्षा और पुष्टि ही उसका मुख्य ध्येय था। कतिपय पत्रकारो का दृष्टिकोण मूलतः परम्परावादी था, और कतिपय समाजसुधार पर ही जोर देते थे। अधिकाश किसी न किसी अश में सामाजिक और राजनीतिक दोनो प्रकार के सुधारो के पक्ष में थे।

राजनीतिक संस्थाओं का गठन

सन् १८७० के बाद मध्यवर्गीय शिक्षितो ने अपने नेतृत्व में राजनीतिक सस्थाएँ स्थापित करना शुरू की। कलकत्ता में 'अमृत बाजार पत्रिका' के संस्थापक और सम्पादक श्री शिशिर कुमार घोष ने, जो अपनी योग्यता तथा देशभक्ति और पवित्र जीवन के लिए समाज में बहुत सम्मानित थे, 'बगाल नेशनल लीग'

संस्थापित की। कुछ दिन बाद सन् १८७६ में श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और श्री आनन्द मोहन बोस के प्रयास से कलकत्ता में 'इडियन असोसिएशन' स्थापित हुआ। सन् १८७७ में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने उत्तर भारत के कई नगरो में जाकर वहाँ अपने राजनीतिक विचारो का प्रसार किया, तथा लाहौर में 'इडियन असोसिएशन' खोलने का प्रयत्न किया।

सन् १८७८ में उन्होने पश्चिमी और दक्षिणी भारत मे भ्रमण किया। इन दोनो यात्राओ में उन्होने इगलैण्ड के साथ-साथ भारत में सिविल सर्विस के लिए प्रतियोगिता परीक्षा की तथा परीक्षा मे बैठने के लिए आयु की सीमा बढाने की माँग की, और उनके प्रयास से सिविल सर्विस के प्रश्न पर अखिल भारतीय मेमोरियल पार्लियामेन्ट को भेजा गया।

सन् १८८३ मे तथा सन् १८८५ मे सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि के प्रयास से कलकत्ता में 'इडियन नेशनल कान्फ्रेन्स' आयोजित हुई, जिसमें बगाल के राजनीतिक कार्यकर्ताओ के अतिरिक्त देश के अन्य भागो के कुछ कार्यकर्ताओ ने भी भाग लिया। इन कान्फ्रेन्सो की योजना में आनन्द मोहन बोस का भी भरपूर योगदान था। वही सन् १८८५ की काफ्रेन्स के अध्यक्ष थे। ये दोनो सज्जन बहुत ही प्रतिभाशाली वक्ता और उदारदलीय राजनीतिज्ञ थे। सन् १८८५ की काफ्रेन्स में 'इडियन असोसिएशन' के अतिरिक्त 'ब्रिटिश इडियन असोसिएशन' और 'नेशनल मुहामिडेन असोसिएशन' का भी योगदान था। यह कान्फ्रेन्स वास्तव मे इन तीनो सस्थाओ द्वारा आमत्रित की गयी थी। तीनो का यह संयुक्त प्रयास था।

उधर बम्बई में प्रसिद्ध विधि-विशेषज्ञ श्री विश्वनाथ नारायण माण्डलिक ने 'बम्बई असोसिएशन' का, जो विप्लव से पहले ही स्थापित हो चुकी थी, नेतृत्व और सचालन सम्भाला। आगे चल कर सन् १८८५ में दादा भाई नौरोजी की प्रेरणा तथा सर्व श्री फीरोज शाह मेहता, बदरुद्दीन तैयबजी, काशीनाथ त्र्यम्बक तैलंग और इदुलजी दिनशा वाचा के प्रयास से 'बाम्बे प्रेजिडेन्सी असोसिएशन' गठित हुई, और उसने शीघ्र ही बम्बई प्रदेश की मुख्य राजनीतिक सस्था का स्थान प्राप्त कर लिया।

सन् १८७० में पूना में गणेश वासुदेव जोशी आदि ने 'सार्वजनिक सभा' संगठित की। इसने महादेव गोविन्द रानडे की देख-रेख और नेतृत्व में महत्त्वपूर्ण काम किया। उसने महाराष्ट्र की कृषिक समस्या का अध्ययन किया, और सन् १८७६ में माँग की कि सरकार द्वारा घोषित 'अकाल नियम' लागू करके

किसानो के कष्ट दूर किये जायें। उसने महाराष्ट्र की कतिपय अन्य आर्थिक और राजनीतिक समस्याओ का विश्लेपण कर उन्हे सुलझाने के रचनात्मक सुझाव प्रस्तुत किये।

सन् १८८४ में मद्रास में 'महाजन सभा' संगठित की गयी। उसने सन् १८५१ में आयोजित 'मद्रास नेटिव असोसिएशन' का, जिसने सन् १८५२ में संयुक्त पार्लियामेन्टरी कमेटी को आवेदन पत्र भेजा था, स्थान ग्रहण कर लिया। सन् १'८४ मे 'महाजन सभा' के तत्त्वावधान मे मद्रास प्रान्तीय कान्फ्रेन्स आयोजित की गयी। दिसम्बर सन् १८८४ में बहुत से कार्यकर्ता दीवान बहादुर रघुनाथ राव के घर इकट्ठे हुए, और उन्होने देश के विभिन्न भागो में काम करके एक राष्ट्रीय सस्था गठित करने का निश्चय किया।

इसके आस पास ही मिस्टर ह्यूम आदि ने मिलकर 'इडियन यूनियन' गठित की, जिसने मार्च १८८५ में एक लोक-घोषणा द्वारा आगामी दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह मे 'राष्ट्रीय कार्यकर्ताओ' की एक ऐसी कान्फ्रेन्स करने का निश्चय व्यक्त किया, जिसमें 'वे एक दूसरे से परिचित हो सकें, और आगामी वर्ष के लिए राजनीतिक कार्यक्रम निश्चित कर सकें।'

नेशनल कांग्रेस का गठन

काफी सोच-विचार के बाद तथा वाइसराय लार्ड डफरिन से परामर्श करने के बाद २८ दिसम्बर सन् १८८५ को बंगाल के सुप्रसिद्ध नेता श्री व्योमकेश चन्द्र बनर्जी की अध्यक्षता में बम्बई में गोकलदास तेजपाल हाईस्कूल के हाल में सत्तर सज्जनो ने 'इडियन नेशनल कांग्रेस' की बुनियाद डाली।

श्री व्योमकेश बनर्जी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कांग्रेस की भावी नीति-रीति और गतिविधि पर प्रकाश डालते हुए कहा कि विभिन्न भागो में देशहित के कार्यो में सलग्न कार्यकर्ताओ मे 'व्यक्तिगत घनिष्ठता और मैत्री का प्रोत्साहन', 'प्रत्यक्ष मैत्रीपूर्ण व्यक्तिगत ससर्ग द्वारा सब देशभक्तो में हर संभव प्रजातीय, साम्प्रदायिक और प्रान्तीय द्वेष का उन्मूलन' तथा 'राष्ट्रीय एकता की भावनाओ का पूर्ण विकास और दृढीकरण', एव देश की कतिपय महत्त्वपूर्ण और बहुत आवश्यक समस्याओ पर पूरी तौर पर विचार-विमर्श के बाद भारत के शिक्षित वर्गो के परिपक्व विचारो का प्रामाणिक अभिलेखन, और आगामी वर्ष के लिए कार्यक्रम का निर्णय ही कांग्रेस के मुख्य लक्ष्य होगे।

उन्होने कहा कि इस सम्मेलन मे उपस्थित हम सभी प्रतिनिधि भारत की प्रगति में ब्रिटिश शासन के महत्त्वपूर्ण योगदान को स्वीकार करते हैं, और ब्रिटेन से भारत के सम्बन्ध अक्षुण्ण बनाये रखना चाहते हैं। पर हम सबकी राय में इस सम्बन्ध को अधिक सुदृढ और लाभकारी बनाने के लिए शासन की कमियो, कमजोरियो तथा त्रुटियो का निराकरण और भारतीय जनता की आवश्यकताओ और आकाक्षाओ की पूर्ति जरूरी है, और इन सबकी ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट करना हम अपना कर्तव्य समझते हैं। उन्होने कहा कि शासन के विधि-विधान की मर्यादाओ को ध्यान में रखते हुए शान्तिमय वैधानिक ढग से देश की दशा को सुधारने का प्रयत्न किया जायगा। उन्होने यह भी कहा कि हमारी राय में प्रतिनिधि सस्थानो की स्थापना, तथा प्रशासन में भारतीयो की प्रभावकारी सक्रिय सहभागिता अधिक आवश्यक है। इन दोनो बातो को स्वीकार करके ही शासन अपने को ठीक तौर पर लोकप्रिय और सुदृढ बना सकता है, महारानी विक्टोरिया की सन् १८५८ की घोषणा को साकार करने का दावा कर सकता है, तथा जनता की भावनाओ और विचारो के अनुरूप अपनी नीतिरीति निर्धारित कर सकता है।

कांग्रेस ने अपने पहले अधिवेशन में माँग की कि भारतीय प्रशासन की जाँच के लिए एक 'शाही कमीशन' नियुक्त किया जाय, विधानो का विस्तार और सुधार किया जाय, तथा इंडियन सिविल सर्विस के लिए ब्रिटेन के साथ-साथ भारत में भी प्रतियोगिता परीक्षाएँ आयोजित हो। काग्रेस ने यह भी माँग की कि भारत-मन्त्री से सम्बद्ध इडिया कौसिल भग कर दी जाय, और सैनिक व्यय कम किया जाय। इस अधिवेशन में काग्रेस ने यह भी सस्तुति की कि अपर बर्मा पर आधिपत्य प्रतिष्ठित न किया जाय, और यदि ब्रिटेन उस पर अधिकार स्थापित ही करना चाहता है, तो उसे भारत से अलग एक 'क्राउन कालोनी' (शाही उपनिवेश) के रूप में रखा जाय, भारत के ऊपर उसके प्रबन्ध का खर्चा न लादा जाय। इस तरह काग्रेस ने अपने पहले अधिवेशन में ही ब्रिटेन की साम्राज्य-विस्तार की नीति का, तथा उसकी पूर्ति के लिए भारतीय राजकोश पर उसका बोझ लादने का विरोध किया। उसने प्रशासनिक त्रुटियो और अपव्यय को खत्म करने की, सरकारी नौकरियो में योग्यता के आधार पर हिन्दुस्तानियो को भरती करने की, प्रतिनिधि संस्थाओ को स्थापित करने की, तथा क्रमशः उनके अधिकारो को विस्तृत करते हुए देश में प्रतिनिधि सरकार प्रतिष्ठित करने की माँग की, और उनके लिए सतत प्रयत्न करना अपना लक्ष्य निश्चित किया।

कांग्रेस का स्वरूप

यद्यपि काग्रेस मुख्यतः मध्यवर्गीय संस्था थी, पर उसके संस्थापक उसे सर्ववर्गीय राष्ट्रीय संस्था का रूप देना चाहते थे। अतः उसके संचालको ने निश्चय किया कि आर्थिक वर्ग-सघर्षों से अपने को अलग रखते हुए वह देश की आर्थिक उन्नति के लिए प्रयत्न करे, सरकार की उन नीतियो का और कार्यों का विरोध करे जिनसे देश के आर्थिक हितो की हानि होती है, जो राष्ट्र की आर्थिक उन्नति में बाधा पहुँचाते है। काग्रेस के संचालको ने समाज-सुधार के प्रश्नो की उलझनो से भी उसे अलग रखना ही तय किया। वे चाहते थे कि देश-प्रेम के आधार पर सब वर्गों, सम्प्रदायो, जातियो और प्रान्तो के भारतीयो को एक सूत्र में बाँध कर वृहद् भारतीय राष्ट्र का निर्माण किया जाय, और उसके राजनीतिक जीवन और व्यवस्था को धीरे-धीरे उदार लोकतान्त्रिक सिद्धान्तो पर सस्थापित किया जाय।

काग्रेस को अपने इस प्रयास में कुछ सफलता अवश्य प्राप्त हुई। उसने शीघ्र ही सर्वप्रान्तीय राष्ट्रीय संस्था का रूप धारण कर लिया। उसे कालाकाकर के राजा रामपाल सिंह, बंगाल के सर राजेन्द्रलाल मित्र, दरभंगा के महाराजा सर लक्षमेश्वर सिंह बहादुर, विजयानगरम् के महाराजा सर गजपतिराज आदि जमीदारो की सहायता और सहानुभूति प्राप्त हो गयी। कलकत्ते के 'ब्रिटिश इडियन असोसिएशन' ने अपने सभा-भवन में काग्रेस को अपना दूसरा वार्षिक अधिवेशन करने की अनुमति दी, तथा दस बारह प्रतिनिधि भेजे। लगभग बीस अन्य जमीदारो ने भी प्रतिनिधि के रूप में काग्रेस के दूसरे अधिवेशन में भाग लिया। पर यह सहयोग न तो व्यापक बन पाया और न स्थायी सिद्ध हुआ। यद्यपि काग्रेस के तीसरे और चौथे अधिवेशन में कुछ जमीदारो और सम्भ्रान्त परिवारो के व्यक्तियो ने भाग लिया, और सरकार के विरोध की उपेक्षा करते हुए महाराजा दरभगा ने काग्रेस के चौथे अधिवेशन के लिए प्रयाग में अपनी कोठी के प्रयोग की अनुमति दे दी, पर अधिकाश जमीदारो की उपेक्षा और विरोध के कारण काग्रेस मुख्य रूप से मध्यवर्गीय संस्था बनी रही।

सरकार द्वारा प्रोत्साहित जमींदारों का विरोध

सन् १८८८ में काग्रेस की गतिविधि से क्षुब्ध हो वाइसराय लार्ड डफरिन ने घोषित किया कि काग्रेस 'एक सूक्ष्म अल्पसख्यक वर्ग है', जिसका लक्ष्य 'अज्ञात में बडी छलाग है।' इसी समय उत्तर पश्चिमी प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश)

के लेफ्टिनेन्ट-गवर्नर सर आकलैण्ड कालविन ने इलाहाबाद के 'ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन' के प्रमुख नेताओ को काग्रेस का विरोध करने को प्रोत्साहित किया। उसके प्रमुख नेता राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द तथा सर सैयद अहमद खाँ आदि ने 'देशभक्त सभा' (पेट्रियाटिक असोसिएशन) गठित की। सर सैयद अहमद खा ने तो सन् १८९३ में 'मुस्लिम डिफेन्स असोसिएशन' स्थापित कर, और मुसलमानो को काग्रेस से अलग रहने की सलाह देकर विरोध को साम्प्रदायिक रूप भी दे दिया। उनके इशारे पर सन् १८८८ में कुछ मौलवियो ने फतवा द्वारा मुसलमानो को काग्रेस से रोकने की कोशिश की। इसके जवाब में देवबन्द और लखनऊ के कुछ मौलवियो ने फतवा दिया कि राजनीतिक मामलो में मुसलमान हिन्दुओ से मिलकर काम कर सकते है। सन् १८८८ के अधिवेशन में १२४८ प्रतिनिधियो ने भाग लिया, जिनमे २२१ मुसलमान थे। इन प्रतिनिधियो में बहुत से सम्भ्रान्त जमीदार वर्ग के थे। सन् १८८९ के अधिवेशन में १८८९ प्रतिनिधियो में २५४ मुसलमान थे। पर आगे चल कर जमीदारो और मुसलमानो की सख्या घटती चली गयी, और उनका विरोध बढता गया।

इस विरोध के पीछे अंग्रेज कर्मचारियो की गहरी साजिश थी। पर इसका मूल कारण वर्गीय भावना ही थी। जमीदार अपने को समाज का स्वाभाविक नेता समझते थे, और वे इस नेतृत्व को साधारण निम्न मध्यश्रेणी के परिवारो क शिक्षित नवयुवको को सौपने को तैयार नही थे। जमीदार चाहते थे कि सरकार भारतीय नेताओ के परामर्श से कानून बनाये, नीतिरीति निश्चित करे, भारतीय नवयुवको को प्रशासन में सक्रिय योगदान करने का अवसर प्रदान करे। पर उनके विचार मे नेतृत्व का निर्णय चुनाव के बजाय परम्परागत पारिवारिक प्रतिष्ठा और महत्त्व से हो, और प्रशासन के लिए नवयुवको का चयन प्रतियोगिता परीक्षा के बजाय नामजदगी द्वारा हो, ताकि उन सम्भ्रान्त कुलो के नवयुवक प्रशासन के ऊँचे पदो पर नियुक्त हो सकें जो सदा से प्रशासन मे योगदान कर रहे है। मध्यवर्गीय शिक्षितो को जमीदार वर्ग की ये धारणाएँ स्वीकार नही थी, क्योकि पारिवारिक मान-प्रतिष्ठा के बजाय क्षमता और जनविश्वास ही उनके नेतृत्व का आधार हो सकता था। उनका यह भी कहना था कि क्षमता किसी जाति या कुल की बपौती नही, और वही जनता का नेता है जिसे जनता का विश्वास प्राप्त हो। जन-विश्वास का निर्णय, उनके विचार मे, चुनाव द्वारा ही हो सकता है। उनकी यह भी धारणा थी कि सरकार द्वारा मनोनीत विधायक और प्रशासक विदेशी सरकार के हाथ की कठपुतली ही होगे। उनके लिए निर्भीकता के साथ जनता की सेवा करना सम्भव नही होगा। सन् १८६१ के

इंडियन कौंसिल एक्ट के अन्तर्गत एकमात्र पारिवारिक मान के आधार पर मनोनीत विधायकों की हुकूमत-परस्ती और सार्वजनिक हितो की उपेक्षा इसके प्रत्यक्ष प्रमाण थे।

सर सैयद अहमद खा स्वीकार करते थे कि हिन्दुस्तान के रईस कौसिलो की "कुर्सी पर बैठने के लायक नही है", पर कहते थे कि उस पर "अदना कौम या अदना दर्जा का आदमी ख्वाह " वह लायक भी हो" नही विठाया जा सकता, उसे रईसो के "माल, जायदाद का हाकिम" नही बनाया जा सकता, इसलिए सरकार उस कुर्सी पर "सिवाय मुअज्जिज़ के किसी को नही बिठा सकती।"[१] सर सैयद अहमद खा का यह भी विचार था कि "अगर हिन्दू मेम्बर को हिन्दू मुनतखिब करें (चुनें) और मुसलमान मेम्बर को मुसलमान" दोनो की तादाद मसावी (बराबर) हो," तो भी "मुसलमानो के लिए निर्वाचित प्रतिनिधि सस्थाओ का समर्थन उचित नही होगा, क्योकि मुसलमान मेम्बरान वहाँ हिन्दुओ का मुकाबला नही कर सकेंगे।"[२] नामजदगी द्वारा कौसिलो की मेम्बरी तथा सरकारी नौकरिया प्राप्त करना ही वे मुसलमानो के लिए मुनासिब समझते थे।

सर सैयद अहमद खा और मुसलमान जमीदारो का विरोध हिन्दू जमीदारो के विरोध की तुलना में काग्रेस की प्रगति मे अधिक हानिकर सिद्ध हुआ, क्योकि उस समय जबकि हिन्दुओ के मध्यवर्गीय शिक्षितो ने हिन्दूसमाज में काफी ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया था, और बगाल के जमीदारो में यह विश्वास पैदा होने लगा था कि उनके बच्चे सत्येन्द्र कुमार ठाकुर की तरह खुली प्रतियोगिता परीक्षा मे अंग्रेज नवयुवको से टक्कर लेकर इण्डियन सिविल सर्विस में प्रवेश कर सकते है, और डाक्टर राजेन्द्र लाल मित्र की तरह अपनी योग्यता के आधार पर शिक्षित समाज मे ऊँचा स्थान प्राप्त कर सकते है, उत्तर भारत की मुसलमान जनता का नेतृत्व उन जमीदारो के हाथ में था, जो अपने बच्चो की योग्यता से अधिक अपने पारिवारिक गौरव पर विश्वास करते थे। विरोध का वर्गीय लक्षण ही भारत की प्रगति मे रोडा था। उसके साम्प्रदायिक स्वरूप ने तो एक ऐसी समस्या पैदा कर दी, जिसका समाधान काग्रेस के लिए असंभव हो गया।

काग्रेस के लिए हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति पर निष्ठावान् उन हिन्दुओ का समर्थन प्राप्त करना आसान था, जो राजा राम मोहन राय, महादेव गोविन्द

१ सन् १८८७ की सर सैयद की तकरीर।
२. । वही।

रानडे प्रभृति विद्वानों के विचारो से अनुप्राणित थे, उनकी उदार व्याख्या को स्वीकार करते थे, और उनके आदेश के अनुसार पाश्चात्य के भौतिक विज्ञान तथा उदार लोकतान्त्रिक सिद्धान्तो को ग्रहण करने के लिए तैयार थे। पर काग्रेस को उन हिन्दुओ का विरोध सहन करना पडा जो अपने धर्म और संस्कृति की मध्य-युगीय व्याख्या को ही प्रामाणिक मानते थे, और उसमें कोई परिवर्तन करने को, तथा अपनी संस्कृति में लोकतान्त्रिक मान्यताओं को, जिनके आधार पर काग्रेस संगठित थी, स्वीकार करने को तैयार नही थे। उनसे टक्कर लेने की काग्रेस के नेताओ में शक्ति जरूर थी, पर उनका भी जनता पर काफी प्रभाव था, और देश की कुछ समस्याओ को हल करने के लिए उनके सहयोग की भी आवश्यकता थी। उनकी राजभक्ति की भावना को देशभक्ति में परिणत करना, उनमें नृपतन्त्र के स्थान पर लोकतन्त्र के प्रति आस्था पैदा करना, जात-पात के बन्धनो को ढीला करके उनमें पारस्परिक सौहार्द पैदा करना, देश बन्धुत्व के आधार पर भारतीय राष्ट्रीयता का निर्माण करना, तथा उन्हे प्रगति की ओर अग्रसर करना काफी कठिन काम था।

२. प्रारम्भिक जीवन

जन्म

विप्लव के साढे चार वर्ष बाद २५ दिसम्बर सन् १८६१ ई० को अर्थात् पौष कृष्ण ८ सम्वत् १९१८ वि० को बुधवार के दिन प्रयाग में लालडिग्गी मुहल्ले में जो आगे चल कर भारती भवन के नाम से प्रसिद्ध हुआ, मदन मोहन ने जन्म लिया।

प्रयाग

प्रयाग उस समय आज जैसा विभूति-सम्पन्न नगर नही था। वह उस समय भी 'तीर्थराज' के नाम से प्रसिद्ध था, और बहुत से धर्मनिष्ठ यात्री त्रिवेणी मे स्नान करने, तथा १७वी शताब्दी में मुगल सम्राट् अकबर द्वारा बनवाये हुए दुर्ग में समवस्थित पवित्र अक्षयवट के दर्शन करने के निमित्त आते रहते थे। उनकी सुविधा के लिए उदार व्यक्तियो द्वारा बनवायी गयी कुछ धर्मशालाएँ तथा पडो के कुछ बडे मकान थे। धनाढ्य जमीदारो और व्यापारियो की कुछ हवेलियाँ भी थी। पर अन्यथा उस समय का प्रयाग भौतिक समृद्धि-विहीन छोटा-सा नगर था। यहाँ अधिकाश दुकानें और मकान खपरैल के थे, जिनके बीच में पतली चक्करदार गलियाँ बनी हुई थी। लाल डिग्गी मुहल्ले के पास दक्खिन की ओर पीपल और बैर का जङ्गल था, जहाँ पीलवान अपने हाथियो को पीपल के पत्ते खिलाने ले जाते थे। इस मुहल्ले में एक नाला भी था। इसके पास ही कुछ ब्राह्मणो के खपरैल के मकान थे। इसी मे एक मकान में मदन मोहन ने जन्म लिया[1]।

सन् १८६१

भारत के इतिहास में सन् १८६१ ई० का निःसन्देह महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस वर्ष ही ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने एक ओर अपनी मर्यादाओ के अनुकूल हाई-कोर्टों के सगठन की व्यवस्था की, और दूसरी ओर अपनी लोकतान्त्रिक मर्यादाओ की उपेक्षा करते हुए ऐसी कौसिलो के संगठन की व्यवस्था की, जिनके अधिकार बहुत सीमित और जिनके सब सदस्य सरकार द्वारा मनोनीत होते थे। इसी वर्ष

---

१. सीताराम चतुर्वेदी : महामना मालवीयजी, पृ० ४।

महारानी विक्टोरिया की घोषणा की सर्वथा उपेक्षा करते हुए सेना के बहुत से विभागो में भारतीयो की भरती बिल्कुल बन्द कर दी गयी, और ब्रिटिश साम्राज्यशाही को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए भारत की सेना में ब्रिटिश सिपाहियो का अनुपात बढा दिया गया, तथा भारतीय सैनिको को जाति, सम्प्रदाय और क्षेत्र के आधार पर इस तरह विभिन्न कम्पनियो में विभाजित कर दिया गया कि उनमे राष्ट्रीय एकता की भावना जागृत और पुष्ट ही न हो सके। पर इसी वर्ष भारतमाता ने मई के महीने में रवीन्द्रनाथ ठाकुर और मोतीलालजी को जन्म दिया और आगे चल कर प्रफुल्ल चन्द्र राय और मदन मोहन को जन्म दिया। इन चारो बच्चो ने अपनी प्रतिभा से माता का मस्तक ऊँचा किया, तथा साम्राज्यशाही की भावना से अनुप्राणित यूरोपियन राजनीतिज्ञो और अधिकारियो को भारत के सम्बन्ध में अपनी धारणाएँ और नीति-रीति बदलने पर मजबूर किया।

पूर्वज

मदन मोहन का जन्म पंडित विष्णु प्रसादजी के सुपुत्र पडित प्रेमधरजी के परिवार में हुआ। इनके पूर्वज मध्य भारत के मालवा में रहते थे। पन्द्रहवी शताब्दी ईसवी में मालवा के किसी राजा ने निश्चय किया कि पच द्रविड और पंच गौड ब्राह्मणो को एक पंगत में बैठाकर भोजन कराया जाय। बहुत से ब्राह्मण इस पर राजी नही हुए। प्रेमधरजी के पूर्वज कुछ अन्य ब्राह्मणो के साथ अपना घर और गाँव छोडकर पूरब को चल दिये, और मार्ग में बहुत से कष्ट सहते हुए पटना पहुच कर उन्होने वहाँ अपना डेरा डाल दिया। कुछ काल वहाँ रहने के बाद इन प्रवासी ब्राह्मणों में से कुछ मिर्जापुर और कुछ प्रयाग में आ बसे। मदन मोहन के पूर्वजो ने तीर्थराज प्रयाग को ही अपना निवासस्थान बनाया।

पितामह

मदन मोहन के पितामह पडित प्रेमधरजी संस्कृत के बडे विद्वान् थे। धर्म के प्रति उनकी बडी निष्ठा थी। वे श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। उनके पास दो फुट ऊँची साँवले रंग की श्रीकृष्ण की एक मूर्ति थी, जिसकी वे प्रतिदिन नियमित रूप से पूजा किया करते थे। अपनी विद्वत्ता और निष्ठा के कारण वे 'महाभागवत' के नाम से प्रसिद्ध थे। चौरासी वर्ष की आयु में वे गंगातट पर स्वेच्छा से जा कर, स्नान-ध्यान करके, पद्मासन लगाकर इह-लीला समाप्त कर, स्वर्गलोक सिधार गये। पितामह की तरह पितामही भी धर्मनिष्ठा, शील-सम्पन्ना थी।

मालवीयजी के पूज्य पिताजी

परिवार

पण्डित प्रेमधर जी पाँच भाई थे। वे सभी प्रतिभाशाली थे। पडित सावोधरजी वैयाकरणी थे। पडित मुरलीधर ने साधु का जीवन व्यतीत किया। पडित वंशीधर सस्कृत साहित्य के विद्वान् थे। पडित बालाधर उच्चकोटि के ज्योतिषी थे।

पडित प्रेमधरजी के चार पुत्र हुए—लालजी, वच्चूलालजी, गजाधर प्रसाद जी, और व्रजनाथजी। इनमें पडित गजाधर प्रसादजी और पडित व्रजनाथजी काफी प्रतिभाशाली सिद्ध हुए।

मदन मोहनजी के पिता पण्डित व्रजनाथजी के छ पुत्र और दो कन्याएँ हुईं—लक्ष्मी नारायण, सुखदेई, जयकृष्ण, सुभद्रा, मदन मोहन, श्यामसुन्दर, मनोहर लाल और बिहारी लाल। इन सबमें मदन मोहनजी ही विशेप रूप से प्रतिभाशाली सिद्ध हुए। उन्होने ही व्यापक प्रसिद्धि प्राप्त की, अपने माता-पिता और परिवार की प्रतिष्ठा की, तथा भारत-माता और भारतीय सस्कृति के गौरव की पुष्टि और वृद्धि की।

पूज्य पिता

मदन मोहनजी के पूज्य पिता पडित व्रजनाथजी, जिन्होने अपने ननिहाल में रहकर सस्कृत की शिक्षा प्राप्त की थी, अपने पिता पडित प्रेमधरजी की तरह धर्मनिष्ठ, सस्कृत के विद्वान् तथा राधाकृष्ण के अनन्य भक्त थे। उनका रूपरग सुन्दर, कठ मधुर, स्वभाव बहुत कोमल था। वे सन्तोषी, सदाचारी, तथा आचार नियम के पक्के थे। सगीत में भी उनकी विशेष रुचि थी। वे बाँसुरी वहुत ही अच्छी वजाते थे। श्रीमद्भागवत का समुचित ज्ञान प्राप्त कर उन्होने चौवीस वर्ष की आयु में उसकी कथा कहना प्रारम्भ कर कुछ वर्षो मे ही अच्छे कथावाचक व्यास की प्रसिद्धि प्राप्त कर ली। जनसाधारण के साथ-साथ महाराजा रीवाँ, महाराजा बनारस और महाराजा दरभगा भी उनकी विद्वत्ता के प्रशसक थे। उन्होने भक्ति प्रतिपादक 'सिद्धान्त दर्पण' नामक ग्रन्थ भी लिखा था, जिसे उनके पुत्र मदन मोहन ने सन् १९०६ में प्रकाशित कराया। परिवार की आर्थिक दशा काफी दयनीय होते हुए भी वे दान नही लेते थे। कथा पर भगवदिच्छा से जो कुछ चढ जाता, उसी पर वे सन्तोष कर लेते, उसीसे जीवन निर्वाह करते, वाल-वच्चो का पालन पोषण करते थे।

माता

मदन मोहनजी की माता श्रीमती मूना देवीजी स्वभाव की बडी सरल और हृदय की बडी कोमल थी। वे दूसरो का दु ख देखकर शीघ्र ही द्रवित हो जाती, और उनसे जो कुछ सेवा बन पडती तत्काल कर देती थी। मुहल्ले के बच्चो को वे बहुत प्यार करती थी। बच्चे उनको घेरे रहते थे। वे काफी कार्यकुशल थी, घर का सारा प्रबन्ध उनके हाथ मे था।

शील

बालक मदन मोहन पर परिवार की आर्थिक दशा का, माता के शील तथा स्नेह का, पिता और पितामह की भगवद्भक्ति तथा धर्म के प्रति अनुराग का गहरा प्रभाव पडा। उनका जीवन धर्मनिष्ठ, शीलसम्पन्न, भगद्भक्त, दीनबन्धु, समाज-सेवी के रूप मे विकसित हुआ। उन्होने अपनी पिचहत्तरवी वर्ष-गाँठ के अवसर पर कहा था कि "मेरे पितामह, पितामही, पिता और माता बडे धर्मात्मा, सदाचारी और नि स्वार्थी ब्राह्मण थे, उन्ही के प्रसाद से मैं इतना काम कर सका हूँ।"[1] उन्होने बचपन में ही ऐसा नियम बना लिया था कि वह कोई ऐसा काम नही करेंगे जिसे वह माता से न कह सकें। उन्होने विद्यार्थियो को यह भी बताया कि 'इस नियम से मैं कई पापो से बचा, मुझे शक्ति मिली और मेरा जीवन उत्साह और दिव्य ज्योति से उज्ज्वल हुआ'। परिवार की आर्थिक स्थिति ने मालवीयजी को सादा, सरल जीवन बिताने की ओर प्रेरित किया, और उनके हृदय में निर्धनो के प्रति सहानुभूति जागृत की, जिसकी चर्चा वे बार-बार जीवन भर करते रहे।

मदन मोहन की बालकाल की जीवन-चर्या से ही उनकी धार्मिक प्रवृत्ति का पता चल जाता है। आठ वर्ष की आयु में उनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। पिताजी ने ही उन्हे गायत्री मन्त्र की दीक्षा दी। तब से उन्होने नियमित रूप से प्रात.काल और सायकाल सन्ध्या का जो नियम बनाया, उसका उन्होने हर परिस्थिति में जीवन भर निर्वाह किया। वे स्कूल जाने के पहले प्रतिदिन हनुमान का दर्शन करने जाते थे और उस समय यह श्लोक पढते थे —

मनोजवं मारुततुल्यवेगं, जितेन्द्रियं बुद्धिमता वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शिरसा नमामि॥

उनके पिता जब कथा कहने जाते तो वह नित्य उनके साथ जाते और उनकी चौकी के पास बैठ कर बडे ध्यान से उसे सुनते थे। उन्होंने अपने संस्मरण

१ सीताराम चतुर्वेदी . महामना मालवीयजी, पृ० १९२।

मालवीयजी की पूज्य माताजी

में बताया कि "पिताजी ने एक दिन कहा, तू बड़ा भक्त है। यह सुनकर मुझे बडी प्रसन्नता हुई थी।"[1]

उन्होने एक बार बचपन में गायत्री का जाप इस तत्परता से करना प्रारम्भ किया कि उनके माता-पिता चिन्तित हुए कि कही यह बालक आगे चलकर सन्यासी न हो जाय।

कृष्णजन्माष्टमी के अवसर पर वे बहुत उत्साह के साथ झाँकी सजाते, सगीत का प्रबन्ध करते, तथा धूम-धाम से कृष्णोत्सव मनाते थे। कुछ बड़े होने पर उन्होने सितार बजाना सीख लिया था, तथा मीरा और सूरदास के बहुत से पदों को याद करके वे उन्हें सितार पर बजाने लगे थे। अपने पिता और पितामह से उन्होने बहुत से श्लोक भी सीख लिये थे, जिनका उनके जीवन पर गहरा प्रभाव पडा। जब उनकी अवस्था पन्द्रह वर्ष की हुई, तब से वे घर मे रखी पुस्तकों की वेठन खोलने और बाधने लगे। उन्होने इन पुस्तको को पढकर उनमें से बहुत से श्लोक कंठ भी कर लिये। इन पोथियो में 'इतिहास समुच्चय' नाम की एक पुस्तक थी, जिसमें महाभारत के चुने हुए ३२ इतिहास थे। मालवीयजी के "धर्म सम्बन्धी विचारो और ज्ञान के बढाने मे यह पुस्तक बडी सहायक हुई।"[2] बडे होने पर इस पुस्तक के अतिरिक्त उन्होने मनुस्मृति और भगवद्-गीता भी पढनी शुरू कर दी।

माता पिता के शील, स्नेह का उन्होने बचपन में ही भरसक अभ्यास किया। वे बड़ो का आदर करते, साथी-सगियो के साथ शील का ध्यान रखते हुए खेल-कूद करते थे। पन्द्रह वर्ष की आयु में ही उन्होनें कविता करना प्रारम्भ कर दी थी। पर उनकी सब रचनाएं शील से विभूषित होती थी। इसी समय उन्होने अश्लील शृङ्गार के सम्बन्ध में लिखा था :—

> यह रस ऐसो है बुरो, मन को देत बिगारि।
> याते पास न आवहु, जेते अहि अनारि॥

अपने लडकपन के जमाने में ही एक बार मालवीयजी ने प्रात: काल अपनी छत से अनायास एक युवती स्त्री को नंगा देख लिया। इसका उन्हें बहुत दु:ख हुआ। नीचे उतर कर उन्होने अपने माता-पिता से इसकी चर्चा की। उन्होने समझाया कि 'अनिच्छा से ऐसा हो जाने पर कोई विशेष दोष नही है। भगवान का भजन

---

१ रामनरेश त्रिपाठी : मालवीयजी के साथ तीस दिन, पृ० ३३।

२ वही, पृ० १०।

कर लो।' मदनमोहनजी ने कहा उसे तो वह प्रतिदिन करते ही है, प्रायश्चित कुछ दूसरा होना चाहिए। अन्त में दृष्टि-दोष से छुटकारे के लिए उन्होने दिन भर का उपवास किया, और अपनी खाट नीचे उतार कर छत के वजाय नीचे सोने लगे।[१]

मस्ती

इस तरह भारतीय शील और सयम के पालने का अभ्यास उन्होने वचपन में ही प्रारम्भ कर दिया था। पर अन्यथा मदन मोहनजी वचपन में इतने प्रसन्न और चैतन्य रहते थे कि उनके मुहल्ले के एक घुरहू साहु उन्हे "मस्ता" कहा करते थे। मौजी मदन मोहन को वचपन में ही व्यायाम, संगीत और कविता का शौक हो गया था। वे उस समय गिल्ली डडा भी खेलते, डड भी पेलते, मुद्गर भी घुमाते, अखाडे में कुश्ती भी लडते, तथा होली के अवसर पर काफी हुडदग भी मचाते थे। कालेज मे वे क्रिकेट और टेनिस भी खेलने लगे थे।

उनकी एक रचना से उनकी वालकाल की आन्तरिक भावनाओ और आकाक्षाओ का कुछ परिचय प्राप्त होता है। उन्होने लिखा—

गरे जूही के है गजरे पड़ा रंगी दुपट्टा तन।
भला क्या पूछिए धोती तो ढाके से मँगाते है॥

कभी हम वारनिश पहनें कभी पजाव का जोड़ा।
हमेशा पास डंडा है, ये फक्कड सिंह गाते हैं॥

न ऊधो से हमें लेना न माघो का हमें देना।
करे पैदा जो खाते है व दुखियो को खिलाते हैं॥

नही डिप्टी वना चाहें न चाहे हम तसिल्दारी।
पडे अलमस्त रहते है यूँही दिन को विताते है॥

न देखें हम तरफ उनकी जो हमसे नेक मुँह फेरें।
जो दिल से हमसे मिलते हैं झुक उनको देख जाते हैं॥

नहीं रहती फिकर हमको कि लावें तेल और लकडी।
मिले तो हलवे छन जावें नहीं झूरी उडाते हैं॥

सुनो यारो जो सुख चाहो तो पचडे से गृहस्थी के।
छुटो फक्कड़पना ले लो यही हम तो सिखाते है॥

---

१. पद्मकान्त मालवीय. मालवीयजी—जीवन, झलकिया, पृ० ६१।

हमें मत भूलना यारो बसे हम पास 'मनमोहन'।
हुई है देर जाते है, तुम्हारा शुभ मनाते है ॥[1]

इस कविता के लिखने के वर्ष दो वर्ष बाद ही उनका विवाह हो गया। उन्होने अपने वैवाहिक कर्तव्यो का पालन किया, और विवाह न करने का कभी किसी को उपदेश नही दिया। उनके पहनावे में भी आगे चलकर काफी परिवर्तन हो गया। फिर भी इस रचना की बहुत-सी मुख्य बातो का उन्होने जीवन भर निर्वाह किया। उन्होंने अपने जीवन में किसी सरकारी प्रशासनिक पद को प्राप्त करने की कभी कोई इच्छा नही की, और जो कमाया उसका बडा अश दुःखियो की सेवा में लगा दिया। वे अलमस्त फक्कड तो नही बने, देश की चिन्ता जीवन के अन्तिम घडी तक उन्हे सताती रही, पर विनय के साथ अकड अन्त तक उनके जीवन के गुण बने रहे। उन्होने जीवन भर देश की निःस्वार्थ सेवा की, और इसी का दूसरो को उपदेश दिया।

कविता

युवावस्था में मालवीयजी ने 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' नाम की मासिक पत्रिका के लिए समस्या-पूर्तियाँ भी की। उन्होने 'मकरद' उपनाम से उन्हे इस पत्रिका में प्रकाशनार्थ भेजा।

'राधिका रानी' समस्या पर लिखी रचना इस प्रकार है :—

इन्दु सुवा बरस्यौ नलिनीय पै वे न विना रवि के हरिखानी।
त्यौं रवि तेज दिखायो तऊ बिनु इन्दु कुमोदिनी ना विकसानी ॥
न्यारी कछु यह प्रीति की रीति नही "मकरन्दजू" जात बखानी।
साँवरे कामरीवारे गुपाल पै रीझि लटू भई राधिका रानी ॥

*　　*　　*

वे कबते उत ठाढे अहै इत बैठि अहौ तुम नारि चुपानी।
थाकी तुम्हें सुझावत सामते ऐसी मैं रावरी बानि न जानी ॥
मोहि कहाँ पे यहै 'मकरन्द" हूँ जो कहूँ खीझि पे रूसन ठानी।
आजि मनाये न मानती हौ कल्ह आप मनाइहौ राधिका रानी ॥

*　　*　　*

माँगत मोतिन माल नही नहि माँगत तोसो मैं भोजन पानी।
सारी न माँगत हौं "मकरन्द" न थारी अनेक सुगन्धन सानी ॥
माँगत हौं अधरा-रस रंचक सोउ न दीजत हौ सनमानी।
सूम्ता एती तुम्हे नही चाहिए बाजति हौ चहूँ राधिका रानी ॥

---

१ सीताराम चतुर्वेदी : महामना मालवीयजी, पृष्ठ २२-२३।

धूम मची ब्रजफागुरा आजु बजै उफ झाँझ अवरि उडानी।
ताकि चलै पिचका दुहु ओर गलीन में रंग की धार बहानी॥
भीजै भिजोवै ठढे "मकरन्द" दुहु लखि सोभा न जात बखानी।
ग्वालन साथ इतै नन्दलाल उतै सग ग्वालिन राधिका रानी॥

'डारन' पर समस्या-पूर्ति इस प्रकार थी —

भूलिहै सो हँसि माँगिवो दान को रञ्च दही हित पानि पसारन।
भूलिहै फागु के रागु सबै वह ताकहि ताकि कै कुकुम मारन॥
सो तो भयो सबही "मकरन्दजू" दाखि चाखिबै बैर बिसारन।
जापर चीर चुराय चढे वह भूलिहै कैसे कदम्ब की डारन॥
ढूंढ्यो चहू झँझरीन झरोखन ढूंढ्यो किते भर दाव पहारन।
मंजुल कुजन ढूंढि फिरयो पर हाथ मिल्यो न कहूँ गिरिधारन॥
लावत नाहि तऊ परतीति सह्यो इतनो दुख प्रीति के कारन।
जानत स्याम अजौ उतहि चित चौंकत देखि कदम्ब की डारन॥[1]

शिक्षा

जब मदन मोहनजी पाँच वर्ष के थे, तब उनको विद्यारम्भ कराया गया। पहाडा पढने वे एक पडित के पास महाजनी पाठशाला भेज दिये गये। उसके बाद वे पडित हरदेवजी की धर्मज्ञानोपदेश पाठशाला में भरती हुए। वहाँ उन्होने संस्कृत, लघुकौमुदी आदि पढी। अपने सहपाठियो के साथ मनुस्मृति, गीता और नीति के बहुत से श्लोक कंठ किये, तथा धार्मिक शिक्षा और शारीरिक बल बढाने की शिक्षा भी प्राप्त की। यहाँ गुरुजी अपने शिष्यो को दूध पिलाते, तथा कुश्ती भी लडवाते थे। गुरु हरदेवजी भागवत के श्रेष्ठ विद्वान् और साधक थे। वे सगीत के भी बडे प्रेमी थे। इसके बाद मदन मोहनजी ने विद्या धर्म-प्रवर्द्धिनी सभा की पाठशाला में पढना शुरू किया। पंडित देवकी नन्दनजी इस पाठशाला के सर्वेसर्वा थे। वे मदन मोहन को माघ मेले पर एक मोढे पर खडा कर उनसे व्याख्यान दिलवाया करते थे।

सन् १८६८ में प्रयाग में गवर्नमेण्ट हाई स्कूल खुला, और माताजी की आज्ञा से उन्होने वहाँ पढना प्रारम्भ कर दिया। वे अपने बडे भाई जयकृष्णजी के साथ, जो उनसे ६ वर्ष बडे थे, स्कूल जाया करते थे। घर पर पढने की सुविधा न होने के कारण मदन मोहन संध्या को लालटेन और पोथी लेकर अपने मकान से

1 रामनरेश त्रिपाठी, मालवीयजी के साथ तीस दिन, पृ० २७८-२७९।

थोडी दूर पर सोहन लाल के बाग में अपने साथी गंगा प्रसाद के पास उनके साथ पढने को चले जाते थे। वहाँ पढाई के साथ-साथ गपशप भी होती थी। स्कूल में भरती होने के बाद भी वे संस्कृत पढने पाठशाला जाया करते थे। वहाँ उन्होने पडित ठाकुर प्रसादजी से, जो भागवत के बडे विद्वान् थे, संस्कृत श्लोको के शुद्ध उच्चारण की शिक्षा प्राप्त की। सोलह-सतरह वर्ष की आयु में उन्होने एट्रेंस की परीक्षा पास की।

इस परीक्षा को पास करने के बाद उन्होने अपने चचेरे भाई पडित जयगोविन्दजी से सम्पूर्ण काशिका पढी तथा अपने चाचा पंडित गजाधर प्रसाद जी से, जो संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे, भागवत पढी।

पंडित गजाधर प्रसादजी उस समय मिर्जापुर के गवर्नमेण्ट हाई स्कूल में हेड पडित थे। मदनमोहनजी प्राय छुट्टियों में उनके पास जाया करते थे। एन्ट्रेन्स परीक्षा पास करने के बाद जब वह एक बार मिर्जापुर गये, तब वहाँ धर्मसभा का अधिवेशन हो रहा था। अपने चाचा की अनुमति से नवयुवक मदन मोहन ने भी वहाँ धर्म विषय पर व्याख्यान दिया, जिसकी काफी प्रशसा हुई। उससे उनका उत्साह बढा।

एन्ट्रेन्स पास करने के बाद मालवीयजी म्योर सेंट्रल कालेज में पढने लगे। परिवार के लिए कालेज की पढाई का आर्थिक बोझ वहन करना कठिन था। पर माता ने कठिनाई सह कर, अपना पेट काट कर, अपने जेवर गिरवी रख कर अपने बच्चे को पढाने का निश्चय किया। प्रिन्सिपल हैरिसन ने उन्हें एक मासिक वजीफा दिया। फिर भी मदन मोहनजी को काफी आर्थिक कठिनाइयो का सामना करना पडा।

कालेज में एक 'फ्रेन्ड्स डिबेटिंग सोसाइटी' थी। उसमें जब उन्होने पहली स्पीच अंग्रेजी में दी, तब उस सस्था के मन्त्री लाला सावलदास ने, जो बाद को डिप्टी-कलक्टर हो गये थे, उनका उत्साह-वर्द्धन किया। लाला सावल दास मालवीयजी से आयु में आठ वर्ष बडे थे। मालवीयजी उन्हें 'उस्ताद' कहकर पुकारते थे, और सावल दासजी उन्हें उनकी पढाई में मदद करते रहते थे।

विनोद

कालेज में एक बार 'मर्चेंट आफ वेनिस' का नाटक खेला गया। मदन मोहनजी ने उसमें पोर्शिया का पार्ट बहुत ही खूबी से किया।

इसी जमाने में 'आर्य नाटक मण्डली' की ओर से 'शकुन्तला' नाटक का अभिनय हुआ। इसमें मदन मोहनजी को शकुन्तला का पार्ट दिया गया। परदा उठने पर प्रियम्वदा और अनुसूया सखियों के साथ शकुन्तला हाथ में घड़ा लिये रंगमंच पर आयी, तब दर्शक दंग रह गये। शृङ्गार और करुणा दोनो रसो के हाव-भाव दिखला कर शकुन्तला के अभिनेता ने दर्शको को मुग्ध कर दिया।[1]

कालेज में संस्कृत मालवीयजी का एक पाठ्य विषय था। इस सिलसिले से वे संस्कृत के प्राध्यापक पंडित आदित्य राम भट्टाचार्य के सम्पर्क में आये। लोकसेवा के कार्यों में अपने शिष्य की रुचि देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए, और जीवन भर गुरु शिष्य को सार्वजनिक कार्यो में प्रोत्साहित करते रहे, और उसपर पुत्र का-सा स्नेह करते रहे। शिष्य भी उनके साथ गुरु योग्य भक्तियुक्त बर्ताव करता रहा। गुरु ने प्रयाग में 'हिन्दू समाज' नाम की एक सभा सन् १८८० में स्थापित की। शिष्य उस सभा में जाने लगा।

विवाह

मालवीयजी का विवाह सोलह वर्ष की आयु में उनके चाचा पंडित गजाधर प्रसादजी के माध्यम से मिर्जापुर के पंडित नन्दलालजी की कन्या कुनन देवी से हुआ। वे माता पिता के दुलार में पली थी। लडकपन में उन्हें किसी प्रकार के कष्ट का अनुभव नही था। ससुराल की आर्थिक दशा ने उन्हे बडे धैर्य और साहस से निर्धनता के कष्ट सहन करने को वाध्य किया। उन्हें आधा पेट खा कर सन्तोष करना पडता था, फटी धोतिया सी कर पहननी पड़ती थी। एक दिन बहुत वर्षो वाद मालवीयजी ने उनसे पूछा, तुमने कभी अपनी सास से खाने पहनने के कष्ट की शिकायत नही की ?' इस पर देवीजी ने उत्तर दिया, 'शिकायत करके क्या करती ? वे कहा से देती ? घर का कोना-कोना जितना वे जानती थी, उतना मैं भी जानती थी। मेरा दु:ख सुनकर वे रो देती और क्या करती ?'

देवीजी को धैर्य के साथ-साथ पतिदेव का स्नेह तथा भगवद्भक्ति के प्रति अनुराग भी प्राप्त था। जैसा कि मालवीयजी ने पंडित रामनरेश त्रिपाठी को बताया, पति पत्नी दोनो वैवाहिक जीवन के प्रारम्भ से ही रामकृष्ण के उपासक थे। दोनो कोई भी काम करते, चाहे दूध पीते, चाहे पानी पीते, रामकृष्ण का स्मरण किये विना नही करते। पतिदेव की तरह पतिव्रता साध्वी ने भी भगवान् की भक्ति में कई दोहे कहे थे। वे कहती थी—

'ऐसा कोई घर नही, जहा न मेरा राम'।

---

१. रामनरेश त्रिपाठी : मालवीय जी के साथ तीस दिन, पृ० ३७।
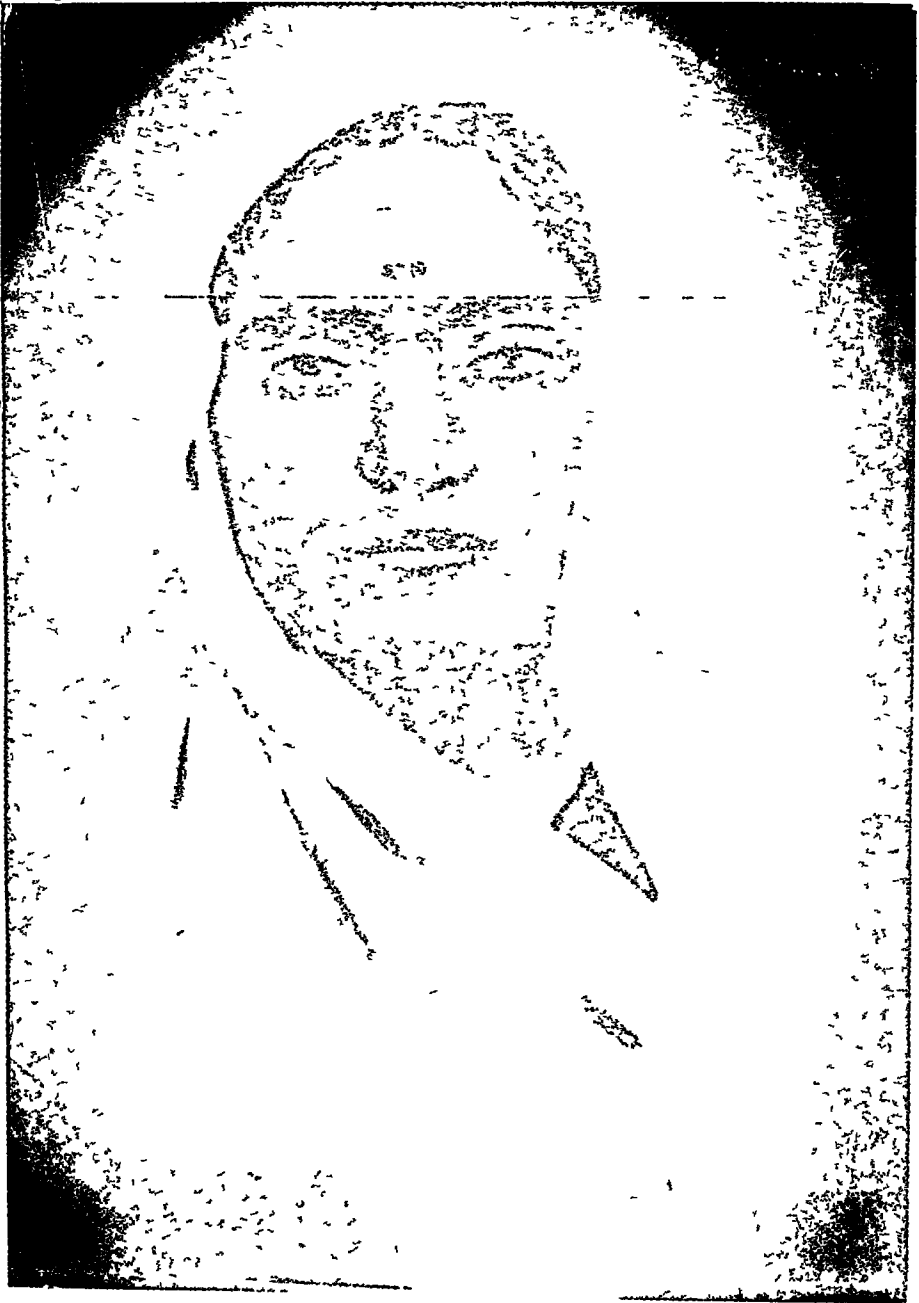
मालवीयजी की धर्मपत्नी

मालवीयजी अपने पुत्रो के सहित
(बाएँ से—मुकुन्दजी, रमाकान्तजी, राधाकान्तजी तथा गोविन्दजी
नीचे बैठे हुए—मालवीयजी के पौत्र श्रीधरजी)

मालवीयजी अपनी पत्नी के स्वभाव और व्यवहार से काफी संतुष्ट थे। उन्हें उसका गर्व था। उन्होने पंडित रामनरेशजी त्रिपाठी को कहा कि "वे सदा शान्त और जो कुछ मिल गया उसी में सतुष्ट रहने वाली गृहलक्ष्मी है।"[1] उन्होने त्रिपाठीजी से यह भी कहा कि "अपनी स्त्री के साथ गृहस्थी का सुख धर्म के अनुसार मनुष्य जितना भोग सकता है, मैंने उतना भोगा।"[2] कुनन देवीजी निश्चय ही वहुत साध्वी और भाग्यशाली सिद्ध हुई। धीरे-धीरे उनके पतिदेव की प्रतिभा का ऐसा विकास हुआ कि उन्हें देश के एक महान् नेता की पत्नी होने का सौभाग्य प्राप्त हो गया। उनके अपने शील ने इस सौभाग्य को चार चाद लगा दिये। उन्होने पाच पुत्रो और पाच पुत्रियो को जन्म दिया, जिनमें उनके चार पुत्र—रमाकान्त, राधाकान्त, मुकुन्द और गोविन्द और उनकी दो पुत्रिया, रमा और मालती, उनके निधन के समय भारी कुटुम्ब सहित उनकी सेवा में उपस्थित थे।

अध्यापन

सन् १८८४ मे वी० ए० परीक्षा पास करने के वाद मालवीयजी संस्कृत में एम० ए० की परीक्षा पास करके अपने पिता की तरह धर्म-प्रचार में अपना जीवन लगा देना चाहते थे, और इसलिए उन्होने अपने चचेरे भाई जय गोविन्दजी के आग्रह पर भी गवर्नमेण्ट स्कूल में अध्यापक का काम करने से इनकार कर दिया। पर जब उनकी माता को इसका पता चला और वे उनसे कहने आयी, तव उनकी 'सब कल्पनाएँ मा के आसुओ में डूव गयी' और वे नौकरी करने के लिए राजी हो गये। ४०) रुपये मासिक के वेतन पर उन्होने गवर्नमेण्ट हाई स्कूल में, जहा उन्होने पढा था, अध्यापक की नौकरी कर ली। वाद को उनका मासिक वेतन ६०) रु० हो गया। इस आमदनी का अधिकाश भाग वे अपनी माता को परिवार के भरण-पोपण के लिए दे देते थे। दो रुपये मासिक वे अपनी धर्मपत्नी को उसके निजी खर्च के लिए देते थे, और वाकी अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति में तथा सार्वजनिक कामो में खर्च कर देते थे।

मालवीयजी सफल अध्यापक सिद्ध हुए। वे अपने पाठनीय विषय को भलीभाति तैयार करके उसे वहुत रोचक ढंग से पढाते थे, तथा सदा विद्यार्थियो के प्रति स्नेह-भावना वनाये रखते थे। उनके एक प्रसिद्ध नागरिक छात्र का कहना है कि 'छात्रो के ऊपर उनकी स्नेहपूर्ण कृपा का, कोमल व्यवहार का, वाणी के

१ वही, पृ० ८०।
२. वही, पृ० ८१।

माधुर्य का, तथा उनके आकर्षक व्यक्तित्व का' बहुत प्रभाव था। सभी उनका सम्मान करते थे। पर जैसा कि मालवीयजी स्वयं कहते थे, उनका स्नेह दृढ़ता से समन्वित था। अनुशासन के सम्बन्ध में वे काफी दृढ थे। किसी छात्र का अभद्र या अशोभनीय व्यवहार सहन करने को वे तैयार नही थे। इस सम्बन्ध में वे काफी निर्भीक थे। इस पुस्तक के लेखक को एक दिन दृढ़ता और निर्भीकता से अपने कर्तव्य का पालन करने का उपदेश देते हुए उन्होने बताया कि जव एक बार एक उद्दण्ड विद्यार्थी को उन्होने दण्डित किया और इस पर उसके साथियो ने उन्हें पीटने की धमकी दी, तब उनके बड़े भाई घवड़ा गये, पर वे स्वयं प्रतिदिन की तरह निडर अकेले स्कूल से अपने घर चले गये।

सार्वजनिक कार्य

प्रोफेसर आदित्य राम भट्टाचार्य के प्रोत्साहन से मालवीयजी ने सन् १८८० में ही सार्वजनिक कार्यों में सक्रिय योगदान करना प्रारम्भ कर दिया था। उन्होने अपने गुरु के आदेश पर 'प्रयाग हिन्दू समाज' नाम की संस्था के संचालन में काफो काम किया। पडित बालकृष्ण भट्ट के सपादकत्व में प्रकाशित होने· वाले पत्र में मालवोयजी ने धार्मिक और सामयिक विषयो पर लेख लिखना प्रारम्भ किये। उन्होने सन् १८८२ में स्वय स्वदेशी का व्रत लेकर उसका प्रचार करना शुरू कर दिया। इमी समय उनके कतिपय मित्रो ने 'देशी तिजारत कम्पनी' खोली, जो कई वर्ष तक चलती रही। इस काम में वे अपने मित्रो को यथासम्भव परामर्श और सहयोग देते रहे। इसी समय मालवीयजी ने एक छात्र की हैसियत से कुछ दूसरे छात्र-मित्रो के सहयोग से रातोरात म्योर सेन्ट्रल कालेज के द्वार को झडी बन्दनवार आदि से सजाकर लार्ड रिपन का, जिनका स्वागत उस समय कालेज के अग्रेज प्रिंसिपल करना नही चाहते थे, स्वागत किया। सन् १८८४ में प्रयाग मे 'हिन्दी उद्धारिणी प्रतिनिधि सभा' स्थापित हुई। मालवीयजी उसके एक प्रमुख कार्यकर्ता वन गये। सन् १८८२ में माघ मेले के अवसर पर उन्होने अपने सहपाठियो के उपहास की उपेक्षा करते हुए व्याख्यानो द्वारा जनता में अपने विचारो का प्रचार किया, धार्मिक सिद्धान्तो तथा स्वदेशी का प्रसार किया।

सन् १८८५ में पडित आदित्य राम भट्टाचार्य ने 'इंडियन यूनियन' के नाम से अंग्रेजी में एक साप्ताहिक निकालना प्रारम्भ किया। इसके सम्पादन का सारा भार उन्हें ही वहन करना पडता था। इसे देखकर उनके आदेश पर मालवीयजी ने उसके सम्पादन का बहुत कुछ भार अपने ऊपर ले लिया।

मालवीयजी के गुरु पं० आदित्यराम भट्टाचार्य

सन् १८८५ में दशहरे के अवसर पर 'प्रयाग हिन्दू समाज' के तत्त्वावधान में 'मध्य भारत हिन्दू समाज' का समारोह आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में वड़े-वड़े विद्वान् उपस्थित हुए। वरावाँ के राजा श्री महावीर प्रसादजी ने इसका सभापतित्व किया। मालवीयजी ने इसके प्रवन्ध में सक्रिय योगदान करते हुए स्वदेशी पर भापण दिया। सभा में कालाकांकर के राजा रामपाल सिंह भी उपस्थित थे। वे वीच-वीच में उठकर वोलने लगते थे। यह बात मालवीयजी को वुरी लगी और उन्होंने राजा साहव के कान में कुछ कहकर उन्हें रोकने की चेष्टा की। पर इसका उन पर कोई प्रभाव नही हुआ। अन्त में राजा साहव ने अपने पत्र 'हिन्दुस्तान' में इस समारोह की प्रशंसा करते हुए लिखा कि 'उसमें दो एक लौंडे ऐसे ढीठ थे कि वे वडे राजा-रईसो और वावुओ को व्याख्यान देते समय उनके कान में सलाह देने की धृष्टता करते थे।' राजा साहव चाहे कुछ कहें, मालवीयजी का व्यवहार निश्चय ही ठीक और राजा साहव का व्यवहार अनुचित था।

३. प्रारम्भिक सार्वजनिक जीवन

कांग्रेस का दूसरा अधिवेशन

सन् १८८६ में दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में मालवीयजी पंडित आदित्य राम भट्टाचार्य के साथ इंडियन नेशनल कांग्रेस के द्वितीय सम्मेलन में शामिल होने कलकत्ता गये, और वहा अपने गुरु की अनुमति से उन्होने श्री सुरेन्द्र नाथ वेनर्जी द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव का समर्थन करते हुए प्रतिनिधि संस्थाओं की स्थापना पर बहुत ही उत्तम भाषण दिया, तथा अपनी प्रतिभा के लिए यश तथा आशीर्वाद प्राप्त किया।

उन्होने कहा कि प्रतिनिधि संस्थाएँ अंग्रेजो के जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग है और वे संसार के सभी सभ्य समाजो की प्रगति के लिए आवश्यक है। इसलिए भारत में निरकुश संस्थाओ को वनाये रखने का प्रयत्न करने के वजाय प्रतिनिधि संस्थाएँ प्रतिष्ठित करना हो अग्रेजो का कर्तव्य है। जवकि 'प्रतिनिधित्व के बिना कोई टैक्स नही', यह ब्रिटिश राजनीति का मूल मन्त्र है, तव प्रतिनिधि संस्थाओ को प्रतिष्ठित किये बिना भारतवासियो पर टैक्सो का वोझ लादते जाना अग्रेजो के लिए सर्वथा अनुचित है। उन्होने कहा कि काग्रेस का अस्तित्व हमारी क्षमता का प्रमाण है। अच्छे अग्रेज की यह जानकर दुःख होगा कि भारत सरकार 'निरंकुश' है, वह हमारे साथ 'गुलामो' जैसा व्यवहार करती है। देश के शासन में भाग लेने से हमें वंचित करना अनुचित है। प्रतिनिधित्व का अधिकार ब्रिटिश प्रजा का मौलिक अधिकार है, वह हमें मिलना ही चाहिए।[1]

मालवीयजी का यह भापण निश्चय ही वाग्मिता का उच्चतम नमूना था। अधिवेशन के अध्यक्ष दादाभाई नौरोजी ने इसे सुनकर कहा कि इस नवयुवक की वाणी में स्वयं भारतमाता ही मुखर हो रही है। श्री सुरेन्द्रनाथ वनर्जी ने स्वीकार किया कि 'यह भापण मेरे सुने हुए भापणो में सवसे अच्छा था, जिसका काग्रेस के प्रतिनिधियो के हृदय पर गहरा प्रभाव पडा और जिसने उन्हें काग्रेस के भावी नेता के रूप में निर्दिष्ट कर दिया'। ह्यूम साहव ने अपनी रिपोर्ट में

---

१. दी आनरेवल पंडित मदनमोहन मालवीय' लाइफ एण्ड स्पीचेज, सेकेण्ड एडीशन, १९१८, गनेशन, मद्रास, पृ० ६-७।

लिखा कि मालवीयजी का यह भाषण 'श्रोताओं ने तन्मय होकर सुना', उनके धारा-प्रवाह भाषण से सभी लोग मन्त्रमुग्ध हो गये।

पंडित दीनदयालु शर्मा

कलकत्ता अधिवेशन में मालवीयजी की पंडित दीनदयालु शर्मा से पहली भेंट हुई। सम्पर्क शीघ्र ही घनिष्ठ मित्रता और सहयोग में परिपक्व हो गया। धर्म के प्रति दोनों की एक जैसी निष्ठा थी। दोनों ही उदार सनातन धर्म के व्याख्याता तथा प्रभावशाली वक्ता थे। पडित दीनदयालुजी अपनी वाक्पटुता के कारण आगे चलकर 'व्याख्यान वाचस्पति' के नाम से विख्यात होने लगे। धर्म-प्रचार के कार्य में पंडित दीनदयालुजी मालवीयजी के सबसे बड़े साथी सिद्ध हुए। हिन्दू सभा के कार्य में भी दोनो का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। दोनो एक दूसरे को 'भाई' कहा करते थे। मालवीयजी कुछ मास बडे थे। इसलिए पंडित दीनदयालु उन्हें "ज्येष्ठ भ्राता करके ही मानते रहे"[1]।

भारत धर्म महामण्डल

सन् १८८७ में पंडित दीनदयालु शर्मा ने हरिद्वार में सनातन-धर्मियो की एक बडी सभा आयोजित की। लाहौर के राजा हरिवंश सिंह, पडित नन्दकिशोर देव शर्मा, पडित अम्बिका दत्त व्यास, पंडित देवीसहाय, बाबूलाल, मुकुन्द गुप्त आदि कितने ही विद्वान् उसमें सम्मिलित हुए। सुप्रसिद्ध थियासाफिस्ट कर्नल आलकाट ने भी इस सम्मेलन में उपस्थित हो व्याख्यान दिया। इस सभा में भारतधर्म महामण्डल की नींव पडी, और मालवीयजी भारत धर्म महामण्डल के महोपदेशको में गिने जाने लगे।

लगभग पन्द्रह वर्ष इस संस्था से उनका गहरा सम्बन्ध बना रहा, और इसके तत्वावधान में आयोजित सम्मेलनो और सभाओ में सनातन धर्म, हिन्दू सस्कृति की विशेषताओ आदि विषयो पर वे व्याख्यान देते रहे।

सन् १९०२ में महामण्डल की रजिस्ट्री हुई, और वह स्वामी ज्ञानानन्द के प्रबन्ध मे चला गया। स्वामीजी की कार्य-प्रणाली से मतभेद हो जाने के कारण मालवीयजी का उससे सम्बन्ध-विच्छेद हो गया, और उन्होने सनातन धर्म के उदार सिद्धान्तो के प्रचार के निमित्त सन् १९०६ में प्रयाग में कुम्भ के अवस[र] पर सनातन धर्म महासभा का एक विराट सम्मेलन स्वतत्र रूप से आयोजि[त]

१. मालवीयजी, जीवन झलकियां, पृ० १२६।

किया। पंडित दीनदयालु शर्मा भी स्वामी ज्ञानानन्द के साथ काम नही कर सके। वे भी भारत धर्म महामण्डल को छोड़ मालवीयजी के साथ हो गये।

ऋषिकुल

सन् १९०६ में सनातन धर्म महासभा के सम्मेलन में राय बहादुर पंडित दुर्गादत्त पन्त भी उपस्थित थे। वहा से जाते ही उन्होने हरिद्वार में एक 'ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम' खोलने का प्रयत्न किया। मालवीयजी ने इस प्रयास में योगदान किया। वे शुरू से ही उसके ट्रस्टियो में रहे, और लगभग दस वर्षों तक उसकी शिक्षा-समिति के अध्यक्ष भी रहे। वे बराबर उसके अधिवेशनो में सम्मिलित होते रहे।

सम्पादक

कलकत्ता कांग्रेस में किये गये मालवीयजी के भाषण से राजा रामपाल सिंह भी इतने प्रसन्न हुए कि जब वे प्रयाग आये तब उन्होने मालवीयजी को बुलाकर उन्हें पुरस्कार-स्वरूप १०) रुपये भेंट किये। छ महीने बाद 'हिन्दुस्तान' के सहायक सम्पादक की जगह खाली हुई, तब राजा साहब ने मालवीयजी से इस पद को स्वीकार करने का अनुरोध किया। राजा साहब, जो विलायत हो आये थे, निर्भीक देशभक्त थे। वे विचारो में उदार और प्रगतिशील थे। वे गुणग्राही थे, प्रगतिशील नवयुवक विद्वानो का आदर करते थे। समाचारपत्रो के माध्यम से प्रगतिशील विचारो का प्रसार ही उनकी पत्रिकारिता का ध्येय था। पर राजा साहब खाने पीने में बड़े आजाद थे। इसलिए मालवीयजी ने कुछ संकोच के बाद इस शर्त पर 'हिन्दुस्तान' का सम्पादन स्वीकार कर लिया कि जब राजा साहब खाते-पीते हो तब वे उन्हें न बुलायें। मालवीयजी की नियुक्ति डेढ सौ रुपये मासिक पर हुई, पर पन्द्रह दिन के बाद दो सौ रुपये कर दिये गये।

इस तरह मालवीयजी ने जुलाई सन् १८८७ में अध्यापन का कार्य छोडकर 'हिन्दुस्तान' के सम्पादन का उत्तरदायित्व ग्रहण किया। उनके सम्पादकत्व में 'हिन्दुस्तान' ने काफी लोकप्रियता अर्जित की। तत्कालीन समस्याओ पर उनके संपादकीय लेख और टिप्पणियाँ संतुलित और लाभप्रद होती थी। सम्पादकीय शालीनता का पालन, सत्पथ का समर्थन, राष्ट्रहित की पुष्टि, व्यक्तिगत कटाक्ष से निर्मुक्त समालोचना उनकी पत्रकारिता के सद्गुण थे। सरकार भी उनके पत्र को लोकोपयोगी स्वीकार करती थी। राजा साहब मालवीयजी के कार्य से पूरी तौर पर सन्तुष्ट थे, और उनका बड़ा आदर और सम्मान करते थे।

पर लगभग ढाई वर्ष के बाद एक दिन राजा साहब ने मालवीयजी को उस समय बुला भेजा, जब वे नशे में थे और उनका कमरा शराब की गंध से भरा था। इधर उधर की कुछ बातें करने के बाद राजा साहब ने पंडित अयोध्यानाथ के सम्बन्ध में कुछ ऐसी अपमानजनक बातें कही, जो मालवीयजी को बुरी लगी। उन्होने उसी समय राजा साहब का काम छोड कर कालाकाकर से चले जाने का निश्चय किया। उन्होने राजा साहब से कहा कि 'आज से मेरा अन्न जल आपके यहा से उठ गया, आपने जो शर्त की थी, वह तोड़ दी।' यह कह कर मालवीयजी घर चले गये।

दस-बारह दिन के बाद जब वे राजा साहब से मिलने गये, तब खबर पाकर राजा साहब स्वय बाहर निकल आये और सिर झुका कर कहने लगे—"मालवीयजी, उस दिन मैंने नशे में क्या-क्या कहा, मुझे याद नही, फिर भी यदि कोई अपमानजनक बात निकली हो तो यह सिर आपके सामने है, इस पर उसकी सजा दे डालिये।" राजा साहब की नम्रता देख कर मालवीयजी को विश्वास हो गया कि "राजा राहब ने जानबूझ कर पंडित अयोध्यानाथ के विषय में अपमानजनक बात नही कही थी।"[1] फिर भी मालवीयजी कालाकांकर में रह कर सम्पादकत्व का भार फिर से ग्रहण करने को राजी नही हुए।

इस पर राजा साहब ने मालवीयजी को वकालत पढने की सलाह दी, और पढाई का खर्च देने का वायदा किया। वे मालवीयजी को सौ रुपये महीना भेजने लगे। जब मालवीयजी वकील हो गये और अच्छी कमाई करने लगे, तब भी यह रकम वर्षों नियमित रूप से आती रही। जब मालवीयजी ने एक बार राजा साहब से कहा कि वे अब उनका कोई काम नही करते, उनकी नौकरी में भी नही है, तब रुपया क्यो भेजा जाता है? यह सुनकर राजा साहब बिगड़ गये और कहने लगे—"नौकरी में? मालवीयजी, क्या आपने मेरे व्यवहार में कोई ऐसी बात पायी है, जिससे आपके साथ नौकर का बर्ताव पाया जाता हो? आपके पास विद्या है। आप गुणो की खान है। आप उसके द्वारा मेरी इच्छाओ की पूर्ति करते है, और मैं थोडे पैसो से आपकी सहायता करता हूँ। इससे आप पर मेरा एहसान क्या है?"[2]

सार्वजनिक काम

मालवीयजी जब कालाकाकर में रह कर सम्पादन का कार्य करते थे, तब वे प्रति सप्ताह प्रयाग आ जाते, और देश की राजनीतिक प्रगति में यथासंभव

१. त्रिपाठी : मालवीयजी के साथ तीस दिन, पृ० २३०-३१।
२. वही, पृ० २२९।

सक्रिय योगदान करते थे। दिसम्बर सन् १८८७ ई० में उन्होने अपने प्रान्त से चालीस से अधिक प्रतिनिधि जुटा कर कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन में भाग लिया और वहा अपने भाषण के लिए राजा सर टी० माधव राव, अर्डले नार्टन और ह्यूम जैसे विख्यात व्यक्तियो से प्रशंसा और आशीर्वाद प्राप्त किया।

मालवीयजी ने अपने भाषण में कहा कि प्रतिनिधि संस्था की स्थापना ब्रिटिश प्रजा की हैसियत से हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। जबकि रूस के अतिरिक्त यूरोप के सभी देश सरकार की गतिविधि में जनता के प्रतिनिधियो का योगदान आवश्यक समझते है, और ब्रिटेन ने अपने बहुत से उपनिवेशो में किसी न किसी अंश में प्रतिनिधि सरकार प्रतिष्ठित कर दी है, तब भारत को इससे वचित रखना अनुचित है। जबकि यूरोप के वे देश भी, जहां की प्रजा और शासक एक ही जाति और धर्म के है, प्रतिनिधि संस्थाओ की स्थापना की आवश्यकता स्वीकार करते है, तब भारत में, जहा प्रजा और शासक वर्ग की भाषा और सस्कृति बिल्कुल भिन्न है, ये सस्थाएँ निश्चय ही नितान्त आवश्यक है। इस समय भारत के प्रशासन तथा राजकोश की देखभाल का सारा उत्तरदायित्व ब्रिटिश पार्लियामेण्ट पर है। पर जैसा कि प्रोफेसर फाकेट, चार्ल्स ब्रेडला आदि ने स्वीकार किया है, पार्लियामेंट इस बोझ को ठीक तौर पर वहन नही कर रही है। ऐसी दशा में भारत में प्रतिनिधि संस्थाओ को स्थापित कर उन्हें इस भार को सौंपना ही उचित है। इस कांग्रेस का अस्तित्व इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि हम प्रतिनिधि सस्थाओं के सर्वथा योग्य है।[1]

इस अवसर पर वे कांग्रेस द्वारा अपने प्रान्त के 'पोलिटिकल एसोसिएशन' तथा स्थायी कार्यसमिति के मन्त्री नियुक्त किये गये, और उनके निमन्त्रण पर अगले वर्ष प्रयाग में कांग्रेस का अधिवेशन करने का निश्चय किया गया। कांग्रेस के प्रयाग अधिवेशन की सुव्यवस्था का श्रेय पडित अयोध्यानाथ, पडित विश्वम्भर नाथ, श्री चारुचन्द्र मित्र और राय बहादुर रामचरन दास आदि बुजुर्गो के साथ मालवीयजी को भी था, जिन्होने स्वागत समिति के सहायक मन्त्री की हैसियत से जी-तोड कर काम किया। मालवीयजी पंडित अयोध्या नाथ के 'उत्तेजक उत्साह' तथा पंडित विश्वम्भर नाथ के गम्भीर उत्सर्ग के बहुत प्रशसक थे और उनके नेतृत्व में उनके अधीन रहकर काम करना अपने लिए 'गौरवप्रद' समझते थे।[2]

---

१. दी आनरेबल पंडित मदनमोहन मालवीय . लाइफ एंड स्पीचेज, पृ० ११-१२।

२. सन् १९०८ का प्रान्तीय कांग्रेस का अध्यक्षीय भाषण।

अयोध्यानाथजी तो एक प्रकार से उनके राजनीतिक गुरु ही थे। दोनो के बहुत मधुर सम्बन्ध थे।

सन् १८८८ मे काग्रेस के अधिवेशन में विषय समिति की ओर से आयकर के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए मालवीयजी ने किसी हद तक अप्रासंगिक ढंग से बहुत से प्रमाणों द्वारा सन् १८५८ की शाही घोषणा की वास्तविकता सिद्ध करते हुए माग की कि इस घोषणा मे निहित प्रणो को ईमानदारी के साथ पूरा किया जाय। उन्होने प्रतिनिधि संस्थाओ के विस्तार की आवश्यकता पर भी जोरदार भाषण दिया।

सन् १८८९ में कालाकाकर से प्रयाग लौट आने पर मालवीयजी पडित अयोध्यानाथ के नेतृत्व में अग्रेजी दैनिक 'इंडियन ओपीनियन' में सह-सम्पादक का काम करने लगे। उन्होने वकालत की पढाई भी शुरू कर दी। हिन्दू ला के साथ विधिविज्ञान तथा इंगलिस्तान के सविधान के अध्ययन में उनकी विशेष दिलचस्पी थी। लोकतान्त्रिक सविधान तथा नागरिक स्वतन्त्रता के मूलभूत सिद्धातो के सम्बन्ध में ब्रिटेन के विद्वानो और विधि-विशेषज्ञो के विचारो का अध्ययन कर उन्होने अपनी लोकतान्त्रिक भावनाओ और धारणाओ को परिपुष्ट किया।

परीक्षा से कुछ दिन पहले उनके एक छोटे भाई ने किसी अज्ञात कारण से अफीम खाकर आत्महत्या कर ली। इस दुःखद घटना के कारण मालवीयजी का उत्साह इतना क्षीण हो गया कि उन्होने परीक्षा देने का विचार ही छोड दिया। पर पडित अयोध्यानाथजी के समझाने पर मेहनत करके परीक्षा में बैठ गये।

वकालत

सन् १८९१ में वकालत की परीक्षा पास करके मालवीयजी ने पडित बेनी राम कान्यकुब्ज के साथ जिला अदालत में काम शुरू किया। दो वर्ष बाद वे हाईकोर्ट मे वकालत करने लगे। धीरे धीरे उनकी वकालत काफी चमक गयी। शेरकोट की रानी का मुकदमा जीतने पर मालवीयजी को बडी कीर्ति प्राप्त हुई। उससे आमदनी भी इतनी हुई कि उन्होंने घर का सारा कर्जा चुका कर भारती भवन में अपने जन्म-गृह से सटे हुए मकान को पक्का करा लिया।

सन् १८९१ में जब उन्होने वकालत शुरू ही की थी, तो उन्हें अपना ध्यान सार्वजनिक कामो की ओर से कुछ हटाना पड़ा, जिसकी कुछ शिकायत भी हुई।

पर जब सन् १८९२ में प्रयाग में दूसरी बार कांग्रेस का अधिवेशन हुआ, तब उन्होंने उसकी समुचित व्यवस्था के लिए भरसक प्रयत्न किया, और उसकी सफलता बहुत अंशो में उनके प्रयत्नो का परिणाम थी।

जब इलाहाबाद में मालवीयजी व्यस्त वकील थे, तब वे घोडा-गाडी से अदालत जाते थे। इलाहाबाद में यह बात मशहूर थी कि उनके घोडे को चाबुक नही लगती थी और गाड़ी का कोचवान, जिसका नाम 'घोताल' था, नित्य प्रातः स्नान कर, चंदन का टीका लगा, स्वच्छ एवं शुभ्र वस्त्र पहन कर, सूर्य को अर्घ्य देकर, अपने काम पर हाजिर होता था।[1]

हाई कोर्ट में वकालत निश्चय ही कीर्ति और प्राप्ति दोनो का अच्छा साधन था। यदि एकाग्र-चित्त हो वे उसे करते तो वे अवश्य ही सुख-समृद्धि का जीवन व्यतीत कर सकते थे। पर लक्ष्मी उन्हें अपनी ओर आकर्षित नही कर सकी। राष्ट्रसेवा ही उनका मुख्य धंधा बना रहा। सन् १९०८ में उन्होने वकालत का धंधा कम करने का निश्चय किया। सन् १९१० उन्होने वकालत छोड देने का निश्चय किया, और सन् १९१३ में उन्होने वकालत करना बिल्कुल छोड दिया। इस अवसर पर मालवीयजी के द्वितीय पुत्र पंडित राधाकान्त जी ने जो उन दिनो इलाहाबाद में अच्छे वकीलो में गिने जाते थे, मालवीयजी से कहा "बाबू, घर गृहस्थी की जिम्मेदारी हमारे ऊपर। बहुआ (राधाकान्त की मा) के पास हमने पर्याप्त रुपये जमा कर दिये है, जिससे घर की व्यवस्था होती रहेगी। तुम चिन्ता छोड़कर देश की सेवा करो।"[2]

यद्यपि वकालत में वे इतना ऊँचा स्थान प्राप्त नही कर सके, जितना वे कर पाते, यदि वे दत्तचित होकर उसे करते। फिर भी उन्होने वकीलो की मण्डली में बहुत ही सम्मानित स्थान प्राप्त कर लिया था। सर तेज बहादुर सप्रू ने लिखा है, 'वकालत प्रारम्भ करने के थोडे ही वर्षों के भीतर दीवानी पक्ष में मालवीयजी की अच्छी वकालत चमक उठी थी, जिससे उनका नाम पंडित सुन्दर लाल, पंडित मोती लाल नेहरू और श्री चौधरी के पश्चात् लिया जाने लगा था। वकालत में वे अत्यन्त तीव्र मेधावाले वकील के रूप में प्रसिद्ध थे। किसी मुकदमे पर वादविवाद करते हुए वे अत्यन्त निष्पक्षतापूर्वक बोलते थे। वे अपने विरोधी वकीलो का बडा सम्मान करते थे। किन्तु सबसे अधिक बात यह थी जो उन दिनो के हम छोटे वकीलो के सामने ज्वलन्त उदाहरण के रूप

१. मालवीयजी के दौहित्र श्री शिवकुमार जी से प्राप्त सूचना।
२. मालवीयजी के दौहित्र श्री शिवकुमारजी से प्राप्त सूचना।

में प्रस्तुत की जाती थी कि वे ऐसे वकील है, जिनमें अत्यन्त उच्च श्रेणी की योग्यता के साथ परम विवेक भी विद्यमान है। मैं भलीभाँति जानता हूँ कि एक के पश्चात् एक न्यायाधीश और सर जान स्टेनली और रिचार्ड जैसे मुख्य न्यायाधीश केवल उनकी योग्यता के कारण ही नही, वरन् उनके निष्कलंक चरित्र के कारण भी उनका बड़ा सम्मान करते थे। सफल वकील होने के तीन विशेष गुण मालवीयजी में विद्यमान थे—मुकदमे की पक्की तैयारी, प्रभावशाली वाणी, और अपने मुकदमे को ऐसे ढंग से रखने की कला कि सुननेवाला तत्काल बात मान ले। वे पुराने निर्णयो के उद्धरण तथा कानूनी और तथ्यात्मक पक्ष को ऐसे शान्त और प्रामाणिक रीति से प्रस्तुत करते थे कि उनके विरोधी वकीलों को उन तथ्यो या उनके तर्को का खडन करना सदा कठिन हो जाता था।'

बाबू पुरुषोत्तम दास टण्डन ने भी अपने एक भाषण में उनकी सच्चाई और ईमानदारी की प्रशंसा करते हुए कहा कि उनका व्यावसायिक जीवन उतना ही धवल था, जितना उनका व्यक्तिगत जीवन। उन्होने कहा कि मालवीयजी ने अपने वकालत के जमाने में न कभी किसी दलाल का प्रयोग किया, न कभी मुंशी द्वारा किसी को घूस दिलवायी, और न कभी किसी से झूठी गवाही देने को कहा।

त्याग और सेवा

वकालत छोड़ कर सारा जीवन राष्ट्र की उन्नति में लगा देने का निर्णय अवश्य ही मालवीयजी के त्याग का उच्चतम उदाहरण है। श्री गोपाल कृष्ण गोखले ने कहा था—त्याग तो मालवीयजी महाराज का है। वे निर्धन परिवार में उत्पन्न हुए और बढते-बढते प्रसिद्ध वकील होकर सहस्रो रुपया मासिक कमाने लगे। उन्होने वैभव का स्वाद लिया, और जब हृदय से मातृभूमि की सेवा की पुकार उठी, तो उन्होने सब कुछ त्याग कर पुनः निर्धनता स्वीकार कर ली।'[1]

प्रथम विश्वयुद्ध से पहले जो वकील सार्वजनिक कार्यो में दिलचस्पी लेते थे, उनमें से अधिकाश का कार्यक्षेत्र बहुत ही सीमित होता था। उनकी प्रतिभा की तुलना में राष्ट्रसेवा में उनका योगदान बहुत कम होता था। पर मालवीयजी का कार्यक्षेत्र वकालत के जमाने मे भी बहुत विस्तृत और व्यापक था, तथा राष्ट्र-सेवा में उनका योगदान उनकी वकालत से कही अधिक महत्त्वपूर्ण था। इन बीस

---

१. सीताराम चतुर्वेदी : महामना मालवीयजी, पृ० ४२।

वर्षों में (१८९२-१९११) जो मान और प्रतिष्ठा उन्होने वकील की हैसियत से प्राप्त की, उससे कही अधिक उन्होने राष्ट्रसेवा द्वारा अर्जित की।

यों तो सन् १८९२ में पंडित अयोध्यानाथ के निधन के बाद लगभग दस वर्ष तक प्रयाग की राजनीति में मालवीयजी पंडित विश्वम्भर नाथजी के नेतृत्व में उनके सहयोगी की हैसियत से मुख्यतः काम करते रहे, पर इन दस वर्षो में भी उन्होंने एक स्वतन्त्र कार्यकर्ता की हैसियत से समाज की महत्त्वपूर्ण सेवा की तथा एक उत्कृष्ट नेता की ख्याति प्राप्त कर ली।

नागरी लिपि

इस दशक में उनका सबसे महत्त्वपूर्ण काम अदालतों में देवनागरी लिपि के प्रयोग को सरकार द्वारा स्वीकृत कराना था। इसके लिए उन्हें लगातार तीन वर्ष तक कठिन परिश्रम करके एक प्रार्थनापत्र तैयार करना पड़ा। इस प्रार्थनापत्र में उन्होने बहुत से विद्वानो और प्रशासकों के विचारो तथा बहुत से तथ्यों के आधार पर नागरी लिपि के दावे को सिद्ध करने का प्रयत्न किया। उन्होने बताया कि प्रोफेसर मोनियर विलियम्स, सर आइजैक पिटमैन, चीफ जस्टिस अर्सकिन पेरी जैसे विद्वान् नागरी लिपि की सर्वांगपूर्णता स्वीकार करते थे। उन्होने यह भी बताया कि इन अक्षरों की मनोहरता, सुन्दरता, स्पष्टता, पूर्णता और शुद्धता निर्विवाद है। प्रार्थनापत्र में यह भी बताया गया कि 'यदि यह भी मान लिया जाय कि फारसी में अधिक शीघ्रता से काम चलता है,' तो भी नागरी के गुणो तथा स्वत्वो को भुलाया नही जा सकता। शिकस्त लिखने में यदि अदालत का कुछ समय बच जाता है, "तो उन्ही कागजों के पढने में बहुत समय नष्ट हो जाता है, और अन्त में नामो आदि के विषय में सन्देह बाकी रह जाता है।" इस पत्र में आँकडो द्वारा सिद्ध किया गया कि इस प्रान्त में प्राइमरी स्कूलों में हिन्दी पढनेवाले बालको की सख्या उर्दू पढनेवाले बालको से दुगुनी तिगुनी है, और यदि उर्दू लिपि की तरह नागरी लिपि का भी अदालतो मे प्रयोग होने लगे, तो हिन्दी पढनेवालो की संख्या और भी अधिक बढ जायेगी। इस प्रार्थनापत्र में यह स्वीकार किया गया कि सन् १८९५-१८९६ में वर्नाकुलर मिडिल स्कूलों में उर्दू पढनेवाले विद्यार्थियो की संख्या हिन्दी पढनेवालो से चौगुनी है। पर यह कहा गया कि सन् १८७३-१८७४ में हिन्दी पढनेवालो की सख्या उर्दू पढनेवालो से तिगुनी थी, और इस भारी परिवर्तन का मूल कारण सरकार की सन् १८७७ की वह आज्ञा है, जिसने सरकारी दफ्तरो में नौकरी के लिए उर्दू या फारसी में एंग्लो वर्नाकुलर परीक्षा

पास करना अनिवार्य कर दिया था। इस आज्ञा के औचित्य को चुनौती देते हुए परिपत्र में प्रार्थना की गयी कि उर्दू लिपि के साथ-साथ नागरी लिपि का भी अदालतो में प्रयोग किया जाय। बहुत से प्रमाणो से हिन्दी भाषा की व्यापकता को सिद्ध करते हुए प्रार्थनापत्र में कहा गया कि हिन्दी ही उत्तर भारत की भाषा है, और नागरी अक्षरो का प्रचार 'पश्चिमोत्तर प्रान्त और अवध' (मौजूदा उत्तर प्रदेश) में शिक्षा के प्रसार के लिए नितान्त आवश्यक है।[1]

मालवीयजी के प्रयास से सन् १८९६ मे सर एण्टनी मेकडानल ने प्रान्तीय सरकार की सन् १८७७ की वह आज्ञा वापस ले ली, जिसने सरकारी दफ्तर में दस रुपये या उससे अधिक की नौकरी पाने के लिए उर्दू या फारसी में एंग्लो-वर्नाकुलर मिडिल परीक्षा पास करना अनिवार्य बना दिया था। मालवीयजी के प्रयास से २ मार्च सन् १८९८ को अयोध्या नरेश महाराजा प्रताप नारायण सिंह, माण्डा के राजा राम प्रसाद सिंह, आवागढ के राजा बलवन्त सिंह, पडित सुन्दरलाल तथा मालवीयजी का एक डेपुटेशन सर एण्टोनी मेकडानल से, जो उस समय उनके प्रान्त के लैफ्टिनेन्ट गवर्नर थे, मिले और मालवीयजी ने उसकी ओर से नागरी लिपि के सम्बन्ध मे प्रार्थनापत्र उन्हे पेश किया। सर एण्टोनी ने प्रार्थनापत्र पर विचार करने का वायदा किया, और १४ अप्रैल सन् १९०० ई० को अदालतो में फारसी लिपि के साथ नागरी लिपि के भी चलन की आज्ञा जारी कर दी।

मुसलमानो ने सरकार की आज्ञा का विरोध करते हुए मालवीयजी पर साम्प्रदायिकता का दोष लगाया, और नागरी लिपि तथा हिन्दी की तरह-तरह से हिजो की। पर एक दिन मालवीयजी ने एक अरबी की नजीर नागरी लिपि में लिख कर हाईकोर्ट में पढकर इस तरह ठीक ठीक सुनायी कि मौलवी जामिन अली, जो मशहूर वकील थे, मुकदमा खतम होने पर उनसे कोर्ट के बरामदे में मिले और उनका हाथ पकड कर कहने लगे—"पडित साहब, आज मैं नागरी अक्षरो की उमद्गी का कायल हो गया, लेकिन मैं पब्लिक में यह नही कहूँगा।"[2]

भारती भवन पुस्तकालय

नवम्बर सन् १८८९ में पडित बालकृष्ण भट्ट के प्रयास से, श्री बृजमोहन भल्ला की उदारता से, तथा बहुत से नवयुवको के उत्साह से मालवीयजी के निवास

१. सीताराम चतुर्वेदी : महामना पंडित मदनमोहन मालवीय, खण्ड ३, पृ० ८०-१०६।
२. रामनरेश त्रिपाठी : मालवीयजी के साथ तीस दिन, पृ० १९४-१९६।

स्थान के निकट 'भारती भवन' के नाम से एक पुस्तकालय स्थापित हुआ। आगे चल कर लाला रामचरण दास के आर्थिक दान से, तथा श्री जयगोविन्द मालवीय द्वारा संस्कृत पुस्तको के उपहार से वह अधिक समृद्ध हुआ। हिन्दी और संस्कृत पुस्तको का संग्रह और अध्ययन इसका मुख्य उद्देश्य था। प्रयाग में यह अपने ढंग का पहला पुस्तकालय था। मालवीयजी ने इस प्रयास में काफी दिलचस्पी ली। वही इसकी परिरक्षक समिति (वोर्ड आफ ट्रस्टीज) के अध्यक्ष नियुक्त हुए, और आजीवन इस पद से उसकी सेवा करते रहे। उन्ही के प्रयास से उनका मुहल्ला 'भारती भवन' के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

प्रयाग म्युनिस्पैलिटी

वकालत के जमाने में मालवीयजी ने प्रयाग की भरपूर सेवा की। उन्होंने उसके सास्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन को समृद्ध किया। प्रयाग नगरपालिका के वरीय उपाध्यक्ष की हैसियत से उन्होने नगर की स्वच्छता और सुन्दरता के लिए यथासंभव कार्य किया, तथा एक भयंकर महामारी के अवसर पर अपने स्वास्थ्य की चिन्ता छोड कर पीडित जनता की सेवा की। उन्होंने घर-घर जाकर पीडितो को अस्पताल पहुँचाया, जो निरोग थे उन्हें सुरक्षित स्थानो पर भेजा, सव घरो में कीटाणुनाशक औषधि छिडकवायी, और जो निराश्रित हो गये थे, उनके भोजन और आवास की व्यवस्था की। वे सन् १९१६ तक प्रयाग म्युनिस्पैलिटी के सदस्य की हैसियत से अपने जन्मस्थान की सेवा करते रहे।

छात्रावास का निर्माण

मालवीयजी ने हिन्दू विद्यार्थियो के रहने के लिए एक छात्रावास के निर्माण के निमित्त प्रान्त में घूम-घूम कर चन्दा एकत्र किया। सन् १९०३ में छात्रावास तैयार हो गया। इसके निर्माण में लगभग ढाई लाख रुपया लगा, जिसमे एक लाख रुपया सरकार ने दिया, वाकी चन्दे से जमा हुआ। इस छात्रावास में, जो "मेकडानल हिन्दू वोर्डिंग हाउस" के नाम से प्रसिद्ध हुआ, दो सौ तीस विद्यार्थियो के रहने की व्यवस्था थी। इसके निर्माण और प्रवन्ध मे पंडित सुन्दरलालजी का, जो प्रयाग हाईकोर्ट के दीवानी पक्ष के सर्वश्रेष्ठ वकील थे, महत्त्वपूर्ण योगदान था। वही उसकी प्रवन्ध समिति के पहले अध्यक्ष थे।

पंडित सुन्दरलाल

पंडित सुन्दरलाल बहुत प्रतिभाशाली, कार्यकुशल व्यक्ति थे। वे प्रयाग विश्वविद्यालय के सर्वप्रथम हिन्दुस्तानी वाइस-चान्सलर थे। प्रयाग के सास्कृतिक

जीवन के निर्माण में उनका योगदान निश्चय ही महत्त्वपूर्ण था। मालवीयजी, जो उनसे साढे चार वर्ष छोटे थे, उनकी योग्यता के कायल थे, उनके प्रति 'अदव का वर्ताव' करते थे, और अपने निर्माण-कार्यों में उनका परामर्श और सक्रिय सहयोग प्राप्त करने का सदा प्रयत्न करते थे। बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी की स्थापना में उनका वडा हाथ था। वे ही उसके सर्वप्रथम वाइस-चान्सलर थे। उन्होने सन् १९१० में कांग्रेस के प्रयाग अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष की हैसियत से काम किया, तथा सन् १९०४ के बाद लगभग दस वर्ष तक प्रयाग में कांग्रेस के नरमदलीय पक्ष को पुष्ट किया। वे लगभग चौदह वर्ष तक युक्त प्रान्त की विधान कौंसिल के सदस्य रहे, और इस जमाने में ही उन्होने सन् १९०१ में यूनिवर्सिटी कमीशन, सन् १९०८ में डिसेन्ट्रेलाइजेशन (विकेन्द्रीकरण) कमीशन तथा, सन् १९१३ में इस्लिगटन की अध्यक्षता में आयोजित पब्लिक सर्विस कमीशन के सामने गवाही दी, तथा भारतीय पक्ष का समर्थन किया। वे अपने जमाने में इलाहाबाद हाईकोर्ट के सर्व-सम्मानित, सर्वश्रेष्ठ वकील थे, और सम्राट् द्वारा राय वहादुर, सी०आई०ई०, और 'सर' की उपाधियो से विभूषित किये गये।

बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन

प्रयाग के सास्कृतिक जीवन की अभिवृद्धि के लिए मालवीयजी ने बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन को हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कार्यालय को प्रयाग में स्थापित कर उसका सचालन करने को प्रोत्साहित किया। टण्डनजी से मालवीयजी के बहुत ही मधुर सम्बन्ध थे। वे तो एक प्रकार से टण्डनजी के राजनीतिक गुरु थे। उन्ही से टण्डनजी ने विद्यार्थी जीवन में ही सार्वजनिक सेवा की प्रथम प्रेरणा प्राप्त की थी।[1] टण्डनजी सयमी, दृढप्रतिज्ञ, कर्तव्य-परायण, निस्पृही राष्ट्रसेवी थे। किसानो के प्रति उनकी विशेष सहानुभूति थी। वे स्वतन्त्रता सग्राम के वीर सेनानी और नायक थे। प्रयाग के नागरिक जीवन तथा प्रान्त के राजनीतिक जीवन में अपने त्याग और सेवा के आधार पर उन्होंने बहुत ऊंचा स्थान प्राप्त कर लिया था। जमीदारो की लूट-खसोट के प्रतिरोध के लिए किसानो का संगठन, तथा किसान आन्दोलन का नेतृत्व उनके राजनीतिक क्रिया-कलापो का महत्त्वपूर्ण अंग था। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तो वे प्राण ही थे। वे ही उसके प्रमुख कर्ता-धर्ता थे। उन्होने स्वतंत्र भारत में अखिल भारतीय

१ पुरुषोत्तमदास टण्डन : महामना मालवीयजी वर्थ सेन्टिनरी कोमिमारैशन वाल्यूम।

कांग्रेस के अध्यक्ष पद को सुशोभित किया, तथा उससे पहले ही सन् १९३७ में प्रान्तीय विधान सभा के अध्यक्ष पद से बहुत ही निष्पक्षता और निर्भीकता से उसका विधिवत् संचालन किया।

औद्योगिक प्रगति और बलदेवराम दवे

सन् १९०७ में मालवीयजी ने यू० पी० इण्डस्ट्रियल कान्फ्रेंस (औद्योगिक सम्मेलन) का अधिवेशन प्रयाग में आयोजित किया, तथा 'प्रयाग इंडस्ट्रियल असोसिएशन' की स्थापना की। इस कार्य में उन्हे अपने पुराने स्नेही पंडित बलदेवराम दवे का भरपूर सहयोग प्राप्त था। "कांग्रेस के कामो में चारुचन्द्र के समान वे भी बहुत परिश्रम किया करते थे, और हर बात में अगुआ बनकर जोर-शोर से काम करते थे।"[1] बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के निर्माण और प्रबन्ध में भी उनका महत्त्वपूर्ण योगदान था। रचनात्मक कामो मे उनकी विशेष अभिरुचि थी। उन्होंने दस वर्ष तक इलाहाबाद इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट के अध्यक्ष की हैसियत से नगर की सेवा की, तथा 'हिन्दू ग्रन्थालय' की स्थापना की। प्रयाग की अन्य बहुत-सी संस्थाओ के संचालन में भी उनका भरपूर हाथ था। साठ वर्ष की आयु में वकालत का धधा छोडकर उन्होंने अपने जीवन के अगले बीस वर्ष समाज के रचनात्मक कार्यो में ही लगा दिये।

'अभ्युदय' और कृष्णकान्त मालवीय

सन् १९०७ में ही वसन्त पचमी के दिन मालवीयजी ने अपने राजनीतिक और सास्कृतिक विचारो के प्रसार के लिए हिन्दी में 'अभ्युदय' नाम का साप्ताहिक निकालना प्रारम्भ किया। दो वर्ष तक उसका स्वयं सम्पादन किया। उसके बाद बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन आदि ने इस भार को सम्भाला। सन् १९१० में मालवीयजी के मँझले भाई पंडित जयकृष्णजी के सुपुत्र पंडित कृष्णकान्त मालवीय ने सम्पादन का उत्तरदायित्व ग्रहण किया। मालवीयजी की भद्रता, कर्तव्यपरायणता, और देशभक्ति की कृष्णकान्तजी पर गहरी छाप थी। वे मरते दम तक राष्ट्र की सेवा में संलग्न रहे। यही उनके जीवन का मुख्य धंधा था। 'अभ्युदय' का सम्पादन इसी का एक साधन था। 'पंडित कृष्णकान्तजी हिन्दी के एक प्रधान पत्रकार थे। उनका राजनीतिक और सामाजिक ज्ञान बहुत बढाचढ़ा था। वे जनता की रुचि और आवश्यकता को पहचानते थे। हिन्दी के टकसाली लेखक थे। उनके लिखने का अपना ढग, उनकी अपनी शैली थी। उनकी भाषा में

---

१. मालवीयजी—जीवन झलकियाँ—पृ० १४५।

सादगी, प्रवाह, जीवन और आकर्षण था।"[1] कृष्णकान्तजी सहृदय, निर्भीक, प्रगतिशील देशभक्त थे। उन्होने गाधीजी के नेतृत्व में आयोजित स्वतन्त्रता संग्रामो में योगदान किया, तथा पडित मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में गठित 'स्वराज्य पार्टी' के सदस्य की हैसियत से केन्द्रीय असेम्वली में भरपूर काम किया। वे सदा मालवीयजी के प्रिय बने रहे। वे मालवीयजी महाराज के भतीजे ही नही, उनके 'राजनीतिक पुत्र' भी थे। इसी नाम से वे प्रसिद्ध थे। 'अभ्युदय' के सह-कारी सम्पादक श्री सत्यव्रतजी ने अपने एक सस्मरण में लिखा है—" 'अभ्युदय' सदा नि'स्वार्थ, निर्भीक और नम्र रहा। उसने अपनी मर्यादा को कभी हाथ से नही जाने दिया। जि-न वात में उसने जनता का हित देखा, जोरो से कहा और वेखटके कहा। कर्तव्यपालन में उसने कभी लोक-प्रियता और अप्रियता का विचार नही किया। अमीर और गरीब 'अभ्युदय' की निगाह में सदा समान रहे। उसने कभी गरीवो पर अमीरो के अत्याचारों को सहन नही किया। देशी राज्यो की प्रजा का पक्ष-समर्थन, और किसानो की हिमायत तो इसकी मशहूर है ही, इसने एक गरीब उपलो वाली तक की इज्जत की रक्षा के लिए हलचल मचा दी। शिष्टाचार को 'अभ्युदय' ने कभी नही छोडा। यद्यपि इ की 'सीधी-टेढी खरी मजेदार बातें' चोखो चुटकियाँ होती थी, तथापि वे अशिष्ट कभी नही हो पायी, और उनका उद्देश्य भी दूसरो का सुधार ही रहा—निन्दा नही। अपने सहयोगियो और विरोधियो दोनो के साथ 'अभ्युदय' का वर्ताव सज्जनतापूर्ण रहा।"[2] प्रारम्भ में ढाई वर्ष तक मालवीयजी ने उसका सम्पादन किया। उस काल में जो अग्रलेख उन्होंने लिखे उनमें 'मालवीयजी के व्यक्तित्व का समग्र रूप' हमें दिखाई देता है। उनमें 'उनके शब्दो में मालवीयजी की प्रतिभा प्रकाशित है और उनमें उनके जीवन का अनुभव समाया हुआ है।' "देश की स्थिति के अनुसार उस समय उन्होंने राष्ट्रीयता का जो सन्देश हमें दिया है, आज भी हम उससे लाभ उठा सकते है। एक सच्चे ब्राह्मण के रूप में जो उपदेश उन्होंने हमे दिये, उनमें भारतीय आत्मा और संस्कृति वसती थी।"[3]

'लीडर' और चिन्तामणि

सन् १९०९ में मालवीयजी के प्रयास तथा वहुत से मित्रो के सहयोग से विजया दशमी के दिन २४ अक्तूवर से अंग्रेजी दैनिक 'लीडर' का प्रकाशन शुरू हुआ। इस काम में पडित मोतीलाल नेहरू का भी वडा हाथ था। मालवीयजी

---

१. मालवीयजी—जीवन झलकिया—पृ० २९३-२९४।
२. वही, पृष्ठ २९३।
३ राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद, अप्रैल सन् १९६२, 'मालवीयजी के लेख' की भूमिका।

ने उसके सपादन का भार ग्रहण किया, और मोतीलालजी ने कंपनी की प्रबंध-समिति की अध्यक्षता सुशोभित की। सन् १९११ में श्री सी० वाई० चिन्तामणि ने दैनिक 'लीडर' के सम्पादन का भार ग्रहण किया, और मालवीयजी ने मोतीलाल जी के स्थान पर अध्यक्ष का भार संभाला। चिन्तामणिजी के सम्पादकत्व में 'लीडर' ने नि स्वार्थ भाव से देश की और प्रान्त की बडी लगन से सेवा की। लगभग दस वर्ष तक इसने ही मुख्य रूप से संयुक्त प्रान्त में राष्ट्रीय विचारो का निर्भीकता से प्रसार और प्रतिनिधित्व किया। पर आगे चल कर राष्ट्रीय प्रश्नो पर मतभेद वढ जाने के कारण पंडित मोतीलाल नेहरू ने 'इंडिपेंडेंट' पत्र चलाया, और वह राष्ट्रवादी विचारो का प्रमुख पत्र वन गया।

चिन्तामणि

श्री सी० वाई० चिन्तामणि कुशल उदारदलीय पत्रकार और राजनीतिज्ञ थे। सन् १९२१ में उन्होने शिक्षा-मन्त्री का पद ग्रहण किया, और युक्त प्रान्त (मौजूदा उत्तर प्रदेश) की शैक्षिक व्यवस्था के पुनर्गठन में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उन्ही के अधिकार-काल में लखनऊ के कैनिंग कालेज ने, तथा प्रयाग के म्योर सेण्ट्रल कालेज ने शैक्षिक और निर्वासीय विश्वविद्यालयो का रूप धारण किया।

मिंटो पार्क

सन् १९१० में मालवीयजी ने सोचा कि जिस स्थान पर गवर्नर-जनरल लार्ड केनिंग ने १ नवम्वर सन् १८५८ को दरवार करके महारानी विक्टोरिया की घोपणा पढकर सुनायी थी, उस स्थान पर एक घोपणा-स्तम्भ (प्रोक्लेमेशन पिलर) खडा करके उस पर घोपणा के वाक्य खुदवा दिये जायें, ताकि उसकी यादगार वनी रहे, और उसके चारो ओर एक पार्क वनाया जाय। शिलान्यास के लिए उन्होने तत्कालीन वाइसराय लार्ड मिंटो को निमंत्रित किया। उन्होने मालवीयजी की वात सहर्प स्वीकार कर ली। तिथि निश्चित हो गयी। ९ नवम्वर सन् १९१० को किले के पास यमुना के तट पर लार्ड मिंटो ने एक वृहद् जलसे में शिलान्यास किया, और पंडित मोतीलाल नेहरू ने 'आल इंडिया मिंटो मेमोरियल कमेटी' के संयुक्त मन्त्री को हैसियत से स्वागत-पत्र पढा। उत्सव निर्विघ्न समाप्त हुआ।

विना किसी तैयारी के जिस तरह मालवीयजी ने लार्ड मिंटो को निमन्त्रित कर लिया था, उससे गोखले साहव को चिन्ता पैदा हो गयी थी कि यदि निश्चित

समय तक धन इकट्ठा नही हो सका, तो मालवीयजी ही क्या, सभी भारतीय सार्वजनिक कार्यकर्ताओ की वदनामी हो जायेगी।' इस लिए उन्होने मालवीयजी को सलाह दी कि वे और सब काम छोडकर धन जमा करने में जुट जायें। पर मालवीयजी ने पत्रो द्वारा ही मिंटो पार्क के निर्माण के लिए एक लाख वत्तीस हजार आठ सौ सत्तानवे रुपये जमा कर लिये।'

पिता का निधन

इस उत्सव के समय ही मालवीयजी को अपने पिता की सख्त वीमारी की सूचना मिली। पर वार-वार वुलाये जाने पर भी वे उत्सव को छोडकर उन्हें देखने नही जा सके, जब उत्सव के वाद गये, तव तक उनकी आवाज वन्द हो चुकी थी। मालवीयजी को दु:ख था कि प्रयाग में होते हुए भी वे अपने पिता से अन्तिम समय वात नही कर सके। अपने सन्ताप को व्यक्त करते हुए उन्होने एक दोहा लिखा, जो इस प्रकार है :—

मन पिरात धीरज छुटत, समुझि चूक अरु पाप।
सर्व प्राणिन के प्राण प्रभु, छमहु मिटे संताप॥

सेवा समिति

सन् १९१२ में मालवीयजी ने अर्धकुम्भ के अवसर पर अपने ज्येष्ठ पुत्र पंडित रमाकान्त मालवीय को यात्रियो की सेवा के लिए स्वयसेवक दल सगठित करने को प्रोत्साहित किया। इस दल ने इस अवसर पर जनता की वहुत सेवा की। सन् १९१४ में माघ के मेले के अवसर पर उसका नाम 'दीन-रक्षक समिति' पड गया। यही समिति कुछ समय वाद फरवरी सन् १९१५ में मालवीयजी की अध्यक्षता में 'प्रयाग सेवा समिति' के रूप में संगठित हुई। पडित हृदय नाथ कुंजरू ने प्रधान-मन्त्री का उत्तरदायित्व स्वीकार किया। मालवीयजी की अनुमति से महाभारत में वतायी गयी शिवि की प्रार्थना समिति का आदर्श स्वीकार हुआ—

न त्वऽहंकामये राज्य न स्वर्गं ना पुनर्भवम्।
कामये दु:खतप्ताना प्राणिनामार्तिनाशनम्॥

'मुझे राज्य, स्वर्ग और मोक्ष की कामना नही है। मैं तो दु:खों से तप्त प्राणियो के दु:ख का निवारण करना चाहता हू।'

मालवीयजी के प्रोत्साहन और पंडित हृदयनाथ कुंजरू की लगन, क्षमता और सेवा-भावना के कारण 'प्रयाग सेवा समिति' ने प्रयाग के वाहर भी जनता की

वहुत सेवा की, और सन् १९१८ में अखिल भारतीय संस्था का स्वरूप धारण कर लिया। वहुत से स्थानो पर 'प्रयाग सेवा समिति' के नमूने पर सेवा समितियाँ वनायी गयी, और उन्होने 'अखिल भारतीय सेवा समिति' के नेतृत्व में इससे अपने को सम्बन्धित करते हुए जनता की सेवा की। 'सेवा समिति' ने हरिद्वार और कुम्भ के मेलो के अतिरिक्त बाढ, भूकम्प, अकाल आदि विपत्तियो के अवसर पर जनता की सहायता की। अप्रैल सन् १९१५ में पंडित कुंजरू के नेतृत्व में आयोजित स्वयं-सेवको को मण्डली में गाधी जी और उनके १९ साथियो ने भी उसमें शामिल होकर हरिद्वार में कुम्भ मेले में स्नानार्थियो की सेवा की। सन् १९१९ में समिति ने अपने मन्त्री श्री वंकटेश नारायण तिवारी की देखरेख में तथा मालवीयजी की प्रेरणा से पजाव में वहाँ की जनता की वहुत साहस और तत्परता से सेवा की, जवकि वह मार्शल-ला के अत्याचारो से वहुत व्यथित हो गयी थी।

वालचर

सन् १९१८ में कुम्भ मे यात्रियो की सेवा के लिए श्री श्रीराम वाजपेयी शाहजहापुर से 'व्राय स्काउट' का एक दल लाये। मालवीयजी और हृदयनाथजी ने उनके काम को वहुत पसन्द किया, और इन दोनो के अनुरोध पर श्री श्रीराम वाजपेयी प्रयाग में रह कर 'सेवा समिति' के तत्त्वावधान में 'व्राय स्काउट दल' का गठन और परिशिक्षण करने को राजो हो गये। 'अखिल भारतीय व्वाय स्काउट एसोसियेशन' की स्थापना की गयी। मालवीयजी चीफ स्काउट वने, तथा पंडित हृदयनाथ कुजरू चीफ स्काउट कमिश्नर नियुक्त हुए। इस संस्था का कार्यक्षेत्र प्रयाग तक सीमित नही रहा। उसे धीरे-धीरे देशव्यापी लोकप्रियता प्राप्त हो गयी। वहुत से स्थानो पर इसकी शाखाएँ खुल गयी। इस सस्था से सम्वन्धित स्काउटो ने मेलो और पर्वों के अतिरिक्त सार्वजनिक विपत्ति के अवसरो पर भी जनता की प्रशंसनीय सेवा की।

मालवीयजी द्वारा संचालित व्वाय स्काउट आन्दोलन वेडिन पावल द्वारा सचालित सस्था से कुछ वातो में विशेप रूप से भिन्न था। वेडिन पावल का चीफ स्काउट एक सरकारी अधिकारी अर्थात् गवर्नर-जनरल था, जवकि एक देशभक्त राजनीतिज्ञ नेता सेवा समिति वालचर का चीफ स्काउट था। जवकि ब्रिटेन का राष्ट्रीय गान वेडिन पावल के वालचरो की मुख्य वन्दना थी, 'वन्दे मातरम्' का राष्ट्रीय गान सेवा समिति के वालचरो की वन्दना थी। इस तरह जवकि वेडिन पावल के वालचरो को सम्राट् की भक्ति की शपथ लेनी होती थी,

सेवा समिति के बालचर देशभक्ति की शपथ लेते थे। सेवा समिति और बालचर आन्दोलन के गहरे सम्बन्ध के कारण मालवीयजी के बालचरो को समाज की सेवा करने के भी अधिक अवसर आसानी से मिलते रहते थे। सन् १९२१ में बेडिन पावल और मालवीयजी की बातचीत हुई। बेडिन पावल ने स्वीकार किया कि उन्हें यह नही कहना या समझना चाहिए कि भारतीय युवक स्काउट बनने की क्षमता नही रखते। दोनो में मेल मिलाप की बातें भी हुई, पर समझौता नही हो सका। सेवा समिति स्काउट आन्दोलन अलग से चलता रहा।

पंडित हृदयनाथ कुंजरू

पंडित हृदयनाथजी ने विद्यार्थी जीवन मे ही राष्ट्रसेवा का व्रत लिया, तथा आगरा कालेज में अपनी पढाई समाप्त करने के फौरन बाद वे 'सर्वेंट आफ इंडिया सोसाइटी' में शामिल होकर उसके अध्यक्ष गोपाल कृष्ण गोखले के नेतृत्व में समाज की सेवा में जुट गये। सन् १९०८ में कुंजरू साहब मालवीयजी के सम्पर्क में आये और शीघ्र ही एक दूसरे में पिता-पुत्र जैसा प्यारा सम्बन्ध स्थापित हो गया। कुंजरू साहब की सज्जनता, क्षमता, देशभक्ति, कर्तव्य-परायणता पर मालवीयजी को पूरा विश्वास था। सन् १९२० में कुजरू साहब काग्रेस से अलग होकर लिबरल पार्टी में शामिल हो गये, जबकि मालवीयजी काग्रेस में बने रहे। पर इसका दोनो के पारस्परिक सम्बन्धो पर कोई प्रभाव नही पडा। सार्वजनिक कामो में भी बहुत हद तक दोनो का पारस्परिक सहयोग जारी रहा। कुंजरू साहब ने मालवीयजी द्वारा संस्थापित बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के प्रबन्ध में महत्त्वपूर्ण योगदान किया, तथा सन् १९२७ ३० में मालवीयजी के नेतृत्व में 'नैशनलिस्ट पार्टी' के सदस्य की हैसियत से केन्द्रीय असेम्बली में बडी योग्यता तथा तत्परता के साथ भरपूर काम किया। इसी तरह सन् १९३२ में मालवीयजी द्वारा गठित 'स्वदेशी संघ' में उन्होने उसके उपाध्यक्ष की हैसियत से, तथा उसकी युक्त प्रान्तीय शाखा के अध्यक्ष के रूप में देश में स्वदेशी भावना को पुष्ट किया, तथा उसके काम को आगे बढाया। मालवीयजी ने भी केन्द्रीय असेम्बली के चुनावो में कुंजरू साहब की भरपूर सहायता की। राष्ट्रसेवा के व्रती हृदयनाथजी का कार्यक्षेत्र बडा व्यापक है। 'इडियन कौंसिल आफ वर्ल्ड अफेअर्स' तथा 'इडियन स्कूल आफ इन्टरनेशनल स्टडीज' बहुत हद तक उन्ही के प्रयत्नो का फल है। 'सर्वेंट आफ इडिया सोसाइटी' के संचालन का उत्तरदायित्व भी वे उसके अध्यक्ष की हैसियत से १ जनवरी सन् १९३६ से वहन कर रहे हैं। प्रान्तीय कौंसिल, केन्द्रीय

असेम्बली और राज्य सभा की सदस्यता, रेलवे कमीशन की अध्यक्षता, राज्य-पुनर्गठन कमेटी की सदस्यता, तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सदस्यता आदि द्वारा भी उन्होने राष्ट्र की महत्त्वपूर्ण सेवा की है। अखिल भारतीय सेवासमिति और स्काउट आन्दोलन के संचालन में भी उनका योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है। उन्होने 'हरिजन सेवक संघ' की युक्तप्रान्तीय शाखा के अध्यक्ष की हैसियत से हरिजनो की भरपूर सेवा की।

हरिद्वार

जब सन् १९१६ में मालवीयजी ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम के एक उत्सव में भाग लेने हरिद्वार गये, तब उन्हें पता चला कि सरकार का नहर विभाग एक बंध बांध कर गंगा के अविच्छन्न प्रवाह को रोक कर गंगा का अधिकाश जल नहर मे डाल देना चाहता है, और सन् १९१४ में नहर के सम्बन्ध में जो समझौता हुआ था उससे जनता सन्तुष्ट नही है। मालवीयजी ने इसका विरोध करना आवश्यक समझा। देहरादून में एक मास रहकर एक मेमोरेण्डम तैयार किया और आन्दोलन किया। कई राजाओ ने भी इसमें दिलचस्पी ली। अन्त में संयुक्त प्रान्त के लेफ्टिनेंट-गवर्नर सर जेम्स मेस्टन ने एक सभा आयोजित की, जिसमें कई महाराजाओ तथा सरकारी अफसरों के अतिरिक्त सोलह अन्य सज्जनो ने, जिनमे मालवीयजी भी थे, भाग लिया। मालवीयजी ने कहा कि "नहर में अधिक पानी ले लेने में भी उनका विरोध नही है, परन्तु वे चाहते है कि बाध में एक ऐसा मार्ग बना दिया जाय कि हमारी आवश्यकता के लिए उसमें से निरन्तर पर्याप्त मात्रा में जल आता रहे। धारा बिल्कुल प्राकृतिक हो, हर की पैडियो पर प्रवाह अविच्छन्न हो।" मेस्टन साहब के सवाल का उत्तर देते हुए मालवीयजी ने कहा कि "यदि फाटक इसी तरह खुला हो, जैसे खम्भो पर बना हुआ पुल होता है, तो मुझे आपत्ति नही है"। सरकार ने सभा का निर्णय स्वीकार कर धारा को अविच्छन्न रखने का प्रबन्ध कर दिया, धारा प्रवाह के लिए छह फुट चौडे फाटक का प्रबन्ध कर दिया। मालवीयजी अपने इस काम से बहुत ही सन्तुष्ट थे।[1]

पण्डित मोतीलाल नेहरू और मालवीयजी

इलाहाबाद में मालवीयजी के प्रमुख समवयस्क समकालीन पंडित मोतीलाल नेहरू थे। वे बहुत ही प्रतिभाशाली उच्चकोटि के वकील थे। उनके रहन-सहन

१. सीताराम चतुर्वेदी : महामना मालवीयजी, पृ०४८।

का ढग और सास्कृतिक दृष्टिकोण मालवीयजी से बहुत ही भिन्न था। जबकि मालवीयजी का जीवन बहुत ही सादा और सयत था, और उस पर प्राचीन परम्पराओ की पूरी छाप थी, वहा मोतीलाल नेहरूजी का जीवन खर्चीला, आनन्दमय तथा प्राचीन मर्यादाओ के प्रति उपेक्षित था। जबकि शाकाहारी मालवीयजी चाय और काफी का भी सेवन नही करते थे, मोतीलालजी खाने पीने में काफी आजाद थे। मोतीलालजी ने प्रारम्भ में फारसी का अध्ययन किया था, और फारसी साहित्य से वे काफी अनुप्राणित थे। दूसरी ओर मालवीयजी के जीवन पर सस्कृत वाडमय का प्रभाव था। वे आदर्श रूप में सस्कृत के श्लोको को अपने भाषणो में उद्धृत करते रहते थे। मोतीलालजी सामाजिक कुरीतियो के वडे आलोचक थे, पर हानिकारक प्राचीन रूढियो के विरूद्ध मालवीयजी की समीक्षा काफी नरम और शास्त्र पर आधारित होती थी।

प्रारम्भ में दोनो के राजनीतिक विचार बहुत हद तक एक जैसे थे। दोनो ही उदार लोकतान्त्रिक सवैधानिकता के समर्थक, तथा काग्रेस के प्रति निष्ठावान् थे। मालवीयजी ने सन् १८८६ में ही काग्रेस का काम करना प्रारम्भ कर दिया था। मोतीलालजी ने सन् १८८८ में काग्रेस के प्रयाग अधिवेशन में सबसे पहली बार एक डेलिगेट (प्रतिनिधि) के रूप में भाग लिया। उन्होने सन् १८८९ में और सन् १८९१ में उसकी विपयनिर्धारिणी समिति के सदस्य के रूप में, तथा सन् १८९२ में उसके प्रयाग अधिवेशन की स्वागत-समिति के सदस्य की हैसियत से काम किया। उसके बाद दस वर्ष तक काग्रेस के अधिवेशनो में उन्होने कोई भाग नही लिया, जबकि मालवीयजी काग्रेस के कामो और विचार-विमर्श में प्रतिवर्ष योगदान करते ही रहे। मालवीयजी की तरह मोतीलालजी को भी लोकमान्य तिलक और उनके साथियो की उग्रनीति पसन्द नही थी। उग्रपंथ और नम्रपथ के विवाद में दोनो ने नम्रपथ का समर्थन किया। पर सम्भवत. सन् १९०७ में उग्रपथियो के प्रति मोतीलालजी का रुख मालवीयजी की तुलना में अधिक कडा था। मोतीलालजी ने दिसम्बर सन् १९०७ में काग्रेस के सूरत अधिवेशन में श्री सुरेन्द्रनाथ वनर्जी के इस प्रस्ताव का समर्थन किया कि डाक्टर रासविहारी घोष अध्यक्ष चुने जाय। मालवीयजी काग्रेस में फूट हो जाने पर रोये, और सन् १९०८ में वे दोनो दलो में एक का समर्थन करते रहे।

सन् १९०७ मे प्रयाग के नवयुवको के आग्रह पर प्रयाग में आयोजित 'प्रान्तीय राजनीतिक कान्फ्रेन्स' की मोतीलालजी ने अध्यक्षता की। अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होने गरमदलीय राजनीतिज्ञो की नीति-रीति की कड़ी

आलोचना की। 'वाइकाट' और प्रतिरोध का उपहास उडाया, और घोषित किया कि "हम संवैधानिक आन्दोलनकर्ता हैं और हम संस्थापित सत्ता (authority) के माध्यम से सुधारो को सम्पादित करना चाहते हैं।"[१] उन्होंने अपने भाषण में ब्रिटेन के प्रति आभार प्रकट करते हुए स्वीकार किया कि अपनी प्रगति के लिए भारत ब्रिटेन का वहुत आभारी है। उन्होंने कहा : 'ब्रिटेन ने उस सर्वश्रेष्ठ आहार से हमारा पोषण किया है जो उसकी भाषा, उसका साहित्य, उसका विज्ञान, उसकी कला और सवसे ऊपर उसकी स्वतत्र संस्थाएँ प्रदान कर सकती थी। हम उस पौष्टिक आहार पर एक शताब्दी तक जीवित रहे और वढे। अव हम प्रौढता की आयु पर तेजी से पहुँच रहे हैं। हम वच्चो की उस पोशाक से, जो इंगलैण्ड से हमें प्राप्त हुई थी, आगे वढ निकले हैं।"[२] उन्होंने कहा कि अग्रेज "भला चाहता है, वुरा चाहना उसका स्वभाव ही नही है। उसे स्थिति को समझने में देर लगती है। पर जव वह समस्याओ को स्पष्ट रूप से जान जाता है, वह अपने सुस्पष्ट कर्तव्य को करता है और संसार मे कोई शक्ति नही, इस देश में या अन्यत्र उसके सम्वन्धी भी नही, जो उसे शक्तिशाली संकल्प की सफलता से रोक सकें।"[३]

सन् १९०८ में मालवीयजी ने लखनऊ में 'प्रान्तीय राजनीतिक कान्फ्रेन्स' के द्वितीय अधिवेशन की अध्यक्षता की। उन्होंने अपने भाषण में काग्रेस की फूट पर दु ख प्रकट किया, पर गरमदल की नीति-रीति या गतिविधि की कोई समीक्षा नही की। उन्होंने अग्रेजो के गुणगान करने के वजाय जनता के दु:ख-दर्दों की विस्तार से व्याख्या की, और उसके लिए सरकार की उपेक्षा को तथा उसकी गलत नीति-रीतियो को उत्तरदायी ठहराया। इस भाषण में उन्होंने जनता की गरीवी, भुखमरी, परेशानी, तथा सरकार की दमन नीति को ही जनता के असन्तोष और नवयुवको के विद्रोह का कारण वताया, और इन कारणो को दूर करने पर जोर दिया। उन्होने महारानी विक्टोरिया की घोषणा तथा लार्ड मिंटो और लार्ड मार्ले की सदिच्छा पर विश्वास प्रकट करते हुए आशा व्यक्त की कि प्रस्तावित राजनीतिक सुधारो को अधिक उदार वनाया जायगा। उन्होने राष्ट्रीय माँग के लिए जनमत तैयार करने, प्रत्येक प्रान्त और जिले में काग्रेस संघटन को कायम करने, तथा जनता की दशा को सुधारने की ओर उपस्थित सज्जनो का ध्यान आकृष्ट किया।

---

१. नन्दा : नेहरूजी, पृ० ६१।
२. वही, पृ० ६०।
३. वही, पृ० ६०।

सन् १९०९ में मोतीलालजी ने लखनऊ में 'प्रान्तीय सोशल कान्फ्रेन्स' के तृतीय सम्मेलन के अध्यक्ष की हैसियत से सामाजिक कुरीतियो की कडी आलोचना करते हुए पर्दे की प्रथा और जाति-व्यवस्था की विशेषरूप से भर्त्सना की, और मालवीयजी ने काग्रेस के अध्यक्ष की हैसियत से प्रस्तावित राजनीतिक सुधारो की कडी समीक्षा की, तथा 'अभ्युदय' के सम्पादक की हैसियत से प्राचीन धार्मिक सिद्धान्तो और मान्यताओ की प्रगतिशील व्याख्या करके उदार हिन्दू धर्म को स्थापित करने का प्रयत्न किया।

सन् १९०९ में मालवीयजी और मोतीलालजी दोनो ने मिलकर उदार विचारो के प्रसार के निमित्त अंग्रेजी दैनिक 'लीडर' के प्रकाशन का प्रवन्ध किया। सन् १९१० में मोतीलालजी प्रान्तीय लेजिस्लेटिव कौंसिल के और मालवीयजी इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौसिल के सदस्य निर्वाचित हुए, और सन् १९२० तक दोनो ही इन हैसियतो से काम करते रहे। सन् १९११ में मालवीयजी ने वकालत का धंधा छोडकर सारा समय राष्ट्र की सेवा में लगाने का, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी को स्थापित करने का व्रत धारण किया। मोतीलालजी वकालत करते रहे, पर साथ ही समाज-सेवा के कामो में भी दिलचस्पी लेते रहे। सन् १९१३ से तो काग्रेस के अधिवेशनो में वे भी बराबर भाग लेते रहे।

सन् १९१९ में मालवीयजी और मोतीलालजी दोनो ने मिलकर पजाब की जनता की सेवा की। सन् १९१९ के राजनीतिक सुधारो के सम्बन्ध में भी दोनो की करीब-करीब एक सी राय थी। सन् १९१८ में जिन बातो की मोतीलालजी ने प्रान्तीय कौसिल में पुष्टि की, उन्ही बातो को मालवीयजी ने अपने काग्रेस के अध्यक्षीय भाषण में पुष्ट किया। सन् १९१९ में जो धारणाएँ और विचार मोती लालजी ने अपने काग्रेस के अध्यक्षीय भाषण में व्यक्त किये, वे करीब-करीब सभी मालवीयजी के विचारो के अनुकूल थे।

सन् १९२० में दोनो की नीतिरीति में गहरा भेद पैदा हो गया, जिसका पूर्ण विवरण इस पुस्तक में विभिन्न अध्यायो में दे दिया गया है। यहाँ इतना कहना ही पर्याप्त है कि राजनीतिक नीतिरीति के सम्बन्ध में गम्भीर मतभेद हो जाने के कारण, बहुत से महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय प्रश्नो पर मतैक्य होने पर भी, बहुधा विवाद कटुता का रूप धारण कर लेता था। इस कटुता ने सन् १९२६ में विशेष रूप से भयंकर रूप धारण कर लिया था, यद्यपि सन् १९२०-२२ में असहयोग के प्रश्न पर, और सन् १९२३ में 'स्वराज पार्टी' की नीति-रीति को लेकर भी काफी मनमुटाव पैदा हो गया था।

सन् १९२० से लेकर सन् १९३१ तक, जबकि दुर्भाग्यवश मोतीलालजी का निधन हो गया, मोतीलालजी की नीति-रीति मालवीयजी की नीति-रीति की तुलना में अधिक उग्र समझी जाती रही। किस कारण से मोतीलालजी ने अपनी पुरानी नीति को छोडा, इसके सम्बन्ध में दो राय है। कुछ व्यक्तियों का, जिनमें उनकी जीवनी के लेखक श्री वी० आर० नन्दा भी हैं, मत है कि इस परिवर्तन का मूल कारण उनके सुपुत्र जवाहरलालजी की उग्रता थी। कुछ विद्वानो का अनुमान है कि डायर और ओडायर के अत्याचारो, तथा भारत सरकार और ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्यो द्वारा पंजाब काण्ड के समर्थन ने मोतीलालजी के राष्ट्रीय अभिमान को ऐसा धक्का लगाया कि फिर अग्रेजो की न्यायप्रियता पर विश्वास बनाये रखना, और उसके आधार पर नरम नीति का अनुसरण करना उनके लिए असभव हो गया। सम्भवत. उनकी उग्रता के ये दोनो ही कारण थे। जो भी हो, उन्होने अपने जीवन के अन्तिम बारह वर्ष एक वीर राष्ट्रवादी नेता की हैसियत से अपनी दृष्टि में उग्रनीति का अवलम्बन करते हुए शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्यशाही से टक्कर लेने में, तथा राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करने में समर्पित किये। सन् १९३० में बहुत अस्वस्थ होते हुए भी उन्होने 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' का नेतृत्व किया और जेल की यातनाएँ सही। यह निःसन्देह उनके वीरत्व का, उनकी देशभक्ति का, स्वराज्य के प्रति उनकी दृढ निष्ठा का उच्चतम उदाहरण है।

मालवीयजी ने भी आजीवन हिन्दू धर्म, जाति और भारतीय राष्ट्र की नि स्वार्थ सेवा की। यद्यपि सामाजिक कुरीतियो के सम्बन्ध में उनके विचार बहुत से समाज-सुधारको की दृष्टि में बहुत ही कम प्रगतिशील थे, पर इस क्षेत्र में भी उन्होने पुरानी मर्यादाओ पर आस्था रखने वालो को प्रभावित करते हुए समाज की कुछ सेवा अवश्य की। पर राष्ट्रीय जीवन के अन्य सभी क्षेत्रों में उनका योगदान भरपूर था, गाँधीजी के अतिरिक्त किसी से कम नही, सम्भवतः अधिक था। उन्होंने कभी उग्रवादी होने का दावा नही किया, पर सन् १९२४ से सन् १९३० के युग में केन्द्रीय असेम्बली मे उनका काम किसी तरह भी मोतीलालजी या किसी दूसरे नेता से कम महत्त्वपूर्ण नही था। कोई भी ऐसा महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय प्रश्न नही था, जिस पर उन्होने वैमनस्य या दुराग्रह के कारण मोतीलालजी का साथ देने से इनकार किया हो, या उनके भाषण की तीव्रता या उग्रता मोतीलालजी या किसी दूसरे नेता के भाषणों की तुलना में कम रही हो।

मालवीयजी अवश्य ही मोतीलालजी की तरह ही निर्भीक नेता थे, और यदि उनकी नीतिरीति कतिपय प्रश्नो पर अधिक लोचदार थी, तो उसका कारण उनकी भीरुता नही, उनकी सूझबूझ थी। सन् १९३० और सन् १९३२ के राष्ट्रीय संघर्षों के जमाने में उन्होने जिस प्रकार राष्ट्र की सेवा की, तथा सन् १९३१ में लन्दन की गोलमेज कान्फ्रेन्स में उन्होने जिस प्रकार गाधीजी का समर्थन किया, ये उनकी देशभक्ति, त्याग और राष्ट्र के आदर्शों के प्रति उनकी दृढ निष्ठा के उज़्ज्वल प्रमाण हैं। मालवीयजी निर्भीक थे, पर साथ ही निरभिमानी थे। उनकी दृढता तितिक्षा और सहयोग की भावना से समन्वित थी। इसलिए वे संघर्ष के युग में भी सहयोग की संभावनाओ पर विचार करते रहते, किसी प्रश्न पर या चुनाव में हारजीत के बाद बीती बात भुला कर आगे की सुध लेते, प्रेम और उत्साह से समाज की सेवा करते।

४. कांग्रेस में कार्य

(१८८६-१९०६)

मालवीयजी के राजनीतिक कार्यों का प्रमुख मंच कांग्रेस ही था। वास्तव में जैसा कि श्री सी० वाई० चिन्तामणि ने बताया, "प्रारम्भ में बीस वर्ष तो संयुक्त प्रान्त में मालवीयजी ने ही गंगा प्रसाद वर्माजी के संयोग से कांग्रेस का झण्डा फहराए रखा।"[1] कांग्रेस के मच से मालवीयजी ने राष्ट्र के हितो को पुष्ट किया, सरकार की दमन-नीति का विरोध किया, तथा राजनीतिक सुधारो की, जनता के प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व की, विधान कौंसिलो के अधिकारो के विस्तार की, एवं सेना में भारतीयो को उच्च-स्तरीय कमीशन दिये जाने की माँग की। उन्होने देश की दयनीय दशा और जनता के कष्टो की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट किया, तथा उन्हें दूर करने के लिए प्रशासकीय खर्चे को कम करना, शिल्प विद्या की शिक्षा के विस्तार का प्रबन्ध करना, भारत में भी सिविल सर्विस की प्रतियोगिता परीक्षा का प्रबन्ध करना, तथा योग्य भारतीयो को उच्चकोटि के प्रशासकीय पदो पर नियुक्त करना जरूरी बताया। उन्होने यह भी माँग की कि भारत की सीमा के बाहर आयोजित युद्धो का खर्चा ब्रिटेन स्वयं बर्दाश्त करे, मालगुजारी का स्थायी बन्दोबस्त किया जाय, किसानो के लगान में कमी की जाय, किसानो के पट्टो की मियाद बढ़ा दी जाय, किसानो को अनुचित लगान की वृद्धि से और जमींदारो द्वारा मनमानी बेदखली से सुरक्षित किया जाय। उन्होने लार्ड कर्जन के विश्वविद्यालय-विधेयक का विरोध करते हुए उच्चस्तरीय शिक्षा के प्रबन्ध मे सरकारी अफसरो के हस्तक्षेप की वृद्धि की निन्दा की। उन्होने बंगभंग की कड़ी आलोचना करते हुए उसके विरुद्ध बंगाल कांग्रेस कमेटी की बहिष्कार नीति का समर्थन किया।

इस काल (१८८५-१९०६) मे कांग्रेस के सभी प्रस्ताव सर्वसम्मति से निश्चित होते और पास किये जाते थे, और बहिष्कार को छोड कर यह सभी बातें सम्पूर्ण कांग्रेस स्वीकार करती थी। बहिष्कार के सम्बन्ध में मतभेद जरूर था। जबकि कुछ नेता इसके बिल्कुल विरोधी थे, कुछ नवयुवक इसे देशव्यापी

---

१. सी० वाई० चिन्तामणिः इंडियन पालिटिक्स सिन्स म्यूटिनी, पृ० ७४।

बना देना चाहते थे। पर मालवीयजी प्रभृति कांग्रेसी कार्यकर्त्ता उसे बंगाल तक सीमित रखना चाहते थे।

मृदुभाषी मालवीयजी के भाषणो की भाषा सदा सन्तुलित होती थी। पर उनकी आलोचना स्पष्ट, युक्तियुक्त और कभी कभी काफी कडी होती थी। सन् १८८९ में उप-भारतमन्त्री सर जान गोर्स्ट के इस विचार की कि "खर्चा बढा है, बढना चाहिए और कम नही होना चाहिए" आलोचना करते हुए मालवीयजी ने कहा कि इस समय जबकि जनता की दशा दिन प्रतिदिन बिगडती जा रही है, खर्चे की वृद्धि केवल अनुचित ही नही बल्कि निश्चय ही "पापमय" है।[1]

सन् १८९२ में उन्होने कहा कि जबकि प्रत्येक भारतीय की औसत वार्षिक आमदनी सरकारी वक्तव्य के अनुसार सत्ताईस रुपया और दादा भाई नौरोजी और डिगबी के हिसाब से इक्कीस रुपया है, जनता की गरीबी दूर करने के लिए कुछ नही किया जा रहा है। देश की बढती हुई गरीबी तथा उसके कारणो की समीक्षा करते हुए उन्होने कहा कि लगभग दस करोड भारतीयों की कमाई प्रतिवर्ष अंग्रेजी अफसरो के वेतन और उनकी पेंशन के रूप में इंग्लैड चली जाती है, और इसलिए ऊँचे पदो पर भारतीयो को भरती न करने की सरकार की नीति केवल अन्यायपूर्ण ही नही, बल्कि आत्मघाती है।[2] उन्होने कहा: "सरकार जनता के बिना जीवित नही रह सकती," यदि "जनता अधिक निर्धन होती जाती है, तब सरकार कही भी नही है, कम से कम 'सरकार' कहलाने योग्य तो वह नही ही है"।[3]

सन् १८९३ में उन्होने बडे सन्तप्त हृदय से कहा कि जबकि लगभग पाँच करोड भारतीय भुखमरो जैसा दु खी जीवन व्यतीत कर रहे है और लाखो प्रतिवर्ष भुखमरी के शिकार होते रहते है, सरकार जनता के प्रति अपना उत्तरदायित्व का अनुभव ही नही कर रही है। उसके शासन में अन्याय, दमन और कष्ट फैला हुआ है।[4]

सन् १८९५ में सरकार के बढते हुए खर्चे की कडी आलोचना करते हुए उन्होने भुखमरी के कारण लाखो मौतों के लिए भारत सरकार, ब्रिटिश सरकार और इग्लैड की जनता को, उनके "अयोग्य शासन और अत्यधिक करारोपण"

---

१ आनरेबुल पण्डित मदन मोहन मालवीय. लाइफ एड स्पीचेज, गणेशन एड कं०, मद्रास, सेकिंड एडिशन, १९१८, पृ० २०५।

२ वही, पृ० २१८। ३ वही, पृ० २१८।

४. वही, पृ० २२३।

को उत्तरदायी ठहराया। उन्होंने कहा, "इंग्लैंड की जनता अवश्य ही उत्तरदायी है" क्योंकि "वह जो दमन होने देता है, अपराध में शरीक है।"[१]

उन्होंने कहा कि यदि ब्रिटिश पार्लियामेंट और ब्रिटेन की जनता जिसने अपने ऊपर भारत के शासन के उत्तरदायित्व का भार विधिवत् ग्रहण किया है ऐसी मौतें होने देती है जिन्हें रोका जा सकता है तो वे अवश्य ही ईश्वर और मनुष्य दोनो के प्रति उत्तरदायी है। उन्होंने कहा—"क्या इस महाभियोग के बाद उनका यह कर्तव्य नही है कि शासन की उन नीतियो की जिन पर सार्वजनिक खर्च निर्धारित है पूरी तौर पर खुली जाँच करावें ?"[२]

सन् १८९६ में उन्होंने देश की निर्धनता तथा अकाल की स्थिति की आलोचना करते हुए कहा : "यदि सरकार ने भारत में कला-कौशल तथा उद्योगधन्धो को प्रोत्साहित और पुष्ट किया होता और प्रशासन के कार्यों मे देशी योग्यता और शक्ति का प्रयोग किया होता, तो देश की दशा बुरी न होती, सूखे की स्थिति का अधिक आसानी से सामना किया जा सकता था।"[३]

नामजदगी का विरोध

सन् १८९० में मालवीयजी ने यह मांग करते हुए कि विधान-सभाओ के कम से कम आधे गैरसरकारी सदस्य जनता द्वारा चुने जायें, नामजदगी की प्रथा की कडी आलोचना की। उन्होंने कहा कि "सरकार ने अधिकतर ऐसे सज्जनो को सदस्यता के लिए चुना है जो जनता के अधिकारो और हितो को निर्भीकता से प्रतिपादन करने में अयोग्य सिद्ध हुए है, जिनकी कौंसिल मे उपस्थिति ने जनता की दुर्दशाओ को बढाने में मदद की है।"[४] उन्होंने कहा : "उन सज्जनो को कौंसिल का सदस्य बनाने से क्या लाभ है जो जनता के बिल्कुल सपर्क में न हो, और जो उनकी वास्तविक दशा और आवश्यकताओ से अनभिज्ञ होने के कारण उन कार्यवाहियो का, जो जनता के कष्टो और असन्तोष को बढाती है, असावधानी से समर्थन करके उनके प्रति सहानुभूति के क्रूर अभाव को प्रकट करते है।"[५] ऐसे "गैरसरकारी सदस्यो के होने से तो किसी गैरसरकारी सदस्य का न होना ही अच्छा है।"[६]

---

१. वही, पृ० २६१-२६२।
२ वही, पृ० २६२।
३. वही, पृ० २३२-२३३।
४ वही, पृ० २४।
५ वही, पृ० २४।
६ वही, पृ० २४।

पब्लिक सर्विस

सन् १८९२ में पब्लिक सर्विस कमीशन की संस्तुतियो, और उन पर लिये गये भारत सरकार के निर्णयो की आलोचना करते हुए मालवीयजी ने कहा : "यद्यपि पार्लियामेंट ने कानूनो द्वारा और महारानी विक्टोरिया ने अपनी शाही घोषणा द्वारा यह निर्धारित कर दिया है कि भारतनिवासी हर उस स्थान पर बेरोकटोक भरती किये जायेंगे जिसके लिए उनमें पर्याप्त योग्यता और न्यायनिष्ठा हो, पर वास्तविक व्यवहार मे जानबूझ कर, और निर्लज्जता के साथ उनके दावो की अवहेलना की जाती है, और पारिश्रमिक के उन स्थानो पर जिन्हें भरने की, अपनी योग्यता और चरित्र से, भारतीय पूरी क्षमता रखते है, यूरोपियन नियुक्त कर दिये जाते है।"[1] उन्होने कहा कि सन् १८८९-१८९० में दस हजार से बीस हजार रुपये वार्षिक वेतन पानेवालो में ७१३ यूरोपियन, ८ यूरेशियन और ४५ भारतीय थे, और बीस हजार से लेकर तीस हजार रुपये वार्षिक वेतन पानेवालो में ३०० यूरोपियन, २ यूरेशियन और ४ भारतीय थे। इससे यह प्रत्यक्ष है कि सब अच्छे पदो का बडा भाग यूरोपियनो के लिए सुरक्षित रखा जाता है, जबकि इस देश के बच्चे छोटे वेतन की छोटी नौकरियाँ ही पाते है। सब विभागो में एक हजार या उससे अधिक वेतनवालो में यूरोपियन १३,१७८, यूरेशियन ३,२०९ और हिन्दुस्तानी १२,५५४ है। पर जबकि कुल मिलाकर यूरोपियनो का वेतन लगभग ९ करोड रुपया, यूरेशियनो का लगभग ७३ लाख रुपया है, हिन्दुस्तानियो का ढाई करोड रुपया है। हिन्दुस्तानियो को पेंशन में ६० लाख रुपया और यूरोपियनो को पेंशन में ३७ लाख पौंड (साढे पाँच करोड रुपया) मिलता है। इस कारण हिन्दुस्तान का करोडो रुपया प्रतिवर्ष ब्रिटेन को पेंशन और वेतन के रूप में खिचा चला जा रहा है।[2] अत. हिन्दुस्तान गरीब होता जा रहा है। "इस दयनीय दशा को सुधारने के लिए जरूरी है कि प्रशासन में बहुत ही खर्चीली विदेशी एजेन्सी के स्थान पर अपेक्षाकृत अधिक सस्ती देशी योग्यता और श्रम का प्रयोग किया जाय।"[3]

उन्होने कहा कि अपने देश में नौकरी करने की क्षमता सिद्ध करने के निमित्त परीक्षा देने के लिए देश के बच्चो को हजारो मील जाने को बाध्य करना "सरासर अन्याय" है। कही भी कोई दूसरे लोग इस "भयंकर असुविधा" से आक्रान्त नही है। फिर हमी इसके लिए क्यो विवश किये जायें, क्योकि हम

---

१. वही, पृ० ४८६। २ वही, पृ० ४८७-४८८।
३ वही, पृ० ४९०।

इंग्लैंड जैसी बडी शक्ति की प्रजा हैं ?[1] उन्होने कहा कि सच बात तो यह है कि जो लोग हमारे देश में नौकरी करना चाहते हैं, वे यहाँ आकर परीक्षा में बैठकर अपनी योग्यता सिद्ध करें। पर यदि सरकार ऐसा नियम बनाने को तैयार न हो, तो उसे इंग्लैंड के साथ-साथ भारत में भी सिविल सर्विस में भरती के लिए प्रतियोगिता परीक्षा का प्रबन्ध करना ही चाहिये। अन्त में मालवीयजी ने कहा कि "भारतीयो का दावा न्याय पर आश्रित है। वे न्याय के प्रार्थी हैं, अनुग्रह के नही।"[2]

विधान सभा

काग्रेस के अधिकाश प्रस्तावो के प्रति सरकार उपेक्षित रही। पर उसने सन् १८८६ में, सम्भवतः कांग्रेस के प्रस्ताव को ध्यान में रखते हुए, 'युक्त प्रान्त' में, जो इस समय 'उत्तर प्रदेश' के नाम से प्रसिद्ध है और उस समय आगरा और अवध के सयुक्त प्रान्तो के नाम से विख्यात था, विधान कौंसिल की व्यवस्था कर दी।

सन् १८९० मे चार्ल्स ब्रेडला ने ब्रिटिश पार्लियामेंट की कामन्स सभा में काग्रेस के सन् १८८९ के प्रस्ताव के आधार पर कौंसिलो की व्यवस्था के सम्बन्ध में एक विधेयक प्रस्तुत किया, पर ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की उपेक्षा के कारण वह पारित नही हो सका।

सन् १८९२ का कौंसिल अधिनियम

सन् १८९२ मे ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की संस्तुति पर ब्रिटिश पार्लियामेंट ने नया इण्डियन कौंसिल एक्ट पास किया। इस अधिनियम द्वारा कौंसिलो मे अतिरिक्त सदस्यो की संख्या बढा दी गयी, तथा गैरसरकारी सदस्यों में से लगभग आधे अप्रत्यक्ष निर्वाचन के आधार पर मनोनीत होने लगे। कौंसिल के सदस्यों को सार्वजनिक मामलो की जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रश्न पूछने का, तथा बजट पर अपने विचार प्रकट करते हुए प्रशासन का समालोचना करने का अधिकार प्राप्त हो गया। राष्ट्र की प्रगति मे इन कौंसिलो का योगदान सन्तोषप्रद नही था। सरकार निर्वाचित सदस्यो के विचारो की उपेक्षा करते हुए अपनी मनमानी करती थी। वास्तव में कौंसिलो के सरकारी सदस्य, जिनकी सख्या सर्वाधिक थी, इस तरह ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के आदेशों से बँधे हुए थे कि यदि वे सरकार की के किसी आदेश को भारत के हित के प्रतिकूल भी समझें, तब भी उन्हें उसका

१. वही, पृ० ४९१। २. वही, पृ० ४९२।

समर्थन करना होता था और उसके पक्ष में वोट देकर उसे कौंसिल से पास कराना होता था।

इन सब सम्भावनाओ को ध्यान मे रखकर काग्रेस ने सन् १८९३ में ही नये वैधानिक नियमो को दोषपूर्ण बताते हुए अनुरोध किया कि इन नियमो को अधिक उदार बनाया जाय, ताकि सन् १८९२ का इंडियन कौसिल एक्ट देश की जरूरतो को ठीक तौर पर पूरा कर सके। सन् १८९४ में इसी प्रकार के एक प्रस्ताव का समर्थन करते हुए मालवीयजी ने सस्तुति की कि जनता के प्रतिनिधियो की संख्या बढायी जाय, और प्रत्यक्ष चुनाव की पद्धति का विस्तार किया जाय। उन्होने दो तीन उदाहरण देकर बताया कि ब्रिटिश सरकार की गलत नीतियो का विरोध करके उनमे भारत के हितो की रक्षा जनता के प्रतिनिधि ही कर सकते है, और इसलिए उनकी संख्या और अधिकार बढाना आवश्यक है।[1]

सन् १८९७ में काग्रेस ने अपनो पुरानी माँगो को दुहराते हुए माँग की कि (१) कौंसिलो के गैर-सरकारी सदस्य अधिक प्रत्यक्ष रूप से जनता के प्रतिनिधि हो, और उन्हें बजट में संशोधन पेश करने का तथा मत देने का अधिकार हो, (२) केन्द्रीय तथा प्रान्तीय कौसिलो के निर्वाचित सदस्यो की सस्तुति पर प्रतिष्ठित और अनुभवी भारतीय पर्याप्त संख्या में भारतमन्त्री की कौंसिल के सदस्य नियुक्त किये जायें, (३) भारत की आर्थिक दशा की जाँच के लिए प्रतिवर्ष ब्रिटेन की कामन्स सभा के सदस्यो की एक निर्वाचित कमेटी गठित की जाय, (४) सैनिक तथा अन्य अनुत्पादक खर्चों में कमी की जाय, तथा जनता के कल्याण और उत्कर्ष के लिए अधिक धन व्यय किया जाय, (५) सार्वजनिक नौकरियो के उच्च पदो पर जहाँ तक सम्भव हो अंग्रेज कर्मचारियो के स्थान पर, अधिक बचत तथा अधिक सुयोग्य शासन की दृष्टि से, भारतीय कर्मचारियो की नियुक्तियाँ की जायें, तथा (६) सीमा के परे के युद्धो के व्यय का अधिकाश ब्रिटिश राजकोष वहन करे।[2]

इस प्रस्ताव को प्रस्तुत करते हुए मालवीयजी ने निराशाजनक स्थिति का विस्तार से विश्लेषण किया और कहा कि भारतीय व्यय पर कन्ट्रोल बहुत ही 'दोषपूर्ण' है। जबकि टैक्सो और कर्जे का बोझ बढता चला जाता है, जनता की आमदनी नही बढ रही है, देशहित की दृष्टि से सरकार की आर्थिक नीतियो पर नियंत्रण नितान्त आवश्यक है। उन्होने प्रस्ताव के विभिन्न अंगो के औचित्य की व्याख्या

१ वही, पृ० ३२-३३। २. वही, पृ० २६४-२६५।

करते हुए आशा व्यक्त की कि यदि सरकार काग्रेस के इन सुझावो को स्वीकार करते हुए महारानी विक्टोरिया की घोषणा मे निहित उद्देश्यो और नीतियो का अनुसरण करेगी तो शासक और प्रजा मे सौहार्द की वृद्धि होगी, तथा अविश्वास और नैराश्य की भावनाए, जो इस समय सरकार और शिक्षित भारतीयो को परेशान कर रही है, दूर हो जायेंगी।[१]

सन् १९०४ मे काग्रेस ने अपनी कतिपय सवैधानिक मांगो को अर्थात् केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान कौंसिलो के विस्तार तथा भारतमन्त्री की कौंसिल मे भारतीय प्रतिनिधियो की नियुक्ति से सबधित मांगो को दुहराते हुए यह भी माँग की कि प्रत्येक प्रान्त और प्रदेश को ब्रिटेन की कामन्स सभा के लिए दो सदस्य चुनने का अधिकार दिया जाय, और केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान कौंसिलो के निर्वाचित सदस्यो द्वारा मनोनीत भारतीय प्रतिनिधि केन्द्रीय तथा बम्बई और मद्रास की एक्जीक्यूटिव कौंसिल के सदस्य नियुक्त किये जायें।

इस प्रस्ताव का समर्थन करते हुए मालवीयजी ने कहा कि ब्रिटेन की कामन्स सभा के सदस्यो को भारत की समस्याओ पर विचार करने का समय ही नही मिलता, और इसलिए शासन को भारत-हितकारी बनाने के लिए कामन्स सभा में कतिपय योग्य और अनुभवी भारतीय प्रतिनिधियो का सहयोग अवश्य लाभदायक सिद्ध होगा।[२]

उन्होने कहा कि हम मौजूदा विधान कौंसिलो को खिलवाड नही समझते। उन्होने अच्छा काम किया है, वे सफल सिद्ध हुई है। निर्वाचित सदस्यो ने अपनी क्षमता सिद्ध कर दी है।[3] पर यदि इन कौंसिलो का कुछ विस्तार हो जाय और इनके अधिकारो में कुछ वृद्धि कर दी जाय तो वे अधिक लाभदायक हो सकती है। उन्होने कहा कि काग्रेस कोई "क्रान्तिकारी परिवर्तन नही चाहती," वह तो केवल यह चाहती है कि सन्देह की भावना के बजाय उदार विश्वास की भावना से काम किया जाय और रगभेद को भुलाकर महारानी विक्टोरिया द्वारा प्रतिपादित "सिद्धान्तो पर अमल किया जाय।"[४] उन्होंने अन्त में कहा कि यदि ऐसा किया गया तो "हमारी सब शिकायतें खत्म हो जायेंगी", और जिन सुधारो के लिए हम प्रार्थना कर रहे हैं वे हमें शीघ्र प्रदान कर दिये जायेंगे।[५]

---

१ वही, पृ० २६६-२८२। २ वही, पृ० ४२-४३।
३. वही, पृ ४५। ४. वही, पृ० ४९।
५ वही, पृ० ५२।

इस तरह मालवीयजी तथा दूसरे काग्रेसी नेता सरकार की निरंकुशता को कम करके निरंकुश शासन के स्थान पर धीरे-धीरे प्रतिनिधि शासन प्रतिष्ठित करना चाहते थे। वे अनुत्पादक कार्यों मे व्यय को घटाकर, सरकारी खर्च पर जनता के प्रतिनिधियो का समुचित नियंत्रण स्थापित करके राजकोप को अधिक से अधिक जनहितकारी कामो में लगाना चाहते थे। वे रंगभेद, असन्तोष, अविश्वास और वैमनस्य की भावनाओ के स्थान पर पारस्परिक सहयोग और विश्वास की भावनाओं को प्रोत्साहित करना चाहते थे।

पर गवर्नर-जनरल लार्ड लैंसडाउन, लार्ड एलगिन और लार्ड कर्जन और उनके सहयोगियो को काग्रेस की यह नीति पसन्द नहीं थी। उन्होने अपने अधिकार-काल में विश्वास तथा सद्भावना को बढाने के बजाय अपनी नीतिरीति से अविश्वास और कटुता की वृद्धि की। लार्ड कर्जन ने शिक्षित समाज के प्रति खुला वैमनस्य प्रकट किया, तथा हिन्दुस्तानियो पर चरित्रहीनता का दोपारोपण किया। उन्होने राजनीतिक अपराधो के लिए दण्डविधान अधिक कडा कर दिया, तथा सिविल मामलो में भी सरकारी बातो को प्रकट करने पर आफि-शियल सीक्रेट एक्ट (राजकीय रहस्य अधिनियम) लागू कर दिया। उन्होने सरकारी कर्मचारियो के अधिकार अधिक विस्तृत कर दिये, तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय की सीनेट में हिन्दुस्तानियो की संख्या घटा कर सरकारी अफसरो की प्रधानता कर दी। उन्होने स्थानीय स्वायत्त सस्थाओ पर भी सरकारी नियन्त्रण अधिक कडा कर दिया, कलकत्ता कारपोरेशन में गैरसरकारी सदस्यो की संख्या घटाकर सरकारी अफसरो की संख्या बढा दी। उन्होने ऊँचे पदो के लिए रगभेद को अधिक स्पष्ट कर दिया। अन्त मे बंगाल को दो हिस्सो में बाँट कर उन्होंने अपनी निरंकुशता तथा अन्याय का सबसे बडा सबूत दिया।

बंगभंग

सन् १९०३ में सर हर्बर्ट रिसले ने घोषित किया कि सरकार बंगाल को दो भागो मे बाँट देना चाहती है। इस घोषणा का सब वर्गों और सम्प्रदायो के हिन्दुस्तानियो ने कडा विरोध किया। इस पर लार्ड कर्जन ने अपनी योजना को साम्प्रदायिक रग में रग दिया। उन्होने पूर्वी बगाल के मुसलमानो से कहा कि वे बंगभंग द्वारा शासन का बोझ ही हलका नही करना चाहते, बल्कि एक ऐसे प्रान्त का निर्माण भी करना चाहते हैं जहाँ मुसलमान बहुसंख्यक हो। लार्ड कर्जन की यह चाल किसी हद तक सफल हुई। बहुत से वे मुसलमान जो पहले विभाजन का विरोध करते थे अब इसका समर्थन करने लगे। १९ जुलाई

सन् १९०४ को वगभंग पर सरकारी प्रस्ताव प्रकाशित किया गया, और १० सितम्बर को भारत-मन्त्री की स्वीकृति से घोपित किया गया कि १६ अक्टूबर सन् १९०४ को वंगाल प्रान्त दो प्रान्तो में विभाजित कर दिया जायगा। यह विभाजन इस तरह किया गया कि वगला भापा-भापी क्षेत्र दो भागो में वँट गया।

वंगभंग का विरोध

वंगाल की जनता के साथ-साथ कॉंग्रेस भी वगभग की योजना के विरुद्ध थी। सन् १९०३ और सन् १९०४ में कॉंग्रेस ने अपने वार्पिक अधिवेशनो में इसका कड़ा विरोध किया। लार्ड कर्जन ने यह कहकर कि कांग्रेस उत्तेजना फैलाती है, उसके डेपुटेशन से मिलने से इनकार कर दिया। सन् १९०५ में कांग्रेस की ओर से श्री गोपाल कृष्ण गोखले और लाला लाजपत राय इंग्लैंड गये। पर वहां पर भी उन्हें कोई विशेप सफलता नही मिली। कजरवेटिव पार्टी और लिवरल पार्टी ने वगाल की परेशानियो पर कोई ध्यान नही दिया।

वगभंग ने वंगाल की जनता को विह्वल कर दिया। उसने इसके विरोध में दो वर्पो के अन्दर (दिसम्वर १९०३—अक्टूवर १९०५) लगभग २,००० सभाए की, वहुत-सी प्रमुख सार्वजनिक सस्थाओ ने मेमोरियल पेश किये। जुलाई १९०५ को पूर्वी वंगाल के लोगो ने ७०,००० हस्ताक्षरो से भारत सरकार को प्रार्थनापत्र भेजा। करीव-करीव सभी प्रमुख समाचार पत्रो, राजनीतिज्ञो तथा संभ्रान्त व्यक्तियो ने किसी-न-किसी रूप में क्षोभ प्रकट किया। समाचार पत्रो की आलोचना वहुत कडी थी, नवयुवको की उद्विग्नता का ठिकाना ही नही था।

वगभंग ने अंग्रेजो की तथाकथित न्यायप्रियता का भंडा फोड दिया। नवयुवको को सिद्ध कर दिया कि ब्रिटिश साम्राज्यशाही से न्याय की आशा वेकार है, तर्क और विनय के वजाय शक्ति का शक्ति से मुकावला करना होगा। इसी समय यूथोपिया ने इटली को और जापान ने रूस को पराजित किया। इन विजयो ने एशिया में नये विश्वास का संचार किया, और नवयुवको की भावनाओ को अधिक तीव्र वना दिया। पुराने कांग्रेसी नेताओ का सवैधानिकता की नीतिरीति का समर्थन करना उनके लिए असम्भव हो गया। कुछ नवयुवकों ने अराजकता के हिंसात्मक मार्ग का अनुसरण ठीक समझा। कुछ का वहिष्कार और सविनय प्रतिरोध का मार्ग ठीक जँचा।

कांग्रेस गरमदल और नरमदल, दो भागो में विभाजित हो गयी। गरमदल के नेताओ ने 'स्वराज्य' को अपना ध्येय उद्घोषित किया, तथा जनजागृति, जनान्दोलन और जनसंगठन के साथ साथ राष्ट्रीय शिक्षा, स्वदेशी, बहिष्कार तथा सविनय प्रतिरोध (पैसिव रजिस्टेन्स) पर जोर दिया। उनका विश्वास था कि कोई बाहरी शक्ति जनता के सहयोग के बिना जनता पर शासन नही कर सकती। जनता सरकार का बहिष्कार कर अपने ध्येय की सिद्धि कर सकती है। कांग्रेस का पुराना नेतृत्व स्वदेशी का सिद्धान्त स्वीकार करता था, पर बहिष्कार और सविनय प्रतिरोध के बजाय पुराने संवैधानिक ढंग पर चलना ही उचित समझता था। पुराने नेताओ को राष्ट्रीय शिक्षा की बात भी अव्यावहारिक दिखायी देती थी। वे उत्तरदायी शासन की अपनी मांग को भी 'स्वराज्य' शब्द से सम्बोधित करने को तैयार नही थे।

बनारस अधिवेशन और गोखले

दिसम्बर सन् १९०५ में बनारस में गोपाल कृष्ण गोखले की अध्यक्षता में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन सम्पन्न हुआ। उसकी विषय समिति में इतना मतभेद प्रकट हुआ कि कांग्रेस टूटती नजर आयी। पर अन्त में समझौता हो गया। बंगाल के प्रतिनिधियो को इस बात पर राजी कर लिया गया कि जब युवराज और युवराज्ञी के स्वागत का प्रस्ताव पेश होने लगे तो बंगाल के प्रतिनिधि खुले अधिवेशन मे न जायें, और नरम दल के प्रतिनिधियो को राजी किया गया कि वे गरम दल वालो के बहिष्कार को किसी अंश में स्वीकार कर लें।[1] दमन के विरोध में जो प्रस्ताव विषय समिति में तैयार किया गया उसमें यह बात जोड दी गयी कि 'जनता के तीव्र विरोध और अपील की उपेक्षा करके बगभंग के निर्णय में भारत सरकार ने जो आग्रह किया उस काम की ओर ब्रिटिश जनता का ध्यान आकृष्ट करने के लिए विदेशी माल का बहिष्कार ही संभवत. बंगाल की जनता के पास एकमात्र संवैधानिक और कार्यसाधक उपाय रह गया था'। इस समझौते मे मालवीयजी और लाला लाजपत राय का बहुत बड़ा हाथ था। कांग्रेस के मन्त्रिमण्डल ने सन् १९०५ के अधिवेशन की रिपोर्ट में स्वीकार किया है कि मालवीयजी ने विषय समिति में स्वदेशी और बहिष्कार के तात्त्विक भेद का स्पष्टीकरण करके तथा स्वदेशी की व्यापकता तथा बंगाल को स्थिति में बहिष्कार की आवश्यकता प्रतिपादित करके इन प्रश्नो पर विषय समिति में मतैक्य कराने में बड़ा योगदान किया।

---

१. लाजपतराय यग इडिया, पृ० १६९-१७०।

दमन के विरोध में प्रस्ताव उपस्थित करते हुए मालवीयजी ने काफी विस्तार के साथ बताया कि संवैधानिक सरकार में अपनी कठिनाइयो को सरकार के समक्ष पेश करने के लिए जो कुछ किया जा सकता था, वह सब बंगाल की जनता ने किया। उन्होंने एक आवेदनपत्र पार्लियामेंट को भी भेजा, जिस पर विचार भी हुआ, पर उसका भी कोई फल नही निकला। जबकि जनता बहुत विह्वल थी और उसकी बात पर कोई ध्यान नही दिया जा रहा था, तब भी उसने शान्ति बनाये रखी, कोई आपत्तिजनक काम नही किया। यह एक बडी बात थी। इस पर भी बंगाल की जनता को दोषी ठहराना, उसकी बात न सुनना, उसकी परेशानियो पर ध्यान न देना उसके साथ 'घोर अन्याय' है। इस अन्याय का विरोध करना सारे देश का कर्तव्य है। बंगाल की मुसीबत के प्रति उदासीन रहना अनुचित होगा।[1]

मालवीयजी ने स्वीकार किया कि अग्रेजो और हिन्दुस्तानियो में निरर्थक तनाव पैदा करना कोई अच्छी बात नही है।[2] यदि सरकार चाहती है कि 'बाइकाट' के कारण जो तनाव की भावना पैदा हो गयी है वह दूर हो, तो इसका उपाय उसके पास है। वह बगाल का विभाजन खत्म करे। बंगभंग के खत्म होते ही बाईकाट भी आपसे आप खत्म हो जायगा। उन्होने कहा कि बाइकाट और स्वदेशी में मौलिक तात्त्विक भेद हैं। स्वदेशी आन्दोलन बहुत पुराना है, लगभग तीस वर्ष से चल रहा है और आगे भी चलता रहेगा। पर बाइकाट उस समय खत्म हो जायगा जब कि वह बात दूर हो जायगी जिसके कारण वह आरम्भ किया गया है। अगर वह जारी रहता है तो इसका उत्तरदायित्व जनता पर नही, उन अधिकारियो पर है जिन्होने उस स्थिति को पैदा किया है जिसके कारण उसे बंगाल में बाइकाट शुरू करना पडा। मालवीयजी ने कहा कि काग्रेस बाइकाट को देशव्यापी बनाना नही चाहती, पर जिन परिस्थितियो में वह बंगाल में प्रारम्भ किया गया, उसे ध्यान में रखते हुए वह बगाल के बाइकाट आन्दोलन को अनिवार्य समझती है, और सरकार ने जो दमनचक्र चला रखा है उसका विरोध करती है।[3] प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार हो गया।

सन् १९०६ में स्थिति ने अधिक भयकर रूप धारण कर लिया। पूर्वी बंगाल की सरकार ने दमन को तेज कर दिया। उसने 'वन्देमातरम्' के नारे को भी गैर-कानूनी घोषित करते हुए बारिसाल में बंगाल प्रान्तीय कान्फ्रेन्स को भग कर

---

१. अनरेबिल पंडित मदनमोहन मालवीय : लाइफ एण्ड स्पीचेज, पृ० ५३३-५३५।

२. वही, पृ० ५३५।

३. वही, पृ० ५३९-५४०।

दिया, और बंगभंग की विरोधी हिन्दू जनता पर, विशेषत नवयुवको पर अत्याचार शुरू कर दिये। कुछ उत्तेजित नवयुवको ने आतंक का उत्तर आतंक से देने का इरादा किया।

लार्ड मार्ले से राजनीतिक सुधारो की घोषणा द्वारा असन्तोष को शान्त करने की आशा की जा सकती थी, पर उन्होने अगस्त सन् १९०६ मे जो प्रारूप प्रकाशित किया, वह बहुत ही निराशाजनक था। परिस्थिति को शान्त करने के बजाय वाइसराय मिंटो ने उसे गहरे साम्प्रदायिक रंग में रगकर अधिक गम्भीर बना दिया। उन्होने मुसलमानो के शिष्ट-मडल को आश्वासन दिया कि भावी सुधार योजना में उनके राजनीतिक महत्त्व को ध्यान में रखा जायगा। इसके बाद उन्होने मुसलमानो के लिए पृथक् निर्वाचन पद्धति और सुरक्षित स्थानो की योजना बनानी शुरू कर दी।

इस तरह लार्ड कर्जन की प्रतिक्रियावादी नीति और पूर्वी बंगाल की सरकार के दमन तथा लार्ड मार्ले की सकीर्णता और लार्ड मिंटो के कुचक्र ने विषम स्थिति पैदा कर दी। वैमनस्य, दमन और विद्रोह के वातावरण में सद्भावना काफूर होने लगी।

काग्रेस का कलकत्ता अधिवेशन

काग्रेस का अध्यक्ष कौन हो, इसके सम्बन्ध में स्वागत समिति तथा काग्रेस के कार्यकर्ताओ में भारी विवाद खड़ा हो गया। गरमदलीय नवयुवक चाहते थे कि लोकमान्य तिलक को अध्यक्ष बनाया जाय। काग्रेस का पुराना नेतृत्व इसके लिए तैयार नही था। इस विषम परिस्थिति में सर्वश्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और भूपेन्द्रनाथ वसु ने सोचा कि दादाभाई नौरोजी को अध्यक्षता के लिए निमंत्रित किया जाय। ८१ वर्ष की आयु में वे इस भार को वहन करने को तैयार हो गये। इस पर तिलक ने अपना नाम वापस ले लिया।

दादा भाई नौरोजी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में 'स्वराज्य' को भारत का राजनीतिक लक्ष्य घोषित करते हुए कहा कि हम अपने देश में ब्रिटेन और स्वशासित उपनिवेशो की तरह का स्वायत्त शासन चाहते है। उन्होने कहा कि जिस तरह ब्रिटेन और उपनिवेशो में करारोपण (टेक्सेशन), विधि निर्माण (लेजिस्लेशन) तथा करो को खर्च करने की सब शक्ति जनता के प्रतिनिधियो के हाथ मे है, उसी तरह वह हिन्दुस्तान में भी होनी चाहिये। उन्होने आशा व्यक्त की कि ब्रिटिश सरकार 'हिन्दुस्तान के लिए स्वायत्तशासन की नीति अपनायेगी तथा इस लक्ष्य की ओर बढने की फौरन शुरूआत की जायगी। उन्होने बाइकाट के प्रश्न

पर चुप रहते हुए स्वदेशी का समर्थन किया, जनजागृति और जनान्दोलन की आवश्यकता पर जोर दिया, और बंगला भाषा-भाषी क्षेत्रों को एक प्रान्त में गठित करने की मांग की। अन्त में उन्होंने सार्वजनिक कार्यकर्ताओं से अनुरोध किया कि वे संगठित रहकर स्वायत्तशासन प्राप्त करें, ताकि दसों लाख जो इस समय गरीबी, अकाल, और प्लेग से मर रहे हैं, और करोड़ों जो अपर्याप्त जीविका से भूखों मर रहे हैं, उनकी रक्षा की जा सके और हिन्दुस्तान फिर एक बार संसार के बड़े और सुसंस्कृत देशों में अपना पुराना स्थान प्राप्त कर सके।

दादाभाई नौरोजी के प्रयत्न से दोनों दलों का तनाव बहुत हद तक शान्त हुआ। गरमदल के समर्थक चाहते थे कि (१) स्वदेशी (२) बहिष्कार और (३) राष्ट्रीय शिक्षा पर कांग्रेस स्पष्ट रूप से प्रस्ताव स्वीकार करे। इन तीनों विषयों में से राष्ट्रीय शिक्षा का प्रस्ताव बिना किसी कठिनाई के स्वीकार हो गया। पर स्वदेशी तथा बहिष्कार के प्रश्न पर विरोध का तूफान खड़ा हो गया। अन्त में निश्चय हुआ कि ब्रिटिश उपनिवेशों को जो स्वायत्तशासन प्राप्त है, वही हिन्दुस्तान को मिलना चाहिये, और उसका श्रीगणेश कतिपय निश्चित सुधारों के रूप में होना चाहिये, जिन्हें तत्काल लागू किया जाय। दूसरे प्रस्ताव द्वारा यह निश्चय हुआ कि साहित्यिक, वैज्ञानिक तथा टेकनिकल (प्राविधिक) शिक्षा राष्ट्रीय नीति पर राष्ट्र की देखरेख में होनी चाहिये। स्वदेशी आन्दोलन का हार्दिक स्वागत करते हुए जनता से अनुरोध किया गया कि स्वदेशी की सफलता के लिए तत्परता से काम किया जाय, देशी उद्योगों की वृद्धि के लिए प्रयत्न किया जाय, और यदि कुछ त्याग भी करना पड़े तो भी विदेशी वस्तुओं की अपेक्षा स्वदेशी वस्तुओं को अपनाया जाय। यह भी निश्चय हुआ कि यह देखते हुए कि यहां की जनता का शासन में कोई हाथ नहीं है और उसके आवेदनपत्रों पर सरकार कोई ध्यान नहीं देती बंगाल का बहिष्कार आन्दोलन, जो विभाजन के विरोध में शुरू किया गया, न्यायसंगत था और है।

मालवीयजी ने, जो समझौते के पक्ष में थे और दादा भाई नौरोजी की धारणाओं से पूरी तौर पर सहमत थे, तथा जिन्होंने उन्हें समझौता कराने में सहायता की थी, कांग्रेस के खुले अधिवेशन में स्वदेशी आन्दोलन तथा बायकाट आन्दोलन से सम्बन्धित प्रस्तावों का समर्थन किया। उन्होंने इन प्रस्तावों पर बोलते हुए यह स्पष्ट किया कि बहिष्कार का प्रस्ताव केवल बंगाल और विदेशी वस्तुओं तक ही सीमित है, स्वदेशी का प्रस्ताव सारे देश के लिए है। उन्होंने कहा कि जनता की अभिवृद्धि के लिए स्वदेशी आन्दोलन सबसे अधिक महत्वपूर्ण

है, और उसके लिए सतत प्रयत्न करना निःसन्देह 'देशभक्ति' और 'मानवता' दोनो की माँग है। स्वदेशी, उन्होने कहा, देश की निर्धनता दूर करने का साधन है, और देश की जनता के प्रति हमारा "धार्मिक कर्तव्य" है।[१] वह निःसन्देह "मानवता का धर्म" है।[२] अकाल और प्लेग से होनेवाली असंख्य मौतो का मूल कारण जनता की निर्धनता और बेकारी है, और देश मे उद्योगो की वृद्धि उनका उपकरण है। चूकि इंगलिस्तान उस समय मुक्त व्यापार की नीति का अनुसरण कर रहा है, भारत सरकार के लिए भारत के उद्योगो को वित्तीय सरक्षण देना संभव नही है। ऐसी हालत में स्वदेशी आन्दोलन द्वारा उन्हें प्रोत्साहित करना आवश्यक है। उन्होने कहा . "त्याग का विचार प्रस्ताव को पवित्र करता है। वह तो वास्तव में स्वदेशी की धारणा में शामिल ही है।"[३] उन्होने धनवानो और शिक्षित नवयुवको से अपील की कि वे मिल कर देश में उद्योगो की वृद्धि के लिए प्रयत्न करें, और जनता से अनुरोध किया कि वह कुछ अधिक दाम देकर भी स्वदेशी वस्तु खरीदें। अंत में उन्होने कहा कि स्वदेशी के प्रश्न का राजनीतिक पक्षपात और द्वेष से कोई सम्बन्ध नही, इस जनहितकारी पवित्र काम मे तो जनता और सरकार दोनो की सहायता को मिला देना चाहिये।[४]

मुसलिम शिष्टमडल

१ अक्टूबर सन् १९०६ को अलीगढ कालेज के प्रिन्सिपल आर्चीबोल्ड के माध्यम और परामर्श से सर आगा खाँ के नेतृत्व में ३५ प्रतिष्ठित मुसलमानो का एक शिष्टमंडल वाइसराय से मिला और उसने उन्हें एक पत्रक पेश किया। इसमे मुसलमानो के ऐतिहासिक महत्त्व की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट करते हुए वाइसराय से प्रार्थना की गयी थी कि उनके हितो की विशेष रूप से रक्षा और पुष्टि की जाय, और वाइसराय को विश्वास दिलाया गया था कि 'मुसलमानो के हितो को आगे बढाकर सरकार राजभक्ति के बन्धन को सुदृढ करेगी, और उनकी राजनीतिक प्रगति और राष्ट्रीय अभिवृद्धि की बुनियाद डालेगी'। इस पत्रक में सरकार से माँग की गयी कि देश के विभिन्न राजनीतिक क्षेत्रो मे मुसलमानो को पोजीशन को निश्चित करते समय उस पोजीशन का भी ध्यान रखा जायगा जो सौ वर्ष से कुछ पहले उन्हे हिन्दुस्तान में प्राप्त थी, और देश की सुरक्षा में इस समय जो उनका योगदान है, वह भी याद रखा जायगा।

शिष्टमण्डल चाहता था कि प्रतिनिधि कौंसिलों में मुसलमानो का प्रतिनिधित्व उनकी जनसख्या के अनुपात से अधिक हो। उनके प्रतिनिधियो की नियुक्तियाँ

१. वही, पृ० ५४९।
२. वही, पृ० ५४९।
३. वही, पृ० ५५०।
४. वही, पृ० ५५२।

नामजदगी के बजाय चुनाव द्वारा हो, तथा मुसलमान जमींदारों, वकीलों, व्यापारियों और दूसरी प्रतिनिधि संस्थाओं के मुसलमान सदस्यों आदि सम्भ्रान्त व्यक्तियों को मुसलमान सदस्यों को चुनने का अधिकार दिया जाय। शिष्टमण्डल ने यह भी मांग की कि सरकारी लोक सेवाओं में भी मुसलमानों को अधिक स्थान देने की व्यवस्था की जाय। शिष्टमण्डल गवर्नर-जनरल की कार्य-परिषद में भी मुसलमानों के लिए एक स्थान चाहता था।

लार्ड मिंटो ने शिष्टमण्डल को विश्वास दिलाया कि वे उनके विचारों से 'पूरी तौर पर सहमत हैं, और स्वीकार करते हैं कि हिन्दुस्तान में उस निर्वाचन प्रतिनिधित्व को अनिष्टकर विफलता का सामना करना पड़ेगा जो इस महाद्वीप से सम्बन्धित सम्प्रदायों के विश्वासों और परम्पराओं की उपेक्षा करते हुए व्यक्तिगत मताधिकार देने की चेष्टा करें।' इस तरह लार्ड मिंटो ने साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की आवश्यकता और औचित्य को स्वीकार करते हुए केन्द्रीय और प्रान्तीय कौंसिलों में तथा म्युनिसिपैलटियों और जिला बोर्डों में मुसलमानों के लिए पृथक् साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करने का उन्हें काफी स्पष्ट शब्दों में आश्वासन दिया। लेडी मिंटो वाइसराय की युक्ति से बहुत प्रसन्न थीं। उनकी धारणा थी कि इस तरकीब से मुसलमानों को राजद्रोह के कुमार्ग से बचा लिया गया है।

मुस्लिम लीग

इसके बाद ३० दिसम्बर सन् १९०६ को एक मुसलिम कन्वेंशन आयोजित हुआ, जिसने आगा खां साहब की स्थायी अध्यक्षता और नेतृत्व में मुसलिम लीग स्थापित करने का निर्णय किया। इसके निम्नलिखित उद्देश्य निश्चित हुए—(१) हिन्दुस्तान के मुसलमानों में ब्रिटिश राज्य के प्रति राजभक्ति के भाव को बढ़ाना, (२) ब्रिटिश सरकार द्वारा बनाये गये किसी कानून के सम्बन्ध में किसी प्रकार की गलतफहमी फैल जाय तो उसे दूर करना, (३) हिन्दुस्तान के मुसलमानों के राजनीतिक तथा अन्य अधिकारों की रक्षा करना, तथा सौम्य भाषा में उनकी मांगों और आकांक्षाओं को ब्रिटिश सरकार के सामने पेश करना, तथा (४) नं० १ या नं० ३ में जो उद्देश्य बताये गये हैं उनको किसी तरह हानि न करते हुए मुसलमानों में दूसरे सम्प्रदायों के प्रति द्वेष की भावना को रोकना।

५. दमन, विघटन, सुधार

जनजागृति

गरम दल की नीति नवयुवको को अधिक रुचिकर थी। इसके कारण पुराने नेताओ को काफी कठिनाइयों का सामना करना पडा। पर मालवीयजी ने इन सब की उपेक्षा करते हुए बहुत ही तितिक्षा के साथ अपना काम अपने विवेक और अन्त करण के अनुसार जारी रखा। भारत के सर्वोत्कृष्ट नेता दादाभाई नौरोजी की नीति का अनुसरण करते हुए उन्होंने कांग्रेस की नीतिरीति का स्पष्टीकरण तथा प्रसार किया, राष्ट्र की माँगो का समर्थन किया, एवं जनजागृति और जनान्दोलन को पुष्ट किया।

इन सब उद्देश्यो को पूरा करने के लिए मालवीयजी ने सन् १९०७ मे बसन्त पचमी के दिन 'अभ्युदय' के नाम से हिन्दी साप्ताहिक निकालना प्रारम्भ किया। दो वर्ष तक इस पत्र का सम्पादन उन्होने स्वय किया। अपने सम्पादकीय लेखो में उन्होने ऊपर लिखी सब बातो को पुष्ट करने के साथ साथ सनातन धर्म के कतिपय मूल सिद्धान्ता की जनहितकारी उदार व्याख्या की तथा देशभक्ति, देशसेवा, साम्प्रदायिक एकता, राष्ट्रीयता, स्वतत्रता, लोकतन्त्र, स्वदेशी, देशभक्ति पर आश्रित राजभक्ति आदि की व्याख्या करते हुए नवयुवको को प्रेरित किया कि वे इन सब को अपने जीवन में आत्मसात कर अपने जीवन को पवित्र और उत्कृष्ट बनायें, निःस्वार्थ भाव से राष्ट्र की ठोस सेवा करें, और भारत माता की कीर्ति की वृद्धि में योगदान करें।

राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न

मालवीयजी ने अपने लेखो मे एक ओर महारानी विक्टोरिया की घोषणा तथा अन्य उच्चाधिकारियो के वक्तव्यो की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट करते हुए आशा व्यक्त की कि वह जनता की अभिवृद्धि के लिए प्रयत्न करेगी तथा भारतीयो के स्वशासन के अधिकार स्वीकार करेगी, दूसरी ओर जनता को बताया कि अंग्रेज आसानी से अधिकार देनेवाले नही है। उसके लिए हमें प्रयत्न करना होगा। उसे प्राप्त करने के योग्य अपने को बनाना होगा।

उन्होने लिखा "जिस समय हम अपने को इस योग्य बना लेंगे कि इंग्लैड ; वे सब अधिकार हमको दे जो अंग्रेजो को प्राप्त है, उस समय इगलैड को हमें वे

सब अधिकार देते ही बनेगा। योग्य होने का यह अर्थ है कि न केवल हमको उन अधिकारों को काम में लाने की और उनसे देश के हित के कामों को करने की बुद्धि और योग्यता हो, अपितु यह भी कि हमारे हृदय में उनके पाने की ऐसी अभिलाषा हो कि उनको पाये बिना हम अपने को सुखी न मानें, और उनके पाने के लिए जितना सुख और स्वार्थ का त्याग करना जरूरी हो उसे करने को तैयार हो।"[1]

उनकी धारणा थी कि "किसी मनुष्य अथवा किसी जाति की तब तक उन्नति नहीं हो सकती, जब तक वह अपनी वर्तमान दशा से असन्तुष्ट होकर उसे सुधारने का यत्न न करे"[2], "प्रत्येक देश या जाति का अभ्युदय मूल रूप में उसकी प्रजा के आत्मपौरुष पर निर्भर है"[3], और "इस दृढ़ निश्चय से जब हम अच्छे कामों में उद्योग करेंगे, तब फिर हमारे दिन फिरेंगे और हमारे देश का वैभव और गौरव बढ़ेगा।"[4] वे चाहते थे कि हम अपने अधिकारों के लिए "मर्यादा के अनुसार आन्दोलन" करें[5], गवर्नमेंट और प्रजा इन दोनों की शक्तियों को जहाँ तक अनुकूल और नियुक्त कर सकें, करें[6], और "निष्कारण ऐसी बातें न करें जिनसे गवर्नमेंट और हमारा विरोध बढ़े"।[7]

सर्वांगीण उन्नति और एकता

उनकी राय में "देश और जाति का उद्धार करने के लिए, इसके सुख, सम्पत्ति और प्रतिष्ठा पाने के लिए सब प्रकार की उन्नति—धर्मसम्बन्धी, सामाजिक, व्यापार सम्बन्धी और राजनीतिक उन्नति—जरूरी है। ये सब एक-दूसरे की सहायक और एक-दूसरे की अंग हैं। सिर्फ एक प्रकार की उन्नति से हम उस स्थान पर नहीं पहुँच सकते, जहाँ हम पहुँचना चाहते हैं। इन सब प्रकारों की उन्नति के लिए एकता की जरूरत है। लेकिन राजनीतिक और व्यापार सम्बन्धी उन्नति के लिए तो हिन्दुस्तान की सब जातियों में परस्पर प्रीति और एका की बहुत ही जरूरत है। बिना इसके हमारा मनोरथ सिद्ध नहीं हो सकता। हम लोगों को इस बात को खूब विचार कर अपने-अपने विश्वासों में जमा लेना चाहिये"।[8]

हिन्दू-मुसलिम एकता

मालवीयजी का कहना था कि "हिन्दुस्तान में अब केवल हिन्दू ही नहीं बसते हैं। हिन्दुस्तान अब केवल हिन्दुओं का देश नहीं है। हिन्दुस्तान जैसे हिन्दुओं

---

१ मालवीयजी के लेख, सम्पादक-पद्मकान्त मालवीय, पृ० १५।
२ वही, पृ० १८।
३. वही, पृ० ६।
४. वही, पृ० १२।
५ वही, पृ० १५।
६ वही, पृ० ७।
७. वही, पृ० ७।
८ वही, पृ० २८।

का प्यारा जन्म-स्थान है, वैसा ही मुसलमानो का भी है। ये दोनो जातियाँ अब यहाँ बसती है और सदा बसी रहेगी। जितना इन दोनो मे परस्पर मेल और एकता बढेगी, उतनी ही देश की उन्नति करने में हमारी शक्ति बढेगी, और इनमे जितना ही वैर या विरोध या अनेकता रहेगी, उतना ही हम दुर्बल रहेगे। जब ये दोनो एकता के साथ उन्नति की कोशिश करेंगे, तभी देश की उन्नति होगी। इन दोनो जातियो मे और भारतवर्ष की सब जातियो—हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी—में सच्ची प्रीति और भाइयो जैसा स्नेह स्थापित करना हम सब का बडा कर्तव्य है। इससे देश का बहुत कल्याण होगा। जो हमारी उन्नति नही चाहते, वे हमको एक दूसरे से लडाने के लिए यत्न करते है और करेंगे। लेकिन यदि हमारे आपस में एक दूसरे के विचार और भाव शुद्ध रहें, तो हमारे किसी वैरी का हमको लडाने का यत्न सफल न होगा"।[1]

उन्होने लिखा "यह दु.ख की बात है कि हम लोगो में कुछ लोग ऐसे है जो एक जाति को दूसरी से लडाने का यत्न करते है। हमको इस बात को कहने में कुछ भी सकोच नही कि जो हिन्दू या मुसलमान ऐसा करता है, वह देश का शत्रु है। इतना ही नही, बल्कि वह अपनी विशेष जाति का भी शत्रु है। हम सबको उचित है कि सब एक दूसरे के चित्त को संताप पहुँचानेवाली बातो को भूल जावें, एक दूसरे का हित और सुख चाहे, और एक दूसरे के हित और सुख के यत्नो में सहायक हो"।[2]

धर्म और साम्प्रदायिक वैमनस्य

मालवीयजी के विचार में साम्प्रदायिक वैमनस्य का कारण धर्म के बजाय हमारी हठधर्मी है। उन्होने लिखा. "क्या धर्मों के भेद से हिन्दुओ, आर्यों, मुसलमानो, और ईसाइयो का आपस में झगडा करना कोई धर्म कहा जा सकता है? हिन्दू मूर्ति-पूजक है और आर्यसमाजी नही। इसलिए इन दोनो मे सदैव तनातनी रहे, यह कोई धर्म है? हिन्दू और मुसलमान के मत अलग अलग है, तो इस विचार से यदि कोई मुसलमान हिन्दुओ के सदैव विरुद्ध रहे, यहा तक कि गवर्नमेंट की दृष्टि में उनको बागी साबित करने का झूठा सच्चा प्रयत्न करें, तो क्या वे अपने धर्म में लगे हुए है? कदापि नही। यदि ऐसा करते है तो हिन्दू और आर्य अपने वेदो के, ईसाई इजील के, और मुसलमान अपने कुरानशरीफ के विरुद्ध चल रहे है। धर्म यह है कि प्राणी की प्राणी के साथ सहानुभूति हो। एक

---

१ वही, पृ० २४-२५। २. वही, पृ० २४।

दूसरे को अच्छी अवस्था में देखकर प्रसन्न हो, और गिरी हुई अवस्था में सहायता दें"।[1]

देशभक्ति

मालवीयजी एकता को देशभक्ति से परिपुष्ट तथा राष्ट्रीयता में परिपक्व करना चाहते थे। उनका कहना था कि 'गाढ़ देशभक्ति से एकता उत्पन्न होती है, एकता से राष्ट्रीयता का भाव और राष्ट्रीयता के भाव से देश की उन्नति होती है।"[2] उन्होंने बताया कि जिस तरह भगवद्भक्त वे होते हैं जो अपने समस्त कार्यों को भगवान् को अर्पण कर देते हैं और एकाग्र लगन से भगवान का ध्यान और उपासना करते हैं। सच्चे देशभक्त वे हैं, जो "जो कुछ करें सब कुछ देश के ही लिए हो, और देश के कार्य में प्रति क्षण तत्पर रहें, और एकाग्र लगन से देश के ही ध्यान और उपासना में लगे रहें।"[3]

वे देशानुराग को धर्म का महत्त्वपूर्ण अंग मानते थे। उनका कहना था कि "सच्चा तप यह है कि अपने भाइयों के ताप में तपा जाय, सच्चा यज्ञ यह है जिसमें अपने स्वार्थ की आहुति दी जाय। सच्चा दान यह है कि परमार्थ किया जाय, और सच्ची ईश्वर सेवा यह है कि उसके दुःखी जीवों को सहायता की जाय। परमात्मा सबके हृदय में व्यापक है। इसलिए हम जितने प्राणियों को प्रसन्न करें, उतने ही गुना ईश्वर को प्रसन्न करेंगे। यह सच्चा धर्म देशभक्ति द्वारा प्राप्त है। देश-भक्ति का संचार हमारे हृदय से स्वार्थ को निकाल कर फेंक देगा। हम अदूरदर्शी, स्वार्थी और खुशामदियों की तरह ऐसे काम कदापि न करेंगे जिनसे देशवासियों को हानि पहुंचे, बल्कि दूरदर्शी, परमार्थी, सत्यशील, और दृढ़ताप्रिय आत्माओं की भांति असंख्य कष्ट उठाते हुए वही करेंगे जिससे देश का भला हो, निर्धन धनवान्, निर्बल बलवान् और मूर्ख भी बुद्धिमान् हो जायें। प्रत्येक प्रकार के सामाजिक दुःख मिटें और दुर्भिक्ष आदि विपत्तियां दूर होकर लाखों बिलबिलाती हुई आत्माओं को सुख पहुंचे। देशभक्ति द्वारा इतने धर्मों का सम्पादन होता हुआ देखकर भी यदि कोई धर्म के आगे देशभक्ति को कुछ नहीं समझता, उस पुरुष को जान लीजिये कि वह धर्म के तत्त्व को नहीं पहचानता। वह 'धर्म' 'धर्म' शब्द गा रहा है, परन्तु यह नहीं जानता कि धर्म क्या वस्तु है।"[4]

१. वही, पृ० १०१।
२. वही, पृ० १००।
३. वही, पृ० १०८।
४. वही, पृ० १०१-१०४।

इस तरह मालवीयजी चाहते थे कि भारतवासी "स्वार्थ-भक्ति" छोडकर "देश-भक्ति" को अपनायें, जिसके आगे हम अपने को भूल जायें, देश की उन्नति में ही अपनी उन्नति समझें, देश के यश में अपना यश समझें, देश के जीवन में अपना जीवन समझें, और देश की मृत्यु में ही अपनी मृत्यु समझें।[१]

स्वदेशी

मालवीयजी स्वदेशी की भावना को देशभक्ति का महत्त्वपूर्ण अंग समझ कर उसका सचार आवश्यक समझते थे। उनकी धारणा थी कि "गहरा, गाढा, उत्कृष्ट, अन्य सब भावो को दवा देनेवाला अपने देश का प्रेम ही स्वदेशी का अर्थ है।"[२] स्वदेशी आन्दोलन की व्याख्या करते हुए उन्होने बताया कि उसका "मुख्य उद्देश्य देश की आर्थिक दशा को सुधारना है। देश की दशा तभी सुधर सकती है, जब देश में देशी चीजो का व्यापार बढे, और जो हमारे नित्य की आवश्यक चीजें है, वे यहा बनने लगें। हमारे देश में व्यवसाय और शिल्प अभी नवजात हैं। इनकी रक्षा और वृद्धि बडी सावधानी से करनी पडेगी। जिन देशो में स्वराज्य है, उन देशो मे इनकी रक्षा गवर्नमेंट कर लगाकर और रुपया देकर करती है। पर इस देश में इस सम्बन्ध मे गवर्नमेंट से बहुत आशा नही की जा सकती। इसलिए आत्मसहाय और स्वार्थ-त्याग से हमें इनकी रक्षा करनी पडेगी। सरकार कर नही लगायेगी तो हम अपने ऊपर स्वयं कर लगा सकते हैं। अर्थात् देशी चीज यदि महगी हो तो भी उसको अधिक दाम देकर ले सकते हैं।"[३]

सच्ची राजभक्ति

मालवीयजी के विचार में "सच्ची देशभक्ति ही राजभक्ति है।"[४] "प्रजाभक्ति ही सच्ची राजभक्ति है।"[५] उनके विचार में "समस्त राजभक्तो का यह कर्तव्य है कि राजभक्ति दिखलाने में देशभक्ति का सबसे पहले ध्यान रखें और राजा को उसी मार्ग पर लायें जिसमें उसके देश और प्रजा का भला हो।"[६] उनका कहना था कि "जो लोग किसी राजा की प्रजा को सुख पहुंचाने का प्रयत्न करते है, वे राज्य को सुख पहुंचाते है। जो देश की सामाजिक, साम्पत्तिक और प्राज्ञिक दशा को संभालने में लगे हुए है, वे राज्य के बल को बढा रहे हैं और राजा का मगल चाह रहे है, और जो इसके विरुद्ध प्रजा और

१. वही, पृ० १०८।
२. वही, पृ० ३०।
३ वही, पृ० ८५।
४. वही, पृ० १११।
५. वही, पृ० १११।
६. वही, पृ० १११।

देश को हानि पहुँचा कर राजभक्ति दर्शा रहे हैं, वे यथार्थ में राजा के साथ शत्रुता कर रहे हैं।"[1]

राजा का कर्त्तव्य

"प्रजा के सुख में राजा का सुख, प्रजा के दुःख में राजा का दुःख, प्रजा की उन्नति में राजा की उन्नति, और प्रजा की अवनति में राजा की अवनति है। राजा का यह प्रधान धर्म है कि वह देश के कल्याण का सदैव ध्यान रखे। जिस प्रकार एक कृषक अपने खेत से खर-पात को काट कर खेत के पौधों की रक्षा करता है, उसी प्रकार राजा का भी यह कर्त्तव्य है कि वह राज्य के दुःखदायक निमित्तों को दूर करके प्रजा की रक्षा करे।"[2]

राष्ट्रीयता

मालवीयजी ने अपने लेखों में राष्ट्रीयता के महत्त्व पर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखा है कि राष्ट्रीयता ही जापान, इंग्लैंड आदि देशों की उन्नति का मुख्य कारण है, और वही भारत का भी उद्धार कर सकती है।[3] उन्होंने लिखा : "राष्ट्रीयता उस भावना का नाम है जो देश के सम्पूर्ण निवासियों के हृदय में देश-हित की लालसा से व्याप रही हो, जिसके आगे अन्य भावों की श्रेणी नीची ही रहती हो।"[4] वे चाहते थे कि "देश ही समस्त देशवासियों के प्रेम और भक्ति का विषय" बन जाय, "मतभेद, वर्णभेद और जातिभेद के होते हुए भी राष्ट्रीयता का श्रेष्ठ भाव देशव्यापी" हो जाय, और इतना बढ़ जाय कि "उसके आगे अन्य भावों का दर्जा नीचा" लगे।[5]

स्वराज्य

अंग्रेजी साम्राज्य के भीतर ही स्वराज्य की उपलब्धि के प्रयत्नों की पुष्टि करते हुए मालवीयजी ने बताया कि "प्रजा के चुने प्रतिनिधियों द्वारा प्रजा की सम्मति से राज्य के प्रबन्ध का अधिकार" ही 'स्वराज्य' है,[6] और हम भारतीय "पूर्ण रूप से इसके योग्य हैं"। उन्होंने विभिन्न देशों और विद्वानों का प्रमाण देते हुए लिखा : "प्रजा के प्रतिनिधियों की सम्मति से शासन का क्रम सब सभ्य संसार में शासन का उत्तम क्रम समझा गया है।"[7] ब्रिटेन के

---

१. वही, पृ० १११।
२. वही, पृ० १११।
३. वही, पृ० १०४।
४. वही, पृ० ९९।
५. वही, पृ० ९९।
६. वही, पृ० ७८।
७. वही, पृ० ७८।

भूतपूर्व प्रधान-मन्त्री सर हैनरी कैंवल वेनमैंन ने स्वयं कहा है : कि "सुराज्य (अच्छा राज्य) उस राज्य के समान नही हो सकता जिसमें प्रजा स्वयं अपने ऊपर आप शासन करती है"।[१]

मालवीयजी ने लिखा कि जहाँ "एक जाति का दूसरी जाति पर आक्रमण या अधिकार" अनुचित है, वहाँ "न्याय और धर्म की वात यही है कि प्रत्येक देश और जाति के लोग अपने देश में स्वाधीन हो और अपने ऊपर स्वयं राज्य करें।"[२] अंग्रेज जाति, जो स्वयं स्वतन्त्रता की प्रेमी है, हिन्दुस्तान को सभ्यता के नाम पर सदा अपने अधीन नही रख सकती। उसका कर्त्तव्य है कि "वह हमको अपने देश का आप शासन करने के योग्य वनावे",[३] और यहाँ प्रतिनिधि शासन या स्वराज्य प्रतिष्ठित करे, क्योकि "जव तक यह नही होता, तब तक हिन्दुस्तान का वर्तमान दुर्दशा से उद्धार नही होगा।"[४]

मालवीयजी ने वताया कि स्वराज्य, जो "मानवजाति के लिए सवसे वडा वरदान है, सवसे वडी नियामत है",[५] वह केवल मनोरथ करने से नही मिलेगा, वरन् उसके लिए तपस्या करनी होगी।[६] इसके लिए हमें अपने में "शान्ति और सहयोग, धीरज और उत्साह, प्रज्ञा और पौरुष, तेज और सहनशीलता, प्रेम और स्वार्थत्याग, तथा इनके समान अनेक उत्तम गुणो का सग्रह करना होगा।"[७]

स्वराज्य की सिद्धि का साधन

उनके विचार में देशभक्ति ही स्वराज्य की सिद्धि का पहला और सबसे वडा साधन है।[८] वे चाहते थे कि देश में, जहाँ तक सम्भव हो प्राणी-प्राणी में, देश की भक्ति का भाव वढाया जाय।[९] वे यह भी चाहते थे कि "जहाँ तक हो सके, नगर-नगर, गाँव-गाँव लोगो को 'स्वराज्य' का अर्थ, उसकी आवश्यकता और उसकी महिमा समझायी जाय, जिससे उनके हृदय में उसको पाने की उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हो" तथा "प्रत्येक नगर और गाँव में सभाएँ स्थापित हो जो स्वराज्य पाने के लिए न्यायपूर्वक लगातार आन्दोलन करें"।[१०]

---

१. वही, पृ० ६४। २. वही, पृ० ६१।
३. वही, पृ० ६३। ४ वही, पृ० ६६।
५. वही, पृ० ७८। ६ वही, पृ० ७८।
७ वही, पृ० ७८। ८. वही, पृ० ७८।
९ वही, पृ० ७८। १०. वही, पृ० ७९।

इस तरह दादा भाई नौरोजी के सिद्धान्तों के अनुकूल मालवीयजी ने सन् १९०७ ई० में जनता में स्वराज्य, स्वदेशी, देशभक्ति, राष्ट्रीयता तथा पारस्परिक सौहार्द का प्रचार किया, तथा जनान्दोलन को प्रोत्साहित किया।

आक्रमणशील और उग्रवादी राष्ट्रीयता

सन् १९०७ में बंगाल और पंजाब में सरकार के दमन के कारण स्थिति बहुत गम्भीर हो गयी। आक्रमणशील राष्ट्रीयता ने आतंक का रूप धारण कर लिया, दमनकारी अफसरों की हत्या उसका एक ध्येय बन गया। आतंकवादियों ने बम बनाना, पिस्तौल आदि तैयार करना और इकट्ठा करना, तथा डकैतियों द्वारा धन इकट्ठा करना शुरू कर दिया।

दूसरी ओर बाइकाट के समर्थक उग्र राष्ट्रवादियों ने स्वदेशी और बाइकाट का काम जोर शोर से शुरू किया। उन्होंने बाइकाट को सफल बनाने के लिए विदेशी वस्तुओं का प्रयोग करनेवालों का जाति से बहिष्कार करना, विदेशी वस्तुओं को छीन कर जला डालना, तथा विदेशी चीनी से बनी मिठाइयों को और लिवरपूल के नमक को फेंक देना प्रारम्भ किया।

इन कामों का मुसलमानों से कोई सम्बन्ध नहीं था। न तो आतंकवादी और न बाइकाट के समर्थक उन्हें किसी प्रकार से परेशान करते थे। पर ४ मार्च सन् १९०७ को कोमिल्ला में ढाका के नवाब सलीमुल्ला का जुलूस निकला, और उसने साम्प्रदायिक दंगे का रूप धारण कर लिया। दंगे चार दिन तक होते रहे। कुछ दिन बाद जिला मैमन सिंह के जमालपुर में दंगे हुए। अंग्रेज अफसरों का कहना था कि इन दंगों का मूल कारण स्वदेशी आन्दोलन था। मुसलमानों को जबरदस्ती स्वदेशी वस्तुएं खरीदने पर मजबूर करना था, जबकि हिन्दू नेताओं का कहना था कि इन दंगों का स्वदेशी से कोई सम्बन्ध नहीं था। उनका कहना यह भी था कि मुसलमानों के उत्पातों का मूल कारण उनकी यह भावना थी कि सरकार उनकी उपेक्षा करेगी, किसी को उनके कारण दण्ड नहीं देगी।[1]

पंजाब में दमन

दूसरी ओर पंजाब सरकार ने पंजाब की राजनीतिक चेतना-'नयी हवा' को दबाने के लिए दमन का रास्ता पकड़ा। उसे भय हुआ कि पंजाब के कतिपय राजनीतिज्ञ १८५७ के विप्लव की स्वर्ण जयन्ती मनाना चाहते हैं। इस प्रयास को

१. आर. सी. मजूमदार : हिस्ट्री आफ फ्रीडम स्ट्रगल इन इंडिया, पृ० ११५-११९।

कुचलना सरकार ने अपना कर्तव्य समझा। चेनाव उपनिवेश योजना के नये नियमो से उत्तेजित किसानो को भी भयभीत करना उसने ठीक समझा। वह जो कुछ करना चाहती थी, उसे साधारण कानून द्वारा नही कर पाती थी। इसलिए पंजाब सरकार के अनुरोध पर भारत सरकार ने सन् १८१८ का बगाल रेगूलेशन नं० ३ पंजाब में चालू कर दिया। लाला लाजपत राय और सरदार अजीत सिंह चुपके से गिरफ्तार करके माण्डले जेल भेज दिये गये। कुछ अर्से के बाद दोनो छोड दिये गये। पर इस गिरफ्तारी ने उग्र राष्ट्रवादियो में लाला लाजपत राय की प्रतिष्ठा को काफी बढा दिया।

कांग्रेस मे तनाव

इन सब बातो का काग्रेस की राजनीति पर गहरा प्रभाव पडा। पुराने काग्रेसी नेताओ ने स्वदेशी और बाइकाट के आन्दोलन में खतरे की आशंका अनुभव की। वे उन्हें इतना समर्थन भी करना नही चाहते थे जितना सन् १९०६ के कलकत्ता अधिवेशन में उसे मिल चुका था। दूसरी ओर गरमदलीय राज-नीतिज्ञ इस मामले में पीछे हटने को तैयार नही थे। इस तनातनी के वातावरण में मालवीयजी और लाला लाजपत राय समझौते के पक्ष में थे। वे उसे राष्ट्र के हित में आवश्यक समझते थे। लालाजी ने तिलक महाराज से कह दिया था कि वे इस अवसर पर काग्रेस का अध्यक्ष बनना नही चाहते। तिलक महाराज भी इस आश्वासन पर कि राष्ट्रीय शिक्षा, स्वदेशी और बाइकाट पर सन् १९०६ के प्रस्ताव फिर स्वीकार होगे, और अध्यक्षीय भाषण मे इनकी कोई प्रतिकूल आलोचना नही होगी अपना अध्यक्ष सम्बन्धी प्रस्ताव वापस लेने को तैयार थे। पर कोई समझौता नही हो सका।

काग्रेस के अधिवेशन मे जैसे ही डाक्टर रासबिहारी घोष का नाम अध्यक्षता के लिए प्रस्तावित किया गया, दुंद मच गया। अधिवेशन दूसरे दिन के लिए स्थगित कर दिया गया। पर समझौता फिर भी नही हो पाया। दूसरे दिन २७ दिसम्बर को डाक्टर घोष का नाम सुरेन्द्रनाथ बनर्जी द्वारा प्रस्तावित और पडित मोती लाल नेहरू द्वारा समर्थित होने के बाद घोष साहब ने जैसे ही अध्यक्ष की कुर्सी संभालने की चेष्टा की, वैसे ही लोकमान्य तिलक ने एक संशोधन प्रस्तुत करते हुए विरोध में भाषण देना प्रारम्भ किया। स्वागताध्यक्ष ने उन्हें मना किया, पर उन्होने उनकी बात नही सुनी। पंडाल में हंगामा मच गया। उपद्रव होने लगा, और अधिवेशन खत्म कर दिया गया।

नेशनल कन्वेंशन

दूसरे दिन अर्थात् २८ दिसम्बर को नरम-दलीय नेताओ ने काग्रेस के उन प्रतिनिधियो का राष्ट्रीय सम्मेलन (नेशनल कन्वेशन) आयोजित किया जो इन तीन वातो को स्वीकार करने को तैयार हो—(१) उनकी राजनीतिक अभिलाषाओ का लक्ष्य भारत द्वारा ऐसा स्वायत्त शासन प्राप्त करना, तथा साम्राज्य के अधिकारों और उत्तरदायित्वो में समता के आधार पर भाग लेना है जैसा कि ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य स्वायत्तशासित सदस्यो को प्राप्त है ; (२) पूर्णरूप से सवैधानिक उपायो द्वारा मौजूदा शासन-व्यवस्था में सुधार कराना, तथा राष्ट्रीय एकता और सार्वजनिक भावना को पुष्ट करना, और जनता की दशा की उन्नति करना ही इस लक्ष्य की प्राप्ति का मार्ग होगा, (३) इन लक्ष्यो और उद्देश्यो की पूर्ति के लिए जो बैठकें या सभाएं आयोजित होगी, वे सुव्यवस्थित ढंग से उन लोगों के आदेशानुसार संचालित होगी जिन्हें उनके संचालन का अधिकार है।

काग्रेस के अधिकाश प्रतिनिधि पुराने नेतृत्व के निर्देशन में काग्रेस को बनाये रखना चाहते थे। वे इन शर्तों पर हस्ताक्षर करके राष्ट्रीय सम्मेलन में शामिल हो गये।

दूसरे दिन अर्थात् २९ दिसम्बर को अरविन्द घोप की अध्यक्षता में वामपक्षीय राष्ट्रवादियो की बैठक हुई। इसमें निश्चय हुआ कि नये दल के लक्ष्यो का जनता में प्रसार किया जाय। लोकमान्य तिलक के आग्रह पर अरविन्द की रजामन्दी से नरमदलीय नेताओ से बातचीत करने के लिए भी एक कमेटी गठित की गयी।

वंगाल के कतिपय नरमदलीय नेता काग्रेस में फूट को खत्म करने के पक्ष में थे। भूपेन्द्रनाथ वसु ने इस सम्बन्ध में फीरोजशाह मेहता को लिखा भी, पर वे गरमदलीय कार्यकर्ताओ को फिर से काग्रेस में शामिल करने को राजी नही हुए। दिसम्बर सन् १९०८ मे डाक्टर रासबिहारी घोष ने अपने अध्यक्षीय भाषण में घोषित किया कि 'हमारे मार्ग वहुत भिन्न है। बहुत बडी खाई हमें अलग करती है। हम उस समय तक जबतक कि वे अपनी नीति पर अडे रहते है, उन्हें साहचर्य (संसर्ग) का हाथ नही बढायेंगे, नही बढा सकते, और बढाने का साहस नही कर सकते।'

इस तनाव, अविश्वास और फूट के कारण काग्रेस की शक्ति काफी क्षीण हो गयी, और देश को वर्षों उग्र राष्ट्रवादी नेताओ और कार्यकर्ताओ की सेवाओ से वचित रहना पडा। सरकार ने फूट से लाभ उठाकर बहुत से गरमदलीय

राजनीतिज्ञो को बिना मुकदमे के नजरबन्द कर दिया। लोकमान्य तिलक पर राज-विद्रोह का अभियोग लगा कर उन्हें छः वर्ष की सजा दे दी। अरविन्द घोष भी षड्यन्त्र के अभियोग में फाँस लिये गये।

मालवीयजी का क्षोभ

इस फूट से अधिकाश कार्यकर्ता क्षुब्ध थे। पर मालवीयजी के लिए तो वह इतनी असह्य थी कि वे छयालीस वर्ष की आयु में पडाल में ही एक खंभे से लगे बहुत देर तक रोते रहे, और उनके ज्येष्ठ पुत्र रमाकान्तजी बहुत कठिनाई से उन्हें उनके निवासस्थान पर ले जा सके।

इस फूट के लिए मालवीयजी गरमदल को ही मुख्यतः उत्तरदायी ठहराते थे। उनका यह भी विचार था कि देश की राजनीतिक प्रगति के लिए कांग्रेस को बनाये रखना आवश्यक है। इसलिए उन्होने फीरोजशाह मेहता द्वारा आयोजित सभा में भाग लेना, और नवसंघटित काग्रेस में काम करते रहना उचित समझा। पर उनके और मेहता साहब के विचारो में बहुत अन्तर था। जबकि मेहता साहब काग्रेस पर पुराने नेतृत्व का प्रभुत्व बनाये रखना चाहते थे, मालवीयजी को इसकी कोई चिन्ता नही थी कि काग्रेस नरम दल के हाथ में जाती है या गरम दल के हाथ में, वे तो केवल यह चाहते थे कि भारतीय काँग्रेस दो भागो में विभाजित न होकर "देश भर की एक काँग्रेस होती हुई अपने मुख्य उद्देश्यो को पूरा करती रहे, और बाहरी दिखावट और बातो से बढकर कुछ असली कार्य करे।"[१] उनकी तो इच्छा थी कि सब मिलकर काम करें, काँग्रेस का एका बनाये रखें, "सदैव विचार-शक्ति, दूरदर्शिता, कार्यकुशलता और एकता से काम लें, उन लोगो का सत्कार करें जिन्होंने काँग्रेस के लिए कुछ किया है या कर रहे हैं, और उन लोगो में उत्साह उत्पन्न करें जो कुछ कर सकते है।"[२]

प्रान्तीय कान्फ्रेंस मे भाषण

सन् १९०८ में मालवीयजी अपने प्रान्त के द्वितीय सम्मेलन के अध्यक्ष चुने गये। उन्होने अपने अध्यक्षीय भाषण में देश की तथा अपने प्रान्त की दयनीय दशा का विश्लेषण करते हुए बताया कि पिछले पचास वर्षों में बाईस अकाल पड़े जिनमें दो करोड़ नब्बे लाख आदमियो की मृत्यु हुई, तथा पिछले ग्यारह वर्षों में पचपन लाख व्यक्ति प्लेग से मरे। उन्होने यह भी बताया कि जहाँ ब्रिटेन की मृत्यु-संख्या फी हजार सोलह है, वहाँ भारत की फी हजार पैंतीस

१. 'अभ्युदय', पौष कृष्ण ३०, सम्वत् १९६४। २. वही।

और इस प्रान्त की फी हजार चौवालिस है। उन्होने कहा कि जीवन की आवश्यक वस्तुओ का मूल्य वढता जा रहा है, पर बीस वर्ष से मजदूरी में कोई वढोतरी नही हुई है। उन्होनें कहा कि जनता की निर्धनता जनता के दु नो का मूल कारण है, तथा महँगी शासन-व्यवस्था, देशी कला तथा व्यवसाय की अवनति, तथा किसानो पर आपत्तिजनक अधिक लगान निर्धनता के मूल कारण है।[१]

देश की दशा तथा सरकार की नीति-रीति की समीक्षा करते हुए मालवीयजी ने कहा कि व्यापक असन्तोष के मूल कारण जनता की गरीवी और उसकी स्वाभाविक आकाक्षाओ की उपेक्षा ही है।[२] संसार में कोई ऐसा देश नही जो हिन्दुस्तान से अधिक गरीव हो और जहाँ प्रशासको का वेतन यहाँ से अधिक हो।[३] सैनिक और सिविल सेवाओ में ऊँचे पदो पर यूरोपीयनो की 'वास्तविक इजारादारी' के कारण हमें उन सेवाओ के लिए अधिक वेतन देना पडता है और प्रतिवर्ष देश का वहुतसा धन देश के वाहर खिचा चला जाता है।[४] यद्यपि सिद्धान्त में ऊँचे पदो पर भारतीयो की नियुक्ति का औचित्य स्वीकार कर लिया गया है, पर व्यवहार मे "बुरी तरह नियमित रूप" से उसकी उपेक्षा की जा रही है।[५] देश का शासन ठीक तौर से नही हो रहा है, और वह उस समय तक नही होता, जब तक भारतीयो को प्रवन्ध में समुचित भाग नही दिया जाता[६], और "स्वशासन की वडी मात्रा" उन्हे प्राप्त नही होती।[७] देश के प्रबन्ध में जनता के प्रतिनिधियो की कोई सुनवाई नही है, विधान कौंसिलो के अधिकार बहुत ही सीमित है, जनता के कल्याण में राजस्व का एक चौथाई से भी कम भाग खर्च किया जा रहा है। इस व्यवस्था में जनता की नैतिक और भौतिक उन्नति सम्भव नही है।[८] स्थिति के सुधार के लिए देश के ढाँचे में परिवर्तन नितान्त आवश्यक है। स्वशासन का अधिकार स्वीकार किया जाय, योग्य भारतीय शासन-परिपदो के सदस्य बनाये जायें, और साधारणत जनता के प्रतिनिधियो के मतानुकूल ही देश का शासन हो।[९]

"मनोनीत निर्देशिका कौंसिलें", उन्होंने कहा, विधान कौंसिलो के स्वाभाविक और समुचित विकास में बाधक होगी, रियासतो के राजाओ और नवाबो को

१. आनरेबिल मदन मोहन मालवीयः लाइफ एण्ड स्पीचेज, पृ० ७६-९१।
२. वही, पृ० ७५-७६।
३. वही, पृ० ८५।
४ वही, पृ० ८५-८६।
५. वही, पृ० ८७-८८।
६. वही, पृ० १००।
७. वही, पृ० १०१।
८. वही, पृ० १०३।
९. वही, पृ० १०४-१०८।

ब्रिटिश भारत के मामलो में हस्तक्षेप करने की व्यवस्था करना सर्वथा अनुचित है। व्यावसायिको व्यापारियो, औद्योगिको और मध्यवर्ग के प्रतिनिधियो से अधिक महत्त्वपूर्ण जमीदारो को नही समझा जा सकता। विधान कौंसिलो की उपस्थिति में सलाहकार कौंसिलो की नियुक्ति अर्थहीन है।[1] शासको की इच्छा पर आश्रित सलाहकार समितियो का गठन "प्रगति नही, बल्कि अधोगति है"[2], और इस विचार का परित्याग नितान्त आवश्यक है।

सरकार की यह शिकायत कि विधान कौसिलो में वकीलो की संख्या सबसे अधिक थी बेकार है। यदि वकीलो ने सार्वजनिक कामो में अधिक काम किया, तो इसमें शिकायत की कौन बात है? कौंसिलो में वकीलो ने सिद्ध कर दिया है कि "वे सब वर्गो के लोगों के हितो को बढाने के इच्छुक है।"[3] वकीलो ने जमीदारो के हित में मालगुजारी के स्थायी बन्दोबस्त का समर्थन किया, किसानो के हित में काश्तकारी की अवधि की स्थिरता की माँग की, गरीबो के हित में नमक-कर की छूट की अपील की। उन्होने गरीब मध्य वर्गीय जनता के हित मे आय-कर की निम्नतम सोमा को ५०० रुपये के बजाय १००० रुपये कर देने की माँग की, तथा सारी जनता के कल्याण की अभिवृद्धि का प्रयत्न किया। इस पर भी यदि सरकार उनसे नाराज है, तो उन्हे कौसिलो की सदस्यता से वचित किया जा सकता है, पर अपनी इच्छा के अनुसार अपना प्रतिनिधि चुनने की जनता को स्वतन्त्रता देनी ही होगी। सरकार द्वारा निश्चित मंडल के अन्दर से अपने प्रतिनिधि चुनने के लिए जनता को बाध्य नही किया जा सकता।[4] वकील तो केवल यह चाहते है कि "जनता के प्रतिनिधि वे हो जो अपनी बुद्धि, विद्या, अनुभव और स्वतन्त्र विवेक से कौसिलो में उपस्थित प्रश्नो पर सरकार द्वारा नियुक्त इंडियन सिविल सर्विस के अत्यधिक योग्य सदस्यो से विचार विमर्श कर सकें, और उनके सामने सार्वजनिक मत को व्यक्त कर सकें, उसका दृढतापूर्वक समर्थन कर सकें।[5] जमीदार, किसान, व्यापारी और व्यावसायिक—सबको प्रतिनिधि चुनने का अधिकार हो, पर किसी को अपने वर्ग के आदमी को चुनने के लिए बाध्य न किया जाय।[6]

मालवीयजी ने कहा कि हमारे लिए यह स्वीकार करना सम्भव नही कि भारत की विधान-सभाओ में सरकार द्वारा मनोनीत सदस्यो का अवश्य ही बहुमत होना चाहिये। काग्रेस ने इस सिद्धान्त का शुरू से विरोध किया है। काग्रेस

१ वही, पृ० ११४-११९।
२ वही, पृ० ११९।
३. वही, पृ० १२२।
४. वही, पृ० १२२।
५. वही, पृ० १२३।
६. वही, पृ० १२३।

तो चाहती है कि कौसिलो के कम से कम आधे सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित हो। सरकारी सदस्यो की संख्या एक चौथाई से अधिक न हो। कौसिलों का विस्तार किया जाय। प्रति दस लाख आबादी के लिए एक सदस्य की व्यवस्था हो, और कौसिल के अधिकारो का इस तरह विस्तार किया जाय कि निर्वाचित सदस्य सरकार की प्रशासनिक और वित्तीय नीति पर प्रभाव डाल सकें, तथा उन्हें जनहितकारी बना सकें।[1]

वित्तीय विकेन्द्रीकरण पर जोर देते हुए मालवीयजी ने कहा कि प्रान्तीय सरकारें "अर्धस्वतन्त्र" बनायी जायें, उन्हे राजस्व को जमा करने और खर्च करने की आजादी हो, प्रान्तीय सरकारो के कामो पर जनता के प्रतिनिधियो का कंट्रोल हो, और उसके लिए प्रान्तीय विधान कौसिलो के आकार और अधिकारो का विस्तार किया जाय, तथा प्रान्तो की शासन परिषदो में भारतीय सदस्य नियुक्त किये जाये।[2]

अन्त में मालवीय जी ने काग्रेस के कार्यकर्ताओ से अपील की कि वे स्वदेशी का प्रचार करें, राजनीतिक सुधारो के लिए जनमत तैयार करें, जनता में राजनीतिक चेतना पुष्ट करें, खेती और उद्योगो की उन्नति के लिए प्रयत्न करे, तथा विवादो के निबटारे के लिए पचायतें कायम करे, शिक्षा के विस्तार के लिए स्कूल खोलने का प्रयत्न करें, सहकारी आन्दोलन को प्रोत्साहित करें, तथा स्वास्थ्य, शारीरिक उन्नति और सार्वजनिक सफाई को बढाने का ध्यान रखें। उन्होने कहा · "लोगो का वास्तविक आनन्द, जिसे हम सब बढाना चाहते है, केवल भौतिक लाभो से प्राप्त नही हो सकता, और वे सब भौतिक लाभ जो प्राप्त करने योग्य है मानव के प्रति मानव के उन शाश्वत कर्तव्यो के पालन करने से मिल सकते है जिन्हें हमारे धर्म ने हम पर लागू किया है। निःसन्देह कोई बात इससे अधिक अभीष्ट नही है कि हमारा सब काम सच्ची धार्मिक भावना से किया जाय। अगर हम धार्मिक कर्तव्य की भावना से प्रेरित नही है, तब उस काम में, जिसे हमने प्रारम्भ किया है, हमारी रुचि स्थायी नही होगी। पर यदि इस विश्वास से काम करे कि ईश्वर के दीन प्राणियो की, अपने गरीब देशवासियो की, सेवा भगवान् की सेवा, उनके प्रति हमारा कर्तव्य है, तब चाहे निन्दा हो, चाहे प्रतिष्ठा, दूसरे सहायता करें या रुकावट डालें, हम अन्त तक अपनी शक्ति भर अपने लोगो के कल्याण की वृद्धि करते रहेंगे, और मेरा दृढ विश्वास है कि ईश्वर हमारे प्रयत्नो को सफलता से अभिनन्दित करेंगे।"[3]

---

१. वही, पृ० १२३-१२९। २ वही, पृ० १३३।
३. वही, पृ० १४९।

सन् १६०८ की मार्ले की सुधार-योजना

कुछ समय बाद सन् १९०८ में भारत-मन्त्री लार्ड मार्ले ने राजनीतिक सुधारो की अपनी रूपरेखा प्रस्तुत की। यह योजना सन् १९०६ की योजना से निःसन्देह अच्छी थी। इसमें निर्देशिका कौंसिल को स्थापित करने की कोई चर्चा नही थी। विधान कौसिलो के आकार और अधिकारो के विस्तार के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण सुझाव थे, कार्य परिपदो में भारतीय सदस्यो की नियुक्ति की चर्चा थी, और प्रतिनिधित्व की व्यवस्था अनिश्चित रखी गयी थी।

दिसम्बर सन् १९०८ में काँग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में मालवीयजी ने काँग्रेस के उस प्रस्ताव का समर्थन किया जिसमें प्रस्तावित राजनीतिक सुधारो का स्वागत किया गया था, और स्वीकार किया गया था कि विधान कौसिलो का विस्तार तथा उनके अधिकारो और कार्यों का परिवर्धन, कार्यपरिषदो में भारतीय सदस्यो की नियुक्तियाँ, तथा स्वायत्तशासन का अधिक परिवर्धन सुधारो की उदार किस्त है। इस प्रस्ताव का समर्थन करते हुए भी मालवीयजी ने माँग की कि केन्द्रीय विधान सभा के आधे सदस्य निर्वाचित भारतीय हो, कार्यपरिषदो मे एक भारतीय के वजाय दो नियुक्त किये जायें, और कानून द्वारा उनकी व्यवस्था की जाय। उन्होने धर्म के आधार पर किसी सम्प्रदाय को प्रतिनिधित्व दिये जाने का विरोध करते हुए आशा व्यक्त की कि इसे स्वीकार नही किया जायगा।[1]

साम्प्रदायिक चुनावो का विरोध

उन्होने अपने 'अभ्युदय' पत्र में लिखा कि "धर्म के आधार पर प्रतिनिधियो का चुनाव अनावश्यक और असभव है"।[2] उन्होने लिखा: "कौंसिलें तभी शक्तिमान् और लाभदायक हो सकती है, जब उनमें उदार चित्तवाले और योग्य प्रतिनिधि चुने जायें"।[3] मालवीयजी ने कहा कि जो प्रतिनिधि हिन्दुओ और मुसलमानों द्वारा मिलकर चुना जाता है, वह भलीभाँति यह समझता है कि मैं हिन्दू और मुसलमान, दोनो का प्रतिनिधि हूँ और मुझे दोनो जातियो का हित करने का यत्न करना चाहिए। किन्तु जब मुसलमान प्रतिनिधि अलग चुने जायेंगे, तब यह बात न हो सकेगी। आश्चर्य नही, यदि मुसलमान प्रतिनिधि यह समझें कि हमें मुसलमानो का ही हित करना चाहिए और यह भी संभव है कि वे हिन्दुओ के प्रस्तावो का विरोध करें, और इस प्रकार हिन्दुओ को हानि पहुँचाने के साथ ही साथ अपने को भी हानि पहुँचायें। कौसिलो मे जो प्रस्ताव

१. वही, पृ० ६०-६८। २ 'अभ्युदय', २९ फरवरी, सन् १९०९।
३. वही।

पेश होंगे, वे सभी जातियो के लिए हितकारी होंगे, और उनके पास न होने से सभी जातियो को हानि पहुँचेगी। सब विचारवान् देशहितैषियो का यह मुख्य उद्देश्य है कि हमारे देश मे जो भिन्न-भिन्न जातियाँ है वे एकमत होकर कार्य करना सीखें, और हमारा देश एक राष्ट्र बने, किन्तु भिन्न-भिन्न जातियो में इस प्रकार भेद बढने से इस उद्देश्य का सफल होना असंभव है। इस प्रकार के भेदयुक्त चुनाव से न केवल प्रजा को हानि पहुँचेगी, अपितु गवर्नमेंट के काम मे बाधा भी पडेगी। कौंसिलो में शान्ति से कार्य नही हो सकेगा। इसके अतिरिक्त जब मुसलमानो के ऊपर उनकी राजभक्ति आदि के विचार से विशेष कृपा की जायगी, तो आश्चर्य नही होगा कि यदि सिक्ख, पारसी आदि जातियाँ भी अपने को विशेष कृपापात्र दिखलाने के लिए अपने दावे पेश करें।[1]

मार्ले-मिंटो सुधार

सन् १९०९ मे ब्रिटिश पार्लियामेंट ने इंडियन कौंसिल एक्ट पास किया और सरकार ने इसके अधीन रेगूलेशन (नियम) पास किये। सुधारो की यह योजना मार्ले-मिंटो-सुधारों के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस व्यवस्था में केन्द्रीय और प्रान्तीय लेजिस्लेटिव कौंसिलो में गैर-सरकारी अतिरिक्त सदस्यो की संख्या बढा दी गयी, और कौंसिलो के अधिकार भी विस्तृत कर दिये गये।

कौंसिलो को बिलो पर विचार करके अधिनियम पास करने, तथा बजट पर भाषण करते हुए सरकार की नीति-रीति की समीक्षा करने कें अतिरिक्त, आयव्ययक की मदो और करो पर तथा सार्वजनिक महत्त्व के प्रश्नो पर प्रस्ताव पास करने के भी अधिकार दे दिये गये। सार्वजनिक हित में प्रश्न पूछने के साथ साथ एक पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार भी प्रश्नकर्ता को मिल गया। पर सार्वजनिक हित की रक्षा के नाम पर किसी प्रश्न को पूछने, और किसी प्रस्ताव को पेश करने की इजाजत देने से इनकार किया जा सकता था।

केन्द्र की कौंसिल में सरकारी सदस्यों का बहुमत बना रहा, पर बर्मा और पंजाब को छोड़कर अन्य सब प्रान्तो को कौंसिलो में निर्वाचित सदस्यो की संख्या सरकारी सदस्यो से अधिक कर दी गयी। पर बंगाल को छोडकर अन्य सब प्रान्तो में सरकार द्वारा मनोनीत सदस्यो का बहुमत बना रहा। इस तरह प्रान्तीय कौंसिलो में शक्ति-सन्तुलन सरकार द्वारा मनोनीत गैर-सरकारी सदस्यों के हाथ में रहा। बंगाल की कौंसिल में शक्ति-सन्तुलन मनोनीत गैर-सरकारी

१. वही।

सदस्यो के साथ साथ निर्वाचित यूरोपियन सदस्यो के हाथ में था। मनोनीत गैर-सरकारी सदस्य सदा से सरकार के इशारे पर काम करते थे, यूरोपियन सदस्यो से भी सरकार की नीति-रीति के समर्थन की ही आशा की जा सकती थी।

निर्वाचित स्थानो में से अधिकाश को साम्प्रदायिक तथा आर्थिक हितो के आधार पर बाँट दिया गया। मुसलमानो को प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा पृथक् प्रतिनिधित्व दे दिया गया, और उन्हे सामान्य स्थानो में भी चुनाव लडने का अधिकार दे दिया गया। व्यापारियो और जमीदारो को भी सामान्य चुनाव क्षेत्रो से चुनाव लडने की इजाजत देते हुए वर्गहितो के आधार पर पृथक् प्रतिनि-धित्व की भी व्यवस्था कर दी गयी। सामान्य क्षेत्रो के लिए अप्रत्यक्ष चुनाव पद्धति बनाये रखी गयी, अर्थात् प्रान्तीय कौंसिल के सामान्य स्थानो का चुनाव जिला बोर्डो और म्युनिसपैलटियो के गैर-सरकारी सदस्यो द्वारा, तथा केन्द्रीय कौंसिल के सामान्य स्थानो का चुनाव प्रान्तीय कौंसिल के गैर-सरकारी सदस्यो द्वारा किया जाना चालू रहा।

नयी व्यवस्था में भी मतदान और सदस्यता के अधिकार पुरुषो तक सीमित थे। स्त्रियाँ न वोट दे सकती थी, न कौंसिल का सदस्य बन सकती थी। मताधिकार किसी व्यापक सिद्धान्त पर आधारित नही था। विभिन्न प्रान्तो तथा विभिन्न सम्प्रदायो के लिए मताधिकार की शर्तें भिन्न थी। जबकि मुसल-मानो को जहाँ वे अल्प-संख्यक थे प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा अपनी जनसख्या के अनुपात से अधिक सख्या में कौसिलो का सदस्य चुनने का अधिकार था, वहाँ यह अधिकार पंजाब में हिन्दुओ को जहाँ वे अल्पसख्यक थे नही दिया गया था। इसी तरह मालगुजारी के चुनाव क्षेत्रो में हिन्दू और मुसलमान मतदाताओ की निर्धारित योग्यताओ में बहुत अन्तर था। उम्मीदवारी के लिए जो शर्तें लगायी गयी थी उनमें यह भी था कि (१) कोई वह व्यक्ति चुनाव के लिए खडा नही हो सकेगा जो सरकारी नौकरी से बरखास्त कर दिया गया हो, (२) जो वकालत करने से वचित कर दिया गया हो, (३) जिसे किसी फौजदारी अदालत ने किसी ऐसे अभियोग मे कैद की सजा दी हो जिसमे छ. महीने से अधिक का दण्ड या कालापानी की सजा दी जा सकती है, (४) जिसके सम्बन्ध में प्रान्तीय सरकार ने घोषित कर दिया हो कि उसकी ख्याति और पूर्वाचरण ऐसे है कि उसका निर्वाचन सार्वजनिक हित के विरुद्ध होगा। ये चारो निर्योग्यताएँ किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में भारत सरकार द्वारा हटायी भी जा सकती थी।

मालवीयजी का भाषण

दिसम्बर सन् १९०९ में मालवीयजी ने लाहौर अधिवेशन की अध्यक्षता की। उन्होने अपने अध्यक्षीय भाषण में नयी सुधार व्यवस्था की कडी आलोचना की। उन्होने केन्द्रीय कार्यपरिषद् (एक्जीक्यूटिव कौंसिल) तथा बम्बई, मद्रास और बगाल की कार्य परिषदो में भारतीय सदस्यों की नियुक्तियो का स्वागत किया और सरकार से माँग की कि अन्य प्रान्तो में भी कार्य परिषदें स्थापित की जायें और भारतीयो को उनका सदस्य नियुक्त किया जाय।[1] उन्होने इसे उन प्रान्तो की जनता की उन्नति तथा स्वशासन के लिए आवश्यक बताया। उन्होने कहा कि विकेन्द्रीकरण कमीशन ने स्वीकार किया है कि लेफ्टिनेट-गवर्नर के लिए अकेले शासन का सारा बोझ वहन करना कठिन हो रहा है। कमीशन ने यह भी लिखा है कि प्रान्तीय शासन का सारा उत्तरदायित्व एक व्यक्ति को सौप देना भी ठीक नही समझा जा सकता। कमीशन की सर्व-सम्मत सस्तुति पर अमल करना श्रेयस्कर है।[2]

उन्होने सुधार-व्यवस्था का वर्गीय विश्लेषण करते हुए बताया कि उसमें मध्यवर्गीय शिक्षित वर्ग के साथ, जिसने राजनीतिक सुधारो के लिए सबसे अधिक प्रयत्न किया है, न्याय नही किया गया है। उनकी उपेक्षा करते हुए जमीदारो को अधिक प्रतिनिधित्व देना सर्वथा अनुचित है। उन्होने कहा कि "धन या आय का अधिकार निश्चित रूप से यह नही बतलाता कि मनुष्य योग्य है और आचरण की परीक्षा तो इससे बिलकुल ही नही हो सकती। यह स्वयं किसी मनुष्य में उसके साथियो का विश्वास पैदा नही करता।"[3] इस व्यवस्था के कारण तो, उन्होने कहा "मिस्टर दादा भाई नौरोजी और मिस्टर गोखले जैसे नि स्वार्थ देशभक्त" भी प्रान्तीय कौसिल के सदस्य नही हो सकते।[4] मालवीयजी ने प्राचीन विधिकर्ता मनु का एक श्लोक उद्धृत करते हुए कहा कि इस चिर सम्मानित शिक्षा के अनुसार विद्या सबसे ऊंची योग्यता है और धन का स्वामित्व सबसे नीची है। रेगूलेशन्स ने इस क्रम को बदल ही नही डाला है, वरन् विद्या को योग्यता की श्रेणी से निकाल दिया है।[5]

मुसलमानो के लिए की गयी व्यवस्था की आलोचना करते हुए मालवीयजी ने कहा कि हम मुसलमानो के लिए किसी मात्रा में प्रतिनिधित्व की गारंटी देने

---

१. रिपोर्ट, ट्वेंटीफोर्थ इन्डियन नेशनल काग्रेस, १९०९, पृ० २४-२५।
२ वही, पृ० २५। ३. वही, पृ० २८।
४. वही, पृ० २९। ५. वही, पृ० २९।

को तैयार थे, और इस व्यवस्था के लिए भी तैयार थे कि यदि सर्वसाधारण चुनाव द्वारा किसी कारण से निश्चित संख्या में उनका चुनाव न हो पाये, तो विशेष मुस्लिम चुनाव क्षेत्रों द्वारा इस कमी को पूरा कर लिया जाय। पर रेगूलेशन्स ने मुसलमानो को पृथक् साम्प्रदायिक क्षेत्रो द्वारा अपनी आबादी के अनुपात से अधिक सीटें ही प्रदान नही की है, बल्कि उन्हे सर्वसाधारण चुनाव द्वारा भी सीटें प्राप्त करने की इजाजत दे दी है। इस प्रकार से मुसलमानों को अत्यधिक प्रतिनिधित्व देना न्यायसंगत और उचित नही है।[1] उन्होने पूछा कि जब अल्पसंख्यक मुसलमानो के लिए पृथक् निर्वाचन द्वारा प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करना उचित समझा गया, तब क्या कारण है कि पजाब तथा 'पूर्वी बंगाल और आसाम' के अल्पसंख्यक हिन्दुओ के लिए इस प्रकार की व्यवस्था नही की गयी ?[2]

उन्होने यह भी पूछा कि जब सरकार ने मुसलमानो को सीधा प्रतिनिधित्व देना निश्चित किया, तब इतर जातियो को भी उतना ही न्यायपूर्ण और उदार प्रतिनिधित्व क्यो नही दिया गया ?[3] उन्होने कहा कि वे चाहते है कि सबके लिए प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की जाय और उन सबको जो आय-कर देते है, वोट देने का अधिकार दिया जाय।[4]

"सम्प्रदाय और सम्पत्ति पर आधारित निर्वाचन पद्धति का विरोध", उन्होने कहा, "कांग्रेस इसलिए नही करती कि वह चाहती है कि मुसलमान और भूमि-पति प्रतिनिधित्व प्राप्त नही कर सकें। बल्कि उसका विचार है कि चूँकि विधान कौंसिलो को ऐसे प्रश्नो पर विचार करना होगा जो सभी वर्गो, और मतो के लिए समान हित के है, इसलिए उनके प्रतिनिधियो को सभी वर्गों, जातियो की सम्मिलित राय से निर्वाचित होना चाहिए। उनके प्रति देशवासियो के विश्वास का आधार उनमे लगन के साथ जनता के हितो की रक्षा और उन्नति करने की योग्यता, बुद्धिमत्ता और आचरण होगा, न कि उनका किसी विशेष धर्म से सम्बन्ध या कई एकड भूमि का उत्तराधिकारी होना।"[5]

चुनाव सम्बन्धी नियमो की समीक्षा करते हुए मालवीयजी ने अयोग्यता सम्बन्धी धाराओ की कडी आलोचना की। उन्होने कहा कि कई प्रान्तो में सर्वसाधारण सीटो से प्रान्तीय कौंसिल बनने के लिए किसी म्युनिसिपल बोर्ड (नगरपालिका) या जिला बोर्ड का सदस्य होना जरूरी करार दिया गया है,

---

१ वही, पृ० २७। २. वही, पृ० २७।
३. वही, पृ० २७-२८। ४. वही, पृ० २७।
५ वही, पृ० २९-३०।

इस व्यवस्था के कारण बहुत से योग्य व्यक्ति कौंसिल के सदस्य बनने से वंचित हो गये है, और बहुत से स्थानो पर उन्हें जिला बोर्डों और म्युनिसिपल बोर्डों का मनोनीत सदस्य बनना पडा है। उन्होने कहा कि इसी तरह वे सब लोग, जो किसी कारण से सजा पाये है या सरकारी नौकरी से बर्खास्त किये गये है, कौंसिल की सदस्यता से वंचित कर दिये गये है। यह व्यवस्था भी, उन्होने कहा, सर्वथा अनुचित है। नैतिक अधोगति का अपराध ही इस अयोग्यता का मूलाधार होना चाहिए था। उन्होने कहा कि विभिन्न वर्गों और सम्प्रदायो के नागरिको के लिए वोट देने की विभिन्न योग्यताओ की व्यवस्था भी न्यायोचित नही समझी जा सकती। उन्होने कहा कि किसी व्यक्ति को सदस्यता के अयोग्य घोषित करने का जो अधिकार प्रान्तीय गवर्नरो और लेफ्टिनेंट गवर्नरो को दिया गया है वह तो सर्वथा अनुचित और अन्याय है। इस प्रकार की व्यवस्था से लाभ उठाकर बम्बई प्रान्त के गवर्नर ने श्री एन सी. केलकर जैसे सम्मानित व्यक्ति को प्रान्तीय कौंसिल की सदस्यता से वंचित कर दिया था, और यदि यह व्यवस्था बनी रही तो भविष्य में भी इसका इसी प्रकार दुरुपयोग हो सकता है।[१]

मालवीयजी ने कहा कि प्रान्तीय कौंसिलो में गैर-सरकारी सदस्यो का बहुमत तो 'शून्य में परिणत कर दिया गया है।'[२] गैर-सरकारी मनोनीत सदस्य तो सदा सरकार का साथ देते है। युक्त प्रान्त के लेफटिनेंट-गवर्नर सर जान हेवट ने जिन छ: सज्जनो को मनोनीत किया है उनमें तीन नवाब रामपुर, राजा साहब टेहरी और महाराजा बनारस है। वे ब्रिटिश भारत की समस्याएँ कब अध्ययन करते है, और यदि उन्होने किसी मामले मे कोई राय बना भी ली हो, तो भी वे उसे उस समय तक व्यक्त नही कर सकते जब तक वह सरकार की राय से मेल न खाती हो।[३] 'ब्रिटिश सरकार की किसी प्रजा को इन लोगो के मामलो के प्रबन्ध में बोलने का कोई अधिकार नही है। तब इन चीफ्स को ब्रिटिश भारतीय सरकार की प्रजा की भलाई और बुराई से सम्बन्धित विधेयक के विचार-विमर्श या दूसरे विवाद में राय देने का अधिकार देना किस तरह न्यायसगत है?"[४] इस प्रकार की व्यवस्था ने प्रान्तीय कौंसिलो को सलाहकार कौंसिलो के सदृश बना दिया है।[५] उन्होने कहा कि मुसलमानो और जमीदारो के अत्यधिक प्रतिनिधित्व तथा शिक्षित वर्गों के सीमित प्रतिनिधित्व की व्यवस्था ने शिक्षितो की इस माँग को कि अपने देश के शासन में जनता के निर्वाचित

---

१ वही, पृ० २८-३०।
२ वही, पृ० ३०।
३. वही, पृ० ३१।
४. वही, पृ० ३१।
५ वही, पृ० ३०।

सदस्यो को प्रभावकारी अधिकार प्राप्त हो, निरर्थक बना दिया है।[१] योजना के अन्दर बनाये गये रेगूलेशन्स, मालवीय जी ने कहा, योजना की भावना के बहुत हद तक विपरीत है। "वे अनुदार और किसी अंश में प्रतिगामी है।"[२] शिक्षित समाज वहुत क्षुब्ध है, और उसका संशोधन नितान्त आवश्यक है। वाइसराय ने अपने एक भाषण में कहा कि वे अनुभव के आलोक में संशोधित कर दिये जायेंगे। पर बिना किसी व्यावहारिक अनुभव के भी उनकी वहुत सी बुराइयाँ दूर की जा सकती है। तब व्यापक असन्तोष दूर करने के लिए, तथा जनता और सरकार में सद्भावना को बढाने के लिए क्या यह अच्छा नही होगा कि शीघ्र ही इस बात की घोषणा की जाय कि रेगूलेशन्स के विरुद्ध आपत्तियों पर विचार किया जायगा।[3]

मालवीयजो ने अपने अध्यक्षीय भाषण में अराजकता के क्रियाकलापो की निन्दा करते हुए कहा कि इस प्रकार की राजनीतिक हत्याओ से "देश को कभी कोई लाभ नही हुआ है।" वरन् वे 'वहुत हानि' पहुँचा रही है। शास्त्रो ने इनकी निन्दा की है और वे हमारी श्रेष्ठ परम्पराओ के विरुद्ध है।[४] नवयुवको को कुमार्ग से बचाने का प्रयत्न होनाही चाहिए। पर उसके लिए व्यापक असन्तोष को दूर करना भी जरूरी है।

उन्होने वगाल के विभाजन का विरोध करते हुए माँग की कि वंगला भाषा-भापी क्षेत्रो का एक प्रान्त में एकोकरण किया जाय, और उनके साथ न्याय करके जनता के क्षोभ और असन्तोष को शान्त किया जाय।[५]

उन्होने सन् १८१८ के अधिनियम न० ३ को "विधिविहीन संहिता"[६] वताते हुए उसके अन्दर लाला लाजपतराय तथा सरदार अजीत सिंह के निर्वासन की निन्दा की। उन्होने कहा कि उन लोगो को, जो शान्तिमय और गौरवपूर्ण जीवन विता रहे हो, उनके पीठ पीछे लगाये आरोपो को सुनने और उत्तर देने का अवसर दिये विना रेगुलेशन के अन्दर दूसरे प्रदेशो में निर्वासित कर देने और जेल मे वन्द करने की प्रक्रिया ब्रिटिश सरकार के लिए प्रशंसनीय नही है, और उसे यथासम्भव शीघ्रता से बन्द कर देना चाहिए।[७]

---

१. वही, पृ० ३२। २ वही, पृ० ३३।
३. वही, पृ० ३३। ४ वही, पृ० ३९।
५ वही, पृ० ४०। ६. वही, पृ० ३९।
७ वही, पृ० ४०।

गरीबी

मालवीयजी ने बढती हुई गरीबी और महँगाई की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट करते हुए उसे दूर करने के लिए प्रयत्न करने की माँग की। उन्होने कहा कि कुछ लोग पहले से अधिक समृद्ध जरूर हो गये है, पर अधिकाश जनता अब भी 'भुखमरी के छोर पर दुःखमय जीवन' व्यतीत कर रही है और इस दयनीय दशा के कारण प्लेग, ज्वर आदि का शिकार हो रही है, बढ़ती हुई महँगाई के कारण जनता की कठिनाइयाँ और भी बढ गयी है। सरकार का कर्तव्य है कि वह जनता के स्वास्थ्य, जीवन शक्ति, तथा राष्ट्र की समृद्धि की वृद्धि के लिए समुचित प्रयत्न करे।[1]

शिक्षा

उन्होंने शिक्षा की व्यवस्था की त्रुटियो की ओर भी सरकार का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने कहा कि अधिकाश जनता अब भी अशिक्षित है, और उसका अज्ञान उन्नति में बाधक है। सरकार ने वायदा किया था कि प्रारम्भिक शिक्षा नि शुल्क कर दी जायगी, पर अभी तक इस वायदे को पूरा नही किया गया है। जबकि इंगलिस्तान में सन् १८७० में ही प्रारम्भिक शिक्षा नि शुल्क और अनिवार्य बना दी गयी है, हिन्दुस्तान किस कारण से इस व्यवस्था के लाभ से वचित रखा जा रहा है ? उन्होने औद्योगिक और शिल्प शास्त्र सम्बन्धी शिक्षा के विस्तार की आवश्यकता पर जोर देते हुए कहा कि भारतीय बुद्धि और पराक्रम मे किसी से कम नही है, पर शिल्प ज्ञान की कमी के कारण वे विदेशी औद्योगिको का मुकाबला नही कर पाते है।[2]

प्रशासनिक सुधार

मालवीयजी ने जनता की दशा को सुधारने के लिए प्रशासनिक और सैनिक व्यय को कम करने पर, तथा वित्तीय विकेन्द्रीकरण पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि देश की दशा तब तक नही सुधर सकती जब तक राजस्व का एक बहुत बडा भाग जनता के हित से सम्बन्धित कामो में प्रान्तीय सरकार द्वारा नही लगाया जाता। उन्होने माँग की कि चूँकि भारत में इतनी बडी सेना भारत की रक्षा के अतिरिक्त ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य प्रयोजनो के लिए भी रखी गयी है, इसलिए उसके व्यय का कुछ भाग ब्रिटेन के राजकोष को भी वहन

---

१. वही, पृ० ३४। २. वही, पृ० ३४-३५।

करना चाहिए।[1] उन्होने सेना के भारतीयकरण को नितान्त आवश्यक बताते हुए सेना के ऊँचे पदो पर भारतीयो को नियुक्त करने का अनुरोध किया। उन्होने कहा कि इस प्रक्रिया से "सम्राट् की महत्त्वपूर्ण प्रजा की स्वाभाविक और बुद्धिसंगत आकाक्षाओ को सन्तुष्ट करने का दरवाजा खुलेगा।"[2]

दक्षिण अफ्रीका

मालवीयजी ने दक्षिण अफ्रीका में रहनेवाले भारतीयो की दयनीय दशा पर क्षोभ प्रकट करते हुए उनके प्रति वहाँ की सरकार और गोरी जनता के "अन्यायपूर्ण, क्रूर और निन्दनीय"[3] व्यवहार की भर्त्सना की। उन्होने कहा कि दक्षिण अफ्रीका में भारतीयो को जो अपमान और कष्ट सहन करने पड रहे है, उन्होने सारे देश में, हर वर्ग के लोगो में, "रोष और शोक की गहरी भावनाएँ उत्तेजित की है"[4]। जिस "निर्भीक साहस और अनन्य दृढता" से गाधीजी और उनके साथी भारत की प्रतिष्ठा के लिए सघर्ष कर रहे है, वह अवश्य ही बहुत प्रशंसनीय है।[5] हमारी सहानुभूति उनके साथ है। हम ब्रिटिश सरकार से माग करते है कि भारतीय आप्रवासियो के साथ मानुषिक व्यवहार करने के लिए वह दक्षिण अफ्रीका की सरकार को बाध्य करे।[6] उन्होने भारत सरकार से माग की कि जब तक दक्षिण अफ्रीका के गोरे औपनिवेशिक भारतीयो को समान नागरिक मानने को तैयार न हो, तब तक दक्षिण अफ्रीका के लिए भारतीय श्रमिको की भरती बन्द कर दी जाय।[7]

कांग्रेस

मालवीयजी ने काफी विस्तार के साथ काग्रेस के उद्देश्यो का विश्लेषण करते हुए राजनीतिक कार्यकर्ताओ से मिलकर काम करने की अपील की। उन्होने कहा "एकता में ही आशा और देश का सुखद भविष्य निहित है।"[8] जहा बहुत से लोग इकट्ठे होते है, वहा कार्यकर्ताओ में बहुधा मतभेद हो जाता है, पर उसकी 'उपेक्षा' करते हुए सब सच्चे और उत्साही देशभक्तो को सर्वमान्य उपायो द्वारा सार्वजनिक लक्ष्यो की सिद्धि के सामूहिक प्रयत्नो में मिलकर काम करना चाहिए।[9]

---

१ वही, पृ० ३५-३६। २. वही, पृ० ३७।
३. वही, पृ० ३७। ४. वही, पृ० ३७।
५. वही, पृ० ३७। ६. वही, पृ० ३७-३८।
७. वही, पृ० ३८। ८. वही, पृ० ४४।
९ वही, पृ० ४४।

राष्ट्रीय एकता

मालवीयजी ने समता के आधार पर संयुक्त राष्ट्रीयता के विकास पर जोर देते हुए कहा : "किसी हिन्दुस्तानी को, चाहे वह हिन्दू, मुसलमान या पारसी हो, अपने को देशभक्त कहाने का गौरव प्राप्त नही होगा, जो एक क्षण के लिए भी चाहता है कि उसका कोई देशवासी, चाहे वह किसी प्रजाति या धर्म का हो, उसके विश्वास के लोगो के शासन में हो या कोई समुदाय किसी दूसरे समुदाय या समुदायो पर श्रेष्ठता प्राप्त करे। देशभक्ति की माग है कि हम अपने सब देश-भाइयो का समान रूप से हित चाहें।"[1] उन्होने कहा कि वेद व्यासजी ने 'सब धार्मिक और देशभक्त कार्यकर्ताओ के लिए श्रेष्ठ आदर्श'[2] एक प्रार्थना के रूप मे प्रस्तुत किया है। वेद व्यासजी कहते है :—

"सर्वे च सुखिन. सन्तु सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु या कश्चिद् दु.खभाग् भवेत्" ॥

अर्थात् सब सुखी हो, सब दूसरो के लिए सुख का स्रोत बनें, सबका कल्याण हो, किसी को कोई दुःख न हो।[3]

उन्होने मुसलमानो को सम्बोधित करते हुए उनसे अनुरोध किया कि वे पार्थक्य की नीति को त्याग कर देशभक्ति के उच्च आदर्श को अपनायें, जिसके द्वारा हिन्दू, मुसलमान, पारसी और ईसाई भाई-भाई की तरह कन्धा मिलाकर सबके साथ सबके समान हित के लिए काम करें।[4]

उन्होने मुसलमानो को विश्वास दिलाया कि काग्रेस सब के साथ न्याय चाहती है, और यदि किसी हिन्दू को मुसलमान पर तरजीह दी जाती है इसलिए नही कि वह बढिया योग्यता रखता है बल्कि इसलिए कि वह हिन्दू है, तब यह मुसलमानो की शिकायत का न्याय-सगत आधार है, और मुसलमान ही नही बल्कि सब जातियाँ काग्रेस के सिद्धान्तो से हटे बिना इसका विरोध करने की हकदार है।[5]

उन्होने यह भी स्वीकार किया कि सरकार की पक्षपात की नीति से, तथा मुसलमानो की पार्थक्य की नीति से हिन्दुओ की कुछ हानि हुई है, और वे सरकार के पक्षपात का विरोध करने का हक रखते है। पर उन्होने आशा व्यक्त की कि हिन्दू पार्थक्य की नीति को नही अपनायेंगे, अपने आदर्शों से विमुख नही

१. वही, पृ० ४४।
२. वही, पृ० ४४।
३. वही, पृ० ४४।
४. वही, पृ० ४४।
५. वही, पृ० ४५।

होंगे, वे ऐक्य के लिए प्रयत्न करते रहेंगे, संकीर्ण साम्प्रदायिक ईर्ष्या के बजाय न्याय की दृष्टि से पक्षपात का विरोध करेंगे। उन्होंने कहा कि वे आशा करते हैं कि देश के कुछ भागों में जो अल्पकालिक असुविधा (हानि) हिन्दू भाइयों को हो रही है, वह उन्हें कर्तव्य, समझदारी और सम्मान के उस पथ से जिसे कांग्रेस ने सब देशभक्त हिन्दुस्तानियों के लिए अनुसरण करने को प्रस्तुत किया है, विचलित होने को प्रेरित नहीं करेगी।[1]

उन्होंने कहा कि मुझे पूर्ण विश्वास है कि "पक्षपात-पूर्ण व्यवहार तथा दूसरी सब अडचनें जो भारत के विभिन्न सम्प्रदायों को अलग कर रही हैं, धीरे धीरे, पर स्थिर गति से दूर होंगी तथा ईश्वर के निर्देशन में हिन्दुओं, मुसलमानों, पारसियों और ईसाइयों में देशभक्ति और बन्धुत्व की भावनाओं की वृद्धि होती जायगी, और वह दिन आयेगा जब ये भावनाएं सब सम्प्रदायों के लोगों को एक बडे और संयुक्त राष्ट्र में एक करते हुए एक शान्त और महान् नदी की तरह बहेंगी।"[2]

कांग्रेस अधिवेशन के अन्त में धन्यवाद के वोट का उत्तर देते हुए उन्होंने सरकार से फिर अपील की कि वह और उसके कर्मचारी भारतीयों के उद्देश्यों और अभिलाषाओं के प्रति विरोध की भावना का परित्याग करें और उन्हें उनकी पूर्ति मे समुचित सहायता प्रदान करें। उन्होंने इस अवसर पर सार्वजनिक कार्यकर्ताओं से भी अनुरोध किया कि वे संवैधानिक आन्दोलन को और तेज करके उसके द्वारा राष्ट्रीय मांगों के पक्ष में विवेकशील और सबल जनमत तैयार करें, तथा सरकार की सहायता पर ही निर्भर न रहकर अपने स्वतन्त्र प्रयत्नों द्वारा देश की दशा सुधारने का प्रयत्न करें।[3] उन्होंने कहा कि स्वदेशी का प्रचार, शिक्षा का प्रसार, नगरों और गाँवों की सफाई, देशज उद्योगों का विकास आदि बहुत से ऐसे काम हैं जिनसे हम स्वयं देश को बहुत आगे बढा सकते हैं।[4] उनकी धारणा थी कि "यदि हम अपनी देशभक्ति को कुछ अधिक सक्रिय कर लें और देश की सेवा में अधिक निष्ठा से जुट जायें, तो हम अपने देश को अधिक समृद्धिशाली बना सकते हैं,"[5] हमारे प्रयत्नों द्वारा हमारा देश समुन्नत राष्ट्रों मे समान और सम्मानित स्थान प्राप्त कर सकता है। उन्होंने कहा : "हमारे धर्म हमें बताते हैं कि मनुष्यों की सेवा द्वारा ही ईश्वर की सेवा

१. वही, पृ० ४५।
२. वही, पृ० ४६।
३. वही, पृ० १२९।
४. वही, पृ० १२९।
५. वही, पृ० १२९।

सर्वोत्तम है", और आशा व्यक्त की कि इसका ध्यान रखते हुए हम निष्ठा के साथ जनता की सेवा में तथा देशोन्नति के कार्यो में जुट जायेंगे ।[1]

उन्होने इस अवसर पर यह स्वीकार करते हुए कि विद्यार्थियो को राजनीति में सक्रिय भाग नही लेना चाहिए, शिक्षा विभाग की उन आज्ञाओ और विज्ञप्तियो की भर्त्सना की जो विद्यार्थियो को राष्ट्रीय स्तर के नेताओ के भाषण सुनने के लिए सार्वजनिक सभाओ में जाने पर भी रोक लगाती थी। मालवीयजी ने कहा कि राजनीति का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करने के लिए नेताओ का भाषण सुनना अवश्य ही लाभप्रद है। नवयुवको में देशभक्ति का संचार नितान्त आवश्यक है। उन्होंने कहा कि उस शिक्षा का क्या लाभ जो विद्यार्थियो में देश-भक्ति भी संचरित न कर सके ?

अन्त में उन्होने स्वागत समिति तथा कार्यकर्त्ताओ और स्वयंसेवको को धन्यवाद देते हुए अधिवेशन समाप्त किया।

कांग्रेस मे प्रस्ताव

दूसरे दिन श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने विषय समिति की ओर से कौंसिलो की नयी व्यवस्था के सम्बन्ध में खुले अधिवेशन में प्रस्ताव पेश किया। इसमें कांग्रेस ने इस देश की जनता के लिए उदार संवैधानिक सुधारो के सम्बन्ध में लार्ड मार्ले और लार्ड मिंटो के प्रयत्नो के प्रति कृतज्ञता और आभार प्रकट करते हुए दु.ख के साथ रेगुलेशन्स को नापसन्द किया। प्रस्ताव मे कहा गया कि रेगुलेशन्स मे लार्ड मार्ले की गतवर्ष की विज्ञप्ति की उदारभावना का अभाव है। धर्म पर आधारित निर्वाचन पद्धति की विशेष रूप से निन्दा की गयी। प्रस्ताव मे यह भी कहा गया कि नीचे लिखे पाँच कारणो से नये नियमो और रेगुलेशन्स ने देश में व्यापक असन्तोष पैदा कर दिया है—

१. एक विशिष्ट धर्म के अनुयायियो को प्रतिनिधित्व में अत्यधिक और अनुचित रूप से गुरुतर भाग दिया जाना।

२. निर्वाचन पद्धति, मताधिकार और उम्मीदवारो की योग्यता के सम्बन्ध में सरकार द्वारा मुसलमान और गैर-मुसलमान प्रजाओ में अन्यायपूर्ण, पक्षपातपूर्ण अनुचित भेद करना।

३. कौंसिलो के उम्मीदवारो पर व्यापक, मनमानी, अनुचित अयोग्यताओ और प्रतिबन्धो को लगाना।

४. शिक्षित वर्गों पर व्यापक रूप से अविश्वास करना।

---

१. वही, पृ० १२८।

५. प्रान्तीय कौंसिलो मे गैर-सरकारी सदस्यो के लिए प्रभाव-हीन तथा वास्तविकता-विहीन बहुमत की व्यवस्था करना।

इस प्रस्ताव को प्रस्तुत करते हुए सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने मालवीयजी की तरह रेगुलेशन्स की कड़ी आलोचना और निन्दा की। उन्होने कहा कि नियमो और रेगुलेशन्स ने राजनीतिक सुधारो की योजना को बरबाद कर दिया है। उन्होने कहा कि उनकी राय में इसका उत्तरदायित्व नौकरशाही पर है, जिसने हम (शिक्षित वर्ग) से, जिन्होने राजनीतिक सुधारो के लिए प्रयत्न किया था, बदला लिया है। उन्होने कहा कि गैर-सरकारी सदस्यो का बहुमत तो केवल 'भ्रामक' है, क्योकि गैर-सरकारी मनोनीत सदस्य तो सदा सरकार के पक्ष में ही राय देते है। उन्होने बहुत क्षोभ से कहा कि उम्मीदवारी की अयोग्यताओ ने तो बहुत से प्रतिष्ठित व्यक्तियो को कौंसिल की सदस्यता से वचित कर दिया है। पर उन्होने अन्त में कहा कि इस निराशा के मध्य मे भी हमें अपने राष्ट्रोत्थान के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अपने सवैधानिक और न्याय-संगत उपायो की निर्णायक विजय पर अत्यन्त अटल विश्वास बनाये रखना चाहिए। प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया।

काग्रेस ने अपने इस अधिवेशन में श्री सत्येन्द्र प्रसन्न सिन्हा को गवर्नर-जनरल की कार्यपरिषद् का, तथा मिस्टर अमीर अली को प्रिवी कौसिल का सदस्य नियुक्त किये जाने पर सम्राट् की सरकार को धन्यवाद दिया। उसने माँग की कि मध्य प्रदेश और बरार में भी प्रान्तीय विधान कौंसिलें स्थापित की जायें, तथा संयुक्त प्रान्त, पंजाब, बर्मा तथा पूर्वी बगाल और आसाम में प्रान्तीय कार्यपरिषदें गठित की जायें।

पंजाब से संबंधित रेगुलेशनो की आलोचना करते हुए काग्रेस ने कहा कि ये सन्तोषजनक नही है, क्योकि इनमें (१) कौंसिल के सदस्यो की संख्या बहुत ही अपर्याप्त है, (२) निर्वाचित सदस्यो की संख्या तो और भी कम है, (३) अल्प-संख्यक मुसलमानो की संरक्षा का सिद्धान्त जो दूसरे प्रान्तो में लागू किया है, यहाँ गैर-मुसलमानो के लिए लागू नही किया गया है, और (४) केन्द्रीय कौसिल में पंजाब के गैर-मुसलमानो का चुनाव सभव नही है।

काग्रेस ने इस अधिवेशन में बंगभंग के विरुद्ध तथा स्वदेशी के पक्ष मे प्रस्ताव पास किये, और माँग की कि पंजाब की भूमि-व्यवस्था की जाँच के लिए एक कमेटी नियुक्त की जाय। उसने यह भी माँग की कि निष्कासन सम्बन्धी पुराने रेगुलेशन रद्द किये जायें, निष्कासितो को छोडा जाये तथा न्यायपालिका को शासनपालिका से अलग किया जाय।

उसने यह भी माँग की कि महँगाई के कारणो पर जाँच के लिए एक कमीशन नियुक्त किया जाय, शिक्षा की सुविधाओ का विस्तार किया जाय, उत्तर पश्चिमी प्रान्त की जनता की शिकायतो की जाँच के लिए कमेटी नियुक्त की जाय। काग्रेस की यह भी माँग थी कि इस देश में उच्चस्तरीय सैनिक कालेज खोले जायँ, सिविल सर्विस की प्रतियोगिता परीक्षाएँ भारत में भी हो, और ऊँचे सैनिक और असैनिक पदो पर भारतीय नियुक्त किये जायें। दक्षिण अफ्रीका में भारतीय प्रवासियो के आन्दोलन के पक्ष में भी एक प्रस्ताव पास किया गया।

मालवीयजी की सद्भावना

फूट, कटुता और सघर्ष की स्थिति में भी क्रान्तिकारियो और उग्रवादियो के प्रति मालवीयजी की कितनी सद्भावना थी, इस बात का पता नीचे लिखे उदाहरणो से लगाया जा सकता है।

केलकर साहिब ने अपने संस्मरण में लिखा है कि जब सन् १९०८ में वे लोकमान्य तिलक के आदेश पर युक्त प्रान्त के राजनीतिक सम्मेलन की गतिविधि देखने गये, तब उनका मिशन स्पष्ट शब्दो में एक राजनीतिक विरोधी का था, क्योकि पंडित जी (मालवीय जी) नरमदलीय नेताओ में गिने जाते थे, और वे अपना सारा प्रभाव तिलक के विरुद्ध अपने मित्र माननीय गोखले के पक्ष में इस्तेमाल कर रहे थे। लेकिन उन्होने मेरे साथ अपार सौजन्य का व्यवहार किया, यद्यपि वे चाहते तो मुझे निकाल सकते थे।[1]

जब सन् १९०९ में कतिपय क्रान्तिकारियो की भर्त्सना के लिए प्रान्तीय सरकार ने एक सभा आयोजित की, और मालवीयजी आतंक के विरुद्ध बोलने को आमन्त्रित किये गये, तब उन्होने अधिकारियो के सभावित रोष की उपेक्षा करते हुए स्पष्ट कह दिया कि वे उस समय तक क्रान्तिकारियों के विरुद्ध कुछ कहने को तैयार नही है, जब तक उस सभा में उन्हे सरकार की उस गतिविधि की आलोचना करने का मौका न हो जिसके कारण क्रान्तिकारी भावनाएं प्रज्ज्वलित होती है। प्रान्त के गवर्नर ने उनकी कडी आलोचना की, पर मालवीयजी ने इसकी कोई परवाह नही की।

---

१ केलकर साहब के सस्मरण: मालवीय कोमेमोरेशन वॉल्यूम: सन् १९३५, पृ० १०३०। (इस संस्मरण में उन्होने लिखा है कि वे इलाहाबाद प्रान्तीय राजनीतिक कान्फ्रेन्स में गये, पर प्रयाग के बजाय उन्हें लखनऊ लिखना चाहिए था, क्योकि प्रयाग सम्मेलन तो काग्रेस के सूरत अधिवेशन से पहले हुआ था। सन् १९०८ में काग्रेस के नये विधान के अनुसार प्रान्तीय सम्मेलन लखनऊ में ही मालवीयजी की अध्यक्षता में हुआ था।)

इसी तरह जब सन् १९०९ में प्रयाग के 'स्वराज्य' नाम के उर्दू पत्र के आठ सम्पादक दस महीने के अन्दर राजद्रोह में फास लिये गये, तब मालवीयजी ने उन्हें आर्थिक सहायता दी, तथा श्री पुरुपोत्तमदास टंडन से उनकी वकालत करने को कहा और जेल में पडे हुए सम्पादको के परिवारो का पोषण किया। मालवीयजी के कुछ मित्रो को यह बात अच्छी नही लगी। तब मालवीयजी ने उनसे कहा "मैंने जो कुछ किया है, वह इस देश में प्रेस की स्वतंत्रता दृढ करने के लिए किया है। यदि मै ऐसा न करता तो मै विचार-स्वातन्त्र्य समाप्त करने के दोप का भागी होता। जहा तक इन नवयुवको की सहायता की बात है, मैं कैसे न करता ? क्या कोई पिता अपने पुत्रो को मतभेद के कारण छोडता है, विशेषतः उन पुत्रो को जिनकी देशभक्ति चमचमाते हुए स्वर्ण के समान समुज्ज्वल हो ? मैं यह पाप अपने सिर नही लेना चाहता कि द्रोणाचार्य के समान अभिमन्यु की हत्या के दोष का भागी बनूं।"[1]

युक्त प्रान्त के क्रान्तिकारियो को भी मालवीयजी की सद्भावना का कितना अहसास था, इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि सन् १९६२ में प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता योगेशचन्द्र चटर्जी ने, जबकि वे राज्य सभा के सदस्य थे, इस पुस्तक के लेखक से क्रान्तिकारियो के प्रति मालवीयजी की सहानुभूति की प्रशसा करते हुए कहा था कि युक्तप्रान्त मे मालवीयजी क्रान्तिकारियो के सबसे बडे हमदर्द थे। इस सम्बन्ध में उन्होने जिस दूसरे व्यक्ति का नाम लिया वह आचार्य नरेन्द्रदेव थे। मनमाड बम केस के वीर क्रान्तिकारी मनमोहन गुप्त आदि ने भी क्रान्तिकारियो के प्रति मालवीयजी की सहानुभूति के लिए कृतज्ञता प्रकट की है।[2]

इस सबसे यह स्पष्ट है कि यद्यपि मालवीयजी क्रान्तिकारियो के क्रिया-कलापो को ठीक नही समझते थे, तथापि वे उनकी देशभक्ति और आत्म-बलिदान की भावना की कद्र करते थे, और उनसे मतभेद रखते हुए भी उनके और उनके परिवारो को उनके कष्टो में सहायता करना अपना कर्तव्य समझते थे। वे क्रान्तिकारियो के क्रियाकलापो पर खेद प्रकट करते समय सरकार की निरंकुशता और जनहित के प्रति उसकी उपेक्षा को आलोचना भी जरूरी समझते थे। वे सरकार की नीतिरीति को ही असन्तोष और क्रान्तिकारी क्रियाकलापो का मूल कारण मानते थे, तथा निरंकुशता और दमन का त्याग शान्ति और सुव्यवस्था के लिए आवश्यक समझते थे।

---

१. सीताराम चतुर्वेदी . महामना पंडित मदन मोहन मालवीय, खंड १, पृ० २३।
२. मालवीयजी . जीवन झलकियाँ, पृ० ३२, ३४।

६. प्रान्तीय कौंसिल में कार्य

सन् १९०३-१९१२

कौंसिलो की गतिविधि

सन् १९०२ मे मालवीयजी दो वर्ष के लिए युक्तप्रान्त की कौसिल के सदस्य चुने गये। इसके बाद बराबर चुने जाने पर उन्होंने सन् १९०३ से सन् १९१२ तक वहाँ निर्वाचित सदस्य की हैसियत से काम किया। कौंसिल के अधिकार बहुत ही सीमित थे। प्रान्तीय सरकारो द्वारा प्रान्तीय कौसिल मे बहुत ही कम विधेयक प्रस्तुत किये जाते थे। इसलिए सदस्यो को उन पर बहस करने के भी कम अवसर प्राप्त होते थे। प्रतिवर्ष वित्तीय वक्तव्य (बजट की रूपरेखा) कौसिल में सरकार द्वारा पेश किया जाता था, और उस समय निर्वाचित सदस्यो को प्रशासन की गतिविधि पर अपने विचारो को व्यक्त करने का सरकार द्वारा काफी अवसर दिया जाता था। उसी अवसर पर मालवीयजी आदि प्रगतिशील सदस्य सरकार की नीतिरीति तथा क्रियाकलापो की समीक्षा करते हुए जनता की आवश्यकताओ, आकाक्षाओं और मागो को सरकार के सामने प्रस्तुत करते थे। युक्त प्रान्तीय कौसिल की कार्यवाही के विवरण से यह स्पष्ट होता है कि युक्त प्रान्तीय कौसिल में मालवीयजी ने ही इस अवसर का सबसे अधिक उपयोग किया।

वित्तीय व्यवस्था

सन् १९०४ की वित्तीय व्यवस्था की आलोचना करते हुए मालवीयजी ने कहा कि वह किसी 'न्यायसंगत नियम' पर आधारित नही है और उसके द्वारा युक्त प्रान्त के प्रति बरते जानेवाले अन्याय का निराकरण नही होगा। उन्होने बताया कि इस व्यवस्था के अन्तर्गत बम्बई और बंगाल की सरकारो को इन प्रदेशो मे अर्जित राजस्व का ६४ और ५३ प्रतिशत प्रदान किया गया है। पर युक्त प्रान्त में अर्जित राजस्व का ४३ प्रतिशत ही इस प्रान्त की सरकार को दिया गया है। इसी तरह मद्रास, बम्बई और बंगाल को ५० लाख रुपये एकमुश्त दिये गये है, जबकि युक्त प्रान्त को केवल ३० लाख रुपये ही दिये गये हैं।

इस प्रकार के पक्षपातपूर्ण व्यवहार के कारण अन्य प्रादेशिक सरकारो की तुलना में युक्त प्रान्त की सरकार की दशा अधिक गम्भीर और शोचनीय है।[1]

सिसाल के तौर पर उन्होने वताया कि प्रति हजार जनसंख्या पर जवकि वम्बई सरकार २५३ रुपये शिक्षा पर खर्च करती है, युक्त प्रान्त की सरकार केवल ९१ रुपये खर्च कर पाती है, और धन की कमी के कारण उसकी शिक्षा सम्बन्धी योजनाएँ बेकार पडी रहती है। परिणाम यह है कि जबकि वम्बई प्रान्त और बंगाल में २२-२३ प्रतिशत वच्चे प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करते है, युक्त प्रान्त में १० प्रतिशत वच्चे ही शिक्षा प्राप्त कर पाते है।[2]

इसी तरह प्रतिवर्ष जनता की चिकित्सा पर युक्त प्रान्त में १८ लाख ६५ हजार रुपये खर्च होते है, पर मद्रास में, जिसकी जनसख्या युक्त प्रान्त से ८० लाख कम है, ३४ लाख ६६ हजार रुपये खर्च किये जाते है, और बम्बई प्रदेश में, जिसकी जनसख्या युक्त प्रान्त की जनसख्या की तुलना में आधी से भी कम है, २५ लाख १५ हजार रुपये खर्च होते है।[3]

इस अन्यायपूर्ण वित्तीय व्यवस्था को वदलने की आवश्यकता पर जोर देते हुए मालवीयजी ने माँग की कि युक्त प्रान्त के साथ भी वम्बई और बगाल जैसा व्यवहार होना चाहिए। उन्होने यह भी माँग की कि जनता की अभिवृद्धि के महत्त्व को ध्यान मे रखते हुए केन्द्रीय सरकार को राजस्व में प्रान्तीय सरकारो का हिस्सा वढा देना चाहिए। उन्होने माँग की कि भूराजस्व (माल गुजारी) का ३।८ के बजाय आधा हिस्सा प्रान्तीय सरकारो को दिया जाय।[4]

लगान में कमी

'बुन्देलखण्ड भूमि-हस्तान्तरण विधेयक' पर बोलते हुए मालवीय जी ने कहा कि लगान का अधिक निर्धारण तथा उसकी उगाही ही किसानो पर कर्जे के बोझ के मुख्य कारण है। लगान में कमी करके और उसे सुविधा-जनक समय पर वसूल करके ही किसानो के कष्ट दूर किये जा सकते है, हस्तान्तरण पर प्रति-वन्ध लगाकर उन्हे दूर नही किया जा सकता।[5]

---

१. दी आनरेबिल पडित मदनमोहन मालवीय : लाइफ एण्ड स्पीचेज, सेकेण्ड एडीशन, पृ० ३२७-३३१।
२. वही, सन् १९०४, पृ० ३३५, सन् १९०८, पृ० ४७२।
३. वही, सन् १९०८, पृ० ४७२।
४. वही, सन् १९०४, पृ० ३२४-३३२, पृ० ४४५, पृ० ४७०-४७२।
५. वही, सन् १९०३, पृ० २८३-२८९।

मालवीय जी ने सन् १९०७ में बताया कि सन् १८८८ में लार्ड डफरिन के आदेश पर इस प्रान्त के मजदूरो और किसानो की आर्थिक स्थिति की जो जाँच की गयी उससे पता चला कि उनकी दशा बहुत ही असन्तोषजनक है और वह पहले से भी कही खराब है। उन्होने कहा कि यह मानने का कोई ठोस कारण नही कि पिछले पच्चीस-तीस वर्षों मे उनकी दशा में कोई सुधार हुआ है।[1] किसानो की दशा को सुधारने के लिए लगान में कमी करने की माँग करते हुए उन्होने बताया कि साख्यिकी (स्टेटिस्टिक्स) के भूतपूर्व डाइरेक्टर-जनरल ओकोनर का सुझाव था कि किसानो पर लगान का बोझ पच्चीस-तीस प्रतिशत कम किया जाय ताकि वे सुविधा से अपना जीवन निर्वाह कर सकें।[2] मालवीय जी ने बताया कि सन् १९०१ के अकाल कमीशन ने भी अपनी रिपोर्ट में लगान मे कमी करने की सस्तुति करते हुए लिखा है: "अकाल की रोक के लिए कोई दूसरी बात इतनी लाभदायक नही हो सकती जितनी किसानो की आर्थिक दशा में सुधार, ताकि वे कठिन समय की विपत्ति को सहन करने योग्य बनाये जा सके, और इस सुधार मे कोई बात इतनी बाधक नही जितनी ऐसी कृषि-व्यवस्था जिसके अन्दर किसान अपने उद्योग का पूरा लाभ प्राप्त नही कर पाते और उन्हें कर्जे की स्थिति में रहना पडता है।"[3]

मालवीय जी ने माँग की कि किसानो पर से लगान के बोझ को कम किया जाय। उसे पच्चीस-तीस प्रतिशत घटाया जाय, और घटाये हुए लगान के आधार पर लगान व्यवस्था और किसानो के अधिकारो का स्थायी बन्दोबस्त किया जाय, तथा किसानो के हितो की पूरी तौर पर रक्षा करते हुए मालगुजारी का भी स्थायी बन्दोबस्त किया जाय।[4]

उन्होने बताया कि बहुत से अंग्रेज प्रशासको और अधिकारियो ने स्थायी बन्दोबस्त का समर्थन किया है। उन्होने कहा कि नरम कर-निर्धारण के आधार पर लगान और मालगुजारी का स्थायी बन्दोबस्त ही किसानो की समृद्धि का सबसे अच्छा उपाय है।[5]

---

१ वही, पृ० ३९४-३९६।
२. वही, पृ० ४००-४०१, पृ० ४५५।
३ वही, सन् १९०६, पृ० ३७१।
४ वही, सन् १९०८, पृ० ४५५।
५. वही, सन् १९०८, पृ० ४५७।

मालवीयजी ने अकाल की भयानक स्थिति पर क्षोभ व्यक्त करते हुए कहा कि लगान की कमी के साथ-साथ सिंचाई तथा कृषि-शिक्षा का समुचित प्रबन्ध तथा उद्योग-धंधो का विस्तार अकाल का मुकाबला करने के आवश्यक उपाय है।

सिंचाई

मालवीयजी ने कहा कि सन् १८७५ के लगभग मिस्टर चेसने ने अपनी पुस्तक 'इंडियन पालिटी' में लिखा है कि चूंकि अनावृष्टि (सूखा) के कारण हिन्दुस्तान में अकाल पडते ही रहते है, इसलिए अकाल को रोकने के लिए सिंचाई का समुचित प्रबन्ध सरकार का एक महत्त्वपूर्ण कर्तव्य है और यदि वह सिंचाई द्वारा अकाल का निराकरण नही करती, तो "हिन्दुस्तान में अंग्रेज भले ही अराजकता के स्थान पर शान्ति स्थापित कर दें, समान न्याय फैला दें और अज्ञान दूर कर दें, पर यह नही कहा जा सकता कि उन्होने इस देश की जनता के प्रति अपने सम्पूर्ण कर्तव्य का पूरी तौर पर निर्वाह किया है।"[1]

मालवीयजी को दु:ख था कि अकाल कमीशनों द्वारा भी सिंचाई की सुविधाओ के विस्तार की ओर ध्यान दिलाने पर भी सरकार सिंचाई से कही अधिक रेलो के निर्माण पर ध्यान दे रही है। उन्होने कहा कि बडी नहरो के अतिरिक्त कुओ और तालाबो की आवश्यकता अकाल कमीशनो ने स्वीकार की है, और आशा व्यक्त की कि सन् १९०१ के अकाल कमीशन की संस्तुति के अनुसार सरकार सिंचाई के निमित्त कुओ और तालाबो को खोदने के लिए किसानो को प्रोत्साहित करेगी[2] और सिंचाई सम्बन्धी उनके निजी प्रयत्नो द्वारा पैदावार में जो वृद्धि होगी उस पर लगान नही लिया जायगा।[3]

कृषि शिक्षा

मालवीयजी ने सरकार से अनुरोध किया कि जापान की तरह युक्त प्रान्त में भी कृषि शिक्षा का समुचित प्रबन्ध हो। उन्होने बताया कि जापान में ४०३ प्रारंभिक कृषि स्कूल है, जिनमे प्रारम्भिक शिक्षा-प्राप्त विद्यार्थियो को खेती की प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती है। इसी तरह वहाँ ७३ माध्यमिक कृषि शिक्षा सस्थाएं है जिनमें मध्यम श्रेणी के भावी कृषको को कृषि सम्बन्धी वैज्ञानिक और व्यावहारिक शिक्षा दी जाती है। मालवीयजी ने माँग की कि जापान की इन

---

१ वही, सन् १९०६, पृ० ३७१-३७२।
२ वही, सन् १९०८, पृ० ४५८।
३. वही, सन् १९०६, पृ० ३७३।

प्रारम्भिक और माध्यमिक कृषि संस्थाओ की तरह इस प्रान्त में भी काफी संख्या में कृषि शिक्षा संस्थाए खोली जायें, और आशा व्यक्त की कि टोकियो के कृषि कालेज की तरह कानपुर कृषि महाविद्यालय के विद्यार्थी भी उच्च कोटि का अनुसन्धान करने की, तथा योग्य कृषि शिक्षक बनने की अपने में क्षमता पैदा करेंगे। अन्त में मालवीयजी ने कहा कि यदि जापान की तरह इस देश में भी "वैज्ञानिक खेती के प्रशिक्षण का प्रबन्ध किया जायगा, तो भारतीय कृषक जापान, अमरीका और यूरोप के किसान की तरह बेहतर और अधिक प्रचुर फसल पैदा कर सकेंगे, और धरती की उपज बढा पायेंगे।"[1]

औद्योगिक शिक्षा

देश के औद्योगिक विकास की आवश्यकता की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करते हुए मालवीयजी ने सरकार से औद्योगिक शिक्षा के विस्तार, तथा भारतीय उद्योगो के संरक्षण और प्रोत्साहन की माँग की। उन्होने सरकार से अनुरोध किया कि प्रत्येक जिले में, कम से कम प्रत्येक कमिश्नरी में, ऐसी माध्यमिक स्तर की औद्योगिक शिक्षा संस्थाएं खोली जायें, जिनमें बुनाई रंगाई, धुलाई, वस्त्र छपाई, लोहारी, बढईगिरी, मीनाकारी आदि की शिक्षा का प्रबन्ध हो। इन संस्थाओ में फोरमैन और उनके सहायको के प्रशिक्षण का भी प्रबन्ध हो।[2]

उन्होने यह भी कहा कि युक्त प्रान्त जैसे बडे भूभाग में कम से कम एक उच्चस्तरीय औद्योगिक शिक्षा महाविद्यालय खोला जाय, जिसमें विद्यार्थियो को इंडस्ट्रियल केमिस्ट्री (औद्योगिक रसायन विज्ञान), मेकेनिकल (यान्त्रिक) इंजीनियरी, कपडा उत्पादन और चीनी-परिष्करण की उच्चस्तरीय शिक्षा प्रदान की जाय, तथा फोरमैन और मैनेजर परिशिक्षित किये जायें। इसी तरह मालवीयजी की माग थी कि उन सब छोटे-बडे उद्योगो के प्रशिक्षण का समुचित प्रबन्ध किया जाय जो युक्त प्रान्त में चालू है या चालू किये जा सकते है।[3]

औद्योगिक विकास

मालवीयजी देश के आर्थिक उत्थान के लिए पुराने घरेलू उद्योग-धधो का पुनरुत्थान तथा नवीन बडे-बडे उद्योगो की स्थापना, दोनो जरूरी समझते थे। वे मिस्टर जे० ए० हावसन के विचार से सहमत थे कि किसी देश की सारी

---

१. वही, सन् १९०७, पृ० ४१९।
२ वही, सन् १९०९, पृ० ४२२-४२३।
३. वही, सन् १९०७, पृ० ४२२-४२३।

औद्योगिक शक्ति बृहद् उद्योगो में केन्द्रित नही की जा सकती। बहुत विकसित देशो में भी पुराने मझोले उद्योग बने रहते हैं, और नये मझोले उद्योगो का विकास होता रहता है। वे देशी उद्योगो का प्रोत्साहन और सरक्षण राज्य का कर्तव्य समझते थे, और युक्त प्रान्त की सरकार से उनकी माग थी कि वह अपने इस कर्तव्य का यथाशक्ति निर्वाह करे।[1]

मालवीयजी रूस के वित्तमंत्री काउंट डिविटे के इन विचारो से सहमत थे कि "उपभोग के क्षेत्र में राज्य जनता के लिए सस्ते और उपयुक्त माल मुहैया करे, और उत्पादन के क्षेत्र में वह देश की उत्पादक शक्ति का विकास करे। देश की आर्थिक सम्पत्ति के विकास के लिए लाभदायक स्थितियाँ पैदा करके, तथा इसी तरीके से धीरे-धीरे घरेलू होड प्रोत्साहित करके संरक्षण की नीति इस उद्देश्य की उपलब्धि के लिए प्रयत्न करती है। अपनी सीमाएँ सारे संसार को खोलकर स्वच्छन्द व्यापार जनता को सस्ता माल मुहैया करता है, पर राष्ट्रो के आर्थिक विकास के इतिहास में एक भी ऐसा दृष्टान्त नही, जिसमें राष्ट्र की उत्पादन शक्तियो का विकास इस नीति से हुआ हो। संरक्षण और मुक्त नीति का चयन समय की स्थिति पर निर्भर होता है। इसीलिए हम पाते है कि अपने ऐतिहासिक विकास के दौरान में राष्ट्रो ने अपनी व्यापारिक और औद्योगिक पद्धतियाँ बहुधा बदली है।"[2]

मालवीयजी ने रूस के वित्तमंत्री के इस उद्धरण को देते हुए मांग की कि आयात शुल्क द्वारा युक्त प्रान्त के चीनी के उद्योग का सरक्षण किया जाय। उन्होने कहा कि सन् १८९९ में विदेशी चीनी पर आयात शुल्क लगाते समय सर जेम्स वेस्टलैंड ने कहा था . "हमारा दावा है कि इस देश में अपने उद्योग को बनाये रखने का हमें वैसा ही अधिकार है जैसा कि विदेशी राष्ट्र अपने क्षेत्रो में चीनी का उद्योग और गन्ने की खेती को बनाये रखने और प्रोत्साहित करने का दावा करते हैं।"[3] मालवीयजी ने कहा कि यह दलील, इस समय भी चीनी व्यवसाय के संरक्षण के लिए उतनी ही न्यायसंगत है जितनो वह सन् १८९९ में थी। उन्होनें यह भी कहा कि प्रस्तावित आयात शुल्क उस समय तक ही चालू रहना चाहिए जब तक सरकार की सहायता और सहयोग से हमारा चीनी

१ वही, सन् १९०७, पृ० ४२४-४२६।
२. वही, सन् १९०७, पृ० ४१५-४१६।
३. वही, सन् १९०७, पृ० ४१७।

का व्यवसाय इतना समुन्नत नही हो जाता कि वह विदेशी चीनी का खुले बाजार मे मुकाबला कर सके।[1]

जनकल्याण नीति

मालवीयजी ने 'अज्ञानता में फँसी, निर्धनता से दबी, अस्वास्थ्यकर प्रतिवेश मे रहनेवाली तथा रोगो से ग्रसित जनता' की दयनीय दशा की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट करते हुए उसको सुधारने के लिए आवश्यक प्रयत्न करने की सरकार से प्रार्थना की। उन्होंने कहा कि जनता की स्थिति मे सुधार ही अच्छी सरकार की कसौटी है और इस कर्तव्य का समुचित निर्वाह करके ही भारत सरकार सभ्य सरकार होने का दावा कर सकती है।[2] उन्होंने कहा कि जनोपयोगी सेवाओ पर राजकोष से जितना धन खर्च किया जा रहा है, वह नाकाफी है। उनका सुझाव था कि प्रशासन और फौज पर खर्चा कम करके जिलाबोर्डों, नगर पालिकाओ तथा प्रान्तीय सरकारो द्वारा जनोपयोगी सेवाओ, विशेषत. शिक्षा और स्वास्थ्यरक्षा सम्बन्धी सेवाओ, पर अधिक धन खर्च किया जाय, ताकि जनता सुखी और सुशिक्षित जीवन व्यतीत कर सके। उनका सुझाव था कि जिला बोर्डों को लगान का २५ प्रतिशत दिया जाय, तथा राजस्व मे प्रान्तीय सरकारो का भाग बढा दिया जाय।

शिक्षा

वे बम्बई के भूतपूर्व गवर्नर एलफिस्टन के इस विचार से सहमत थे कि "गरीबो की सुख शान्ति बहुत हद तक शिक्षा पर निर्भर है। इसके जरिए ही वे विवेक और आत्म सम्मान के वे स्वभाव प्राप्त कर सकते है जिनसे सब गुण विकसित होते है", और वे चाहते थे कि सरकार बडे पैमाने पर शिक्षा का व्यापक प्रसार करे। मालवीयजी प्रारम्भिक शिक्षा का समुचित प्रबन्ध राज्य का एक प्रमुख कर्तव्य समझते थे, और चाहते थे कि सरकार इस पर विशेष ध्यान दे। उनकी माँग थी कि प्रारम्भिक शिक्षा निःशुल्क दी जाय, तथा सब बच्चो के लिए उसका प्रबन्ध किया जाय।[3] उनका सरकार से अनुरोध था कि वह ऊँचे पैमाने पर वैज्ञानिक पद्धति द्वारा कृषि शिक्षा, औद्योगिक शिक्षा, चिकित्सा शास्त्र की शिक्षा, तथा उच्चस्तरीय ज्ञान विज्ञान की शिक्षा का प्रबन्ध करे। उनको माँग थी कि सर्वसाधारण स्कूलो में बौद्धिक शिक्षा के

---

१. वही, सन् १९०७, पृ० ४१७-४१८।
२. वही, सन् १९०७, पृ० ३९४।
३. वही, सन् १९०८, पृ० ४६५-४६६।

साथ-साथ हस्त कला की शिक्षा भी दी जाय। विद्यार्थियो के ज्ञान को व्यावहारिक और प्रयोगात्मक वनाया जाय। लेबोरेटरी वर्क और शापवर्क द्वारा उनमे प्रेक्षण (आवजरवेशन) की शक्ति पैदा की जाय। उनके ज्ञान को यथा-तथ्य बनाया जाय, उनमें आत्मनिर्भरता की आदत डाली जाय। उनके ज्ञान को जीवनोपयोगी वनाया जाय।[1] वे चाहते थे कि प्रयाग के म्योर सेंट्रल कालेज को उच्चकोटि की शिक्षा-सस्था का स्वरूप दिया जाय, और प्रान्त में एक ऐसा प्रशिक्षण विश्वविद्यालय स्थापित किया जाय, जहाँ विभिन्न विपयो के उच्चस्तरीय विद्वान् अपने अध्यापन और अनुसन्धान द्वारा विद्यार्थियो को अनुप्राणित और प्रशिक्षित करें, और जो वास्तव मे विद्वत्ता, प्रतिभा की खोज और विकास, वैज्ञानिक ज्ञान और अनुसन्धान की तरक्की एव व्यावसायिक स्तर के उन्नयन का केन्द्र बन सकें।[2]

स्वास्थ्य

मालवीयजी को दुःख था कि स्वास्थ्य-रक्षा का समुचित प्रवंध न होने के कारण प्रतिवर्ष हजारो वच्चे और नवयुवक, माताएँ और वहनें मौत का शिकार हो जाती है, और लाखो अपनी शारीरिक और वौद्धिक शक्ति का ठीक ठीक विकास नही कर पाते। उन्होने वहुत ही सतप्त हृदय से कहा कि जबकि ग्रेट ब्रिटेन में प्रतिवर्ष मृत्यु संख्या १६ प्रति हजार है, वहाँ भारत में प्रतिवर्ष मृत्यु संख्या ३५ प्रति हजार, और युक्त प्रात मे ४४ प्रति हजार है। उन्होने यह भी वताया कि युक्त प्रात के २५ जिलो में तो मृत्यु संख्या जन्म संख्या से भी अधिक है।[3] सन् १९०४ में उन्होने यह भी बताया कि पिछले तीन वर्षों में युक्त प्रान्त में दो लाख से अधिक व्यक्तियो की मृत्यु प्लेग से हुई है, और जबकि इस प्रान्त में प्रति सप्ताह दस हजार इस महामारी के शिकार हो रहे हैं, सारे देश में उनकी सख्या चालीस हजार प्रति सप्ताह है।[4]

उनका सरकार से अनुरोध था कि वह स्वास्थ्य-रक्षा के महत्त्व को स्वीकार करते हुए उसका समुचित प्रवन्ध करे। वे चाहते थे कि इंगलिस्तान की तरह यहाँ भी कानून द्वारा गन्दगी से नदियो के स्वच्छ जल की रक्षा की जाय, नगरों की गन्दगी को नदियो में न डाला जाय। उनके समापन का दूसरा प्रवन्ध किया

---

१ वही, सन् १९०७, पृ० ४२६-४२७।
२ वही, सन् १९०४, पृ० ३४३।
३ वही, सन् १९०७, पृ० ३९८।
४. वही, सन् १९०४, पृ० ३५२।

जाय ।[१] उनका सुझाव था कि चिकित्सा शास्त्र की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध किया जाय । नगरों के अपवाह तंत्र (ड्रेनेज) को ठीक किया जाय, बस्तियों की स्वच्छता को सुधारा जाय । उनकी धरती को शुष्क और स्वस्थ रखा जाय । भस्मकों द्वारा नगर की गंदगी भस्म कर दी जाय । नगरों के बाहर स्वस्थ स्थान पर थोड़े से मकान बनाये जायें, जिनमें प्लेग आदि महामारी के अवसरों पर रोगाक्रान्त क्षेत्रों से नगर-निवासी भेजे जा सकें ।

बजट पर विचार

मालवीयजी को इस बात का क्षोभ था कि बजट बिल्कुल तैयार कर लेने के बाद कौंसिल के सामने रखा जाता है, जिसके कारण कौंसिल की बहस यथार्थ-हीन हो जाती है, उसका सरकार के वित्तीय निर्णयों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ पाता । सन् १९०८ में उन्होंने सरकार से अनुरोध किया कि बजट को अन्तिम रूप से स्वीकार करने से पहले उसका प्रारूप कौंसिल के सामने रखा जाय, ताकि गैर-सरकारी सदस्यों के सुझावों के सन्दर्भ में सरकार उसे संशोधित कर सके ।[२] यद्यपि बम्बई और मद्रास में यह प्रथा चालू हो गयी थी, पर युक्त प्रान्त की सरकार ऐसा करने को राजी नहीं हुई ।

वित्तीय वक्तव्य की समीक्षा के दौरान मालवीयजी ने सरकार की कतिपय प्रशासनिक नीतियों की भी कड़ी आलोचना की । कमायूँ में प्रचलित बेगार की प्रथा की कड़ी आलोचना करते हुए उन्होंने सन् १९०७ में जोरदार शब्दों में घोषित किया कि 'बेगार ब्रिटिश प्रशासन पर कलंक" है, उसे फौरन खत्म कर देना चाहिए ।[३] उन्होंने कहा कि उस समय जबकि जनता की दशा को सुधारने के लिए शिक्षा और स्वास्थ्य-रक्षा पर अधिक धन व्यय करने की आवश्यकता है, उस समय अनावश्यक कामों पर रुपया बर्बाद करना अवश्य ही अनुचित है । उन्होंने यह भी कहा कि हिन्दुस्तान की मौजूदा आर्थिक स्थिति में जहाँ एक भारतीय नियुक्त किया जा सकता है वहाँ यूरोपियन नियुक्त करना 'पाप' है ।[४] उन्होंने कहा कि सचिवालयों के उच्च पदों पर योग्य भारतीयों के बजाय भारत में रहनेवाले यूरोपियनों को नियुक्त करना भारतीय नवयुवकों के साथ अन्याय है ।[५] उन्होंने माँग की कि प्रान्त की सार्वजनिक सेवाओं में

१ वही, सन् १९०४, पृ० ३५०-३५१ ।
२ वही, सन् १९०८, पृ० ४५० ।
३. वही, सन् १९०७, पृ० ४४८ ।
४. वही, सन् १९०८, पृ० ४७४ ।
५ वही, सन् १९०४, पृ० ३५९-३६३ ।

भरती होने का भारतीयो का मौलिक अधिकार है। यदि सरकार भारतीयो के इस दावे की उपेक्षा करते हुए केवल प्रजाति, देश, धर्म और रंग के कारण यूरोपियनो या यूरेशियनों को भारतीयो पर तरजीह देती है, तो वह अपने अधिकारो का दुरुपयोग करती है।[1] उन्होने कहा कि उनकी राय में किसी एक वर्ग के प्रति अनुचित पक्षपात की तथा व्यक्तियो पर किये गये अन्यायो की शिकायतो की प्रतियोगिता परीक्षा ही सबसे वडी रक्षा है। पर उन्हें खेद था कि इस प्रथा का विस्तार करने के वजाय उसे डिप्टी कलक्टरो की नियुक्तियो के विषय में समाप्त कर दिया गया है।[2]

सन् १९०६ में मालवीयजी ने वित्तीय वक्तव्य पर वोलते हुए कहा : "वित्त व्यवस्था केवल अकगणित नही है। वित्तव्यवस्था एक वडी नीति है। निर्दोष वित्तव्यवस्था बिना निर्दोष शासन संभव नही है, और निर्दोष शासन भी विना निर्दोष वित्त-व्यवस्था सभव नही है।"[3] इन शब्दो के साथ मालवीयजी ने भारत सरकार से अपील की कि वह युक्त प्रान्त के अशदान और आवश्यकताओ को ध्यान में रखते हुए ऐसी वित्तनीति अपनाये जिससे जनता के लिए एक बडी सभ्य सरकार की प्रजा की तरह रहना और फलना फूलना सभव हो।[4]

सन् १९०८ में उन्होने कहा . "सामाजिक स्वास्थ्य विज्ञान के एक विद्वान् ने कहा है कि जहाँ अग्नि का भय अधिक हो, वहाँ असख्य चिनगारियो के वुझाने से समाज की इतनी सेवा नही होती जितनी मकान का बुद्धि-सगत निर्माण और उसका प्रस्तुत परिस्थितियो से अनुकूलन।"[5] इसी तरह "अकाल और महामारी की स्थितियो में जनता की सहायता करते रहने से कही अच्छा यही है कि सरकार अपनी शक्तियो और साधनो को जनता की शक्ति के निर्माण में, उसके मस्तिष्क को ज्ञान से प्रदीप्त करने में, उसके घरो के स्वास्थ्य प्रतिवेश के सुधार में, तथा अपनी आमदनी को वढाने के नये स्रोतो को अपनाने की क्षमता प्राप्त करने में इस तरह प्रयोग करे कि वह अकाल और रोगो का आज से कही अधिक अच्छी तरह स्वयं मुकाबला कर सके।"[6]

श्री सी० वाई० चिन्तामणि का विश्वास था कि "केन्द्रीय विधान सभा में सर फीरोजशाह मेहता और गोपाल कृष्ण गोखले ने, बगाल कौंसिल में

---

१. वही, सन् १९०८, पृ० ४७५।
२. वही, सन् १९०४, पृ० ३६४-३६५।
३. वही, सन् १९०६, पृ० ३९०।
४. वही, सन् १९०६, पृ० ३९०-३९१।
५ वही, सन् १९०८, पृ० ४७५-४७६।
६. वही, सन् १९०८, पृ० ४७६।

श्री सुरेन्द्र नाथ बनर्जी और श्री आनन्द मोहन बोस ने, मद्रास में सर्वश्री विजय राघवाचार्य और सुबाराव पन्तलू ने, बम्बई में सर चिमनलाल सीतलवाद और सर गोकुलदास पारख ने, और युक्त प्रान्त में पण्डित मदन मोहन मालवीय ने अपनी ससदीय क्षमता का तथा उत्तरदायित्व भावना का जो परिचय दिया, उसने मार्ले-मिटो सुधारो का मार्ग प्रशस्त किया।"[१]

नये सुधारों की प्राप्ति में नि सन्देह जनान्दोलन और जनजागृति का भी महत्त्वपूर्ण योगदान था। इनके बिना विधायको द्वारा क्षमता के प्रदर्शन मात्र से नये सुधारो का मिलना संभव नही था। पर विधायको की क्षमता का भी अंशदान अवश्य था। जनजागृति और जनान्दोलन में विधायको के अतिरिक्त बहुत से दूसरे नेताओं और राजनीतिज्ञो का भी भरपूर योगदान था। पर इन मामलो में भी इन विधायको के योगदान से इनकार नही किया जा सकता। युक्त प्रान्त की जनता में राजनीतिक चेतना पैदा करने में मालवीयजी का तो नि सन्देह ही बहुत बडा हाथ था।

---

१. चिन्तामणि : इडियन पालिटिक्स सिन्स म्युटिनी, पृ० ४५-४६।

७. कमेटियों में गवाही और कार्य

विकेन्द्रीकरण संघ व्यवस्था

सन् १९०८ में युक्त प्रान्त की विधान कौंसिल के सदस्य की हैसियत से मालवीयजी ने विकेन्द्रीकरण कमीशन (डीसेण्ट्रलाइजेशन कमीशन) के सामने गवाही देते हुए कहा : "प्रान्तीय सरकारे भारत सरकार की केवल प्रतिनिधि मात्र है। उन्हें अपने आर्थिक तथा अन्य सभी प्रश्नो की स्वीकृति भारत सरकार से लेनी पड़ती है। प्रान्तो की सारी व्यवस्था भारत सरकार के कठोर नियंत्रण में है। विना उसकी स्वीकृति के प्रान्तीय सरकारें 'कोई भी परिवर्तन नही' कर सकती।"[1]

उन्होने बताया कि "भारत सरकार सम्पूर्ण करो का अपने को स्वामी समझती है"[2], और यद्यपि कुछ वित्तीय सुधारो के बाद सन् १९०४ की व्यवस्था में कुछ करो की सम्पूर्ण आय और कुछ करो की आय का एक अंश प्रान्तीय सरकारों को प्रदान कर दिया गया है, पर भारत सरकार आवश्यकता के नाम पर इस व्यवस्था में अपनी इच्छा से परिवर्तन कर सकती है। इस व्यवस्था से संपूर्ण राजस्व का लगभग एक चौथाई भाग ही प्रान्तीय सरकारो को मिल पाता है।[3] इसी वात से, मालवीयजी ने कहा, प्रान्तीय सरकारो की शासन शक्ति और आर्थिक स्थिति का ठीक पता लग सकता है। सरकार की वित्त-नीति और वित्त-व्यवस्था की समीक्षा करते हुए मालवीयजी ने कहा कि सम्पूर्ण राजस्व का "एक चौथाई से भी कम भाग" जनकल्याण सम्बन्धी कामो पर खर्च होता है, जिसका परिणाम यह है कि "बाहर से इस साम्राज्य की जितनी तड़क-भड़क दिखाई दे रही है, उतनी ही भारतवासियो की दशा बुरी हो गयी है",[4] और जब तक "इस व्यवस्था में एकदम परिवर्तन नही किया जायगा, तब तक जनता के अत्यन्त हितकर स्वत्वो की उन्नति असम्भव है।"[5]

मालवीयजी ने बताया कि भारत के "आठ प्रमुख प्रान्तो का क्षेत्रफल और इनकी जनसंख्या यूरोप के कई बड़े बड़े राज्यो के बराबर है, और इन प्रान्तो में

---

१ सीताराम चतुर्वेदी—महामना पंडित मदन मोहन मालवीय, खण्ड ३, पृ० १४२-१४३। २. वही, पृ० १४३।
३. वही, पृ० १४२। ४. वही, पृ० १४३।
५. वही, पृ० १४४।

से प्रत्येक अलग-अलग राज्य प्रबन्ध करने के लिए पर्याप्त, विस्तृत, और उपयुक्त है।"[1] इन प्रान्तो की सरकारो को प्रशासन का काफी अनुभव है, और देश का हित इसी में है कि इनके प्रशासनिक और आर्थिक अधिकारो का विस्तार करके इन्हें अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण बनाया जाय।[2]

मालवीयजी ने कहा कि उनकी राय में "इस ध्येय की पूर्ति के लिए वर्तमान प्रचलित व्यवस्था को संघ व्यवस्था में बदल देना चाहिए, प्रान्तीय सरकारो को अब भारत सरकार की आज्ञाकारिणी प्रतिनिधि मात्र न रखकर अलग अर्द्धस्वतन्त्र सरकारें बना देना चाहिए।"[3] उन्होने बताया कि लार्ड मेयो के जमाने मे इस बात की चर्चा चली थी, पर प्रस्ताव स्वीकार नही हुआ। पर यह विचार यदि उस समय स्वीकार हो गया होता, तो "प्रान्तीय सरकारो ने अपनी शासित जनता की समृद्धि तथा सर्वतोमुखी उन्नति मे अधिक ध्यान दिया होता।"[4]

उन्होने कहा कि संघ व्यवस्था, जिसकी बहुत आवश्यकता है, आसानी से स्थापित की जा सकती है। उससे साम्राज्य की एकता मे कोई शिथिलता नही आ पायेगी, भारत सरकार की फजूलखर्ची की आदत बन्द होगी, और प्रान्तीय सरकारें जनता का विशेष हित कर पायेंगी।[5]

मालवीयजी ने स्वीकार किया कि संघीय व्यवस्था स्थापित करके प्रान्तीय सरकारो पर से भारत सरकार का नियंत्रण हटा लेने पर उनका स्वरूप बदलना होगा। प्रत्येक प्रान्त में कार्यपरिषद् स्थापित करनी होगी और कम से कम दो ऐसे योग्य और अनुभवी भारतीयो को उसका सदस्य नियुक्त करना होगा जो अपने विचार और दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से सरकार के सम्मुख रख सकें। प्रान्तीय विधान कौंसिलो का विस्तार करना होगा, उनमें जनता के प्रतिनिधियो की सख्या काफी बढानी होगी, और उन कौंसिलो को बजट पर बहस करने के साथ साथ प्रस्ताव द्वारा उसमें संशोधन प्रस्तुत करने का अधिकार देना होगा। मालवीयजी का कहना था कि कौशलपूर्ण व्यय, लाभयुक्त और न्यायसगत कर, तथा आय और व्यय का पूर्ण सामंजस्य तभी सभव है जब विवेकशील तथा परिश्रमी जनसमुदाय उस पर अपने विचारो द्वारा शासन करे। अतएव जनता के विचारो को समुचित रूप से प्रकट करने के लिए विधान कौंसिलो मे जनता के प्रतिनिधियो को स्थान देना चाहिए, और उस विचार को प्रभावशाली बनाने

---

१. वही, पृ० १४४।
२ वही, पृ० १४४।
३. वही, पृ० १४४।
४. वही, पृ० १४४।
५. वही, पृ० १४५।

के लिए प्रतिनिधियो को कच्चे चिट्ठे पर स्वतंत्ररूप से वादविवाद करने का अवसर देना चाहिए।[1]

अन्त में मालवीयजी ने कहा कि बम्बई और मद्रास प्रान्तो के समान ही युक्त प्रान्त की उचित शासन-व्यवस्था के लिए इस प्रान्त में भी चार सदस्यो की कार्यपरिषद् स्थापित की जाय, जिसके दो सदस्य भारतीय हो, और उसका प्रमुख शासक गवर्नर हो जो "इंग्लैंड का कोई योग्य और अनुभवी राजनीतिज्ञ हो।"[2]

सिविल सेवाएं

३१ मार्च सन् १९१३ को मालवीयजी ने लार्ड इस्लिंगटन की अध्यक्षता में गठित पब्लिक सर्विस कमीशन को युक्तप्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की ओर से एक मेमोरंडम पेश किया, तथा लिखित और मौखिक गवाही दी। मेमोरंडम प्रस्तुत करते हुए उन्होने कहा कि उनकी कमेटी का विश्वास है कि "भारतीय जनता की नैतिक, आर्थिक और बौद्धिक उन्नति ही इस देश में अंग्रेजो के अस्तित्व का नैतिक औचित्य है, और ब्रिटिश राज्य की शक्ति और स्थायित्व पिचहत्तर हजार सैनिको के बजाय उसकी नेकनियती और न्यायभावना के प्रति जनता का विश्वास है, जिसे बनाये रखना भारतीय प्रशासन की असल समस्या है", और इसके लिए "भारत की राजनीतिक आकाक्षाओ के प्रति इंगलैंड की यथार्थ सहानुभूति आवश्यक है।"[3]

उन्होने कमेटी के मेमोरंडम तथा अपनी गवाही दोनो मे प्रतिद्वन्द्विता की प्रथा का समर्थन करते हुए माँग की कि इगलैंड के अतिरिक्त भारत में भी सिविल सर्विस में भरती के लिए परीक्षा का प्रबन्ध हो। वे चाहते थे कि परीक्षा द्वारा ही योग्य नवयुवको का चुनाव किया जाय। परीक्षार्थी की आयु २२ से २४ वर्ष तक की हो, और वह किसी विश्वविद्यालय का ग्रेजुएट हो। उनका सुझाव था कि प्रशासन और न्याय विभाग के लिए अलग-अलग परीक्षाएं हो, और प्रशासन विभाग के सिविल सर्वेंटो को न्याय विभाग मे नियुक्त न किया जाय। उनका सुझाव था कि परीक्षा के विषयो का चुनाव भारत की आवश्यकताओ को देख कर किया जाय। अतः ग्रीक और लैटिन साहित्य एवं

---

१. वही, पृ० १४५-१४६। २. वही, पृ० १४५-१४६।
३. इस्लिंगटन पब्लिक सर्विस कमीशन रिपोर्ट, जिल्द ५ (युक्तप्रान्त की गवाहियाँ)।

रोमन और ग्रीक इतिहास के बजाय संस्कृत और अरबी, तथा भारतीय इतिहास और कानून परीक्षा की विषय सूची में शामिल किये जायें।[1]

उन्होंने कहा कि प्रशासन का कोई पद अंग्रेजो के लिए सुरक्षित नही किया जाय, और ब्रिटिश उपनिवेशो के नागरिको को इंडियन सिविल सर्विस में भरती होने का अधिकार तभी दिया जाय, जब उपनिवेशो में भारतीयो के अधिकार समान हो, और उन्हें वहाँ की सिविल सर्विस में भरती होने का अधिकार हो।[2]

उनकी कमेटी और उनकी यह भी राय थी कि फौजी अफसरो को सिविल पोस्टो पर नियुक्त न किया जाय। प्रान्तीय सिविल सर्विस में भी परीक्षा द्वारा ही भरती हो। मुंसिफों को फौजदारी मुक़दमो की न्यायिक जांच करने का भी अधिकार दिया जाय। प्रवेशको की शिक्षा के लिए अलग से विद्यालय चालू करने के बजाय उन्हें वरीय अधिकारियो द्वारा प्रशिक्षित किया जाय।[3]

जाति, वर्ग या सम्प्रदाय के आधार पर सरकारी नौकरियो पर नियुक्तियो के सुझाव का विरोध करते हुए मालवीयजी ने कहा कि खुली परीक्षा द्वारा ही सब वर्गों और सम्प्रदायों के नवयुवक योग्यता के आधार पर निष्पक्ष भाव से सरकारी नौकरी में भरती किये जायें। उन्होंने कहा कि सब वर्ग और सम्प्रदाय शिक्षा तथा सरकारी नौकरी के लिए समान अवसरों की मांग करने के हकदार हैं, पर वे यह मांग करने के हकदार नही कि उनके नवयुवक सरकारी नौकरी में भरती किये जायें, जब तक कि वे दूसरे सम्प्रदायो के नवयुवको का सफलता से मुकाबला करके उसके लिए अपनी योग्यता सिद्ध न कर दें। सरकारी नौकर सारे समाज की सेवा के लिए, न कि किसी सम्प्रदाय की सेवा के लिए, नियुक्त किये जाते हैं, और जनहित की माँग है कि उत्तरदायित्व और अधिकार के पदो पर वही नियुक्त किये जायें जो जनसेवा (सरकारी नौकरी) के लिए अपेक्षित क्षमता के मानदण्ड पर पहुँच चुके हैं।[4]

औद्योगिक विकास

मार्च सन् १९१६ में सर इब्राहीम रहमतुल्ला ने केन्द्रीय असेम्बली में प्रस्ताव किया कि भारत में उद्योगो के विकास के उपायो पर विचार करने के लिए सरकार एक कमेटी नियुक्त करे। इस प्रस्ताव में उन्होंने भारत सरकार को पूर्ण वित्तीय स्वशासन विशेषतः आयात, निर्यात और उत्पादन शुल्को के

---

१ वही। २. वही।
३ वही। ४ वही।

दिये जाने पर विचार करने पर विशेष रूप से जोर दिया। उन्होने अपने भाषण में भी औद्योगिक उन्नति के निमित्त वित्तीय स्वशासन की आवश्यकता पर जोर देते हुए आशा व्यक्त की कि जनमत की यह माँग शीघ्र स्वीकार की जायगी।

सरकारी प्रवक्ता सर विलियम क्लार्क ने घोषित किया कि सरकार ने एक कमेटी के वजाय एक कमीशन नियुक्त करने का पहले ही निश्चय कर लिया है, पर वित्तीय स्वशासन के प्रश्न पर युद्ध के वाद अलग से विचार किया जायगा।

इस तरह वित्तीय स्वशासन के प्रश्न को तथा आयात, निर्यात और उत्पादन शुल्क सम्बन्धी नीतियो को स्पष्ट रूप से कमीशन की जाँच से अलग करते हुए भारत सरकार ने सर टी० एच० हालैड की अध्यक्षता में १९ मई सन् १९१६ को इडियन इंडस्ट्रियल कमीशन (भारतीय औद्योगिक आयोग) नियुक्त किया। मालवीयजी भी इस कमीशत के एक सदस्य नियुक्त हुए। सर फजल भाई करीम भाई, सर राजेन्द्र मुकर्जी और सर दोरावजी जमशेदजी इस कमीशन के तीन दूसरे भारतीय सदस्य थे। ये तीनो प्रसिद्ध भारतीय औद्योगिक थे। इसके अतिरिक्त पाँच अंग्रेज सदस्य नियुक्त किये गये। पर इनमें दो काम नही कर सके। अत आठ सदस्यो ने सन् १९१८ में अपनी रिपोर्ट तैयार की। कहा जाता है कि मालवीयजी के आग्रह के कारण रिपोर्ट की पाण्डुलिपि कई बार वदलनी पडी, और जब उसके वाद भी उन्होंने एक अलग नोट लिखने का विचार व्यक्त किया, तव सर राजेन्द्र मुकर्जी, जो हालैड साहव की अनुपस्थिति में अध्यक्ष का काम करते थे, उन पर रुष्ट हो गये। पर मालवीयजी अपनी बात पर डटे रहे।

रिपोर्ट में संस्तुति की गयी कि भारत को आत्मनिर्भर वनाने के उद्देश्य से भविष्य में सरकार को देश की औद्योगिक उन्नति में सक्रिय भाग लेना चाहिए, और इसके लिए उसे पर्याप्त वैज्ञानिक तथा प्रशासनिक मशीनरी भी सघटित करनी चाहिए। कमीशन ने अनुभव किया कि कच्चे माल तथा औद्योगिक सम्भावनाओ में सम्पन्न होते हुए भी भारत की औद्योगिक उपलब्धियाँ बहुत ही कम है। भारतीय श्रमिको में क्षमता की कमी है, भारतीय बुद्धजीवियो में उद्योगवाद की सही परम्परा का अभाव है, औद्योगिक शिक्षा का प्रवन्ध बहुत ही अपर्याप्त है। भारतीय पूँजी का झुकाव उद्योगो के वजाय व्यापार की ओर है। पुराने कुटीर उद्योगो का ह्रास होता जा रहा है। नवीन यान्त्रिक उद्योगो के विकास की गति वहुत ही धीमी है। बुनियादी उद्योगों की कमी के

कारण अन्य देशो पर भारत की औद्योगिक निर्भरता युद्ध के अवसर पर विशेष रूप से भयावह सिद्ध हो सकती है। नवीन वैज्ञानिक उपकरणो के प्रयोगो का अभाव खेती के उत्पादन की वृद्धि में वाधक है, तथा रेलवे की भाडा सम्बन्धी नीति देश के औद्योगिक विकास के प्रतिकूल है। कमीशन की निश्चित धारणा थी कि इन कमियो और त्रुटियो को दूर करने में सरकार का सक्रिय भाग नितान्त आवश्यक है।[1]

उसकी संस्तुतियाँ थी कि प्रारम्भिक शिक्षा को व्यापक वनाया जाये, तथा जिन क्षेत्रो मे सम्भव हो वहाँ उसे अनिवार्य वनाया जाय।[2] औद्योगिक शिक्षा का समुचित प्रवन्ध किया जाय। शिल्प विज्ञान की शिक्षा को अधिक प्रयोगात्मक वनाया जाय।[3] यान्त्रिक इंजीनियरी की शिक्षा पर विशेप ध्यान दिया जाय।[4] श्रमिको के आवास, स्वास्थ्य तथा कल्याण की वृद्धि पर समुचित ध्यान दिया जाय,[5] और औद्योगिक वैक खोले जायें।[6] कुटीर उद्योगो की वृद्धि के लिए औद्योगिक सहकारिता को प्रोत्साहित किया जाय,[7] रेलवे की भाडा नीति में आवश्यक तब्दीली की जाय।[8] जल मार्गों को ठीक किया जाय,[9] खेती के आधुनिक तरीको को प्रोत्साहित किया जाय,[10] वैज्ञानिक और प्राविधिक सेवाओ को स्थापित किया जाय, तथा भारत और विदेश में अनुसंधान की व्यवस्था की जाय।[11] व्यापारिक और औद्योगिक आँकडे तैयार करने का प्रयत्न किया जाय,[12] यथा सम्भव रेलवे और सरकार अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए सामान भारत में खरीदें,[13] तथा सरकार उद्योगो को प्राविधिक[14] और आर्थिक सहायता दे।[15]

मालवीयजी ने कमीशन की इन सव संस्तुतियो की पुष्टि करते हुए एक महत्त्वपूर्ण टिप्पणी भी लिखी। इसमें उन्होने सरकार की औद्योगिक और वित्तनीति की विस्तार से समीक्षा करते हुए वहुत से महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये। यह टिप्पणी

---

१. इंडियन इंडस्ट्रियल कमीशन रिपोर्ट, पृ० ४९-५६।
२. वही, पृ० २८२।
३. वही, पृ० २७६-२७८।
४. वही, पृ० २७७।
५. वही, पृ० २८२।
६. वही, पृ० २८६।
७. वही, पृ० २८४।
८. वही, पृ० २८५।
९. वही, पृ० २८६।
१०. वही, पृ० ५८-६०।
११. वही, पृ० २७५।
१२. वही, पृ० २७८।
१३. वही, पृ० २७९।
१४. वही, पृ० २८०।
१५. वही, पृ० २८४-२८६।

नि.संदेह भारत के व्यावसायिक और आर्थिक इतिहास के अध्ययन के लिए बहुत ही लाभप्रद है।[1]

इसमें बहुत से प्रमाणो के आधार पर उन्होने सिद्ध किया कि अति प्राचीन काल से भारत सुखसुविधा-सम्पन्न था, अपनी समृद्धि तथा कलाकौशल के लिए प्रसिद्ध था, और अंग्रेजो के शासन काल में ब्रिटेन की औद्योगिक क्रान्ति से कही अधिक अंग्रेज अधिकारियो की वित्तीय और आर्थिक नीति ही भारत के औद्योगिक ह्रास का कारण थी। ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासनकाल में जबकि ब्रिटिश सरकार ने अपने देश के उद्योगो की रक्षा के लिए हिन्दुस्तानी माल पर बहुत अधिक आयात-कर लगा दिये थे, कम्पनी क अधिकारियो ने भारत में आनेवाले ब्रिटिश माल को कर-भार से मुक्त कर रखा था, तथा भारत के उद्योग धधो की रक्षा करने के बजाय ब्रिटिश माल के आयात को प्रोत्साहित किया था। उन्होने प्रमाणो से यह भी सिद्ध किया कि सन् १८५७ के बाद ब्रिटिश सरकार ने भी मुक्त व्यापार के नाम पर भारत के औद्योगिक विकास की आवश्यकताओ की उपेक्षा की, जिसके फलस्वरूप भारत का औद्योगिक ह्रास हुआ, कृषि पर जीवन-निर्वाह का बोझ बढा, तथा जनता की निर्धनता बढती गयी।[2]

मालवीयजी ने स्वीकार किया कि दुर्भिक्ष का आगमन सूखा पडने के कारण होता है, पर जैसा कि अकाल आयोग ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है, जनता की निर्धनता के कारण ही लाखो व्यक्ति मौत के शिकार हो जाते हैं। उन्होने बहुत ही संतप्त हृदय से भारतीय सरकार की औद्योगिक नीति तथा गतिविधि की समीक्षा करते हुए संस्तुति की कि अकाल आयोग की सस्तुतियो को ध्यान में रखते हुए भारतीयो की निर्धनता को दूर करने के निमित्त देश के व्यावसायिक और औद्योगिक विकास के लिए भारत सरकार प्रयत्न करे।[3]

उन्होने इस सम्बन्ध मे कृषि शिक्षा, औद्योगिक शिक्षा, व्यापारिक शिक्षा, तथा प्रयोगात्मक विज्ञान की शिक्षा के समुचित प्रबन्ध पर विशेष जोर दिया, एव पुराने उद्योग धधो का समुचित संरक्षण तथा नये उद्योगो का प्रोत्साहन सरकार का कर्तव्य बताया। उन्होने प्रान्तो तथा केन्द्र में औद्योगिक विभाग के गठन की तथा एक अर्धस्वतत्र वैज्ञानिक परिषद् या बहुशिल्प शिक्षण संस्था (इम्पीरियल पालिटेकनिक इन्स्टीट्यूट) के आधीन रासायनिक अन्वेषण के संचालन की व्यवस्था

१. इंडियन इण्डस्ट्रियल कमीशन रिपोर्ट—नोट, पृ० २९२-३५५।
२. वही, पृ० २९४-३०५। ३. वही, पृ० ३०६-३०८।

की आवश्यकता की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया, और वैज्ञानिक एवं व्यावसायिक वृत्तियो की व्यवस्था की सरकार से संस्तुति की। देश में प्रारम्भ होने योग्य व्यावसायिक उद्योगो की स्थापना के लिए उन्होने संस्तुति की कि "शीघ्रातिशीघ्र बाहर से कलो तथा विशेपज्ञो को प्रधान व्यवस्थापक के पदो के लिए बुलाया जाय, तथा भारतीय पूँजीपतियो को उद्योगो को प्रारम्भ करने में सभी प्रकार की संभव सहायत्ता दी जाय।"[1]

अन्त में उन्होने फ्रेड्रिक निकलसन के इस विचार को पुष्टि की कि "भारतीय उद्योगों के मामले में भारत का हित हमारा पहला, दूसरा तथा तीसरा ध्येय होना चाहिए। पहले से मेरा मतलव है कि यहाँ के माल को प्रयोग में लाना चाहिए, दूसरे, उद्योग धधे खोलने चाहिए और तीसरे इनका लाभ देश मे ही रहना चाहिए।"[2] उन्होने आशा व्यक्त की कि "यदि इस भाव से प्रेरित होकर भारत के औद्योगिक साधनो को काम में लाया जायगा, तव हिन्दुस्तान समृद्धिशाली और शक्तिशाली होगा, तथा इगलैंड और भी अधिक समृद्धिशाली बनेगा।"[3]

सेना का भारतीयकरण

सन् १९२१ में भारत सरकार ने सेनाध्यक्ष रालिसन की अध्यक्षता में भारत की सैनिक आवश्यकताओ की जाँच के लिए एक कमेटी गठित की। इस कमेटी के समक्ष गवाही देते हुए मालवीयजी ने सेना के भारतीयकरण पर जोर दिया। उन्होने कहा कि सम्राट् की भारतीय प्रजा को भी सेना में सम्राट् का कमीशन अर्थात् ऊँचे से ऊँचा पद प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त हो। उन्होंने प्रस्ताव किया कि भारत मे सेनड्हर्स्ट कालेज के स्तर का एक उच्चस्तरीय सैनिक कालेज तथा कई सैनिक स्कूल खोले जायें। उन्होने कहा कि देश को रक्षा के सम्बन्ध में आत्मनिर्भर बनाने के लिए इन संस्थाओ की स्थापना तथा व्यवस्था में आवश्यक धन खर्च किया जाय। उन्होने यह भी कहा कि यदि सरकार के लिए सभव न हो तो वे स्वय सैनिक कालेज के लिए धन एकत्र करने को तैयार है। मालवीयजी ने यह भी माँग की कि सेना के सव विभागो में भरती होने का अधिकार भारतीयो को प्रदान किया जाय, आन्तरिक सरक्षा का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व भारतीय सैनिको को सौंपा जाय, तथा क्रमशः गोरी पलटनें ब्रिटेन वापस बुला ली जायें।[4]

---

१. वही, पृ० ३०८-३५४। २. वही, पृ० ३५५।
३. वही, पृ० ३५५।
४. राउडटेबिल कान्फ्रेंस (सेकेंड सेशन), पृ० ९८८, लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स, १९२८, जि० २, पृ० १६५६।

कृषि-विकास

२२ फरवरी सन् १९२७ को लार्ड लिनलिथगो की अध्यक्षता में गठित कृषि आयोग (ऐग्रीकलचरल कमीशन) के सामने मालवीयजी ने कृषि-शिक्षा पर विशेष जोर दिया। उन्होने अपने नोट में लिखा कि इस क्षेत्र में जापान ने बहुत काम किया है, और इस देश में भी जापान की तरह प्रारम्भिक और माध्यमिक कृषि विद्यालय काफी संख्या में खोले जाने चाहिए।[1] वे यह भी चाहते थे कि साधारण माध्यमिक शिक्षा विद्यालयो में भी खेती एक पाठ्य विषय हो, ताकि जब विद्यार्थी कालेज में प्रवेश करें तब उन्हें खेती की काफी शिक्षा प्राप्त हो।[2]

मालवीयजी ने कहा कि खेती की उच्चस्तरीय शिक्षा के लिए विश्वविद्यालयो में कृषि सकायें स्थापित की जायें, और कृषि कालेज खोले जायें। उन्होने कहा कि विश्वविद्यालय देश के सर्वोत्तम उदीयमान विद्यार्थियो को आकर्षित करता है। वह विचारो के प्रसार का, तथा विद्यार्थी समाज में किसी विषय के लिए उत्साह पैदा करने का सर्वोत्तम केन्द्र है। अगर कृषि विज्ञान सकाय के विद्यार्थी और प्रोफेसर दूसरे विज्ञानो के ज्ञाताओ के निकट सान्निध्य में एक केन्द्र में काम करेंगे, तो वे विश्वविद्यालय से दूर एक पृथक् संस्थान की तुलना में इस वातावरण को कही अधिक प्रेरणाप्रद पायेंगे।[3]

उनकी राय मे विश्वविद्यालय मे दूसरे विद्वानो के सम्पर्क और सहयोग से ही कृषि विज्ञान के विशेषज्ञ कृषि सम्बन्धी उच्चस्तरीय अनुसन्धान अच्छे ढंग से कर सकेंगे। उन्होने कहा कि पूसा इन्स्टीट्यूट, जिसने अनुसन्धान के क्षेत्र में काफी अच्छा काम किया है, इससे भी कही अच्छा काम कर पाता, यदि किसी निवासीय विश्वविद्यालय में वह स्थापित किया गया होता, और वह उसका एक अंग होता।[4]

उनकी यह भी राय थी कि वनस्पति-विज्ञान, जीव-विज्ञान आदि विषयो के समान ही कृषि-विज्ञान का सम्मान हो। उन्होंने कहा कि यदि विद्यार्थी कृषि-विज्ञान का अध्ययन करें तो वे अपने जीवन में दूसरे बहुत से विषयों से, जिन्हें वे पढते हैं, उसे अधिक लाभदायक पायेंगे।[5]

मालवीयजी ने आशा व्यक्त की कि यदि इन कृषि कालेजो में पर्याप्त संख्या में स्नातक परिशिक्षित कर दिये गये, और वे किसानों की सहायता से खोज के

---

१. एग्रीकलचरल कमीशन रिपोर्ट, जिल्द ७, पृ० ७०४-७०५।
२. वही, प्रश्न ४०,०५१।
३ वही, पृ० ७०२।
४. वही, पृ० ७०२।
५ वही, पृ० ७३२, प्रश्न ४०,०३३।

काम मे लगाये गये, तो वे इन अनुसधानो में तथा खेती के वैज्ञानिक विवेचन में किसानो की दिलचस्पी हासिल कर सकेंगे।[1]

मालवीयजी ने बम्बई प्रदेश के भूतपूर्व गवर्नर एलफिन्सटन के वक्तव्य को, सर चार्ल्स वुड की सन् १८५४ की शिक्षा सम्बन्धी प्रज्ञप्ति को, तथा अकाल कमीशन की सन् १८८१ की रिपोर्ट को उद्धृत करते हुए कहा कि यदि कृषि आयोग नही चाहता हो कि उसकी संस्तुतियो का वही हाल हो जो अकाल कमीशन की संस्तुतियो का हुआ है, तो बालको के लिए सर्वत्र निःशुल्क अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय।[2] इस सम्बन्ध में एक प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होने कहा कि निःशुल्क प्रारम्भिक शिक्षा के प्रसार के लिए यदि आवश्यक हो तो शिक्षा अबवाब (उप-कर) लगाया जा सकता है। जब किसान के बच्चे लिखना पढना भी नही जानेंगे, बिल्कुल निरक्षर भट्टाचार्य बने रहेंगे, तब वे नये वैज्ञानिक आविष्कारो और कृषिक छान-बीन की उपलब्धियो से ठीक ठीक लाभ कैसे उठा सकेंगे ?

किसानो की दयनीय दशा का चित्र खीचते हुए मालवीयजी ने संस्तुति की कि लगान का बोझ कम किया जाय, किसानो को अपनी मेहनत से पैदा की गयी खेती से अधिक लाभ उठाने दिया जाय। उन्होने कहा कि लगान में कमी ही किसानो की आर्थिक दशा को सुधारने का सबसे अधिक विश्वसनीय ढग है, और किसी दूसरे ढंग से उनकी दशा मे आवश्यक सुधार नही हो सकता। इस सम्बन्ध में उन्होने ओकनोर महोदय के कतिपय वाक्यो को उद्धृत किया जिनमे लगान के बोझ को कम करने की सलाह दी गयी थी, और कहा गया था कि इसमें सन्देह है कि किसानों को साहूकारो के चगुल से बचाने के लिए जो कार्रवाइयाँ की जा रही है उनका बहुत प्रभाव होगा, और यदि उनका पूरा पूरा प्रभाव हो भी जाय, तो भी वे किसानो की दशा को पर्याप्त ढग से सुधार पायेंगी, जब तक कि धरती की उपज का बडा भाग उनके पास नही छोडा जाता, और सरकारी अफसरो और जमीदारो द्वारा की गयी करवृद्धि से उनकी रक्षा नही की जाती। मालवीयजी ने कहा कि इसमें संदेह नही कि यदि मालगुजारी (राजस्व) में पच्चीस तीस प्रतिशत की कमी किसान के हित में सुरक्षित कर दी जाय, तो वह उस वर्ग की उन्नति में अधिक लाभदायक सिद्ध होगी, "जो आबादी का अधिकाश है और राज्य की अर्थव्यवस्था में जिसका सबसे अधिक योगदान है।"[3]

---

१ वही, पृ० ७०५। २. वही, पृ० ७१०।
३. वही, पृ० ७१०।

कमीशन के सदस्य सर गंगा राम ने मालवीयजी से प्रश्न किया कि बिहार में एक राजा है जो किसानो से लगान में पाँच रुपया एकड वसूल करते है, जबकि सरकार को तीन आना एकड के हिसाब से मालगुजारी देते है, ऐसी दशा में वे स्थायी बन्दोबस्त के विरुद्ध प्रचार क्यो नही करते ? इस पर मालवीयजी ने कहा : "मुझमें साहस की कमी नही है, मै ससार में सब अच्छी चीजो का प्रचार नही करता, पर जब लेजिस्लेटिव असेम्बली में बहस के बाद इस पर वोट करने का अवसर आये और मैं वोट न दूँ तब आप मेरी निन्दा करें।"[1] उन्होने एक दूसरे प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा · "मैं सरकारी अफसरो या जमीदारो द्वारा काश्तकारो के लूटे जाने के पक्ष मे नही हू। मैं चाहता हूँ कि सरकार और जमीदार दोनो अपने काश्तकारो का आज जितना ध्यान रखते है, उससे अधिक ध्यान रखें।"[2] सर गंगाराम ने इसे प्रचार घोषित करते हुए पूछा कि क्या वे अपने प्रान्त के जमीदारो से यह बात कहते है ? इसके उत्तर में मालवीयजी ने कहा "हाँ; मैं चाहता हूँ कि मैं उन्हें आपके सामने पेश कर सकूँ और आपसे कह सकूँ कि आप उनसे प्रश्न करें। मैंने सब स्थानो पर जमीदारो से कहा है और पिछले चुनावो में भी यह कहा है कि यदि आप मेरे साथ काम करना चाहते है, तब आपको अपने काश्तकारो के साथ न्यायसगत होने के लिए राजी होना चाहिए, उन्हें उनका दातव्य (due) देने को राजी होना चाहिए, और मैं काश्तकारो को सलाह दूँगा कि वे आपको आपका पावना दें। मैंने यह बात इस वर्ष ही नही, पिछले बहुत वर्षो मे बार-बार कही है।"[3]

मालवीयजी ने कहा कि यह प्रतियोगिता का युग है, इसमें हमारे किसानो को ससार के किसानो से टक्कर लेनी है। "इस प्रतियोगिता मे विभिन्न देशो के धरती के जोतनेवालो के शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक उपकरण (इक्विपमेंट) महत्त्वपूर्ण और निर्धारी तत्त्व बनेंगे। यदि किसान की भलाई सुनिश्चित करनी है, यदि उसे औद्योगिक सघर्ष में जिसका उसे मुकाबला करना है, डटे रहना है, तब भविष्य में अधिक हृष्ट-पुष्ट तथा आर्थिक दृष्टि से अधिक ऊँचा जीवन बिताने के लिए उसकी सहायता करनी चाहिए। अधिक आत्मसम्मान और आत्मनिर्भरता और उचित गौरव की भावना का उसमें पोषण करना चाहिए। उसे सरकारी प्रशासनिक, न्यायिक, माल और पुलिस अफसरो की, तथा जमीदारो और उनके कारिन्दो की ओर मुँह उठाकर देखने की सीख देनी चाहिए। उसे बताना चाहिए

१ वही, पृ० ७३२, प्रश्न ४०,०२२।
२. वही, पृ० ७३२, प्रश्न ४०,०२४।
३. वही, पृ० ७३२, प्रश्न ४०,०२६।

कि उसे नागरिकता के वही प्राथमिक अधिकार प्राप्त है जो उसके अधिक सम्पन्न संगी-साथियो को प्राप्त है।"[१]

कमीशन के सदस्य सर हेनरी लारेन्स के प्रश्नो का उत्तर देते हुए मालवीयजी ने कहा कि काश्तकार इस समय 'छोटा आदमी' समझा जाता है। उसका यथोचित आदर नही होता। "मैं चाहता हूँ कि अच्छे काश्तकार का उतना ही सम्मान हो जितना कि एक वकील या डाक्टर का, क्योकि मैं सोचता हूँ कि वह राष्ट्रीय सम्पत्ति में योगदान करता है।"[२] उन्होने कहा कि मैं चाहता हूँ कि दूसरे सम्मानित पुरुषों की तरह काश्तकार भी दरबारो में आमन्त्रित किये जायें, उनके साथ ईमानदार संगी-साथियो का-सा बर्ताव किया जाय, जो देश के भरणपोषण के लिए सब कठिनाइयाँ सहते हुए खेत जोतते हैं, जो सरकार की पुष्टि करते हैं, और जिनके हम आभारी हैं।[३] एक दूसरे प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा कि काश्तकार स्वयं अनुभव करे कि वह दूसरे लोगो के समान ही देश का अच्छा और आदरणीय कार्यकर्ता है, वह बहुत ही मेहनती और ईमानदार कार्यकर्ता है, और इस रूप में उसका सम्मान और उसकी कदरदानी होनी चाहिए।[४]

इस कार्य की सिद्धि के लिए उनका सुझाव था कि एक "शाही कृषिक और औद्योगिक संस्थान" खोला जाय, जिसकी शाखाएँ प्रत्येक जिले मे हो, और जिनकी बैठको और सम्मेलनो मे किसान सम्मान-सहित निमन्त्रित किये जायें। मालवीयजी चाहते थे कि सम्राट् स्वय उसके सर्वोच्च संरक्षक, तथा वाइसराय और राजे महाराजे उसके सरक्षक हो।

मालवीयजी की राय थी कि खेती की दशा को सुधारने के लिए मनु की व्यवस्था और आधुनिक व्यवस्था दोनो की अच्छी बातों का प्रयोग किया जाय।[५] वे चाहते थे कि पशुपालन के निमित्त चरागाहो का समुचित प्रबन्ध किया जाय, गोबर जलाने के बजाय खाद के काम में लाया जाय, किसानो को समझा बुझाकर उनकी रजामन्दी से छोटी-छोटी जोतो की चकबन्दी की जाय।

प्रश्नो का उत्तर देते हुए मालवीयजी ने कहा कि उनकी राय में निरामिष भोजन काफी पौष्टिक है, और शरीर की पुष्टि के लिए गोश्त या अडे खाना

---

१. वही, पृ० ७०९। २ वही, पृ० ७१५, प्रश्न ३९,८४८।
३ वही, पृ० ७१५, प्रश्न ३९,८४९।
४ वही, पृ० ७१६, प्रश्न ३९,८५२।
५. वही, पृ० ७१६, प्रश्न ३९,८५३।

आवश्यक नही है। वे चरागाहो की समस्या को सरल बनाने के नाम पर बूढी गायो का वध उचित नही समझते थे। उनका कहना था कि बूढी गाय भी "साल व साल बछडे देती रहती है, और यदि वह दूध नही देती तो बछडा तो देती है, जो अधिक मूल्य की चीज है, और यदि वह धरती पर रहती और चरती है, तो वह घर ी के लिए खाद भी देती है, और अन्त में जब वह मरती है तो अपनी खाल छोड जाती है। उस मनुष्य को जिसके वच्चो ने उसका दूध पिया है गाय का कृतज्ञ होना चाहिए, उसकी देखरेख करनी चाहिए, और उसे वूचरखाने को नही भेजना चाहिए।"[1] एक दूसरे प्रश्न के उत्तर में इन्ही बातो को दुहराते हुए उन्होने कहा कि यदि आवश्यक हो, तो बूढी गाय को उस घास की उपज के लिए, जिसे वह खाती है, धरती जोतने को हल में जोता जा सकता है।[2]

भूमि पर बढते हुए वोझ को कम करने के लिए, तथा देश को अकाल की भयानक स्थिति से वचाने के लिए मालवीयजी ने देश की औद्योगिक उन्नति भी आवश्यक वतायी। उन्होने कहा कि कच्चे माल के निर्यात और औद्योगिक सामान के आयात के कारण भारत के उद्योगो का बहुत क्षति हुई है, और औद्योगिक वर्ग के लोगो को अपनी जीविका के लिए अव खेती पर निर्भर रहना पडता है। खेती के अतिरिक्त दूसरे उद्योगो की कमी के कारण देश की आर्थिक दशा बिगडती जा रही है और जनता में अकाल का मुकावला करने की शक्ति भी बहुत कम हो गयी है, औद्योगिक विकास की नितान्त आवश्यकता है।

कमीशन के सदस्य श्री कामथ के एक प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होने स्वीकार किया कि उद्योगो की उन्नति के परिणाम-स्वरूप खेतिहर मजदूरो का वेतन वढेगा, पर, उन्होने कहा, "खेतिहर मजदूरो को इस समय काफी नही मिल रहा है। अगर खेतिहर को अपने श्रम के लिए कुछ और मिल जाता है तो वह उसके लिए अच्छा ही है। अगर उद्योगो की वृद्धि होगी तो राष्ट्र की औसत आमदनी भी वढेगी।"[3]

१ वही, पृ० ७३०, प्रश्न ४०,०११।
२. वही, पृ० ७३०, प्रश्न ४०,०१२।
३. वही, पृ० ७३०, प्रश्न ४०,००८।

८. उदार हिन्दू धर्म और सरल हिन्दी

प्रतिक्रिया

मुस्लिम लीग की गतिविधि से बहुत से हिन्दू नेता और कार्यकर्ता क्षुब्ध थे। उनमें से कुछ किसी हिन्दू मंच से उसके दावो और मागो का विरोध, तथा हिन्दू हितो का पोषण आवश्यक समझने लगे थे। पजाब के कतिपय हिन्दू नेताओ और कार्यकर्ताओं ने तो सन् १९०७ में मुस्लिम लीग की स्थापना के कुछ दिन बाद ही अपने प्रान्त में हिन्दू सभा के संघटन के संबध में कार्य प्रारम्भ कर दिया था। उन्होने सन् १९०९ में कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन से कुछ दिन पहले एक कान्फ्रेन्स द्वारा निश्चय किया कि हिन्दू हितो की रक्षा कांग्रेस द्वारा नही हो सकती, हिंदुओ को इसके लिए कांग्रेस से अलग मुस्लिम लीग की टक्कर के लिए उस जैसी राजनीतिक संस्था बनानी होगी।

मालवीयजी भी मुस्लिम लीग की गतिविधि, दावो और मागो से क्षुब्ध थे। उन्हें सरकार की भेद-नीति पर भी खेद था। पर वे कांग्रेस से अलग मुस्लिम लीग जैसी प्रतिद्वन्द्वी हिन्दू राजनीतिक पार्टी बनाने के पक्ष में नही थे। वे ऐसा करना सारे देश के लिए, हिन्दू जाति के लिए भी, हानिकर समझते थे। वे तो कांग्रेस को देशव्यापी राष्ट्रीय भावना के आधार पर देश का ऐसा सक्रिय राजनीतिक संघटन बनाना चाहते थे जिसकी बात स्वीकार करना सरकार के लिए आवश्यक हो जाय।[1]

वे हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य को भी बढाने के पक्ष मे नही थे। उनकी धारणा थी कि 'इन दोनो में जितना ही वैर या विरोध या अनेकता रहेगी, उतना ही हम दुर्बल रहेंगे।"[2] इसलिए जो हिन्दू या मुसलमान "एक जाति को दूसरी जाति से लडाने का प्रयत्न" करता है, वह "देश का शत्रु है,—अपनी विशेष जाति का भी शत्रु है।"[3]

वे स्वीकार करते थे कि हिन्दुओ को अपने ही देश में "किसी जाति से राजनीतिक महत्त्व मे कम समझा जाना हमारी जाति के लिए अत्यन्त कलक

---

१ देखिये, दिसम्बर सन् १९०९ में कांग्रेस में किया गया मालवीयजी का अध्यक्षीय भाषण।

२. 'अभ्युदय', फाल्गुन शुक्ल त्रयोदशी, सम्वत् १९६३। ३. वही।

ओर अपमान का विषय है",[1] पर उनकी राय में "यह कलक और अपमान मुसलमानो या किसी और जाति का विरोध करने से नही मिटेगा। इसको मिटाने का एकमात्र उपाय अपने कर्तव्यो का पालन करना है।"[2] इसके लिए वे 'धर्मोपदेश' आवश्यक समझते थे। मालवीयजी ऐसा चाहते थे कि हिन्दू जनता में सनातन धर्म के सजीव तत्त्वो और मूल सिद्धान्तो का प्रसार किया जाय, उसमें उचित गुण उत्पन्न किये जायें, उसे अपने कर्तव्यो का ज्ञान कराया जाय, और इस तरह समाज मे जीवन और शक्ति संचारित की जाय।

वे ये सब काम 'भारत धर्म महामण्डल' द्वारा कराना चाहते थे। पर जब उन्होने देखा कि उसके धर्मोपदेशक और सचालक उसे ठीक तौर पर करने को तैयार नही है, तब उन्होने अलग से अपने मन की 'सनातन धर्म सभा' स्थापित की, और उसके द्वारा धर्म के मूल सिद्धान्तो के प्रचार का प्रबन्ध किया। उन्होने स्वय लेखो, भाषणो और कथाओ द्वारा अपने धार्मिक विचारो से हिन्दू ज नता को लाभान्वित किया।

सुधार

उन्होने स्वीकार किया कि ("शास्त्रविहित विधियो का अन्धवत् अनुकरण" निःसन्देह "हानिकर" है[3], तथा हमारे नित्य कर्मों मे कई ऐसी प्रथाओ का समावेश हो गया है जो किसी प्रकार शास्त्र-विहित नही है।[4] उन्होने यह भी बताया कि समय के हेरफेर से शास्त्रविहित शब्दो के अर्थ और उनके आभ्यन्तरिक भावो में भी ऐसी तब्दीली हुई है जिसने हमारे विचारो, चरित्रो, रीतियो और व्यवहारो को कुछ का कुछ बना दिया है, और इसके कारण हमारे जातीय जीवन की काया ऐसी पलटी है कि जब तक उन शब्दो के वास्तविक तात्पर्य और अर्थ को हिन्दू जाति के सामने दुबारा पूर्णरूप से न रखा जायेगा, और उन शब्दो के साथ श्रेष्ठ और उच्च भावो और विचारो से सम्बन्ध न पैदा किया जायगा, तब तक हमारे सामाजिक व्यवहार और नीति का सुधार होना बहुत कठिन है।[5])

धर्म के मूल सिद्धान्त

मालवीयजी ने धर्म के मूल सिद्धान्तो के प्रचार की आवश्यकता की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा . "बिना मूल सिद्धान्तो को दृढ किये धर्म का प्रचार

१ वही, २६ मार्च सन् १९०९। २. वही।
३. 'अभ्युदय', २ मई, सन् १९०८। ४. वही।
५. 'अभ्युदय', २५ जनवरी, सन् १९०९।

और उसकी उन्नति करना ऐसा ही असभव है जैसा कि विना किसी बुनियाद के किसी इमारत को खडा करना। यही कारण है कि धर्म अपना स्वरूप नही ग्रहण कर रहा है, और धर्म से उत्पन्न होनेवाली लोक-संग्रहकारी (समाज को बांधनेवाली) शक्ति उत्पन्न नही हो रही है।"[1]

धर्म के मूल सिद्धान्तो का विश्लेपण करते हुए उन्होंने बताया : "वस्तुतः धर्म उन व्यवस्थाओ, उन नियमो का नाम है जो समाज को, राज्य के भिन्न-भिन्न अगो को, धारण किये रहते है।"[2] धर्म के जो मूल सिद्धान्त है उन सब का उद्देश्य देश में शान्ति, समृद्धि और सुख उत्पन्न करना, तथा मनुष्य को पारलौकिक गहन विषयो का चिन्तन करने के योग्य बनाना है।[3]

उन्होने मनु द्वारा प्रतिपादित धर्म के लक्षणो को धर्म के मूल सिद्धान्त स्वीकार करते हुए कहा "धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध—में वे सब गुण आ गये है जिनसे लोगो मे सदाचार की पवित्रता हो, एकता हो, बल आवे और वे सुखी हो।"[4]

सच्चा सुख

सुख का विश्लेपण करते हुए मालवीयजी ने बताया : "(१) मनुष्य भले बुरे जितने कर्म करता है, अपने सुख के लिए ही करता है, (२) सुख उसके उद्देश्य और अभिलापाओ की पूर्ति में मिलता है, (३) उद्देश्य और अभिलापाएं जितनी ही ऊँची हो, उतना ही अधिक सच्चा और चिरस्थायी सुख मिलता है।[5]" इस तरह "सच्चे सुख का अनुभव वही मनुष्य करता है, जिसके चित्त में उत्कृष्ट अभिलापाए और उद्देश्य हो और जो उनकी पूर्ति के लिए दृढतापूर्वक यत्न करता रहे।"[6] उन्होने विश्वास व्यक्त किया कि निकृष्ट व्यक्ति भी देशोपकार और परोपकार के मार्ग का अनुसरण कर अपने चित्त को निर्मल बना सकते है, तथा उच्च उद्देश्य और अभिलापा से उसे समन्वित कर सकते है। उन्होने सबसे अनुरोध किया कि वे 'प्रण' करें कि वे जितने कार्य करेगे, उनमें उनका मुख्य उद्देश्य अपने भाइयो के क्लेशो को दूर करना और उनकी यथाशक्ति सेवा करना होगा।[7]

---

१ 'अभ्युदय', २ मई, सन् १९०८।
२. 'अभ्युदय' २ मई, सन् १९०८। ३. वही।
४ वही। ५. 'अभ्युदय', ७ अगस्त, सन् १९०८।
६ वही। ७ वही।

परोपकार

देशोपकार और परोपकार के महत्त्व की महिमा का वर्णन करते हुए मालवीयजी कहते है "अपनी जाति को ससार की सभ्य जातियो के समान बलवान् बनाना, उसके बीच आदरणीय पद पाना, इससे अधिक बडा एवं पुण्य का कार्य और क्या हो सकता है ? मनुष्य और पशु में क्या भेद रहा, यदि वह अपने असंख्य भाई बहनो को अत्यन्त क्लेश की दशा में देखकर भी स्वयं सुख भोग करता है ? चाहे हम कुछ काल तक वज्र-सा हृदय बनाकर अपने पीडित भाइयो के बीच में आनन्द और सुख भोग कर लें, पर सदा हम ऐसा नही कर सकेंगे। जो दशा हमारे भाइयो की हो रही है, उसका कभी न कभी हमें भी भागी बनना पडेगा। यदि भाग्यवश हमें न बनना पडेगा, तो हमारी सन्तानो को अवश्य बनना पडेगा।"[1]

सेवा धर्म का मार्ग

मालवीयजी ने बताया कि सेवाधर्म के पालन के लिए तप, सत्याचरण, निष्काम भावना, आत्मौपम्य व्यवहार, स्वार्थत्याग, तथा ईश्वर की आराधना नितान्त आवश्यक है। उन्होने कहा "बिना कई लोगो के मिले कोई बडा कार्य नही हो सकता। लोग आपस में मिलकर तभी कार्य कर सकते है, जब उनमें परस्पर विश्वास हो। परस्पर विश्वास तभी हो सकता है, जब सब के सब सत्य के अनुगामी हो।"[2]

निष्काम कर्म

निष्काम कर्म की महिमा को बताते हुए उन्होने कहा . "जो लोग निष्काम भाव से काम नही करते, उन लोगो में परस्पर ईर्ष्या और द्वेष उत्पन्न हो जाते है और कार्य सफल नही होने पाता। किन्तु जहाँ निष्काम भाव से कार्य होता है वहाँ लोग एक दूसरे की सफलता देखकर प्रसन्न होते है, और एक दूसरे के प्रति प्रेम और सहानुभूति का भाव उत्पन्न होता है, और कार्य में शीघ्र ही सफलता प्राप्त होती है। सकाम भाव से कर्म करनेवालो को आपत्तियाँ काम करने से विमुख कर देती है, किन्तु निष्काम भाव से कर्म करनेवाले लोग, यह समझकर कि जो कार्य हम कर रहे है, वह ईश्वर का कार्य है और इसमें ईश्वर हमारा सहायक है, किसी विघ्न या बाधा के कारण पीछे नही हटते।"[3]

---

१. 'अभ्युदय', २६ मार्च, सन् १९०९।

२. वही। ३ वही।

आत्मौपम्य व्यवहार

आत्मौपम्य व्यवहार की व्याख्या करते हुए उन्होंने बताया : "हमारे शास्त्रो का हमें आदेश है कि 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्' अर्थात् जो कार्य अपने लिए अहितकर हो, उसे पराये के लिए न करे।" उन्होंने कहा कि यदि हम इसका प्रतिपालन करें, तो देश में परस्पर फूट और विरोध के एवं जातीय दुर्बलता के जितने कारण हैं, वे सब दूर हो जायेंगे।[1]

स्वार्थत्याग

स्वार्थत्याग की आवश्यकता पर जोर देते हुए उन्होंने लिखा : "अलोभ की भी हमारे शास्त्रो में बहुत महिमा लिखी गयी है। यह लाभ में पडने का फल है कि हमारे अनेक देश भाई एक दूसरे का गला काटने के लिए तैयार हो जाते है। यदि हमारे देश भाई लोभ को छोड दे, तो देशद्रोहियो एवं धर्मद्रोहियो, सभी का लोप हो जायगा। हमारे शास्त्रकारो ने हमें उपदेश दिया है कि ईश्वर ने हमें जो कुछ भी दिया है, उसे हम ईश्वर की सेवा में अर्पण करें। ईश्वर की सेवा करना, उसके उत्पन्न किये हुए प्राणियो की सेवा करना है। जो ईश्वर की दी हुई शक्तियो को उसकी सेवा में, अर्थात् उसके प्राणियो को सहायता देने के काम में, नही लगाना, वह 'चोर' कहा गया है।"[2]

तप

तप के महत्त्व को बताते हुए उन्होंने कहा : "तप मे अभ्युदय और निःश्रेयस, स्वर्ग और मोक्ष, धन और सम्पत्ति, नाम और यश, बल और पराक्रम, सुख और शान्ति, राज्य और अधिकार सब की ही प्राप्ति होती है।"[3] उन्होंने बताया : "जिस जाति मे जितना और जिस प्रकार का और जिस दर्जे का तप होगा, वह उतनी ही अधिक बलवान्, तेजस्वी, बुद्धिमान्, धर्मनिष्ठ और ज्ञानवान् होगी। कौमी इमारत का तप ही मूल, तप ही मध्य, और तप ही अन्त है।"[4]

विभिन्न प्रकार के तपो का उल्लेख करते हुए उन्होंने सात्त्विक तप का अनुसरण करने का उपदेश दिया और बताया : "जो तप निष्काम भाव से, फल की इच्छा त्याग कर, शम-दम से सम्पन्न होकर श्रद्धा और धैर्य के साथ मन, वाणी और शरीर से किया जाता है, वह सात्त्विक कहलाता है।"[5] इसकी विस्तृत व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा : "मन को जीतना अर्थात् काम-क्रोध-लोभ-मोह

१. वही। २. वही।
३. 'अभ्युदय', २५ जनवरी, सन् १९०९।
४. वही। ५. वही।

से बचना और शुद्ध संकल्पयुक्त रहना, किसी विषय वृत्ति के कारण विक्षिप्त होकर फिर भी उस पर विजय प्राप्त करना, व्यवहार-काल मे छल-कपट, धोखा, फरेब से मन को दूर रखना, मन को सात्त्विक बनाना—यह मन द्वारा सात्त्विक तप करना है। वाणी का सात्त्विक तप यह है कि जो वाक्य असत्य, दु.खदायी, अप्रिय और खोटा हो, उसको किसी समय, किसी भी अवस्था में मुँह से न निकालना, बल्कि प्रिय, सत्य, मीठे और मधुर वचन बोलना—यह वाणी द्वारा सात्त्विक तप करना है। शरीर से अर्थात् शरीरावयवो, हस्तपादादि कर्मेन्द्रियो के द्वारा दूसरो की सहायता और सेवा करना, गिरे हुओ को उठाना, देश और जाति की सेवा के लिए अपने शरीर के कष्ट और दु.ख की परवाह न करना, बल्कि यदि आवश्यक हो तो धर्म और परोपकारार्थ शरीर अर्पण कर देना, यह काया का सात्त्विक तप है।"[1]

तप और देश-सेवा

सात्त्विक तप का कार्यकर्ताओ को उपदेश करते हुए उन्होने बताया · 'सच्चे तप का भाव उस देशभक्त में है जो अपने देश एवं अपनी जाति के गौरव और प्रतिष्ठा, कीर्ति और मान, सम्पत्ति और ऐश्वर्य की वृद्धि और उन्नति के लिए दृढ इच्छा रखता है, तथा अनेक प्रकार के दु खो, संकटो और कष्टो को सहन करने, कठिन से कठिन मेहनत और श्रम को उठाने, और विघ्नो से मुकाबला करने के लिए उद्यत रहता है। सच्चे देशप्रेमी और देशानुरागी कल्याण की इच्छा करते, तप का अनुष्ठान करते, आत्मा और मन को धर्माचरण रूपी प्रचण्ड अग्नि में दग्ध करके अपनी और अपने देश की अपवित्रता, मलिनता और अन्य अशुद्धियो को दूर कर जाति को आरोग्यता एवं सुखसम्पत्ति की योग्यता प्रदान करते हैं।"[2] उनका यह भी कहना था कि "जिन देशानुरागी पुरुषो में तपश्चर्या नही, जो मुसीबतो, विघ्नो और आफतो का मुकाबला करने से घबराते है, जो द्वन्द्वो को सहन नही कर सकते, जो भूख और प्यास, सर्दी और गर्मी, धूप और छाह, कोमल और कठोर, मीठा और खट्टा आदि दोनो के दास है, वे संसार रूपी युद्धक्षेत्र में कदापि कृतकृत्य नही हो सकते।"[3]

परम्परावादी और मालवीयजी

मालवीयजी की व्याख्या भारत धर्म महामण्डल और कट्टर-पथी सनातन-धर्मियो को स्वीकार नही थी। वे देशभक्ति से अधिक राजभक्ति को तथा

१. वही। २. वही।
३. वही।

लोकतन्त्र से अधिक नृपतन्त्र को प्राचीन भारतीय संस्कृति और सनातनधर्म की परम्पराओं के अनुरूप समझते थे। भारत धर्म महामण्डल के महोपदेशक स्वामी दयानन्द ने तो अपनी पुस्तक 'धर्मविज्ञान' में शास्त्रों के आधार पर नृपतन्त्र की व्याख्या करते हुए आशा व्यक्त की कि स्वतंत्रता प्राप्त होने के बाद फिर एक बार आगे चलकर इस देश में नृपतन्त्र स्थापित होगा। पण्डित लक्ष्मण शास्त्री द्राविण ने तो 'वर्णाश्रम स्वराज्य संघ' स्थापित कर कांग्रेस की नीति-रीति तथा शास्त्रों की प्रगतिशील व्याख्या का डटकर विरोध किया। उनका दृढ़ विश्वास था कि हमारे पास सब कुछ है, हमें दूसरों से कुछ लेना नहीं है। उनकी यह भी धारणा थी कि प्रचलित परम्पराओं में हेरफेर करने की भी कोई जरूरत नहीं है। उन्हें पुराने शास्त्रों और सिद्धान्तों की नयी व्याख्या भी सारहीन और धर्म-विपरीत दिखाई देती थी।

अपनी उदार व्याख्या का प्रचार करने के लिए मालवीयजी ने सन् १९०६ में प्रयाग में कुम्भ के अवसर पर 'सनातन धर्म सम्मेलन' आयोजित किया, और इसके बाद कुम्भ के अवसरों पर अर्थात् प्रत्येक छः वर्ष पर त्रिवेणी के तट पर बहुत ही शान के साथ सनातन धर्म सम्मेलन आयोजित होते रहे, जिनमें हजारों श्रद्धालु यात्रियों के अतिरिक्त बहुत से साधु-सन्त और विद्वान् किसी न किसी रूप में भाग लेते रहे। सन् १९१८ में कुम्भ के अवसर पर विभिन्न सेवा समितियों के सहयोग से मालवीयजी की अध्यक्षता में 'अखिल भारतीय सेवा समिति' गठित हुई। इसी अवसर पर श्री श्रीराम वाजपेयी के सहयोग से 'सेवा समिति ब्वाय स्काउट असोसिएशन' गठित किया गया। मालवीयजी उसके चीफ स्काउट मनोनीत हुए। इसी वर्ष कुम्भ मेले के अन्तिम दिन सफाई का काम करनेवाले कर्मचारियों में कुर्ता, धोती और पटका वितरित किया गया और सबको भोजन कराया गया। मालवीयजी के परिवार की महिलाओं ने भोजन बनाने का काम किया और मालवीयजी ने स्वयं उनका स्वागत किया, सबको धर्मोपदेश और आशीर्वाद दिया। सन् १९२४ में कुम्भ के अवसर पर प्रयाग में गंगा के तट पर सफाई का काम करने वाले १५,००० कर्मचारियों को इकट्ठा करके मालवीयजी ने उनमें कपड़े बाँटे, तथा उन्हें प्रह्लाद की कथा सुनायी।

मालवीयजी ने सन् १९२३ में और सन् १९२४ में काशी और प्रयाग में विद्वत् परिषदें आयोजित की, और उनसे शुद्धि, समाजसुधार तथा निम्न वर्गों की उन्नति के सम्बन्ध में शास्त्रों पर आधारित व्यवस्थाएँ लेने का प्रयत्न किया। उन्होंने स्वयं नासिक, प्रयाग, काशी, कलकत्ता आदि स्थानों पर तथाकथित

अस्पृश्यो के साथ सब वर्णो और जातियो के हिन्दूओ को मन्त्र दीक्षा दी तथा विभिन्न स्थानो मे सनातन धर्म सभाएँ स्थापित की, जिन्होने सनातन धर्म के प्रति जनता की निष्ठा दृढ करते हुए मालवीयजी की उदार भावनाओं और व्याख्या का प्रसार किया।

गोसेवा

सन् १९२८ में प्रयाग में मालवीयजी की अध्यक्षता में सनातन धर्म महासभा का सम्मेलन हुआ, जिसने गोवंश के भयंकर सहार पर सन्ताप करते हुए गोरक्षा के निमित्त एक बहुत बडा प्रस्ताव पारित किया। इस प्रस्ताव में हिन्दू जनता से अनुरोध किया गया कि (१) वे गौओ को कसाइयो के हाथ में पडने से बचावें, (२) कसाइयो के साथ किसी तरह के लेन-देन का व्यवहार न करें, (३) जहाँ तक हो सके चमडे का व्यवहार न करें, (४) स्वाभाविक मौत से मरे हुए पशुओ के चमडे से बने हुए जूते आदि ही काम में लायें। प्रस्ताव में हिन्दुओ से यह भी अनुरोध किया गया कि (१) जिसको सामर्थ्य हो वह एक गौ पाले, (२) जहाँ उचित जान पडे वहाँ एक गौशाला खोली जाय, (३) वे गौशालाओ और पिंजरापोलो को दुग्धालय के रूप में परिणत करें, और अपने साँडो द्वारा गौओ की नस्ल सुधारें और दूध बढावें, (४) योग्य पात्र को ही जो गौ का पालन कर सकें, वे गोदान दें और गो-दान के योग्य गौओ का ही दान करें, (५) वृषोत्सर्ग में वे केवल उत्तम जाति के साँड छोडें, और वही छोडें जहाँ उनकी आवश्यकता हो, और छोडने से पहले इस बात का पक्का प्रबन्ध कर लें कि छोडे हुए साँड का ठीक-ठीक पालन-पोषण और रक्षा होगी। महासभा ने जमीदारो से अनुरोध किया कि (१) वे गाँवो में गोचारण के लिए काफी भूमि छोडने का नियम करें, और जिस गोचारण भूमि को खेती में मिला लिया गया हो, उसे छोड दें, (२) जहाँ उनकी जमीदारी के भीतर गौ-बैल के बाजार लगते है, उनमें वे ऐसा प्रबन्ध करें कि वहाँ धोखे में पडकर कोई हिन्दू गौ को कसाई के हाथ न बेचे और धोखा देकर कोई कसाई गौ को न खरीद सके।

इस प्रस्ताव में ही सनातनधर्म सभा ने निश्चय किया कि (१) एक अखिल भारत-वर्षीय गोरक्षा कोष की स्थापना की जावे, जिससे गोचर-भूमि की वृद्धि और गोरक्षा के और साधन प्रस्तुत किये जावें, (२) कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से कार्तिक शुक्ल अष्टमी अर्थात् गोवर्धन पूजा के दिन से गोपाष्टमी तक प्रतिवर्ष 'गोसप्ताह' मनाया जाय, जिसमें गोरक्षा सम्बन्धी उत्सव, गोपूजा, गोकथा, गो-महात्म्य, व्याख्यान तथा गोपरिपालन के साहित्य का प्रचार किया जाय, और प्रतिपदा के दिन सारी हिन्दू जनता से गो-रक्षा के लिए दान माँगा जाय।

महासभा ने अपनी कार्य समिति को आदेश दिया कि वह स्थान-स्थान पर गोचर भूमि को छुडाने और गोरक्षा के अन्य उपायो को करने के लिए, विशेष कर सरकारी जंगलो मे गोचर-भूमि छोडे जाने के लिए, प्रान्तीय कौसिलो तथा व्यवस्थापिका सभा और देशी राज्यो के द्वारा कानून वनवाने का प्रयत्न करे।

पजाव मे सनातन धर्म सभा का काम

सन् १९२४ में रावलपिंडी में पजाव प्रान्तीय सनातन धर्म सम्मेलन में मालवीयजी ने अपने अध्यक्षीय भाषण मे सनातन धर्म की व्याख्या करते हुए अस्पृश्यो को सार्वजनिक कुओ से जल भरने देने का, और सार्वजनिक स्कूलो में उनके बच्चो को पढने देने का सवर्ण हिन्दुओ को उपदेश दिया। सन् १९२५ मे धर्मयज्ञ करवा कर उन्होने अमृतसर के प्रसिद्ध दुर्गयाना मन्दिर और सरोवर की स्थापना की। सन् १९२८ और सन् १९२९ में उन्होने सनातन धर्म के निमित्त पंजाव में दौरा किया।

सन् १९३४ मे पजाव प्रान्तीय सनातन धर्मसभा के सम्मेलन की मालवीयजी ने दोबारा अध्यक्षता की। उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण मे कहा . "सनातन धर्म सबसे पुराना धर्म है। यह प्राणी मात्र के लिए है। मनुष्य मात्र के लिए है"[१] और "ईश्वर का ज्ञान" उसकी सबसे पहली शिक्षा है। वह वतलाता है कि "ससार का रचनेवाला, पालन करने वाला और संहार करनेवाला केवल वही परमात्मा है जिसका कोई सानी नही" और जो "प्राणी-प्राणी में व्यापक है।"[२] उन्होने कहा कि "जब एक वार यह मान लिया कि ईश्वर घट-घटव्यापी है, तव सिद्धान्त है कि जो बात अपने लिए चाहते हो, वही दूसरो के लिए चाहो।"[३]

उन्होने वर्णव्यवस्था की व्याख्या करते हुए कहा कि वह न तो असवर्ण विवाह के पक्ष में है[४], और न जात-पात तोडक विचार को ठीक समझते है।[५] पर हमें अपनी जाति का अभिमान नही करना चाहिए, और न दूसरी जाति का निरादर करना चाहिए।[६] हमे यह समझना चाहिए कि "जो ब्राह्मण अच्छा काम करेगा उसकी इज्जत होगी, जो बुरा काम करेगा उसका यश न होगा, और शूद्र से भी नीचे गिर जायगा। वह शूद्र जिसमें ब्राह्मण के गुण आजायेंगे, वह ब्राह्मण के समान आदर पाने के योग्य हो जायगा, मगर ब्राह्मण नही हो जायगा।"[७]

---

१. महामना श्री पडित मदन-मोहन जी मालवीय के लेख और भाषण, भाग १—धार्मिक, पृ० १८५।
२. वही, पृ० १८४।
३. वही, पृ० १८४।
४. वही, पृ० १८६।
५ वही, पृ० १८७।
६. वही, पृ० १८७।
७. वही, पृ० १८६।

मालवीयजी ने इस व्याख्यान मे "ॐ नम शिवाय" तथा "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" एवं "ॐ नमो नारायणाय" मन्त्रो की महिमा की व्याख्या करते हुए कहा : "पुराणो के अनुसार इन मन्त्रो के उच्चारण और जाप से पतित भी 'पवित्र' हो जाता है, वह 'सब पाप से छूट जाता है' ।"[१] इन मन्त्रो की दीक्षा लेने का सबको अधिकार है। हमारा कर्तव्य है कि हम अन्त्यज पर्यन्त सब हिन्दुओ को इन मन्त्रों से दीक्षित कर उनके जीवन को पवित्र बनाने मे सहायक हो।

मन्दिर-प्रवेश के सम्बन्ध मे अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होने कहा . "मैं यह नही कहता हूँ कि भगी और डोम आकर शिवजी की पूजा करें, यद्यपि इसका भी प्रमाण शास्त्र में है। मैं तो यह कहता हूँ कि उन्हें दूर से दर्शन कर लेने दो। वे भी प्रवेश न करें जब तक उन्हे दीक्षा न मिले।"[२] उन्होने यह भी बताया कि जिन शास्त्रो ने अस्पृश्यता की व्यवस्था की है उन्होने यह भी कहा है : "तीर्थ, यात्रा, देवालय, सडक आदि में तथा नगर में आग लगने के अवसर पर छुआछूत का विचार नही होना।"[३] उन्होने यह भी कहा है "प्रत्येक अछूत को अधिकार है कि वह अपने घर मे प्रतिमा रखे। मेरी इच्छा है कि प्रतिमा के रूप में भगवान् को सब के घर पहुँचा दूँ, ताकि सभी लोग भगवान् का पूजन करे।"[४]

आश्रम धर्म की व्याख्या करते हुए मालवीयजी ने कहा . "आयुर्वेदवाले कहते है कि २५ वर्ष के पुरुष और १६ वर्ष की स्त्री का परस्पर सम्बन्ध होना चाहिए। इस अवस्था से पहले जो बालक होगा, वह या तो मर जायगा या दुर्बल होगा। .. ब्रह्मचर्याश्रम सब धर्मो का मूल है, नीव है। नीव कमजोर हो जायगी तो क्या करोगे ? सनातनधर्म का उपदेश यही है कि पहले पचीस वर्ष तक ब्रह्मचारी रहो।"[५]

मालवीयजी ने अपने इस भाषण के प्रारम्भ में ही सनातनधर्म प्रतिनिधि सभा को, इसके सभापति राय बहादुर राम शरण दास, मन्त्री गोस्वामी गणेश दत्त तथा अन्य कार्यकर्ताओ को हृदय से बधाई देते हुए कहा "पजाब में धर्म सम्बन्धी शिक्षा प्रारम्भ करने का श्रेय आर्यसमाजियो को है। विद्याविभाग में उन्होंने काफी उन्नति की है। डी०ए०वी० कालेज के अतिरिक्त लगभग ४४ स्कूल इस प्रान्त में आर्य भाइयो द्वारा संस्थापित है। यह कार्य उन लोगो ने कुछ पहले किया। पर सन्तोष की बात है कि सनातनधर्मियो ने, यद्यपि इस में पीछे हाथ

१ वही, पृ० १९६-१९७।
२ वही, पृ० १९२।
३ वही, पृ० १८९।
४. वही, पृ० १९३।
५. वही, पृ० १८८।

लगाया, फिरभी नियत समय मे उचित उन्नति की। सन् १९२३ ई० में केवल १२३ सनातनधर्म सभाएँ थी। महावीर दल का श्रीगणेश अभी नहीं हुआ था। पर आज दस वर्ष बाद ४०० सनातनधर्म सभाएँ, ३३५ महावीर दल, ३२ हाई स्कूल, ८ मिडिल स्कूल, १ कालेज तथा १४८ कन्या पाठशालाएँ इस प्रान्त में काम कर रही है। हाई स्कूल में २२,००० विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। किसी भी सस्था के लिए इतने कम समय में इतना काम करना सन्तोष की बात है।"[1] उन्हे इस बात का भी सन्तोष था कि १४५ उपदेशक घूम रहे है[2], पर वे चाहते थे कि संगठन और सुदृढ किया जाय।

संघर्ष

हिन्दुओ को विघटित करने के उद्देश्य से एक बार जनगणनाधिकारी रिसले ने इरादा किया कि तथाकथित अस्पृश्यो की गणना हिन्दुओ से अलग की जाय। मालवीयजी ने इसका डट कर विरोध किया और काशी आदि स्थानो में सभाएँ की, जिनमें उनके प्रोत्साहन पर गजाधर प्रसाद आदि उन जातियों के नवयुवको ने भी, जिन्हें सरकार हिन्दू जाति से अलग करना चाहती थी, घोषित किया कि वे हिन्दू हैं, और उनके भाई बन्धु हिन्दू समाज से सम्बन्ध बनाये रखना चाहते है। उन्होने माग की कि उनको बिरादरियो के लोगो की गणना हिन्दुओ की श्रेणी में ही होनी चाहिए। जनगणनाधिकारी ने उनकी अलग गणना का विचार छोड दिया, फिर भी रिसले साहब ने अपनी रिपोर्ट में शारीरिक आकृति के आधार पर हिन्दुओ के आन्तरिक सामाजिक भेदो को प्रजातीयता का स्वरूप देने की कोशिश की। पर उनके उत्तराधिकारी ने दस वर्ष बाद अपनी जनगणना रिपोर्ट मे रिसले साहब के विश्लेषण और निष्कर्षों का खण्डन करते हुए लिखा कि व्यावसायिक और आर्थिक स्थिति की विभिन्नता से भी शारीरिक आकृतियो और बनावट में भेद हो सकता है।

सन् १९२६ में मालवीयजी के आग्रह पर सर जेम्स मेस्टन की अध्यक्षता में हरिद्वार की गंगा नहर के सम्बन्ध में हरिद्वार में ही सरकार ने एक सभा आयोजित की, जिसमें कतिपय सरकारी अफसरो के अतिरिक्त कई राजाओ-महाराजाओ ने भी भाग लिया। मेस्टन साहब ने मालवीयजी के अनुरोध पर सन् १९१४ के निर्णय को बदलते हुए घोषित किया कि जलमार्ग पाँच फुट के बजाय छः फुट कर दिया जायगा, और हर की पैड़ियो पर गंगा की धारा को अविच्छिन्न रखने का भी प्रबन्ध कर दिया जायगा।

---

१. वही, पृ० १८३।   २. वही, पृ० १८३।

सन् १९२४ मे अर्ध कुम्भी के अवसर पर प्रयाग में धारा ने ऐसा मोड लिया कि त्रिवेणी संगम पर स्नान संकटपूर्ण समझ कर सरकार ने हुक्म निकाल दिया कि त्रिवेणी संगम पर कोई स्नान नही करेगा। वहाँ जाने के मार्ग में वल्लियाँ गाड दी गयी। मालवीयजी ने संगम पर स्नान करने की आज्ञा मागी। जव अधिकारियो ने आज्ञा नही दी, तव उन्होने सत्याग्रह करने का निर्णय किया। उन्होने वल्लियो के मजबूत घेरे को पार करने के लिए एक सीढी ली। पर वहाँ पहुँचने पर पुलिस ने उनसे सीढी ले ली, और उन्हें वल्लियाँ पार करके संगम नही जाने दिया। मालवीयजी और दूसरे वहुत से स्नानार्थी गगा की रेती में सत्याग्रही के रूप मे जम कर वैठ गये। यह सत्याग्रह कई घटे तक चलता रहा। घुडसवार और पुलिस किसी को घेरे के पास जाने नही देती थी, जो जाने का प्रयत्न करता उसे पीछे हटा देती थी। आखिर में मालवीयजी ने स्नान करने का निश्चय कर घुडसवारो और पुलिस के सिपाहियो के घेरे में से निकलकर सगम पर जाने का निर्णय किया। वे वडी फुर्ती और दक्षता से सवारो और सिपाहियो के वीच से निकल गये। मालवीयजी जैसे वूढे के लिए यह काम नि.सन्देह वहुत ही विस्मय की वात थी। मालवीयजी के पीछे पीछे दूसरे स्नानार्थी सत्याग्रही भी इसी तरह आगे वढे। घुडसवारो और पुलिस के सिपाहियो ने कुछ देर उन्हें रोकने का प्रयत्न किया, पर अन्त में ठंडे पड गये। मालवीयजी ने दूसरे स्नानार्थियो के साथ त्रिवेणी सगम पर स्नान किया।[1]

सन् १९२७ में हरिद्वार मे कुम्भ होनेवाला था। उसके प्रवन्ध के लिए हर की पैडियो के पास जिलाधिकारी की अनुमति से म्युनिसपेलटी ने एक पुल वनवाया ताकि उस पर से सरकारी अफसर प्रवन्ध का निरीक्षण कर सकें। हरिद्वार की गंगासभा ने इसका विरोध करते हुए कहा कि निरीक्षण के लिए पुल के वजाय पास में एक चवूतरा या मचान वनवाया जा सकता है। चमडे का जूता पहन कर पुल पर चढना तो, उसने कहा, हिन्दू जनता की भावनाओ के विरुद्ध है। पहले तो जिलाधिकारी इस वात पर राजी हो गये कि चमडे का जूता पहन कर कोई अफसर पुल पर नही चढेगा, पर पुलिस के इन्सपेक्टर-जनरल के विरोध पर जिलाधिकारी ने अपनी वात वापस ले ली, और गगा सभा के अधिकारियो को डराना धमकाना शुरू किया। इस पर मालवीयजी ने १० अप्रैल सन् १९२७ को युक्त प्रान्त के गवर्नर को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होने सव वातो को विस्तार से वताते हुए गवर्नर से अनुरोध किया कि पुल

---

१ जवाहर लाल नेहरू : आटोवायाग्रेफी।

को काम में लाने का विचार त्याग दिया जाय। इस पत्र में हिन्दू जनता के असन्तोष और क्षोभ की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए सत्याग्रह की संभावना का भी उन्होंने सकेत किया। मालवीयजी के अनुरोध पर गवर्नर ने मेले के अधिकारियो को आदेश दिया कि पुल का प्रयोग न किया जाय।[1]

इसी हरिद्वार में मालवीयजी ने एक बार वहाँ की नगरपालिका के आदेश का उल्लघन करते हुए ब्रह्मकुण्ड पर कथा कही और 'धर्मो रक्षति रक्षितः' की व्याख्या की। उन्होंने कहा कि साहस और धैर्य के साथ धर्म का पालन करना हमारा पुनीत कर्तव्य है। 'प्राण जाहि पर, धरम न जाही'—यही तो आर्य-सन्तानो का प्रण है। उन्होंने बताया कि युधिष्ठिर ने कहा है—

मम प्रतिज्ञा च निबोध सत्या।
वृणे धर्मममृताञ्जीविताञ्च।
राज्य च पुत्राश्च यशो धन च।
सर्वं न सत्यस्य कलामुपैति।

अर्थात्—'मेरी प्रतिज्ञा को सत्य जानो। मैं धर्म को जीवन से और मोक्ष से भी अधिक अच्छा समझता हूं। राज्य और पुत्र एवं यश और धन—ये सब सत्य के पासग के बराबर के नही है।'

माता कौशल्या ने अपने लाडले पुत्र राम के वन जाते समय मंगल मनाते हुए कहा है—

यं पालयति धर्मं त्वं प्रीत्या च नियमेन च।
स वै राघवशार्दूल धर्मस्त्वामभिरक्षतु॥

अर्थात्—'हे रघुकुल शार्दूल, जिस धर्म का तुम प्रीति और नियम के साथ पालन करके वन को जाते हो, वही धर्म तुम्हारी रक्षा करे।'

मालवीयजी ने कहा, याद रखो—

जो हठि राखै धर्म को, तेहि राखै कर्तार।

उन्होंने कहा कि वेद व्यास जी ने सब वेदो और पुराणो के उपदेशो के निचोड को महाभारत में इस प्रकार बताया है—

न जातु कामान्न भयान्न लोभात्,
धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतो.।
धर्मो नित्य सुखदु:खेत्वनित्ये,
जीवो नित्यो हेतुस्त्वनित्यः॥

---

१. सीताराम चतुर्वेदी : महामना मालवीयजी, पृ० ५०-५३।

अर्थात्—'धर्म को कभी काम के वश होकर, भय से अथवा किसी प्रकार के लोभ में पडकर भी कभी न छोडो, प्राण बचाने के लिए भी न छोडो ! धर्म अविनाशी है, सुखदु:ख आते जाते है। जीव अविनाशी है, जिन कारणो से वह देह को धारण करता है, वे अनित्य है।'

मालवीयजी ने बहुत ही मार्मिक ढग से भारत के इतिहास का दिग्दर्शन कराते हुए बताया कि किस तरह मर्यादापुरुषोत्तम राम और सत्यवादी हरिश्चन्द्र ने धर्म के कारण कष्ट सहे, किस प्रकार राणा प्रताप आदि ने अपने बालबच्चो के सुखदु ख की चिन्ता न कर शत्रु से लडते-लडते अपने प्राणो की आहुति दे दी, और किस तरह चित्तौड और राजपूताने की ललनाओ ने चिता लगाकर अपने सुकुमार शरीर को जला देना स्वीकार किया, पर अपने धर्म से डिगने का विचार तक मन में नही आने दिया। हमारा भी कर्तव्य है कि हम अपने धर्म का दृढता से पालन करें।

हिन्दी भाषा और साहित्य

१० अक्टूबर सन् १९१० को काशी में आयोजित हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन में मालवीयजी ने अध्यक्षता की। अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होने हिन्दी भाषा-भाषी जनता से हिन्दी सीखने का अनुरोध किया। उन्होने कहा: "मातृभाषा को सीखने में कौन लज्जा" की बात है ?[1] सच तो यह है कि जो पुरुष अपने देश की भाषा न जानता हो वह क्या कभी गौरवान्वित हो सकता है ?

उन्होने कहा कि देश की सब भाषाओ की उन्नति हो, "उर्दू के प्रेमी उर्दू की उन्नति का यत्न करें, और हिन्दी के जाननेवाले हिन्दी की उन्नति का।"[2] उन्होने कहा कि अच्छा तो यही होगा कि "हिन्दी और उर्दू दोनो को यथासंभव एक स्थान में लाया जाय", और "दोनों ओर से यत्न होने से हम भाषा के क्रम को बहुत कुछ एक कर सकते है।"[3]

मालवीयजी ने कहा कि हिन्दी साहित्य के भण्डार को समृद्ध करना हमारा कर्तव्य है। इसके लिए हमें अन्य भारतीय भाषाओ तथा अंग्रेजी भाषा मे लिखे उत्तम ग्रन्थो का अनुवाद भी करना चाहिए। अंग्रेजो ने अनुवाद द्वारा अंग्रेजी भाषा के साहित्य को समृद्ध बनाया है, और हमें भी ऐसा करना चाहिए।[4]

---

१. सीताराम चतुर्वेदी. महामना पडित मदन मोहन मालवीय, खंड २, पृ० २४।
२ वही, पृ० २६।
३. वही, पृ० २७-२८।
४ वही, पृ० २९।

मालवीयजी ने कहा : "हिन्दी साहित्य का निर्माण यथासंभव सरल हिन्दी में किया जाय। हमें ऐसी भाषा लिखनी चाहिए जिसे इस प्रान्त के लोग समझ सकें। लिखने की भाषा यथासंभव बोलने की भाषा से मिलती-जुलती हो।"[1] जैसी बातें कहिये वैसी ही लिखिये। उन्होंने कहा कि जो शब्द भाषा में चलते हैं और जिन्हें हम जानते हैं, उन्ही को हमें पुस्तकों और समाचार-पत्रों में लाना चाहिए। "जब हम कोई काव्यमाला लिखें तो आलंकारिक भाषा से काम लें। विज्ञानादि लिखने में पहले भाषा के शब्द लें, जब भाषा में शब्द न मिलें तब संस्कृत से ले या बनायें।"[2]

मालवीयजी ने यह भी कहा कि "हिन्दी में फारसी-अरबी के बड़े-बड़े शब्दो का व्यवहार जैसा बुरा है, हिन्दी को अकारण ही संस्कृत शब्दो से गूँथ देना भी वैसा ही बुरा है। जहाँ तक हो हिन्दी मे हिन्दी ही रखा जाय।"[3] वे चाहते थे कि 'अनावश्यक शब्दो को हिन्दी से अलग' किया जाय।

मालवीयजी चाहते थे कि 'हिन्दी में उर्दू-फारसी के जो शब्द आ गये हैं, उनका व्यवहार जारी रखा जाय'। उनका कहना था . "हिन्दी में कितने ही ऐसे शब्द हैं जो देश की बहुतेरी भाषाओ में ज्यो के त्यो या कुछ बदले हुए रूप में काम में लाये जाते हैं। इन शब्दों के व्यवहार में संकोच न कीजिये। हमें यह देखना चाहिए कि हमारी भाषा के शब्द ऐसे हो जिनसे सब प्रदेश के लोग लाभ उठायें।"[4]

मालवीयजी ने यह भी कहा : "सब भाषाएँ हमारी भाषाएँ हैं"[5] पर "हिन्दी अपनी बहनो में सबसे प्राचीनतम और 'बड़ी बहन' है और माता का रूप और उसकी प्रकृति इससे बहुत मिलती-जुलती है।"[6] उन्होंने हिन्दी भाषा-भाषियो को सम्बोधित करते हुए कहा : "आप भी ऐसा यत्न करें जिससे आपकी भाषा राष्ट्रभाषा बन सके।"[7]

राष्ट्रभाषा

१९ अप्रैल सन् १९१९ को बम्बई में आयोजित हिन्दी साहित्य सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए मालवीय जी ने "देवनागरी लिपि में लिखी हुई हिन्दी भाषा को राष्ट्रीय भाषा" की मान्यता प्रदान करने पर जोर दिया।[8] उन्होंने कहा कि

---

१. वही, पृ० २७।
२. वही, पृ० २८।
३. वही, पृ० २७।
४. वही, पृ० २८।
५ वही, पृ० २१।
६ वही, पृ० २१।
७. वही, पृ० २८।
८ वही, पृ० ३०।

हिन्दी भाषा अन्य देशी भाषाओ की 'बडी बहिन'[१] है, "यह भारत के अधिकाश प्रान्तो में किसी न किसी रूप में प्रचलित है।" "अन्य प्रान्तीय भाषाओ की अपेक्षा इसके बोलनेवालो की संख्या कही अधिक है।" "इसी भापा को बत्तीस करोड भारतवासियो में साढे तेरह करोड लोग बोलते हैं।"[२] उन्होने यह भी कहा : "गुजराती, बंगाली, मराठी आदि बहुत सी भारती भाषाओ से हिन्दी का बहुत मेल है।"[३] उन्होने बताया कि 'सर आशुतोष मुखर्जी, जस्टिस शारदा चरण मित्र' तथा 'श्रीयुत् कृष्णस्वामी' जैसे महानुभाव हिन्दी के प्रति श्रद्धा व्यक्त कर चुके है, तथा इसी भाँति गुजराती और महाराष्ट्रीय सज्जन भी हिन्दी के पक्ष में अपनी सम्मति प्रकट कर चुके है।"[४]

मुसलमानों को सम्बोधिन करते हुए मालवीयजी ने कहा "मुसलमान भाइयो का हिन्दी को मानना कोई नवीन बात नही है। प्राचीन काल से मुसलमान कवि हिन्दी में कविता करते आये है। सम्राट् अकबर तक ने हिन्दी से प्रेम दिखलाया है। वे स्वयं हिन्दी में बहुत अच्छी कविता करते थे।"[५] उन्होने बताया कि इसी तरह "रहीम कवि ने क्या ही अच्छी उपदेशप्रद कविता की है।" और मुबारक, जायसी, रसखान आदि अनेक मुसलमान सज्जनो ने "हिन्दी को अपनी माँ की बोली समझ कर उसकी सेवा की है।"[६] मुसलमान भाइयो की भाँति ईसाई मिशनरियो ने भी हिन्दी का मान करके उसकी बडी सेवा की है।[७] मालवीयजी ने यह भी बताया कि "इसी भाँति सैकडो हिन्दुओ ने उर्दू में भी काव्य और ग्रन्थ लिखे है। ब्रज नारायण 'चकबस्त' की तरह अनेक हिन्दू कवि और लेखक अब भी उर्दू की सेवा कर रहे है।"[८]

मालवीयजी ने कहा 'हिन्दी भाषा एक ऐसी सार्वजनिक भाषा है जिसे सब भेदभाव छोडकर प्रत्येक भारतीय स्वीकार कर सकता है।" उन्होने यह भी कहा : साहित्य और देश की उन्नति अपने देश की भाषा के द्वारा ही हो सकती है"[९], और "जिस देश की जो भाषा है, उसी भाषा में वास्तव में उस देश के न्याय, कानून, राजकाज, कौंसिल आदि का काम होना चाहिए।"[१०] "जब प्रजा के अधीन राज्य होगा, तब हमको ऐसी भाषा द्वारा राजकाज करना होगा, जिसको बहुजन समाज समझता हो। मुट्ठी भर आदमी जिस भाषा को

१ वही, पृ० ३७।
२ वही, पृ० ३७।
३ वही, पृ० ३७।
४ वही, पृ० ३७।
५ वही, पृ० ३८।
६. वही, पृ० ३७।
७. वही, पृ० ३८।
८ वही, पृ० ३८।
९. वही, पृ० ३४।
१०. वही, पृ० ३३।

बोलते और समझते हैं, उनके द्वारा सारी प्रजा का कार्य नहीं किया जा सकता। प्रजा की सम्मति उसी भाषा में प्रकट होनी चाहिए, जिसे वह समझती है। उसका शासन उसी भाषा में होना चाहिए, जिसको वह बोलती हो।"[१] उन्होंने यह भी कहा कि हिन्दी को 'उच्च शिक्षा' का माध्यम बनाया जाय।[२]

अपने विचारों को व्यक्त करते हुए मालवीयजी ने कहा कि हिन्दी को राष्ट्र-भाषा मानकर यदि प्रान्त-प्रान्त की भाषाओं का सेवन किया जाय तो सर्वोत्तम होगा। उन्होंने कहा: "हम यह नहीं कहते कि देश भर में एक ही भाषा रहे, अन्य प्रान्तीय भाषाएं न रहें। हर प्रान्त में अपने-अपने प्रान्त की भाषा उन्नति करे। गुजरात में गुजराती की, महाराष्ट्र में मराठी की उन्नति होनी चाहिए। ये सब प्रान्तीय भाषाएँ हैं। इन सबके रहते हुए हिन्दी भाषा राष्ट्रीय भाषा के तौर पर प्रयुक्त की जा सकती है। अभी तक जो काम अंग्रेजी द्वारा होता आता है, वह अब हिन्दी द्वारा होना चाहिए।"[३]

अन्त में मालवीयजी ने प्रार्थना की कि "सब भाई बहन राष्ट्र-भाषा के गौरव को मानकर अपनी भाषा के साथ-साथ प्रत्येक बालक को हिन्दी का ज्ञान भी करावें", और आशा व्यक्त की कि कोई दिन आवेगा जब जिस भाँति अंग्रेजी जगत्-भाषा हो रही है, उसी भाँति हिन्दी का भी सार्वत्रिक प्रचार होगा।[४]

अक्तूबर सन् १९२९ में विजयदशमी के अवसर पर काशी में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ। मालवीयजी ने स्वागताध्यक्ष की हैसियत से हिन्दी के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण भाषण किया। उन्होंने कहा: "मुसलमानों के समय में बहुत से मुसलमानी शब्द हमारी भाषा में मिल गये, और अब वे भाषा के अङ्ग हैं। इसी प्रकार अंग्रेजों के आने से कुछ अंग्रेजी भाषा के शब्द भी हमारी भाषा में मिल गये हैं। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि हमारी भाषा उन शब्दों से बनी है या उनके कारण बनी है। हमारी भाषा उन्हीं शब्दों से बनी है, जो संस्कृत से प्राकृत और अपभ्रंश बनकर हिन्दी की शोभा को बढ़ाते हैं। जीवित भाषाओं की यह स्वाभाविक गति है कि उनमें प्रयोजन के अनुसार दूसरी भाषा के शब्द मिला लिये जाते हैं। किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं होना चाहिए कि हम अपने शब्दों को छोड़कर उनके स्थान पर दूसरी भाषा के शब्द ग्रहण करें। हमें केवल उन्हीं विदेशी शब्दों को ग्रहण करना चाहिए जिनसे

---

१. वही, पृ० ३५।
२. वही, पृ० ३४।
३. वही, पृ० ३४।
४. वही, पृ० ३८।

हमारी भाषा की शक्ति बढ़े, और भाव को स्पष्ट करने में सहायता मिले।"[1] उन्होंने यह भी कहा : "जब से भारतीयो में राष्ट्र को फिर से स्थापन करने का जतन होने लगा, तब से इस बात की चिन्ता बहुत से देशभक्तो को हो गयी है कि राष्ट्रीय कार्यों और व्यवहार के लिए एक राष्ट्रीय भापा मान ली जाय। अतः उन्होंने हिन्दी को 'राष्ट्र भाषा' मान लिया है, क्योकि वही देश के अधिक स्थानो में बोली और समझी जाती है। यह उद्योग सर्वथा सराहने योग्य है। किन्तु जिस रीति से आजकल भाषा का स्वरूप बदलने का जतन हो रहा है, वह मेरी राय में देश और समाज के लिए हितकारी नही होगा, और हमारे धार्मिक और सास्कृतिक भावो को इससे क्षति पहुँचने की आशंका है।"[2] उन्होंने इस भाषण में लिपि के अकारण संशोधन का भी विरोध किया। उनको भय था कि "अनावश्यक परिवर्तन करने से यह लिपि कल की वस्तु हो जायेगी, और हमारा सम्पूर्ण लिखा हुआ और छपा हुआ साहित्य अजायबघर की सामग्री बन जायेगा।"[3]

पण्डित बलदेव उपाध्यायजी ने अपने संस्मरण में लिखा है—"भाषा तथा शैली के विषय में वे (मालवीयजी) सर्वदा सरल भापा, तथा सुबोध शैली का आग्रह करते थे। उनका भेष था जैसा निर्मल, उज्ज्वल तथा निष्कलंक, उनकी भाषा थी वैसी ही विशुद्ध, सरस तथा सरल। सम्वत् २००० में विक्रमादित्य की द्विसहस्राब्दी के अवसर पर 'अखिल भारतीय विक्रम परिषद्' की स्थापना हुई। महाकवि कालिदास की सम्पूर्ण रचनाओ का हिन्दी में अनुवाद इसकी प्रमुख योजना थी। अनुवाद की भाषा के विषय में महामना ने हम सबको स्पष्ट शब्दो में कहा कि मैं चाहता हूँ कि अनुवाद की भाषा इतनी सरल हो कि हिन्दी का साधारण पाठक भी उसे मजे से समझ जाय। उसे सरस भी होना चाहिए, जिससे किसी को पढने में विरक्ति न हो। वे अपने भाषण में भी सुबोध विधा का प्रयोग किया करते थे। तत्सम शब्दो में विशेष रुचि नही रखते थे, तद्भव शब्दो के विशेष हिमायती थे तथा विशेष पारखी भी। हिन्दी भाषण या लेख में वे अंग्रेजी शब्दो का पुट किसी भाँति भी गवारा नही कर सकते थे।[4]

समीक्षा

हिन्दी के सम्बन्ध में मालवीयजी की धारणाएँ किसी हद तक बहुत से अन्य हिन्दी-प्रेमियो से भिन्न थी। जहाँ मालवीयजी चाहते थे कि हिन्दी

---

१. सीताराम चतुर्वेदी : महामना मालवीयजी, पृ० ८३।
२. वही, पृ० ८३। ३ वही, पृ० ८३।
४ महामना मालवीयजी बर्थ सेनटिनरी कोमेमोरेशन वाल्यूम, पृ० २१६।

में प्रचलित उर्दू और फारसी शब्दों का प्रयोग जारी रहे, और अकारण कठिन संस्कृत शब्दो की तथा दुर्बोध समासों की भरमार न की जाय, सरल भाषा में हिन्दी साहित्य का निर्माण हो, वहाँ हिन्दी के बहुत से प्रेमी हिन्दी भाषा की परिशुद्धि, उर्दू और फारसी शब्दो का सर्वथा परित्याग, तथा संस्कृत शब्दो और समासों का भरपूर प्रयोग आवश्यक समझते हैं। इसी तरह जबकि मालवीयजी नागरी लिपि मे लिखी हिन्दी भाषा को ही राष्ट्रभाषा बनाना चाहते थे, गाधीजी नागरी लिपि और फारसी लिपि दोनो के प्रयोग के पक्ष में थे, और मिली जुली सरल भाषा को 'हिन्दुस्तानी' कहने को तैयार थे। पर ये दोनो नेता सरल भाषा के समर्थक थे, और चाहते थे कि हिन्दी और उर्दू का वैमनस्य दूर हो, तथा हिन्दी के प्रेमी उर्दू आदि देश की सभी भाषाओं के प्रति प्रेम और सद्व्यवहार अपना कर्तव्य समझें।

०

८. बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी
(काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)

शिक्षा का प्रसार

जिस समय लार्ड कर्जन हिन्दुस्तान के शिक्षितो पर चरित्रहीनता का दोषारोपण करते हुए विश्वविद्यालय के प्रवन्ध में सरकार के आधिपत्य को अधिक दृढ बनाने के प्रयत्न मे थे, उस समय देश के वहुत से नेता शिक्षापद्धति को राष्ट्रीय शिक्षा का स्वरूप देने के पक्ष में थे। श्रीमती एनी वेसेंट और मालवीयजी भारतीय सस्कृति की पृष्ठभूमि में उच्चस्तरीय शिक्षा की ऐसी व्यवस्था करना चाहते थे जिसके द्वारा भारतीय नवयुवको के चरित्र का निर्माण हो, उनमे देशप्रेम और देशसेवा की भावनाओ का सचार हो, उन्हें भारतीय संस्कृति का समुचित ज्ञान हो, और वे आधुनिक विद्याओ का ज्ञान प्राप्त कर देश की समृद्धि में समुचित योगदान कर सकें।

इन्ही लक्ष्यो को ध्यान में रखते हुए श्रीमती एनी बेसेंट ने वाराणसी में सन् १८९८ में सेंट्रल हिन्दू कालेज की स्थापना की, और मालवीयजी ने सन् १९०४ में वाराणसी में काशीनरेश प्रभुनारायण सिंह की अध्यक्षता में आयोजित सभा में काशी विश्वविद्यालय की योजना प्रस्तुत की।

प्रस्तावित विश्वविद्यालय

अक्तूवर सन् १९०५ में प्रस्तावित विश्वविद्यालय की योजना की रूपरेखा विभिन्न प्रान्तो के संभ्रान्त हिन्दू सज्जनो के पास भेजी गयी। इस योजना के प्राक्कथन में हिन्दू समाज और हिन्दू धर्म की तत्कालीन स्थिति पर प्रकाश डालते हुए ज्ञान के व्यापक प्रसार और धर्म की पुरानी प्रतिष्ठा को फिर से स्थापित करना देश की उन्नति के लिए आवश्यक वताया गया। उसमें कहा गया कि "भारत के प्राचीन धर्म की शिक्षा है कि प्रत्येक मनुष्य अपने को एक वडी समष्टि की इकाई समझ कर उसके हित के लिए जीवित रहे और काम करे, लोककल्याण और लोकसंग्रह को परम पुरुषार्थ समझे।"[1] उसमें यह भी वताया गया कि प्राचीन धर्म लौकिक अभ्युदय और पारलौकिक सिद्धि, दोनो के लिए

---

१. दर और सोमसकंदन—हिस्ट्री आफ दी बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, पृ० ५१।

प्रयत्न करना मानव का कर्तव्य निर्धारित करता है, और हमारे ऋषियो द्वारा प्रतिपादित नैतिकता में उन सब गुणों का समावेश है जो "मानव समाज के अनाक्रान्त अस्तित्व और मैत्रीपूर्ण सहयोग के लिए आवश्यक हैं।"[१] इस प्राक्कथन मे भारतीय संस्कृति के बहुत से अन्य सद्‌गुणो की विवेचना करते हुए उसकी समुचित शिक्षा हिन्दुओ के वास्तविक उत्थान के लिए आवश्यक बतायी गयी। पर इसके साथ ही लौकिक अभ्युदय के लिए आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन और प्रयोग की आवश्यकता को स्वीकार करते हुए उसकी समुचित शिक्षा के प्रबन्ध पर भी जोर दिया गया, और यह भी बताया गया कि देश में विज्ञान का व्यापक प्रसार और प्रयोग भारतीय भाषाओ के माध्यम से ही सम्भव है। इस तरह प्राक्कथन में हिन्दू धर्म और प्राचीन भारतीय विद्याओ की शिक्षा के साथ ही साथ भारतीय भाषा के माध्यम से आधुनिक ज्ञान-विज्ञान और शिल्पशास्त्र की शिक्षा को प्रस्तावित विश्वविद्यालय का लक्ष्य निर्धारित करते हुए उसके पाठ्यक्रम का सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया।[२]

३१ दिसम्बर सन् १९०५ को यह योजना वाराणसी के टाउनहाल में बरार के श्री वी० एन० महाजन की अध्यक्षता मे आयोजित सभा में प्रस्तुत की गयी। सभा में उपस्थित सज्जनो ने मालवीयजी के इस प्रयास की सराहना करते हुए उसे स्वीकार किया। दूसरे दिन इसकी घोषणा काग्रेस के अधिवेशन मे कर दी गयी। इसके कुछ दिन बाद ही जनवरी सन् १९०६ में कुम्भ के अवसर पर 'सनातन धर्म महासभा' के सम्मेलन में गोवर्धन मठ के परमहंस परिव्राजकाचार्य जगद्‌गुरु शकराचार्य की अध्यक्षता मे इस योजना पर विचार हुआ, और निश्चित किया गया कि 'भारतीय विश्वविद्यालय' के नाम से वाराणसी में प्रस्तावित विश्वविद्यालय स्थापित किया जाय। इस अवसर पर मालवीयजी ने सकल्प किया कि इसे प्रतिष्ठित करने के लिए वे भरसक प्रयत्न करेंगे। १६ मार्च सन् १९०६ को विश्वविद्यालय का विवरण प्रकाशित किया गया, तथा उसके शिलान्यास के लिए शृंगेरी मठ के जगद्‌गुरु शकराचार्य निमंत्रित किये गये। उन्होने विचार का स्वागत करते हुए नियत तिथि पर वाराणसी पहुँचने में असमर्थता प्रकट की। इसके बाद लगभग चार वर्ष तक इस योजना के सम्बन्ध में कोई विशेष कार्य नही हुआ। सन् १९१० में मालवीय जी ने इसके लिए जोर-शोर से काम करने का निर्णय किया।

---

१. वही, पृ० ५३-५४।
२. वही, पृ० ५९-६२।

श्रीमती बेसेंट की योजना

इधर सन् १९०७ में श्रीमती एनी बेसेंट ने वाराणसी में ही 'यूनिवर्सिटी आफ इंडिया' के नाम से विश्वविद्यालय खोलने का निश्चय किया, और चार्टर के लिए सम्राट् को एक आवेदन-पत्र भेजा। इस आवेदन-पत्र पर कई प्रतिष्ठित हिन्दू और पारसी विद्वानो के अतिरिक्त तीन प्रसिद्ध मुसलमान नेताओ के भी हस्ताक्षर थे। श्रीमती एनी बेसेंट चाहती थी कि उनका प्रस्तावित विश्वविद्यालय मुख्यत निवासीय शिक्षण संस्थान हो, पर उसे देश भर में सस्थापित कालेजो को भी अपने से सम्बद्ध करने का अधिकार हो। सरकार ने कई वर्ष तक इस पर कोई विचार ही नही किया। सितम्बर सन् १९१० में भारत सरकार ने भारत-मन्त्री के पास यह योजना भेज दी, जिन्होने उसे भारत सरकार की राय के लिए उसके पास लौटा दिया।

मुस्लिम यूनिवर्सिटी

सन् १९११ में हिज हाइनेस आगा खाँ के नेतृत्व मे मुसलमानो का एक डेपुटेशन भारत सरकार से मिला, और उसने अलीगढ में मुस्लिम यूनिवर्सिटी के लिए चार्टर प्रदान करने की प्रार्थना की। भारत सरकार ने उसे आश्वासन दिया कि यदि इस काम के लिए २५ लाख रुपये जमा कर लिये जायेंगे, तो इस पर सहानुभूति से विचार किया जायगा।

नया उत्साह

इस समाचार ने मालवीयजी की योजना के समर्थको में एक नया उत्साह पैदा कर दिया। मार्च-अप्रैल सन् १९११ में मालवीयजी और श्रीमती एनी बेसेंट ने काशी में विश्वविद्यालय को प्रतिष्ठित करने के लिए मिलकर काम करने का निश्चय किया। ११ अप्रैल को श्रीमती एनी बेसेंट ने एक वक्तव्य में अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए बताया कि तीन प्रमुख मुसलमानो ने उनके आवेदन-पत्र से अपने हस्ताक्षर वापस ले लिये हैं, अलीगढ़ कालेज ने यह कहकर कि वह स्वयं अपना विश्वविद्यालय खोलने जा रहे हैं, उनकी योजना में अपना सहयोग देने से इनकार कर दिया है, और हिन्दू जनता में अपना एक अलग विश्वविद्यालय खोलने की इच्छा जागृत हो गयी है। इन सब कारणो से- सब मित्रो की यही राय है कि सब लोग मिलकर काशी में एक विश्वविद्यालय की स्थापना करें। श्रीमती बेसेंट ने कहा कि उनकी और मालवीयजी की सहमति है कि नया विश्वविद्यालय 'यूनिवर्सिटी आफ इंडिया' या 'काशी विश्वविद्यालय'

के नाम से विख्यात हो और वह एक निवासीय शिक्षण-संस्थान हो, पर उसे उन सब संस्थाओं को, जहाँ धर्म और नैतिकता की शिक्षा दी जाती हो, अपने से सम्बद्ध करने का अधिकार हो। भारतीय दर्शन, इतिहास और साहित्य की शिक्षा द्वारा हिन्दू संस्कृति का विकास इसकी प्रमुख विशेषता होगी।[1]

जुलाई में मालवीयजी ने एक संशोधित योजना प्रसारित करते हुए एक करोड़ रुपये की अपील की, तथा वे महाराजाधिराज दरभंगा से मिले और उनसे प्रार्थना की कि वे अपनी योजना को भी उनकी योजना में मिला दें। महाराजाधिराज ने कुछ ऐसी शर्तें रखी जिनके कारण दोनों का मेल लगभग तीन मास के लिए टल गया। इन तीन महीनों में युक्त प्रान्त (मौजूदा उत्तर प्रदेश), बिहार, बंगाल, पंजाब और मध्य प्रदेश के अनेक स्थानों पर मालवीयजी और उनके साथियों ने दौरा किया, और प्रतिष्ठित नेताओं, विद्वानों और धनीमानी व्यक्तियों के सहयोग से कई लाख रुपये चन्दे में एकत्र किये।

वाइसराय से भेंट और हिन्दू यूनिवर्सिटी सोसाइटी

११ अक्तूबर सन् १९११ को मालवीयजी और महाराजाधिराज दरभंगा वाइसराय लार्ड हार्डिंग और शिक्षा-सदस्य सर हारकोर्ट बटलर से मिले, और उन्होंने कुछ शर्तों के पूरा होने पर विश्वविद्यालय को मान्यता देने का आश्वासन दिया। इसके बाद महाराजाधिराज सर रामेश्वर सिंहजी मालवीयजी के साथ काम करने को राजी हो गये और उन्होंने पांच लाख रुपये दान में दिये। २१ अक्तूबर को मालवीयजी ने श्रीमती एनी बेसेंट से मिलकर उनकी अनुपस्थिति में सेंट्रल हिन्दू कालेज के अन्य संचालकों और ट्रस्टियों से जो मतभेद पैदा हो गया था उसका समाधान किया। २२ अक्तूबर को यह घोषित किया गया कि श्रीमती बेसेंट, मालवीयजी और महाराजा दरभंगा की योजनाएँ मिलाकर एक कर दी गयी हैं, और नये विश्वविद्यालय का नाम 'हिन्दू यूनिवर्सिटी' होगा, तथा उसका धर्म विज्ञान विभाग केवल हिन्दुओं के हाथ में होगा।[2]

२८ नवम्बर सन् १९११ को 'हिन्दू यूनिवर्सिटी सोसाइटी' के नाम से सर रामेश्वर सिंहजी की अध्यक्षता में बनारस में हिन्दू यूनिवर्सिटी की स्थापना के लिए एक संस्था स्थापित हो गयी। डाक्टर सुन्दर लाल मन्त्री का भार वहन करने को राजी हो गये। सर गुरुदास बनर्जी, श्रीमती एनी बेसेंट और डाक्टर रासबिहारी घोष उपाध्यक्ष चुने गये। बाबू भगवान दास, पण्डित गोकरण नाथ

---

१. वही, पृ० १०२-१०४। २. वही, पृ० १९३।

मिश्र, पडित कृष्णराम मेहता, पंडित इकवाल नारायण गुर्टू, तथा बाबू मंगला प्रसाद सयुक्त मन्त्री नियुक्त हुए। बीकानेर-नरेश सर गगा सिंह भी सक्रिय सहयोग देने को तैयार हो गये।

४ दिसम्वर सन् १९११ को इस सस्था से संवधित ३२ सम्मानित व्यक्तियो का एक डेपुटेशन दिल्ली मे वटलर साहव से मिला, जिन्होने वहुत ही सन्तोपजनक ढग से वातचीत की। इस समय यह निश्चय हुआ कि यूनिवर्सिटी एक्ट पास हो जाने पर उसका तभी कार्यान्वियन होगा जब बैंक में ५० लाख रुपया जमा हो जायें और सोसाइटी एक करोड रुपया जमा करने की स्थिति में हो।

चन्दा

सन् १९१२ में देश के विभिन्न नगरो में बडे उत्साह के साथ जलसे हुए, जिनमें वहुत से राजाओ, महाराजाओ, नेताओ, विद्वानो और धनीमानी सज्जनो ने भाग लिया। मालवीयजी और महाराजा दरभंगा आदि ने चन्दे की अपील की, और लाखो रुपये इकट्ठे हुए। ३१ मार्च सन् १९१३ तक साढे इक्कीस लाख रुपये से अधिक जमा हो गये, और छत्तीस लाख से अधिक वायदे प्राप्त हो गये। चन्दा जमा करने का मिलसिला जारी रहा। सन् १९१५ के प्रारम्भ तक पचास लाख रुपये जमा हो गये, जिसमे महाराजा वीकानेर, महाराजा जोधपुर और महाराजा काश्मीर के वार्षिक अनुदानो के पूँजीकृत मूल्य भी सम्मिलित थे।

सेंट्रल हिन्दू कालेज

४ मई सन् १९१३ को सेंट्रल हिन्दू कालेज के ट्रस्टियो ने निश्चय किया कि सेंट्रल हिन्दू कालेज के प्रवन्ध को यथाशीघ्र हिन्दू यूनिवर्सिटी सोसाइटी के सुपुर्द कर देने का प्रवध किया जाय। इसके वाद कानूनी आवश्यकताओ को ध्यान में रखते हुए हिन्दू यूनिवर्सिटी सोसाइटी ने तथा सेंट्रल हिन्दू कालेज की प्रवन्ध समिति तथा ट्रस्टियो की सभा ने आवश्यक प्रस्ताव पास किये, और सव औपचारिकताए पूरी होने के वाद २७ नवम्बर सन् १९१४ को सेंट्रल हिन्दू कालेज एसोसिएशन हिन्दू यूनिवर्सिटी सोसाइटी में मिला दिया गया, और उसे सेंट्रल हिन्दू कालेज, सेंट्रल हिन्दू स्कूल, तथा रणवीर सस्कृत पाठशाला हस्तान्तरित कर दिये गये।

सरकार से विवाद

शिक्षा का माध्यम तथा सरकार का नियत्रण, इन दो विषयो पर विश्व विद्यालय के प्रवर्तको और भारत सरकार में गहरा मतभेद था। मालवीयजी अंग्रेजी

के बजाय हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाना चाहते थे। उनका विचार था कि भारतीय भाषाओ द्वारा ही अधिकाश जनता शिक्षित हो सकती है, तथा देश में ज्ञान-विज्ञान का प्रसार और मौलिक विचारो की अभिव्यक्ति सुगमता से हो सकती है। भारत सरकार और भारत-मन्त्री अग्रेजी को ही शिक्षा का माध्यम बनाये रखना चाहते थे। अन्त में मालवीयजी को यह स्वीकार करना पडा कि हिन्दू विश्वविद्यालय में अंग्रेजी ही अर्वाचीन विद्याओ की शिक्षा का माध्यम होगी।

हिन्दू विश्वविद्यालय और मुस्लिम यूनिवर्सिटी के प्रवर्तक गवर्नर-जनरल को चान्सलर बनाने को तैयार थे। पर सरकार सयुक्त प्रान्त (मौजूदा उत्तर प्रदेश) के लेफ्टिनेंट-गवर्नर को दोनो विश्वविद्यालयो का चासलर बनाना चाहती थी। इसके लिए दोनो तैयार नही थे। अन्त में सरकार इस बात पर राजी हो गयी कि दोनो विश्वविद्यालय स्वयं अपना चान्सलर निर्वाचित करें, संयुक्त प्रान्त के गवर्नर दोनो के पदेन विजिटर हों, और इस हैसियत से उन्हें नियन्त्रण के वे सब अधिकार प्राप्त हो जो साधारणतः दूसरे विश्वविद्यालयो मे चान्सलर के सुपुर्द होते है।

भारत-मंत्री वास्तव में इन दोनो पर दूसरे विश्वविद्यालयो से कही अधिक कडा सरकारी नियंत्रण स्थापित करना चाहते थे। वे तो विश्वविद्यालय के प्रोफेसरो, अध्यापको और परीक्षको की नियुक्तियो का उत्तरदायित्व तक लेफ्टिनेंट-गवर्नर को सौंपना चाहते थे। इस प्रकार का कडा नियन्त्रण और अविश्वास दोनो विश्वविद्यालयो के समर्थक स्वीकार करने को तैयार नही थे। सरकार की इस मनोवृत्ति की कडी आलोचना हुई। बहुत से दाताओ ने हिन्दू यूनिवर्सिटी सोसाइटी के अधिकारियो को लिखा कि आपत्तिजनक, अपमानकर प्रतिबन्धो को स्वीकार न किया जाय, और यदि सरकार अपनी बात पर डटी रहे तो एकत्रित धन किसी दूसरे समाजोत्थान के कार्य में लगाया जाय। जनमत को ध्यान में रखकर सरकार कुछ ढीली पडी। उसने प्रोफेसरो और अध्यापको की नियुक्तियो में सरकारी हस्तक्षेप की जिद छोड दी, और निश्चय किया कि अन्य विशेष अधिकार किन्ही विशेष परिस्थितियो में स्वय भारत सरकार द्वारा प्रयुक्त होगे। गवर्नर-जनरल को लार्ड रेक्टर बनाना निश्चित हुआ, और नियंत्रण के विशेष अधिकार इस हैसियत से उन्हें सौपना तय हुआ।

बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी बिल

२२ मार्च सन् १९१५ को सर हारकोर्ट बटलर ने इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौसिल में बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी बिल प्रस्तुत किया। इस नये विश्वविद्यालय

की विशेषताओ की चर्चा करते हुए उन्होने कहा · "आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयो की तरह यह निवासीय और शिक्षण विश्वविद्यालय होगा, और इस तरह लन्दन विश्वविद्यालय के नमूने पर बने विश्वविद्यालयो से भिन्न होगा।" दूसरे इस विद्यालय में जहाँ सब जाति और सम्प्रदाय के विद्यार्थी दाखिल हो सकेंगे, वहाँ हिन्दू विद्यार्थियो को हिन्दू धर्म की शिक्षा दी जायगी, तथा यहाँ हिन्दू धर्मविज्ञान की उच्चस्तरीय शिक्षा का प्रबन्ध होगा। तीसरे इसका सचालन और प्रबन्ध हिन्दू समाज और अधिकतर गैर-सरकारी सज्जनो द्वारा ही होगा। कलकत्ता विश्वविद्यालय के विधान से प्रस्तावित विश्वविद्यालय के विधान की तुलना करते हुए बटलर साहब ने कहा कि इसकी व्यवस्था नि सन्देह अधिक उदार है, और गवर्नर-जनरल के विशेषाधिकार केवल आपत्कालीन है, जिनके आधार पर इस विश्वविद्यालय की व्यवस्था को अनुदार कहना उचित नही है।[१]

सर गंगाधर चितनवीस, महाराजा मनीद्र चन्द्र नन्दी, श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, राय सतीनाथ बहादुर, श्री मधुसूदन दास, मिस्टर मानकजी दादाभाई, सर फजल भाई करीम भाई आदि ने विधेयक का समर्थन किया। मिस्टर ए० के० गजनवी ने कहा कि उस समय जबकि देश को हिन्दू-मुस्लिम एकता को सुदृढ करने को जरूरत है, हिन्दू यूनिवर्सिटी और मुस्लिम यूनिवर्सिटी की स्थापना हानिकर हो सकती है।[२] श्री चिम्मनलाल सीतलवाद ने कहा कि धर्म-विहीन और नैतिकता-विहीन शिक्षा के दुष्परिणामो को हर कोई जानता है, पर जबतक धर्म के आधार पर भारतीय शिक्षा को सुव्यवस्थित करने का भार लोग अपने ऊपर न ले, तबतक उनको दूर करने के लिए कुछ नही किया जा सकता। हिन्दू यूनिवर्सिटी भारतीय शिक्षा के इतिहास में एक नया अध्याय प्रारम्भ करेगी। दूसरी यूनिवर्सिटियो से भिन्न, धर्म हिन्दू यूनिवर्सिटी की जीवन-प्रदायनी शक्ति होगी, जो स्नातको के सुनम्य मन को भिन्न और अधिक मनोहर रूप में ढालेगा[३], पर गजनवी साहब की तरह उन्होने भी कहा कि उन्हें भी 'साम्प्रदायिक विश्वविद्यालयों' में भय दिखाई देता है।[४] पर अब जब हिन्दू और मुसलमान, दोनो ने अपने-अपने विश्वविद्यालय खोलने का निश्चय ही कर लिया है, तब इस पर कुछ अधिक कहना व्यर्थ है। उन्होंने आशा व्यक्त की कि इस विश्वविद्यालय के संचालक साम्प्रदायिक विभाजन से उसे अधिक प्रभावित नही होने देंगे।[५]

---

१. प्रोसीडिंग गवर्नर-जनरल की कौंसिल (लेजिस्लेटिव) सन् १९१५ पृ० ५२५।
२. वही, जि० ५३, पृ० ५३२।
३. वही, जि० ५३, पृ० ५३५।
४. वही, जि० ५३, पृ० ५३५।
५. वही, जि० ५३, पृ० ५३६।

उन्होंने यह भी कहा कि विद्यार्थियो को धार्मिक शिक्षा ग्रहण करने के लिए मजबूर नही करना चाहिए, और यदि कोई मुसलमान या ईसाई विश्वविद्यालय की प्रगति में योगदान करने को तैयार हो, तो उसे यूनिवर्सिटी के कोर्ट का सदस्य बनाने में कोई रुकावट नही होनी चाहिए।

मालवीयजी ने कहा कि यद्यपि यह संस्था साम्प्रदायिक होगी, पर मतान्ध नही होगी। इस विश्वविद्यालय में सकुचित सम्प्रदायिकता को आश्रय नही दिया जायगा, वरन् उन व्यापक और उदार धार्मिक भावनाओ को प्रोत्साहित किया जायगा जो मनुष्य और मनुष्य के बीच भ्रातृत्व की भावना का विकास करें।[१]

१ अक्तूबर सन् १९१५ को शिक्षा-सदस्य सर हारकोर्ट बटलर ने प्रवर समिति की रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसका बहुत से सदस्यो ने समर्थन किया। मालवीय जी ने इस अवसर पर बोलते हुए आशा व्यक्त की कि "ज्योति और जीवन का यह केन्द्र जो अस्तित्व में आ रहा है, उन विद्यार्थियो को तैयार करेगा जो ज्ञान मे संसार के दूसरे भागो के विद्यार्थियो के समान ही नही होगे, वरन् उत्तम जीवन बिताने में, ईश्वर-भक्ति, देश-प्रेम तथा सम्राट् के प्रति निष्ठा में भी परिशिक्षित होगे।"[२]

विश्वविद्यालय का उद्घाटन

(१ अक्तूबर सन् १९१५ को बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी एक्ट पास हुआ, और ४ फरवरी सन् १९१६ अर्थात् माघ शुक्ल प्रतिपदा सम्वत् १९७२ वि० को लार्ड हार्डिग ने उसका शिलान्यास किया।) इस अवसर पर बगाल के गवर्नर, तीन प्रान्तो के लेफ्टिनेंट-गवर्नर, १२ महाराजे, बहुत से विद्वान्, जमीदार, साहूकार, और प्रतिष्ठित नेता उपस्थित थे। वाइसराय महोदय ने अपने अभिभाषण में कहा कि उनके विचार में "धार्मिक शिक्षा की नीव, तथा धार्मिक वातावरण के संतुलित प्रभाव के बिना मानसिक और नैतिक संयम तथा अध्यापको के उपदेशो और उदाहरण की खिसकती हुई रेत पर चरित्र का निर्माण कठिन है।"[३] उन्होंने विश्वविद्यालय के आदर्शों तथा उसके प्रवर्तको की अभिलाषाओ के प्रति अपनी शुभ कामना व्यक्त की। शिलान्यास के उत्सव का समारोह कई दिन तक चलता रहा।

---

१ वही, जि० ५३, पृ० ५३७-५३९। २. वही, जि० ५४, पृ० १८९।

३. दर और सोमत सकंदन—हिस्ट्री आफ दी बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, पृ० ३४७।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के शिलान्यास स्थल पर भाषण देते हुए मालवीयजी

वहुत से विद्वानो ने तथा गाधीजी ने सारगर्भित व्याख्यान दिये। गाधीजी ने अपने भाषण में सरकार तथा राजाओ-महाराजाओ की कडी आलोचना की, जिसके कारण काफी वदमजगी पैदा हो गयी। राजे-महाराजे तथा श्रीमती बेसेंट आदि कई लोग उठकर चले गये, पर मालवीयजी बैठे रहे।

पदाधिकारी

१ अप्रैल सन् १९१६ को यूनिवर्सिटी एक्ट चालू कर दिया गया। मैसूर के महाराजा कृष्णराज वादियर चान्सलर, ग्वालियर के महाराजा माधव राव सिंधिया प्रोचान्सलर तथा डाक्टर सुन्दरलाल वाइस-चान्सलर नियुक्त किये गये। महाराजा मैसूर और महाराजा ग्वालियर छः वर्षो तक अपने पदो पर आसीन रहे। इनके वाद ३० नवम्वर सन् १९२२ को बडौदा के महाराजा सयाजी राव गायकवाड चान्सलर, तथा बीकानेर के महाराजा गगा सिंह प्रोचान्सलर निर्वाचित हुए। ये दोनो भी इन पदो पर ३१ मार्च सन् ,१९२९ तक आसीन रहे। इसके वाद महाराजा गंगासिंहजी चान्सलर निर्वाचित हुए, और १ फरवरी सन् १९४३ तक वे इस पद को सुशोभित करते रहे। काशी-नरेश प्रभुनारायण सिंह ३१ मार्च सन् १९२९ को प्रोचान्सलर निर्वाचित हुए। उनके निधन पर ३० नवम्वर सन १०३१ को जोधपुर के महाराजा उमेद सिंह प्रोचान्सलर निर्वाचित हुए, और वे १० जून सन् १९४७ तक इस पद पर रहे। ३० नवम्बर सन् १९३१ को काशीनरेश सर आदित्य नारायण सिंह भी प्रोचान्सलर निर्वाचित हुए, और वे ४ अप्रैल सन् १९३९ तक इस पद को सुशोभित करते रहे। उनके निधन पर मई सन् १९३९ मे दरभगा के महाराजा कामेश्वर सिंह को प्रोचान्सलर निर्वाचित किया गया।

डाक्टर सुन्दरलालजी का १३ फरवरी सन् १९१८ को निधन हो गया, और उनकी जगह पर १३ अप्रैल सन् १९१८ को सर पी०एस० शिवस्वामी अय्यर वाइस-चान्सलर निर्वाचित हुए। पर उन्होने ८ मई सन् १९१९ को इस्तीफा दे दिया, और उनकी जगह पर २९ नवम्बर सन् १९१९ को मालवीयजी तीन वर्ष के लिए वाइस-चान्सलर निर्वाचित हुए, पर वे वरावर चुने जाते रहे, और सितम्वर सन् १९३९ तक इस पद पर काम करते रहे। उसके वाद मालवीयजी के अनुरोध पर सर राधाकृष्णन् ने वाइस-चान्सलर का भार सम्भाला।

कोर्ट ने मालवीयजी के गुरु महामहोपाध्याय आदित्यराम भट्टाचार्य को पहला प्रो-वाइस-चान्सलर नियुक्त किया। पर उन्होंने ८ अगस्त सन् १९१८

को इस्तीफा दे दिया। उसके बाद कुछ समय तक मालवीयजी और ज्ञानेन्द्र नाथ चक्रवर्ती ने इस पद का भार सँभाला। अप्रैल सन् १९२० में आचार्य आनन्दशंकर बापू भाई ध्रुव प्रो-वाइस-चान्सलर निर्वाचित हुए और वे बार बार चुने जाकर ३१ मार्च सन् १९३६ तक काम करते रहे। आचार्य ध्रुव संस्कृत वाङ्मय के प्रतिभाशाली विद्वान् थे। वे अपनी उदार और प्रगतिशील धारणाओ, सद्भावनाओ और सौजन्य के लिए प्रसिद्ध थे। सभी उनका आदर करते थे। १ अप्रैल सन् १९३६ को राजा ज्वाला प्रसाद प्रो वाइस-चान्सलर निर्वाचित हुए और दिसम्बर १९४० तक वे काम करते रहे। तदुपरान्त मालवीयजी के आग्रह पर पंडित इकबाल नारायण गुर्टूजी ने इस भार को ग्रहण किया। राजा ज्वाला प्रसाद और डाक्टर इकबाल नारायण गुर्टू के विश्वविद्यालय से पुराने सम्बन्ध थे। विश्वविद्यालय के निर्माण में राजा ज्वाला प्रसादजी का महत्त्वपूर्ण योगदान था। वे ही विश्वविद्यालय के इक्जीक्यूटिव इन्जीनियर थे, और प्रो-वाइस-चान्सलर बनने से पहले युक्तप्रान्त के चीफ इंजीनियर के पद को सुशोभित कर चुके थे। गुर्टू साहब का प्रयाग विश्वविद्यालय के वाइस-चान्सलर की हैसियत से शिक्षा के क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण योगदान था।

सहयोग

काशी विश्वविद्यालय निःसन्देह मालवीयजी की सबसे बडी कृति है। इसके निर्माण में बहुत से राजाओ-महाराजाओ, विद्वानो, जमीदारो तथा धनीमानी सज्जनो का भरपूर योगदान था। पर मालवीयजी का साहस, उत्साह, कल्पना, लगन और तपस्या ही उसका प्रमुख आधार था। राष्ट्रसेवा के बहुत से कामो मे फँसे रहने के कारण वे अपना सारा समय तो विश्वविद्यालय को अर्पित नही कर सके, पर उसके अभ्युदय की चिन्ता उन्हे जीवन की अन्तिम घडी तक सदा बनी रही। सन् १९२० से सन् १९३९ तक तो उसके संचालन और प्रबन्ध का भार उन्हे ही मुख्यत वहन करना पडा। सन् १९१६ के बाद उसके प्रबन्ध और संचालन में जिन महानुभावो ने उनके साथ काम किया उनमें पंडित बलदेव राम दवे, पण्डित कन्हैया लाल दवे और पण्डित हृदयनाथ कुंजरू का स्थान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पण्डित इकबाल नारायण गुर्टू और मुशी ईश्वर शरण का भी अच्छा योगदान था। कोषाध्यक्ष की हैसियत से राजा मोती चन्द का, तथा इन्जीनियर की हैसियत से ज्वाला प्रसादजी का भी भरपूर योगदान था। महाराजा बनारस और महाराजकुमार विजयानगरम् को ही आतिथ्य-सत्कार का भार वहन करना होता था। बिडला परिवार का भी विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों के उत्थान में विशिष्ट योगदान रहा।

इस सम्बन्ध में बाबू शिवप्रसादजी का नाम भी उल्लेखनीय है। उन्होंने सन् १९१० और सन् १९११ में चन्दा जमा करने के लिए मालवीयजी के साथ देश में भ्रमण किया, पर जब अक्तूबर सन् १९११ में पण्डितजी सरकारी मान्यता प्राप्त करने को राजी हो गये, तब उन्होंने विश्वविद्यालय से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया, पर मालवीयजी की सेवा करना वे तब भी अपना पुनीत कर्तव्य समझते रहे, और इसका निर्वाह वे आजीवन पुत्रवत् करते रहे। उनका 'सेवा उपवन' मालवीयजी के अतिरिक्त पण्डित बलदेव राम दवे, पण्डित कन्हैया लाल दवे, पण्डित हृदयनाथ कुजरू आदि के लिए भी अतिथिगृह बना रहा। विश्वविद्यालय के निमंत्रण पर आमंत्रित बहुत से अन्य विद्वानो और नेताओ का आतिथ्य-सत्कार भी वही होता था।

विद्यार्थियो के जीवनोत्कर्ष मे बहुत से विद्वानो का महत्त्वपूर्ण योगदान था, पर सभवतः इन सब में प्रोफेसर श्यामाचरण दे के व्यक्तित्व का विशिष्ट स्थान था। बाल ब्रह्मचारी का निर्मल चरित्र, निष्कपट व्यवहार, व्यापक सहानुभूति और प्रेम, तथा निष्काम सेवा उत्कृष्ट जीवन के विमोहक उदाहरण थे, जिनका अनुसरण कठिन होते हुए भी जीवनोत्कर्ष का उत्तम आदर्श था।

विशेषताएँ

अंग्रेजी साहित्य तथा आधुनिक मानविकी और विज्ञान के साथ-साथ हिन्दू धर्म-विज्ञान, प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति एवं विभिन्न प्राच्य विद्याओ का अध्ययन इस विश्वविद्यालय की विशेषता थी। यहाँ एक विद्यार्थी प्राच्य विद्या संकाय में प्राचीन पद्धति से संस्कृत वाङ्मय का अध्ययन करते हुए कला संकाय में अर्वाचीन अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान, दर्शनशास्त्र का अध्ययन कर सकता था, एक ही समय में प्राचीन और अर्वाचीन विद्वानो के ज्ञान से लाभान्वित हो सकता था।

यद्यपि बीस पचीस वर्ष हिन्दी भाषा शिक्षा का माध्यम नही बन पायी, पर हिन्दी भाषा-भाषी विद्यार्थियो के लिए हिन्दी भाषा का अध्ययन कला सकाय में इण्टर और बी० ए० कक्षाओ तथा विज्ञान संकाय में इण्टर की कक्षाओ में अनिवार्य था, और तीन चार वर्ष के अन्दर ही कला संकाय में हिन्दी साहित्य को अध्यापन का एक प्रमुख वैकल्पिक विषय बना दिया गया। कुछ वर्षो तक तो यही विश्वविद्यालय हिन्दी साहित्य की शिक्षा का मुख्य केन्द्र था। यही बाबू श्याम सुन्दर दास, पण्डित रामचन्द्र शुक्ल, पण्डित अयोध्या सिंह उपाध्याय, बाबू भगवान दीन जैसे विद्वानो से हिन्दी-प्रेमी विद्यार्थी हिन्दी

साहित्य का ज्ञान प्राप्त कर दूसरे विद्यालयो में उस ज्ञान से विद्यार्थियो को लाभान्वित करते थे। इस तरह हिन्दी का प्रसार इस विश्वविद्यालय की दूसरी विशेपता थी।

कला सकाय मे विभिन्न विपयो के पाठ्यक्रम में अर्वाचीन पाश्चात्य विद्वानो के साथ ही साथ प्राचीन भारतीय विद्वानो के विचारो और सिद्धान्तो का ज्ञान भी शामिल था। दर्शनशास्त्र के विद्यार्थियो को काट और हीगल के साथ-साथ अनिवार्य रूप से कपिल और शंकर के सिद्धान्तो का भी अध्ययन करना होता था। राजनीति के विद्यार्थियो को भारतीय राजनीतिक विचारों और सस्थाओ का ज्ञान भी प्राप्त करना होता था। यह विश्वविद्यालय की तीसरी विशेपता थी।

यहाँ मालवीयजी की सरक्षता में राजनीति विभाग मे स्वतन्त्रता प्राप्त होने से पन्द्रह-सोलह वर्प पहले ही भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास, आधुनिक भारतीय सामाजिक और राजनीतिक विचार, तथा समाजवादी सिद्धान्तो का इतिहास आदि विपयो का अध्यापन काफी निर्भीकता से किया जाता था, और यह भी उसकी एक विशपता थी, क्योकि उस समय इन विपयों के पठन-पाठन का प्रबन्ध दूसरे भारतीय विश्वविद्यालयों में सम्भव भी नही समझा जाता था।

प्रायोगिक विज्ञान की शिक्षा का प्रबन्ध नि सदेह इस विश्वविद्यालय की एक प्रमुख विशेपता थी। धन का अभाव होते हुए भी मालवीयजी ने वहुत से विरोधो का मुकावला करते हुए इस विश्वविद्यालय में धातु विज्ञान, खनन विज्ञान, भूविज्ञान, विद्युत इजीनियरी, यान्त्रिक इंजीनियरी, रसायन विज्ञान, मृत्तिका शिल्प, औषध निर्माण विज्ञान की शिक्षा का प्रवन्ध किया। सम्भवत. उनमे से वहुत से विपय उस समय भारत के अन्य विश्वविद्यालयो में नही पढाये जाते थे। यहाँ का इजीनियरिंग कालेज निःसन्देह सारे भारत का शिक्षा-केन्द्र था।

सदुपदेश

धार्मिक शिक्षा भी इस विश्वविद्यालय की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता थी। मालवीयजी 'धर्म की सजीव शक्ति पर विश्वास' करते थे, और धर्म का ज्ञान तथा अनुसरण जीवन के उत्कर्प के लिए आवश्यक समझते थे। उनकी धार्मिक भावना मनुष्यता से विभूषित थी। वे धार्मिक शिक्षा द्वारा विद्यार्थियो में उन 'व्यापक और उदार भावनाओ' को प्रोत्साहित करना चाहते थे, 'जो मनुष्य के वीच
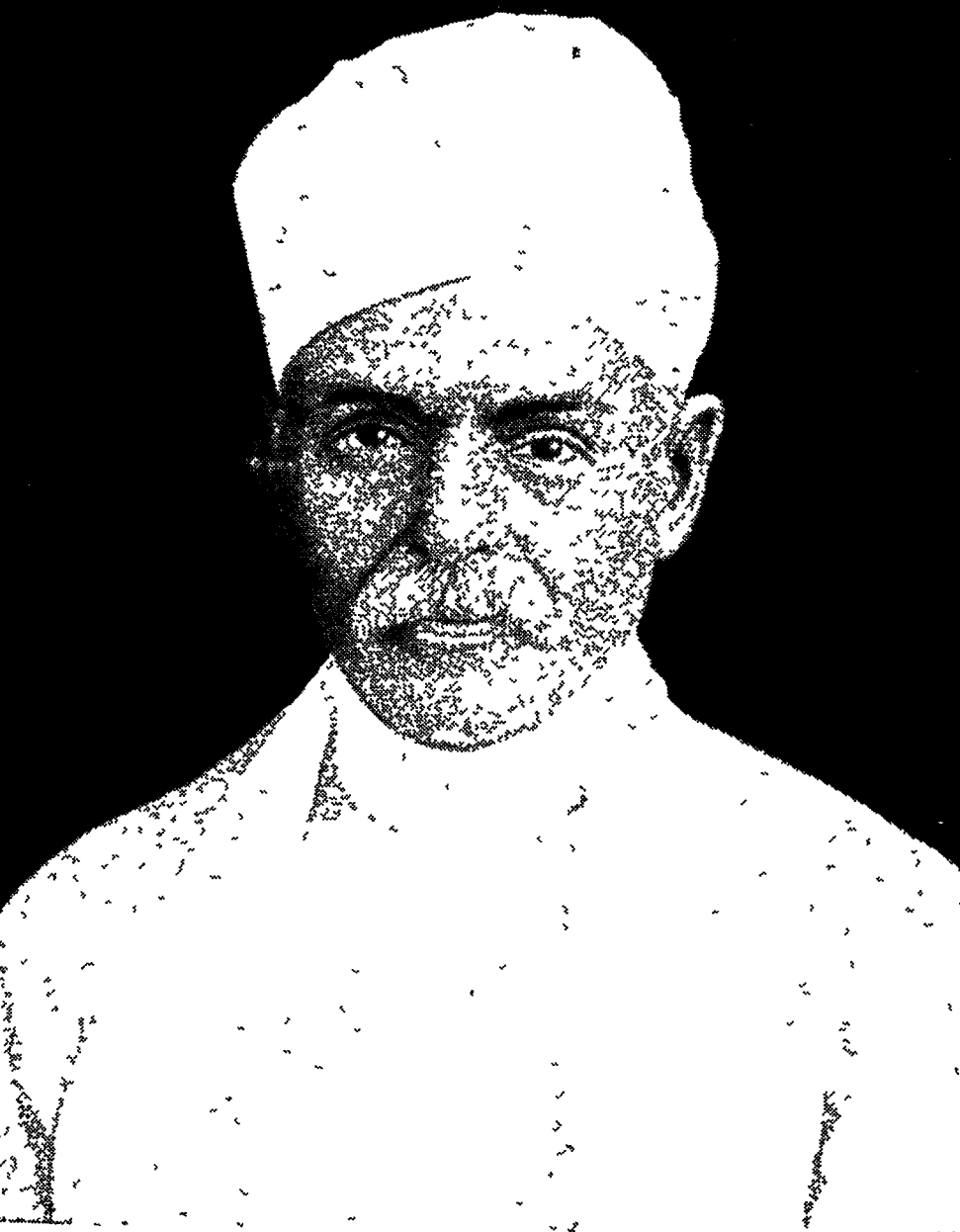
भ्रातृत्व की भावना का विकास करें'। विश्वविद्यालय के विद्यार्थियो को धर्म का उपदेश करते समय व सदा इसका ध्यान रखते थे। उनका उपदेश निःसदेह नैतिकता और देशप्रेम से समन्वित, तथा उदात्त मानवीय भावना से अनुप्राणित होता था। वे शील और देश-प्रेम को धर्म का महत्त्वपूर्ण अग, तथा प्राणीमात्र के प्रति सौहार्द भावना को धर्म का प्राण समझते थे। वे अपने विद्यार्थियो को वताते थे कि शील और देशप्रेम से रहित ज्ञान निरर्थक है। वे कहते थे : "शीलं प्रधानं पुरुषे"—शील ही मनुष्य में प्रधान है, "शीलं परं भूषणम्"—शील ही मानव का सबसे उत्तम भूषण है। उनकी शिक्षा थी कि चरित्र ही मनुष्य को ऊँचा उठाता है, शील-सम्पन्न विद्वान् ही अपने जीवन का समुचित उत्कर्ष तथा समाज की ठोस सेवा कर सकता है। वे कहा करते थे कि नगवा के साडो, कोई ऐसा काम मत करना जिससे माता के आँचल पर धब्बा लगे, और राष्ट्र के गौरव की क्षति हो। वे विद्यार्थियो से कहते थे : "हृदय को पवित्र बना लो, मन को निर्मल बना लो, संसार में जहाँ जाओगे वहाँ मान के अधिकारी होगे"। वे अपने विद्यार्थियो से कहा करते थे . "जो शिक्षा तुमने यहाँ प्राप्त की है वह व्यर्थ है, यदि उसने तुम में अपने देश को स्वतंत्र और स्वशासित देखने की उत्कट आकाक्षा पैदा नही की।"[1] विद्यार्थियो के जीवन को राष्ट्रीय भावना से अनुप्राणित करने के लिए वे विश्वविद्यालय में डाक्टर एनी बेसेंट, महात्मा गाधी, डाक्टर एम० ए० अन्सारी, डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद, पण्डित जवाहर लाल नेहरू प्रभृति राष्ट्रीय नेताओ को बुलाते और उनके व्याख्यानो की व्यवस्था करते थे।

सव गुरुजनो का आदर, विश्वविद्यालय की सेवा, उसकी मानमर्यादा और गौरव की रक्षा वे विद्यार्थियो का पुनीत कर्तव्य तथा परम धर्म समझते थे। वे चाहते थे कि विश्वविद्यालय के विद्यार्थी अपनी "विद्यादायिनी माता की सेवा में लग जायें, माता की कीर्ति उज्ज्वल कर दें, और विश्व को दिखा दें कि यह हमारी जननी है, यही सरस्वती की अमरावती है।" वे कहते थे—"गुरुशुश्रूषया विद्या" अर्थात् गुरु की सेवा से विद्या प्राप्त होती है। मनु महाराज के इस पद की ओर वे विद्यार्थियो का ध्यान बहुधा आकृष्ट करते :—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्तेऽऽयुर्विद्या यशोवलम्॥

---

१. सन् १९२९ का दीक्षान्त भाषण। दर एंड सोमसकन्दन : वही पृ० ५७३।

अर्थात् 'अपने से बड़े गुरुजनों को प्रणाम करने तथा उनकी सेवा करनेवाले व्यक्ति की आयु, विद्या, यश और बल की वृद्धि होती है'।

विद्यार्थियों को उनका उपदेश और आशीर्वाद था—

ज्योतिरात्मनि नान्यत्र सम तत्सर्वजन्तुषु ।
स्वयं च शक्यते द्रष्टु सुसमाहित चेतसा ।। (व्यास)

सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया ।
देशभक्त्या त्यागेन सम्मानर्हः सदा भव ।।

अर्थात् 'ब्रह्म की ज्योति अपने भीतर ही है, वह सब जीवधारियों में समान है। मनुष्य मन को अच्छी तरह शान्त और सुसमाहित कर उसे देख सकता है'। 'सत्य से, ब्रह्मचर्य से, व्यायाम से, विद्या से, देश-भक्ति से और आत्म-त्याग से सदा आदर के योग्य बनो'।

यद्यपि धन की कमी के कारण सब विद्यार्थियों और शिक्षकों के रहने का प्रबन्ध विश्वविद्यालय के भीतर नहीं किया जा सका, फिर भी यह मुख्यतः निवासीय था। यहाँ विभिन्न प्रान्तों और रियासतों के हजारों विद्यार्थी होस्टलों में रहकर गुरुजनों से शिक्षा प्राप्त करते, तथा पारस्परिक सम्पर्क से अपने जीवन मे भारतीयता विकसित करते थे। सवर्ण हिन्दू विद्यार्थियों के साथ ही साथ हरिजन विद्यार्थी भी रहते और निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करते थे। अन्य विश्वविद्यालयों की तुलना मे काशी विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के रहने-सहने का ढंग अधिक सादा था। गरीब छात्रों के लिए यहाँ शिक्षा प्राप्त करना अधिक आसान था। मालवीयजी के युग में यहाँ का वातावरण निःसंदेह अधिक धार्मिक और राष्ट्रीय था।

विवाद

७ मार्च सन् १९१९ को धर्मविज्ञान के सकाय ने निर्णय किया कि केवल ब्राह्मण ही धर्मशिक्षा के लिए नियुक्त किया जा सकता है। इस पर बाबू भगवान दास आदि विद्वानों ने बहुत आपत्ति की, और विश्वविद्यालय को विवाद का सामना करना पडा। सकाय की दूसरी बैठक में अर्थात् ६ मई को बाबू भगवानदास ने प्रस्ताव किया कि पुराना प्रस्ताव रद्द कर दिया जाय। मालवीयजी ने प्रस्ताव किया कि पुराने निर्णय में यह जोड दिया जाय कि "बशर्ते कि अब्राह्मण विद्वान् भी इंग्लिश विभाग मे धार्मिक विषयों पर, जहाँ तक कि वे धर्मविज्ञान सकाय के नियमों के अनुकूल है, व्याख्यान दे सकते हैं।" बाबू भगवानदास चाहते थे कि

इस संशोधन में यह स्पष्ट कर दिया जाय कि वे नियुक्त भी किये जा सकते हैं। पर सकाय ने मालवीयजी के सशोधन को ही मूल रूप में स्वीकार किया। इसके बाद कौंसिल में इस पर काफी वादविवाद हुआ, और अन्ततोगत्वा २४ जनवरी सन् १६२० को कौंसिल ने कोर्ट से संस्तुति की कि वह धर्मविज्ञान संकाय को आदेश दे कि वह नियुक्ति के सम्बन्ध में कोई ऐसा निर्णय न ले जिससे विश्व-विद्यालय के अन्दर किसी जाति के लिए नियुक्ति वन्द हो जाय। कोर्ट ने ११ दिसम्बर सन् १९२० को बहुत बहस के बाद कौसिल की सस्तुति स्वीकार कर ली। १४ दिसम्बर सन् १९२१ को पण्डित प्रभुदत्त शास्त्री ने कोर्ट की बैठक में इस प्रस्ताव पर पुनः विचार करने की प्रार्थना की, और कोर्ट ने वाबू ज्ञानेन्द्र नाथ बसु के इस सशोधन को स्वीकार किया कि 'धर्मविज्ञान संकाय हिन्दू धर्म में अध्यापको को, कोई ऐसी नीति निश्चित किये विना जिससे समाज के किसी अंग की भावनाओ को चोट पहुँचे, मानव धर्मशास्त्र की व्यापक भावना की उदार व्याख्या के आधार पर नियुक्त करे।'[1]

१२ दिसम्बर सन् १९२० को कोर्ट की बैठक में बाबू भगवानदास ने विश्वविद्यालय के प्रवन्ध के सम्बन्ध में एक बहुत ही आलोचनात्मक प्रस्ताव प्रस्तुत किया। इसका विरोध करते हुए श्रीमती एनी बेसेंट ने प्रस्ताव किया कि "यह कोर्ट बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी मे स्वतन्त्र विज्ञान और दर्शन की सच्ची भावना प्रदान करने में, और वहाँ सरकार की राय और तरीको से प्रभावित हुए विना, सास्कृतिक और व्यावसायिक शिक्षा के स्थापित करने मे, तथा उस अध्ययन को चालू करने में, जिसके द्वारा सरकारी नौकरी तथा तत्संबंधित व्यवसायो के अतिरिक्त जीवन-निर्वाह के अन्य साधन उपलब्ध हो सकें, जो प्रगति वहाँ हुई है उसके लिए वाइस-चान्सलर, कोर्ट और सिनेट को धन्यवाद देती है।"[2] श्रीमती एनी बेसेंट का यह संशोधन और प्रस्ताव ५ मतो के विरुद्ध २६ मतो से स्वीकार हो गया। इस पर बाबू भगवानदास जी ने कोर्ट, कौसिल, सिनेट तथा विश्वविद्यालय की अन्य संस्थाओ से त्यागपत्र दे दिया। इस ही जमाने में मालवीयजी ने प्रयत्न किया कि संस्कृत महाविद्यालय और उसकी परीक्षाएँ विश्वविद्यालय का अग वन जायें, पर इसमें उन्हें सफलता नही मिली।

---

१. दर और सोमसकंदन: हिस्ट्री आफ दी वनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, पृ० ४७५-४८३। २ वही, पृ० ४८८।

वात्सल्य

विद्यार्थियो से मालवीयजी के सम्बन्ध बहुत ही मधुर थे। वे सब विद्यार्थियो को अपना बच्चा समझते थे। उनका वात्सल्य सबके लिए था। गरीब विद्यार्थियो के प्रति उनका विशेष अनुराग था। उन्होने विश्वविद्यालय खोलते ही हरिजन विद्यार्थियो की शिक्षा नि शुल्क कर दी थी। अन्य गरीब विद्यार्थियो को भी वे यथासंभव आर्थिक सहायता देते रहते थे। गरीब छात्रो की सहायता तथा उनकी समुचित शिक्षा का प्रबन्ध करने में वे बहुत संतोष और सुख का अनुभव करते थे। संयुक्त प्रान्त के भूतपूर्व मन्त्री चौधरी गिरधारी लाल ने अपने संस्मरण में ठीक ही कहा है कि मालवीयजी को 'मालूम भर हो जाना चाहिए कि यह बालक हरिजन है और उनकी उदारता के कपाट उसके लिए खुल जाते थे। शिक्षा शुल्क और छात्रावास शुल्क तो माफ हो ही जाता था, उसके दूसरे खर्च भी महामना अपने पास से पूरा कर दिया करते थे। आज शिक्षित हरिजन समुदाय में काफी संख्या उन लोगो की है, जिन्हें मालवीयजी की उदारता के कारण ही सारी सहुलियतें प्राप्त हुई है।'[1] चौधरी गिरधारीलालजी के अतिरिक्त श्री जगजीवन राम आदि बहुत से हरिजन है, जिन्होने सारी सहूलियतें प्राप्त करके काशी विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की, और उसके बाद समाज में ऊँचा स्थान प्राप्त कर राष्ट्र की सेवा की और कर रहे है। यही बात दूसरे अनेक सज्जनो के संबंध में भी कही जा सकती है।

विद्यार्थी भी मालवीयजी के व्यक्तित्व के आगे सदा नतमस्तक रहते थे। छात्रो को नि संदेह उनके देशव्यापी गौरव पर गर्व था। कम से कम उनकी उपस्थिति में विद्यार्थियो के लिए अशोभनीय कार्य करना असंभव ही होता था। वे तो सभाओ में उँगली के इशारे से अनुशासन और भद्र व्यवहार प्रतिष्ठित करते थे।[2]

राष्ट्रीय आन्दोलनो के अवसरो पर ही उन्हें अनुशासन बनाये रखने में कभी कभी कुछ कठिनाई हो जाती थी। यह कठिनाई भी उन्हें सन् १९२० में ही विशेष रूप से हुई, जब कि उन्हें परेशान होकर विश्वविद्यालय को कुछ दिनो के लिए बन्द कर देना पडा था। इस अवसर पर गाधीजी का विधार्थियो को आदेश था कि वे विश्वविद्यालय छोड दे, जबकि मालवीयजी विद्यालयो के बाइकाट की नीति गलत समझते थे, और विद्यार्थियो से कहते थे कि वे शिक्षा प्राप्त करके अपने को राष्ट्रसेवा के योग्य बनायें।

१, मालवीयजी : जीवन झलकिया, पृ० ११८।
२. महामना मदनमोहन मालवीयजी बर्थ सेंटिनरी कोमेमोरेशन वाल्यूम, (प्रोफेसर नारलिकर का लेख), पृ० १३१।

एक बार मालवीयजी की अध्यक्षता में गाधीजी ने विद्यार्थियो के सामने अपने विचार रखते हुए उनसे अनुरोध किया कि वे विश्वविद्यालय की पढाई को छोड कर राष्ट्र-सेवा में लग जावें। अन्त में उन्होने यह भी कहा कि मालवीयजी उनके बडे भाई है, जो कुछ करना उनका आशीर्वाद लेकर करना। दूसरे दिन मालवीयजी ने लगभग चार घंटे के भाषण में विद्यार्थियो को समझाया, पर अन्त में कहा कि यदि किसी विद्यार्थी का अन्त करण यही कहता है कि उसे इस समय अपना जीवन राष्ट्र-सेवा में अर्पित कर देना चाहिए तो उसे मेरा आशीर्वाद है। लगभग सौ विद्यार्थियो ने विश्वविद्यालय छोडा। उन सबसे मालवीयजी के मधुर सम्बन्ध बने रहे। जब दिसम्बर में काग्रेस के अधिवेशन में सम्मिलित होने मालवीयजी नागपुर गये, तब वहा उपस्थित पुराने छात्रो ने 'हर-हर महादेव' का नारा लगाकर उनका स्वागत किया।

युवराज का स्वागत

पर जब दिसम्बर सन् १९२१ में मालवीयजी ने विश्वविद्यालय की ओर से वेल्स के युवराज, ब्रिटिश सम्राट् के उत्तराधिकारी, एडवर्ड का स्वागत किया तब, वे अपने छात्रो का सहयोग प्राप्त नही कर सके। उस समय जबकि काग्रेस के आदेश पर गाधीजी के नेतृत्व में सारे देश ने युवराज की यात्रा का बहिष्कार कर दिया था, काशी विश्वविद्यालय में उनका स्वागत विद्यार्थियो को बुरा लगा। पर मालवीय जी मजबूर थे। काग्रेस ने दिसम्बर सन् १९१९ में युवराज के स्वागत का प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार किया था। एक राजनीतिक संस्था नयी परिस्थिति के सन्दर्भ में पुराना निर्णय बदल सकती थी, स्वागत के प्रस्ताव को रद्द करके बहिष्कार का प्रस्ताव पास कर सकती थी, पर सरकार द्वारा अधिकृत एक विश्वविद्यालय के लिए स्वागत का निमंत्रण वापस लेना असम्भव था। स्वागत-प्रबन्ध देखने के लिए १ दिसम्बर सन् १९२१ को लार्ड रीडिंग विश्व-विद्यालय पधारे, तथा १३ दिसम्बर को युवराज पधारे। विश्वविद्यालय के चासलर महाराजा मैसूर तथा अन्य अधिकारियो ने उनका स्वागत किया। विशेष दीक्षान्त समारोह में युवराज को सम्मानार्थ डाक्टर की डिग्री से विभूषित करते हुए चांसलर ने आशा व्यक्त की कि "यह डिग्री एक ऐसा चमकदार रेशमी सम्बन्ध होगा जो युवराज को भारत के नवयुवको के साथ उनकी राष्ट्रीय आकाक्षाओ में बांध देगा, और इस प्राचीन देश की जनता की सभ्यता, संस्कृति, प्रगति और समृद्धि में आप की अभिरुचि को दृढ करेगा।"

राष्ट्रवादी विद्यार्थी

असहयोग आन्दोलन के बाद उन विद्यार्थियो मे से, जिन्होंने गांधीजी की प्रेरणा से विश्वविद्यालय छोड दिया था, बहुतो ने मालवीयजी की अनुमति और आज्ञा से फिर इसी विश्वविद्यालय में प्रवेश करके अपनी पढाई प्रारम्भ कर दी। बहुत से दूसरे असहयोगी विद्यार्थियो ने भी मालवीयजी द्वारा संचालित विश्वविद्यालय को राष्ट्रीय संस्था समझकर दूसरे विश्वविद्यालयो के बजाय यहाँ शिक्षा प्राप्त करना ही उचित समझा। इन सब विद्यार्थियो ने काशी विश्वविद्यालय के राष्ट्रीय स्वरूप को पुष्ट किया। ये सब बातें सरकार को कहाँ अच्छी लगनेवाली थी ? पर मालवीयजी की उपस्थिति में उसके लिए आसानी से हस्तक्षेप करना सम्भव भी नही था।

विस्तार

आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद विश्वविद्यालय में नये-नये विभाग खुलते रहे, विद्यार्थियो की संख्या बढती गयी, और गाधीजी आदि नेताओ के उपदेशो से विद्यार्थी समाज अनुप्राणित होता रहा। मालवीयजी स्वयं अपने प्रोत्साहन और सहयोग द्वारा छात्रो के पाठ्येतर क्रियाकलापो को परिपुष्ट करते, तथा अपने उपदेशो और व्याख्यानो द्वारा छात्रो को भगवद्भक्ति, देशभक्ति, सदाचार तथा लोकतान्त्रिक नागरिकता की शिक्षा प्रदान करते रहे।

दीक्षान्त भाषण

सन् १९२९ में मालवीयजी ने अपने दीक्षान्त भाषण में विश्वविद्यालय के स्नातको को उपदेश दिया कि वे अपने देश के प्रति अपना कर्तव्य पालन करने को सदा उद्यत रहे, अपने देशवासियो से प्रेम करें, और उनमें एकता की वृद्धि करें। उन्होने कहा कि आप सबसे तितिक्षा और धैर्य की प्रचुर भावना, तथा स्नेहमयी सेवा की विस्तृत भावना की अपेक्षा है। हम आशा करते है कि अपने दीन-हीन भाइयो के उत्थान के लिए आप जितना समय और शक्ति बचा सकें, उसे आप लगावेंगे। हम आशा करते हैं कि आप उनके मध्य मे काम करेंगे, उनके कष्टो और उनके आनन्द में भाग लेंगे, और जिस तरह भी आपके लिए संभव हो, उनके जीवन को अधिक सुखमय बनाने का प्रयत्न करेंगे। मालवीयजी ने इस भाषण में उन्हे सलाह दी कि वे जनता में शिक्षा का प्रसार करें, स्वच्छता और स्वास्थ्यरक्षा का प्रचार करे, सहकारी संस्थाओ को स्थापित करें। उन्होने कहा : "आप स्वतंत्रता चाहते हैं, अपने देश में स्वशासन चाहते हैं, इसके लिए जो कुछ त्याग आपसे अपेक्षित हो उसके लिए तैयार रहिये। आप अपने मे स्वातंत्र्य-

प्रेम, और मातृभूमि के गौरव के लिए त्याग की भावना पुष्ट करें। इस तरह हम फिर एक बडा राष्ट्र बन सकेंगे।"[1]

सरकार से सघर्ष

इस अभिभापण के कुछ दिन बाद ही काग्रेस ने गाधीजी के नेतृत्व में पूर्ण स्वतंत्रता के निमित्त सविनय-अवज्ञा प्रारम्भ करने का निर्णय किया, और मालवीयजी ने भी उसमें सक्रिय भाग लेने की ठान ली। आन्दोलन ने विश्वविद्यालय के लिए विकट समस्या उपस्थित कर दी। स्थानीय काग्रेस कमेटी किसी न किसी तरह विश्वविद्यालय को बन्द करवा देने के फेर मे थी। उन्होंने पिकेटिंग में हर प्रकार के तरीको का प्रयोग किया। पर जब स्थानापन्न काग्रेस अध्यक्ष वल्लभ भाई पटेल को प्रो-वाइस-चान्सलर से इसकी सूचना मिली, तब उन्होने आदेश दिया कि स्थानीय काग्रेस कमेटी ने जो तरीके अपनाये है वे काग्रेस की नीति के विरुद्ध है, और यदि स्थानीय कमेटी किसी दूसरे तरीके से पिकेटिंग नही कर सकती, तो उसे बन्द कर दिया जाय।

इसके तुरन्त बाद ही मालवीयजी ने ३१ जुलाई-१ अगस्त की रात्रि को बम्बई में सत्याग्रह किया, और वहाँ वे गिरफ्तार कर लिये गये। इस पर लगभग १०० विद्यार्थी सत्याग्रह करने बबई चल दिये, पर मालवीयजी के कहने पर वापस चले आये। इधर स्टाफ के दो तीन सदस्यो तथा बहुत से विद्यार्थियो ने सविनय-अवज्ञा मे सक्रिय भाग लेना शुरू किया, और अगस्त के अन्तिम सप्ताह में मालवीयजी ने एक सदस्य की हैसियत से काग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठक में, जो पहले ही गैरकानूनी घोपित कर दी गयी थी, भाग लिया, और उन्हें छः मास की सजा दे दी गयी। इसके बाद प्रो-वाइस-चान्सलर ध्रुव को बहुत कठिनाई का सामना करना पडा। सरकार ने विश्वविद्यालय के वाइस-चान्सलर, अध्यापको और विद्यार्थियो की गतिविधि से रुष्ट हो अनुदान की पहली किस्त भेजने से इनकार कर दिया, और विश्वविद्यालय के अधिकारियो से अपना क्षोभ प्रकट करते हुए बहुत से प्रश्नो का उत्तर माँगा, और विश्वविद्यालय की नीति को स्पष्ट करने की माँग की। ध्रुवजी को कई बार दिल्ली और लखनऊ सरकार के अधिकारियो से, तथा नैनी सेंट्रल जेल प्रयाग में मालवीयजी से बातचीत करने जाना पडा, तथा विश्वविद्यालय की कार्यसमिति और सिंडीकेट को प्रश्नो का उत्तर तथा नीति का स्पष्टीकरण करना पडा।

---

१. दर और सोमसकन्दन . हिस्ट्री आफ दी बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, पृ० ५७२-५७३।

मालवीयजी के परामर्श से विश्वविद्यालय की कार्य समिति (एक्जीक्यूटिव कौंसिल) ने २५ नवम्बर सन् १९३० को भारत सरकार को लिखा : "बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी एक राष्ट्रीय संस्था है, धर्म और नैतिकता (देशभक्ति और नागरिकता) की शिक्षा द्वारा नवयुवको के चरित्र का निर्माण उसका एक प्रमुख उद्देश्य है। उसका विश्वास है कि धर्म 'चरित्र का सर्वश्रेष्ठ आधार' है, और 'देशभक्ति' एक शक्तिशाली उत्कर्षशील प्रभाव है, जो स्त्री-पुरुषो को उच्च मनस्क और निःस्वार्थ कार्य के लिए प्रेरित करता है। इसलिए यह विश्व-विद्यालय अपने विद्यार्थियो के मन में इन्हें संचारित करने का, तथा सार्वजनिक और राष्ट्रीय प्रश्नो के सबंध मे निर्णय और व्यवहार के उच्च स्तर को उनमें विकसित करने का प्रयत्न करता है। पर इसके अतिरिक्त सक्रिय राजनीति से वह अपने को अलग रखता है, क्योंकि वह एक 'शैक्षिक संस्था है न कि राजनीतिक', उसका उद्देश्य 'शिक्षा, न कि राजनीतिक सुधारो की वृद्धि' है, और चूंकि वह विभिन्न राजनीतिक विचारो से सम्वन्धित जनता, भारतीय रियासतो और सरकार की सहायता से चलता है। पर राष्ट्रीय आन्दोलनों के अवसर पर उसे 'राष्ट्रीय भावना की लहर' का ध्यान रखना होता है। उस समय जबकि बहुत से सम्मानित भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व करते हों, विश्वविद्यालय के अध्यापकों और विद्यार्थियो से उससे प्रभावित न होने की आशा नही की जा सकती।"

पत्र में बताया गया कि विश्वविद्यालय के नियमों के अनुसार वही अध्यापक उसकी सेवा से अलग किये जा सकते है, जिन्हें अदालत ने किसी 'नैतिक अपचार' के 'संगीन अपराध' में दण्डित किया हो, पर 'सविनय-अवज्ञा' द्वारा कानून की किसी धारा के उल्लंघन के लिए प्राप्त दण्ड किसी तरह भी नैतिक अपचार से आविष्ट नही समझा जा सकता। इसलिए सविनय-अवज्ञा आन्दोलन में भाग लेने के कारण दण्डित अध्यापको को विश्वविद्यालय अपनी सेवा से अलग नही कर सकता।

इस पत्र में यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि विश्वविद्यालय की सिंडिकेट की राय में जो विद्यार्थी सविनय-अवज्ञा से संबधित किसी अपराध पर सजा भुगत चुका है, उसे उसी अपराध के लिए कोई दूसरी सजा देना, जिससे उसका सारा जीवन ही बर्बाद हो जाय, न्यायसंगत नही होगा। इसीलिए सिंडिकेट की राय में उसे विश्वविद्यालय में फिर से दाखिल न करना ठीक नही होगा। विश्वविद्यालय का अनुभव है कि पिछले असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के बाद जिन विद्यार्थियो ने शिक्षा प्राप्त करने के लिए फिर से विश्वविद्यालय में प्रवेश किया, उनमें से

कुछ अच्छे विद्वान् बन कर बहुत लाभदायक काम कर रहे हैं। ऐसे विद्यार्थियो के प्रवेश के लिए इन कारणो से विश्वविद्यालय का द्वार सदा खुला रहेगा।[1]

दिसम्बर सन् १९३० में बनारस के कमिश्नर ने विश्वविद्यालय को सूचना दी कि 'भारत सरकार अनुदान के संबंध में विचार कर रही है', और जानना चाहती है कि 'विश्वविद्यालय को सविनय-अवज्ञा आन्दोलन के प्रभाव से रक्षित करने के लिए' विश्वविद्यालय के अधिकारियो ने क्या किया ?

इसके उत्तर में प्रो-वाइस-चान्सलर ने लिखा कि विश्वविद्यालय के अधिकारियो की निश्चित धारणा है कि "विद्या का प्रसार ही विश्वविद्यालय का प्राथमिक और प्रमुख उद्देश्य है, और राजनीतिक प्रचार और आन्दोलन का उसके कार्य में स्थान नही है"। पर उन्हें इस देश तथा दूसरे देशो के अनुभवो से यह भी स्पष्ट है कि "राजनीतिक दबाव और सकट के अवसरो पर यह आशा करना कठिन है कि नवयुवक बाहरी प्रभावो के प्रति बिल्कुल उदासीन और भाव-शून्य रहेंगे।" उन्होने यह भी लिखा: "वाइस-चान्सलर की भावपूर्ण अपील, पिकेटिंग को खत्म कराने के हमारे प्रयत्न, विश्वविद्यालय को बन्द न करने का हमारा निर्णय, प्रो-वाइस-चान्सलर का विद्यार्थियो को यह समझाना कि वे जत्था बना कर बम्बई न जावें, इस बात के स्पष्ट प्रमाण है कि विश्वविद्यालय के अधिकारी विश्वविद्यालय में शैक्षिक शान्ति यथासंभव बनाये रखना चाहते हैं।"[2]

सरकार के कठिन दृष्टिकोण ने विश्वविद्यालय के सामने कठिन आर्थिक समस्या उपस्थित कर दी। उसके लिए अध्यापको को ठीक समय पर पूरा वेतन देना भी कठिन हो गया। इस स्थिति मे विश्वविद्यालय के अध्यापको ने एक पत्र द्वारा विश्वविद्यालय के अधिकारियो को सूचित किया कि "विश्वविद्यालय के उद्देश्यो और हितो की रक्षा के निमित्त विश्वविद्यालय के अध्यापक-समाज के अधोहस्ताक्षरी सदस्य विश्वविद्यालय के वाइस-चान्सलर पण्डित मदनमोहन मालवीय को वित्तीय सकट की अवस्था में उस समय तक और उन शर्तों पर अपनी सेवा अर्पित करते है, जिन्हें वे निश्चित करें।"[3]

इस समय यह भी उडती खबर थी कि मालवीयजी पर दबाव डाला जा रहा है कि वे उपकुलपति के पद से त्यागपत्र दे दें। इस समाचार ने विश्वविद्यालय के बहुत से अध्यापको में काफी क्षोभ और उत्तेजना पैदा कर दी। पर इस खबर का शीघ्र ही खण्डन कर दिया गया।

---

१. वही, पृ० ६१८-६२२। २, ३. वही, पृ० ६२४-६२५।

बीमारी के कारण मालवीयजी छः मास की अवधि के पहले ही २४ दिसंबर सन् १९३० को जेल से रिहा कर दिये गये। १९ जनवरी सन् १९३१ को उत्तर प्रदेश के शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर मैकंजी साहब विश्वविद्यालय आये। उन्होंने बातचीत में मालवीयजी से अनुरोध किया कि वे कम से कम इस बात की घोषणा करें कि जिन विद्यार्थियो ने अनुशासन भंग कर आन्दोलन मे भाग लिया है, उन्हे लिखित क्षमा प्रार्थना पर ही विश्वविद्यालय में भरती किया जा सकेगा। पर मालवीयजी ने इस प्रकार की घोषणा करने से साफ इनकार कर दिया।

काशी मे पुराने छात्रो की एक बैठक मे २३ जनवरी सन् १९३१ को आर्थिक कठिनाई की चर्चा करते हुए उन्होंने साफ तौर पर कहा कि वे किसी शर्त के साथ सरकार से अनुदान लेने को तैयार नही है। यदि आवश्यकता होगी तो बिना सरकारी अनुदान के विश्वविद्यालय चलाया जायगा।

१७ फरवरी सन् १९३१ को लार्ड अर्विन ने गाधीजी से राजनीतिक समझौते पर बातचीत प्रारम्भ की। २५ फरवरी को विश्वविद्यालय को सरकारी अनुदान की पहली छः-मासिक किस्त मिली। ५ मार्च को गाधी-अर्विन समझौता हुआ, और उसके बाद सरकार ने आवर्तक अनुदान की दूसरी किस्त और पूरा अनावर्तक अनुदान भेज दिये।

गाधी-अर्विन समझौते के बाद १६ मार्च सन् १९३१ को प्रोफेसर यू० ए० असरानी और पण्डित जगन्नाथ प्रसाद वाजपेयी, जिन्होंने सत्याग्रह में भाग लेने के बाद जेल से इस्तीफा भेज दिया था, विश्वविद्यालय द्वारा फिर नियुक्त कर लिये गये। विश्वविद्यालय का काम यथावत् चलता रहा।

कठिनाइयाँ

आर्थिक कठिनाइयो के कारण सरकार ने आवर्तक अनुदान में दस प्रतिशत की कटौती कर दी, और विश्वविद्यालय को भी सौ रुपये से अधिक वेतन पाने-वाले अध्यापको और कर्मचारियो के वेतन में दस प्रतिशत की कटौती करनी पड़ी। यह कटौती चार वर्ष तक चलती रही। यद्यपि इन चार वर्षो में विश्व-विद्यालय को कुछ नये आवर्तक और अनावर्तक अनुदान प्राप्त हुए, पर कुछ पुराने आवर्तक अनुदान बन्द हो गये, जिनके कारण विश्वविद्यालय की आर्थिक कठिनाइयाँ बढ गयी। कर्जा तीन लाख रुपये से बढकर तेरह लाख हो गया।

इन चार वर्षो मे विश्वविद्यालय के बहुत से पुराने सहायक और समर्थक देवलोक चले गये। सन् १९३१ में बनारस के महाराजा सर प्रभुनारायण सिंह,

३० सितम्बर सन् १९३३ को श्रीमती डा० एनी बेसेंट, तथा २७ मार्च सन् १९३४ को राजा मोती चन्द का निधन हो गया।

विस्तार

इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी विश्वविद्यालय में नये सकाय, नये विभाग और नये कालेज खुलते रहे। सन् १९३४ में भेषजिकी और औषध विज्ञान की शिक्षा आरम्भ हुई, सन् १९३५ में औद्योगिक रसायन विज्ञान में बी० ए० और एम० ए० की पढाई का नया पाठ्यक्रम तैयार किया गया, सन् १९३६ में मृत्तिका शिल्प का पृथक् विभाग खोला गया, तथा सन् १९३७ में ग्लास टेकनालोजी की शिक्षा के लिए विभाग खोला गया। सितम्बर सन् १९३५ में सेंट्रल हिन्दू कालेज के विज्ञान विभागों को अलग करके साइन्स कालेज गठित किया गया, और प्रोफेसर कृष्ण कुमार माथुर उसके प्रिन्सिपल नियुक्त हुए। नवम्बर सन् १९३६ में फैकल्टी आफ टेकनालोजी गठित की गयी। इस वर्ष आचार्य ध्रुव के स्थान पर राजा ज्वाला प्रसाद प्रो वाइस-चान्सलर हुए।

सार्वजनिक सेवा का केन्द्र

दूसरा सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ होने पर प्रोफेसर यू० ए० असरानी आदि अध्यापकों ने फिर सत्याग्रह में सक्रिय भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। इधर मालवीयजी के कारण विश्वविद्यालय राष्ट्रीय कार्यों का केन्द्र बन गया। उनके साथ प्राच्य विद्यालय के प्राचार्य (प्रिन्सिपल) पंडित प्रमथनाथ तर्कभूषण ने मन्त्रदीक्षा आदि शास्त्रविहित उपायों द्वारा अन्त्यजोद्धार का कार्य किया। प्राच्य विद्यालय के साहित्य विभाग के अध्यक्ष पंडित महादेव पाण्डेय, तथा सांख्य विभाग के अध्यक्ष पंडित हीरावल्लभ शास्त्री आदि अध्यापकों ने भी अन्त्यजोद्धार तथा उदार सनातन धर्म के प्रसार में उनका साथ दिया। दूसरी ओर प्रोफेसर मुकुट बिहारी लाल, मालवीयजी की अध्यक्षता में आयोजित, अखिल भारतीय स्वदेशी संघ के मन्त्री नियुक्त हुए, और उन्होंने विश्वविद्यालय के अहाते में अपने निवास-स्थान पर ही संघ का कार्यालय स्थापित कर वहीं से स्वदेशी के प्रसार का कार्य किया, तथा हरिजन सेवक संघ की जिला शाखा का मन्त्रित्व ग्रहण कर हरिजनोद्धार का कार्य किया। मालवीयजी का अपना निवास-स्थान तो उनके राजनीतिक और धार्मिक कार्यों का केन्द्र ही था। यहीं स्थानीय, प्रान्तीय और राष्ट्रीय स्तर के कार्यकर्ता और नेता आते, मालवीयजी से राष्ट्रीय प्रश्नों पर बातचीत करते, तथा यथासंभव सहायता प्राप्त करते थे।

कहा जाता है कि दूसरे सविनय-अवज्ञा आन्दोलन के जमाने में मालवीयजी की तथा हिन्दू यूनिवर्सिटी की गतिविधि से क्षुब्ध हो भारत सरकार ने विश्वविद्यालय के कुलपति महाराजा बीकानेर को लिखा कि चूँकि वनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी की दशा वहुत खराव है, अनुशासन का नितान्त अभाव है, इसलिए वे अपने पद से इस्तीफा दे दें। महाराजा गंगा सिंह ने उत्तर में लिखा कि यदि दशा खराव है, तो उसे सुधारने का प्रयत्न किया जायगा।

विश्वविद्यालय की स्थिति पर विचार-विमर्श के लिए मालवीयजी महाराजा गंगा सिंह से मिलने वीकानेर गये। उन्होने मालवीयजी को सहयोग का पूरा आश्वासन दिया, और कहा कि वे उनका साथ छोड़नेवाले नही है। काशी लौटने से पहले मालवीयजी राजस्थान की कई अन्य रियासतो में भी गये, और वहाँ सव महाराजाओ ने विश्वविद्यालय के समर्थन का उन्हें आश्वासन दिया।

सविनय-अवज्ञा आन्दोलन के वाद मालवीयजी ने सन् १९३४ और सन् १९३५ में प्रधानमन्त्री के साम्प्रदायिक निर्णय काडट कर विरोव किया, और सन् १९३६ में जव काग्रेस ने उसे रद्द करना ही उचित समझा, तव मालवीयजी ने प्रान्तीय कौंसिल के चुनावो में काग्रेस पार्टी के उम्मीदवारो का डट कर समर्थन किया। जनवरी सन् १९३८ में उन्होंने पण्डित हरदत्त शास्त्री के साथ चालीस दिन का कायाकल्प किया। इससे प्रारम्भ में कुछ लाभ दिखाई दिया, पर वास्तव में स्वास्थ्य सुधरने के वजाय विगड गया। सार्वजनिक उत्तरदायित्व वहन करते रहना उनके लिए असम्भव हो गया। १७ सितम्बर सन् १९३९ को उनकी अनुमति से यूनिवर्सिटी कोर्ट द्वारा सर एस० राधाकृष्णन् वाइस-चान्सलर निर्वाचित हुए।

राधाकृष्णन्‌जी लब्ध-प्रतिष्ठ दार्शनिक थे। वे कई वर्ष आन्ध्र विश्वविद्यालय के उपकुलपति रह चुके थे, और इस समय कलकत्ता विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के वरिष्ठ प्रोफेसर थे, तथा प्रतिवर्ष कुछ महीने आक्सफोर्ड भी भारतीय दर्शन-शास्त्र के अध्यापन के लिए जाते थे। इन दोनो कामो के साथ-साथ एक वडे विश्वविद्यालय के उपकुलपति के उत्तरदायित्व को ग्रहण करना वहुत साहस की वात थी। पर वे इस उत्तरदायित्व को वहन करने के लिए नि.सन्देह सर्वथा समर्थ थे। आगे चलकर वे कलकत्ता विश्वविद्यालय के वजाय हिन्दू यूनिवर्सिटी में ही दर्शनशास्त्र के वरिष्ठ प्रोफेसर का काम करने लगे। पर वे फिर भी अध्यापन के लिए आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय जाते ही रहे।

१८ सितम्बर सन् १९३९ को मालवीयजी की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय की कौंसिल ने विश्वयुद्ध में 'अन्तर्ग्रस्त समस्याओ की गंभीरता' अनुभव करते

मालवीयजी और गांधीजी (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की रजत जयन्ती के अवसर पर)

हुए 'स्वतन्त्रता और जनतंत्र के सिद्धान्तो की विजय की, जिनसे ग्रेट ब्रिटेन सम्बन्धित है, कामना की' और आशा की कि 'ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत में उनका सार्थक प्रयोग समृद्ध भारत तथा विश्वशान्ति का निर्माण करेगा।' इस प्रस्ताव में कौंसिल ने 'विद्यार्थियो को हर प्रकार की सैनिक शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओ का प्रवन्ध करने की भी सरकार से प्रार्थना की।'

२५ नवम्बर सन् १९३९ को यूनिवर्सिटी की सिनेट (शिक्षा परिषद्) ने अपनी विशेष बैठक में मालवीयजी की सेवाओ के प्रति अपना आभार प्रकट करते हुए उन्हे विश्वविद्यालय का आजीवन रेक्टर बनाने की सस्तुति की, जिसे चान्सलर ने २ जनवरी सन् १९४० को स्वीकार कर लिया। २५ नवम्वर को ही मालवीयजी सिनेट की साधारण बैठक में सिनेट, सिंडिकेट और बोर्ड आफ अपाइन्टमेंट (नियुक्ति बोर्ड) के सदस्य निर्वाचित किये गये। २२ दिसम्बर सन् १९३९ को कोर्ट ने अपने वार्षिक अधिवेशन में मालवीयजी को सर्वसम्मति से कौंसिल का सदस्य निर्वाचित किया।

३० नवम्बर सन् १९४० को कोर्ट ने अपने वार्षिक अधिवेशन में मालवीयजी के प्रस्ताव पर सर्वसम्मति से पण्डित इकवाल नारायण गुर्टू को तीन वर्ष के लिए प्रो-वाइस-चान्सलर नियुक्त किया।

रजत जयन्ती

१० जनवरी सन् १९४२ को विश्वविद्यालय की रजत जयन्ती मनायी गयी। महात्मा गाधी ने दीक्षान्त भाषण किया। उन्होने अपने भाषण में मालवीयजी के प्रति अपना सम्मान व्यक्त करते हुए कहा · "प्रेम का दृढ बन्धन मुझे मालवीयजी से बाँधे हुए है, और मैं उनके आदेश का पालन, जब कभी यह मेरे लिए संभव होता है, बडे गर्व और सन्तोष के साथ करता हूँ।" उन्होने कहा . "यद्यपि मालवीयजी की वहुत सी सेवाएँ है, पर यह विश्वविद्यालय उनकी सवसे बडी कृति है।" "मालवीयजी", उन्होने कहा, 'सादा जीवन और उच्च चिन्तन के सजीव उदाहरण है।" उन्होने आशा व्यक्त की कि विश्वविद्यालय के विद्यार्थी याद रखेंगे कि वे गरीबो के बच्चे है, और "मालवीयजी की तरह सरल और सादे जीवन का तथा उच्च विचारो का नमूना बनेंगे।" उन्होने भारतीय भाषाओ तथा देवनागरी की समुचित शिक्षा प्राप्त करने पर जोर देते हुए आशा व्यक्त की कि हिन्दी ही शिक्षा का माध्यम बना दी जायगी। अन्त में उन्होने भारतीय संस्कृति के महत्त्व की ओर विद्यार्थियो का ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा "ससार

के साथ मित्रवत् व्यवहार करना, शत्रु को भी मित्र बनाना इस संस्कृति का विशेष योगदान है। पवित्र गंगा की तरह हमारी संस्कृति ने बाहर से आनेवाली बहुत सी धाराओ को अपने में मिला लिया है।" उन्होने आशा व्यक्त की कि "यह हिन्दू यूनिवर्सिटी, जो हिन्दू संस्कृति और हिन्दू सभ्यता का प्रतिनिधित्व करने का प्रयत्न करती है, दूसरी संस्कृतिओ के उत्तम तत्त्वो को निमन्त्रित और आत्मसात करेगी, तथा साम्प्रदायिक एकता और सामजस्य का नमूना बनेगी।"[१]

अन्त में मालवीयजी ने उन सबको धन्यवाद और आशीर्वाद देते हुए, जिन्होने विश्वविद्यालय के निर्माण में योगदान किया, आशा व्यक्त की कि विश्वविद्यालय के विद्यार्थी सादे जीवन के आदेश और आदर्श को ध्यान में रखेंगे और उसका पालन करेंगे। उन्होने गाधीजी को विश्वास दिलाया कि हिन्दी में पाठ्य-पुस्तकें तैयार की जा रही हैं, और उनके तैयार होने पर विश्वविद्यालय में हिन्दी ही शिक्षा का माध्यम बनेगी। अन्त में उन्होने ईश्वर से प्रार्थना की कि वे धर्म के प्रति हमारी निष्ठा को दृढ करें, हममें देश-प्रेम की भावना सचरित करें, तथा विश्वविद्यालय को समुचित सहायता प्राप्त होती रहे।[२]

'भारत छोड़ो' आन्दोलन

८ अगस्त सन् १९४२ को अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी ने 'भारत छोडो' सघर्ष प्रारम्भ करने का निश्चय किया। ९ अगस्त को प्रातःकाल गाधीजी तथा काग्रेस के बहुत से सदस्य गिरफ्तार कर लिये गये। उसी रात को काशी विश्वविद्यालय के आवास में प्रोफेसर यू० ए० असरानी गिरफ्तार कर लिये गये। १० अगस्त को वाइस-चान्सलर डाक्टर राधाकृष्णन् ने विद्यार्थियो और अध्यापको की एक बैठक में विश्वविद्यालय में शान्त वातावरण बनाये रखने का तथा हिंसात्मक कार्यवाहियो से बचे रहने का सबसे अनुरोध किया।[२] पर संघर्ष की परिस्थिति में नवयुवको के लिए शान्त रहना असंभव था। ऐसी हालत में १२ अगस्त को एक मास के लिए विश्वविद्यालय बन्द कर दिया गया। विद्यार्थियो को घर चले जाने की सलाह दी गयी। बहुत से विद्यार्थी घर चले गये, पर लगभग ३०० विद्यार्थी छात्रावास में बने रहे, और उनमें से कुछ किसी न किसी रूप में स्वतंत्रता संघर्ष में सक्रिय भाग लेते रहे। प्रोफेसर राधेश्याम शर्मा और डाक्टर के० एन० गैरोला विश्वविद्यालय के एक छात्रावास से ही गुप्तरूप से विद्यार्थियो का सक्रिय मार्ग-दर्शन करने लगे। १३ अगस्त को कुछ विद्यार्थियो ने शस्त्रागार के दफ्तर पर छापा मारने का प्रयत्न किया।

१. वही, पृ० ७०५। २. वही, पृ० ७०६।

एक दिन विद्यार्थियो के जुलूस को, जबकि वह शहर जा रहा था, हरिश्चन्द्र घाट की तिमुहानी पर पुलिस ने गोली के छर्रों से आहत किया। २५-२६ विद्यार्थियो को छर्रे लगे। जब मालवीयजी वहाँ पहुँचे, तो विद्यार्थियो ने कहा कि 'छर्रे पीठ पर नही, छाती पर लगे है।' मालवीयजी मुसकराये, पर उनकी आँखो में आँसू भी आगये। लौटते हुए उन्होने राधेश्यामजी से कहा 'अगर आन्दोलन बन्द हुआ तो गाधीजी मर जायेंगे, पर मैं अपने विद्यार्थियो को मरते नही देख सकता, ऐसा देखकर मैं मर जाऊँगा। यह सोच कर काम करना चाहिए।' राधेश्याम ने कहा कि हम इसका ध्यान रख कर काम कर रहे है।

१३ अगस्त को मालवीयजी ने विद्यार्थियो को सबोधित करते हुए उन्हे भारत के विश्वविद्यालयो में 'उच्च देशभक्ति' का 'कीर्तिमान' उपस्थित करने का, तथा अहिंसा के सिद्धान्तो का दृढता से अनुसरण करने का मशवरा दिया। उन्होने कहा कि विद्यार्थियो को महात्मा गाधी के सिद्धान्तो के विरुद्ध कुछ नही करना चाहिए, तोड-फोड की कार्यवाहियो द्वारा राष्ट्र की सम्पत्ति नष्ट नही करनी चाहिए, शस्त्रागार के निकट नही जाना चाहिए, तथा लडकियो द्वारा पिकेटिंग बन्द कर देना चाहिए।[1]

१४ अगस्त को सायकाल ४ बजे जिलाधिकारी फिनले, डिप्टी इन्सपेक्टर जनरल पुलिस और सुपरिटेंडेंट पुलिस कुछ सैनिको के साथ विश्वविद्यालय के सिंहद्वार पर आये। वे सम्भवत. विश्वविद्यालय पर कब्जा करना चाहते थे, पर सर राधाकृष्णन् और डाक्टर इकबाल नारायण गुर्टू के समझाने पर वापस चले गये।

पर १९ अगस्त को प्रात पाँच बजे गैस के जरिये ताले की जजीरें तोड कर सैनिक विश्वविद्यालय में घुस आये, और उन्होने उस पर अपना कब्जा जमा कर विद्यार्थियो को छात्रावास खाली कर देने के लिए वाध्य किया।

२१ अगस्त को विश्वविद्यालय की कौंसिल ने एक अत्यावश्यक बैठक में सरकार की इस कार्यवाही को विश्वविद्यालय की मानमर्यादा के विरुद्ध बताते हुए सैनिको और पुलिस को हटा लेने का अनुरोध किया।[2] सरकार ने इन पर ध्यान देने के बजाय २९ अगस्त को इजीनियरिंग कालेज की मशीनो को माँगा, २ सितम्बर को आदेश दिया कि २४ सितम्बर को कालेज न खोला जाय, ५ सितम्बर को विश्वविद्यालय पर सरकारी कब्जे के संबंध में नियमित आदेश जारी कर

१ वही, पृ० ७१५-७१६। २ वही, पृ० ७१७-७१८।

दिया। इस समय सरकार विश्वविद्यालय में फौजी अस्पताल बनाने की बात सोच रही थी।

विश्वविद्यालय के अधिकारियो ने सरकार को अधियाचित मशीनें दे दी, तथा छुट्टियाँ २० अक्तूबर तक बढा दी, पर उन्होने सैनिक अस्पताल खोलने के विचार का विरोध किया, और विश्वविद्यालय से सेना और पुलिस हटा लेने की माग की। सर राधाकृष्णन् और डाक्टर इकबाल नारायण गुर्टू ने लखनऊ और दिल्ली में सरकार के अधिकारियो से बातचीत की, तथा केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारो से पत्र-व्यवहार किया। सर राधाकृष्णन् का कहना था कि विश्वविद्यालय का किसी राजनीतिक दल या संस्था की राजनीति से कोई संबध नही है, पर आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटियो की तरह यहाँ पर विद्यार्थियों को राजनीतिक विपयो पर विचार-विमर्श करने की, तथा उनपर अपने विचार अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता है। सरकारी अधिकारियो का कहना था कि इस विश्वविद्यालय में गरमदलीय नेताओ को आमंत्रित किया जाता है, और उनके भाषण कराये जाते है, और यहाँ का वातावरण बहुत ही राजनीतिक बन गया है। उनकी धारणा थी कि वाराणसी क्षेत्र में तोड-फोड की कार्यवाहियो में बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के विद्यार्थियो और अध्यापको का बडा हाथ है। संयुक्त प्रान्त के गवर्नर का आरोप था कि "डाक्टर गैरोला तथा प्रोफेसर राधेश्याम के नेतृत्व में बहुत से विद्यार्थियो ने तोड फोड के अभियान को जारी किया, जिसका इस प्रान्त में किसी दूसरे स्थान पर कोई सादृश्य नही है।"[१] सरकार का यह भी कहना था कि युद्ध के जमाने में विश्वविद्यालय के विशाल भवनो को खाली नही छोडा जा सकता। यदि पढाई नही होती तो इसका दूसरा उपयोग करना ही होगा।

अन्त में सरकार ने सैनिक अस्पताल खोलने का विचार छोड दिया, और विश्वविद्यालय को क्रमशः खोलने की अनुमति दे दी। २६ अक्तूबर को एम० ए०, एम० एस-सी० तथा आचार्य के विद्यार्थियो की पढाई आरम्भ हो गयी। २ नवम्बर को कानून, शास्त्री तथा इजीनियरिंग और माइनिंग मेटलर्जी के तृतीय और चतुर्थ वर्ष की एवं बी० फार्म और बी० एस-सी० (टेक्नालोजी) की पढाइया शुरू हो गयी। ११ नवम्बर सन् १९४२ को बाकी सब कक्षाएँ भी खोल दी गयी। सरकार ने २६ अक्तूबर से कुछ दिन पहले सेना और पुलिस को विश्वविद्यालय से हटा लिया।

१ वही, पृष्ठ ७३०।

प्रगति

इसके बाद मालवीयजी के जीवन-काल में अर्थात् ३ वर्ष तक काशी विश्वविद्यालय किसी गंभीर सकट के विना काम करता रहा। जो विद्यार्थी जेल से छूटकर आते थे, विश्वविद्यालय में दाखिल कर लिये जाते थे, उन्हें उनकी पुरानी सुविधाएँ दे दी जाती थी। जेल से छूटने पर प्रोफेसर यू० ए० असरानी और डाक्टर मगल सिंह भी, जो आन्दोलन के जमाने में नजरबन्द थे, विश्वविद्यालय में अपने पुराने स्थानो पर काम करने लगे। यूनिवर्सिटी पालिया-मेंट आदि छात्रो की संस्थाएँ सन् १९४५ के बाद पूर्ववत् काम करने लगी। जुलाई सन् १९४५ में जब काग्रेस के नेता जेल से रिहा होकर देश में काम करने लगे, तव उन्हें फिर पूर्ववत् विश्वविद्यालय में निमत्रित किया जाने लगा। आचार्य नरेन्द्र देव, डाक्टर सम्पूर्णानन्द, श्री जयप्रकाश नारायण प्रभृति समाज-वादी नेताओ का भी स्वागत हुआ और उनके भाषण हुए। विद्यार्थियो की संख्या और विश्वविद्यालय का आकार भी बढता गया।

सर राधाकृष्णन् के प्रयास से अध्यापको के वेतन-क्रम (ग्रेड) में भी पर्याप्त वृद्धि हुई, और वे सब प्राध्यापक जो वर्षो से विभागीय अध्यक्ष का काम करते हुए प्रोफेसर के ग्रेड में थे, यूनिवर्सिटी प्रोफेसर बना दिये गये। इस जमाने में ही जहाँ २५ नवम्बर सन् १९३९ को बहुत से प्रावधिक विभागो को मिलाकर 'कालेज आफ टेकनालोजी' गठित किया गया, वहाँ मार्च १९४४ में 'कृषि खोज संस्थान' को 'कृषि कालेज' का, तथा खनन विज्ञान और धातु विज्ञान विभाग को कालेज का स्वरूप दे दिया गया।

महाराजा सर गगा सिंह के निधन के बाद २१ अगस्त सन् १९४३ को कोर्ट के विशेष अधिवेशन में सर हरिसिंह, महाराजा जम्मू कश्मीर, चान्सलर निर्वाचित हुए।

नवम्बर सन् १९४३ में प्रो-वाइस-चान्सलर के चुनाव का प्रश्न कोर्ट के सामने उपस्थित हुआ। किसी व्यक्ति ने डाक्टर भोलानाथ सिंह के और किसी ने मालवीयजी के सुपुत्र पण्डित राधाकान्त मालवीय के नाम का प्रस्ताव भेजा। मालवीयजी ने स्वयं पण्डित इकबाल नारायण गुर्टू के नाम का प्रस्ताव भेजा, और उनसे काम करते रहने का अनुरोध किया। कोर्ट ने गुर्टू साहब को पुनः तीन वर्ष के लिए प्रो-वाइस-चान्सलर निर्वाचित किया, पर उन्होने २५ मार्च सन् १९४४ को स्वास्थ्य के कारण इस्तीफा दे दिया, और श्री रंग बिहारी लाल उनके स्थान पर प्रो-वाइस-चान्सलर नियुक्त किये गये।

पण्डित इकबाल नारायण गुर्टू

काशी विश्वविद्यालय के निर्माण और प्रगति में पण्डित इकबाल नारायण गुर्टू का महत्त्वपूर्ण योगदान था। उन्होंने युवा अवस्था में ही अपनी बढ़ती हुई वकालत छोड़कर बिना वेतन आजीवन समाज की सेवा करने का निर्णय किया, सेंट्रल हिन्दू स्कूल में अध्यापन का कार्य प्रारम्भ कर दिया और हेडमास्टर पद से उसकी सुव्यवस्था की देखभाल की। सन् १९११ में ही काशी विश्वविद्यालय की योजना स्वीकार करते हुए उन्होंने उसके लिए धन इकट्ठा करना शुरू कर दिया, तथा बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी सोसायटी के गठित होने पर उसके संयुक्त-मन्त्री की हैसियत से वे काम करने लगे। विश्वविद्यालय के निर्माण के बाद उन्होंने उसकी विभिन्न संस्थाओं अर्थात् कोर्ट और कौंसिल के सदस्य की हैसियत से उसकी सेवा की। उस समय भी जबकि वे युक्त प्रान्त के पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी, बनारस म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन, तथा प्रयाग विश्वविद्यालय के वाइस-चान्सलर के उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य में सलग्न थे, उन्हें काशी विश्वविद्यालय का ध्यान बना रहा, और उसकी सेवा वे अपना कर्तव्य समझते रहे। नवम्बर सन् १९४० में मालवीयजी के आग्रह पर एक विश्वविद्यालय के वाइस-चान्सलर रहने के बाद काशी विश्वविद्यालय के प्रो-वाइस-चान्सलर का उत्तरदायित्व उन्होंने स्वीकार कर लिया, और सन् १९४२ और १९४३ में ब्रिटिश अधिकारियों के प्रकोप से विश्वविद्यालय के हितों की रक्षा के लिए डाक्टर राधाकृष्णन् के साथ मिलकर महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने विश्वविद्यालय की अवैतनिक सेवा की, और अवकाश ग्रहण करते समय विश्वविद्यालय को अपने पिता की स्मृति में तीन हजार रुपये का दान दिया।

इस दान की भी विचित्र कहानी है। एक दिन सन् १९४२ के स्वतंत्रता-संघर्ष के जमाने में जबकि गुर्टू साहब बहुत ही क्षुब्ध थे, वे मालवीयजी से मिले, और आधे पौने घंटे तक दोनों की अकेले में बातचीत हुई। इसके बाद भी गुर्टू साहब का क्षोभ पूरे तौर पर दूर नहीं हुआ। उनके चेहरे पर मानसिक तनाव के चिह्न स्पष्ट थे। पर जब वे जानेवाले थे, तब मालवीयजी ने खाट पर लेटे-लेटे उनसे कहा—"इकबाल नारायण, राय साहब के नाम से कोई चन्दा विश्व-विद्यालय के खाते में नहीं है।" उन्होंने कहा—"महाराज, एक रकम जमा है।" इस पर मालवीयजी ने कहा—"वह तो बड़े राय साहब के नाम से है" (गुर्टू साहब के पिता नहीं, बल्कि पितामह के नाम से है)। यह सुनकर गुर्टू साहब ने कहा कि "हो जायगा" अर्थात् पिता जी के नाम से कुछ दान दे दिया जायेगा।

इसके तुरन्त बाद गुर्टू साहब का चेहरा खिल गया, तनाव के सब चिह्न गायब हो गये। इस पुस्तक का लेखक, जो उस समय मालवीयजी के दर्शनार्थ वहाँ पहुँच गया था, गुर्टू साहब के चेहरे का उतार-चढाव देखकर दग रह गया। उसने मालवीयजी के बहुत से चमत्कार देखे और सुने थे, पर मानसिक तनाव को दूर करने का तथा पुन पुराना स्नेह और सौहार्द प्रतिष्ठित करने का यह निराला ढग कभी नही देखा था। सम्भवतः गुर्टू साहब जैसे उदार और शिष्ट व्यक्ति ही इस उपचार के पात्र थे। साधारण व्यक्ति पर तो सम्भवत मालवीयजी की इस बात का ऐसा तात्कालिक प्रभाव नही पड पाता। सम्भवतः दोनो का हार्दिक घनिष्ट सम्बन्ध ही इस उपचार की सफलता का मूल कारण था। यद्यपि श्रीमती एनी बेसेंट से ही गुर्टू साहब ने मूल जीवन-प्रेरणा प्राप्त की थी, पर मालवीयजी ने भी उन्हे, उस समय जबकि वे विद्यार्थी ही थे, अनुप्राणित किया था। मालवीयजी को गुर्टू साहब की क्षमता, कर्तव्यपरायणता तथा निष्काम समाज-सेवा की भावना पर पूर्ण विश्वास था।

१०. भारतीय विधान कौंसिल

(१९१०-१९२०)

कौंसिल की शक्ति

सन् १९१० में मालवीयजी प्रान्तीय कौंसिल के गैर-सरकारी सदस्यो द्वारा केन्द्रीय कौंसिल के सदस्य निर्वाचित हुए, और बार-बार निर्वाचित होकर सन् १९२० तक वहाँ काम करते रहे। इस जमाने में कौंसिल में निर्वाचित सदस्यो की सख्या सरकार द्वारा मनोनीत सदस्यो की संख्या से कही कम थी। निर्वाचित सदस्यो में भी बहुत से पृथक् निर्वाचन पद्धति द्वारा किसी विशिष्ट आर्थिक हित या सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व करते थे, और अधिकतर सरकार का समर्थन करते रहते थे। इनमें से कुछ मुसलमान सदस्य साधारण चुनाव क्षेत्रो से निर्वाचित सदस्यो से मिलकर काम करना, और सरकार की नीति-रीति के बजाय जनता के हितो को पुष्ट करना अपना कर्तव्य समझते थे। इनमें मिस्टर मुहम्मद अली जिना तथा मिस्टर मजहरुल हक प्रमुख थे। जमीदार वर्ग के प्रतिनिधि रावबहादुर बी० एन० शर्मा और राजा साहब महमूदाबाद भी प्रगतिशील सदस्यो का साथ देते रहते थे। फिर भी किसी प्रश्न पर प्रगतिशील शक्तियाँ सरकार के विरुद्ध एक चौथाई से अधिक वोट नही जुटा पाती थी। सन् १९१७ में इस्लिंगटन पब्लिक सर्विस कमीशन की संस्तुतियो के विरुद्ध प्रस्तावित प्रस्तावो का करीब-करीब सभी निर्वाचित भारतीय सदस्यो ने समर्थन किया, फिर भी उन प्रस्तावो को पास कराने में वे सफल नही हुए। बहुधा सरकारी पक्ष निर्वाचित सदस्यो की युक्ति और तर्कों का ठीक तौर पर उत्तर देने के बजाय वोट के जरिये उनके सुझावो को रद्द कर देना ही पर्याप्त समझता था। गोखले साहब ने सरकार की इस गतिविधि से क्षुब्ध हो सन् १९१० में बड़े सन्तप्त हृदय से वाइसराय को सम्बोधित करते हुए असेम्बली में कहा था . "हम अच्छे तौर से जानते है कि जब एक बार सरकार ने किसी विषय पर विचार निश्चित कर लिया है, तब कौंसिल में गैरसरकारी सदस्य चाहे कुछ भी कहें, वे उस निर्णय को बदलवाने में व्यावहारिक दृष्टि से निरर्थक है।"[1]

---

1 प्रोसीडिंग—गवर्नर-जनरल की कौंसिल (विधायिका), अगस्त सन् १९१०, जि० ४९, पृ० २९।

फिर भी गोखले, मालवीयजी और कुछ दूसरे सदस्य कर्तव्य बुद्धि से तत्परता, दृढता और भद्रता के साथ सरकार की नीति-रीति की समीक्षा मे तथा जनता के हितो की पुष्टि में लगे रहते थे। गोखले और मालवीयजी की तत्परता तो निःसन्देह विशेष तौर पर सराहनीय थी। ससदीय भद्रता तथा नियमो का पालन करते हुए दोनो बहुत ही विवेक के साथ सदा शिष्ट भाषा में करीब-करीब सभी सार्वजनिक प्रश्नो पर अपने विचार और सुझाव कौसिल के समक्ष प्रस्तुत करते, तथा प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार की, और जनहित की वृद्धि की सरकार से माग करते। उनकी आलोचना रचनात्मक होती थी। राष्ट्र का सर्वांगीण नवनिर्माण ही उनके विचारो का लक्ष्य होता था।

रचनात्मक समीक्षा

जनहित की रक्षा और अभिवृद्धि के निमित्त मालवीयजी ने सरकार की सैनिक, प्रशासनिक, आर्थिक और वित्तीय नीतियो और गतिविधि की रचनात्मक समीक्षा करते हुए माग की कि सैनिक और प्रशासनिक खर्चे को घटाकर जनहित-कारी निर्माण कार्यों पर अधिक धन खर्च किया जाय, आर्थिक नीतियो को अधिक जनहितकारी बनाया जाय, और वित्तीय नीतियो और व्यवस्था में ऐसा परिवर्तन किया जाय जिससे गरीबो पर करो का भार कम पड़े, और विधि विधान देश के आर्थिक और सास्कृतिक निर्माण में सहायक हो। इस उद्देश्य से उन्होने जनवरी सन् १९११ में गोखले साहब के इस प्रस्ताव का समर्थन किया कि सरकार के खर्चे की जाच के लिए सरकारी और गैर-सरकारी सदस्यो की एक जाच कमेटी नियुक्त की जाय। इस अवसर पर उन्होने कहा कि पिछले २५-३० वर्षों के अन्दर सरकार का खर्चा दुगना हो गया है, उसे कम करना नितान्त आवश्यक है।[१]

बार-बार प्रान्तीय वित्तीय व्यवस्था की कडी आलोचना करते हुए उन्होने कहा कि वह "किसी सिद्धान्त पर आधारित नही है।"[२] उन्होने माग की कि "जनता की नैतिक और भौतिक उन्नति को अच्छे ढग पर बढाने के लिए प्रान्तीय राजस्व का अधिक बडा हिस्सा युक्त प्रान्त की सरकार को दिया जाय।[३]

---

१. प्रोसीडिंग—गवर्नर-जनरल की कौसिल (विधायिका), १९११, जि० ४९, पृ० २००-२०१।

२. वही, सन् १९१२, जि० ५०, पृ० ६८२।

३. वही, सन् १९१२, जि० ५०, पृ० ४०४-४०९, सन् १९१४, जि० ५२, पृ० ६२७-६३०।

सन् १९१४ मे उन्होने माँग की कि सरकार सैनिक, प्रशासनिक और अनुत्पादक खर्चों को कम करके शिक्षा, सफाई, स्वास्थ्य-रक्षा तथा देश के साधनो और उद्योगो के अभिवर्धन में अधिक धन खर्च करे।[1] इस बात को किसी न किसी रूप मे वे बराबर दोहराते रहे।

बडे-बडे भवनो के निर्माण तथा अन्य बडी-बडी योजनाओ की पूर्ति पर बहुतसा धन खर्च हो जाने के कारण जनता की सेवाओ मे बाधा न पडे, इसलिए वे चाहते थे कि लोक-निर्माण (पब्लिक वर्क्स) विभाग की वृहद् निर्माण योजनाओ का खर्चा चालू खाते के बजाय पूँजी खाते में डाला जाय, जिसका भुगतान किसी योजनाबद्ध नियम से हो। उनका कहना था कि "जब किसी कार्य या सेवा से मौजूदा पीढी के साथ-साथ आगामी पीढी को भी लाभ पहुँचता हो, तब उसका भार भी दोनो को बाँटना चाहिए।"[2] अत वृहद् रचना-कार्यो की लागत को पूँजी खाते में डालना वे न्यायसंगत समझते थे।[3]

कर नीति

मालवीयजी कर-नीति का ऐसा पुनर्गठन करना चाहते थे जिससे गरीबो पर से कर का बोझ हलका हो, और समृद्धिशाली व्यक्तियो पर उसका भार अधिक पडे।[4] वे क्रमिक आयकर (ग्रेजुएटेड इनकमटैक्स) को 'उत्कृष्ट रूप में न्याय-सगत' समझते थे।[5] उनका कहना था कि "यह तो स्वयं-सिद्ध सिद्धान्त है कि जो व्यक्ति शासन से सबसे अधिक लाभ उठाता है, उसे उसके संभरण के लिए अपनी आय के अनुपात मे सर्वाधिक अंशदान करना चाहिए।"[6]

मालवीयजी की माँग थी कि देश के उद्योगो की रक्षा और विकास सरकार की शुल्क नीति का लक्ष्य हो। उन्होने आयात-शुल्क और उत्पादन-शुल्क की समीक्षा करते हुए उद्योगो के सरक्षण के लिए विदेशी माल पर सरक्षण शुल्क लगाने की माँग की। उन्होने कहा, "किसी देश के लिए सब समय और सब परिस्थितियो मे न संरक्षण और न स्वच्छन्द व्यापार अवश्य ही लाभदायक होता

---

१ वही, सन् १९१४, जि० ५२, पृ० ७१८-७२३, १०३१-१०३२।

२ वही, मार्च, सन् १९१२, जि० ५०, पृ० ४१८-४१९।

३ वही, फरवरी, सन् १९१७, जि० ५५, पृ० २१२-२१४।

४ वही, मार्च, सन् १९१६, जि० ५४, पृ० २४२, पृ० ५४७।

५. वही, जि० ५४, पृ० २४१।

६. वही, जि० ५४, पृ० २४१-२४२।

है।"[१] बदलती परिस्थिति मे प्रत्येक प्रगतिशील राष्ट्र को आयात नीति में हेरफेर करना पडा है। आज की परिस्थिति में भारत के देशज उद्योगो के हित में सरक्षण आयात-शुल्क लगाना अनिवार्य है।[२] राष्ट्र ने एक बडे उद्योग की रक्षा और अभिवृद्धि के लिए उपभोक्ताओ को कुछ काल के लिए उन भौतिक हानियो को सहन करना ही चाहिए, जो सरक्षण-शुल्क लगाने पर कीमतो के बढ जाने के कारण उठानी पडती है।[३] इन कारणो से, उन्होंने सरकार से प्रार्थना की कि राष्ट्रीय हित को ध्यान में रख कर विदेशी चीनी पर आयात-शुल्क बढा दिया जाय।[४] पर उन्होंने खालो पर ब्रिटिश उपनिवेशो को किसी प्रकार का वट्टा देने का यह कह कर विरोध किया कि "एक बार निहित स्वार्थों के स्थापित हो जाने पर उन्हें दूर करना कठिन होता है।"[५] उन्होंने सूती कपडो पर से उत्पादन-शुल्क उठा लेने की माग की। उन्होंने कहा कि उत्पादन शुल्क बेजा और हानिकर है।[६]

भारत के आर्थिक विकास के निमित्त मालवीयजी स्वच्छन्द व्यापार नीति का त्याग तथा सकारात्मक औद्योगिक नीति का अनुसरण आवश्यक समझते थे। उनकी माँग थी कि सरकार देश के औद्योगीकरण पर समुचित ध्यान दे।[७] उनका कहना था कि हमे उद्योग-धंधो मे यथा-सम्भव स्वतन्त्र होने के लिए प्रयत्न करना चाहिए, और उस समय तक सन्तुष्ट नही होना चाहिए, जब तक हम वे सब चीजें तयार न कर सकें जिनकी हमें जरूरत है और जिनको तैयार करने के लिए आवश्यक भौतिक साधन देश मे मौजूद है।[८] वे चाहते थे कि भारत सरकार रेलो का प्रवन्ध अपने हाथ में ले[९], तथा एक स्टेट बेंक खोले, जिसके द्वारा देशी उद्योगो को चलाने में सरकारी कोष का प्रयोग हो।[१०] उन्होंने कहा कि जिस तरह सरकार कुछ रेलो का, जिनकी वह मालिक है, प्रवन्ध करती है, वैसे ही वह

---

१ वही, सन् १९११, जि० ४९, पृ० ४१८।

२ वही, जि० ४९, पृ० ४१९। ३ वही, जि० ४९, पृ० ४२१।

४. वही, जि० ४९, पृ० ४२१। ५. वही, जि० ५८, पृ० २६१-६१।

६ वही, सन् १९११, जि० ४९, पृ० ४०५-४०६।

७ वही, सन् १९१५, जि० ५३, पृ० ४००।

८ वही, सन् १९१५, जि० ५३, पृ० ४००।

९ वही, सन् १९१८, जि० ५६, पृ० १०९६-११००।

१० वही, सन् १९१९, जि० ५८, पृ० ४३७।

दूसरी रेलो का भी प्रबन्ध करे ।[1] उन्होंने कहा कि कम्पनी के प्रबन्ध की तुलना में राज्य द्वारा प्रबन्ध अधिक लाभदायक होगा, क्योंकि (१) वह भारत सरकार के अधीन होगा, जिसे जनता के प्रतिनिधि प्रभावित कर सकेंगे; (२) राज्य का प्रबन्ध जनता के हित में होगा, जबकि मुनाफा ही कम्पनी के प्रबन्ध का लक्ष्य है, (३) राज्य द्वारा प्रबन्धित रेलवे मे जो नफा होगा, वह जनता के लाभ के लिए या करो के घटाने में खर्च होगा; (४) सरकार विशेषज्ञो को अधिक संख्या में नियुक्त कर सकेगी, (५) सरकार कर्मचारियो की नियुक्ति मे निष्पक्ष होगी, (६) सरकार ऋण को कम ब्याज पर जमा कर सकेगी, (७) विभिन्न रेलो के किराये और मालभाडे में अधिक समन्वयन हो सकेगा, जो भारतीय उद्योगो के हित मे होगा, जबकि इस समन्वयन के अभाव के कारण व्यापारियो और उद्योगो को बहुत कठिनाइयो का सामना करना पड़ रहा है, (८) कम्पनियो की विवेकहीन, बेतुकी बातो और हुज्जतो से छुटकारा मिलेगा, और (९) राज्य-प्रबन्ध सस्ता होगा ।[2] उन्होने यह भी कहा कि सरकार द्वारा संचालित रेलो में भारतीय यात्रियो और व्यापारियों के साथ अधिक अच्छा व्यवहार होता है ।[3] इसी तरह मालवीयजी ने इम्पीरियल बैको की आलोचना करते हुए आशा व्यक्त की कि स्टेट बेक भारत की बैंकिंग व्यवस्था का मूलस्तम्भ, देश की बची धनराशि का 'भण्डार', और देश के विभिन्न विभागो, प्रान्तो और क्षेत्रो के कार्यों का पोषण करने का स्रोत होगा, तथा भारत के उद्योगो की वृद्धि मे सहायक होगा ।[4]

मालवीयजी की दृढ धारणा थी कि इस देश में "हमारी सहानुभूति का किसानो से अधिक कोई हकदार नही ।"[5] उनकी दयनीय दशा का निराकरण वे सरकार का परम कर्तव्य समझते थे ।[6] उनकी माँग थी कि लगान का बोझ कम किया जाय, उसे २५-३० प्रतिशत घटाया जाय[7], और सिंचाई की समुचित व्यवस्था की जाय । उनके विचार में नहरो की व्यवस्था रेलवे के निर्माण से

---

१. वही, सन् १९१८, जि० ५६, पृ० १०९६ ।
२. वही, सन् १९१८, जि० ५६, पृ० १०९८ ।
३. वही, सन् १९१८, जि० ५६, पृ० १०९८ ।
४. वही, सन् १९१९, जि० ५८, पृ० ४३७ ।
५ वही, सन् १९१४, जि० ५२, पृ० ६०३ ।
६. वही, सन् १९१५, जि० ५३, पृ० ६३७ ।
७ वही, सन् १९१४, जि० ५२, पृ० ६०३-६०४ ।

अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योकि रेल अकाल नही रोक सकती, जबकि अच्छी सिंचाई का प्रबन्ध उसके निराकरण का एक साधन है। किसानो के हितो की रक्षा के लिए कर्जे की अच्छी व्यवस्था, और ब्याज की दर का निन्यत्रण भी वे जरूरी समझते थे।[1] वशिष्ठ, मनु, नारद और व्यास की व्यवस्थाओ का उल्लेख करते हुए उन्होने बताया . "इन व्यवस्थापको की राय में १५ प्रतिशत प्रतिवर्ष ही ब्याज की उचित दर है। किन्ही परिस्थितियो में उसे बढाकर २४ प्रतिशत प्रतिवर्ष किया जा सकता है।"[2] इस समय, उन्होने कहा, किसानो को बहुत अधिक ब्याज देना पडता है। जब तक बैंक आदि द्वारा सस्ते कर्जे का प्रबन्ध नही होता, तब तक ऊँचे ब्याज पर उन्हें कर्जा लेना ही पडेगा।[3]" उन्होने समस्या के समाधान के लिए सहकारी कर्जा समितियो के गठन को प्रोत्साहित करना उचित बताया।[4]

समाज सुधार

सन् १९१२ मे मालवीयजी ने श्री भूपेन्द्रनाथ वसु द्वारा प्रस्तावित 'विशेष विवाह विधेयक' का विरोध किया।[5] उनका यह विरोध, जो सनातनधर्मियो की परम्परागत भावनाओ पर आधारित था, प्रगतिशील विधायको को बुरा लगा। पर इसी वर्ष उन्होने श्री मानकजी दादाभाई के 'स्त्रियो और लडकियो के सरक्षण विधेयक' का समर्थन करते हुए देवदासी प्रथा का विरोध किया। उन्होने कहा कि मन्दिरो मे लडकियो को समर्पण किया जाय, इसके पक्ष में कोई व्यक्ति कोई शास्त्रीय प्रमाण पेश नही कर सकता। पापमय अपमान का जीवन बिताने के लिए किसी लडकी को समर्पण करने का किसी सरक्षक, माता या पिता को कोई अधिकार नही है। विधेयक की दूसरी धाराओ का समर्थन करते हुए मालवीयजी ने कहा कि नाबालिग लडकियो में अनैतिक व्यापार बन्द होना चाहिए, और सहवास की सम्मति की आयु बढानी चाहिए। प्रस्तावित विधेयक में वेश्याओ द्वारा छोटी लडकियों को गोद लेने को, तथा पत्नियो के हस्तान्तरण जैसे घृणित व्यवहार को बन्द करने की जो व्यवस्था की गयी थी, उसका भी उन्होने समर्थन किया।[6]

---

१. वही, सन् १९१७, जि० ५६, पृ० १७४-१७५।
२. वही, सन् १९१७, जि० ५६, पृ० १७५।
३. वही, सन् १९१७, जि० ५६, पृ० १७८।
४. वही, सन् १९१७, जि० ५६, पृ० १७७-१७८।
५. वही, सन् १९१२, जि० ५०, पृ० १७०-१७५।
६. वही, सन् १९१२, जि० ५१, पृ० ९०।

श्री मानकजी दादाभाई ने जो प्रस्ताव दलित वर्गों की दशा सुधारने के निमित्त प्रस्तुत किया था, उस पर अपने विचार व्यक्त करते हुए मालवीयजी ने उनकी शिक्षा पर समुचित ध्यान देने का सरकार से आग्रह किया। उन्होंने कहा : "दलित वर्गों के उत्थान का प्रश्न''शिक्षा पर निर्भर है। उन वर्गों मे शिक्षा के प्रसार के लिए जो कुछ सरकार कर सकती है, उसे वह करे। सरकार और समाज के स्कूल दलित वर्गों के लिए उतने ही खुले हो, जितने दूसरे बच्चो के लिए।"[1]

मालवीयजी ने श्री के० के० चन्दा के इस सशोधन का समर्थन किया कि सरकार पुण्यार्थ निधि और धर्मार्थ निधि पर वास्तविक नियत्रण प्रतिष्ठित करे।[2]

सितम्बर सन् १९१७ मे मालवीयजी ने श्री वी० एन० शर्मा के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए आग्रह किया कि सरकार मद्यनिषेध की नीति को स्वीकार कर २५-३० वर्ष के अन्दर शराबखोरी को बिल्कुल बन्द करा दे। उन्होने मद्यपान की बढती हुई बुरी आदत पर चिन्ता व्यक्त करते हुए पूर्णरूप से उसका निषेध जनहित के लिए आवश्यक बताया।[3]

शिक्षा का विस्तार

मालवीयजी ने सब प्रकार और सब स्तर की शिक्षा के विस्तार की पुष्टि की। वे प्रारम्भिक शिक्षा को सब सुधारो का मूलाधार मानते थे, और चाहते थे कि सरकार सब बच्चो के हित के लिए निःशुल्क और अनिवार्य रूप से उसकी व्यवस्था करे। सन् १९११ मे उन्होने गोखले द्वारा प्रस्तावित 'अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा विधेयक' का समर्थन किया। सन् १९१७ में उन्होने श्री श्रीनिवास शास्त्री के और सन् १९१८ में श्री वी० एन० शर्मा के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए 'अनिवार्य, नि शुल्क और सर्वसाधिक' प्रारम्भिक शिक्षा की समुचित व्यवस्था की माँग को पुष्ट किया।[4] सन् १९१४ में उन्होने माध्यमिक शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने का आग्रह किया। उन्होने कहा कि माध्यमिक शिक्षा का स्तर इतना ऊँचा हो कि उसे प्राप्त करने पर विद्यार्थी जीवन में प्रवेश करने तथा विश्वविद्यालय की शिक्षा से लाभ उठाने के लिए अधिक योग्य बन सकें। उनका

---

१. वही, सन् १९१६, जि० ५४, पृ० ३७७-३७९।

२ वही, सन् १९२०, जि० ५८, पृ० ६४२।

३. वही, सितम्बर, सन् १९१७, जि० ५६, पृ० ५४६-५४९।

४. वही, सन् १९१७, जि० ५५, पृ० ४६३-४६६. वही, सन् १९१८, जि० ५६, पृ० ९१०-९११।

सुझाव था कि इंटरमीडियेट कक्ष की दो वर्ष की पढाई की व्यवस्था सब हाई स्कूलो मे की जाय, और बी० ए० की शिक्षा की अवधि दो वर्ष के बजाय तीन वर्ष की कर दी जाय।[१] मालवीयजी चाहते थे कि विश्वविद्यालयो को शैक्षिक सस्थाओं का स्वरूप दिया जाय उन्हे जीवन और ज्योति का केन्द्र बनाया जाय, वहाँ के विद्यार्थी ज्ञान में ससार के दूसरे प्रगतिशील देशो के विद्यार्थियो के समान हो, तथा उत्कृष्ट सभ्य जीवन बिताने के योग्य बन सके, भगवद्भक्ति और देश-प्रेम से अपने जीवन को अनुप्राणित कर समाज की सेवा कर सकें। उन्होने सन् १९१४ मे उच्च स्तर की प्राविधिक शिक्षा प्राप्त करने के निमित्त विदेश जानेवाले विद्यार्थियो को छात्रवृत्ति देने की माँग की।[२]

अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा

१८ मार्च सन् १९१० को गोपाल कृष्ण गोखले ने प्रस्ताव किया कि प्रारम्भिक शिक्षा को अनिवार्य और नि.शुल्क बनाने के लिए आवश्यक कदम उठाये जायें, और उसके सम्बन्ध में सुनिश्चित प्रस्ताव प्रस्तुत करने को एक कमीशन नियुक्त किया जाय। उन्होने कहा कि हमारे देश मे पिछले चालीस वर्षों में प्रारम्भिक शिक्षा का विस्तार तो अवश्य हुआ है, पर उसकी गति बहुत धीमी है। संसार के बहुत से देशो ने प्रारम्भिक शिक्षा को अनिवार्य बना कर उसे काफी व्यापक बना दिया है। उन्होने सुझाव दिया कि इस देश मे भी कम से कम लडको के लिए प्रारम्भिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने का प्रयत्न किया जाय। उन्होने कहा कि किसी अर्थ में लडकियो की शिक्षा लडको की शिक्षा से भी अधिक आवश्यक है, पर पूरे देश की सामाजिक स्थिति को ध्यान में रखकर अनिवार्यता का सिद्धान्त लडकियो पर लागू न किया जाय। उनका यह भी सुझाव था कि अनिवार्य शिक्षा नि शुल्क भी हो। उनकी राय मे उन्ही क्षेत्रो मे प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य बनायी जाय, जहाँ कम से कम ३३ प्रतिशत बालक अब भी प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर रहे हो, और जापान की तरह इस देश मे भी ६ वर्ष से १० वर्ष तक के लडको को अनिवार्य रूप से शिक्षा दी जाय अर्थात् ४ वर्ष अनिवार्यता का काल हो। उनका सुझाव था कि राज्य के बजाय नगर-पालिकाओ और जिला-पालिकाओ द्वारा उनके निर्णय पर ही किसी भूभाग में अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की जाय, और उसका खर्चा एक तिहाई स्थानीय संस्थाएँ और दो तिहाई सरकार वहन करे, जिसके एक भाग का भुगतान केन्द्रीय

---

१. वही, सन् १९१४, जि० ५२, पृ० १०३२।

सरकार करे। सरकार के इस आश्वासन पर कि वह इस पर विचार करेगी, गोखले साहब ने अपना प्रस्ताव वापस ले लिया।

१६ मार्च सन् १९११ को गोखले साहब ने कौंसिल में 'प्रारम्भिक शिक्षा विधेयक' पेश किया। यह विधेयक मूल रूप से उन सिद्धान्तो पर ही आधारित था, जिनका उन्होने अपने प्रस्ताव पर बोलते हुए उल्लेख किया था। विधेयक को प्रस्तुत करते हुए गोखले साहब ने कहा कि यह विधेयक सरकार को या स्थानीय संस्थाओ को अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था करने को बाध्य नही करता, यह तो केवल स्थानीय सस्थाओ को इजाजत देता है कि यदि वे चाहे तो कतिपय शर्तो के पूरा होने पर प्रान्तीय सरकार की आज्ञा से अनिवार्यता के सिद्धान्त को लागू कर सकती है। उन्होने कहा कि यह विधेयक लम्बी यात्रा का पहला कदम है।

मालवीयजी ने विधेयक का समर्थन किया। उन्होने आलोचको की शंकाओं और आपत्तियो का उत्तर देते हुए कहा कि अनिवार्य शिक्षा नि शुल्क होनी ही चाहिए, पर वित्तीय साधनो की कमी के कारण ब्रिटेन, जापान आदि देशो में अनिवार्य शिक्षा को कुछ वर्षों नि:शुल्क नही बनाया गया था। भारत में भी कुछ समय इसका अनुकरण किया जा सकता है। अनिवार्य शिक्षा को चालू करने के लिए जनता को नये करो का बोझ अवश्य वहन करना होगा, पर इस पवित्र काम को सम्पन्न करने में उन्हें इसके लिए खुशी खुशी तैयार होना चाहिए। उन्होने कहा कि यह आक्षेप कि शिक्षा पाकर बच्चो का दिमाग फिर जायगा एक बेकार बात है। शिक्षा पाकर बच्चो का दिमाग जरूर फिरेगा, पर उसकी दिशा अशिक्षित बालको की मानसिक प्रवृत्तियों की दिशा से अधिक अच्छी होगी।[१] उन्होने स्वीकार किया कि कतिपय सामाजिक प्रथाओ के कारण लडकियो के लिए प्रारम्भिक शिक्षा को अनिवार्य बनाना कठिन जरूर है, पर जिन नगरो में पर्दे को प्रथा चालू नही है, और जनता चाहती है कि अनिवार्यता लडकियो पर लागू की जाय, वहाँ उसे अवश्य लागू कर देना चाहिए। जो सिद्धान्त लडको के लिए ठीक समझा जाता है, उसे उचित संरक्षणो के साथ अभिभावकों की राय से लडकियो पर भी लागू किये जाने की सम्भावना से घबडाने का कौन कारण है? उन्होने कहा : "समाज के आधे भाग को ज्ञान की ज्योति से तथा उस उत्कृष्ट जीवन से, जो ज्ञान द्वारा सम्भव है, वंचित रखना बहुत दुःखदायी बात होगी।"[२]

१. वही, सन् १९११, जि० ४९, पृ० ४६८।
२. वही, सन् १९११, जि० ४९, पृ० ४६९।

१८ मार्च सन् १९१२ को गोखले साहब ने प्रस्ताव किया कि प्रारम्भिक शिक्षा विधेयक को विचारार्थ प्रवर समिति के पास भेज दिया जाय। इस प्रस्ताव को उपस्थित करते हुए गोखले साहब ने कहा कि जनता ने विधेयक का स्वागत किया है। देश के अधिकाश उच्चस्तरीय विद्वान् इसके पक्ष में है। काग्रेस और मुस्लिम लीग ने इसका समर्थन किया है। बहुत-सी सार्वजनिक सभाओ, जातीय कान्फ्रेंसो, नगर-पालिकाओ, जिला-पालिकाओ ने भी इसका समर्थन किया है। आलोचको के आक्षेपो का उत्तर देते हुए गोखले साहब ने कहा कि उनकी राय में शिक्षा के विस्तार से ब्रिटिश शासन को कोई खतरा नही है, पर यदि उसकी कोई संभावना हो, तो भी ब्रिटिश सरकार को जनता के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करना ही चाहिए। मुसलमान आलोचको की इस बात का उत्तर देते हुए कि अनिवार्य शिक्षा-प्रणाली में उनके बच्चे गैर-मुस्लिम भाषाए पढने पर मजबूर होंगे, गोखले साहब ने कहा कि वे अधिनियम में यह व्यवस्था करने को तैयार हैं कि जहाँ पचीस बालक किसी भाषा को बोलते है, वहाँ उन्हें उस भाषा के माध्यम से शिक्षा दी जायेगी, और जहाँ उनकी संख्या इससे कम है, वहाँ मुस्लिम समाज को यदि वे चाहें तो अनिवार्यता के बन्धन से मुक्त किया जा सकता है। उन्होने कहा कि वे समीक्षकों की इस बात को स्वीकार करते है कि अनिवार्य शिक्षा निःशुल्क भी होना चाहिए, और वे विधेयक में इस सशोधन को स्वीकार करने को तैयार है। उन्होने यह भी कहा कि अनिवार्य शिक्षा-पद्धति जहाँ एक ओर अभिभावको को बाध्य करती है कि वे अपने बच्चो को पढने भेजें, वहाँ स्थानीय सस्थाओ को मजबूर करती है कि शिक्षा का समुचित प्रबन्ध करें।

गोखले साहब ने स्वीकार किया कि अनिवार्य शिक्षा-पद्धति से हमारी परेशानियाँ और कमजोरियाँ दूर नही हो जायेंगी। फिर भी शिक्षा के विस्तार से जन साधारण का जीवन-स्तर ऊँचा उठेगा, जनता के नैतिक और भौतिक स्तर को ऊँचा उठाने के सरकारी और गैर-सरकारी प्रयत्नो को अधिक सफलता प्राप्त होगी, जनता के लिए शोषण और दमन का मुकाबला करना भी अधिक सभव होगा।

उन्होने केन्द्रीय सरकार से अपील की कि यदि प्रान्तीय सरकारें अनिवार्य शिक्षा चालू नही करना चाहती, तो वह स्वय स्थानीय संस्थाओ के सहयोग से इस कार्य को सम्पन्न करे।

मालवीयजी का भाषण

इस अवसर पर जहाँ सर गगाधर चितनवीस, मानकजी दादाभाई, नवाब अब्दुल मजीद, खानबहादुर मिया मुहम्मद शफी आदि ने विधेयक का विरोध

किया, वहाँ मौलाना मजहरुलहक, मिस्टर मुहम्मद अली जिना, मालवीयजी आदि ने इसका समर्थन किया।

मालवीयजी ने कहा कि राजा और प्रजा दोनो के हितो की रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक बालक और बालिका शिक्षा प्राप्त करे, और यदि इस लक्ष्य को पूरा करना है तो सरकार को यह बात अभिभावको की इच्छा पर नही छोडनी चाहिए कि वे अपने बच्चो को स्कूल भेजें या न भेजें। बालिकाओ के सम्बन्ध में अवश्य ही अभी कोई अनिवार्यता का नियम नही बनाना चाहिए। पर यदि बालको के लिए भी स्वेच्छा नीति का अवलम्बन किया गया, तो सार्वजनिक शिक्षा का प्रसार नही हो सकेगा। किसी हद तक शिक्षा अवश्य प्रसारित होगी, पर बहु संख्यक जनता अशिक्षित ही रह जायेगी। प्रत्येक सभ्य देश ने यह स्वीकार किया है कि अनिवार्य प्रणाली ही एक ऐसा सुगम मार्ग है, जिसके द्वारा सार्व जनिक शिक्षा के लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है। इसके बिना किसी देश ने न आज तक सफलता प्राप्त की है, और न वह हमें प्राप्त हो सकती है।[1]

अनिवार्यता के नैतिक औचित्य को पुष्ट करते हुए मालवीयजी ने कहा कि प्रत्येक शासन के कुछ विभागो में अनिवार्यता के सिद्धान्त को लागू करना आवश्यक ही होता है। प्रत्येक शासन व्यवस्था मे शान्ति को बनाये रखने के लिए, तथा अपराधो को दबाने के लिए व्यक्तिगत विचारो तथा इच्छाओ पर किसी न किसी प्रकार का अनिवार्य अकुश लगाना ही पडता है। सभ्यता की उच्च श्रेणी मे तो समाज की उन्नति के लिए भी बहुत से जनोपयोगी मामलो में अनिवार्यता के सिद्धान्त की शरण लेना ही पडती है।[2]

निधेयक की कतिपय धाराओ का विश्लेपण करते हुए मालवीयजी ने कहा कि प्रस्तावित योजना बहुत ही बुद्धिसगत है, इसमे सुरक्षित उपायों की भरमार है। इसे स्वीकार करने पर किसी प्रकार की हानि सभव नही है। इस योजना में प्रान्तीय सरकार को इसकी क्षेत्रीय सीमा को निर्धारित करने का, तथा किसी विशिष्ट जाति या जनसमूह को अनिवार्यता से मुक्त करने का पूरा अधिकार है। दूसरी तरफ यह योजना किसी क्षेत्र में तभी लागू हो सकेगी, जब उस क्षेत्र से सम्बन्धित म्युनिसिपल बोर्ड या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड इसकी माँग करे। इस तरह यह योजना वही लागू की जा सकेगी, जहाँ जनता का बहुमत इसके पक्ष में है। जहाँ बहुमत से इसका विरोध किया जायगा, वहाँ इसका प्रयोग नही किया जा सकता,

---

१. वही, सन् १९१२, जि० ५०, पृ० ६०८।
२. वही, सन् १९१२, जि० ५०, पृ० ६०४।

और प्रान्तीय सरकार किसी विशिष्ट जाति, सम्प्रदाय या जनसमूह के बहुमत को ध्यान में रखते हुए उसे इससे मुक्त कर सकती है। ये सब शर्तें कम नही अधिक है, पर यदि सरकार आवश्यक समझे तो कुछ और प्रतिबन्ध भी जोडे जा सकते है।

मालवीयजी ने अपने भाषण में वाइसराय लार्ड हार्डिंग, शिक्षा-सदस्य सर हार्कोर्ट बटलर, तथा विभिन्न प्रान्तीय सरकारो के विचारो का विश्लेषण करते हुए कहा कि ये सब लक्ष्य की सार्थकता स्वीकार करते है, फिर अनिवार्यता के सिद्धान्त को स्वीकार करने से, जिसके बिना लक्ष्य की सिद्धि सभव नही, क्यो हिचकते है ? उन्होने बताया कि वाइसराय ने अपने एक भाषण मे शिक्षा के विस्तार पर हर्ष प्रकट करते हुए कहा है कि वह लक्ष्य अभी बहुत दूर है, जब प्रत्येक बालक या बालिका, नवयुवक और नवयुवती शिक्षा पा सके, जिससे व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक, दोनो प्रकार के जीवन मे सुन्दरता और पूर्णता आ सके। मालवीयजी ने कहा : "शिक्षा के सबध मे भारत सरकार अपने उदार भाव तथा उच्च लक्ष्य को इससे अच्छे शब्दो मे व्यक्त नही कर सकती, पर जिस प्रश्न का उत्तर वाछनीय है, वह यह है कि उस लक्ष्य तक कैसे पहुँचा जा सकता है ?" उन्होंने सर हार्कोर्ट बटलर की इस बात को स्वीकार किया कि प्रचलित प्रणाली द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में वास्तविक उन्नति हुई है, पर कहा : "प्रारभिक शिक्षा को स्वेच्छा प्रणाली द्वारा सर्वसाधारण मे फैलाने के लिए बहुत अधिक समय तक प्रतीक्षा करनी पडेगी। गोखले साहब ने जो आकडे प्रस्तुत किये है, उनसे यह स्पष्ट है कि यदि शिक्षा के क्षेत्र में हमारी प्रगति मौजूदा चाल से रही तो प्रत्येक बालक को शिक्षित बनाने में एक सौ पन्द्रह वर्ष और प्रत्येक बालिका को शिक्षित बनाने मे छ. सौ पैसठ वर्ष लगेंगे।"[1]

सरकार का विरोध

शिक्षा-सदस्य सर हार्कोर्ट बटलर ने यह तसलीम करते हुए भी कि प्रस्तावित विधेयक उदार है उसे स्वीकार करने से इनकार कर दिया, और सभी सरकारी और गैर सरकारी मनोनीत सदस्यो एव कुछ निर्वाचित सदस्यो ने विधेयक के विरोध मे वोट दिये। केवल १३ प्रगतिशील निर्वाचित सदस्यो ने विधेयक के पक्ष में वोट दिये। इस तरह विधेयक रद्द हो गया। देश के सभी प्रगतिशील राजनीतिज्ञो और समाचार पत्रो ने सरकार की नीति-रीति की कडी आलोचना

---

१. वही, सन् १९१२, जि० ५०, पृ० ६०५-६०६।

की, तथा उसकी प्रतिगामिता के लिए ब्रिटिश साम्राज्यशाही और नौकरशाही की कडे शब्दो में भर्त्सना की। इस विषय पर जनता का रोष और क्षोभ वर्षों बना रहा।

२८ फरवरी सन् १९१७ को श्री श्रीनिवास शास्त्री ने भारत सरकार से संस्तुति की कि वह शीघ्र ही एक ऐसी योजना तैयार और मंजूर करे जिसके जरिये १५ वर्ष में प्रारम्भिक शिक्षा सर्वसार्विक, अनिवार्य और नि शुल्क हो जाय, और युद्ध के बाद वह योजना चालू कर दी जाय। मालवीयजी[१] और बहुत से अन्य सदस्यो ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया। सरकार की ओर से उसका विरोध हुआ। अन्त में २१ भारतीय सदस्यो ने प्रस्ताव के पक्ष में वोट दिये, पर ३२ यूरोपियन सरकारी और गैर-सरकारी सदस्यो ने तथा शिक्षा-सदस्य मिस्टर शंकरन नायर और बर्मा के प्रतिनिधि श्री माँग बालू ने प्रस्ताव का विरोध किया। वह नामंजूर हो गया।

मार्च सन् १९१८ में रावबहादुर बी० एन० शर्मा ने प्रस्ताव किया कि 'यदि सारा भूराजस्व प्रान्त को हस्तान्तरित नही किया जाता तो नि.शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का सारा खर्चा भारत सरकार दे।' मालवीयजी ने इस प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा कि उस समय से, जबकि सरकार ने प्रारम्भिक शिक्षा के विस्तार के महत्त्व को स्वीकार किया है, सरकार के राजस्व और खर्चे में बहुत वृद्धि हुई है, प्रशासन और सेना आदि पर कही अधिक धन खर्च किया जा रहा है, पर शिक्षा पर जितना चाहिए उतना खर्च नही हो रहा है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रो में पर्याप्त प्रगति के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का समुचित प्रबन्ध नितान्त आवश्यक है।[२] शिक्षा सदस्य मिस्टर शकरन नायर के इस आक्षेप का कि गोखले साहब का प्रारम्भिक शिक्षा विधेयक दोषपूर्ण था, मालवीयजी ने कहा कि उस विधेयक में कुछ कमियाँ जरूर थी, पर वह तो पहला कदम था। यदि सरकार ने उसे स्वीकार कर उस पर अमल किया होता, तो प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में देश की दशा इस समय कही अच्छी होती।[३] सरकार के विरोध के कारण प्रस्ताव नामंजूर हो गया।

---

१ वही, सन् १९१७, जि० ५५, पृ० ४६३-४६६।

२ वही, सन् १९१८, जि० ५६, पृ० ९१०।

३. वही, जि० ५६, पृ० ९११।

प्रतिज्ञाबद्ध कुली प्रथा

सन् १९१० में गोखले ने नेटाल के लिए प्रतिज्ञाबद्ध कुली भरती करने की प्रथा को बन्द करने का प्रस्ताव किया। सरकार ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया, और नैटाल में कुली भेजना बन्द कर दिया गया।

सन् १९१२ में गोखले ने प्रस्ताव किया कि प्रतिज्ञाबद्ध कुली प्रथा बिल्कुल बन्द कर दी जाय। मालवीयजी ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया। उन्होने कहा कि मानवीय और राष्ट्रीय, दोनो दृष्टियो से यह प्रथा निन्दनीय है। इकरारनामे की शर्तें और उसकी दण्ड-व्यवस्था प्रतिज्ञाबद्ध श्रमिक की स्वतन्त्रता का अपहरण करती है, उसे दासो जैसा जीवन विताने को बाध्य करती है। उसे राष्ट्रीय अपमान और नैतिक पतन सहन करना पडता है, नाना प्रकार के अत्याचारो को वहन करना पडता है।[1]

इसके बाद प्रतिज्ञाबद्ध कुलियो की दशा की जाँच के लिए भारत सरकार ने मेकलीन और चम्मन लाल की एक कमेटी नियुक्त की। दूसरी तरफ गोखले के अनुरोध पर दीनबन्धु सी० एफ० एडरूज और पियरसन साहब ने फिजी आदि स्थानो का दौरा करके भारतीय प्रवासियो, विशेषत. प्रतिज्ञाबद्ध कुलियो की, दयनीय दशा का अध्ययन किया।

२० मार्च सन् १९१६ को गोखले के निधन के बाद मालवीयजी ने प्रस्ताव किया कि "भारतीय कुली प्रथा का अन्त करने के लिए शीघ्र से शीघ्र आवश्यक उपाय काम में लाये जायें।" उन्होने सरकार द्वारा नियुक्त कमेटी की कडी समीक्षा करते हुए एंडरूज कमेटी की रिपोर्ट के आधार पर फिजी में भारतीय कुलियो की दयनीय दशा का विस्तार से विवरण दिया। उन्होने प्रतिज्ञाबद्ध कुली प्रथा को समाप्त करने की माँग को पुष्ट करते हुए कहा कि इस प्रथा के द्वारा "साधारण अशिक्षित, अनभिज्ञ तथा निर्धन ग्रामवासी अपने घरवार, सगे-सम्बन्धियो से अलग करके उन दूर स्थानो में जाने को वाध्य किये जाते हैं, जहाँ की दशा से वे एकदम अपरिचित है। वहाँ जाकर उन्हें लगातार पाँच वर्ष तक उन परिस्थितियो में काम करना पडता है, जहाँ वे अपने स्वामियो के मोहताज है। उन्हे उन स्वामियो की अधीनता में काम करना पड़ता है, जो उनकी भाषा, नीति-रीति तथा आचार-व्यवहार से अपरिचित हैं।"[2]

१ वही, सन् १९१२, जि० ५०, पृ० ३७९-३८२।

२. वही, सन् १९१६, जि० ५४, पृ० ३९८।

मालवीयजी ने कहा कि इस प्रथा में फँसे भारतीय कुलियो को अपनी पुरानी परम्पराओ को तिलाजलि दे इस प्रकार का जीवन व्यतीत करना होता है, जिसे वे स्वतंत्र अवस्था में कभी करने को तैयार नही होते। उन्हे अपने स्वामियों के आदेश पर उस प्रकार के काम करने होते है जो उनके धार्मिक विश्वासो के बिल्कुल ही विपरीत होते है, और यदि वे ऐसा करने को तैयार नही होते, तो उन्हें अपनी प्रतिज्ञा की शर्तों के उल्लंघन करने का दोषी ठहराया जाता है।[1]

उन्होने कहा कि प्रतिज्ञा-पत्र 'भ्रामक' है। न तो उसकी शर्तो को समझने की कुलियो मे क्षमता है और न उन शर्तो को गौराग औपनिवेशिको से पालन कराने की कुलियो में शक्ति है। उन्होने कहा कि यह प्रथा अपने भयंकर परिणामो में दासत्व से किसी तरह कम नही है। मनुष्य पर केवल आपत्तिजनक कार्य न करने का, तथा प्रतिज्ञा-भग करने का ही अभियोग नही चलाया जा सकता, बल्कि अपमानजनक शब्द कहने तथा सकेत करने के ऊपर भी अभियोग चलाया जा सकता है।[2]

मालवीयजी ने कहा : "कुली प्रथा मनुष्यमात्र के लिए अमिट शाप है", उसे "सुधारा नही जा सकता", उसे "समूल नष्ट" करना ही होगा।[3] उन्होने बताया : "जहाँ कही कुली प्रथा के अनुसार काम किया गया है, वही वह असफल हुई है। नैटाल में यह प्रथा काम मे लायी गयी थी, कुली जीवन केवल पाँच वर्ष का ही रखा गया था, और हम जानते है कि यह प्रथा वहाँ किस प्रकार असफल रही। चीनी मजदूर प्रतिज्ञा-बद्ध ठेके में पाँच वर्ष के लिए ट्रान्सवाल भेजे गये थे और वहाँ भी वही दशा रही, और अन्त में वह प्रथा बन्द कर देनी पड़ी। स्ट्रेट सेटिलमेंट में तथा मलाया स्टेट में केवल छ सौ दिन काम करने का समझौता है, किन्तु वहाँ भी कुली प्रथा के स्थान पर स्वतंत्र रूप से मजदूरी चल रही है, और इस परिवर्तन से लाभदायक परिणाम उत्पन्न हुए है।"[4]

सरकार का आश्वासन

भारत सरकार ने भारत-मन्त्री के आदेश पर मालवीयजी के प्रस्ताव को इस शर्त के साथ स्वीकार कर लिया कि कुली प्रथा उस समय खतम कर दी

---

१. वही, सन् १९१६, जि० ५४, पृ० ३९९।
२. वही, सन् १९१६, जि० ५४, पृ० ३९६-४०५।
३. वही, सन् १९१६, जि० ५४, पृ० ४०५।
४. वही, सन् १९१६, जि० ५४, पृ० ४०५।

जायगी, जब औपनिवेशिक मजदूरो का कोई वैकल्पिक प्रवन्ध कर लें। पर इसके बाद सरकार ने लगभग एक वर्ष तक कुछ नही किया, वह केवल आश्वासन देती रही।

२३ सितम्बर सन् १९१६ को मालवीयजी ने सरकार को नोटिस दिया कि वह कौंसिल में प्रतिज्ञावद्ध कुली प्रथा को खत्म करने के उद्देश्य से एक विधेयक प्रस्तुत करना चाहते है। कतिपय सरकारी अफसरो को मालवीयजी की यह वात बुरी लगी। उनकी धारणा थी कि युद्ध के जमाने में किसी विवादास्पद विषय की कौंसिल में चर्चा करना अनुचित हैं। पर मालवीयजी अपनी वात पर डटे रहे। उन्होने दिल्ली में आयोजित एक सभा में कुली प्रथा को खत्म करने की माग की।

गाधीजी ने चेतावनी दी कि यदि यह प्रथा मई सन् १९१७ तक खत्म नही की जायेगी, तो इसके विरुद्ध सत्याग्रह शुरू किया जाएगा। जनान्दोलन से घबडा कर सरकार ने १ अप्रैल सन् १९१७ को अस्थायी रूप से, और १ जनवरी सन् १९२० को स्थायी रूप से प्रतिज्ञावद्ध कुली प्रथा समाप्त कर दी।

सवैधानिक निरंकुशता

मार्ले मिंटो सुधारो के जमाने में भारत सरकार साम्राज्यशाही भावना से अनुप्राणित पुरानी निरंकुशता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए कटिबद्ध रही। लार्ड मिंटो ने नये सुधारो को प्रस्तुत करते हुए अपनी नीति को सवैधानिक निरकुशता से सम्बोधित किया। वे ब्रिटेन की साम्राज्यशाही की रक्षा के लिए पुरानी दमनकारी व्यवस्था को पर्याप्त नही समझते थे, इसलिए वे उग्र राजनीतिक प्रयत्नो को दवाने और कुचलने के लिए जनमत की नितान्त उपेक्षा करते हुए नये दमनकारी कानूनो को कौंसिल द्वारा पास कराने में सलग्न रहे। इनमें प्रेस अधिनियम, विद्रोह सभा विधान, भारतीय सरक्षा नियम, तथा जस्टिस रौलेट कमेटी द्वारा प्रस्तावित विधेयक प्रमुख थे। कौंसिल के अन्य सदस्यो से कही अधिक मालवीयजी ने इन सबका बहुत ही साहस और क्षमता से विरोध किया।

प्रेस विधेयक

सन् १९१० के प्रारम्भ में ही गवर्नर-जनरल और उनकी कार्यपरिषद् ने एक प्रेस विधेयक केन्द्रीय विधान कौंसिल द्वारा पास कराने का निश्चय किया। इसकी कुछ धाराएँ भारत के विधि-सदस्य सर एस० पी० सिन्हा को इतनी

आपत्तिजनक दिखाई दी कि विधेयक को कौंसिल के सामने पेश करने के बजाय अपने पद से इस्तीफा दे देना ही वे उचित समझते थे। जब इसकी सूचना गोखले साहब को मिली, तब उन्होंने इस्तीफा न देने का, तथा उसमें संशोधन करने के लिए प्रयत्न करने का सिन्हा साहब को मशवरा दिया। काफी बहस के बाद वाइसराय के आग्रह पर उनकी कार्यपरिषद् ने प्रेस विधेयक मे सिन्हा द्वारा प्रस्तुत ये संशोधन स्वीकार कर लिये कि (१) पुराने मुद्रणालयो से जमानत नही मागी जायेगी, (२) नया कानून समान रूप से हिन्दुस्तानी और एग्लो इंडियन मुद्रणालयो पर लागू होगा, (३) उसमें हाईकोर्ट को अपील करने की व्यवस्था होगी। इसके बाद गोखले साहब के कहने पर सिन्हा साहब संशोधित प्रेस विधेयक को विधान कौंसिल मे पेश करने को राजी हो गये, और उन्होंने अपना इस्तीफा वापस ले लिया।

गोखले साहब ने परिस्थिति की गभीरता की ओर मालवीयजी का ध्यान आकृष्ट करते हुए उन्हें सलाह दी कि वे कौंसिल में प्रेस विधेयक का विरोध न करें। इस पर मालवीयजी ने गजेन्द्र मोक्ष का पाठ करने के बाद गोखले साहब को सूचित किया कि वे अपनी अन्तरात्मा के अनुकूल अपने कर्तव्य का निर्वाह करेंगे, चाहे उसके कारण उनके सम्बन्ध में सरकार की कुछ भी धारणा बन जाय।

८ फरवरी सन् १९१० को मालवीयजी ने प्रेस विधेयक का डट कर विरोध किया। उन्होंने कहा कि केवल तीन चार दिन की सूचना के बाद जल्दी मे विधेयक को पास करना अनुचित है। जिन सस्थाओ ने इसके विरोध में तार भेजे है, उन्हे विस्तार के साथ अपने विचार प्रस्तुत करने का अवसर मिलना ही चाहिए।[१] उन्होंने कहा कि यह विधान गैरजरूरी है, क्योंकि प्रचलित फौजदारी दण्डविधान द्वारा ही समाचारपत्रो के राजविद्रोहात्मक लेखो के विरुद्ध उचित कार्यवाही की जा सकती है। उन्होंने यह भी कहा कि भारतीय समाचार पत्रो का व्यवहार काफी सन्तुलित रहा है। सन् १९०६ और सन् १९०७ में कुछ समाचारपत्रो ने 'विरोधपूर्ण कटु वचनो का प्रयोग' जरूर किया था, पर इसका मूल कारण लार्ड कर्जन की नीति, तथा "सरकारी कर्मचारियो के व्यवहार तथा उनके द्वारा अपशब्दो का प्रयोग" ही था।[२] इसके बाद दशा मे काफी सुधार हुआ है। लगभग दो वर्ष हुए वाइसराय ने स्वयं स्वीकार किया था कि इस देश के अनेक पत्र अपना कार्य सचालन उत्तम रीति से कर रहे है, और उनमें से

१. वही, फरवरी, सन् १९१०, जि० ४८, पृ० १२२-१२३।

२. वही, सन् १९१०, जि० ४८, पृ० १३०।

बहुत कम राजद्रोही है।[1] उन्होने कहा . "देश के करीब आठ सौ समाचारपत्रो में से केवल छः पत्रो द्वारा किसी एक अपराध को दुहराने से यह सिद्ध नही होता कि वर्तमान व्यवस्था में राजद्रोह को या राजद्रोह फैलाने के प्रयत्न को सजा देने का कोई प्रबन्ध नही है", और "उसे दबाने के लिए सब समाचार पत्रो की स्वतंत्रता का अपहरण करना, उन पर विशेष प्रतिबन्ध लगाना आवश्यक है।"[2] समाज में कुछ लोग अपराधी होते ही है, अर्थात् अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग करते ही हैं। इसका यह अर्थ नही है कि इस कारण से सबके विरुद्ध कोई कार्यवाही की जाय, और निर्दोषी को भी सताया जाय।[3] सब नये समाचार पत्रो को जमानत देने के लिए बाध्य करना किसी तरह भी न्यायसगत नही है। अपराध करने से पहले ही नये समाचारपत्रो के सभी भावी सम्पादको और संचालको को राजद्रोही मान कर उनसे भविष्य मे सद्व्यवहार के लिए जमानत तलब करना कैसे न्यायोचित समझा जा सकता है?[4]

प्रेस बिल की कतिपय धाराओ की समीक्षा करते हुए मालवीयजी ने कहा कि न्यायालयो के अधिकारो को प्रशासनिक अधिकारियो के सुपुर्द करना सर्वथा अनुचित है। प्रान्तीय सरकारें भी गलती कर सकती और करती रही हैं।[5] उन्होने कहा कि प्रस्तावित विधेयक तो लार्ड लिटन के वर्नाकुलर प्रेस ऐक्ट से भी कडा है। जहाँ सन् १८७८ का अधिनियम प्रान्तीय सरकार को प्रारम्भ मे चेतावनी देने का ही अधिकार देता था, वहाँ प्रस्तावित विधेयक प्रान्तीय सरकार को प्रारम्भ में ही समाचार पत्र से जमानत माँग लेने का अधिकार दे देता है।[6]

उन्होने कहा कि जनता के हृदय में इस बात का भ्रम पैदा हो गया है कि न्याययुक्त आलोचना का अधिकार, जिससे जनता का हर प्रकार का लाभ ही है, उससे छीना जा रहा है, और इसलिए यदि यह बिल पास हो गया तो देश में एक नये असन्तोष का प्रसार होगा।[7]

---

१. वही, सन् १९१०, जि० ४८, पृ० १२९।
२. वही, सन् १९१०, जि० ४८, पृ० १२४।
३. वही, सन् १९१०, जि० ४८, पृ० १३२।
४. वही, सन् १९१०, जि० ४८, पृ० १३२।
५ वही, सन १९१०, जि० ४८, पृ० १३३।
६. वही, सन् १९१०, जि० ४८, पृ० १३२।
७. वही, सन् १९१०, जि० ४८, पृ० १३१, १३३।

अन्त में मालवीयजी ने सरकार से अनुरोध किया कि इस विधेयक को वापस ले लिया जाय, और यदि यह सम्भव न हो तो पुन. विचार के लिए इसे स्थगित कर दिया जाय।[१]

चूँकि गोखले साहब ने सिन्हा से वायदा किया था कि वे प्रेस बिल का विरोध नही करेंगे, इसलिए उन्होंने उसमें निहित सिद्धान्त का विरोध नही किया और विधेयक में कुछ सशोधन ही पेश किये। उनका सुझाव था कि सब नये मुद्रणालयो से जमानत नही माँगी जाय, केवल नये मुद्रणालयो के उन प्रशासको और संचालको से ही जमानत माँगी जाय जिनके सम्बंध में सरकार को किन्ही ठोस तथ्यो के आधार पर सन्देह हो। उनका यह भी सुझाव था कि जमानत की रकम पाच हजार रुपये के बजाय दो हजार रुपये निश्चित की जाय, और नये कानून को केवल तीन वर्ष तक चालू रखा जाय। सरकार ने इनमे से किसी संशोधन को भी स्वीकार नही किया। उनका यह संशोधन कि नये अधिनियम की अवधि केवल तीन वर्ष हो १६ वोटों के मुकाबले में ४२ वोटो से रद्द हो गया। जिन विधायको ने सशोधन के विरोध में राय दी, उनमें सात आठ हिन्दुस्तानी, बाकी सब यूरोपियन थे।[२]

समाचार पत्रो ने प्रेस ऐक्ट की और उसके साथ ही गोपाल कृष्ण गोखले की कडी आलोचना की, और दूसरी ओर मालवीयजी की भूरि-भूरि प्रशसा की। मालवीयजी को समाचार पत्रो द्वारा गोखले की निन्दा बुरी लगी। वे गोखले को 'कायर' या 'सरकार-परस्त' कहना बहुत ही अनुचित समझते थे। वास्तव में गोखले और सिन्हा साहब दोनो ही प्रेस बिल पसन्द नही करते थे, पर गोखले को शंका थी कि यदि गवर्नर-जनरल की कार्यपरिषद का पहला भारतीय सदस्य वर्ष भर के अन्दर ही किसी राजनीतिक प्रश्न पर इस्तीफा दे देगा, तो इसका देश की राजनीतिक प्रगति पर बुरा प्रभाव पडेगा, और ब्रिटिश राजनीतिज्ञो का रुख कडा हो जायगा। इसीलिए उन्होंने सिन्हा साहब को मशवरा दिया था कि वे इस्तीफा न दें और उनसे वायदा किया था कि वे कौंसिल में प्रेस बिल के विरुद्ध वोट नही देंगे। संभवतः उन्हे आशा थी कि सरकार नये कानून का दुरुपयोग नही करेगी। पर ६ अगस्त १९१० को गोखले साहब ने बहुत ही संतप्त हृदय से कहा कि जिस सावधानी से प्रेस कानून लागू किया जाना चाहिए था, उस सावधानी से अधिकाश प्रान्तीय सरकारो ने काम नही किया।

---

१. वही, सन् १९१०, जि० ४८, पृ० १३१-१३२।
२. वही, सन् १९१०, जि० ४८, पृ० १७२-१७३।

कलकत्ता और मद्रास हाईकोर्ट के चीफ जजो ने अपने फैसलो में स्वीकार किया कि प्रेस ऐक्ट की कतिपय धाराओ ने प्रकाशको तथा मुद्रणालयो के रखने-वाले व्यक्तियो पर गम्भीर निर्योग्यताएँ लगा दी है। कलकत्ता हाईकोर्ट के जज स्टीफन ने तो कहा कि इस ऐक्ट के अन्दर सरकार के अधिकार इतने व्यापक हैं कि सरकार चोरो और डकैतो के वर्ग की आलोचना और निन्दा करनेवाले समाचार पत्र को भी बन्द करने का आदेश दे सकती है।

विद्रोह सभा विधेयक

सन् १९१० में ही सरकार ने निश्चय किया कि सन् १९०७ के विद्रोह सभा अध्यादेश को पाँच मास तक चालू रखने के लिए कौसिल में एक नया विधेयक प्रस्तुत किया जाय। ६ अगस्त सन् १९१० को मालवीयजीने इस विधेयक के विरोध में एक तगडा भाषण दिया। उन्होने कहा कि यह असाधारण व्यवस्था सन् १९०७ की असाधारण परिस्थिति में चालू की गयी थी, और अब जब कि सन् १९०९ के नये राजनीतिक सुधारो के कारण स्थिति बदल गयी है, जनता में सरकार के प्रति श्रद्धा पैदा हुई है, इस प्रकार के दमनकारी कानून का अन्त हो जाना चाहिए। उन्होने यह भी कहा कि क्रान्तिकारी षड्यन्त्र, जो गुप्त रीति से होते हैं, सार्वजनिक सभाओ पर प्रतिबन्ध लगा कर खत्म नही किये जा सकते। गत तीन वर्षों में इस विधान से क्रान्तिकारी दलो के कार्यो में तनिक भी रुकावट नही पडी है। अतएव यह नही कहा जा सकता है कि यह विधान इस मर्ज की दवा है। उन्होने कहा कि वे वाइसराय के इस विचार से सहमत है कि "ब्रिटिश सरकार के प्रति जो दुर्भाव व्याप्त है, वह पारस्परिक समझौते तथा मतभेद को हटा देने से दूर हो सकता है", पर इस समझौते के लिए तो पारस्परिक स्वतत्र बहस द्वारा सार्वजनिक मतभेदो का निवारण करना होगा। जब कलकत्ता, नागपुर तथा पूर्वी बगाल की पचास हजार व्यक्तियो की बडी-बडी सभाएं भी साधारण १४४ धारा के कानून से शान्ति के साथ हटायी जा चुकी है, तब इस असाधारण विद्रोह सभा विधान की कौन जरूरत है? उन्होने कहा कि सरकारी कर्मचारियो द्वारा इसका दुरुपयोग हो सकता है, और गोखले साहब ने ठीक ही कहा है कि "किसी भी दमन विधान का जब दुरुपयोग किया जाता है तब उससे वह बुराई अधिक फैलती है जिसके सुधारने के लिए उसका निर्माण होता है।"[1]

---

१. प्रोसीडिंग—गवर्नर-जनरल की कौसिल (विधान), जि० ४९, पृ० ५७-६२, ५५०-५५१।

गोखले साहब ने, जिन्होने सन् १९०७ में ही डाक्टर रासबिहारी घोष के साथ विद्रोह सभा विधेयक का विरोध किया था, इस अवसर पर भी उसका डटकर विरोध किया । मालवीयजी की तरह उनकी भी धारणा थी कि इस दमनकारी कानून को मंजूर करना जरूरी नही है । उन्हे सन्देह था कि सरकार कुछ महीने बाद इस कानून को स्थायी बनाने की कोशिश करेगी । उनका यह अनुमान सही साबित हुआ ।

मार्च सन् १९११ में दूसरा 'विद्रोह सभा विधेयक' कौंसिल में प्रस्तावित किया गया । यह विधेयक सन् १९०७ और सन् १९१० के अधिनियमो से कम कड़ा था । बहुत-सी कड़ी बातें निकाल दी गयी थी । फिर भी गोखले, मालवीय आदि प्रगतिशील सदस्यों ने इसे 'अनावश्यक' और मूलरूप से 'दमनकारी' बताते हुए इसका विरोध किया ।[1] गोखले ने कहा कि उन्हें डर है कि जिस तरह प्रान्तीय सरकारों ने प्रेस ऐक्ट तथा पुराने विद्रोह सभा अधिनियम का दुरुपयोग किया है, इसी तरह इस नये कानून का भी दुरुपयोग किया जा सकता है । जनता की स्वतंत्रता का निरर्थक अपहरण हो सकता है । उन्होने कहा कि वे निरपेक्ष सिद्धान्त की सार्थकता पूर्ण रूप से नही मानते, और स्वीकार करते हैं कि प्रत्येक सिद्धान्त का प्रयोग परिस्थिति के संदर्भ में किया जाता है । उसका रूप परिस्थिति द्वारा नियत्रित होता है । पर यह बात मानव स्वतन्त्रता की तरह राजभक्ति के सिद्धान्त पर भी लागू है ।[2] उन्होने सरकार से अनुरोध किया कि वह विधेयक वापस ले ले, पर सरकार कहाँ सुननेवाली थी ? उसने मनोनीत सदस्यो के बल पर उसे मंजूर करा लिया ।

भारत रक्षा विधेयक

सन् १९१४ के विश्वयुद्ध के शुरू होने के कुछ समय बाद सन् १९१५ में सरकार ने कौसिल मे भारत रक्षा बिल (डिफेन्स आफ इंडिया बिल) पेश किया । मालवीयजी, सुरेन्द्र नाथ बनर्जी आदि ने मानव-स्वतंत्रता की रक्षा के निमित्त विधेयक की कतिपय धाराओ का विरोध करना आवश्यक समझा । उन्होने इस बात को स्वीकार किया कि युद्ध की विषम परिस्थितियो मे देश की रक्षा के लिए विशेष अधिकारो का प्रयोग किसी हद तक अनिवार्य है । फिर भी

---

१. वही, सन् १९११, जि० ४९, पृ० ५५९; ५५०-५५१ ।

२. वही, सन् १९११, जि० ४९, पृ० ५५९-५६३ ।

उनके विचार में कानून द्वारा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की यथासंभव रक्षा भी जरूरी है। मालवीयजी ने राष्ट्रविरोधी तत्त्वो की जल्दी से गिरफ्तारी का समर्थन करते हुए माग की कि साधारण न्यायपद्धति और कानून द्वारा ही उनके अपराधो की जाच की जानी चाहिए।[1] उन्होने इस विधेयक की धारा ३ और ६ का विरोध करते हुए कहा कि इसके जरिए तो वे सभी साधारण अपराध भी नयी व्यवस्था के अन्दर आ जाते है, जिनपर साधारण दण्ड व्यवस्था द्वारा मौत, कालापानी या सात वर्ष की सजा दी जा सकती है।[2] विधेयक की दफा ३ की समीक्षा करते हुए उन्होने कहा कि हाईकोर्ट के जज के कम स्तर का कोई व्यक्ति स्पेशल ट्राव्युनल का जज न बनाया जाय, तथा उसे मौत की सजा देने का अधिकार न हो।[3] उन्होने कहा कि युद्धबन्दी नजरबन्द कर दिया जाता है, तब क्या विचाराधीन अपराधियो को नजरबन्दी या कालापानी की सजा देने से सामाजिक सुरक्षा और न्याय का उद्देश्य पूरा नही हो पायेगा? मौत की सजा में अटल अन्याय का भय है, और यह भय तब बढ जाता है, जब मुकदमे की जाच सरसरी ढंग की हो।[4]

रौलेट बिल

सन् १९१९ मे मालवीयजी ने बहुत से दूसरे गैर-सरकारी सदस्यो के साथ फौजदारी कानून सशोधन विधेयक का, जो 'रौलेट बिल' के नाम से प्रसिद्ध है, डटकर विरोध किया, और जब सरकार ने इस विरोध की उपेक्षा करते हुए सरकारी और गैर-सरकारी मनोनीत सदस्यो की मदद से उसे कौंसिल में पास करा लिया, तब उन्होने अन्य तीन सदस्यो के साथ कौसिल से इस्तीफा दे दिया। अपने मतदाताओ का पुन. विश्वास प्राप्त कर वे कौसिल मे वापस आये, और उन्होने वहाँ डट कर बडी दक्षता के साथ ओडायर और डायर के अत्याचारो के लिए भारत सरकार और पजाब सरकार की भर्त्सना की, घटनाओ की जाच के लिए शाही कमीशन की माग की। उन्होने वाइसराय लार्ड चेम्सफोर्ड के इस्तीफे की माग की, तथा क्षमा विधेयक का डट कर विरोध किया।[5]

---

१ वही, सन् १९१५, जि० ५३, पृ० ५०१।
२. वही, सन् १९१५, जि० ५३, पृ० ५००, ५०४, ५१२।
३. वही, सन् १९१५, जि० ५३, पृ० ५०३।
४. वही, सन् १९१५, जि० ५३, पृ० ४९२, ४९८।
५. विस्तृत विवरण के लिए अध्याय १२ देखिये।

राजनीतिक सुधार

दिसम्बर सन् १९१० में प्रयाग में तीसरी बार कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ। सर विलियम वेडर्नबर्न ने अपने अध्यक्षीय भाषण में मुसलमानो से अनुरोध किया कि वे कांग्रेस में सम्मिलित हो राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग लें, और आशा व्यक्त की कि गरमदलीय नेता कांग्रेस के पुराने नेताओ के साथ मिलकर काम करेंगे।

कांग्रेस ने सरकार से अनुरोध किया कि वह विधान संबंधी नियमो को इस प्रकार शीघ्र ही बदले, जिससे मताधिकार के संबध में जनता के विभिन्न अंगो में असंगत भेद, तथा उम्मीदवारो की योग्यताओ और चुनाव से संबधित अन्य अनुचित प्रतिबन्ध दूर हो। इस प्रस्ताव को श्री सतीशचन्द्र बनर्जी ने प्रस्तावित किया, डाक्टर तेजबहादुर सप्रू ने इसका अनुमोदन और नवाब सादिक अली खाँ ने समर्थन किया। जिना साहब ने प्रस्ताव किया कि पृथक् निर्वाचन की पद्धति स्थानीय निकायो मे चालू न की जाय। मिस्टर मजहरुलहक ने इसका अनुमोदन और सैयद हसन इमाम साहब ने समर्थन किया। कांग्रेस ने यह भी निश्चय किया कि सर विलियम वेडर्नबर्न की अध्यक्षता मे एक शिष्टमंडल वाइसराय से मिले। कांग्रेस के सभी पुराने अध्यक्षो के अतिरिक्त सर्व श्री भूपेन्द्र नाथ वसु, अम्बिका चरण मजूमदार, बिशन नारायण दर, तथा नवाब सादिक अली खाँ, मिस्टर जिना और सैयद हसन इमाम आदि चौदह सज्जन शिष्टमंडल के सदस्य चुने गये।

शिष्टमंडल ने अपने निवेदनपत्र में ग्रामीण जनता की गरीबी और दूसरे आवश्यक प्रशासनिक सुधारो की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए वाइसराय से प्रार्थना की कि 'अनुभव की रोशनी में, कौंसिल सम्बन्धी नियम (रैगुलेशन्स) जिसकी आलोचना हुई है, बदले जाये।' इसके जवाब में वाइसराय ने कहा कि 'इस शिष्टमंडल के बहुत से सदस्य मेरी विधान कौंसिल या प्रान्तीय विधान कौंसिलो के सदस्य है, जिनके माध्यम से ये सब प्रश्न प्रान्तीय और इम्पीरियल विधान कौशिलो के सामने प्रस्तुत किये जा सकते है।'

इसके बाद २४ जनवरी सन् १९११ को मालवीयजी ने केन्द्रीय विधान कौसिल में प्रस्ताव किया कि सरकार गैर-सरकारी और सरकारी सदस्यो की एक कमेटी नियुक्त करे जो इस बात पर विचार करके रिपोर्ट दे कि "सम्राट् की प्रजा के विभिन्न वर्गों के साथ व्यवहार में असमानता के कारण, तथा कौसिलो में चुनाव चाहनेवाले उम्मीदवारो के चयन पर लगायी गयी कतिपय अयोग्यताओ और

प्रतिबन्धो के कारण जो न्यायसगत शिकायतें है उन्हें दूर करने के लिए, तथा प्रान्तीय कौसिलो में 'गैरसरकारी बहुमत की व्यवस्था को व्यवहार में अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए' इंडियन कौसिल एक्ट सन् १९०९ के अन्तर्गत बने रेगुलेशन्स में क्या परिवर्तन किये जायें।"[१]

इस प्रस्ताव पर बोलते हुए मालवीयजी ने बहुत से तथ्यो और तर्कों द्वारा सिद्ध किया कि वे विधान कौसिलें, जिनसे ज्ञानसम्पन्न प्रगतिशील भारतीय जनमत पेश करने की आशा की जाती है, किस तरह विशेष हितो और साम्प्रदायिक हितो की गढ बना दी गयी है। उन्होने राजाओ, जमीदारो और मुसलमानो के अत्यधिक प्रतिनिधित्व की निन्दा करते हुए मुस्लिम समुदाय के विशेप राजनीतिक महत्त्व के विचार की कडी समीक्षा की। उन्होने कहा : "कोई ऐसा कारण नही जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि हिन्दू, सिक्ख, ईसाई, पारसी या भारत में रहनेवाली किसी दूसरी जमायत से मुसलमान राजनीतिक दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण है।"[२]

मालवीयजी के कतिपय तर्कों का उत्तर देते हुए नवाब अब्दुल मजीद खा ने कहा · "सौ डेढ सौ वर्ष हुए जब मुसलमान इस देश के शासक थे, और हिन्दू इस देश का प्रजा वर्ग था। यह कैसे सभव है कि वे लोग जिन्होने प्रभुसत्ता खो दी है, उन लोगो की तुलना में किसी राजनीतिक महत्त्व के न समझें जायें जो सैकडो वर्ष उनकी प्रजा रहे हो?"[३]

श्री भूपेन्द्र नाथ वसु ने मालवीयजी का पूरी तौर पर समर्थन किया। महाराजा बर्दवान ने पृथक् निर्वाचन पद्धति का समर्थन किया। गोखले साहब ने इस विवाद को कौसिल में खडा करने पर क्षोभ प्रकट करते हुए कहा कि यद्यपि मुसलमान अल्पसख्यक है, पर इस कारण उनके राजनीतिक महत्त्व को भुलाया नही जा सकता, और उस देश में जहाँ हिन्दुओ की भारी बहुसंख्या है, मुसलमानो के लिए किसी विशेप व्यवस्था द्वारा प्रतिनिधित्व का प्रबन्ध अनिवार्य है। उन्होने अपने ढग से जमीदारी के प्रतिनिधित्व की भी पुष्टि की। गोखले साहब ने स्वीकार किया कि कौसिल सम्बन्धी रेगुलेशन्स मे मुसलमानो के लिए अधिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की गयी है जिसके लिए भारत सरकार के बजाय

---

१. वही, जनवरी सन् १९११, जि० ४९, पृ० १३३।

२ वही, सन् १९११, जि० ४९, पृ० १३३-१३८।

३. वही, सन् १९११, जि० ४९, पृ० १३९।

भारतमन्त्री मुख्यरूप से जिम्मेदार है। पर दो वर्ष के अन्दर, उन्होने कहा, उसे बदला नही जा सकता। उन्होने स्वीकार किया कि उम्मीदवारो की क्षमता आदि से सम्बन्धित बहुत से नियम अनुचित है, और उन्हें बदलना जरूरी है। उन्होने मालवीयजी की इस माँग का भी समर्थन किया कि प्रान्तीय कौसिलो में निर्वाचित सदस्यो का, तथा केन्द्रीय कौसिल में गैरसरकारी सदस्यो का बहुमत हो। अन्त में गोखले साहब ने मालवीयजी से अनुरोध किया कि वे अपना प्रस्ताव वापस ले लें।[1]

मजहरुलहक साहब ने प्रस्ताव पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि वह और उनके नेता सैयद अली इमाम सयुक्त निर्वाचन के पक्ष में है और समझते है कि संयुक्त निर्वाचन द्वारा देश का उद्धार सभव है।[2] उमर हयात खा, शमशुल हुदा आदि मुसलमान सदस्यो ने, तथा यूरोपियन सदस्यो ने प्रस्ताव का विरोध किया।

सरकार की ओर से लारेन्स जनकिन ने मुसलमानो को पृथक् निर्वाचन तथा अधिक प्रतिनिधित्व का आश्वासन देते हुए कहा कि वे सब तरफ से सुझाव सुनने को तैयार है। प्रस्ताव वापस ले लिया गया।

सन् १९१२ के शरद सत्र के लिए मालवीयजी ने कौंसिल के रेगुलेशन्स के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव का नोटिस दिया। उस प्रस्ताव मे सस्तुति की गयी थी कि सरकार सरकारी और गैर-सरकारी सदस्यो की एक कमेटी नियुक्त करे जो सुझाव दे कि रेगुलेशन्स में क्या परिवर्तन किये जायें जिससे (१) मुसलमानो और जमीदारो के लिए सुरक्षित स्थानो की तरह केन्द्रीय और प्रान्तीय कौंसिलो के सामान्य गैरसरकारी निर्वाचित स्थान भी प्रत्यक्ष मतदान द्वारा पूरित किये जायँ, (२) मतदान की अर्हता उतनी ही उदार हो जितनी वह मुसलमान मतदाताओ के सम्बन्ध मे है, (३) जिन्हे विशेप सुरक्षित स्थानो के लिए मत देने का अधिकार है, उन्हें सामान्य चुनाव क्षेत्र में भाग लेने का अधिकार न हो। प्रत्येक व्यक्ति को किसी एक चुनाव मे ही मतदान करने का अधिकार हो।

मालवीयजी का यह प्रस्ताव सर्वथा न्यायसंगत, तर्कसंगत और प्रगतिशील था, पर प्रतिक्रियावादी नौकरशाही इस देश में लोकतान्त्रिक मताधिकार प्रणाली को चालू करने के पक्ष में नही थी। इसलिए उसकी सलाह पर वाइसराय ने इस प्रस्ताव को कौंसिल मे पेश करने की इजाजत नही दी। वाइसराय का यह

१. वही, सन् १९११, जि० ४९, पृ० १४६-१४८।
२. वही, सन् १९११, जि० ४९, पृ० १४९।

कार्य उनकी अपनी जनवरी सन् १९११ की इस राय के विपरीत था कि कौंसिल के गैरसरकारी सदस्य मतदान सम्बन्धी रेगुलेशन्स पर कौंसिलो में विचार कर सकते हैं।

मालवीयजी ने कौंसिलो के अधिवेशनों में संवैधानिक और प्रशासनिक विषयो की चर्चा जारी रखी। उन्होंने सन् १९११ में श्री सच्चिदानन्द सिन्हा द्वारा प्रस्तुत इस प्रस्ताव का समर्थन किया कि युक्त प्रान्त में एक्जीक्यूटिव कौंसिल गठित की जाय।[1] उन्होने २२ फरवरी सन् १९१७ को डाक्टर तेजबहादुर सप्रू के इस प्रस्ताव का समर्थन किया कि युक्तप्रान्त में लेफिटनेन्ट गवर्नर के बजाय वगर्नर नियुक्त किया जाय और उसकी एक्जीक्यूटिव कौंसिल में भारतीय सदस्यो कीसंख्या दूसरे सदस्यो के बराबर हो।[2] सन् १९१३ में उन्होने इस प्रस्ताव का समर्थन किया कि न्यायालयो को प्रशासनिक अधिकारियो से अलग रखा जाय, ताकि देश में शुद्ध न्याय-व्यवस्था प्रतिष्ठित हो सके, और जनता को निष्पक्ष न्याय मिल सके।[3]

सन् १९१४ में मालवीयजी ने भारत मन्त्री की कौसिल के किसी एक सदस्य को भारत की वित्त-नीति के निरीक्षण का अधिकार दिये जाने के सुझाव का विरोध करते हुए भारत-मन्त्री और उसकी कौसिल के अधिकारो को सीमित करना आवश्यक बताया। उन्होंने सुझाव दिया कि भारतमन्त्री की कौंसिल को इस तरह गठित किया जाय कि उसके नौ सदस्यो में से तीन भारत की केन्द्रीय और और प्रान्तीय विधान कौंसिलो के गैर-सरकारी सदस्यो द्वारा निर्वाचित हो, तीन सदस्य वे अफसर हो जिन्होंने भारत में कम से कम दस वर्ष सेवा की हो, और तीन सदस्य ऐसे योग्य सार्वजनिक कार्यकर्ता हो जिनका भारत सरकार से कोई सम्बन्ध न हो। इस कौसिल की तीन उपसमितियां हो, जिनमें से हरेक मे एक भारतीय सदस्य हो।[4]

सन् १९१६ मे 'इंडियन डिफेन्स फोर्स विल' और वजट पर अपने विचार व्यक्त करते हुए मालवीयजी ने माग की कि फौज के सब पदो के लिए भारतीयो और यूरोपियनो की पोजीशन समान हो। भारतीयो को अपनी योग्यता के आधार पर फौज में ऊँचा पद प्राप्त करने का अधिकार हो, प्रजातीय विभेद

१. वही, सन् १९११, जि० ४९, पृ० १६०-१६१।
२. वही, सन् १९१७, जि० ५५, पृ० ३९८-३९९।
३. वही, सन् १९१३, जि० ५१, पृ० ३९०-३९२।
४. वही, सन् १९१४, जि० ५२, पृ० १०२९।

खत्म किये जायें। उन्होने कहा कि यह अजीव बात है कि सैनिक प्रशिक्षण के लिए भारत में स्थापित कालेज में भारतीयो को दाखिल ही न किया जाय।[1]

सन् १९१६ में मालवीयजी तथा अन्य १८ निर्वाचित सदस्यों ने मिलकर राजनीतिक सुधारों के सम्वन्ध में एक मेमोरडम तैयार किया। दिसम्बर सन् १९१६ में कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने मिलकर इस मेमोरंडम में कुछ परिवर्तन करके एक योजना तैयार की जो 'काग्रेस-लीग स्कीम' के नाम से प्रसिद्ध हुई।[2]

२३ मार्च सन् १९१७ को वजट पर बोलते हुए मालवीयजी ने मेमोरडम तथा काग्रेस-लीग योजना की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट करते हुए माग की कि वह शीघ्र ही इनके सम्वन्ध में अपनी प्रतिक्रिया तथा राजनीतिक सुधारो के सम्वन्ध में अपनी नीति घोषित करे, ताकि इस सत्र में ही कौंसिल उस पर विचार करके अपनी राय व्यक्त कर सके। उन्होने कहा : "युद्ध के वाद ऐसे सुधारो की आवश्यकता है जिनसे वर्तमान और भविष्य में भारत के हितो की रक्षा हो सके, जिनसे उसकी जनता की कामना पूरी हो सके, और वह अपने देश के उचित शासन-प्रबंध में समर्थ हो सके।" मालवीयजी ने वहुत ही दु ख के साथ यह स्वीकार करते हुए कि "हम स्वतंत्र नही है, क्योकि हमारे सभी महत्त्वपूर्ण आर्थिक प्रश्न भारत-मन्त्री की निश्चित नीति के अनुसार तय किये जाते है और वे ही भारत के वास्तविक शासन-कर्ता है", उन्होने माग की कि भारत को आर्थिक स्वतंत्रता भी प्राप्त हो, विधान कौंसिल को यह निर्णय करने की स्वतंत्रता हो कि कौन-कौन से टैक्स लगाये जायें और उनसे प्राप्त धन को किस प्रकार व्यय किया जाय"। उन्होंने आशा व्यक्त की कि "युद्ध के बाद भारत सरकार का दफ्तर इंगलैड से हटाकर भारत में ही पूर्ण रूप से स्थापित किया जायेगा।"[3]

इस्लिंगटन कमीशन

१७ मार्च सन् १९११ को श्री सुबाराओ पन्तलू ने भारतीय विधान कौंसिल में प्रस्ताव किया कि सिविल प्रशासन के उच्च पदो पर भारतीयो की अधिक विस्तृत नियुक्ति के प्रश्न पर विचार करने के लिए एक शाही कमीशन नियुक्त किया जाय। २१ अगस्त सन् १९१२ को लार्ड इस्लिंगटन की अध्यक्षता में पब्लिक

---

१. वही, सन् १९१६, जि० ५५, पृ० ४१४, ३४३।

२. विस्तृत विवरण अध्याय ११ में देखिये।

३. वही, सन् १९१७, जि० ५५, पृ० ८०४-८०७।

सर्विस कमीशन मुकर्रर किया गया। उसके अन्य सदस्यो में आठ यूरोपियन और तीन भारतीय—श्री गोपाल कृष्ण गोखले, सर अब्दुर रहीम और श्री एम० वी० चाओला-थे। कमीशन ने अगस्त सन् १९१५ में अपनी रिपोर्ट तैयार की जो जनवरी सन् १९१७ में प्रकाशित की गयी। कमीशन का निष्कर्ष था कि चूँकि भारत के विभिन्न प्रान्तो और समुदायो के शिक्षा के स्तर में काफी अन्तर है, और भारत के स्कूलो में चरित्र के गठन और विकास पर इतना ध्यान नही दिया जाता जितना ब्रिटेन के स्कूल कालेजो मे दिया जाता है, इसलिए इंडियन सिविल सर्विस में भरती के लिए भारत में प्रतियोगिता परीक्षा न शुरू की जाय। उसने सस्तुति की कि इडियन सिविल सर्विस के लिए ७५ प्रतिशत और इंडियन पुलिस सर्विस के लिए ९० प्रतिशत अफसरो की भरती यूरोप में प्रतियोगिता परीक्षा द्वारा की जाय, और वाकी स्थानों पर भारत में नामजदगी के जरिए नियुक्तियाँ की जायें। उसने यह भी संस्तुति की कि प्रतियोगिता परीक्षा के परीक्षार्थियो की अधिकतम आयु २४ वर्ष से घटाकर १९ वर्ष कर दी जाय। उसने यह भी संस्तुति की कि विभिन्न लोक सेवाओ के वेतनस्तर को ऊँचा उठाया जाय अर्थात् उन्हे अधिक वेतन, भत्ते और पेंशनें दी जायें। कमीशन के भारतीय सदस्यो को कमीशन की ये सस्तुतियाँ ठीक नही जँची। सर अब्दुर रहीम ने गोखले साहव की राय और सहमति से एक नोट तैयार किया जिसमे उन्होने यूरोपियन अफसरो की प्रधानता के सिद्धान्त को चुनौती देते हुए लिखा कि स्पष्ट आवश्यकता की हालत में ही यूरोपियनो को भारत की लोक सेवाओ में नियुक्त करना उचित समझा जा सकता है। भारतीय सदस्यो ने वेतन की वृद्धि की संस्तुति का भी विरोध किया। उन्होने कहा कि भारत में वेतन-स्तर ब्रिटेन, लका आदि से इस समय ही ऊँचा है, और इसलिए, उनकी राय में, वेतन, भत्तो और पेंशनो में वृद्धि का सुझाव ठीक नही है।

भारतीयो को कमीशन की रिपोर्ट ठीक नही जँची। उन्होने उसका डटकर विरोध किया। २० मार्च सन् १९१७ को मालवीयजी ने भारतीय विधान कौंसिल में एक प्रस्ताव द्वारा भारत सरकार से संस्तुति की कि जव तक विधान कौंसिल अपनी राय व्यक्त न करे, तव तक इस्लिगटन पब्लिक सर्विस कमीशन की रिपोर्ट पर कोई कार्रवाई न की जाय। उन्होने कहा कि कमीशन ने जिन सिद्धान्तो को प्रतिपादित किया है वे बहुत ही आपत्तिजनक है, और उनको स्वीकार करना किसी तरह भी उचित नही होगा।[1]

---

१. वही, २० मार्च, सन् १९१७, जि० ५५, पृ० ६९८-७०३।

सितम्बर सन् १९१७ में मालवीयजी ने कौंसिल में इंगलैड के साथ-साथ भारत में भी सिविल सर्विस प्रतियोगिता परीक्षा हो, इसके सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पेश किया। उन्होने समस्या का ऐतिहासिक विश्लेषण करते हुए वताया कि सन् १८३३ में पार्लियामेंट ने चार्टर एक्ट द्वारा देश की ऊँची नौकरियो पर भारतीयो की नियुक्ति का अधिकार स्वीकार किया, और मैकाले ने इस निर्णय की वहुत प्रशंसा की। सन् १८५५ मे प्रतियोगिता परीक्षा प्रारम्भ हुई। सन् १८५८ में महारानी विक्टोरिया ने अपनी शाही घोपणा द्वारा घोपित किया कि सम्राज्ञी की भारतीय प्रजा को उसकी अन्य प्रजा के समान उन सब पदो पर नियुक्त होने का अधिकार होगा, जिसके लिए वे अपनी क्षमता और सत्यनिष्ठा के कारण योग्य हो। पर इस व्यवस्था और घोपणा के वावजूद कोई हिन्दुस्तानी प्रशासन के किसी ऊँचे पद पर नियुक्त नही किया गया। सन् १८६० में भारतीयो को सरकारी नौकरियो में भरती करने का सर्वोत्तम उपाय बताने के लिए भारत-मन्त्री ने एक कमेटी नियुक्त की। इस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि या तो इंगलिस्तान के साथ-साथ भारत में भी यथासम्भव वैसी प्रतियोगिता परीक्षा आयोजित की जाय, और इन दोनो प्रतियोगिताओ के परिणामो के आधार पर एक लिस्ट तैयार की जाय, या नियुक्तियो की कुल सख्या के एक अंश के लिए भारत में अलग से प्रतियोगिता हो जिसमें भारतीय और भारत में रहनेवाली अन्य व्रिटिश प्रजा भाग ले सके। मालवीयजी ने कहा कि कमेटी के इन सुझावो पर कोई ध्यान नही दिया गया, और सन् १८७६ तक उसकी रिपोर्ट भी प्रकाशित नही की गयी। सन् १८७० मे पार्लियामेंट ने एक अधिनियम द्वारा सिविल सर्विस की कुछ नियुक्तियो के लिए भारतीयो को भरती करने के निमित्त नियम बनाने का भारत सरकार को अधिकार दिया। पर यह व्यवस्था 'असन्तोषप्रद' सिद्ध हुई। इसके बाद सन् १८८६ में पब्लिक सर्विस कमीशन नियुक्त किया गया। इसने भारत में प्रतियोगिता परीक्षा की व्यवस्था करने का विरोध किया। इसके बाद सन् १८९३ में व्रिटेन की कामन्स सभा ने मिस्टर हर्बर्ट पाल के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया कि भारत और इगलिस्तान दोनो में साथ-साथ समकालिक प्रतियोगिता परीक्षाए हो। पर भारत-मन्त्री ने कामन्स सभा की इस सिफारिश की उपेक्षा की, और उसको कार्यान्वित करने से इनकार कर दिया। सन् १९११ में भारतीय विधान कौसिल में इस सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पेश किया गया। सन् १९१२ में एक शाही कमीशन नियुक्त किया गया, जिसने अपनी रिपोर्ट में भारत में समकालीन-प्रतियोगिता परीक्षा नियोजित करने का विरोध किया।

मालवीयजी ने कमीशन के विचार को गलत बताते हुए कहा कि हमारी यह दृढ धारणा है कि भारतीयो के दावे के साथ उस समय तक न्याय नही हो सकता, जब तक सिविल सर्विस के लिए परीक्षाएँ हिन्दुस्तान और इंगलिस्तान में साथ-साथ नही होती। उन्होने बताया कि सन् १९१७ तक इगलिस्तान में आयोजित परीक्षाओ द्वारा केवल ८० भारतीय सिविल सर्विस में दाखिल हो सके है, जबकि यूरोपियनो की संख्या २६०० है। उन्होने यह भी बताया कि इस समय उन पदो पर, जिन पर साधारणतः इंडियन सिविल सर्विस के सदस्य नियुक्त किये जाते है, केवल १० प्रतिशत भारतीय है। उन्होने यह भी बताया कि सन् १९१२ में ५०० रुपये या उससे अधिक वेतन पानेवाले सरकारी अफसरो में ८३ प्रतिशत यूरोपियन और यूरेशियन है।

अन्त में उन्होने बहुत से अग्रेज राजनीतिज्ञो और प्रशासको के विचारो तथा जापान की प्रगति का हवाला देते हुए ब्रिटिश अधिकारियो, भारत सरकार तथा इंडियन सिविल सर्विस के यूरोपियन सदस्यो से अपील की कि वे इस समस्या पर संजीदगी से विचार करें, और इसका समाधान करने में हमारी सहायता करें।[1]

२४ सितम्बर सन् १९१७ को मालवीयजी ने एक दूसरे प्रस्ताव द्वारा भारत सरकार से सस्तुति की कि यदि इडियन सिविल सर्विस में भारतीयो के प्रवेश के लिए अलग से भारत में परीक्षा की व्यवस्था की जाय तो ५० प्रतिशत स्थान इसके द्वारा भरे जायें। उन्होने कहा कि अपने देश की सर्विस में नियुक्ति का अधिकार हमें अवश्य ही यूरोपियनो से बेहतर है। फिर भी हम सब के लिए समान रूप से खुली प्रतियोगिता में बराबर की परीक्षा के लिए तैयार है, पर यदि अनुपात निश्चित किया जाय तो वह ५० प्रतिशत से कम न हो, और उसके बाद भी लन्दन में आयोजित परीक्षाओ में बैठने की भारतीय नवयुवको को इजाजत हो।[2] यूरोपियनों की इस बात का उत्तर देते हुए कि भारत में शासन-व्यवस्था का ब्रिटिश स्वरूप बनाये रखना हितकर होगा, मालवीयजी ने कहा कि इसके लिए शासन में यूरोपियनो का बाहुल्य और आधिपत्य बनाये रखना जरूरी नही है। उन्होने यह भी कहा कि भारत की शासन-व्यवस्था को पूर्णरूप से ब्रिटिश भी नही कहा जा सकता, क्योकि ब्रिटेन में प्रचलित व्यवस्था के बहुत

---

१ प्रोसीडिंग-इण्डियन लेजिस्लेटिव कौंसिल, सन् १९१७, जि० ५६, पृ० ३२५-३३३।

२. वही, सन् १९१७, जि० ५६, पृ० ३७०।

से महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तो का यहा पालन नही होता। हमारी शासन-व्यवस्था भारतीय भी नही है। हमे एक ऐसी प्रणाली का विकास करना है जो 'प्रधानतः भारतीय' हो, पर जो ब्रिटिश शासन के उन सिद्धान्तो से प्रभावित और संशोधित हो जो व्यवहार मे हितकर और सही पाये गये है।[१] मालवीयजी के इस प्रस्ताव का गैर-सरकारी भारतीय सदस्यो ने समर्थन किया, पर सभी सरकारी और गैर-सरकारी यूरोपियन सदस्यो ने इसका विरोध किया, और प्रस्ताव २१ वोटो के मुकाबले में ३५ वोटो से नामजूर हो गया।[२]

मालवीयजी ने तीसरे प्रस्ताव द्वारा भारत सरकार से संस्तुति की कि इंडियन पुलिस सर्विस के लिए लन्दन के अतिरिक्त भारत मे भी प्रतियोगिता परीक्षाएं हो, उसमें प्रवेश करने का भारतीयो को भी अधिकार हो, पुलिस अफसरो का वेतन न बढाया जाय, और परीक्षार्थियो की आयु की शर्त १९-२१ से बढा कर २१-२३ वर्ष कर दी जाय।[३] भारतीय सदस्यो ने इस प्रस्ताव का भी डट कर समर्थन किया, पर सरकार इसे मजूर करने को तेयार नही हुई, और इसलिए कौसिल ने उसे रद्द कर दिया।

इस्लिंगटन कमेटी की संस्तुतियो के विरोध में रावबहादुर बी० एन० शर्मा और श्री श्रीनिवास शास्त्री ने भी कई प्रस्ताव कौंसिल मे पेश किये। बी० एन० शर्मा साहब का प्रस्ताव था कि इंडियन सिविल सर्विस और इंडियन पुलिस सर्विस में ब्रिटिश अफसरो के बाहुल्य के प्रस्तावित सिद्धान्त को स्वीकार न किया जाय। मालवीयजी ने इसका समर्थन किया।[४] कई दूसरे भारतीय सदस्यो ने भी इस प्रस्ताव के पक्ष में भाषण किये, पर सरकार ने प्रस्ताव को स्वीकार करने से इनकार कर दिया।

श्री श्रीनिवास शास्त्री का पहला प्रस्ताव था कि सिविल सर्विस की परीक्षा मे बैठने की आयु की सीमा को घटाया न जाय। सरकार के आश्वासन पर शास्त्री जी ने उसे वापस ले लिया। शास्त्रीजी का दूसरा प्रस्ताव था कि इंडियन सिविल सर्विस के वेतन, पेंशन आदि में कोई परिवर्तन न किया जाय। सरकार के विरोध के कारण यह प्रस्ताव १७ भारतीय सदस्यो के समर्थन के

१ वही, सन् १९१७, जि० ५६, पृ० ३६९-३७०।
२. वही, सन् १९१७, जि० ५६, पृ० ३८८-३८९।
३ वही, सन् १९१७, जि० ५६, पृ० ९१९-९२२।
४. वही, सन् १९१७, जि० ५६, पृ० ३०३-३०५।

विरुद्ध ३० सरकारी सदस्यो और गैरसरकारी यूरोपियनो के वोटो से नामजूर हो गया। उनका तीसरा प्रस्ताव था कि पृथक् मेडिकल सर्विस स्थापित की जाय, पर सरकार इसे भी स्वीकार करने को तैयार नही हुई, और १५ वोटो के विरुद्ध ३५ वोटो से यह भी नामजूर हो गया। शास्त्रीजी का चौथा प्रस्ताव था कि सिविल सर्विस की परीक्षा की विषय सूची में भारतीय इतिहास, फारसी, अरबी और संस्कृत विषय भी शामिल किये जायें। इस प्रस्ताव को सरकार ने स्वीकार कर लिया।

फरवरी सन् १९१८ मे श्री श्रीनिवास शास्त्री ने प्रस्ताव किया कि हिन्दुस्तान मे भरती की जानेवाली नौकरियो में हिन्दुस्तानी भरती किये जायें। उन्होने बताया कि २०० रुपये से अधिक की १४४० ऐसी नौकरियो मे ४०४ यूरोपियन और ६३३ यूरेशियन है और केवल ४०३ अर्थात् २८ प्रतिशत हिन्दुस्तानी है।[1] यह स्थिति, उन्होने कहा, उचित नही है। सरकार ने प्रस्ताव स्वीकार करने से इनकार कर दिया।

सिविल सर्विस से सम्बन्धित इन सभी प्रस्तावो पर मालवीयजी, श्री बी० एन० शर्मा और श्री श्रीनिवास शास्त्री के अतिरिक्त श्री सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, मिस्टर मुहम्मद अली जिना, डाक्टर तेज बहादुर सप्रू आदि ने काफी जोरदार भाषण किये। इन सब प्रस्तावो का सभी सम्प्रदायो और वर्गो के भारतीयो ने समर्थन किया, पर सरकार ने किसी की कोई बात नही सुनी। सरकार ने अपने व्यवहार से सिद्ध कर दिया कि वह अपनी नीति-रीति में परिवर्तन करने को तैयार नही है, और भारतीय सदस्यो की सर्वसम्मत राय को ठुकरा देने में भी उसे कोई हिचकिचाहट नही है। भारतीय सदस्यो ने भी अपने व्यवहार से सिद्ध कर दिया कि यूरोपियन और एंग्लो इंडियन को छोडकर भारत के किसी वर्ग या सम्प्रदाय को इस्लिगटन कमीशन की संस्तुतियाँ मजूर नही है, और वे भारतीय शासन व्यवस्था में यूरोपियनो का प्राधान्य सहन करने को तैयार नही है।

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का प्रस्ताव

माटेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट के प्रकाशित होने के कुछ दिन बाद श्री सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने केन्द्रीय असेम्बली में प्रस्ताव पेश किया कि "यह कौंसिल वाइसराय और भारत-मन्त्री को सुधार प्रस्तावो के लिए धन्यवाद देती है और उन्हें

1 वही, सन् १९१८, जि० ५६, पृ० ६११।

भारत मे उत्तरदायी सरकार की क्रमश' उपलब्धि की ओर यथार्थ प्रयत्न और ठोस कदम मानती है, (२) यह कौसिल गवर्नर-जनरल इन कौसिल से संस्तुति करती है कि इस कौंसिल के सब गैर-सरकारी सदस्यो की एक कमेटी सुधारो की रिपोर्ट पर विचार करने तथा भारत सरकार को अपनी संस्तुतियाँ करने को नियुक्त करे।

इस प्रस्ताव के पक्ष में बोलते हुए सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने कहा कि यह रिपोर्ट इस बात का अच्छा उदाहरण है कि 'हमारे शासको के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ है और इसलिए अब इस सरकार के प्रति हमारे व्यवहार और भाव में भी ऐसा ही परिवर्तन होना चाहिए।' यदि 'शान्ति, समझौता और सार्वजनिक सन्तोप की ओर हमारे प्रशासक आगे बढते है तो साधारण समझ और देशभक्ति की माँग है कि हमारी ओर से भी इसी प्रकार की चेष्टा हो।'

दिनशा इदुलजी वाचा तथा श्री निवास शास्त्री ने इसका समर्थन किया। जी० एस० खापर्डे, विट्ठलभाई पटेल, मालवीयजी और जिना साहब ने माटेग्यू के प्रति आभार प्रकट किया, पर रिपोर्ट की सिफारिशो की कमियो की ओर ध्यान दिलाते हुए माँग की कि उन्हें संशोधित किया जाय। अन्त में रिपोर्ट पर विचार करने के लिए सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की अध्यक्षता में गैरसरकारी सदस्यो की एक कमेटी गठित हुई। इस कमेटी में नरमदलीय नेताओ तथा सरकार के समर्थको का बहुमत था। इसलिए नरमदलीय कार्फ्रेंस में स्वीकृत सुझाव ही कमेटी की सिफारिशो का मूलाधार बन पाये। मालवीयजी और श्री बी० एम० शर्मा ने एक संयुक्त नोट में कमेटी के बहुसंख्यक सदस्यो की बहुत-सी सिफारिशो को स्वीकार करते हुए काग्रेस के प्रस्तावो के अनुरूप कुछ और सिफारशें की। जमीदारो के प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध मे मालवीयजी और श्री बी० एन० शर्मा मे भी काफी मतभेद था। कमेटी के जमीदार सदस्यों के आग्रह पर कमेटी के अधिकाश सदस्यो ने प्रतिनिधि सभाओ में जमीदारो को अधिक स्थान देने की सिफारिश की। श्री बी० एन० शर्मा ने भी कमेटी की इस सिफारिश की पुष्टि की, पर मालवीयजी ने एक नोट में इस सिफारिश का विरोध किया।

युद्ध के लिए अनुदान

सन् १९१७ में सरकार ने निश्चय किया कि युद्ध के लिए भारत एक भारी धनराशि ब्रिटेन को दे। भारत-मन्त्री चाहते थे कि भारत १० करोड पाउण्ड (डेढ अरब रुपये) युद्ध-कोष में दे। भारत सरकार इतना अधिक धन देना भारत की शक्ति के बाहर समझती थी, पर अन्त मे वह राजी हो गयी। केन्द्रीय विधान कौंसिल

में बहुत से निर्वाचित सदस्यो ने इस अनुदान के प्रस्ताव का समर्थन किया। मालवीयजी ने कहा : "यह बोझ अत्यधिक है। इसे चुकाने के लिए ३० वर्ष तक ९ करोड रुपये वार्षिक के नये कर लगाने होंगे। ब्रिटेन की तो बात ही क्या है, यदि हम स्वशासित डोमीनियनो से आधे भी धनी और समृद्ध होते, तो हमने इस बोझ को खुशी खुशी वहन कर लिया होता, पर दुर्भाग्य से भारत बहुत गरीब है उसके साधन बहुत सीमित हैं। उसकी अनिवार्य घरेलू आवश्यकताएँ बडी और बहुत जरूरी हैं।...बजट का यह प्रस्ताव हमें ऐसी स्थिति का मुकाबला करने पर मजबूर करेगा, जिसमें एक पीढी के जीवन-काल तक तो बहुत आवश्यक किस्म के आन्तरिक सुधार भी बाधाग्रस्त हो जायेंगे।"[1] पर अन्त में उन्होने अपना प्रस्ताव वापस ले लिया।

भारत सरकार ने नब्बे करोड़ रुपये का भुगतान कर्ज लेकर किया, तथा बाकी साठ करोड रुपये भारतीय जनता से वसूल करने की कोशिश की। सिद्धान्तत. चन्दा स्वैच्छिक था, पर वास्तव में इसे जमा करने में सरकारी अफसरो ने काफी सख्ती से काम लिया।

सन् १९१८ में सरकारी प्रवक्ता ने यह स्वीकार करते हुए कि युद्ध के कारण जो विशेष पेंशनें भारतीय सेना से सम्बन्धित ब्रिटिश सैनिको को देनी पडेंगी, उनके लिए भारतीय राजस्व दायी नही है, उन्होने प्रस्ताव किया कि भारत इन पेशनो की अदायगी का भार वहन करे। उन्होने यह भी कहा कि कौंसिलो के गैर-सरकारी सदस्य ही अपने वोट द्वारा इस प्रस्ताव पर फैसला लेंगे। पर जब मालवीयजी ने यह सशोधन पेश किया कि इसकी रकम गत वर्ष के युद्ध अनुदान से दी जायगी, तब अध्यक्ष ने कहा कि इस प्रकार का सशोधन प्रत्यक्ष इनकार समझा जायगा। मालवीयजी ने सरकार की प्रतिक्रिया की उपेक्षा करते हुए संशोधन पर तगडी तकरीर की। उन्होने कहा कि जो सहायता हम दे सकते हैं, वह हमारे साधनो से सीमित है, और इस प्रस्ताव पर कोई निर्णय लेने के पहले हमें भारतीय जनता के प्रति अपने कर्तव्य को भी ध्यान में रखना होगा,[2] यह भी देखना होगा कि जनता उसे कहाँ तक वहन कर सकती है। जनता की गरीबी और आवश्यकताएँ, उन्होने कहा, जनता के प्रतिनिधियो को १९ करोड रुपये का

---

१ वही, मार्च, १९१७, जि० ५५, पृ० ५५७।

२. आनरेबिल पण्डित मदन मोहन मालवीय : लाइफ और स्पीचेज, पृ० ७०८।

नया बोझ जनता पर लादने की इजाजत नही देती।[1] उन्होंने कहा कि, जैसा गाधीजी ने वाइसराय को लिखा है अधिक धन देना हमारी शक्ति के बाहर है।[2] उन्होने यह भी कहा कि सरकार का कर्तव्य है कि वह १५० करोड रुपये के भार को चुकाने की भी समुचित व्यवस्था करे, ताकि वह बोझ हमारी प्रगति मे बाधक न हो। गरीबो को सताये बगैर युद्ध-लाभ-कर द्वारा ही युद्ध के कर्जे का भुगतान हो सकता है। यही 'न्याय सगत' भी है। यदि यह नही किया गया तो इस कर्जे को चुकाने के लिए तीस वर्ष तक जनता पर भारी करारोपण करना होगा और "यह भारी विपत्ति होगी।"[3] मालवीयजी के इस संशोधन का समर्थन करने को कौसिल के सदस्य तैयार नही हुए, तब मालवीयजी ने उसे वापस ले लिया।

मालवीयजी का नेतृत्व

भारतीय विधान कौसिल मे मालवीयजी का काम निःसन्देह बहुत प्रशसनीय था। यद्यपि बहुत से ब्रिटिश अफसरो की दृष्टि मे मालवीयजी 'घास में छिपे सांप' थे, पर बहुत से दूसरे अफसर उनसे मतभेद रखते हुए भी उनके 'धवल चरित्र और राजनीतिक ईमानदारी' पर विश्वास करते थे। वे कहते थे कि मालवीयजी को न डराया जा सकता है, और न खरीदा जा सकता है। लार्ड हार्डिग से उनके सम्बन्ध बहुत ही मधुर थे। वे लार्ड रिपन के बाद हार्डिग को ही भारत का सबसे अच्छा वाइसराय मानते थे। लार्ड हार्डिग का भी मालवीयजी की सचाई पर पूरा विश्वास था। लार्ड चेम्सफोर्ड से उनके सम्बन्ध अच्छे नही थे। सन् १९१९ मे तो इन सम्बन्धो मे उस समय अधिक कडवाहट पैदा हो गयी जब मालवीयजी ने चेम्सफोर्ड को पंजाब काड का मुख्य उत्तरदायी घोषित करते हुए उन्हे वापस बुलाने की माग की। भारतीय हितो की रक्षा और पुष्टि मे मालवीयजी के क्षमतापूर्ण योगदान ने उनकी कीर्ति को पहले से कही अधिक व्यापक बना दिया। सन् १९१२ मे जब उन्होने श्री भूपेन्द्र नाथ बसु द्वारा प्रस्तुत 'विशेष विवाह विधेयक' का विरोध किया, तब देश के बहुत से प्रगतिशील व्यक्तियो को बुरा लगा। पर सन् १९१० मे ही 'प्रेस बिल' के निर्भीक विरोध द्वारा मालवीयजी ने देश के प्रगतिशील तत्वो को मोहित कर लिया था, और दो एक बातो को छोड कर दस वर्ष के अन्दर उन्होने कौंसिल में कोई ऐसी बात नही कही, जो देश के प्रगतिशील व्यक्तियो को ठीक न जँची हो।

---

१ वही, पृ० ७१२। २ वही, पृ० ७१२।
३. वही, पृ० ७१४।

फरवरी सन् १९१५ मे गोखले साहब का निधन हो गया। उसके बाद तो मालवीयजी कौंसिल में देश के प्रमुख प्रवक्ता बन गये। नवम्बर सन् १९१७ में भारत-मन्त्री माटेग्यू ने अपनी 'इंडियन डायरी' मे लिखा 'पंडित मदन मोहन मालवीय कौंसिल के सबसे अधिक क्रियाशील राजनीतिज्ञ हैं।' सन् १९१९ में रौलेट बिल तथा इंडेमनिटी बिल की विद्वत्तापूर्ण कडी समीक्षा ने तो मालवीयजी की प्रतिष्ठा को चार चाद लगा दिये, उनकी धवल कीर्ति को चमका दिया और उसे देश के कोने-कोने में फैला दिया।

पुराने नेताओ मे सर्वश्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, जी० एस० खापर्डे, विट्ठल भाई पटेल, भूपेन्द्रनाथ वसु तथा दिनशा इदुल जी वाचा का योगदान भी बहुत ही महत्त्वपूर्ण था। इस कौंसिल के जिन दूसरे सदस्यो ने आगे चल कर भारत के राजनीतिक मंच पर बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त किया और इस कौंसिल मे भी अच्छा काम किया, उनमें मिस्टर मुहम्मद अली जिना, मिस्टर मजहरुल हक, श्रीनिवास शास्त्री, डाक्टर तेज बहादुर सप्रू, श्री सच्चिदानन्द सिन्हा प्रमुख थे। जमीदार वर्ग के प्रतिनिधि रावबहादुर बी० एन० शर्मा, महाराजा साहब महमूदाबाद, महाराज मनेन्द्र चन्द नन्दी, तथा राजा रामपाल सिंह का योगदान भी सराहनीय था।

११. राजनीतिक जागृति, दमन और सुधार

विश्वयुद्ध

सन् १९१४ में यूरोप मे युद्ध प्रारम्भ हुआ, जो आगे चल कर विश्वयुद्ध के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस युद्ध मे जर्मनी, आस्ट्रिया-हगरी, इटली तथा तुर्की एक पक्ष में थे, ब्रिटेन, फ्रास, रूस और जापान दूसरे पक्ष में थे। सयुक्त राज्य अमरीका भी, जिसकी सहानुभूति ब्रिटेन के साथ थी, आगे चल कर जर्मनी के विरुद्ध युद्ध में शामिल हो गया।

यद्यपि यह युद्ध वस्तुत' साम्राज्यशाही युद्ध था, अपने साम्राज्यशाही आधिपत्य की रक्षा और वृद्धि ही दोनो पक्षो का मुख्य लक्ष्य था, फिर भी ससार की प्रगतिशील शक्तियो को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए ब्रिटेन ने घोषित किया कि संसार में लोकतन्त्र को प्रतिष्ठित करना ही मित्र-राष्ट्रो का मुख्य लक्ष्य है। सयुक्त राज्य अमरीका ने इस युद्ध मे सम्मिलित होते समय सब राष्ट्रो के आत्मनिर्णय के अधिकार की घोषणा की। इन घोषणाओ ने तथा विश्वयुद्ध की गतिविधि ने परतन्त्र देशो की जनता मे आत्मनिर्णय की भावना तथा स्वतन्त्रता की माँग को परिपुष्ट किया।

इस विश्वयुद्ध ने भारत की राजनीति को भी एक नयी गति प्रदान की। लाखो व्यक्ति, जो अब तक राजनीतिक प्रक्रियाओ के प्रति उपेक्षित रहते थे, उनमें गहरी दिलचस्पी लेने लगे। निम्न मध्य श्रेणी के नगर-निवासियो के साथ-साथ ग्रामीण जनता में भी राजनीतिक स्फूर्ति पैदा हुई। मुस्लिम जनता की प्रतिक्रिया हिन्दू जनता की प्रतिक्रियाओ से अधिक तीव्र थी।

मुसलमानो की प्रतिक्रया

हिन्दुस्तान के मुसलमानो की सहानुभूति तुर्की के साथ थी। वे तुर्की साम्राज्य की अखण्डता को मुस्लिम जगत् के धार्मिक हितो की रक्षा के लिए, खिलाफत के अस्तित्व के लिए आवश्यक समझते थे। भारतीय सेना द्वारा उसका विघटन उन्हे असह्य था। जब कि ब्रिटिश सरकार के पुराने समर्थक जमीदार और नवाब क्षुब्ध थे मध्य-वर्गीय मुसलमान तथा मौलवी लोग और उनकी समर्थक जनता रुष्ट थी।

इस स्थिति में मौलाना मुहम्मद अली ने मुसलमानो को सलाह दी कि मुसलमान हिन्दुस्तान में कोई झगडा न खडा करें, अमन और शान्ति बनाये रखने के लिए सरकार को अपनी सेवा अर्पित करें, तथा सरकार न अरब पर चढाई करे और न मुसलमानो के उन धार्मिक क्षेत्रो पर आक्रमण करे जो मुसलमान शासको के अधीन है। पर ब्रिटिश सरकार ने इस सलाह की उपेक्षा करते हुए उन्हें और उनके बडे भाई मौलाना शौकत अली तथा मौलाना आजाद को नजरबन्द कर दिया, और आगे चल कर सीरिया, फिलस्तीन, मेसोपोटामिया पर चढाई कर दी, और वहाँ भारतीय सेना भेज दी। इसने मुसलमानो के क्रोध को अधिक प्रज्वलित कर दिया।

देवबन्द के शेख-उल-हिन्द मौलाना महमूद-उल-हसन अरब चले गये, अपने शागिर्द मौलाना उबेदुल्ला सिन्धी को काबुल भेजा, और उन्होने स्वय तुर्की के सैनिक शासक गालिब पाशा से जहाद का परवाना प्राप्त किया। पर शरीफ मक्का ने मौलाना महमूद-उल-हसन और उनके शिष्य मौलाना हुसैन अहमद मदनी को अंग्रेजो के हवाले कर दिया, और अमीर अफगानिस्तान ने मौलाना उबेदुल्ला साहब को उनके ब्रिटेन-विरोधी षड्यन्त्रो में उन्हे मदद देने से इनकार कर दिया।

क्रान्तिकारी विद्रोह

बहुत से पुराने हिन्दू क्रान्तिकारियो ने भी इस अवसर पर अपने षड्यत्रो को अधिक गतिशील बनाने की कोशिश की। उन्होने बर्लिन में इडियन नैशनल पार्टी गठित की। सर्व श्री पिल्ले, हरदयाल, तारकनाथ दास, के० सी० चटर्जी, हरेभाव लाल गुप्त इसके प्रमुख सदस्य थे। मुसलमान क्रान्तिकारी बरकतउल्ला भी उसके एक सम्मानित सदस्य थे। ये लोग जर्मनी की सहायता से बगाल और पंजाब में क्रान्तिकारी विद्रोह को उत्तेजित कर भारत में ब्रिटिश राज्य खत्म करना चाहते थे। जर्मनी ने इन्हें अस्त्र शस्त्र देने का भी वचन दे दिया था। पर बहुत प्रयत्न करने पर भी जर्मनी के हथियार बगाल की खाडी में नही पहुँच पाये। बगाल के क्रान्तिकारियो का प्रयास विफल रहा।

काबुल में एक अस्थायी हिन्द सरकार गठित की गयी, जिसके अध्यक्ष राजा महेन्द्र प्रताप और प्रधान-मन्त्री बरकतुल्ला बनाये गये। मौलाना उबेदुल्ला सिन्धी गृह-मन्त्री नियुक्त हुए। पर पजाब सरकार को इस षड्यन्त्र का सुराग मिल गया, और विद्रोह की योजना विफल हो गयी। लाला हरदयाल द्वारा

सघटित पार्टी ने युद्ध के जमाने मे पंजाब मे अपने विद्रोह को तीव्र कर दिया। कनाडा और सयुक्त राज्य अमेरिका से लौटे कुछ सिक्खो ने भी विद्रोह में भाग लिया, पर एक वर्ष के अन्दर पंजाब सरकार ने वहुत से क्रान्तिकारियो को पकड कर स्थिति अपने कावू मे कर ली।

श्रीमती वेसेंट और तिलक

इधर सन् १९१४ के प्रारम्भ मे श्रीमती एनी वेसेंट कांग्रेस में शामिल हुई, जून सन् १९१४ के प्रारम्भ मे लोकमान्य तिलक माण्डले जेल से छः वर्ष की सजा काट कर देश वापस आये, और विश्वयुद्ध के शुरू होने के कुछ महीने वाद गाधीजी दक्षिण अफ्रीका से वापस लौटे। ये तीनों युद्ध में ब्रिटिश सरकार की सहायता करने के पक्ष मे थे। पर जहाँ गाधीजी विना किसी शर्त या माँग के सहायता देना ही उचित समझते थे, वहाँ लोकमान्य तिलक और श्रीमती एनी वेसेंट का कहना था कि भारतीय जनता के लिए युद्ध में पूरी तौर पर सहायता देना तभी सम्भव है, जव उसे यह विश्वास हो कि उसके वलिदान के स्वरूप उसे भी अपने देश में अपना राज्य स्थापित करने का सौभाग्य प्राप्त होगा।[1] लोकमान्य तिलक ने तो स्पष्ट शब्दो मे कहा कि जव तक नौकरशाही जनता के अधिकार को स्वीकार नही करती, भारतीय सेना-नायको को फौज मे ऊँचा से ऊँचा पद देने को तैयार नही होती, तव तक वे और उनके साथी फौज मे भारतीयो को भरती करने मे सरकार का साथ नही दे सकते।[2]

श्रीमती वेसेंट चाहती थी कि राजनीतिक कार्य के साथ-साथ उनके धार्मिक, सामाजिक और शैक्षिक कार्यक्रम को भी कांग्रेस स्वीकार कर ले। पर जव फीरोज शाह मेहता और उनके साथी उसके लिए तैयार नही हुए, तव श्रीमती वेसेंट ने कांग्रेस द्वारा केवल राजनीतिक सुधारो के लिए प्रयत्न करने का निश्चय किया। वे लोकमान्य तिलक से मिली, और जव उन्हें विश्वास हो गया कि तिलक महाराज ब्रिटिश सम्राट् और ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति निष्ठा रखते हुए सवैधानिक ढग से स्वशासन के लिए प्रयत्न करने को तैयार है, तव उन्होने गरम दल और नरम दल में समझौता कराके राजनीतिक नेताओ में पुन मेल कराने का प्रयत्न किया। अन्ततोगत्वा दिसम्वर सन् १९१५ मे कांग्रेस ने अपने विधान मे ऐसा सशोधन स्वीकार कर लिया जिससे लोकमान्य तिलक

---

१ एनी वेसेंट, बिल्डर आफ न्यू इडिया।

२ प्रधान और भागवत लोकमान्य तिलक, पृ० ३०१।

और उनके साथी अगले वर्ष कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में भाग ले सकें। इस कार्य में श्रीमती बेसेंट को मालवीय जी का समर्थन प्राप्त था।

होमरूल आन्दोलन

सन् १९१४ मे ही श्रीमती एनी बेसेंट और लोकमान्य तिलक ने स्वशासन की मांग को पुष्ट करने तथा उसके लिए जनमत को सुदृढ करने के लिए होमरूल लीग कायम करने का निश्चय किया। चूँकि लोकमान्य तिलक के बहुत से साथी श्रीमती बेसेंट पर पूरी तरह से विश्वास करने को तैयार नही थे, और श्रीमती बेसेंट के साथी तिलक महाराज के साथ काम करने से हिचकते थे, इसलिए दोनो ने तय किया कि दो होमरूल लीगें कायम की जायें।

अप्रैल सन् १९१६ में बेलगांव मे बम्बई प्रान्तीय कान्फ्रेन्स ने होमरूल लीग स्थापित करने का निर्णय किया। कुछ महीने बाद सितम्बर में श्रीमती बेसेंट ने अपनी होमरूल लीग स्थापित की। लोकमान्य तिलक की होमरूल लीग का कार्यक्षेत्र बम्बई और मध्य प्रान्त तक सीमित था, जब कि श्रीमती एनी बेसेंट की होमरूल लीग का काम बाकी सब प्रान्तो मे फैला हुआ था, और उनकी सस्था 'आल इडिया होमरूल लीग' के नाम से विख्यात थी। दोनो ने एक दूसरे की प्रशसा करते हुए बहुत ही सौहार्द के साथ स्वशासन के लिए जनता में कार्य किया। दिसम्बर सन् १९१६ में कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के बाद कांग्रेस के पडाल मे ही दोनो होमरूल लीगो का सयुक्त अधिवेशन हुआ।

श्रीमती एनी बेसेंट होमरूल लीग के द्वारा स्वशासन के साथ स्वदेशी, राष्ट्रीय शिक्षा आदि का भी प्रचार करती थी। पर लोकमान्य तिलक ने स्वशासन, होमरूल, तक ही अपनी होमरूल लीग का काम सीमित रखा। उनका कहना था कि "लीग स्वराज्य की प्राप्ति के लिए स्थापित की गयी है और उसके सारे प्रयत्न उसीके लिए ही होने चाहिए। इसमें और कोई चीज शामिल नही होगी।"[1]

श्रीमती एनी बेसेंट और लोकमान्य तिलक, दोनो ही सम्राट् और शासन के मौलिक भेद की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए, सम्राट् की सत्ता को स्वीकार करते हुए शासन के हस्तान्तरण पर जोर देते थे। उन दोनो का कहना था कि जिस तरह ब्रिटेन मे सम्राट् ने शासन-सम्बन्धी अपने अधिकार ब्रिटेन की जनता और उसके प्रतिनिधियो को सौप दिये है, उसी तरह से भारत मे उन

१. प्रधान और भागवत लोकमान्य तिलक, पृ० २६६।

अधिकारो को भारतीय जनता और उसके प्रतिनिधियो को सौंप देना चाहिए। वे स्वतन्त्रता को मानव का जन्म-सिद्ध अधिकार मानते थे, और कहते थे कि स्वशासन बिना जीवन नीरस और घृणास्पद है। श्रीमती एनी बेसेंट का कहना था कि ससार की १।५ जनता को दमनकारी कानूनो द्वारा बेचैनी की हालत में रख कर संसार मे स्थायी शान्ति कायम नही रखी जा सकती।[1]

दृष्टिकोण में कुछ अन्तर होते हुए भी काग्रेस के सभी पुराने नेता चाहते थे कि जनजागृति को ध्यान में रखते हुए नये सवैधानिक सुधारो के सम्बन्ध में सरकार घोपणा करे, और अपने देश के प्रबन्ध में भरपूर योगदान करने के समुचित अवसर भारतीयो को प्रदान किये जायें। वे यह भी चाहते थे कि भारतीय सैनिको का पद और गौरव अंग्रेज सैनिको के समान हो, भारतीय नवयुवको के लिए सैनिक शिक्षा का समुचित प्रबन्ध हो, उन्हें सम्राट् की सेवा तथा अपने देश की रक्षा के समान अधिकार और अवसर प्राप्त हो।

दिसम्बर सन् १९१५ में श्रीमती एनी बेसेंट ने श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की अध्यक्षता मे काग्रेस के पुराने नेताओ की एक सभा आयोजित की, और उनसे अनुरोध किया कि वे प्रस्तावित होम रूल लीग मे शामिल होकर स्वशासन के लिए आन्दोलन करे। उन सबने कहा कि किसी दूसरी सस्था द्वारा काम करने के बजाय वे काग्रेस द्वारा ही स्वशासन के लिए प्रयत्न करेंगे।

काग्रेस-लीग सहयोग

दिसम्बर सन् १९१५ मे काग्रेस ने अपने बम्बई अधिवेशन में निश्चय किया कि अन्य सस्थाओ के सहयोग से राजनीतिक सुधारो की रूप-रेखा तैयार की जाय। इसी अवसर पर मौलाना मजहरुल हक की अध्यक्षता मे बम्बई में ही मुस्लिम लीग का अधिवेशन हुआ। मजहरुल हक साहब ने बहुत ही तगडी और जोशीली तकरीर की। पर कुछ मुसलमानो द्वारा उत्पात खडा कर देने पर अधिवेशन बन्द कर देना पडा। मिस्टर मुहम्मद अली जिना के प्रयास से ताजमहल होटल में मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियो की बैठक हुई। वहाँ निश्चय किया गया कि काग्रेस से मिल कर राजनीतिक सुधारो की योजना तैयार की जाय। अप्रैल और नवम्बर सन् १९१६ में कांग्रेस और मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियो ने सर्वसम्मति से कुछ बातें तय की।

---

१. बेसेंट, बिल्डर आफ न्यू इडिया।

विधायकों का मेमोरंडम

इधर अक्तूबर सन् १९१६ में केन्द्रीय विधान कौसिल के उन्नीस सदस्यों ने, जिनमें मालवीयजी भी थे, एक पत्रक (मेमोरण्डम) तैयार करके वाइसराय चैम्सफोर्ड के पास भेजा। इसमें माँग की गयी कि (१) शासन में जनता का भरपूर हाथ हो, और इसके निमित्त केन्द्रीय तथा प्रान्तीय कार्यपरिषदों के कम से कम आधे सदस्य भारतीय हों, जिनका चयन जनता द्वारा निर्वाचित विधायकों की राय से हो, और उनके अंग्रेज सदस्यों का चयन भी ब्रिटेन के अनुभवी राजनीतिज्ञों में से किया जाय, अर्थात् इंडियन सिविल सर्विस के आदमी कार्यपरिषद् के सदस्य न बनाये जायें, (२) प्रत्येक विधान कौसिल में जनता द्वारा चुने प्रतिनिधियों का बहुमत हो, (३) विस्तृत मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली द्वारा विधान कौसिल के सदस्यों का चुनाव हो, (४) विधान सभाओं के आधार और अधिकार विस्तृत किये जायें, (५) आर्थिक मामलों में हिन्दुस्तान पूर्ण स्वाधीन हो, (६) प्रान्तीय शासन को स्वायत्तता प्रदान की जाय, (७) प्रत्येक प्रान्त में स्थानीय स्वशासन प्रतिष्ठित किया जाय, तथा (८) भारत-मन्त्री की कौसिल तोड दी जाय। इन सब के साथ इस पत्रक में यह भी माँग की गयी कि यूरोपियनों के समान ही हिन्दुस्तानियों को हथियार रखने, टेरिटोरियल सेना में भरती होने, तथा सैनिक कमीशन पाने के अधिकार प्राप्त हों।[1]

सरकारी क्षेत्रों में विधायकों के इस प्रयास की बहुत ही बडी आलोचना हुई। लार्ड चेम्सफोर्ड ने विधायकों के प्रस्तावों को 'भयंकर परिवर्तन' की माँग बताते हुए उसकी निन्दा की।[2] भूतपूर्व गवर्नर लार्ड सिडेनहम ने उन्हें 'क्रान्तिकारी प्रस्ताव' बताते हुए कहा कि "जर्मनी का कुचक्र काम कर रहा है, और भारत को संकट से बचाने के लिए" दमन नीति का अनुसरण आवश्यक है। लार्ड पैटलैंड, सर माइकल ओडायर आदि बहुत से अफसरों की भी ऐसी ही धारणा थी।[3]

कांग्रेस-लीग स्कीम

दिसम्बर सन् १९१६ के अन्तिम सप्ताह में लखनऊ में कांग्रेस और मुस्लिम लीग के अधिवेशन हुए। गरम दल के नेता लोकमान्य तिलक भी अपने बहुत

---

१. पट्टाभि सीतारमैया हिस्ट्री आफ दी इंडियन नेशनल कांग्रेस, जिल्द १, पृ० ६१९-६२२।

२. वही, जिल्द १, पृ० १३२। ३. वही, जिल्द १, पृ० १३२।

भी यही राय थी। पर मुस्लिम लीग के अधिकाश सदस्य इस बात को मानने को तैयार नही थे। अन्त में काग्रेस और मुस्लिम लीग की विषय निर्धारिणी समितियो की संयुक्त बैठक में जिना साहब ने काग्रेस के सदस्यों से इस समय पृथक् निर्वाचन को मान लेने की अपील की, और कहा 'जब हम साथ साथ काम करेगे तब विभिन्न सम्प्रदायो में पारस्परिक विश्वास पुन प्रतिष्ठित होगा, और तब हम संयुक्त निर्वाचन स्थापित कर सकेंगे, और संपूर्ण स्वशासन का मार्ग प्रशस्त कर सकेंगे।' उन्होने यह भी आश्वासन दिया कि वे अपने मुसलमान भाइयो को संयुक्त निर्वाचन प्रथा मान लेने को राजी करने का प्रयत्न करेंगे। इस वायदे पर काग्रेसी नेता पृथक् निर्वाचन को उस समय मानने को तैयार हो गये।[1]

अन्य काग्रेसी नेताओ की तरह मालवीयजी भी पृथक् निर्वाचन प्रणाली के विरोधी थे। उन्होने इस प्रश्न पर काग्रेस-लीग की संयुक्त बैठक में वादविवाद भी किया, पर जब लोकमान्य तिलक आदि राजी हो गये, तब मालवीयजी ने भी, राष्ट्र के व्यापक हितो को ध्यान में रखते हुए इस आशा से कि आगे चल कर विचार-विनमय द्वारा यह दोष दूर किया जा सकेगा, चुप रहना ही उचित समझा। काग्रेस द्वारा इस योजना के पास हो जाने पर मालवीयजी ने सन् १९१७ में सारे देश में घूम कर इसका प्रचार किया।

मालवीयजी का प्रचार

काग्रेस-लीग योजना को जनता के सामने प्रस्तुत करते हुए उन्होने कहा कि हम ब्रिटेन से अपना सम्बन्ध तोडना नही चाहते, पर इसका बना रहना "बहुत हद तक हमारे प्रति अग्रेजो के व्यवहार पर निर्भर है।"[2]

उन्होने यह भी कहा कि काग्रेस लीग योजना द्वारा "सरकार के ढाँचे में कोई परिवर्तन नही होनेवाला है। पुरानी संस्थाएँ और पुराने विभाग बने रहेंगे, पर सरकार का लक्षण अवश्य बदल जायगा, वह किसी अश मे "प्रतिनिधि सरकार" अवश्य बन जायेगी,[3] प्रशासन का सचालन भारतीयो और

१. जमनादास द्वारकादास पोलिटिकल मेमो०, पृ० १३३।

२ आनरेबिल पडित मदनमोहन मालवीय लाइफ एण्ड स्पीचेज, पृ० ५७२ (युक्त प्रान्त की काग्रेस के विशेप अधिवेशन में किया गया भाषण, १० अगस्त, १९१७)

३. वही, पृ० ५७०।

अग्रेजो की संयुक्त समिति के हाथ में होगा. और उस पर जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियो का नियंत्रण होगा। इस परिवर्तन से अनर्थ की आशंका करना निरर्थक है। योजना मे अनर्थ की सम्भावना से बचने के उपाय है, इन उपायो को और दृढ किया जा सकता है।[1]

स्वशासन, उन्होने कहा, मानव समाज का स्वाभाविक अधिकार है। उसकी ओर प्रगति स्वाभाविक है। कोई देश किसी दूसरे देश को सदा अपने अधीन नही रख सकता। पराधिपत्य नि'सन्देह अस्वाभाविक है। उन्होने कहा कि कोई भी जाति इसका गर्व नही कर सकती कि वह सदा स्वतत्र रही है, और यह किसी जाति के लिए शोभा की बात नही है कि वह अपने पूर्ण वैभव के दिनो में दूसरी जाति के मार्ग में रोडे अटकाये। ब्रिटिश सरकार को शीघ्र ही घोषणा करनी चाहिए कि "भारत को स्वशासन प्रदान करना ब्रिटिश नीति का लक्ष्य और उद्देश्य है"।[2]

योजना के सेना सम्बन्धी सुझावो की पुष्टि करते हुए उन्होने कहा कि भारतीयो को "निरस्त्र रखने और सेना के ऊँचे पदो पर भारतीयो को नियुक्त न करने को नीति कठोर ही नही, बल्कि अन्यायपूर्ण है।"[3] भारतीय जनता को सैनिक-शिक्षा से वचित रख कर उसे अयोग्य बनाये रखना "अकल्याणकर अदूरदर्शिता" ही है। उन्होने कहा : "सैनिक शक्ति तथा उसको प्राप्त करने की योग्यता किसी जाति विशेष की बपौती नही है"।[4] जिस किसी पद के लिए भारतवासी योग्यता दिखावें वह उन्हें दिया जाय, यही उनकी माँग है।[5]

उन्होने बहुत से उदाहरण देते हुए यह सिद्ध किया कि सरकार जनता के प्रतिनिधियो के प्रस्तावो की किस प्रकार उपेक्षा करती है। इसलिए विधान कौंसिलो द्वारा पारित प्रस्तावो को कार्यान्वित करने के लिए प्रशासन को बाध्य करना नितान्त आवश्यक है।[6]

इसी तरह उन्होने सरकार की आर्थिक गतिविधि और वित्त नीति की आलोचना करते हुए उन पर विधान कौसिल के नियंत्रण को अनिवार्य बताया।

---

१. वही, पृ० ५७०। २. वही, पृ० ५६९।

३. मद्रास में भाषण, ३१ जनवरी सन् १९१७।

४. वही। ५. वही।

६. वही।

उन्होने कहा कि वर्तमान प्रथा के अनुसार सरकार ब्योरेवार वर्णन के बगैर, बिना उचित निरीक्षण करवाये भिन्न-भिन्न खातो में स्वेच्छानुसार व्यय बढा सकती है। हम ऐसी ही बातो को उठा देना चाहते है।[1]

इसी तरह योजना की विभिन्न माँगो की पुष्टि करते हुए मालवीयजी ने देश के सर्वोत्कृष्ट नेता दादा भाई नौरोजी के आदेशो की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया, और उन्हें अच्छी तौर से अपने को संगठित कर आन्दोलन करने की सलाह दी। मालवीयजी ने बताया कि हमारे नेता दादा भाई का हमें आदेश है—"आन्दोलन करो, आन्दोलन करो, देश के कोने-कोने में आन्दोलन करो।" यदि हम वास्तव में अंग्रेजों से न्याय कराना चाहते है, तो त्याग और उत्साह के साथ काम करना हमारा कर्त्तव्य है।[2] मालवीयजी ने कहा कि हमारे लिए खेद की बात होगी, अगर हम अपने पूज्य नेता की बात का अनुसरण न करें। हमें कलक लगेगा यदि हम उनकी बात कार्यरूप में परिणत न करें।[3]

मालवीयजी की धारणा थी कि अंग्रेज आसानी से बात माननेवाले नही है, उन्हें राजी करने के लिए यह सिद्ध करना होगा कि राष्ट्रीय माँग को देश की जनता का समर्थन प्राप्त है, और जनता उसकी प्राप्ति के लिए कटिबद्ध है। इसके लिए जनता का संघटन और आन्दोलन आवश्यक है। जिले-जिले में काग्रेस कमेटियाँ स्थापित करना, गाँव-गाँव में स्वराज्य का ज्ञान पहुँचाना, और घर-घर तथा झोपडे-झोपडे में इसका संदेश फैलाना हमारा कर्तव्य है। यह उचित ही नही, वरन् आवश्यक है कि देश के कोने-कोने से, घर-घर से और प्रत्येक मनुष्य के मुँह से अपने अधिकार के लिए आवाज निकले। हमें शिक्षित और अपढ भाइयो का सम्मिलित और संगठित आन्दोलन करना चाहिए।[4]

मालवीयजी चाहते थे कि व्यक्तिगत भेद को त्याग कर, नरम दल और गरम दल, तथा हिन्दू और मुसलमान का भेद भुला कर एक साथ मिल कर स्वराज्य के लिए प्रयत्न किया जाय। उनका अनुरोध था कि हिन्दू-मुसलमानो को अपने-अपने धार्मिक मतभेदो को दूर कर देना चाहिए। हिन्दू और मुसलमान दोनो को ईश्वर को प्रसन्न रखने के लिए उसकी सन्तान के साथ प्रेम करना

---

१. मद्रास में भाषण, ३१ जनवरी, १९१७।

२. प्रयाग मे भाषण, ८ अगस्त, १९१७। ३. वही।

४. बम्बई में भाषण, १० जुलाई, १९१७।

चाहिए ।[१] हिन्दूओ और मुसलमान दोनो से उनकी विनती थी कि वे एक दूसरे के धार्मिक विश्वासो का आदर करें, एक दूसरे के हृदयो को आघात पहुँचाने से रुकें ।[२] वे चाहते थे कि नवयुवक बडो की आज्ञा न टालें, वल्कि वृद्धों के अनुभव और योग्यता से लाभ उठावें, तथा वृद्ध नवयुवको को बच्चा समझ कर उन्हें त्याग न दें, उनके उत्साह को फीका न करें, वरन् उनको मार्ग दिखायें ।[३]

१० अगस्त सन् १९१७ को लखनऊ में पंडित मोतीलाल की अध्यक्षता में सयुक्त प्रान्त की प्रान्तीय राजनीतिक कान्फ्रेन्स का विशेष अधिवेशन सम्पन्न हुआ । इस अधिवेशन में मालवीयजी ने एक बहुत ही प्रभावशाली भाषण में राष्ट्र की राजनीतिक माँगो को पुष्ट करते हुए कार्यकर्ताओ से अपील की कि वे उनके लिए आन्दोलन करें ।[४] उन्होने कहा "हमारा निस्तार मुख्यतया हमारे अपने ऊपर निर्भर है ।[५]" हमारा कर्तव्य है कि हम अपने को सगठित करें विभिन्न स्थानो में स्वराज्य लीग या होमरूल लीग स्थापित करें, "स्वशासन या स्वराज्य के मानवीय धर्म" का, "महान् मन्त्र" का घर-घर प्रचार करें, प्रत्येक भारतीय को उसका तात्पर्य समझायें, और उन्हे अपनी शक्ति भर उसके लिए काम करने को प्रोत्साहित करें ।[६]

दमन

विश्वयुद्ध के जमाने में सरकार ने सुधार और दमन की दुधारी नीति का अवलम्बन किया । ब्रिटिश राजनीतिज्ञ अच्छे तौर से जानते थे कि युद्ध के कारण भारतीय जनता में भी काफी व्यापक रूप से आत्मनिर्णय और स्वशासन की भावना जोर पकडेगी, और राजनीतिक सुधारो द्वारा ही जनता की भावनाओ और आकाक्षाओ को किसी अश में शान्त किया जा सकता है ।

पर भारत की अग्रेज नौकरशाही को सुधारो से अधिक दमन पर विश्वास था । उसकी धारणा थी कि दमन द्वारा क्रान्तिकारी षड्यन्त्रो को कुचला जा सकता है, और उसके साथ ही साथ उग्र राष्ट्रवादी सवैधानिक आन्दोलनो को भी बहुत हद तक दवाया जा सकता है । वे इस काम को सुधारो की चर्चा से

१. प्रयाग में भाषण, ८ अगस्त, १९१७ । २. वही ।
३. वम्बई में भाषण, १० जुलाई, सन् १९१७ ।
४. आनरेबिल पडित मदनमोहन मालवीय : लाइफ एण्ड स्पीचेज, पृ० ५५८-५८४ ।
५. वही, पृ० ५८४ । ६. वही, पृ० ५८४ ।

अधिक आवश्यक समझते थे। भारत में दमनकारी कानूनो की भरमार थी, फिर भी भारत सरकार ने युद्ध के प्रारम्भ होने के कुछ दिन बाद ही भारत रक्षा अधिनियम केन्द्रीय विधान कौसिल से पास करा लिया, और इस कानून को, एवं राज्य विद्रोह सभा अधिनियम को और प्रेस अधिनियम को कड़ाई से लागू किया। दण्ड विधान की कुछ दमनकारी धाराओ का भी मनमाने ढंग पर प्रयोग किया गया। सन् १८१८ का बंगाल रेगुलेशन नं० ३ भी चालू कर दिया गया। प्रवेश अध्यादेश जारी करके विदेश से आने वाले सदिग्ध भारतीयो के प्रवेश, भ्रमण तथा निवास पर मनमाने ढग पर रोक लगाने के अधिकार का दुरुपयोग किया गया।

सरकार की दमनकारी नीति ने बंगाल मे गजब ढा दिया। तीन हजार से अधिक नवयुवक भारत रक्षा अधिनियम या बगाल रेगुलेशन्स के अन्दर पकड़ कर नजरबन्द कर दिये गये। इनमें से कुछ नि सन्देह क्रान्तिकारी थे। क्रान्तिकारी षड्यन्त्र द्वारा वे ब्रिटिश साम्राज्य का तख्ता उलट देना चाहते थे। पर अधिकाश निर्दोष थे। सरकार के इस क्रूर व्यवहार ने बगाल के नवयुवको में विशेष रूप से विद्वेष की भावनाओ को कम करने के बजाय तीव्र कर दिया।

कोमागाटा मारू जहाज के सिक्ख यात्रियो के साथ किये गये दुर्व्यवहार ने सिक्खो में भी विद्रोह की भावना पैदा की। युद्ध से कुछ समय पहले कनाडा की सरकार ने यह व्यवस्था की कि वही जहाज-यात्री कनाडा में रहने के लिए प्रवेश कर सकेगा जिसने बीच में कही टिके बिना सीधे कनाडा में जहाज से यात्रा की हो। चूँकि इस समय हिन्दुस्तान से कनाडा को जाने वाले सभी जहाज हागकाग और टोकियो में रुकते थे, इसलिए किसी हिन्दुस्तानी के लिए यह शर्त पूरी करना सभव नही था।

इस स्थिति में बाबा गुरदित्त सिंह ने बहुत से सिक्खो को हागकाग में इकट्ठा करके १४ अप्रैल सन् १९१४ को उन सबके साथ 'कोगागाटा मारू' जहाज से कनाडा के लिए प्रस्थान किया। जब जहाज मार्ग मे कही रुके बिना बेंकोवर पहुँचा, तब कनाडा के अधिकारियो ने उन्हें जहाज से उतरने नही दिया, और जहाज को वापस लौटने पर मजबूर किया। जब जहाज २९ सितम्बर सन् १९१४ को बजबज पहुँचा तब 'प्रवेश अध्यादेश' के आधार पर बगाल के अधिकारियो ने उन्हें आदेश दिया कि वे फौरन रेल में सवार होकर बीच में कही रुके बगैर सीधे पंजाब चले जायें। बाबा गुरदित्त सिंह ने कहा कि पंजाब जाने से पहले वे भारत सरकार से अपनी शिकायतो की फरियाद करना चाहते है।

पर उन्हे इसकी इजाजत नही दी गयी। सिक्ख यात्रियो ने सरकार की आज्ञा की अवहेलना करके कलकत्ता जाने की कोशिश की। इस पर झगडा हो गया, जिसने उपद्रव का रूप धारण कर लिया। १९ सिक्ख यात्री मार डाले गये, बहुत से गिरफ्तार कर लिये गये, २९ फरार हो गये, और ६० यात्री जिनमे २७ मुसलमान थे, ट्रेन द्वारा पजाब चले गये। जो पकड लिये गये थे, उनमें से अधिकाश जनवरी में पजाब लौटा दिये गये, और ३१ को जेल में नजरबन्द रहने दिया गया।

सरकार और उनके समर्थक बाबा गुरदित्त सिंह और उनके साथियो को ही इन सब दुर्घटनाओ के लिए उत्तरदायी ठहराते है, पर भारत के बहुत से राष्ट्र-वादी राजनीतिज्ञो की राय में जहाँ कनाडा की सरकार का आप्रवासन सम्बन्धी कानून तथा शान्तिप्रिय भारतीयो के प्रति उसका व्यवहार सारे भारत का अपमान था, वहाँ बजबज मे सरकारी अधिकारियो का व्यवहार सर्वथा सहानुभूति-विहीन कठोर था। बाबा गुरदित्त सिंह के साथी रोटी रोजी कमाने कनाडा गये थे। उनमें विद्रोह की भावना लेशमात्र भी नही थी, और भारत सरकार के पास यह सिद्ध करने को कोई प्रमाण नहीं था कि भारत लौटते-लौटते राज-विद्रोह की भावना उनमे इतनी तीव्र हो गयी थी कि उनके साथ [illegible] अपराधियो का-सा व्यवहार किया जाना अनिवार्य था। बजबज की दुर्घटना ने सरकार और जनता के पारस्परिक सम्बन्धो मे सौहार्द [illegible] की [illegible] अवश्य कर दी।

पजाब सरकार का व्यवहार तो बगाल सरकार से भी अधिक कठोर था। पंजाब के लेफ्टिनेंट-गवर्नर सर माइकेल ओडायर ने बड़ी सख्ती से नवयुवकों को फौज में भरती किया, तथा युद्ध के लिए [illegible] से चन्दा जमा किया। उन्होने क्रान्तिकारी षड्यन्त्रो को दबाने के [illegible] वैधानिक राष्ट्रीय आन्दोलन को खतम करने की कोशिश की। वे तो [illegible] विचारकों की माँगो, तथा काग्रेस-लीग योजना को भी उतना ही क्रान्तिकारी समझते थे, जितना गदर पार्टी से सम्बन्धित नवयुवकों को। वे कहते थे कि भारतीय स्थानीय स्वशासन से ही सतुष्ट हो जायें।

सरकार का दमन क्रान्तिकारियों और [illegible] नवयुवकों तक ही सीमित नही था। सरकार को होमरूल आन्दोलन भी पसन्द नहीं था। उसने [illegible] यथासम्भव रुकावटें डालना ही वह उचित समझती थी। इस लिए [illegible] ने अपने प्रान्त में [illegible] [illegible], और बम्बई सरकार [illegible]

श्रीमती बेसेंट का प्रवेश रोक दिया। बम्बई सरकार ने तो होमरूल आन्दोलन के प्रारम्भ होने के तीन मास के अन्दर ही तिलक महाराज के तीन व्याख्यानों पर आपत्ति करते हुए उनसे एक वर्ष के लिए बीस हजार रुपये का मुचलका और दस-दस हजार रुपये की दो जमानतें देने की माँग की। जिला मजिस्ट्रेट ने सरकार के पक्ष में फैसला दे दिया, पर बम्बई हाईकोर्ट ने उसे रद्द करते हुए कहा कि तिलक के इन तीन व्याख्यानों से राजद्रोह का अर्थात् सम्राट् के प्रति 'शत्रुता, विद्वेष और घृणा' का बोध नही होता।

मद्रास के गवर्नर लार्ड पैटलेंड ने बम्बई सरकार को भी मात कर दिया। उन्होने प्रेस एक्ट के अन्दर दी गयी श्रीमती बेसेंट के समाचार पत्रो की जमानत जब्त कर ली. और श्रीमती बेसेंट को फिर से जमानत दाखिल करने को वाध्य किया। उन्होने आदेश जारी किया कि विद्यार्थी राजनीति में भाग न लें, राजनीति से संबंधित सार्वजनिक सभाओ और जुलूसो से अलग रहें। जबकि बम्बई सरकार ने न्यायालय मे तिलक महाराज पर अभियोग लगा कर उन्हें अपनी सफाई पेश करने तथा हाईकोर्ट को उस पर विचार करने का मौका दिया, लार्ड पैटलैड ने ऐसा न करके १४ जून, सन् १९१७ को श्रीमती एनी बेसेंट और मिस्टर जी० एस० अरडेल और श्री वी० पी० वादिया को गिरफ्तार करके नजरबन्द कर दिया। पर इसकी प्रतिक्रिया तिलक महाराज पर चलाये गये मुकदमे से अधिक तीव्र हुई। ससार भर के थियोसाफिस्टो ने नजरबन्दी की तीव्र भर्त्सना करते हुए उसे रद्द करने की माँग की। भारत में जनान्दोलन तीव्र हो गया, होमरूल की माँग तेज हो गयी, जबकि जिना साहब और बहुत से उदार-दलीय राजनीतिज्ञ होमरूल लीग के सदस्य हो गये, काग्रेस मे नजरबन्दी के विरुद्ध सविनय-अवज्ञा प्रारम्भ करने की चर्चा होने लगी।

मालवीयजी ने अपने लेखो और भाषणो में नजरबन्दी की कडी आलोचना की, केन्द्रीय विधान कौंसिल के विचार के लिए सरकार के पास इसके विरोध मे प्रस्ताव का नोटिस भेजा। उन्होने जिना साहब को तार दिया कि अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी और मुस्लिम लीग कौसिल की सयुक्त बैठक बुलायी जाय। सविनय प्रतिरोध के सम्बन्ध मे मित्रो से वातचीत करने वे कलकत्ता गये, पर वहाँ उन्हें कोई सफलता नही मिली।[1] मालवीयजीने प्रथम वार प्रयाग में होमरूल लीग के तत्त्वावधान में भाषण किया, और स्वशासन की तथा श्रीमती एनी बेसेट की

---

१. सुरेन्द्रनाथ बनर्जी : ए नेशन इन दि मेकिंग, पृ० २२३।

रिहाई की माँग की। अगस्त सन् १९१७ मे उन्होने इस माँग को प्रान्तीय काग्रेस के अधिवेशन मे फिर दोहराया।

जुलाई के अन्तिम सप्ताह में अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी की बैठकें हुईं। दोनो ने श्रीमती एनी बेसेंट और अली बन्धुओ की नजरबन्दी से रिहाई की माँग की। दोनो ने सरकार की दमन नीति की, तथा राजनीतिक सुधारो के सम्बन्ध में सरकार के उच्च अधिकारियो के विचारो की समीक्षा करते हुए माँग की कि (१) दमन नीति खत्म की जाय, (२) भारत को ब्रिटिश साम्राज्य का स्वशासित प्रदेश बनाने की नीति की ब्रिटिश सरकार शीघ्र घोषणा करे, (३) सुधार योजना की स्वीकृति के लिए आवश्यक कार्रवाई की जाय, (४) राजनीतिक सुधारो के सम्बन्ध में सरकार अपनी योजना शीघ्र प्रकाशित करे। प्रतिरोध की नीति और औचित्य पर काफी विचार-विमर्श के बाद निश्चय हुआ कि प्रान्तीय काग्रेस कमेटियो और प्रान्तीय मुस्लिम लीग कौसिलो से अनुरोध किया जाय कि वे इस प्रश्न पर विचार करके अपनी राय छः सप्ताह के अन्दर भेजे।

सितम्बर के पहले पखवाडे में ही सरकार ने श्रीमती एनी बेसेंट और उनके दोनो साथियो को इस आश्वासन पर छोड दिया कि वे युद्ध के जमाने में "राजनीतिक आन्दोलन के हिंसात्मक और अवैधानिक तरीको से परहेज करेंगे।"[1] पर मौलाना मुहम्मद अली नही छोडे गये।

श्रीमती एनी बेसेंट से इस प्रकार का आश्वासन लेना निरर्थक था, क्योकि उनके होमरूल आन्दोलन का हिंसात्मक और अवैधानिक तरीको से कोई सबध नही था। वे तो अहिंसात्मक सामूहिक प्रतिरोध को भी सवैधानिक तरीका स्वीकार नही करती थी, जिसका स्पष्टीकरण उन्होनें नजरबन्दी से रिहा होने के बाद ही कर दिया। वे जो कुछ करती थी, उसे सच्चे दिल से वैधानिक समझती थी। जो भी हो, लार्ड चेम्सफोर्ड उनके व्यवहार से सन्तुष्ट नही थे। उनकी धारणा थी कि श्रीमती बेसेंट आश्वासन का ठीक तौर से पालन नही कर रही है, और सरकार को उनके विरुद्ध कुछ कार्रवाई करनी ही होगी। पर श्रीमती बेसेंट की पहली नजरबन्दी ने उन्हें इतना लोकप्रिय बना दिया था कि उनके विरुद्ध कोई कार्रवाई करने का चेम्सफोर्ड को साहस नही हुआ। श्रीमती बेसेंट अपने ढंग से अपना कार्य करती रही। दिसम्बर सन् १९१७ में उन्होने

---

१. इडिया इन १९१७, पृ० ४२।

बड़ी शान से कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन की अध्यक्षता की, और उसके बाद भी वे अपने ढंग पर अपनी सूझबूझ के अनुसार बड़ी तत्परता और निर्भीकता से काम करती रहीं। उनके विचारो और कार्य-प्रणाली से मतभेद हो सकता है, पर उनका साहस और लगन तो अवश्य ही प्रशंसनीय थे। वे जो उचित समझती, उसी को कहती और करती थी, फिर उसके सम्बन्ध मे सरकार या जनता की कुछ भी प्रतिक्रिया क्यो न हो।

राजनीतिक सुधार

ब्रिटिश सरकार के लिए राजनीतिक चेतना की उपेक्षा असभव थी। राजनीतिक सुधारो की आवश्यकता अनुभव करते हुए उनकी चर्चा उसने विश्व-युद्ध के प्रारम्भ होने के कुछ बाद ही शुरू कर दी थी। सन् १९१४ में उसने बम्बई के गवर्नर लार्ड विलिंगडन द्वारा गोखले से अनुरोध किया कि वे भावी राजनीतिक सुधारों के सम्बन्ध में अपनी राय बतायें, और उन्होने अपने निधन से कुछ पहले हिज हाइनेस सर आगा खाँ द्वारा अपनी राय सरकार के पास भिजवा दी।

इसी वर्ष ब्रिटिश पार्लियामेंट ने सब पुरानी व्यवस्थाओ, अधिनियमो को इकट्ठा करके गवर्नमेंट आफ् इंडिया एक्ट (भारत प्रशासन अधिनियम) पास किया, और अगले वर्ष एक दूसरे अधिनियम द्वारा उसके कुछ अशो को संशोधित किया।

कर्टिस-ड्यूक योजना

सन् १९१६ के प्रारम्भ में ही कर्टिस आदि की मदद से भारत-मन्त्री की कौंसिल के सदस्य सर विलियम ड्यूक ने प्रान्तो के प्रशासन को दो भागो में बाँट कर उसके एक भाग को विधान कौसिल को उत्तरदायी मन्त्रियो को कुछ शर्तो के साथ हस्तान्तरित करने की योजना तैयार की। मई सन् १९१६ में यह योजना एक मेमोरडम (प्रपत्र) के रूप में भारत सरकार के पास भेज दी गयी।

भारत सरकार की योजना

जून सन् १९१६ में लार्ड चेम्सफोर्ड ने गवर्नर-जनरल का उत्तरदायित्व ग्रहण किया। उन्होने गुप्त रूप से एक दूसरी योजना तैयार की। यह योजना ड्यूक की प्रस्तावित योजना से बुरी थी। इसमें विधान कौसिल के विस्तार की तो व्यवस्था थी, पर वित्तीय और प्रशासन के मामलो में विधान कौसिलो के

नियंत्रण की कोई व्यवस्था नही थी। केन्द्रीय कार्यपरिषद् के भारतीय सदस्य सर शकरन नायर को यह योजना पसन्द नही थी। उन्होंने बहुत ही विस्तार के साथ एक नोट में इसकी कडी समीक्षा की। भारत-मन्त्री सर आस्टिन चेम्बरलेन ने भी इस योजना को अपर्याप्त समझा। उन्होंने लिखा . "निर्वाचित सदस्यो की सख्या बढाने से कोई लाभ नही, जब तक हम उन्हे वित्त और प्रशासन के मामलो में किसी अश में उत्तरदायित्व देने को तैयार न हो।"[1] इस पर वाइसराय ने भारत-मन्त्री को भारत की दशा का अध्ययन करने को आमन्त्रित किया। चेम्बरलैन करीब-करीब राजी भी हो गये, और उन्होंने सुधारो के सम्बन्ध मे एक घोपणा भी तैयार की।

भारतमन्त्री चेम्बरलैन का इस्तीफा

इसी वर्प अर्थात् सन् १९१६ मे मेसोपोटामिया मे हिन्दुस्तानी फौज की करारी हार हुई, जिसके कारण भारत सरकार की प्रतिष्ठा को काफी धक्का लगा, उसकी क्षमता की कडी आलोचना हुई। उधर अक्तूबर सन् १९१६ में केन्द्रीय विधान कौसिल के उन्नीस सदस्यो ने सुधारो के सम्बन्ध में एक मेमोरडम तैयार किया, और दिसम्बर मे काग्रेस और मुस्लिम लीग ने मिल कर एक योजना तैयार की जिसका अगले वर्प बडे जोर से प्रचार किया गया। जुलाई सन् १९१७ में मेसोपोटामिया कमीशन की रिपोर्ट पर आस्टिन चेम्बरलेन ने इस्तीफा दे दिया, और उनके स्थान पर १७ जुलाई को मिस्टर ई० एस० माटेग्यू भारत-मन्त्री नियुक्त हुए।

नीति घोषणा

२० अगस्त सन् १९१७ को भारत-मन्त्री माटेग्यू ने भारत के सम्बन्ध मे ब्रिटिश सरकार की नीति की व्याख्या करते हुए घोपित किया—शासन के हर विभाग मे हिन्दुस्तान के निवासियो को अधिक से अधिक पद दे दिये जायेंगे, और ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर उत्तरदायित्वपूर्ण स्वायत्त शासन की स्थापना के उद्देश्य से स्वायत्त शासन से सम्बन्ध रखनेवाली सस्थाओ का अनवरत विकास किया जायगा। इस सम्बन्ध मे प्रान्तीय क्षेत्र मे यथासभव कदम उठाने का भी वचन दिया गया। भारत के राजनीतिज्ञो ने कुछ आलोचनाओ के साथ इस घोपणा का स्वागत किया।

---

१ माटेग्यू · इण्डियन डायरी, पृ० ८।

बेसेंट का अभिभाषण

दिसम्बर सन् १९१७ में कलकत्ता में कांग्रेस और मुस्लिम लीग के वार्षिक अधिवेशन हुए। श्रीमती एनी बेसेंट ने कांग्रेस की अध्यक्षता की। उन्होंने कहा कि यूरोप के साथ-साथ भारत में भी निरंकुशता और नौकरशाही का आधिपत्य खत्म होना चाहिए। "भारत की स्वतंत्रता ही भारत की राजभक्ति की शर्त है।" 'साम्राज्य के लिए भारत की उपयोगिता की भी यही शर्त है।' उन्होंने कहा कि भारत स्वतंत्रता चाहता है, क्योंकि स्वतन्त्रता प्रत्येक राष्ट्र का जन्मसिद्ध अधिकार है, और क्योंकि इस समय उसके सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हित बिना उसकी सहमति के ब्रिटिश साम्राज्य के हितों के अधीन बना दिये गये हैं, और उसके साधनों का उसकी आवश्यकताओं के लिए उपयोग नहीं किया जा रहा है। उन्होंने भारत-मन्त्री की घोषणा का स्वागत करते हुए होमरूल और स्वशासन की मांग की पुष्टि की, और कहा कि केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान कौंसिलों में निर्वाचित सदस्यों का भारी बहुमत और थैली पर अधिकार, इन दो बातों पर हमें डटा रहना चाहिए।[1]

कांग्रेस ने एक प्रस्ताव द्वारा भारतमन्त्री की इस घोषणा पर कि उत्तरदायी शासन की स्थापना ही ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य है, सन्तोष व्यक्त किया, और मांग की कि भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए पार्लियामेंट शीघ्र ही एक कानून पास करे, जिसमें इस व्यवस्था को पूर्ण रूप से लागू करने की अन्तिम तिथि भी निश्चित हो। उसने यह भी अनुरोध किया कि कांग्रेस-लीग योजना को उत्तरदायी शासन की पहली किस्त के रूप में शीघ्र चालू किया जाय।

कांग्रेस के सभी प्रमुख नेताओं ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया। और नेताओं की तरह मालवीयजीने भी कहा कि कांग्रेस-लीग योजना की स्वायत्त-शासन की माँग में उत्तरदायी शासन की स्थापना निहित है, क्योंकि जनता के प्रतिनिधियों को उत्तरदायी प्रशासन ही स्वायत्तशासित होने का दावा कर सकता है। उन्होंने कहा कि राष्ट्र भावना की माँग है कि हम स्वयं अपने ऊपर शासन करें, और इसकी तुष्टि नितान्त आवश्यक है। उन्होंने कहा : "जब हम स्वायत्त शासन की बात करते हैं, तब हम उपनिवेशों जैसा स्वायत्त शासन चाहते हैं। उपनिवेशों में शासन परिषदें विधान सभाओं को उत्तरदायी हैं। इसलिए यह कहना गलत

१. रिपोर्ट इंडियन नेशनल कांग्रेस सेशन १९१७, पृ० १२-५९।

है कि जब हम स्वायत्त शासन की माँग करते हैं, तब उत्तरदायी शासन से कुछ कम चाहते हैं।"

उन्होंने कहा कि शासन-व्यवस्था का उपखण्डो में विभाजन कुछ वर्षों में ही प्रशासन को "अप्रिय, क्षमताहीन तथा घृणित बनाने का अचूक उपाय" है। वह वास्तविक सुधारो में बाधा उपस्थित करेगा, और इसलिए उसे स्वीकार नही किया जा सकता। प्रान्तीय स्वतन्त्रता के साथ साथ केन्द्रीय सरकार में केन्द्रीय विधान कौंसिल के सदस्यो द्वारा निर्वाचित भारतीयो का केन्द्रीय कार्यपारिषद में प्रवेश नितान्त आवश्यक है। उनकी धारणा थी कि यदि जनता के प्रतिनिधियो को कार्यपरिषद के सदस्यो को चुनने का अधिकार प्राप्त हो गया, तब वे लोग, जिनके विचार 'प्रतिक्रियावादी' हैं, जो प्रगतिशील नही हैं, और जिन्हे जनता का विश्वास प्राप्त नही है, कार्यपरिषद के सदस्य नही हो पायेंगे।[1]

इस सबसे यह स्पष्ट है कि जब कि कुछ प्रशासक कर्टिस की द्विविध शासन व्यवस्था का समर्थन करते थे, मालवीयजी आदि अधिकाश काग्रेसी नेता काग्रेस-लीग योजना को कर्टिस की योजना से अच्छा समझते थे। उनका विचार था कि प्रान्तीय शासन के कुछ विभागो में बहुत से प्रतिबन्धो के साथ उत्तरदायी व्यवस्था को प्रतिष्ठित करना इतना श्रेयस्कर नही होगा, जितना कि प्रान्त और केन्द्र में निर्वाचित भारतीय सदस्यो की प्रशासन मे बराबर की साझेदारी और विधान सभाओ का शासन पर व्यापक नियत्रण।

मान्टेग्यू

सन १९१७ के जाडो में २० नवम्बर को भारतमन्त्री मान्टेग्यू हिन्दुस्तान आये। उनके साथ इडिया कौंसिल के सदस्य भूपेन्द्रनाथ बसु तथा सर विलियम ड्यूक (Duke), लार्ड डौनोमौर और मिस्टर चार्ल्स रावर्ट्स भी आये।

उन्होने लार्ड चेम्सफोर्ड के साथ देश की राजनीतिक स्थिति का अध्ययन किया, और इस उद्देश्य से कतिपय महाराजाओ और सरकारी अफसरो के अतिरिक्त बहुत से प्रमुख राजनीतिज्ञो से बातचीत की। उन्होने नरमदलीय नेताओ को यह भी सकेत किया कि नयी सुधार योजना को सफल बनाने के लिए सहयोग के समर्थक अलग से अपने को एक माडरेट (नरम) पार्टी में गठित करे। इस काम में उन्हें काफी सफलता मिली। बहुत से पुराने काग्रेसी नेताओ ने इस

---

१. वही, पृ० ११८-१२५।

सुझाव का स्वागत किया।[1] भारत-मन्त्री ने उन्हें ड्यूक मेमोरंडम पर आश्रित अपनी सुधार योजना का समर्थन करने के लिए भी बहुत हद तक तैयार कर लिया। वे मालवीयजी को भी अपनी ओर खींचना चाहते थे, पर मालवीयजी तैयार नही हुए। वे कांग्रेस-लीग योजना पर डटे रहे। वे ड्यूक की योजना का समर्थन करने को तैयार नही थे। उनके विचार में प्रान्तीय शासन के एक छोटे से भाग में बहुत सी शर्तों के साथ उत्तरदायी शासन स्थापित करने से काम नही चल सकता। उन्होने भारत-मन्त्री से स्पष्ट शब्दो में कहा कि विधान सभाओ का अर्थात् जनता के प्रतिनिधियो का थैली पर अधिकार और प्रशासन पर नियन्त्रण भारत की राजनीतिक समस्या का मूल प्रश्न है, और यदि इसकी सन्तोषजनक व्यवस्था नही हुई तो आन्दोलन होगा।[2]

सुधार योजना

जून सन् १९१८ में मान्टेग्यू और चेम्सफोर्ड द्वारा तैयार की गयी रिपोर्ट प्रकाशित की गयी। इसमे मार्ले-मिंटो सुधारो की समीक्षा करते हुए, उनकी कमजोरियो और कमियो की ओर ध्यान दिलाते हुए, तथा भारतीय राजनीतिज्ञो की माँगो और आकाक्षाओ पर विचार करते हुए नये सुधारो के सम्बन्ध मे सस्तुतियाँ की गयी।

इस नयी योजना में किन्ही अशो में पहली बार विधान-मण्डलो का पृथक् अस्तित्व स्वीकार किया गया, तथा केन्द्र मे विधान-मडल के दो सदन स्थापित करने का सुझाव दिया गया। विधान सभाओ में गैर-सरकारी निर्वाचित सदस्यो को बहुसख्यक स्थान दिये जाने की राय दी गयी। प्रत्यक्ष चुनाव की प्रथा चालू करने की भी संस्तुति की गयी। विधान कौंसिलो को बजट स्वीकार करने की व्यवस्था की भी सिफारिश की गयी। रिपोर्ट में सस्तुति की गयी कि शासन-व्यवस्था को विकेन्द्रित कर कतिपय विषयो का प्रबन्ध प्रान्तीय सरकारो के सुपुर्द कर दिया जाय, तथा इनमें से कुछ विषय गवर्नर और उसकी कार्यपरिषद् के हाथ में सुरक्षित रहे, और कुछ विषयो का प्रबन्ध प्रान्तीय विधान सभा को उत्तरदायी मन्त्रियो को हस्तान्तरित कर दिया जाय। पर गवर्नर और गवर्नर-जनरल को अधिकार हो कि वे जब उचित समझें विधान कौंसिल और मन्त्री की राय की उपेक्षा करते हुए उन हस्तान्तरित विषयो के प्रबन्ध में हस्तक्षेप कर

---

१ माटेग्यू : इंडियन डायरी, पृ० २१७।

२. माटेग्यू ' इंडियन डायरी, २७ नवम्बर १९१७।

सकें, और उन्हे सुरक्षित विषयो में बदल कर उनका प्रबन्ध कार्य परिषद् के सुपुर्द कर दें। इस योजना मे केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान-मण्डलो की राय और वोट की उपेक्षा करते हुए गवर्नर-जनरल और गवर्नर को कानून बनाने और कर लगाने के विशेष अधिकार की भी व्यवस्था की गयी।

सन् १९०९ की व्यवस्था की तुलना में प्रस्तावित योजना कही अच्छी थी। पर जनजागृति और जनता की आकाक्षाओ की तुलना में बहुत कम थी। भारत के राजनीतिज्ञो में इसके सम्बन्ध में मतभेद था। सभी चाहते थे कि इसमें कुछ सुधार हो। पर जहाँ कुछ राजनीतिज्ञ इसकी कमियो और त्रुटियो की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट करते हुए इसकी कडी आलोचना करते थे, कुछ इसकी अच्छाइयो पर विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट करते हुए उसका प्रयोग करने पर जोर देते थे।

मालवीयजी की समीक्षा

मालवीयजी ने इस योजना का विस्तृत विश्लेषण करते हुए एक लम्बे लेख मे स्वीकार किया कि इन सुझावो में बहुत-सी बाते अवश्य ही "उदार" है, और उनसे सही दिशा में वास्तविक और हितकारी परिवर्तन होगा। पर उन्होने कहा कि इनमें कुछ "भारी कमियाँ" है, जिन्हे दूर करना जरूरी है।[1] उनकी राय मे रिपोर्ट में, २० अगस्त सन् १९१७ की घोषणा की सकीर्ण व्याख्या करने के कारण, उत्तरदायी शासन की ओर प्रगति की गति धीमी है, और ब्रिटिश जनता और पार्लियामेंट के उत्तरदायित्व पर बहुत अधिक जोर दिया गया है। रिपोर्ट मे समस्या की दशाओ का जो विश्लेषण किया गया है, उसके पढने से ऐसा आभास होता है कि उत्तरदायी शासन को चालू करने के विरुद्ध जो परिस्थितियाँ है उन पर बहुत बढा चढा कर विचार किया गया है, और जो (परिस्थितियाँ) उनके पक्ष में है उन्हे कम किया गया है, उनकी उपेक्षा की गयी है।[2]

उन्होने लिखा कि प्रजा के हितो की रक्षा की आवश्यकता पर जोर दिया गया है, पर यह भुला दिया गया है कि पिछले ६० वर्षो मे जनता की हितवृद्धि के लिए नौकरशाही ने कुछ नही किया है। जनता के अभ्युदय से सम्बन्धित सेवाओ को चालू करने की बात को धन की कमी की चर्चा करके टाल दिया गया है। गरीबी

---

१ आनरेबिल पडित मदनमोहन मालवीय लाइफ एन्ड स्पीचेज, पृ० ६२४।

२. वहीं, पृ० ६३३।

और शिक्षा की कमी को जनता को अपने अधिकारों से वचित करने का आधार नही बनाया जा सकता, क्योंकि इसका उत्तरदायित्व मुख्य रूप से ब्रिटेन के मतदाताओ और उनके एजेन्टो पर है, जिन्होने काग्रेस और विधान कौसिल के निर्वाचित सदस्यो की सस्तुतियो की उपेक्षा करते हुए उन्हे दूर करने के लिए कुछ नही किया। साम्प्रदायिक मतभेद और तनाव भारत में अवश्य है, पर दूसरे बहुत से स्वशासित देशो मे भी ये किसी न किसी रूप में पाये जाते है। भारत के शिक्षित वर्ग ने, जिसके हाथ में स्वशासन की पूरी मात्रा सौंपने से घबडाहट प्रकट की जाती है, नौकरशाही से कही अधिक जनता के अभ्युदय का ध्यान रखा है। प्राकृतिक अधिकार और न्याय के आधार पर भारतीय अपने देश के शासन में भाग लेना चाहते है, और मिस्टर माटेग्यू तथा लार्ड चेम्सफोर्ड भले ही अपने को यह समझा लें कि भारत अभी उत्तरदायी शासन प्रथा के योग्य नही है, पर भारतीय जनता उनके तर्क से सन्तुष्ट नही होने वाली है।[1]

मालवीयजी ने बताया कि भारतीय शिक्षितो ने ईसाई मिशनरियो के प्रति कभी वैर नही रखा, और स्वतन्त्र भारत मे भी वे अपना काम चालू रख सकते है। उन्होने कहा कि यह समझना भी भारतीय जनता के साथ अन्याय होगा कि यदि उन्हें अधिकार मिले, तो वे अग्रेज व्यापारियो और कर्मचारियो के विरुद्ध उनका प्रयोग करेगे। यह सन्देह कैसे किया जा सकता है कि उत्तरदायी शासन मिलने पर भारतीय प्रतिनिधि पुराने आर्थिक इकरारनामो को रद्द कर देंगे, या वे विदेश से व्यापार चालू रखने की, और देश के आर्थिक विकास के निमित्त विदेशी विशेषज्ञो की आवश्यकता की उपेक्षा करेगे ?[2]

मालवीयजी ने इस लेख में यह भी बताया कि, "स्वशासन की पूरी मात्रा", जिसे भारतीय जनता चाहती है, उसे दे भी दी गयी, तो भी प्रशासन की मौजूदा व्यवस्था जड़ से उखड नही जायेगी।[3] प्रशासन का सम्पूर्ण ढाँचा जो सौ वर्ष में बनाया गया है, अटल बना रहेगा। न्याय का शासन हाईकोर्टों के अधीन रहेगा। कानूनो का मौजूदा ढाँचा भी चालू रहेगा। यदि नयी विधान कौसिल, किसी अधिनियम को बदलना या रद्द करना चाहेगी, तो ऐसा करने की उसमें शक्ति नही होगी, जब तक सरकार का प्रधान उस विधेयक को

---

१. वही, पृ० ६४८-५५४। २. वही, पृ० ६५६।

३. वही, पृ० ६५७।

स्वीकार न करे, जिसके द्वारा यह सब कुछ किया जायगा। मौजूदा पदाधिकारियो द्वारा ही लोकसेवाओ में काम चलता रहेगा, और यदि भविष्य में पचास प्रतिशत ऊँचे पद भारतीयो द्वारा भरे गये तो भी बहुत काल के वाद इन सेवाओ के आधे भाग का ही भारतीयकरण हो सकेगा।[1]

इस लेख में मालवीयजी ने यह भी बताया कि यद्यपि प्रस्तावित योजना में काग्रेस-लीग के कुछ सुझाव शामिल कर लिये गये है, पर उसके अत्यावश्यक लक्षण को अर्थात् जनता के प्रतिनिधियो के साथ शासन की शक्ति की साझेदारी को बहुत अंश तक छाँट दिया गया है, क्योंकि उन्होने कुछ हस्तान्तरित विपयो में ही प्रान्तीय विधान सभाओ को अधिकार दिया है।

उन्होने कहा कि यदि भारतमन्त्री और गवर्नर-जनरल जनता के प्रतिनिधियो के साथ शासन का अधिकार उस मात्रो में वाँटने को तैयार हो जिसकी काग्रेस-लीग योजना में सस्तुति की गयी है, तो उस योजना में सशोधन और परिवर्तन करके उन आपत्तियो का, जिनकी ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है, निराकरण किया जा सकता है।

उन्होने यह भी वताया कि विश्वयुद्ध ने आत्मनिर्भरता की आवश्यकता को पूरे तौर से सिद्ध कर दिया है, पर उसकी ओर जितना ध्यान देना चाहिए था नही दिया गया है। मिस्टर मान्टेग्यू और लार्ड चेम्सफोर्ड ने यह तो स्वीकार किया है कि भारतीयो की दृष्टि में फौज में ब्रिटिश कमीशन का प्रश्न और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है, पर रिपोर्ट में उसके सम्बन्ध में कोई ठोस सुझाव नही दिया गया है।[2]

मालवीयजी ने बताया कि रिपोर्ट में हिन्दुस्तान की आर्थिक स्थिति की कमजोरी तो नोट की गयी है, यह भी स्वीकार किया गया है कि भारतीय उसे सुधारना चाहते है, और आर्थिक, राजनीतिक तथा सैनिक सभी दृष्टि से देश का औद्योगिक विकास आवश्यक है, पर उसके लिए कोई ठोस सुझाव नही दिया गया है। मालवीयजी ने बताया कि यदि भारत का औद्योगिक विकास ठीक तौर पर किया जाना है, तो भारत को वित्तीय स्वशासन प्रदान किया जाना चाहिए, अर्थात् केन्द्रीय सरकार में जनता के प्रतिनिधियो को नीति निर्धारित करने का अधिकार मिलना चाहिए।[3]

१. वही, पृ० ६५७-६५८।

२. वही, पृ० ६५८-६६०। ३. वही, पृ० ६६४।

उन्होने माँग की कि "प्रान्तीय सरकार को फौरन स्वायत्त बना देना चाहिए, और समय की अवधि निश्चित कर देनी चाहिए जिसके अन्दर भारत की केन्द्रीय सरकार में भी पूरा उत्तरदायी शासन स्थापित होना चाहिए।"[1] अगर इसके लिए बीस वर्ष की अवधि निर्धारित की गयी तो हमें पता चलेगा कि हम कहाँ है, यद्यपि बहुत से हिन्दुस्तानियो को यह अवधि बहुत लम्बी दिखाई देगी।[2] उन्होने लिखा कि इस अवधि को निश्चित करने के बाद कम से कम पचास प्रतिशत योग्यता-सम्पन्न भारतीयो की फौज तथा सिविल विभागो में नियुक्तियाँ की जायें, ताकि भारतीयो को विश्वास हो जाय कि "भविष्य में इंगलिस्तान भारत के साथ साझी जैसा, न कि अधीन क्षेत्र जैसा व्यवहार करना चाहता है।"[3]

इस लेख में मालवीयजी ने यह भी माँग की कि भारत सरकार की एक्जिक्यूटिव कौसिल के आधे सदस्य भारतीय हो, यदि राज्य सभा (कौसिल आफ स्टेट) स्थापित की जाय तो उसके आधे सदस्य उन निर्वाचन क्षेत्रो से चुने जायें जिनमें भारतीयो की अधिकता हो, और स्पष्ट तौर पर यह निर्धारित करने के बाद कि कुछ राज्य सेवाओ के खर्चे पर, विशेष रूप से देश की रक्षा के निमित्त फौजी खर्चे पर, गवर्नर-जनरल-इन-कौंसिल की स्वीकृति के बिना कोई कटौती नही की जायगी, यह निश्चय किया जाय कि बजट लेजिस्लेटिव असेम्बली द्वारा बहुमत से पास किया जायगा।[4]

प्रान्तीय व्यवस्था के सम्बन्ध में मालवीयजी का सुझाव था कि प्रान्तीय विधान सभाओ के सदस्यो की संख्या और बढा दी जाय, और मतदान के अधिकार को यथासंभव व्यापक किया जाय, ताकि सभी आवश्यक हितो का, किसानो का भी, उचित प्रतिनिधित्व हो सके। वही सज्जन मन्त्री नियुक्त हो, जिन्हें निर्वाचित सदस्यो के बहुसंख्यको का विश्वास प्राप्त हो। यद्यपि वे विशेष रूप से किसी विषय के चार्ज में होगे, पर वे प्रान्त की एक्जिक्यूटिव कौसिल के सदस्य होगे। कोई संरक्षित विषय नही होगा। यदि किसी विषय का संरक्षण हो तो केवल इतना कि गवर्नर-इन-कौसिल की स्वीकृति के बिना सुरक्षा और सुव्यवस्था विभाग से सम्बन्धित खर्चा कम नही किया जायगा। गाड कमेटी का सुझाव छोड़ दिया जायगा। सुधारो के जो सिद्धान्त दूसरे प्रान्तो के लिए

---

१. वही, पृ० ६६७।
२ वही, पृ० ६६७।
३. वही, पृ० ६७०।
४. वही, पृ० ६९४।

निश्चित होगे, उन विशिष्ट सरक्षणो के साथ जिनकी वह माँग करें, बर्मा में भी लागू होगे।[1]

अन्त मे मालवीयजी ने लिखा कि भारत चाहता है कि इगलिस्तान उसके प्रति न्यायी हो। उसकी माँग है कि उसके भावी संविधान को निश्चित करने में, इगलिस्तान उस न्याय तथा अपना भाग्य निर्णय करने के जनता के अधिकार पर अमल करेगा, जिनके लिए वह सम्भवत इतिहास के सबसे अधिक शानदार (गौरवपूर्ण) युद्ध में सलग्न है, और जिसमें उसे भारत ने अपने रक्त और धन से सहायता दी है। इगलिस्तान और भारत दोनो परीक्षण पर है। ईश्वर भारतीयो को पूरी मात्रा के लिए आग्रह करने की, और अग्रेजो को उसे स्वीकार करने की दूरदर्शिता की स्पष्टता तथा साहस प्रदान करें।[2]

एकता का प्रयत्न

काग्रेस के नेताओ और समर्थको में भारत-मन्त्री और वाइसराय द्वारा प्रस्तुत योजना के सम्बन्ध में गहरा मतभेद हो जाने के कारण काग्रेस टूटती दिखाई देती थी। मालवीयजी एकता बनाये रखना चाहते थे और इसके लिए मध्यमार्ग का अनुसरण आवश्यक समझते थे। वे नये सुधारो को बिल्कुल ठुकरा देना या बिना किसी संशोधन के स्वीकार कर लेना, दोनो गलत समझते थे। वे प्रस्तावित सुधारो का स्वागत करते हुए उनकी त्रुटियो के सुधार के लिए प्रयत्न करना चाहते थे। वे इसके लिए देश के प्रगतिशील तत्त्वो में, विशेष तौर पर कांग्रेस-जनो में, ऐक्य नितान्त आवश्यक समझते थे। उनका ऐक्य सम्बन्धी प्रयास पूरे तौर पर सफल नही हुआ।

काग्रेस का विशेष अधिवेशन

अगस्त के प्रथम सप्ताह में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने श्रीमती बेसेंट को तार दिया कि विशेष अधिवेशन कुछ समय के लिए टाल दिया जाय, पर यह नही हो सका। सर्वश्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, दिनशा इदुलजी वाचा, भूपेन्द्रनाथ वसु, अम्बिकाचरण मजूमदार आदि काग्रेस के कई पुराने सम्मानित नेता काग्रेस के विशेष अधिवेशन में, जो बम्बई में २९ अगस्त १९१८ को आयोजित हुआ, शामिल नही हुए। उन्हे समझाकर बुलाने के लिए काग्रेस का अधिवेशन एक दिन के लिए स्थगित किया गया। पर मालवीयजी के अनुरोध पर भी दिनशा इदुलजी वाचा

---

१. वही, पृ० ६९५। २ वही, पृ० ६९७-६९८।

ने काग्रेस के अधिवेशन मे सम्मिलित होने से इनकार कर दिया। बहुत से दूसरे सम्मानित नेता तो वम्बई आये ही नही थे। इस तरह काग्रेस दो भागो में बट गयी। फिर भी काग्रेस के इस विशेष अधिवेशन में उपस्थित प्रतिनिधियो ने, जिनमे कुछ नरमदलीय और अधिकाश गरमदलीय थे, मध्यमार्ग का अनुसरण ही उचित समझा।

विषय समिति की ओर से मालवीयजी ने जो प्रस्ताव पेश किया, उसमे भारत में उत्तरदायी शासन को प्रारम्भ करने के लिए भारतमन्त्री और वाइसराय के प्रयास की सराहना की गयी। जबकि यह स्वीकार किया गया कि 'कुछ दिशाओ मे मौजूदा हालतो से उनके कुछ प्रस्ताव प्रगतिशील हैं', यह भी कहा गया कि 'प्रस्तावित सुधार अपर्याप्त और असन्तोपजनक' है। प्रस्ताव मे उत्तरदायी सरकार की ओर ठोस कदम लिये जाने के उद्देश्य से अनिवार्य रूप से आवश्यक सशोधन प्रस्तुत किये गये।

प्रस्ताव मे माग की गयी कि केन्द्रीय सरकार में भी सरक्षित और हस्तातरित विषयो की प्रथा अंगीकार की जाय, तथा वैदेशिक मामलो, फौज, नौ सेना, देशीय राजाओ से सम्बन्ध, तथा देश की शान्ति और रक्षा से संबधित विषय ही सरक्षित विषय हो। संरक्षित विषयो का खर्चा राजस्व पर पहली जिम्मेदारी हो। सरक्षित विषयो के लिए उत्तरदायी एक्जिक्यूटिव कौसिल के आधे सदस्य हिन्दुस्तानी हो। राज्य सभा (कौंसिल आफ स्टेट) न बनायी जाय, और अगर गठित हो तो उसके आधे सदस्य भारतीय हो। सर्टिफिकेशन (बिलो को वाइसराय द्वारा प्रमाणित करने) की प्रक्रिया और रेगुलेशन्स द्वारा कानून बनाने की विधि केवल सरक्षित विषयो तक सीमित रहे। पार्लियामेंट के कानून द्वारा गारटी दी जाय कि पन्द्रह वर्ष मे पूर्ण उत्तरदायी शासन सारे ब्रिटिश इडिया में स्थापित कर दिया जायगा। यद्यपि काग्रेस की दृष्टि मे प्रान्तो में पूर्ण उत्तरदायी शासन के लिए भारत पूर्णत योग्य है, फिर भी छः वर्ष के लिए कानून, पुलिस और न्याय (जेल को छोडकर) विभागो को सँरक्षित विषय स्वीकार करने को काग्रेस तैयार है। पर इन संरक्षित विषयो के भारधारक सदस्यो मे आधे हिन्दुस्तानी होगे। केन्द्रीय और प्रान्तीय असेम्बली के अस्सी प्रतिशत सदस्य निर्वाचित सदस्य हो। सब कानून असेम्बली द्वारा पास हो, और बजट भी असेम्बली के अधीन हो। प्रान्तीय संरक्षित विषयो के खर्चे के लिए प्रान्तीय कौसिल की पूरी अवधि के लिए एक निश्चित धनराशि दी जाय। यदि बीच में अधिक करो की आवश्यकता हो, तो वे पूरी प्रान्तीय सरकार द्वारा, जिसमें

हस्तान्तरित और सरक्षित विषय सम्मिलित हैं, निश्चित हो। यदि किसी सरक्षित विषय पर प्रान्तीय सरकार कोई ऐसा कानून बनाना चाहती है, जिसकी स्वीकृति देने को प्रान्तीय विधान सभा तैयार नही है, तब वह उसका विधेयक केन्द्रीय सरकार के पास भेज सकती है, जो यदि वह उचित समझे तो उसे केन्द्रीय असेम्बली में प्रस्तुत कर सकती है, और वह वहाँ स्वीकृत किया जा सकता है। प्रान्तीय मन्त्री प्रान्तीय विधान सभा को उत्तरदायी होगे और उनकी पदवी, स्टेटस (महत्त्व) और वेतन एक्जिक्यूटिव कौंसिलों के सदस्यो के समान होगा। भारत-मन्त्री की कौंसिल भग कर दी जायगी, तथा दो उपभारत-मन्त्री नियुक्त होगे जिनमें से एक भारतीय होगा। इग्लैंड के इडिया आफिस का सब खर्चा ब्रिटिश राजकोष से किया जायगा। सरक्षित विषयो के प्रशासन और वित्तीय अधिकारो का कट्रोल भारत-मत्री और ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के अधीन होगा। काग्रेस-लीग योजना के अनुसार मुसलमानो को प्रतिनिधित्व दिया जायगा। सब वित्तीय मामलो में भारत सरकार को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त होगी।[1]

मालवीयजी का यह प्रस्ताव, जो भारी बहुमत से स्वीकार हुआ, मूलरूप से उनके लेख मे दिये गये सुझाओ पर आधारित था, मूल भेद इतना ही था कि जबकि मालवीयजी का सुझाव था कि बीस वर्ष मे पूरा उत्तरदायी शासन स्थापित हो जाय, प्रस्ताव में यह अवधि घटाकर पन्द्रह वर्ष कर दी गयी थी और जब कि मालवीयजी ने अपने लेख मे माग की थी कि सब प्रान्तीय विषय उत्तरदायी मन्त्रियो को फौरन हस्तान्तरित कर दिये जायें, प्रस्ताव मे छ वर्ष तक कानून, पुलिस और न्याय विभागो का सरक्षित विषय बनाये रखने का सुझाव था। मालवीयजी ने अपने लेख में सुझाव दिया था कि मन्त्रिगण प्रान्तीय विधान सभा के निर्वाचित सदस्यो को ही उत्तरदायी हों, उसके बहुसख्यक सदस्यो का विश्वास प्राप्त करना ही उसके लिए आवश्यक हो, प्रस्ताव में इस प्रकार की कोई चर्चा नही थी अर्थात् इस प्रश्न पर निर्वाचित और मनोनीत सदस्यो का भेद नही किया गया था। दूसरी तरफ जबकि मालवीयजी के लेख में उपभारत मन्त्री, इंडिया कौंसिल तथा इडिया आफिस की कोई चर्चा नही थी, प्रस्ताव में इनके सम्बन्ध में ठोस सुझाव दिये गये थे।

इस बम्बई अधिवेशन में सविधान से सम्बन्धित तीन अन्य प्रस्ताव भी पास किये गये। पहले प्रस्ताव में काग्रेस-लीग योजना के सिद्धान्तो पर अपनी आस्था दोहराते हुए घोषित किया गया कि साम्राज्य के अन्दर स्वायत्त शासन से कम कोई चीज भारतीय जनता को सन्तुष्ट नही कर सकती है, और ब्रिटिश

१ वही, पृ० ६९९-७०३।

कामनवेल्थ में स्वतत्र और स्वशासित राष्ट्र का उचित स्थान ही ग्रेट ब्रिटेन और भारत के सम्बन्ध को दृढ कर सकता है। दूसरे प्रस्ताव द्वारा काग्रेस ने घोषित किया कि भारतीय जनता उत्तरदायी शासन के योग्य है, और वह रिपोर्ट में दी गयी इसके विपरीत धारणाओ का खण्डन करती है।

तीसरे प्रस्ताव द्वारा काग्रेस ने स्वीकार किया कि देश की शान्ति और रक्षा के मामलो पर भारत सरकार का पूरा (अविभाजित) प्रशासकीय अधिकार बना रहे, पर माग की कि ब्रिटिश पार्लियामेट के कानून द्वारा भारतीय जनता के मौलिक अधिकार सुरक्षित किये जायें, यह घोषित किया जाय कि सब नागरिको को कानून मे समान अधिकार होगे, और किसी फौजदारी या प्रशासनीय कानून मे सम्राट् की प्रजा में कोई भेद नही किया जायगा। सम्राट् की कोई भारतीय प्रजा न्यायसगत खुले मुकदमे के जरिये साधारण न्यायालय की दण्डाज्ञा (सजा) के अतिरिक्त अपनी स्वतत्रता, जीवन, सम्पत्ति, स्वतत्र भाषण और लेखन के अधिकार से वचित नही की जायगी। सम्राट् की किसी भारतीय प्रजा को किसी ऐसे मामले मे शारीरिक सजा नही दी जायगी, जिसमें ब्रिटिश प्रजा को ऐसी सजा देने का विधान नही है। प्रेस स्वतत्र होगा, और किसी समाचार पत्र या प्रेस के रजिस्ट्रेशन से कोई लाइसेन्स या जमानत नही मागी जायगी। ग्रेट ब्रिटेन की तरह भारत में भी हथियार रखने का सारी भारतीय प्रजा को अधिकार होगा। साधारण न्यायालय की दण्डाज्ञा द्वारा ही यह अधिकार छीना जा सकता है। इस अधिवेशन में यह भी माँग की गयी कि इडियन सिविल सर्विस मे ५० प्रतिशत भारतीय भरती किये जायें, तथा कम से कम पचीस प्रतिशत सैनिक कमीशन भी भारतीयो को देने का प्रवन्ध किया जाय।

वम्बई के विशेष अधिवेशन मे उग्र राष्ट्रवादियो का बहुमत था। लोकमान्य तिलक उनके प्रमुख नेता थे। यदि वे चाहते तो नरमदलीय प्रतिनिधियो के विचारो की बिल्कुल उपेक्षा करते हुए अपने मन का प्रस्ताव स्वीकार करा सकते थे, अपने ढग से सुझावो की कडी आलोचना कर सकते थे, पर वे भी इस अवसर पर यथासभव एकता बनाये रखना आवश्यक समझते थे और सभी विचार-धाराओ के प्रतिनिधियो की सहमति से प्रस्ताव पास किया जाना उचित समझते थे। इसी लिए अधिवेशन की अध्यक्षता के लिए जब उनके नाम की चर्चा होने लगी, तब उन्होने सैयद हसन इमाम को अध्यक्षता के लिए तैयार किया।

इस अधिवेशन में समझौते की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करने में मालवीयजी का भी महत्त्वपूर्ण योगदान था। उन्होने बम्बई में उपस्थित नरमदलीय नेताओं

से विशेष अधिवेशन में शामिल होने के लिए बहुत विनय की और जब वे नही आये तब भी मेल-मिलाप की कोशिश करते रहे। मालवीयजी के प्रयत्नों से ही सुधार सम्बन्धी प्रस्ताव इस रूप मे स्वीकार हुआ कि अधिवेशन मे उपस्थित नरमदलीय प्रतिनिधियो को उसे स्वीकार करने में कोई कठिनाई नही हुई। श्रीमती बेसेन्ट के विचार मे यह अधिवेशन तो मालवीयजी का ही था। इसकी सफलता का मुख्य श्रेय उन्ही को था।

मालवीयजी वास्तव मे काग्रेस की फूट से दु खी थे। उनकी धारणा थी कि ब्रिटिश नौकरशाही को ही इससे लाभ होगा, और प्रतिक्रियावादी तत्त्वो को ही इससे बल मिलेगा। प्रस्तुत सुधार योजना में भारत के हित की दृष्टि से परिवर्तन तभी हो सकता है, जब सब भारतीय राजनीतिज्ञ मिलकर इसके लिए प्रयत्न करें। इसलिए बम्बई अधिवेशन के बाद भी मालवीयजी मेल मिलाप के लिए प्रयत्न करते रहे। उन्होने नरमदलीय नेताओ से आग्रह किया कि वे अलग अपनी सस्था बनाने के बजाय काग्रेस मे आकर अपने विचारो से उसके निर्णयो को प्रभावित करें।

मालवीयजी का अभिभाषण

सन् १९१८ में दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह मे मालवीयजी ने काग्रेस के वार्षिक अधिवेशन की दिल्ली में अध्यक्षता की। उन्होने अपने अध्यक्षीय भाषण में अमरीका के राष्ट्रपति विलसन के १४ सूत्रीय कार्यक्रम का उल्लेख करते हुए कहा कि विलसन साहब की दृष्टि में अन्तरराष्ट्रीय न्याय का कोई भी ढाचा तब तक स्थिर नही हो सकता, जब तक वह सब जातियो और राष्ट्रो के प्रति न्याय तथा एक दूसरे के साथ स्वतत्रता और सरक्षता के समान अधिकार पर आश्रित न हों। मालवीयजी ने आशा व्यक्त की कि सन्धि कान्फ्रेन्स मे इन सिद्धान्तो को कार्या-न्वित करने की कोशिश की जायगी। उन्होने इस बात पर दु.ख प्रकट किया कि सन्धि कान्फ्रेन्स में भारत के प्रतिनिधि को नियुक्त करते समय जनता के प्रतिनिधियो से इसके सम्बन्ध में कोई राय नही ली गयी।[1]

उन्होने माग की कि आत्मनिर्णय का सिद्धान्त भारत में भी लागू किया जाय, और नये विधान की भूमिका में इसे व्यक्त करते हुए यह स्पष्ट किया जाय कि पूर्ण उत्तरदायित्व की ओर अगले कदमों के निर्णय मे भारतीय जनता के प्रति-निधियो की प्रभावकारी आवाज (अधिकार) होगी। उन्होने कहा कि ससार

१. रिपोर्ट इडियन नेशनल काग्रेस, १९१८ का अधिवेशन, पृ०

के दूसरे राष्ट्रो की तरह हमे भी स्वशासन प्राप्त करने का अधिकार है। केम्पल वेनरमैन ने ठीक ही कहा है कि "अच्छी सरकार स्वशासन का विकल्प नही है।"[१] उन्होने कहा : "स्वशासन ही हमारी शिकायतो का इलाज है"[२] "हम राष्ट्रीय आत्मविकास का सुअवसर चाहते है।"[३] रौलेट कमेटी ने जिस परिस्थिति पर खेद प्रकट किया है, उसका इलाज 'दमनकारी कानून बनाना नही है, बल्कि विस्तृत और उदार सुधारो को देना है' जो असतोष के मूल कारण को दूर करेगा और भारतीय जनता मे सतोष पैदा करेगा।[४]

मालवीयजी ने काग्रेस, मुस्लिम लीग, तथा नरमदल की कान्फ्रेसो के निर्णयो की चर्चा करते हुए कहा कि ये तीनो चाहते है कि (१) स्वायत्तशासन का सिद्धात केंद्र तथा प्रात, दोनो मे व्यवहरित किया जाय, और सुधार की पहली किस्त में ही केन्द्रीय शासन को भी दो भागो मे बांट दिया जाय, एक सरक्षित, दूसरा हस्तातरित, (२) भारत को राजकोष की स्वतत्रता मिल जाना चाहिए, (३) राज्यसभा मे आधे निर्वाचित सदस्य हो, (४) सरक्षित विषयो की अधिकारिणी कार्यपरिषद में आधे सदस्य भारतीय हो, (५) विधानसभाओ को अपने सभापति, उपसभापति चुनने का अधिकार हो, (६) विधानसभाओ में निर्वाचित सदस्यो का बहुमत अस्सी प्रतिशत हो, (७) सरक्षित विषयो की संख्या जितनी कम हो सके उतनी कम हो, हस्तान्तरित विषय अधिक हो, (८) कार्य परिषद के सदस्यो तथा मत्रियो का पद बराबर हो, (९) न्याय और शासन के विभाग अलग कर दिये जाये, (१०) भारतीय सिविल सर्विस में पचास प्रतिशत तथा सम्राट् के फौजी कमीशन में पचीस प्रतिशत उच्च पद प्रारम्भ से भारतीयो को मिलने चाहिए और सैनिक शिक्षा का देश मे ही समुचित प्रबध हो, (११) साधारण वैध अधिकारो की—जैसे प्रेस की स्वतत्रता, सार्वजनिक सभाओ की स्वतत्रता, खुली अदालत मे मुकदमे की सुनवाई का अधिकार—उचित रक्षा की जाय, (१२) भारतमत्री की कौंसिल खत्म कर दी जाय।[५]

दिल्ली अधिवेशन के प्रस्ताव

काग्रेस के दिल्ली अधिवेशन ने दो सशोधनो के साथ बम्बई अधिवेशन मे स्वीकृत राजनीतिक सुधार सम्बधी चारो प्रस्तावो को स्वीकार कर लिया। मुख्य सशोधन प्रातीय व्यवस्था के सबध मे था। जबकि बम्बई अधिवेशन

---

१ वही, पृ० ३४। २. वही, पृ० ३८। ३. वही, पृ० ३८।
४ वही, पृ० २९। ५ वही पृ० २८-२९।

मे कानून, पुलिस और न्याय विभागो को छ वर्ष के लिए सरक्षित विपय रखना तय हुआ था, दिल्ली अधिवेशन मे निश्चय हुआ कि जहाँ तक प्रातो का सम्बध है पूर्ण उत्तरदायी शासन फौरन प्रदान किया जाय, और ब्रिटिश भारत का कोई भाग प्रस्तावित सवैधानिक सुधारो के लाभ से वर्जित न किया जाय। इस सशोधन के साथ साथ यह भी पास किया गया कि गैरसरकारी यूरोपियनो को इस आधार पर कि वे खनन और चाय उद्योगो का प्रतिनिधित्व करते है, पृथक् निर्वाचित क्षेत्र बनाने की इजाजत न दी जाय, और यदि इस प्रकार की अनुमति दी जाय तो उनका प्रतिनिधित्व सम्बद्ध प्रात की जनसख्या में उनका जो अश है उसके हिसाब से ही हो, अर्थात् अनुपात से अधिक न हो। इस अधिवेशन में यह भी निश्चय किया गया कि स्त्रियो को भी पुरुपो के समान वोट का अधिकार दिया जाय, और उनके इस अधिकार पर लिग के आधार पर कोई प्रतिवध न लगाया जाए।

काग्रेस ने दमनकारी कानूनो को वापस लेने, तथा राजनीतिक कैदियो और नजरवदो को छोडने की माग की, और आशा व्यक्त की कि आत्मनिर्णय का सिद्धान्त भारत में भी लागू किया जायगा। उसे भी एक प्रगतिशील राष्ट्र स्वीकार किया जायगा, और भारत को लीग आफ नेशन्स (राष्ट्रसघ) में वही स्थान दिया जायगा जो स्वशासित डोमिनियनो को प्राप्त होगा। काग्रेस ने लोकमान्य तिलक, सैयद हसन इमाम तथा गाधीजी को शान्ति काफ्रेस के लिए अपना प्रतिनिधि चुना।

काग्रेस मे किसानो का प्रवेश

काग्रेस का दिल्ली अधिवेशन काफी सफल अधिवेशन था। उसमे ४८६९ प्रतिनिधियो ने भाग लिया। इनमें ६८८ किसान प्रतिनिधि थे। इनमें से अधिकाश युक्त प्रान्त के थे, जो बुलन्दशहर, अलीगढ, आगरा, बरेली, कानपुर, फर्रुखाबाद, फतहपुर, इलाहाबाद, बलिया, आजमगढ, अलमोडा, बिजनौर, बादा, देहरादून, एटा, इटावा, फैजाबाद, गाजीपुर, गोडा, गोरखपुर, हमीरपुर, जालौन, झासी, जौनपुर, मैनपुरी, मेरठ, मिर्जापुर, मुरादाबाद, प्रतापगढ, रायबरेली, सहारनपुर, शाहजहांपुर, उन्नाव, आदि जिलो से अर्थात् युक्त प्रान्त के दो तिहाई से अधिक जिलों से आये थे। इसके अतिरिक्त बहुत से किसान प्रतिनिधि मध्यप्रदेश के खडवा, बिलासपुर, होशगाबाद से, बिहार के चम्पारन, शाहाबाद, पटना जिलो से, पंजाब के रोहतक, करनाल, हिसार आदि स्थानो से, मद्रास के नैलोर और चिनगलपुर से आये थे। इनके अतिरिक्त राजपूताना

के भरतपुर विजोलिया के कुछ किसान भी उपस्थित थे। मालवीयजी ने किसानो का वहुत हर्ष से स्वागत किया, उनसे प्रतिनिधि शुल्क लिये विना उन्हें प्रतिनिधि की हैसियत से भाग लेने की स्वीकृति दी। नि सन्देह इतनी वडी सख्या में पचास जिलो के किसानो की उपस्थिति भारत के राजनीतिक जीवन की महत्त्वपूर्ण घटना थी, भारत की राजनीतिक चेतना और जनजागृति का अच्छा प्रदर्शन था, इस वात की द्योतक थी कि किसानो मे भी जागृति पैदा होने लगी है और भविष्य में भारत के राजनीतिक आन्दोलन में उनका भी योगदान होनेवाला है।

अन्त में मालवीयजी ने अधिवेशन के प्रवन्धको को धन्यवाद देते हुए किसान और मुसलमान प्रतिनिधियो की उपस्थिति पर विशेष रूप से हर्ष प्रकट किया। उन्होने कहा. "ईश्वर की सृष्टि में मनुष्य-मनुष्य में कोई भेद नही है।...लोग पुरुष और स्त्री मे भेद करते है, पर जहाँ तक ईश्वर की ज्योति का प्रश्न है, दोनो में बिलकुल भेद नही है।"[१] उन्होने कहा कि स्त्रियो को देशहित के लिए काम करना चाहिए, उन्हे भय छोड देना चाहिए। "उन्हें विश्वास करना चाहिए कि ईश्वर का तत्त्व उनमें है और उन्हे अपनी रक्षा के लिए दूसरो की आवश्यकता नही है। जब तक प्रगति के क्षेत्र में वे आगे नही आती, तब तक देश के लिए उन्नति करना सम्भव नही है।"[२]

---

१. वही, पृ० १५०।

२ वही, पृ० १५१।

१२. रौलेट अधिनियम और पंजाब कांड

रौलेट कमेटी

प्रथम विश्वयुद्ध के जमाने में भारत रक्षा विधेयक को पारित कराते समय सरकार ने वायदा किया था कि युद्ध के बाद उसे रद्द कर दिया जायगा। जिन राजनीतिज्ञो ने उस समय उसका समर्थन किया था उन्होने सोचा था कि जर्मनी की पराजय के बाद भारतीयो को भी स्वतंत्र जीवन बिताने का अवसर प्राप्त होगा। पर ब्रिटिश सरकार भारत पर अपना आधिपत्य बनाये रखने के लिए किसी न किसी रूप में अपनी दमन शक्ति भी बनाये रखना चाहती थी।

इसलिए १० दिसम्बर सन् १९१७ को भारत सरकार ने न्यायाधीश सिडने रौलेट की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की। सिडने रौलेट के अतिरिक्त कलकत्ता हाईकोर्ट के न्यायाधीश सर वेसिल स्काट, मद्रास हाईकोर्ट के न्यायाधीश कुमार स्वामी शास्त्री, कलकत्ता हाईकोर्ट के वकील पर पी० सी० मित्र और इडियन सिविल सर्विस के सदस्य वरने लावेट इसके सदस्य थे। इस कमेटी ने वद बैठको में स्थिति की जाँच करके सस्तुति की कि भारत रक्षा अधिनियम के स्थान पर उससे मिलता जुलता एक स्थायी अधिनियम पास किया जाय, तथा राजविद्रोह की सम्भावनाओ को कम करने के लिए साधारण दण्डविधान को सशोधित कर उसे अधिक कडा बनाया जाय।

कमेटी की रिपोर्ट जुलाई सन् १९१८ में प्रकाशित की गयी। कांग्रेस ने तथा बहुत सी दूसरी सार्वजनिक संस्थाओ ने रिपोर्ट की कडी आलोचना की। पर सरकार ने इसकी उपेक्षा करते हुए कमेटी की सस्तुतियो के आधार पर दो विधेयको को, जो रौलेट बिल के नाम से विख्यात हुए, केन्द्रीय कौंसिल से पास कराने का निश्चय किया।

इन दो विधेयको में से पहला विधेयक मूल रूप से भारत रक्षा अधिनियम पर आधारित था, और उस अस्थायी अधिनियम की मूल व्यवस्था को बनाये रखने की भावना से प्रेरित था। राजद्रोह के क्रान्तिकारी और अराजक कामो को दृढता और आसानी से दवा देना ही इस सकट-कालीन विशेपाधिकार विधेयक का उद्देश्य था। यह विधेयक इस प्रकार के प्रयत्नो और षड्यत्रो से राज्य की व्यवस्था को सुरक्षित रखने के निमित्त संदिग्ध व्यक्तियो को बिना

मुकदमे के अपनी हिरासत मे रखने का, तथा उन्हे अपने आचरण के सवंध में जमानत देने के लिए, किसी विशेप स्थान में विशेप शर्तो के साथ रहने के लिए, एव किसी काम को न करने के लिए आदेश देने का प्रान्तीय सरकार को अधिकार देता था। इस विधेयक मे इस प्रकार के आदेशो के औचित्य की जाँच के लिए एक जज और एक गैर-सरकारी सदस्य की जाँच कमेटी की भी व्यवस्था थी। इस विधेयक मे सदिग्ध व्यक्तियो के विरुद्ध मुकदमो की सुनवाई के लिए तीन जजो के ऐसे विशेप न्यायालय की व्यवस्था भी थी, जिसके फैसले की कोई अपील नही थी, और जो विशेप क्रियाप्रणाली द्वारा उनकी सुनवाई कर सकता था। यह विधेयक भारत रक्षा अधिनियमो में गिरफ्तार व्यक्तियो को नजरवन्द बनाये रखने का अधिकार भी प्रान्तीय सरकार को प्रदान करता था। देश के स्थायी दण्डविधान अर्थात् फौजदारी कानून को संशोधित कर उसे अधिक कडा बनाना ही दूसरे विधेयक का उद्देश्य का।

१८ जनवरी सन् १९१९ को पहला विधेयक सरकारी गजट में प्रकाशित किया गया। उसके दो सप्ताह बाद ही गृह सदस्य ने कौसिल मे प्रस्ताव किया कि इसे प्रवर समिति के पास भेज दिया जाय। श्री विट्ठल भाई पटेल ने सशोधन उपस्थित किया कि इस पर विचार स्थगित किया जाय। सर्व श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और जी० एस० खापर्डे तथा महाराजा साहब महमूदाबाद, मौलाना मजहरुल हक, जिना साहब और मालवीयजी ने सशोधन का समर्थन करते हुए विधेयक का डटकर विरोध किया। उन्होने उसे असामयिक, अनावश्यक, दमनकारी बताया, और सरकार को सलाह दी कि वह उसे वापस ले ले। गाधीजी ने तो घोपित किया कि यदि विधेयक पास कराया जायगा, तो वे उसके विरुद्ध देशव्यापी आन्दोलन करेंगे।

मालवीयजी का विरोध

मालवीयजी ने कौसिल मे इसका विरोध करते हुए कहा कि यह विधेयक एक ऐसे यन्त्र का निर्माण करना चाहता है जिससे प्रजा की स्वतन्त्रता का अपहरण हो सकता है। ऐसे दमनकारी विधेयक पर काफी गभीरता और बहुत सावधानी से विचार करना बहुत जरूरी है। कौसिल की साधारण कार्यप्रणाली की उपेक्षा करते हुए उसके सम्बन्ध में अपवादात्मक प्रणाली का अनुसरण, उन्होने कहा, सर्वथा अनुचित है, क्योकि यदि साधारण प्रणाली का उपयोग किया गया होता, तो विधेयक पर विचार करते समय कौसिल को बहुत से विधि-विशेपज्ञो तथा सम्मानित व्यक्तियो और सस्थाओ की प्रतिक्रियाओ और

विचारो का ठीक-ठीक पता हो पाता। उन्होने यह भी कहा कि जिन तथ्यो के आधार पर रौलेट कमेटी ने इस विधेयक की सस्तुति की है उन सबको प्रकाशित किये बिना उसे पास करने को कौंसिल से कहना भी ठीक नही है।[1]

मालवीयजी ने कहा कि भारत रक्षा विधेयक को युद्ध की विशेष स्थिति में कौंसिल ने पास किया था। युद्ध के बाद शान्ति की स्थिति मे उस प्रकार के विधेयक को पारित करना किसी तरह भी कौसिल के लिए उचित नही होगा। शान्ति और समझौते के युग मे साधारण न्यायव्यवस्था की उपेक्षा करते हुए प्रशासनिक अधिकारियो को विशेप अधिकार प्रदान करना, उन्हें मनमाने ढग पर प्रजा की स्वतत्रता पर आक्रमण करने का अधिकार देना, उचित और न्यायसगत नही समझा जा सकता।[2]

मालवीयजी ने कहा कि वे राजद्रोह की निन्दा करते है, क्योकि उनके विचार में वह स्वत बुरा है, और हमारे देशवासियो को हानि पहुँचाता है। उन्होने कहा कि मैं उन नवयुवको के लिए हृदय से दु खी हूँ जो राजद्रोह के लिए पथभ्रष्ट किये गये है, और उन्हे पथ भ्रष्टता के परिणामो से बचाने के लिए संभव और साध्य न्यायसगत उपायो का समर्थन करने को तैयार हूँ। पर उन्होने कहा कि हमें "भारत की उज्ज्वल कीर्ति और प्रतिष्ठा तथा न्याय की प्रक्रिया और वातावरण को भी बनाये रखना है।"[3]

मालवीयजी ने कहा कि रौलेट कमेटी ने जिन तथ्यो को अपनी रिपोर्ट में प्रकाशित किया है, उनको पढने से तो पता चलता है कि सन् १८९७ से पहले इस देश मे राजद्रोह से सबधित अपराधो का अभाव था, और १८९७ मे भी जो दो हिंसात्मक काड बम्बई प्रान्त में हुए, उनका भी राजद्रोह से कोई सम्बन्ध नही था। उन्होने कहा कि कमेटी ने यह भी स्वीकार किया है कि इस समय बम्बई प्रान्त में राजद्रोहात्मक क्रान्तिकारी आन्दोलन व्यवहार मे निर्मूल हो गया है, तथा युक्त प्रान्त, मद्रास, मध्य प्रदेश एव बिहार और उडीसा में भी क्रान्तिकारी भावनाओ का बहुत कम प्रभाव हुआ है। इस प्रान्तो की जनता शान्ति-प्रिय है, वह विद्रोहात्मक कामो को नापसन्द करती है, यदि कोई क्रान्तिकारी बाहर से आकर कोई उपद्रव करता है, तो उसे जनसाधारण का समर्थन प्राप्त नही होता। इन सबसे यह स्पष्ट है कि कमेटी की राय में पजाब और बगाल ही क्रान्तिकारी और राजद्रोहात्मक कामो के मुख्य केन्द्र है।[4]

---

१ प्रोसीडिंग्स—इडियन लेजिस्लेटिव कौसिल, सन् १९१८, जि० ५७।
२. वही, जि० ५७। ३ वही, जि० ५७।
४. वही, जि० ५७।

मालवीयजी ने सरकार से पूछा कि पजाब और बगाल के कतिपय व्यक्तियो के विद्रोहात्मक कामो के कारण सारे देश को अपराधी ठहराना, और देशभर के लिए दमनकारी कानून बनाना किस तरह न्यायसंगत समझा जा सकता है।[1]

पजाब की स्थिति का विश्लेषण करते हुए मालवीयजी ने कहा कि उनकी राय मे जिन सिक्खो ने गदर आन्दोलन मे भाग लिया "उनके पास प्रकोप के पर्याप्त कारण थे" और उनके साथ अधिकारियो ने जिस प्रकार का व्यवहार किया उसने 'दुर्भाग्यवश उग्र कोपाग्नि में आहुति" का काम किया। मालवीयजी ने कहा कि कमेटी ने यह कहते हुए कि 'यदि बलवाई सब प्रकार का उपद्रव मचाते, तो व्यवस्था का सारा ढाचा और व्यवस्था सम्बन्धी सभी नियम नष्ट हो जाते," यह भी स्वीकार किया है कि 'अधिक उत्साही, साहसी, शक्तिसम्पन्न सिक्खो के बीच-बचाव करने से गदर सम्बन्धी विचार और उसके प्रयोग की अवधि अधिक काल तक नही रही।" मालवीयजी ने पूछा कि "कुछ सिक्खो में कुछ काल के लिए बुरी भावना रहना सारे प्रान्त पर दमनकारी कानून लादने का पर्याप्त कारण कैसे हो सकता है ?"[2]

बगाल की स्थिति का विश्लेषण करते हुए मालवीयजी ने कहा . "सन् १९०५ तक बंगाल में कही भी राजद्रोहात्मक और क्रान्तिकारी भावनाओ का चिह्न नही था", और उसके बाद लार्ड कर्जन का विश्वविद्यालय अधिनियम और बगाल के बटवारे ने बंगाल के नवयुवको में इन भावनाओ को विकसित किया। यदि सरकार अपनी जिद पर डटी न रहती, और अनुभवी नरमदलीय राजनीतिज्ञो के शान्तिमय सवैधानिक प्रयत्नो पर ध्यान देकर बगाल के विभाजन को रद्द कर देती, तो राजद्रोह की भावनाएँ न पनप पाती। सन् १९११ में बगला भाषा-भाषी क्षेत्रो को फिर एक प्रान्त मे मिला देने के बाद राजद्रोही कामो का एक बडा कारण खत्म हो जाता है।[3]

मालवीयजी ने स्वीकार किया कि विश्वयुद्ध के जमाने में जर्मनी के ब्रिटेन-विरोधी षड्यन्त्रो ने इस देश में राजद्रोह के क्रियाकलापो को प्रोत्साहित किया, पर अब जबकि जर्मनी की शक्ति और उसके साथ ही उसके षड्यन्त्रो की सम्भावनाएँ नष्ट हो गयी हैं, राजद्रोह के उन क्रियाकलापो को, जिनका उद्गम विश्वयुद्ध से है, नियंत्रित करने के लिए किसी नये कानून की जरूरत नही है।

---

१. वही, जि० ५७।
२. वही, जि० ५७।
३. वही, जि० ५७।

भारत रक्षा अधिनियम, जो विश्वयुद्ध से सम्बन्धित सन्धि हो जाने के बाद भी छ महीने तक चालू रहेगा, उन्हे कन्ट्रोल करने के लिए पर्याप्त है।[१]

मालवीयजी ने कहा कि उनकी युक्तियुक्त धारणा है कि नये राजनीतिक सुधारो के आरम्भ होने पर वस्तुस्थिति में भी सुधार होगा, जिसके फलस्वरूप उन क्रान्तिकारी अपराधो मे कमी की आशा की जा सकती है, जिनकी उत्पत्ति "देश के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक असन्तोष के कारण हुई है।"[२]

मालवीयजी ने कहा कि रौलेट कमेटी का यह सन्देह कि "सिपाहियो में अन्तोष की भावना जगाना सम्भव होगा", उन व्यक्तियो की राजभक्ति पर अत्यन्त निर्दयतापूर्ण आघात है, जिन्होने अपनी जान पर खेलकर साम्राज्य की रक्षा की है, और जिन्हें युद्धकाल में "पथभ्रष्ट करने के सभी प्रयत्न विफल हो चुके है।" उन्होने कहा : "यदि सरकार उचित मार्ग का अवलम्बन करेगी, यदि सरकार व्यवहारत, यथार्थत और उदारतापूर्वक उनके त्याग और बलिदान को स्वीकार करेगी यदि सरकार उन्हें साधारण पशु की अपेक्षा अधिक उत्तम जीवन व्यतीत करने का अवसर देने के लिए प्रयत्नशील होगी, तो कोई भी शक्ति उन्हें उनकी दृढ राज्यनिष्ठा और राजभक्ति से विचलित करने में समर्थ नही होगी।"[२]

मालवीयजी ने स्वीकार किया कि "कोई भी गम्भीर और उत्तरदायी व्यक्ति निश्चयपूर्वक नही कह सकता कि युद्ध के बाद भारत में क्रान्तिकारी और राजद्रोहात्मक अपराध नही हो सकते। अमरीका आदि देश इस प्रकार के अपराधो से मुक्त नही हुए है। यूरोपीय देशों में भी ऐसे अपराध होते रहते हैं। किसी भी देश में देश के अधिकाश निवासियो के राजभक्त होने पर भी एक उन्मत्त, एक पथभ्रष्ट, एक ऐसा व्यक्ति जो चित्तविक्षिप्तता के रोग से ग्रसित है राजद्रोहात्मक अपराध कर सकता है। किन्तु इस आधार पर सारे देश के लिए प्रस्तावित विधान के समान भयकर विधेयक कौसिल से स्वीकार नही कराया जा सकता।"[४]

रौलेट कमेटी ने, उन्होने बताया, स्वीकार किया है कि युद्ध के बाद स्थिति सुधर भी सकती है, बिगड भी सकती है। वह इतनी अच्छी हो सकती है कि जब किसी विशेष दण्ड-व्यवस्था की कोई आवश्यकता न हो, पर ऐसी बिगड भी सकती है, जिसे साधारण व्यवस्था न सुधार सके, और प्रस्तावित प्रयोग अनिवार्य

---

१ वही, जि० ५७। २. वही, जि० ५७।
३ वही, जि० ५७। ४. वही, जि० ५७।

हो जाय। ऐसी स्थिति में मालवीयजी की राय मे हमें इस आधार पर ही काम करना चाहिए कि देश को "सुखद विकल्प" प्राप्त होगा। यदि दशा बिगडी, तो उसे सुधारने के लिए उचित व्यवस्था की जायगी। उन्होने कहा कि हमको इस धारणा के आधार पर कि सुखद सम्भावना की सिद्धि होगी ही नही और दु खद घडिया ही आवेगी, प्रस्तावित व्यवस्था की रचना के लिए मत देना उचित नही है।[1]

मालवीयजी ने प्रस्तावित विधेयक की विभिन्न धाराओ मे निहित नीतियो का विश्लेपण करते हुए कहा कि वे बहुत ही आपत्तिजनक है, नागरिको की स्वतन्त्रता का अपहरण करनेवाली है, और वे अभियुक्तो को अपने को निर्दोप सिद्ध करने की भी न्यायसगत सुविधाओ से वचित करती हे।[2]

मालवीयजी ने सरकार से अपनी स्थिति पर फिर से विचार करने की प्रार्थना करते हुए कहा कि उन्हे ता आशा थी कि "विगत महायुद्ध में भारतीयों ने जो महान् कार्य किया है, उसको स्वीकार करते हुए भारत सरकार किसी भी ऐसे प्रस्ताव का साहस और दृढता से विरोध करेगी, जिसके द्वारा ऐसे विधान को स्थायी स्वरूप दिया जाता हो जिसकी सृष्टि भारत रक्षा अधिनियम के रूप में केवल युद्ध काल के लिए हुई थी।"[3]

अन्त मे मालवीयजी ने कहा "परिस्थिति की माग यह है कि समस्त जनता को अधिक उदार व्यवस्था प्रदान कर उनके हृदय को अपनी ओर आकर्पित किया जाय, रगभेद का उन्मूलन किया जाय, तथा नये राजनीतिक सुधारो को शीघ्र कार्यान्वित किया जाय"।[4] उन्होने कहा : "नौकरियो के प्रश्न को अधिक उदारभाव से हल कीजिये, भारतीयो को सेना में कमीशन देने में उदार भाव का प्रयोग होने दीजिये, व्यवसाय को प्रोत्साहन और प्रवर्धन प्राप्त होने दीजिये, शिक्षा मे नयी प्रणाली का प्रसार होने दीजिये और नवयुवको को जीवन-यापन के नये साधन प्रदान कीजिये, तब देश मे कृतज्ञता के भाव व्याप्त होगे, देश में सतोप और सद्भावना की वृद्धि होगी, और हमको क्रान्तिकारी अपराधो का नाम तक न सुन पडेगा। जव यह सब होगा तब भी कही ऐसे अपराध दिखाई देंगे, तब उनका सामना भी अधिक उग्र नीति के अवलम्बन से नही बल्कि सदय भाव से होना चाहिए, न कि प्रस्तावित विधेयक के प्रयोग द्वारा।" इन शब्दो में मालवीयजी ने रौलेट बिल का विरोध किया।[5]

---

१ वही, जि० ५७। २ वही, जि० ५७।
३ वही, जि० ५७। ४. वही, जि० ५७।
५ वही, जि० ५७।

सरकार का आग्रह

सरकार ने श्री विठ्ठल भाई पटेल के संशोधन को स्वीकार करने से इनकार कर दिया। प्रवर समिति ने, जिसमें सरकार के समर्थकों का भारी बहुमत था, विधेयक में निहित सिद्धान्तो को स्वीकार करते हुए सरकार की अनुमति से संस्तुति की कि विधेयक तीन वर्ष के लिए ही पारित किया जाय। विठ्ठलभाई पटेल, जी० एस० खापर्डे और मालवीयजी ने प्रवर समिति के सदस्यो की हैसियत से समिति की रिपोर्ट पर मतभेद का तगडा नोट लिखा। प्रवर समिति के सदस्या की हैसियत से समिति की रिपोर्ट पर बोलते हुए श्री श्रीनिवास शास्त्री तथा डाक्टर तेजबहादुर सप्रू आदि ने सरकार से अनुरोध किया कि जनमत की प्रतिक्रियाओ को देखते हुए विधेयक वापस ले लिया जाय। पर सरकार अपनी जिद पर डटी रही और उसने सरकारी सदस्यो के बल पर कौंसिल से विधेयक पास करा लिया।

इस्तीफे

इस पर मालवीयजी, जिना साहब, मौलाना मजहरुल हक आदि चार व्यक्तियो ने कौंसिल की सदस्यता से इस्तीफे दे दिये। जिना साहब का त्यागपत्र नि.सदेह सबसे तगडा था। उन्होने लिखा कि भारी जनमत के विरुद्ध जिस तरह यह कानून पास कराया गया है, उसने केन्द्रीय कौंसिल का खोखलापन सिद्ध कर दिया है, साबित कर दिया है कि वह 'विदेशी सरकार द्वारा चालित एक मशीन है'। उन्होने लिखा कि ब्रिटिश न्याय पर से जनता का विश्वास डगमगा गया है, क्योंकि इस कानून द्वारा 'न्याय के मौलिक सिद्धान्तो का उन्मूलन तथा जनता के सवैधानिक सिद्धान्तो का अपहरण किया गया है।' जिना साहब ने अपने त्यागपत्र में यह भी लिखा कि यह कानून उन सिद्धान्तो के विपरीत है जिसकी उद्घोषणा युद्ध काल में भारत सरकार और ब्रिटिश सरकार ने समय समय पर की थी। उन्होने लिखा कि उनकी राय में जो सरकार शान्तिकाल में इस प्रकार का कानून पास कराती है, वह सभ्य सरकार कहलाने के दावे को खो देती है।

मालवीयजी का पत्र

मालवीयजी ने अपने त्यागपत्र के अतिरिक्त गवर्नर-जनरल को अलग से एक पत्र लिखा, जिसमें उनसे अनुरोध किया कि जनता की प्रतिक्रियाओ को देखते हुए इस नये कानून को कम-से-कम छः महीने चालू नही किया जाय। वाइसराय ने इसके उत्तर मे लिखा—'आपने विधेयक को मार डाला है, वह अब चालू नही

किया जायगा।' सरकार दूसरे रौलेट बिल को कौंसिल के अगले सत्र में पेश करना चाहती थी, पर जनता के क्षोभ, रोप और प्रतिक्रियाओ को देखकर उसने ऐसा नही किया।

गाधीजी का आन्दोलन

इन कानून के विरुद्ध आन्दोलन करने के लिए गाधीजी ने जनता का आवाहन किया। भारत सरकार ने उसे दवाने का निर्णय किया, और पजाव के गवर्नर सर माइकल ओडायर ने आन्दोलन के साथ साथ पजाव के सारे राजनीतिक जीवन को कुचल डालने का निश्चय किया। गाधीजी ने राजनीतिक कार्यकर्ताओ को सत्याग्रह की प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर करने तथा 'जनान्दोलन में आगे वढकर भाग लेने को' आवाहन किया। सर्वश्री डी० ई० वाचा, श्रीनिवास शास्त्री, सुरेन्द्र नाथ वनर्जी ने एक वक्तव्य द्वारा गाधीजी के जनान्दोलन को हानिकर वताते हुए उसका विरोध किया।

गाधीजी ने इसकी उपेक्षा करते हुए नये कानूनो के विरोध मे देशव्यापी प्रदर्शन करने के लिए ३० मार्च की तारीख निश्चित की। यद्यपि आगे चलकर प्रदर्शन और हडताल की तिथि ३० मार्च के वजाय ६ अप्रैल कर दी गयी थी, पर दिल्ली में ३० मार्च को ही जनता द्वारा प्रदर्शन हुए, सारे नगर में हडताल मनायी गयी। इस अवसर पर यद्यपि सायंकाल को स्वामी श्रद्धानन्द की अध्यक्षता में आयोजित सभा में विल्कुल शान्ति रही, पर उससे पहले ही रेलवे स्टेशन पर कुछ उपद्रव हुआ, तथा आगे चल कर पुलिस तथा फौज ने गोली चलायी, और उसी दिन ८ १० आदमी गोली का शिकार हो गये। सरकार के इस व्यवहार से क्षुब्ध होकर मालवीयजी ने सत्याग्रह की प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर कर दिये। ६ अप्रैल को सारे देश में शान्तिपूर्वक हडताल मनायी गयी।

९ अप्रैल को पंजाव में रामनवमी धूमधाम से मनायी गयी, और हिन्दू-मुस्लिम एकता के जोर से नारे लगाये गये। उसी दिन सायंकाल को गाधी जी, जो वम्वई से दिल्ली जा रहे थे, पजाव में पलवल स्टेशन पर गिरफ्तार कर लिये गये। गाधीजी की गिरफ्तारी के समाचार ने दिल्ली, पंजाव और अहमदावाद में जनता के रोप और उत्तेजना को काफी वढा दिया। दिल्ली में आन्दोलन सत्रह अप्रैल तक चलता रहा, अहमदावाद मे उसने उपद्रव का रूप धारण कर लिया, पर गाधीजी ने वहाँ पहुँच कर १४ अप्रैल को शान्ति स्थापित कर दी। पर पजाव में, विशेपतः अमृतसर में स्थिति ने भयकर रूप धारण कर लिया। १७ अप्रैल को गाधीजी ने आन्दोलन वापस ले लिया।

पंजाब कांड

महात्मा गाधी की गिरफ्तारी के अतिरिक्त डाक्टर सत्यपाल और डाक्टर शैफउद्दीन किचलू की गिरफ्तारी, सर गाइकल ओडायर की नादिरशाही, तथा जनरल डायर की क्रूरता पंजाब की भयंकर स्थिति के मूल कारण थे। जब १० अप्रैल को डाक्टर सत्यपाल और डाक्टर किचलू की गिरफ्तारी और निष्कासन के समाचार अमृतसर की जनता को मिले, तब एक उत्तेजित भीड डिप्टी कमिश्नर से अपने नेताओ की रिहाई की माँग के लिए उनके निवास-स्थान की ओर बढी। पर वह रास्ते मे ही रोक ली गयी, गोली चलायी गयी, दो आदमी कत्ल हुए। भीड अपने साथियो की लाशो के साथ नारे लगाती वापस चली गयी। पर कुछ देर वाद एक दूसरी उत्तेजित भीड डिप्टी कमिश्नर के वगले की ओर बढी। इस भीड पर भी गोलियो का प्रहार किया गया, और ग्यारह आदमी मार डाले गये। इसमे जनता और उद्विग्न हो गयी, और भीड ने दो यूरोपियनो को मार डाला, तथा एक गिरजा-घर को आग लगा दी। डिप्टी कमिश्नर ने शान्ति की व्यवस्था का सारा भार फौज को सौंप दिया, और इस तरह १० तारीख की रात को ही अमृतसर में क्रूर सैनिक शासन स्थापित हो गया।

१३ अप्रैल को वैशाखी के दिन जनरल डायर ने जलियाँवाला बाग में एकत्रित निर्दोष निहत्थी जनता पर, जिनमें बच्चे और स्त्रियाँ भी थी, बिना किसी चेतावनी के इस तरह गोली चलाने को आज्ञा दी कि लोगो को भागकर निकलना भी कठिन हो गया। गोली दस मिनट तक चलती रही, १६०० चक्र चले, लगभग चार सौ आदमी मारे गये, और १२०० आदमी जख्मी हुए[1], जिन्हे अस्पताल पहुँचाने का भी सरकार की ओर से कोई प्रवन्ध नही किया गया। भारतीय जनता को आतंकित और अपमानित करने के लिए उस सडक पर, जहाँ दो यूरोपियन मारे गये थे, हिन्दुस्तानियो को पेट के बल रेंगते हुए चलने का आदेश जारी किया गया।

सर माइकल ओडायर

ओडायर ने जनरल डायर के इन कामो की प्रशंसा करते हुए पंजाब के कई जिलो में मार्शल-ला चालू करके वहाँ का सब प्रबन्ध फौजी अफसरो के सुपुर्द कर दिया। मार्शल-ला अधिकारियो ने जनता को बुरी तरह अपमानित,

---

१. हंटर कमेटी रिपोर्ट, पृ० ११३।

आतंकित, ताडित और आहत किया, और इस सबके लिए विलक्षण अमानुषिक प्रक्रियाओ का प्रयोग किया। सार्वजनिक स्थानो पर रडियो के सामने बिल्कुल नंगा करके मर्दो को कोडो से बुरी तरह पीटा गया। हजारो विद्यार्थियो को कई दिन तक प्रतिदिन १६ मील चलकर हाजिरी देने के लिए बाध्य किया गया। पांच-सात वर्ष के बच्चो को परेड पर जाकर झडे को सलामी देने के लिए मजबूर किया गया। लगभग पांच सौ विद्यार्थी और अध्यापक गिरफ्तार करके तीन दिन तक लाहौर के किले में बन्द रखे गये। लाहौर के एक गांव मे सारी बारात को कोडो से पीटा गया। बादशाही मस्जिद छ सप्ताह के लिए बन्द कर दी गयी। लाहौर मे इस्लामिया स्कूल के छ सबसे बडे बच्चो को छांट कर पीटा गया। मकानो के मालिको पर मार्शल-ला सम्बन्धी पोस्टरो की रक्षा का उत्तरदायित्व लादा गया। जिन भद्र पुरुषो ने युद्ध में सरकार की सहायता की थी, उन्हे भी बहुत अपमानित ढग से नगर मे घुमाकर बिना किसी कारण हवालात में बन्द कर दिया गया। गिरफ्तार सज्जनो को लोहे के पिंजडे में बन्द कर दिया गया। हवाई जहाज से जनता पर बम फेके गये, हिन्दू-मुस्लिम एकता का उपहास उडाने के लिए हिन्दू-मुसलमान की जोडियो को हथकडी बाँध कर नगर में फिराया गया। बहुत से लोगो को हथकडियो और रस्सियो में बाँधकर पन्द्रह घटे तक खुली ट्रको में रखा गया। हिन्दुस्तानियो के घरो से पानी और बिजली काटी गयी, और बिजली के पंखे वहाँ से निकाल कर यूरोपियनो को उनके प्रयोग के लिए दिये गये। हिन्दुस्तानियो से उनकी गाडियाँ छीन कर यूरोपियनो मे बाँट दी गयी। अप्राप्त व्यक्तियो की जायदादें जब्त कर ली गयी, या बर्बाद कर दी गयी, और उनके सम्बन्धियो को बन्धको के रूप मे गिरफ्तार कर लिया गया। बहुत से स्थानो पर निर्दोष व्यक्तियो को दाण्डिक (प्यूनिटिव) पुलिस तथा क्षतिपूर्ति का भार वहन करना पडा।

गवर्नर-जनरल ने एक अध्यादेश द्वारा मार्शल-ला ट्रिब्युनल को अपने ढग पर साधारण फौजदारी के अभियोगो की, तथा फौजदारी अदालतो को अर्थात् जिलाधिकारियो को साधारण कार्यप्रणाली की उपेक्षा करते हुए सरसरी ढग से मार्शल-ला से सबधित मुकदमो की न्यायिक जाच करने का अधिकार दे दिया। मार्शल-ला अदालतो (ट्रिब्युनल) तथा सरसरी (समरी) अदालतो द्वारा खुले तौर पर न्याय का उपहास उडाया गया। उन्होने मनमाने ढग पर अभियुक्तो को अपनी सफाई पेश करने का मौका दिये बिना कडी सजाएँ दे दी। इस तरह इन अदालतो द्वारा न्याय की भ्रूणहत्या की गयी, उन्हे जनता के सताने का साधन बना लिया गया। उनके द्वारा जनता को नैतिक वेदना और भौतिक कष्ट दिये

गये। १०८ आदमियो को फासी की, तथा सैकडो को जल्दी-जल्दी आजीवन दण्ड की अर्थात् २० वर्ष की सजा दे दी गयी। कुल मिलाकर इन विशेप अदालतो द्वारा ७००० वर्ष से अधिक का दण्ड दिया गया।

मार्शल ला के जमाने में सरकार ने समाचारो पर भी इतना कडा नियंत्रण (सेन्सर) लागू रखा कि देश के नेताओ तक के लिए स्थिति का सही अनुमान लगाना कठिन था। कतिपय समाचारपत्रो और नेताओ के कहने पर मई में दीनबन्धु सी० एफ० एंडरूज ने पजाब जाने की कोशिश को, पर सरकार ने उन्हें गिरफ्तार करके वापस लौटा दिया। अभियुक्तो की पैरवी के लिए सर्वश्री मोतीलाल नेहरू, चितरजनदास, अर्डले नार्टन आदि वकीलो ने पंजाब जाना चाहा, पर उन सब को भी पंजाब सरकार ने इजाजत नही दी। उस समय जबकि गाधीजी ने आन्दोलन बन्द कर दिया था, और सरकार के आदेश पर बम्बई प्रान्त से बाहर जाना बन्द कर दिया था, किसी दूसरे नेता या कार्यकर्ता के लिए सरकार की आज्ञा के विरुद्ध पजाब में जाने का प्रयास करना सभव नही था।

कांग्रेस कमेटी की बैठक

ऐसो स्थिति में १९ और २० अप्रेल को बम्बई में मालवीयजी की अध्यक्षता में अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी की बैठक हुई। उसने सरकार की भर्त्सना करते हुए पंजाब, दिल्ली आदि स्थानो पर सरकार के अफसरो और कर्मचारियो द्वारा किये गये अत्याचारो की जाच की माग की, तथा गाधीजी पर लगाये गये प्रतिबन्धो की कडी आलोचना की। सरकार की १४ अप्रैल की विज्ञप्ति का उत्तर तैयार करने के लिए एक उपसमिति गठित की गयी, तथा काग्रेस की ओर से नये सुधारो के सम्बन्ध में गवाही देने को जाने वाले शिष्ट-मडल को आदेश दिया गया कि वह पजाब के अत्याचारो के सबध में ब्रिटेन के राजनीतिज्ञो से बातचीत करे। काग्रेस की ओर से मालवीयजी ने काफी बडा समुद्री तार भी ब्रिटेन के प्रधान-मंत्री को भेजा।

८ जून सन् १९१९ को प्रयाग में अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी की बैठक हुई। इस बैठक में सरकार से माग की गयी कि फौजी कानून फौरन हटा लिया जाय, और घटनाओ की जाच के लिए एक कमेटी नियुक्त की जाय। यह भी माग की गयी कि यह कमेटी यह भी जाच करे कि पजाब के लेफ्टिनेंट-गवर्नर सर माइकल ओडायर ने युद्ध के जमाने में फौज में सिपाहियो को भरती करने के लिए, तथा युद्ध में चन्दा जमा करने के लिए जो काम किये, और पजाब की

दुर्घटनाओ के सवंध में जो आदेश जारी किये गये, वे कहा तक ठीक थे ? काग्रेस कमेटी ने पंजाब सरकार के अफसरो और कर्मचारियो के अत्याचारो की जाच के लिए तथा पीडितो की सहायता के लिए मालवीयजी, पंडित मोती लाल नेहरू, स्वामी श्रद्धानन्द आदि की एक उपसमिति भी गठित की। कमेटी की ओर से मालवीयजी ने ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री और उपभारत-मन्त्री को तार भेजे कि प्रस्तावित जाच होने तक फौजी कानून के अन्दर दी गयी सजाएँ स्थगित रखी जावे।

पंजाब मे काम

इस विषम परिस्थिति में मालवीयजी ने अत्याचारो की जाँच तथा पीडितो की सहायता के लिए पजाव जाने का निश्चय किया, और उन्होने इसकी सूचना वाइसराय तथा पंजाव सरकार को भेज दी। अमृतसर से २०० मील इधर अम्वाला स्टेशन पर उन्हे जगाकर कतिपय सरकारी अधिकारियो ने पंजाव सरकार की इस आज्ञा से उन्हे सूचित किया कि वे पजाव में प्रवेश न करें। उन्होने सरकारी अधिकारियो को साफ तौर पर कह दिया कि जब तक मुझे गिरफ्तार करके गाडी से निकाला नही जायगा, मैं न तो गाडी से उतरूंगा और न वापस जाऊँगा। अमृतसर पहुँच कर एक तागेवाले की सहायता से वे स्टेशन के पास की धर्मशाला में चले गये। लगभग एक घटे के बाद जव स्नान और पूजा-पाठ से निवृत्त होकर वे शहर जाने के लिए धर्मशाला से बाहर निकलने लगे, तव एक व्यक्ति ने अपने को उस स्थान का मालिक और मुख्य ट्रस्टी वताते हुए उनका सामान वाहर निकाल कर धर्मशाला के मुख्य द्वार पर ताला लगा दिया। सडक पर उन्हे कुछ नवयुवक मिले। उनसे उन्होने किसी दूसरी धर्मशाला मे ठहरने के सम्बन्ध में वात-चीत की। इन नवयुवको ने यह समझकर कि कही किसी दूसरी धर्मशाला में भी मालवीयजी को इसी प्रकार की परिस्थिति का सामना न करना पडे, उन्हे डाक्टर सत्यपाल के घर चलने की सलाह दी। डाक्टर सत्यपाल साहव की धर्मपत्नी उन्हें अपने यहा ठहराने को राजी हो गयी, और मालवीयजी वहा रहने लगे।

कुछ दिन वाद वे अपने साथ श्री वेकटेश नारायण तिवारी को, जो उस समय प्रयाग सेवा समिति के मन्त्री थे, और कुछ स्वयंसेवको को ले आये। एक हजार रुपये प्रतिदिन की वकालत का मोह छोडकर पडित मोतीलाल नेहरू भी आ गये। पंजाव के सुपुत्र स्वामी श्रद्धानन्द ने भी काम शुरू कर दिया। आगे चलकर दीनवन्धु सी० एफ० एडरूज आदि भी पजाव आ गये। जाँच और सहायता का काम जोर शोर से शुरू हो गया।

जून के अन्तिम सप्ताह में मालवीयजी, श्रद्धानन्दजी आदि अमृतसर में विभिन्न घटना-स्थलो को देखने गये। उन्होने उन गिरजाघरो को देखा जिनमे आग लगा दी गयी थी। वे जलियावाला बाग भी गये, जहाँ बडी निर्दयता से निहत्थी जनता पर गोली चलायी गयी थी। वहाँ उन्होने घायलो से घटना की दर्दनाक कहानी, तथा मृतको के परिवारो का विलाप सुना। वहाँ उन्हे पता चला कि किस तरह छोटे-छोटे अवोध वच्चो को अपनी जान गँवानी पडी। इसके वाद मालवीयजी और मोतीलालजी लाहौर, गुजरावाला आदि गये, और वहाँ उन्होने दुर्घटनाओ के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की, और तथ्यो को इकट्ठा किया। उधर दीनवन्धु एडरूज ने वहुत से तथ्य जमा किये। श्री वेंकटेश नारायण तिवारी ने सेवा समिति के स्वयसेवको द्वारा जलियावाला बाग के गोलीकाड के मृतको की सूची तैयार करना शुरू की, और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उनकी सख्या पाच सौ के लगभग होगी। उन्होने लाहौर, सियालकोट, गुरदासपुर आदि जिलो के गावो में भी आहतो, मृतको और कैदियो के परिवारो की सहायता के लिए स्वयसेवक भेजे, और लगभग पाच सौ दु खी परिवारो की सहायता की। इन नेताओ और कार्यकर्ताओ की उपस्थिति और तत्परता ने पजाव की जनता में ढाढस और साहस का सचार किया। प्रारम्भ मे कुछ घवडाते हुए, आगे चलकर खुले तौर पर, अभियुक्तो और अभिशासितो के सम्वन्धियो और मित्रो ने अपनी शिकायतें और फरयादे उन्हें वतायी।

काग्रेस कमेटी की वैठक

१९ और २० जुलाई सन् १९१९ को कलकत्ते में मालवीयजी की अध्यक्षता मे अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी की बैठक हुई। मालवीयजी ने कमेटी के सदस्यो को पजाव की स्थिति वतायी। कमेटी ने निश्चय किया कि काग्रेस का अधिवेशन पूर्व निश्चय के अनुसार दिसम्वर के अन्तिम सप्ताह मे अमृतसर में ही किया जाय। उसने माँग की कि भारत सरकार द्वारा नियुक्त कमेटी के वजाय सम्राट् द्वारा नियुक्त कमीशन के जरिये पजाव के अत्याचारो की ठीक तौर पर जांच करायी जाय। कमेटी ने सर शंकरन नायर को, जिन्होने फौजी कानून के प्रश्न पर गवर्नर-जनरल की कार्यपरिषद से इस्तीफा दिया था, वधाई दी। पजाव उपसमिति के लिए दस हजार रुपये भी जमा किये गये। इसके कुछ दिन वाद मालवीयजी ने एक लाख रुपये की अपील की।

काग्रेस के वार्षिक अधिवेशन का समुचित प्रवध करने का भार पंजाव के सम्मानित नेता स्वामी श्रद्धानन्द ने वहन किया। उनकी अध्यक्षता में स्वागत समिति गठित हुई, जिसने काफी सफलता के साथ अपने कर्तव्य का पालन किया।

केन्द्रीय कौंसिल

पंडित मोतीलाल नेहरू की सलाह से मालवीयजी ने अपने निर्वाचकों का पुनः विश्वास प्राप्त कर केन्द्रीय कौंसिल का सदस्य बनने का निश्चय किया, ताकि वे वहाँ जाकर सवैधानिक मंच से पंजाब सरकार के अत्याचारों का भंडा फोड़ सकें। उन्होंने कौंसिल के सदस्य की हैसियत से कौंसिल के आगामी सत्र के लिए पंजाब काड से संबंधित लगभग पिचहत्तर प्रश्नों का नोटिस दिया। उन्होंने इस प्रस्ताव का भी नोटिस दिया कि पंजाब काड की जाँच के लिए एक शाही कमीशन नियुक्त किया जाय। पर गवर्नर-जनरल चेम्सफोर्ड प्रश्न पूछने की इजाजत देने को राजी नहीं हुए। इस पर सब प्रश्न समाचारपत्रों में प्रकाशित करा दिये गये।

३ सितम्बर सन् १९१९ को गवर्नर-जनरल ने अपने संसदीय भाषण में हंटर साहब की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त किये जाने की घोषणा की। बम्बई के प्रसिद्ध वकील और उदार दलीय नेता सर चिम्मनलाल सीतलवाद तथा ग्वालियर के न्यायाधीश सुलतान अहमद कमेटी के सम्भावित हिन्दुस्तानी सदस्य थे। इस पर मालवीयजी ने संशोधन के रूप में इस आशय के प्रस्ताव का नोटिस दिया कि सर आसुतोष मुकर्जी, सर अब्दुर रहीम, और डाक्टर तेज बहादुर सप्रू में से एक व्यक्ति हंटर कमेटी का तीसरा भारतीय सदस्य नियुक्त किया जाय। गवर्नर-जनरल ने मालवीयजी को इस प्रस्ताव को पेश करने की इजाजत नहीं दी, यद्यपि आगे चलकर भारत सरकार ने लखनऊ के प्रसिद्ध वकील श्री तेजनारायण मुल्ला को भी हंटर कमेटी का सदस्य नियुक्त कर दिया।

कमीशन की माँग

इस स्थिति में मालवीयजी ने कौंसिल में अपना यह प्रस्ताव पेश किया कि पंजाब काड की जाँच के लिए सम्राट् द्वारा एक शाही कमीशन नियुक्त किया जाय, ताकि वह निष्पक्ष भाव से भारत सरकार की नीति-रीति की भी जाँच कर सके, और अपनी रिपोर्ट सीधे ब्रिटिश मन्त्रिमंडल के पास भेज सके। वे चाहते थे कि इस कमीशन को यह भी अधिकार हो कि वह फौजी अदालतों के फैसलों की जाँच करके जहाँ उचित समझे, वहाँ फौजी अदालतों द्वारा दिये गये दंडों को कम या रद्द करने की प्रिवी कौंसिल को संस्तुति कर सके।[1]

---

१. प्रोसीडिंग इंडियन लेजिस्लेटिव कौंसिल, सितम्बर सन् १९१९, जि० ५८, पृ० ७२-७९।

इस प्रस्ताव पर अन्तिम बार बोलते हुए मालवीयजी ने कहा कि देश भर में लोगो की यही इच्छा है कि पजाब काड की जाँच के लिए सम्राट् द्वारा कमीशन नियुक्त किया जाय। बम्बई हाईकोर्ट के भूतपूर्व न्यायाधीश सर नारायण चन्दावरकर जैसे सम्मानित व्यक्तियो ने, तथा करीब करीब सभी भारतीय समाचार पत्रो ने इसके पक्ष मे अपने विचार व्यक्त किये है। उन्होने कहा कि पंजाब के उपद्रवो मे जिन सात अग्रेजो की जानें गयी है, उनके लिए उन्हे अत्यन्त शोक है, पर इसके कारण हिन्दुस्तानियो के साथ किया गया अन्याय भुलाया नही जा सकता। निष्पक्ष जाँच नितान्त आवश्यक है। चूँकि पजाब काड का सम्बन्ध भारत सरकार के कतिपय निर्णयो और आदेशो से भी है, इसलिए भारत सरकार द्वारा नियुक्त कमेटी से निष्पक्ष जाँच की आशा नही की जा सकती।[1]

मालवीयजी ने कहा . "यदि भारत सरकार अथवा सपरिपद् गवर्नर-जनरल ने घोपणा की कि लाहौर और अमृतसर में खुल्लमखुल्ला वगावत थी, यदि सपरिपद् गवर्नर-जनरल ने लाहौर, अमृतसर तथा अन्य स्थानो मे फौजी कानून जारी करने की आज्ञा दी, यदि सपरिपद् गवर्नर-जनरल ने इसको उठा देने की चारो ओर से माँग होने पर भी उसे जारी रखा, यदि सपरिषद् गवर्नर-जनरल ने अपने एक साथी के इस प्रतिवाद पर कि फौजी कानून का अन्त होना चाहिए, उसका इस्तीफा लेकर फौजी कानून जारी रखा, तो श्रीमन् आपको उन मनुष्यो को क्षमा करना चाहिए, जो यह समझते और कहते है कि पजाब में अवलम्बित नीति से भारत सरकार का घनिष्ठ सम्वन्ध है, और इसलिए वह पक्षपात-रहित जाँच कराने में असमर्थ होगी, चाहे पक्षपात अनैच्छिक ही क्यो न हो।"[2]

इन्डेमनिटी विधेयक

२ सितम्बर को गवर्नर-जनरल ने पजाब काड की जाँच के लिए एक कमेटी नियुक्त किये जाने की घोपणा की, और १८ सितम्बर को गृह-सदस्य सर विलियम विंसेट ने पजाब काड से सम्वन्धित सरकारी अफसरो और कर्मचारियो की रक्षा के लिए इन्डेमनिटी बिल (क्षमा विधेयक) कौंसिल मे प्रस्तुत किया। उन्होने कहा कि जिन लोगो ने विपम परिस्थिति में सरकार के आदेश पर शान्ति और व्यवस्था को बनाये रखने के लिए या पुन स्थापित करने के लिए पूर्ण निष्ठा या ईमानदारी से काम किया है, उनकी रक्षा करना सरकार का कर्तव्य है। उन्होने

---

१. वही, जि० ५८, पृ० १४६-१४७। २. वही, जि० ५८, पृ० १५०।

कहा कि प्रस्तुत विधेयक मे क्षमा के क्षेत्र बहुत सीमित है। विधेयक किसी व्यक्ति को विभागीय सजा से मुक्त नही करता, वह तो सरकारी अफसर या कर्मचारी को कानूनी सजा से मुक्त करता है, और वह भी इस शर्त पर कि उसने जो कार्रवाइयाँ की है वे "शुद्ध निष्ठा (सद्भावना) और युक्तिसंगत विश्वास में यह समझ कर की है कि वे व्यवस्था को बनाये रखने या पुन. स्थापित करने के लिए आवश्यक थी।" उन्होने कहा कि यदि किसी व्यक्ति को यह शिकायत हो कि जो काम व्यवस्था के नाम पर किया गया है, और जिससे उसे क्षति पहुँची है, वह इन शर्तो को पूरा नही करता, तो वह इस बात की फरियाद साधारण न्यायालय में कर सकता है, क्षतिपूर्ति का दावा कर सकता है।[1]

जिस समय यह विधेयक कौसिल के सामने पेश किया गया था, उस समय कौसिल के बहुत से निर्वाचित सदस्य संवैधानिक सुधारो के सम्बन्ध में संयुक्त पार्लियामेंटरी कमेटी के सामने गवाही देने लन्दन गये हुए थे। जो सदन मे मौजूद थे, उनमें दिनशा इदुलजी वाचा की धारणा थी कि इन्डेमनिटी बिल के सम्बन्ध में सरकार के विचार न्याय-सगत है। सरकार द्वारा मनोनीत यूरोपियन सदस्यो की भी यही धारणा थी। जिन्होने उस विधेयक का विरोध किया, उनमें मालवीय जी का विरोध ही सबसे तगडा था।

मालवीयजी का विरोध

मालवीयजी ने इन्डेमनिटी बिल का विरोध करते हुए कौसिल का ध्यान सरकारी अफसरो द्वारा घटित अन्यायपूर्ण घटनाओ और कुचक्रो की ओर आकृष्ट किया। उन्होने बताया कि सिपाहियो ने किस तरह न्याय, कानून और इन्सानियत की अवहेलना करते हुए बिना किसी चेतावनी के जलियावाला बाग में एकत्रित निहत्थी जनता पर गोली चलायी, और सैकडो नवयुवको, बूढो, बच्चो और स्त्रियो को भून डाला, तथा आहतों की चिकित्सा तक का कोई प्रबन्ध नही किया। उन्होने बताया कि किस तरह गुजरावाला मे जनता पर बम गिराये गये, लाहौर के विद्यार्थियो पर घोर अत्याचार किये गये। उन्हें मीलो चल कर दिन में चार बार फौजी अफसर के पास हाजिरी देने के लिए बाध्य किया गया। उन्होने बताया कि भारतीय नागरिको को अपनी सवारी से उतर कर यूरोपियनो को सलामी देने के लिए बाध्य किया गया, तथा बहुत से राजभक्त हिन्दुस्तानियो को बिना किसी अपराध के पकडकर पिंजडो में बन्द कर दिया गया। बहुत से सम्मानित व्यक्तियो को हथकडियाँ पहना कर बाजारो मे घुमाया गया। उन्होने

---

१ वही, जि० ५८, पृ० २७८-२८५।

कहा कि चूँकि सरकार ने उनके प्रश्नो का कोई उत्तर नही दिया, उनमें पूछे गये सभी तथ्य सही समझे जा सकते हैं। उन्होने यह भी कहा कि पजाब में अफसरो ने फौजी कानून के प्रतिबन्धो का भी ठीक तौर पर पालन नही किया। 'फौजी कानून के अनुसार चलाये गये मुकदमो में मुद्दई और मुद्दालेह, दोनो में से एक का बयान लिये बिना ही और फैसला लिखे बगैर ही भारी दण्ड दे दिये गये हे।[1]

मालवीयजी ने कहा कि इस विधेयक को प्रस्तुत करने से पहले यह सिद्ध करना चाहिए कि राज्य के विरुद्ध युद्ध या बगावत थी, या विद्रोह की ऐसी घोर स्थिति थी कि उसे 'युद्ध' कहा जा सके, और उसे दवाने के लिए फौजी कानून लागू करना, फौजी अदालतें स्थापित करना, तथा साधारण कानूनो के प्रतिबन्धो की उपेक्षा अनिवार्य थी।[2] इन बातो की जाँच कराने से पहले इन्डेमनिटी बिल पास कराना सर्वथा अनुचित हैं। यदि सरकार इस बात की जाँच कराने के लिए कि फौजी कानून लागू करने लायक घटनाएँ हुई अथवा नही, एक कमेटी गठित करना आवश्यक समझती है, तो उससे पहले यह विधेयक कैसे पास किया जा सकता है?

मालवीयजी ने मार्शल ला को लागू करने और उसे इतने दिनो तक जारी रखने के औचित्य को चुनौती दी। उन्होंने अमृतसर, लाहौर और गुजरावाला की स्थिति का विस्तार से विश्लेपण करते हुए कहा कि वहाँ पर १४ अप्रैल को ऐसी स्थिति नही थी जिसे भयकर राजविद्रोह या बगावत की स्थिति समझा जा सके। १३ अप्रैल को अमृतसर मे जलयावाला बाग में नरसंहार घोर अन्याय था। पर उसे भी जनता ने जिस तरह बर्दाश्त किया उसके बाद मार्शल ला घोपित करना, और उसे इतने दिनो जारी रखना अवश्य ही क्रूर व्यवहार था। उससे पहले जो दुर्घटनाएँ हुई वे ऐसी नही थी कि उन्हे राज्य के लिए भयकर खतरा समझा जाय।[3]

मालवीयजी ने कहा कि बम्बई सरकार ने गाधीजी को अहमदाबाद जाने की इजाजत दे दी, और उन्होने वहाँ जाकर शान्ति स्थापित कर दी, यदि पजाब की सरकार भी बम्बई की सरकार का अनुसरण करने को तैयार होती, तो सम्भवतः पजाब मे भी मार्शल-ला लागू किये बिना शान्ति स्थापित हो सकती थी।[4]

---

१. वही, जि० ५८, पृ० ३१४-३१५।
२. वही, जि० ५८, पृ० ३१७।
३ वही, जि० ५८, पृ० ३०३-३०६।
४. वही, जि० ५८, पृ० ३२०।

मालवीयजी ने कहा कि कौंसिल सिद्धान्तो को निर्धारित कर सकती है, पर वह न्यायालय नही है, अदालत के किसी निर्णय का औचित्य प्रमाणित करना, उसे वैध घोषित करना उसका काम नही है। फिर यह कौसिल उन लोगो को, जो कैद में है, किसी कानून द्वारा जेल मे बने रहने की व्यवस्था कैसे कर सकती है ? यह तो सर्वथा अनुचित है। इस प्रकार का कानून बनाना तो अवश्य ही गलत होगा।

मालवीयजी ने यह भी कहा कि इस विधेयक के आमुख में कहा गया है कि इसका सम्बन्ध मार्शल-ला के जमाने में की गयी कार्रवाइयो से है, पर विधेयक की धाराओ द्वारा उन अधिकारियो और कर्मचारियो को भी क्षमा प्रदान करने की व्यवस्था है, जिन्होने मार्शल-ला की घोषणा से पहले भी अनुचित कार्य किये है। यह बात, मालवीयजी ने कहा, किसी प्रकार भी ठीक नही है। जिन विधि-विशेषज्ञो ने मार्शल-ला के जमाने में की गयी अनुचित कार्रवाइयो के लिए किन्ही शर्तों पर क्षमा की व्यवस्था का समर्थन किया है, उन्होने भी उससे पहले की कार्रवाइयो के लिए क्षमा प्रदान करने की बात को ठीक नही बतलाया है।

मालवीयजी ने यह भी कहा कि सरकार अपने उन अधिकारियो और कर्मचारियों को क्षमा करने की तो व्यवस्था करना चाहती है जिन्होने मार्शल-ला के जमाने में या कुछ पहले ज्यादतिया की है, पर उन लोगो को हरजाना देने की बात नही सोचती, जिन्होने युद्ध के जमाने मे या उपद्रवो को शान्त करने में सरकार की भरपूर सहायता की, और उस पर भी उन्हें सरकार के कर्मचारियो ने बिना किसी न्यायसगत कारण के कैद करके जेल की यातनाएँ सहने को मजबूर किया। इस सम्बन्ध में उन्होने काफी विस्तार के साथ दो एक उदाहरण भी पेश किये।

मालवीयजी ने कहा कि विधेयक की बहुत सी धाराएँ "असन्तोषजनक और हानिकर" है, और यदि यह पारित किया गया, तो "घोर अन्याय" होगा, जाच कमेटी उससे बुरी तरह प्रभावित होगी, तथ्यो की निष्पक्ष जाच सम्भव नही होगी।[1]

मालवीयजी ने कहा . "जाच की प्रतीक्षा करिये, उन घटनाओ की जाच हो जाने दीजिये, और जब घटनाएँ निश्चित हो जाये तो शान्ति की रक्षा के लिए सद्भाव से उपयुक्त सावधानी से किये गये आवश्यक कामो के दायित्व से अफसरो को बचाने की चेष्टा करिये। उस दशा में सम्राट् के अफसरो या उनकी आज्ञा से काम करनेवाले मातहतो को बचाने के लिए किये जाने वाले कार्य का

१. वही०, जि० ५८, पृ० ३१८।

कोई समझदार मनुष्य विरोध नही करेगा। पर जब फौजी कानून का अस्तित्व ही न्यायसगत सिद्ध नही हुआ हो, जब उसके जारी किये जाने का कारण ही न बताया जा सके, उस समय न्याय और साम्यभाव की रक्षा के लिए साधारण अदालतो में इन अफसरो को अपने कामो के औचित्य व अनौचित्य का निर्णय कराने का अवसर देना ही चाहिए।[1]

मालवीयजी ने कहा कि गृह-सदस्य का यह कहना ठीक नही कि चूँकि सरकार ने १४ अप्रैल सन् १९१९ के प्रस्ताव में वचन दिया है कि हम उनकी सहायता करेंगे, इसलिए उन्होने इसके भरोसे पर जो काम किये हैं, उनके दुष्परिणामो से उन्हें बचाना हमारा कर्तव्य है। मालवीयजी ने कहा कि यह बात युक्ति युक्त नही है, क्योकि यदि सरकार का उन्हे भरोसा देना ही ठीक नही था, तो वह भरोसा उन्हे कैसे बचा सकता है ?[2]

मालवीयजी ने कहा कि फौजी अदालतो और फौजी कानून की मर्यादाओ और सीमाओ का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है। उन्होने बताया कि लार्ड हैल्सबरी ने कहा है कि सरकार शान्ति के समय फौजी कानून के अनुसार फौजी अदालतें नही स्थापित कर सकती, किन्तु जब युद्ध, राजविद्रोह या युद्ध कहे जाने योग्य फसाद हो, राजा या उसके कर्मचारी उतनी ही शक्ति का प्रयोग कर सकते है, जितनी शान्ति स्थापित करने के लिए आवश्यक हो।[3]

राइट बनाम फ्रिट्ज के मुकदमे का विस्तार से विश्लेषण करते हुए मालवीय जी ने बताया कि इस मुकदमे के अन्त मे जूरी को सम्बोधित करते हुए न्यायाधीश चैम्बरलेन ने कहा था कि कानून ने विद्रोह को दबाने के लिए मजिस्ट्रेट आदि को शक्ति का प्रयोग करने का अधिकार दिया है, पर "उसे उस आवश्यकता से आगे नही बढना है जिसने उसे वह अधिकार दिया है, और उसे अपनी सफाई में यह दिखाना होगा कि उसने उस अपराध का पता लगाने के लिए, जिसे उसने दण्डित किया है, प्रभावशाली उपायो का प्रयोग किया है, और उसके व्यवहार मे मनुष्यता के सर्वसाधारण नियमो का व्यतिक्रम नही दिखाई देना चाहिए"।[4]

मालवीयजी ने बताया कि न्यायाधीश स्पेंकी ने फौजी अदालतो की मर्यादा और सीमा का विश्लेषण करते हुए कहा है . "बलवे में घोर अत्याचार करते हुए पकडे जाने, राजा के शत्रुओ को सहायता देनें, अथवा अन्य प्रकार की

१. वही, जि० ५८, पृ० ३१८। २. वही, जि० ५८, पृ० ३१८।
३. वही, जि० ५८, पृ० २९६,३१८। ४. वही, जि० ५८, पृ० ३२२।

दुश्मनी करते हुए पकड़े जानेवाले लोगो का विचार ही ऐसे न्यायालयो में हो सकता है। ऐसी धाराएँ इसलिए बनायी गयी है कि फौजी कड़ाइया केवल हत्याओ का रूप धारण न करे। परन्तु ऐसे उलझनदार मामले, जिनमें अवस्था-जन्य प्रमाणो की, तथा लम्बी जाच की आवश्यकता हो, इन अदालतो की सीमा के बाहर रखे गये है।"[१]

मालवीयजी ने यह भी बताया कि सर जेम्स फिट्ज जेम्स स्टीफन का कहना है कि "कानून के अनुकूल सत्ता की स्थापना, तथा व्यवस्था की पुन प्रतिष्ठा के निमित्त, तथा उपद्रव दबाने के लिए साम्राज्य के कर्मचारियो द्वारा सैनिक शक्ति के सब अधिकारो का धारण किया जाना, और उनसे काम लेना 'फौजी कानून' कहलाता है। इसके अनुसार सरकार के अफसरो द्वारा शारीरिक शक्ति का उपयोग यहाँ तक कि प्राण लेना और सम्पत्ति का नष्ट करना, न्यायसगत हो जाता है। परन्तु उनको निर्दयतापूर्ण तथा अत्यधिक उपायो को काम में लाने का अधिकार नही है,"[२] स्टीफन ने यह भी कहा है "अधिकारियो द्वारा शान्ति की स्थापना तथा विद्रोह को दबाने के लिए जैसे उपाय वे आवश्यक समझें उन्हें करने में समर्थ है, परन्तु आवश्यकता से अधिक प्रत्येक अत्याचार के लिए, यद्यपि उन्होने विद्रोह तथा युद्ध सबंधी कानूनो के अनुकूल ही काम किया हो, वे व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी है।"[३]

मालवीयजी ने कहा कि लार्ड हैल्सबरी और सर जेम्स फिट्ज जेम्स स्टीफन मानते है कि "उपद्रवो के शान्त होते ही फौजी सत्ता समाप्त हो जाती है, और साधारण न्यायालयो का शासन शुरू हो जाता है।"[४] स्टीफन साहब की राय में तो फौजी अदालते वास्तव में "किसी प्रकार के भी न्यायालय नही है। वे अधिकारियो द्वारा धारण की गयी शक्तियो को काम में लाने अर्थात् उनकी इच्छा के पूर्ण करने के लिए बनी हुई एक प्रकार की कमेटियाँ है।"[५]

मालवीयजी ने कहा कि विधि-विशेषज्ञ डायसी की राय मे सब कानूनो मे, जो एक विधान सभा पास कर सकती है, इंडेमनिटी कानून से अन्याय होने का सबसे अधिक भय रहता है। यह अपने बाह्य रूप मे ही गैर-कानूनी कानून है। यह केवल कड़ाई करने को ही उत्तेजित नही करता, बल्कि कानून और मनुष्यता का उल्लंघन करने को भी उत्तेजित करता है।[६]

१ वही, जि० ५८, पृ० ३३०। २. वही, जि० ५८, पृ० ३२९।
३. वही, जि० ५८, पृ० ३३०। ४ वही, जि० ५८, पृ० २९६, ३२९।
५. वही, जि० ५८, पृ० ३२९-३०। ६. वही, जि० ५८, पृ० ३४०।

इन प्रमाणो के आधार पर मालवीयजी ने माँग की कि (१) हत्या और आग लगाने के अपराधो के अतिरिक्त सब अपराधो की जाँच साधारण न्यायालय द्वारा हो, (२) फौजी अदालतो द्वारा दण्डित सभी अभियुक्त छोड दिये जायें, और यदि किसी कारण से किसी व्यक्ति की रिहाई सार्वजनिक शान्ति और सुव्यवस्था के हित में न समझी जाय, तो साधारण दण्डव्यवस्था के अनुकूल उसके साथ व्यवहार किया जाय, (३) सम्राट् द्वारा नियुक्त कमीशन के जरिये पंजाब काड के तथ्यो की जाँच करायी जाय, (४) यदि कमीशन की जाँच से सिद्ध हो जाय कि सार्वजनिक शान्ति और सुव्यवस्था को बनाये रखने या पुन. स्थापित करने के लिए मार्शल ला अनिवार्य था, तब निश्चय किया जाय कि किन शर्तों के साथ किस प्रकार के अन्यायमूलक कार्यों के लिए दोषी अधिकारियो को क्षमा प्रदान की जाय, (५) प्रस्तावित इडेमनिटी बिल पर, जिसकी बहुत सी धाराए दोषपूर्ण भी है, इस समय विचार न किया जाय, जाँच से पहले क्षमा की व्यवस्था न की जाय।[1]

इंडेमनिटी बिल की विभिन्न धाराओ की समीक्षा करते हुए मालवीयजी ने कहा कि यह सिद्ध करना अफसर का कर्तव्य है कि उसने जो कुछ किया है, वह शुद्ध भाव से ही नही, वरन् तर्कयुक्त उचित विचार से भी किया है। उन्होने कहा कि पीडितो को इतनी छूट तो मिलनी ही चाहिए कि वे अपने ऊपर अन्याय करनेवालों से इतना तो प्रमाणित करावें कि सार्वजनिक शान्ति और सुव्यवस्था के लिए मनुष्यत्व के नियमो को भग किये बिना उन्होंने उचित सावधानी से सब काम किये है, पर बिल की धारा ३ और ४ ने यह सब कुछ करीब-करीब असभव कर दिया है। पीडित के इस अधिकार को बहुत हद तक सीमित कर दिया है, उसे सारहीन बना दिया है।[2]

मालवीयजी ने कहा कि देश के सब प्रतिष्ठित भारतीय समाचार पत्रो तथा बम्बई हाईकोर्ट के भूतपूर्व न्यायाधीश श्री नारायण चन्दावरकर जैसे सम्मानित व्यक्तियो ने भी माँग की है कि जब तक जाँच न हो जाय, इडेमनिटी बिल स्थगित रखा जाय। मालवीयजी ने बताया कि 'केपिटल' पत्र में 'डिचर' ने लिखा है कि—यह स्पष्ट है कि इडेमनिटी एक्ट को पास करने का काम और जाँच कमेटी का निर्णय एक दूसरे के आशय के विरुद्ध होगे। लदन के 'डेली न्यूज' ने प्रस्तावित कमेटी पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि—"जाँच कमीशन की नियुक्ति से पहले सरकारी अफसरो को बचाने के लिए इडेमनिटी

१. वही, जि० ५८। २. वही, जि० ५८, पृ० ३२३-३२४।

बिल पास कराने की चेष्टा यह दुबारा विश्वास पैदा करती है कि सरकार अफसरो की नीति पर पलस्तर फेरना चाहती है।"[१]

मालवीयजी ने यह कहते हुए कि "शक्तिशाली सरकार को भी लोकमत के आगे झुकना पडता है,"[२] सरकार से प्रार्थना की कि जब तक कमेटी अपनी रिपोर्ट पेश न करे तब तक के लिए वह इस बिल को पास कराने के विचार को स्थगित कर दे।[३] उन्होंने कहा : 'मै उनके नाम पर जो अगहीन हो गये है, उनके नाम पर जिन्होने वर्णनातीत अपमान सहन किये है, उनके नाम पर जो इस क्षण सम्राट् के कैदखानो में अन्याय से सड रहे है, उन स्त्रियों के नाम पर जो अपने पतियो पुत्रो, सम्बन्धियो के वियोग पर आँसू बहा रही है, इस कानून को कमेटी की रिपोर्ट आने तक स्थगित रखने की प्रार्थना करता हूँ।"[४]

सरकार का जवाब

सरकार की ओर से सर्वश्री मेलकम हेली तथा टाम्सन आदि ने मालवीयजी की बातो का उत्तर देने का प्रयत्न किया। हेली साहब ने कहा कि अमृतसर, लाहौर आदि की दशा इतनी भयकर थी कि फौजी कानून लागू करना अनिवार्य था। टाम्सन साहब ने मालवीयजी द्वारा प्रस्तुत कतिपय तथ्यो को गलत साबित करने की कोशिश करते हुए वैधानिक सीमा के अन्दर रहते हुए मालवीयजी पर कडे से कडे हमले किये।

२५ सितम्बर सन् १९१९ को गृह-सदस्य सर विलियम विंसेंट ने प्रस्ताव किया कि कौसिल द्वारा संशोधित इंडेमनिटी बिल पास किया जाय। उन्होने बिल के सम्बन्ध मे गाधीजी के विचारो को उद्धृत करते हुए मालवीयजी से विशेष रूप से अपील की कि वे संशोधित बिल का समर्थन करें। विंसेंट साहब ने बताया कि मिस्टर गाधी ने "युक्तियुक्त विश्वास" और "सद्भाव" का उल्लेख किए बिना कहा है कि "हमें इस आशय की एक धारा इस (बिल) में रहने देनी चाहिए कि ऐसे अफसरो पर जिन्होने गोली चलाने की आज्ञा दी, हत्या का फौजदारी मामला या क्षतिपूर्ति का दीवानी दावा न चल सकेगा", यद्यपि उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि दोषी अफसरो को सरकार की ओर से दण्ड जरूर दिया जाय। विंसेंट साहब ने यह भी बताया कि २० सितम्बर सन् १९१९ के 'यग इण्डिया' में यह भी कहा गया है कि "मैं इस विचार से सहमत नही हूँ कि ऐसा

१. वही, जि० ५८, पृ० ३३९-३४०। २. वही, जि० ५८, पृ० ३४१।
३. वही, जि० ५८, पृ० ३४१। ४. वही, जि० ५८ पृ० ३४१।

बिल उचित रूप से कमीशन की रिपोर्ट के बाद ही पास हो सकता है—यह बिल जैसा प्रकाशित हुआ है हानिरहित है, और यह ऐसा है जिसे हमें कमीशन की रिपोर्ट के बाद पास करना पड़ेगा।"[1]

मालवीयजी का विरोध

मालवीयजी ने विंसेंट की अपील के उत्तर में कहा : "मैं मिस्टर गांधी की राय का बहुत सम्मान करता हूँ, पर एक और ऐसी बड़ी शक्ति है जिसके आगे झुकना मेरा कर्तव्य है। यह शक्ति मेरी अन्तरात्मा है, और यह मुझसे कहती है कि यह बिल वर्तमान रूप में पास नहीं होना चाहिए।"[2]

मालवीयजी ने पूछा कि क्या गांधीजी की इस राय को पढ़ने के बाद गृह-सदस्य भारत सरकार को यह सलाह देंगे कि केवल बम्बई प्रान्त में रहने की जो पाबन्दी गांधीजी पर लगायी गयी है वह रद्द कर दी जाय, और क्या वे "पंजाब और दिल्ली की सरकारों को भी इसी का अनुकरण करने की अर्थात् प्रवेश निषेध की आज्ञाओं को रद्द करने की सलाह देंगे।"[3]

मालवीयजी ने टाम्सन आदि सरकारी प्रवक्ताओं के आक्षेपों का उत्तर देते हुए दावा किया कि जो तथ्य उन्होंने अपने पहले भाषण में कौंसिल में प्रस्तुत किये थे वे मूलरूप से सही हैं, और उन घटनाओं और अपराधों से संबंधित अफसरों को क्षमा करने से पहले उनकी ठीक-ठीक जांच आवश्यक है। उन्होंने टाम्सन साहब के अनावश्यक और व्यक्तिगत भावों के लिए उन्हें "क्षमा" करते हुए उनकी बातों की विस्तार से समीक्षा की, और सिद्ध किया कि टाम्सन की सब बातें भ्रामक और गलत हैं। मालवीयजी ने कहा कि घटनाओं का जो विश्लेषण उन्होंने कौंसिल के समक्ष प्रस्तुत किया है यदि सरकार उसे गलत समझती है, तो वह खुलकर साफ-साफ उनके प्रश्नों का जिनका उन्होंने नोटिस दिया था उत्तर क्यों नहीं देती? मालवीयजी ने कहा "उपद्रवों को दबाने के लिए फौजी सहायता लेना एक बात है, और फौजी कानून जारी करना दूसरी बात है। प्रकाशित घटनाओं से यह दिखाई देता है कि फौजी सहायता से शान्ति स्थापित हो गयी थी, इसलिए दूसरे उपायों की अर्थात् जनता को फौजी अफसरों की इच्छा पर छोड़ कर शहर को उनके हवाले करने की जरूरत नहीं थी।[4]"

---

१. वही, जि० ५८, पृ० ५३७।
२. वही, जि० ५८, पृ० ५३७।
३. वही, जि० ५८, पृ० ५३७।
४. वही, जि० ५८, पृ० ५४०।

मालवीयजी ने कहा कि मानव-अधिकार किसी विशेष राजाज्ञापत्र या नियमन पर निर्भर नही है। "मनुष्य के अधिकार स्वयं परमात्मा ने अपने हाथो से सूर्य की किरणो के रूप मे ही मनुष्य के स्वभाव में लिख दिये है, और वे किसी मानव की शक्ति से नही मिटाये जा सकते।" इनमे जीवन-स्वतंत्रता और जीवन-रक्षा का अधिकार भी है। प्रत्येक मनुष्य, चाहे वह कैसा ही तुच्छ क्यो न हो, अपनी सरकार से उनका दावा कर सकता है।[1]

मालवीयजी ने स्वीकार किया कि जनता की प्रतिनिधि सभा कुछ कामो के लिए अधिकारियो को क्षमा जरूर कर सकती है, पर ऐसा करने से पहले उसे जाच करके सतुष्ट होना होगा कि "यद्यपि कुछ अन्याय के काम हो गये है तो भी स्थिति को और बहुसंख्यक लोगो के कल्याण को देखते हुए इन खेदजनक अन्यायो को क्षमा करना चाहिए"।[2]

मालवीयजी ने कहा "यहा आप हमको ऐसे कानून पर सम्मति देने को कह रहे हैं जिसके द्वारा आप उन कामो को जिनकी जाँच अभी बाकी है न्यायानुमोदित बनाना चाहते है, और उन कामो के उत्तरदायित्व से जिनकी न्यायानुकूलता, औचित्य और मनुष्यत्व अभी विचाराधीन हैं, अफसरो को मुक्त करना चाहते है। यह तो सर्वथा अनुचित है।"[3]

मालवीयजी ने बताया कि विधिविशेषज्ञ सर जेम्स मेकिन्टाश का मत है कि "इंग्लैण्ड का कानून एक मात्र इसी सिद्धान्त पर फौजी कानून का जारी रखना सहन करता है कि वह आवश्यक था। इसको जारी रखने की न्यायानुकूलता के लिए भी इसी आवश्यकता की जरूरत है और जरूरत खत्म हो जाने पर यदि वह क्षण भर भी जारी रहे, तो यह गैरकानूनी अत्याचार का प्रयोग हो जायगा।" पर प्रस्तुत विधेयक फौजी कानून के लागू होने के समय से पहले किये गये कामो को, तथा उन कामो को भी जो फौजी कानून के जारी रहने की लम्बी अवधि में किये गये है न्यायानुमोदित और उचित बनाना चाहता है, पर उसे स्वीकार करने का कोई युक्तियुक्त और न्याययुक्त कारण नही है।[4]

मालवीयजी ने डायसी के विचारो को उद्धृत करते हुए कहा : "यह सुप्रतिष्ठित सिद्धान्त है कि ऊँचे अफसर की कोई आज्ञा अपने मातहत अफसरो को गैरकानूनी कार्य के उत्तरदायित्व से नही बचा सकती, और न उसे बचाना ही उचित है। यदि कोई अफसर अपने मातहत को गैरकानूनी कार्य करने की आज्ञा

---

१ वही, जि० ५८, पृ० ५५५। २. वही, जि० ५८, पृ० ५५५।
३ वही, जि० ५८, पृ० ५५५। ४. वही, जि० ५८, पृ० ५५५।

दे तो उस मातहत का कर्तव्य है कि वह उस आज्ञा को न माने।" "गैरकानूनी कार्य करने की आज्ञा राजा भी नही दे सकता", फिर भला गवर्नर-जनरल राजा से अधिक अधिकार का दावा कैसे कर सकता है ?[१]

मालवीयजी ने कहा कि "कौंसिल ने कभी किसी को उसकी रक्षा का वचन नही दिया है, इसलिए यह युक्ति कि अपने अफसरो को रक्षा करना कौंसिल का कर्तव्य है बिल्कुल सारहीन है।"[२] यदि शासकमडल ने ऐसा वचन दिया है तो हरेक अफसर को यह मालूम होना चाहिए कि उसकी शक्ति कितनी है।[३] उन्होने दृढता से कहा "यदि सरकार के किसी अफसर ने मनुष्यत्व के विपरीत तथा अपने अधिकार के बाहर काम किया हो, तो उसको न्यायालय में खडे होकर अपने ऊपर लगाये अभियोगो का उत्तर देना चाहिए।"[४]

सैनिको के अधिकारो और कर्तव्यो का विश्लेषण करते हुए मालवीयजी ने कहा : "नागरिको की तरह सैनिको का भी यह अधिकार है कि वे शस्त्रधारी का सामना शस्त्र से करें, और जानमाल की रक्षा के लिए उचित उपाय ग्रहण करें, परन्तु यदि सैनिक निहत्थे और विरोध न करनेवाले मनुष्यो की हत्या करे, या उनका अगभंग करें, स्त्रियो और बच्चो को अगहीन करे या उन्हें मार डालें, यदि बाधा न करने वाले लोग काट डाले जाये, तो चाहे सैनिको के ये काम हो या किसी और के, यह हत्या समझी जायेगी और ऐसे लोगो पर देश के कानून के अनुसार मुकदमा चलना चाहिए।[५]

इस बात का उत्तर देते हुए कि सैनिको को अपने अफसरो की आज्ञा कोर्ट-मार्शल के भय से मानना पडती है, मालवीयजी ने कहा : "आज्ञापालन सैनिक का कर्तव्य है, परन्तु गैरकानूनी आज्ञाओं का नही, ऐसी गैरकानूनी आज्ञाओ का नही जैसी कि जलियावाला बाग में गोली चलाने के लिए दी गयी।" अपनी राय की पुष्टि में मालवीयजी ने विधिविशेषज्ञ डायसी और जस्टिस स्टीफन के प्रमाण पेश किया। डायसी ने अपनी पुस्तक मे, उन्होने कहा, लिखा है "सैनिक का कर्तव्य अपने अफसर द्वारा दी गयी आज्ञाओ का पालन करना है। परन्तु सिविल अफसर की अपेक्षा सैनिक यह कहकर कि मैंने युक्ति-युक्त आज्ञा-पालन के कर्तव्य से ऐसा किया - फिर वह आज्ञा प्रधान सेनापति की ही क्यो न हो—कानून भंग करने के उत्तरदायित्व से बच नही सकता।[६] जस्टिस स्टीफन ने अपने एक फैसले मे कहा

१. वही, जि० ५८, पृ० ५५६।
२. वही, जि० ६८, पृ० ५५६।
३ वही, जि० ५८, पृ० ५५६।
४ वही, जि० ५८, पृ० ५५६।
५. वही, जि० ५८, पृ० ५५७।
६. वही, जि० ५८, पृ० ५५७।

है—"यह सिद्धान्त कि सैनिक को हर हालत में अपने अफसर की आज्ञा का पालन करना चाहिए, सैनिक शिष्टाचार के लिए हानिकारक है, क्योंकि इससे कप्तान की आज्ञा से कर्नल पर गोली चलाना, अथवा अपने से उच्च अफसर की आज्ञा से शत्रु से जा मिलना ठीक सिद्ध होता है। मेरी समझ में यह समझना कम भयंकर नही कि शान्ति के समय मे निरुपद्रवी नागरिको पर गोली चलाना, या विद्रोह के समय मे स्त्रियो और बच्चो की हत्या करना इसलिए न्याय-युक्त है कि यह सब उच्च अफसर की आज्ञा से किया गया है"।[1]

महाराजा साहब महमूदाबाद, राजा रामपाल सिंह, मिस्टर सच्चिदानन्द सिन्हा, राय बहादुर बी० एन० शर्मा आदि कतिपय सदस्यो ने भी मालवीयजी की बात का समर्थन किया, सरकार की ओर से उनपर छीटाकशी की गयी। मालवीयजी ने सरकारी प्रवक्ताओ के अनुचित व्यक्तिगत कटाक्षो का मुँहतोड जवाब दिया। अपने सम्बन्ध में उन्होने कहा कि मैं काग्रेस के आदेश पर पंजाब गया था, पर यदि वह आदेश न होता, तो भी दु:खी जनता की सेवा के लिए जरूर जाता।

सरकार अपनी बात पर डटी रही। उसने बिल पास करा लिया।

सम्राट् की घोषणा

२५ दिसम्बर सन् १९१९ को सम्राट् की ओर से एक घोषणा प्रसारित की गयी। इस शाही घोषणा में उन सब राजनीतिक कैदियो को, जो हत्या आदि के संगीन अपराधो में दण्डित नही थे, क्षमा प्रदान करते हुए आशा व्यक्त की गयी कि "नये युग का शुभारम्भ मेरी प्रजा और मेरे अफसरो के इस संकल्प से होगा कि वे सर्वमान्य उद्देश्य के लिए मिलकर काम करेंगे"। इस घोषणा के आधार पर पंजाब काड से संबंधित १८०० कैदियो और नजरबन्दो में से ९६ को छोड़ कर बाकी सब छोड दिये गये। इसी तरह मौलाना मुहम्मद अली और मौलाना शौकत अली आदि भी नजरबन्दी से मुक्त कर दिये गये, और लाला लाजपतराय पर से भी हिन्दुस्तान न आने की रोक उठा ली गयी।

कांग्रेस का अधिवेशन

इस परिस्थिति में सन् १९१९ में दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में पंडित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में काग्रेस का वार्षिक अधिवेशन अमृतसर में सम्पन्न हुआ। स्वामी श्रद्धानन्दजी ने स्वागत समिति के अध्यक्ष की हैसियत

---

१. वही, जि० ५८, पृ० ५५७।

से प्रतिनिधियो का स्वागत करते हुए पंजाब सरकार के अत्याचारो का सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया। पडित मोतीलाल नेहरू ने भी मार्शल-ला में की गयी ज्यादतियो पर रोशनी डालते हुए सरकार की भर्त्सना की। काग्रेस ने माग की कि जनरल डायर को अपने अधिकार से फौरन हटा दिया जाय, पंजाब के भूतपूर्व गवर्नर सर माइकेल ओडायर को फौजी कमीशन की सदस्यता से भी अलग कर दिया जाय, तथा सम्राट् से अनुरोध किया कि लार्ड चेम्सफोर्ड को वापस बुला लिया जाय। काग्रेस ने सर शकरन नायर के प्रति, जिन्होने पजाब में मार्शल-ला चालू रखने के विरुद्ध प्रोटेस्ट करते हुए गवर्नर-जनरल की कार्य-परिषद से इस्तीफा दिया था, आभार प्रकट किया। काग्रेस ने यह भी माग की कि नागरिको के मौलिक अधिकार कानून द्वारा सुरक्षित हो, रौलेट अधिनियम और भारतीय रक्षा अधिनियम रद्द किये जायें, और वे सब अधिनियम और अध्यादेश जो मौलिक अधिकारो के विरुद्ध हो अवैध समझे जायें। उसने क्षमा अधिनियम के लिए सरकार की भर्त्सना की।

काग्रेस ने तुर्की और खिलाफत के प्रश्नो पर ब्रिटिश मन्त्रियो की विद्वेषी मनोवृत्ति के प्रति अपना विरोध प्रकट करते हुए सम्राट् की सरकार से अनुरोध किया कि भारतीय मुसलमानो की न्यायसगत भावनाओ तथा प्रधानमन्त्री की प्रतिज्ञाओ के अनुरूप तुर्की का प्रश्न हल किया जाय, जिसके बिना भारत की जनता मे सन्तोष नही होगा। उसने मुस्लिम लीग के इस प्रस्ताव का स्वागत किया जिसमें मुसलमानो को सलाह दी गयी थी कि बकरीद पर भारत में गोकुशी बन्द कर दी जाय। उसने स्वीकार किया कि यह प्रस्ताव मुसलमानो की ओर से हिन्दू और मुसलमान एकता की ओर सबसे बडा कदम है, और आशा व्यक्त की कि मुसलमानों की सद्भावना के जवाब में हिन्दू भी पूरे तौर पर सद्भावना व्यक्त करेंगे।

श्री चितरजन दास ने प्रस्ताव किया कि (१) यह काग्रेस गत वर्ष की इस घोषणा को दोहराती है कि भारत पूर्ण उत्तरदायी शासन के योग्य है, और इसके विपरीत की गयी सब कल्पनाओ का खण्डन करती है, (२) यह काग्रेस संवैधानिक सुधारो के सम्बन्ध में पारित दिल्ली काग्रेस के प्रस्तावो का समर्थन करती है और उसकी राय है कि नया सुधार अधिनियम अपर्याप्त, असन्तोषजनक, तथा निराशाजनक है, (३) यह काग्रेस पार्लियामेंट से अनुरोध करती है कि वह आत्मनिर्णय के सिद्धान्त के अनुकूल भारत में पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना के निमित्त जल्द कदम उठाये।

है—"यह सिद्धान्त कि सैनिक को हर हालत में अपने अफसर की आज्ञा का पालन करना चाहिए, सैनिक शिष्टाचार के लिए हानिकारक है, क्योंकि इससे कप्तान की आज्ञा से कर्नल पर गोली चलाना, अथवा अपने से उच्च अफसर की आज्ञा से शत्रु से जा मिलना ठीक सिद्ध होता है। मेरी समझ में यह समझना कम भयंकर नही कि शान्ति के समय मे निरुपद्रवी नागरिको पर गोली चलाना, या विद्रोह के समय में स्त्रियो और बच्चो की हत्या करना इसलिए न्याय-युक्त है कि यह सब उच्च अफसर की आज्ञा से किया गया है"।[1]

महाराजा साहब महमूदाबाद, राजा रामपाल सिंह, मिस्टर सच्चिदानन्द सिन्हा, राय बहादुर बी० एन० शर्मा आदि कतिपय सदस्यों ने भी मालवीयजी की बात का समर्थन किया, सरकार की ओर से उनपर छीटाकशी की गयी। मालवीयजी ने सरकारी प्रवक्ताओ के अनुचित व्यक्तिगत कटाक्षो का मुँहतोड जवाब दिया। अपने सम्बन्ध में उन्होने कहा कि मैं काग्रेस के आदेश पर पंजाब गया था, पर यदि वह आदेश न होता, तो भी दु खी जनता की सेवा के लिए जरूर जाता।

सरकार अपनी बात पर डटी रही। उसने बिल पास करा लिया।

सम्राट् की घोषणा

२५ दिसम्बर सन् १९१९ को सम्राट् की ओर से एक घोषणा प्रसारित की गयी। इस शाही घोषणा में उन सब राजनीतिक कैदियो को, जो हत्या आदि के संगीन अपराधो मे दण्डित नही थे, क्षमा प्रदान करते हुए आशा व्यक्त की गयी कि "नये युग का शुभारम्भ मेरी प्रजा और मेरे अफसरो के इस संकल्प से होगा कि वे सर्वमान्य उद्देश्य के लिए मिलकर काम करेंगे"। इस घोषणा के आधार पर पंजाब काड से संबंधित १८०० कैदियो और नजरबन्दो में से ९६ को छोड़ कर बाकी सब छोड दिये गये। इसी तरह मौलाना मुहम्मद अली और मौलाना शौकत अली आदि भी नजरबन्दी से मुक्त कर दिये गये, और लाला लाजपतराय पर से भी हिन्दुस्तान न आने की रोक उठा ली गयी।

काग्रेस का अधिवेशन

इस परिस्थिति मे सन् १९१९ में दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह मे पडित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में काग्रेस का वार्षिक अधिवेशन अमृतसर में सम्पन्न हुआ। स्वामी श्रद्धानन्दजी ने स्वागत समिति के अध्यक्ष की हैसियत

---

१. वही, जि० ५८, पृ० ५५७।

से प्रतिनिधियो का स्वागत करते हुए पजाब सरकार के अत्याचारो का सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया। पडित मोतीलाल नेहरू ने भी मार्शल-ला में की गयी ज्यादतियो पर रोशनी डालते हुए सरकार की भर्त्सना की। काग्रेस ने माग की कि जनरल डायर को अपने अधिकार से फौरन हटा दिया जाय, पंजाब के भूतपूर्व गवर्नर सर माइकेल ओडायर को फौजी कमीशन की सदस्यता से भी अलग कर दिया जाय, तथा सम्राट् से अनुरोध किया कि लार्ड चेम्सफार्ड को वापस बुला लिया जाय। कागेस ने सर शकरन नायर के प्रति, जिन्होने पजाब में मार्शल-ला चालू रखने के विरुद्ध प्रोटेस्ट करते हुए गवर्नर-जनरल की कार्य-परिषद से इस्तीफा दिया था, आभार प्रकट किया। काग्रेस ने यह भी माग की कि नागरिको के मौलिक अधिकार कानून द्वारा सुरक्षित हो, रौलेट अधिनियम और भारतीय रक्षा अधिनियम रद्द किये जायें, और वे सब अधिनियम और अध्यादेश जो मौलिक अधिकारो के विरुद्ध हो अवैध समझे जायें। उसने क्षमा अधिनियम के लिए सरकार की भर्त्सना की।

काग्रेस ने तुर्की और खिलाफत के प्रश्नो पर ब्रिटिश मन्त्रियो की विद्वेषी मनोवृत्ति के प्रति अपना विरोध प्रकट करते हुए सम्राट् की सरकार से अनुरोध किया कि भारतीय मुसलमानो की न्यायसगत भावनाओ तथा प्रधानमन्त्री की प्रतिज्ञाओ के अनुरूप तुर्की का प्रश्न हल किया जाय, जिसके बिना भारत की जनता में सन्तोष नही होगा। उसने मुस्लिम लीग के इस प्रस्ताव का स्वागत किया जिसमें मुसलमानो को सलाह दी गयी थी कि बकरीद पर भारत में गोकुशी बन्द कर दी जाय। उसने स्वीकार किया कि यह प्रस्ताव मुसलमानो की ओर से हिन्दू और मुसलमान एकता की ओर सबसे बडा कदम है, और आशा व्यक्त की कि मुसलमानो की सद्भावना के जवाब में हिन्दू भी पूरे तौर पर सद्भावना व्यक्त करेंगे।

श्री चितरजन दास ने प्रस्ताव किया कि (१) यह काग्रेस गत वर्ष की इस घोषणा को दोहराती है कि भारत पूर्ण उत्तरदायी शासन के योग्य है, और इसके विपरीत की गयी सब कल्पनाओ का खण्डन करती है, (२) यह काग्रेस संवैधानिक सुधारो के सम्बन्ध में पारित दिल्ली काग्रेस के प्रस्तावो का समर्थन करती है और उसकी राय है कि नया सुधार अधिनियम अपर्याप्त, असन्तोषजनक, तथा निराशाजनक है, (३) यह काग्रेस पार्लियामेंट से अनुरोध करती है कि वह आत्मनिर्णय के सिद्धान्त के अनुकूल भारत में पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना के निमित्त जल्द कदम उठाये।

इस प्रस्ताव का लोकमान्य तिलक, एस० सत्यमूर्ति, मौलाना हसरत मौहानी ने समर्थन किया। पर गाधीजी, मालवीयजी, टी० प्रकाशम, विपिनचन्द्र पाल, मौलाना मुहम्मद अली और श्रीमती एनी बेसेंट इससे पूरी तौर पर संतुष्ट नही थे। ये सब चाहते थे कि मान्टेग्यू के प्रति आभार प्रकट किया जाय, और नयी व्यवस्था को कार्यान्वयन करने का भी किसी न किसी रूप में सकेत हो। इस उद्देश्य से गाधीजी, विपिनचन्द्र पाल, तथा श्रीमती एनी बेसेंट ने संशोधन प्रस्तुत किये। गाधीजी ने अपने संशोधन में शाही घोषणा के वाक्यो को दोहराते हुए आशा व्यक्त की कि "अधिकारी और जनता सुधारो को कार्यान्वियन करने में इस तरह सहयोग करेगे कि पूरा उत्तरदायी शासन शीघ्र मिल पाये।" इस सशोधन में माटेग्यू को उनके प्रयत्नो के लिए धन्यवाद देते हुए सुझाव था कि मूल प्रस्ताव में से यह बात निकाल दी जाय कि नये सुधार "असन्तोषजनक" है। अन्त में बहुत वाद-विवाद के बाद श्रीमती एनी बेसेंट के सशोधन को नामंजूर करते हुए चितरजन दास, लोकमान्य तिलक, मालवीयजी तथा विपिन चन्द्र पाल आदि की अनुमति से निम्नलिखित सशोधन को स्वीकार करते हुए काग्रेस ने दास साहब का मूल प्रस्ताव भारी बहुमत से पास कर दिया—

"इस प्रकार का शासन कायम होने तक काग्रेस आशा करती है कि जनता सुधारो को इस तरह कार्यान्वित करेगी कि पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना निकट भविष्य में प्राप्त हो सके। काग्रेस महामहिम ई० एस० मान्टेग्यू को, उनके परिश्रम के लिए जो उन्होने सुधारो के सम्बन्ध में किया है, धन्यवाद देती है।"

अमृतसर के इस प्रस्ताव से यह साफ है कि काग्रेस के सभी नेता सुधारो को अपर्याप्त समझते हुए और पंजाब हत्याकाण्ड से क्षुब्ध होते भी नयी शासन-व्यवस्था का बाइकाट करने के बजाय पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए उसका प्रयोग करना चाहते थे। लोकमान्य तिलक ने तो आगामी चुनावो के लड़ने तथा नयी विधान कौसिलो मे भाग लेने के लिए अधिवेशन के बाद काग्रेस डिमोक्रेटिक पार्टी को संघटित करना भी प्रारम्भ कर दिया।

हंटर कमेटी और काग्रेस जाच कमेटी

हंटर कमेटी ने २६ अक्तूबर सन् १९१९ को अहमदाबाद से अपनी जाच प्रारम्भ की। यहा गुजरात काग्रेस कमेटी ने उसके साथ सहयोग किया। २९ अक्तूबर को कमेटी ने दिल्ली में वहा की घटनाओ की जाच की। यहाँ काग्रेस की ओर से श्री चितरंजन दास ने गवाहो से जिरह की। नवम्बर के प्रथम

सप्ताह में कमेटी ने पंजाब की घटनाओ की जाच प्रारम्भ की। उसकी पहली बैठक में पर्यवेक्षक की हैसियत से मालवीयजी और दास साहब भी उपस्थित थे। पर यहा काग्रेस के नेताओ और कार्यकर्ताओ ने कहा कि हंटर कमेटी के साथ तभी सहयोग करेंगे जब सरकार उनकी ये तीन शर्तें स्वीकार करे। पहली यह कि गवाहो से जिरह करने की इजाजत होगी। दूसरी यह कि अदालतो के सरसरी फैसलो की परीक्षा के लिए जो जज नियुक्त किये जायें, उनमे से एक पंजाब के बाहर का होगा। तीसरी यह कि जाच के दौरान में मुनासिब जमानत पर कुछ मुख्य कैदी अस्थायी तौर पर जेल से छोड दिये जायगे। पजाब सरकार ने पहली दो शर्तें मंजूर कर ली, पर वह तीसरी शर्त पूरी तौर से मानने को तैयार नही थी। उसने कहा कि यदि हंटर कमेटी किसी कैदी को गवाही लेना उचित समझेगी, तो उसका प्रबन्ध कर दिया जायगा, और यदि इस जाच से सबधित कोई वकील किसी कैदी से परामर्श करना आवश्यक समझेगा, तो उसकी सुविधा भी दे दी जायेगी।

पजाब के कार्यकर्ताओ ने मालवीयजी के नेतृत्व में हंटर कमेटी के सामने अत्याचारो को साबित करने का निर्णय किया। मालवीयजी भी तैयार हो गये, पर गाधीजी इस निर्णय से सहमत नही थे। उन्हे यह बात इतनी बुरी लगी कि उन्होने पजाब से चले जाने का इरादा किया। इस परिस्थिति में स्वामी श्रद्धानन्द ने उन सब नेताओ और कार्यकर्ताओ को जो तीसरी शर्त की पूर्ति के बिना भी हंटर कमेटी के सामने सबूत पेश करने को तैयार थे, समझाया कि वे गाधीजी की बात मान कर हंटर कमेटी से सहयोग करने का विचार छोड दें। पंडित मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु चितरंजन दास ने, तथा पंजाब के बहुत से कार्यकताओ ने स्वामी श्रद्धानन्द की बात स्वीकार कर ली। पर मालवीयजी तथा पजाब के दो-तीन नेताओ ने इसे मानने से इनकार कर दिया। इस पर गाधीजी के निवास स्थान पर दूसरी बैठक हुई, जिसमें उपस्थित सज्जनो ने भारी बहुमत से गाधीजी की बात स्वीकार कर ली। मालवीयजी ने स्वयं इसके विरुद्ध अपनी राय दी। निर्णय हो जाने पर उन्होने पंजाब गवर्नर के पास भेजे जाने वाले बहुसख्यक निर्णय का मसौदा स्वयं ही लिखा, और उसकी सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ओढ ली। इत घटना की विस्तार से चर्चा करते हुए स्वामी श्रद्धानन्द ने एक सस्मरण मे लिखा है: "निःस्वार्थपन और प्रजातन्त्रीय भावना का यह उत्कृष्ट उदाहरण था। यह उन अनेक अवसरो में केवल एक है जबकि मालवीय जी ने राजनीतिक नेताओ के सामने शान्त किन्तु शानदार उदाहरण पेश किया था। अपने समय के महान् नेता महात्मा गाधी तथा मालवीयजी को समझने में

यह घटना हमारी काफी सहायता करती है। अपनी बात न माने जाने पर गाधीजी सरकार को पत्र लिख कर पंजाब छोड कर जाने को तैयार थे। पर मालवीयजी! उन्हे बहुमत के सामने सिर झुका देने में कोई कठिनाई नही हुई। मालवीयजी की निःस्वार्थ-प्रियता, सदाशयता, उच्चता, निरभिमानता, तथा प्रजातंत्रीय भावना के सम्बन्ध मे इससे अधिक क्या कहा जा सकता है?"[1]

१३ नवम्बर को पजाब के लेफ्टिनेंट-गवर्नर काग्रेस को दो और बाते देने को तैयार हो गये। पहली यह कि यदि कमेटी के सामने गवाही देने के लिए कोई प्रमुख कैदी बुलाया गया, तो वह थोडे समय के लिए गवाही देने के दिन इस शर्त पर पेरोल पर छोड दिया जायगा कि कोई प्रदर्शन नही होगा। दूसरी यह कि जाच के दौरान वकील निश्चित समय पर जेल मे उस कैदी से मिल सकते है जिसका नाम गवाही के लिए कमेटी को दिया गया है। दूसरी ओर काग्रेस के नेताओ की माग थी कि प्रमुख कैदियो को हिरासत मे कमेटियो की उन बैठको मे मौजूद रहने की आज्ञा दी जाये, जिनमें उस घटना के सम्बन्ध मे गवाही होती हो जिससे वह सम्बद्ध है, ताकि वह वकील को उन तथ्यो के सबध मे जिनकी उसे जानकारी है उचित परामर्श दे सके। काग्रेस की बात सरकार मानने को तैयार नही थी, और सरकार की बात गाधीजी मानने को राजी नही थे। समझौता नही हो सका।

इसके बाद काग्रेस की पजाब सब-कमेटी ने काग्रेस जाच कमेटी नियुक्त करने का निश्चय किया। गाधीजी, अब्बास तैयबजी, श्री चितरजन दास, फजलुल हक साहब और पडित मोतीलाल नेहरू जाच कमेटी के सदस्य नियुक्त हुए। इनमे से फजलुल हक साहब जरूरी काम से कलकत्ते चले गये, और पडित मोतीलाल नेहरू ने काग्रेस का अध्यक्ष चुन लिये जाने पर जाच कमेटी से इस्तीफा दे दिया, और इन दोनों की जगह पर श्री मुकुन्द आर० जयकर सदस्य नियुक्त हुए। श्री के० सन्तानम ने जाच कमेटी के सचिव का काम किया।

२५ दिसम्बर को सम्राट् की क्षमा घोषणा से पजाब के बन्दी मुक्त कर दिये गये। इसके बाद काग्रेस की पजाब उपसमिति ने हटर कमेटी के साथ सहयोग करने का निश्चय किया। पर यह सभव नही हो सका, और काग्रेस जाच कमेटी ने स्वतत्र रूप से जाच करके अपनी रिपोर्ट और निष्कर्षो को जनता के सामने पेश करने का निर्णय किया। पर उसने काग्रेस उपसमिति के आदेशानुसार हटर कमेटी के सामने प्रस्तुत सरकारी अफसरो की गवाहियो का भी पूरी

१ मालवीयजी—जीवन झलकिया, पृ० १२।

तौर पर उपयोग किया। इस तरह काग्रेस जाच कमेटी की रिपोर्ट सरकारी अफसरो तथा भुक्तभोगी जनता, दोनो के बयानो पर आधारित थी।

काग्रेस जाच कमेटी की रिपोर्ट

२० फरवरी सन् १९२० को गाधीजी, श्री चितरजन दास, मिस्टर अब्बास तैयबजी और श्री एम० आर० जयकर ने पजाब काड पर सर्वसम्मत रिपोर्ट पर हस्ताक्षर कर उसे काग्रेस के अध्यक्ष मोतीलाल नेहरू के पास भेज दिया। रिपोर्ट में बताया गया कि पजाब की जनता सर माइकेल ओडायर के शासन की ज्यादतियो और सख्तियो से परेशान और रुष्ट थी, तथा रौलेट अधिनियम से भी उत्तेजित हो गयी थी, पर सरकार को उलट देने की कोई भावना या साजिश नही थी। पजाब की सन् १९१९ की स्थिति की सन् १८५७ की स्थिति से तुलना निराधार थी। रिपोर्ट में यह भी बताया गया कि गाधीजी की गिरफ्तारी और निष्कासन, तथा डाक्टर सत्यपाल और डाक्टर सैफुद्दीन किचलू की गिरफ्तारिया और नजरबन्दिया ही अमृतसर की जनता की उत्तेजना के तात्कालिक कारण थे, और रेल के पुल पर भीड पर गोली-वर्षा तथा कई आदमियो की उससे मृत्यु ही उत्तेजना और व्यग्रता का कारण थी, जिसका दुष्परिणाम जनता द्वारा दो यूरोपियनो की हत्या तथा गिरफ्तार लोगो की बरबादी था। ये ज्यादतिया नि सदेह निन्दनीय और दण्डनीय थी। पर इनके कारण सारे नगर का शासन सेना के अधिकारियो के सुपुर्द करना सर्वथा अनुचित था।

कमेटी ने जलियावाला बाग में निर्दोष निहत्थी जनता पर गोली-वर्षा को "क्रूरता का पूर्वनियोजित कार्य" बता कर जनरल डायर की निर्दयता तथा उच्छृङ्खल व्यवहार की कडी आलोचना करते हुए माग की कि उसे सब सरकारी पदो से अलग कर दिया जाय।

कमेटी की निश्चित राय थी कि मार्शल-ला चालू करने का कोई तर्कसंगत औचित्य नही था। उसे अत्यधिक काल तक जारी रखना तो और भी ग़लत था। हर जगह मार्शल-ला प्रशासन "क्रूर और दमनकारी" था। मार्शल-ला ट्रिब्यूनल और समरी कोर्ट जनता को सताने के साधन बना लिये गये थे, और उनके द्वारा बुरी तरह से 'न्याय की भ्रूणहत्या" की गयी थी।

मार्शल-ला अधिकारियो और कर्मचारियो के बहुत से कार्यों की निन्दा करते हुए कमेटी के सदस्यो (आयुक्तो) ने माग की कि कर्नल जानसन, कर्नल ओबरायन, मिस्टर बासवर्थ स्मिथ, राय साहब श्रीराम सूद और मालिक साहब

खा को सरकारी उत्तरदायित्व और पदो से हटा दिया जाय, निम्नकोटि के कतिपय कर्मचारियो की कार्रवाइयो की स्थानीय जाच करायी जाय।

आयुक्तो ने पजाव के लेफ्टिनेंट-गवर्नर सर माइकल ओडायर को ही सारी दुर्घटना का मुख्य रूप से उत्तरदायी ठहराते हुए माग की कि उन्हे "सम्राट् के सब उत्तरदायित्व कार्यभार से अलग कर दिया जाय।" आयुक्तो ने काफी विस्तार के साथ वाइसराय के कार्यों और दृष्टिकोण का विश्लेपण करते हुए उन्हे भी पजाब की दुर्घटनाओ का उत्तरदायी ठहराते हुए संस्तुति की कि उन्हे वापस वुला लिया जाय।

हटर कमेटी की रिपोर्ट

भारत सरकार द्वारा २४ अक्तूबर सन् १९१९ को नियुक्त हटर कमेटी ने ८ मार्च सन् १९२० को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। कमेटी के हिन्दुस्तानी सदस्य (श्री चिम्मनलाल सीतलवाद, श्री जगत नारायण मुल्ला तथा सरदार साहबजादा सुलतान अहमद) और उसके अगेज सदस्य (लार्ट हटर, जस्टिस जी० सी० रैनकिन, मिस्टर डब्ल्यू० एफ० राइस, मेजर जनरल सर जार्ज वरो और मिस्टर थामस स्मिथ) एक राय के नही थे। दोनो के निष्कर्षों में मौलिक भेद था। इसलिए हिन्दुस्तानो सदस्यो ने अंग्रेज सदस्यो से अलग एक अल्प-संख्यक रिपोर्ट लिखी, जिसके स्थिति-विश्लेपण और निष्कर्प वहुसंख्यक रिपोर्ट से बहुत भिन्न थे।

कमेटी के अग्रेज सदस्यो के विचार मे अप्रैल सन १९१९ मे विद्रोह (वगावत) की स्थिति थी, जिस पर काबू पाने के लिए मार्शल-ला घोषित करना और सैनिक शासन प्रतिष्ठित करना अनिवार्य था। हिन्दुस्तानी सदस्यो की राय मे उपद्रवो को 'विद्रोह' समझ मार्शल-ला घोषित करना अनुचित, अनावश्यक था। उनका निष्कर्ष था कि उपद्रवो के पीछे कोई पूर्वनियोजित साजिश नही थी, सिविल अधिकारी साधारण सी सैनिक सहायता से उपद्रवो को कन्ट्रोल कर सकते थे, मार्शल-ला शासन को चालू करना गलत था, पर उसे यदि ठीक भी मान लिया जाय, तो उसे कुछ दिनो के बाद जारी रखना नही चाहिए था। कमेटी के अधिकाश सदस्यो ने सरकारी अफसरो के बहुत से कामो को अमानुषिक बताया और मार्शल-ला के अधीन स्थापित न्यायालयो की कार्रवाइयो की आलोचना की।

कमेटी के अग्रेज सदस्यों ने भी स्वीकार किया कि मार्शल-ला अधिकारियो के कतिपय आदेश "अविवेकपूर्ण" थे, उन्होने "कोई अच्छा प्रयोजन पूरा नही

किया" और वे नागरिको को निरर्थक कष्ट से बचाने के पर्याप्त कौशल से तैयार नही किये गये थे।[1]" अग्रेज सदस्यो ने यह भी स्वीकार किया कि "सडक पर पेट के बल रेंगने की सजा" ने "जहाँ वहुत से निर्दोष व्यक्तियो को निरर्थक कष्ट दिया", "वहा इस अपमानजनक कार्य" ने ऐसी "कटुता और प्रजातीय दुर्भावना" पैदा की जो वहुत दिन जारी रही"।[2]

यद्यपि वाइसराय की कार्यपरिषद् के हिन्दुस्तानी सदस्य मियाँ मुहम्मद शफी ने अल्पसख्यक रिपोर्ट के निष्कर्षों को ठीक समझा, कार्यपरिषद् के अग्रेज सदस्यो ने अधिसख्यक रिपोर्ट के निष्कर्षो की पुष्टि की। भारत सरकार ने अपने परिपत्र में जनरल डायर के व्यवहार की किसी हद तक निन्दा करते हुए यह भी कहा कि "जनरल डायर के कार्य ने किसी हद तक उपद्रवो को फैलने से रोका।"

भारतमन्त्री ने कमेटी की बहुसख्यक रिपोर्ट और भारत सरकार के परिपत्र को मान्यता प्रदान करते हुए केवल जनरल डायर के व्यवहार की ही निन्दा की और कमाडर-इन-चीफ की इस आज्ञा का समर्थन किया कि जनरल डायर से ब्रिगेडियर-जनरल पद से इस्तीफा दिला दिया जाय। भारत-मन्त्री ने आशा व्यक्त की कि जिन कर्मचारियो के दुर्व्यवहार की ओर हटर कमेटी के वहुसख्यक सदस्यो ने सकेत किया है उन्हें किसी उचित ढग से चेतावनी दे दी जायगी, और सरकार की निन्दा किसी न किसी रूप में नोट कर दी जायगी। अन्त में भारतमन्त्री ने ब्रिटिश सरकार की ओर से सब सिविल और फौजी अफसरो के प्रति वाइसराय के आदर का समर्थन करते हुए, वाइसराय के प्रति विशेष रूप से आभार प्रकट किया।

ब्रिटिश पार्लियामेट के अधिकाश सदस्यो ने जनरल डायर का समर्थन करना ही उचित समझा। यद्यपि कामन्स सभा (हाउस आफ कामन्स) ने कोई प्रस्ताव पास नही किया, सरदार सभा (हाउस आफ लार्डस) ने ८६ मतो के विरुद्ध १२९ मतो से यह प्रस्ताव पारित कर दिया कि यह सदन 'जनरल डायर' के सम्बन्ध में सरकार के निर्णय को उस अफसर के प्रति "अन्याय" समझ "क्षोभ" प्रकट करता है, उसकी राय मे यह ऐसी मिसाल प्रस्तुत करता है जो "वगावत की हालत में भारत की व्यवस्था की रक्षा मे वाधक होगी।"

---

१. हन्टर कमेटी की रिपोर्ट, पृ० ८३। २ वही, पृ० ८३।

१३. असहयोग आन्दोलन

खिलाफत का प्रश्न

युद्ध के जमाने मे ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल ने अरबो से वायदा किया कि युद्ध के वाद तुर्की के साथ आत्मनिर्णय तथा राष्ट्रीयता के सिद्धान्तो का अनुसरण किया जायगा, और हिन्दुस्तान के मुसलमानो से वायदा किया कि थ्रास तथा एशिया माइनर तुर्को से छीना नही जायगा। पर गुप्त रूप से उसने यहूदियो से वायदा किया कि युद्ध के वाद उन्हें फिलस्तीन मे वसाने का प्रवन्ध किया जायगा। रूस से वायदा किया कि युद्ध के वाद कुस्तुनतुनिया रूस साम्राज्य मे मिला दी जायगी, और फ्रान्स से तय किया कि युद्ध के वाद अरव के एक भाग पर फ्रान्स और दूसरे भाग पर ब्रिटेन का अधिकार किसी न किसी रूप मे स्थापित किया जायगा।

युद्ध के वाद मुसलमानो ने देखा कि ब्रिटिश सरकार ने जो वायदे अरबों से और उनसे किये है, उन सवकी उपेक्षा करते हुए वह तुर्की साम्राज्य को, जिसका सुलतान मुसलमानो का खलीफा है, बिलकुल नष्ट कर देना चाहती है। उन्हें उस समय पता चला कि दर्रे दानियाल को सैनिक-विहीन कर देने की, कुस्तुतुनिया को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र घोषित करने की, फिलस्तीन में यहूदियो को वसाने की, थ्रास को यूनानियो को सौप देने की, तुर्की मे हाई कमिश्नर नियुक्त करने की, तथा अरव को तीन हिस्सो में वांटकर प्रादेश (मेन्डेट) के नाम पर दो भागो में ब्रिटेन का और एक भाग पर फ्रास का प्रभुत्व प्रतिष्ठित करने की योजनाएँ वनायी जा रही है।

खिलाफत कमेटी

इन योजनाओ के समाचारो ने भारत के मुसलमानो को विह्वल कर दिया। सितम्बर सन् १९१९ में खिलाफत कमेटी गठित की गयी, और २२ नवम्बर सन् १९१९ को दिल्ली मे मिस्टर फजलुल हक़ साहव की अध्यक्षता में खिलाफत कान्फ्रेन्स का पहला अधिवेशन सम्पन्न हुआ। दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में अमृतसर मे कांग्रेस के अधिवेशन के अवसर पर मुसलमान नेताओ ने हिन्दू नेताओ से खिलाफत की समस्या पर बातचीत की। हिन्दू नेताओ ने मुसलमानो की भावनाओ के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करते हुए उनका साथ देने का उन्हें आश्वासन दिया।

३१ दिसम्बर सन् १९१९ को मौलाना शौकत अली की अध्यक्षता में खिलाफत कान्फ्रेंस का दूसरा अधिवेशन हुआ, जिसने खिलाफत के प्रश्न पर ब्रिटेन की गतिविधि पर क्षोभ प्रकट करते हुए घोषित किया कि "भारतीय मुसलमान उन माँगो पर दृढ रहेंगे जो इस्लाम का कानून उन्हें प्रतिपादित करने और अभिव्यक्त करने को बाध्य करता है", और चेतावनी दी कि "यदि ब्रिटिश सरकार ने सन्धि कान्फ्रेंस मे उन बातो को स्वीकार किया जो हमारे दीन की मान्यताओ के प्रतिकूल है, तो उस दशा में हमारा व्यवहार उन कर्तव्यो से शासित होगा जिन्हे हमारे दीन ने हम पर प्रबलरूप से लागू किया है और उसके लिए ब्रिटिश सरकार ही उत्तरदायी होगी।"[1] इस अधिवेशन में बहुत से मुसलमान नेताओ के अतिरिक्त गाधीजी और मालवीयजी भी उपस्थित थे।

१९ जनवरी सन् १९२० को डाक्टर मुखतार अहमद अन्सारी की अध्यक्षता में मुसलमानो का एक शिष्ट-मडल वाइसराय से मिला। उसने तुर्की साम्राज्य तथा खलीफा की प्रभुसत्ता की सुरक्षा की आवश्यकता पर जोर देते हुए कहा कि धार्मिक सस्था के साथ साथ लौकिक सस्था के रूप में भी खिलाफत का सतत अस्तित्व उनके धर्म का मूल तत्त्व है। वाइसराय ने मुसलमानो की भावनाओ के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा कि समस्या का निबटारा केवल ब्रिटेन के हाथ में नही है। इस उत्तर को असन्तोषजनक समझ कर बहुत से मुसलमानो ने घोपित किया कि "मुस्लिम विशेपज्ञो द्वारा परिसीमित अरब देश तथा मुसलमानो के पवित्र स्थान खलीफा के नियत्रण मे रहने चाहिए", और "यदि सन्धि की शर्तें इस्लाम धर्म और मुसलमानो की भावना के विरुद्ध होगी, तो वह मुसलमानो की वफादारी पर बहुत तनाव सिद्ध होगी"[2]।

फरवरी सन् १९२० मे खिलाफत कमेटी ने मौलाना मुहम्मद अली की अध्यक्षता मे एक शिष्टमडल ब्रिटेन को भेजने का निश्चय किया। यह भी निश्चय हुआ कि यदि प्रधानमत्री का उत्तर सन्तोषजनक न हो, तो सारे देश में 'शोक दिवस' मनाया जाय। मौलाना शौकत अली ने घोपित किया कि उस दिन यह प्रस्ताव पारित हो कि यदि सन्धि की शर्तें भारतीय मुसलमानो की भावनाओ के अनुकूल नही होगी, तो मुसलमान ब्रिटिश ताज से अपना वफादाराना सम्बन्ध तोडने पर मजबूर होगे।[3]

---

१ इडियन एनुअल रजिस्टर, सन् १९२०, पृ० ४६१।
२. पट्टाभि सीतारमैय्या हिस्ट्री आफ दि इडियन नेशनल काग्रेस, पृ० १९०।
३ वही, पृ० १९१।

गांधीजी का वक्तव्य

१० मार्च सन् १९२० को गाधीजी ने एक वक्तव्य प्रसारित किया जिसमें उन्होने कहा—"इंगलिस्तान हमसे उन अविकारो के अन्यायपूर्ण अपहरण की विनम्र आज्ञाकारिता की आशा नही कर सकता जो मुसलमानो के लिए जीवन-मरण का प्रश्न है।"[1] उन्होने कहा : "असहयोग कर्तव्य हो जाता है जव सहयोग का अर्थ अधोगति या अपमान हो, अपनी धार्मिक भावना पर अघात हो,"[2] उन्होने अहिंसात्मक असहयोग के तात्विक और व्यावहारिक गुणो की ओर सकेत करते हुए एकमात्र व्यावहारिक दृष्टि से ही उसे स्वीकार करने का मुसलमानो से अनुरोध किया।[3]

प्रधान मन्त्री का उत्तर

लन्दन मे खिलाफत कमेटी का शिष्ट-मंडल भारत-मत्री के स्थान पर ब्रिटेन के मंत्री फिशर से, और उसके वाद २७ मार्च को प्रधान-मन्त्री लायड जार्ज से मिला। उन्होने मौलाना मुहम्मद अली से स्पष्ट शब्दो में कह दिया कि तुर्कों की सलतनत उनकी मातृभूमि पर वनी रहेगी, पर पश्चिमी एशिया पर से उसका आधिपत्य खत्म कर दिया जायगा।

अहिंसात्मक आन्दोलन

१९ मार्च सन् १९२० को भारत के मुसलमानो ने सारे देश में 'शोक दिवस' मनाया, तथा खिलाफत के अस्तित्व और गौरव को वनाये रखने के लिए हर कुर्बानी करने का प्रण किया। १४ मई सन् १९२० को मित्रराष्ट्रो ने तुर्की से की जाने वाले सन्धि की रूपरेखा प्रकाशित की। २ जून सन् १९२० को कतिपय नेताओ की कान्फरेन्स में खिलाफत के प्रश्न पर अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन का कार्यक्रम तैयार करने का निश्चय हुआ। चूँकि इस्लाम धर्म ऐसी परिस्थितियो में मुसलमानो को हिंसात्मक सघर्ष की इजाजत देता है, इसलिए बहुत से मुसलमान "अहिंसा" की शर्त स्वीकार करने से हिचकते थे। पर गाधीजी के समझाने पर तथा लखनऊ के मौलाना अब्दुलवारी के फतवा पर वे अहिंसा को नीति के रूप में स्वीकार करने को तैयार हो गये। मौलाना साहब का कहना था कि इस्लाम हिंसात्मक सघर्ष की इजाजत देता है, पर अहिंसात्मक संघर्ष को मना नही करता, परिस्थिति को ध्यान में रख कर नीति के रूप में हिंसा के बजाय अहिंसा का

---

१ वही, पृ० १९१। २ वही, पृ० १९१।
३. वही, पृ० १९१।

अवलम्बन किया जा सकता है। १ अगस्त सन् १९२० को खिलाफत कमेटी की ओर से आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। उस दिन गाधीजी ने "कैसरे हिन्द" का तमगा सरकार को लौटा दिया।

हिजरत

इसी प्रसंग में खिलाफत के प्रति ब्रिटिश सरकार की वक्र दृष्टि से क्षुब्ध हो मौलवियो के फतवे पर अगस्त में ही सिन्ध तथा सीमा प्रान्त के लगभग १८००० मुसलमानो ने अफगानिस्तान को हिजरत करने की ठान ली। पर कुछ समय काबुल में रहने के बाद करीब करीब सब हिन्दुस्तान वापस लौट आये, कुछ ताशकन्द चले गये।

काग्रेस का विशेष अधिवेशन

३० मई १९२० को अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी ने सितम्बर में पंजाब के प्रश्न पर काग्रेस का विशेष अधिवेशन करने का निश्चय किया था। काग्रेस के करीब-करीब सभी नेताओ की राय थी कि इस अधिवेशन मे खिलाफत के प्रश्न पर भी विचार किया जाय। उनकी धारणा थी कि काग्रे : के अधिवेशन में ही पुराने निर्णयो को बदल कर नया कार्यक्रम निश्चित किया जा सकता है, और काग्रेस के विरुद्ध या उससे अलग देशव्यापी संघर्ष या आन्दोलन प्रारम्भ करना अनुचित है।

गाधीजी इस विचार से सहमत नही थे। उन्होने असहयोग आन्दोलन की रूपरेखा बताते हुए स्पष्ट कर दिया था कि काग्रेस का चाहे कुछ भी निर्णय हो, आन्दोलन शुरू किया जायगा, और १ अगस्त को उन्होने खिलाफत कान्फ्रेन्स की ओर से कार्य प्रारम्भ भी कर दिया।

सितम्बर सन् १९२० के पहले पखवारे में लाला लाजपतराय की अध्यक्षता में कलकत्ते में काग्रेस का विशेष अधिवेशन सम्पन्न हुआ। पजाब काड के सम्बन्ध मे प्रतिनिधियो के विचारो में कोई विशेष अन्तर नही था, और इसलिए बिना किसी वाद-विवाद के सर्वसम्मति से उसके सम्बन्ध में प्रस्ताव स्वीकार हो गया। पर असहयोग के सम्बन्ध में प्रमुख नेताओ में गहरा मतभेद था। गाधीजी केवल खिलाफत के प्रश्न पर ही असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ करने के पक्ष में थे, पर कुछ लोगो के आग्रह पर स्वराज्य की प्राप्ति और पजाब के अन्याय के परिशोधन के प्रश्नो को भी शामिल कर लिया गया। कौंसिलो, विद्यालयो और न्यायालयो के बहिष्कार के सम्बन्ध में ही सबसे गहरा मतभेद था। पंडित मोतीलाल नेहरू

का आग्रह था कि विद्यालयो और न्यायालयो का क्रमिक बहिष्कार हो, और जब गांधीजी ने उनके इस संशोधन को स्वीकार कर लिया, तब उन्होने गाधीजी के प्रस्ताव का समर्थन किया। जून में उन्होने कौंसिलो के बहिष्कार के विरोध में एक पत्र गाधीजी को लिखा था, पर इस समय उन्होने इसका कोई विशेष विरोध नही किया। पर मालवीयजी, चित्तरजन दास, बिपिनचन्द्र पाल आदि नेताओ ने प्रस्ताव का डट कर विरोध किया, और विपय समिति मे केवल सात वोटो के बहुमत से ही गाधीजी का प्रस्ताव स्वीकार हो सका। कांग्रेस के खुले अधिवेशन में गाधीजी ने प्रस्ताव पेश किया, और मोतीलाल नेहरू ने उसका समर्थन किया। विपिनचन्द्र पाल ने इस आशय का संशोधन प्रस्तुत किया कि प्रधानमंत्री से अनुरोध किया जाय कि वे एक भारतीय मिशन (शिष्टमण्डल) से मिले, जो उनके सामने भारतीयो की शिकायतो तथा स्वशासन की माग को पेश करे, और यदि प्रधान-मत्री मिशन से भेट करने को, या पूर्ण स्वशासन देने को तैयार न हो, तो सक्रिय असहयोग की ऐसी नीति अपनायी जाय जिससे ब्रिटिश जनता समझ ले कि भारत अब पराधीन देश के रूप में शासित होने को तैयार नही है, और इस सब काम के बीच जनता गाधीजी के कार्यक्रम पर विचार करे, और इसके लिए प्रचार किया जाय।[1]

पडित मोतीलाल नेहरू, डाक्टर शैफुद्दीन किचलू, पडित रामभज दत्त चौधरी, जितेन्द्र लाल बनर्जी, मौलाना शौकत अली, स्वामी गोविन्दानन्द, सैयद याकूब हुसैन, डाक्टर अन्सारी आदि ने गाधीजी के प्रस्ताव का समर्थन किया। सर आसुतोप चौधरी, श्रीमती एनी बेसेंट, पडित गोकरण नाथ मिश्र, पडित हृदय नाथ कुजरू आदि ने प्रस्ताव का विरोध किया। मालवीयजी, श्री चित्तरंजनदास, मिस्टर मुहम्मद अली जिना, श्री बेपटिस्टा ने प्रस्ताव का विरोध करते हुए श्री विपिन चन्द्र पाल के सशोधन का समर्थन किया। सर्वश्री एन० सी० केलकर, एम० आर० जयकर, कस्तूरी रंगा ऐयंगार, विजयराघवाचार्य और सत्यमूर्ति भी संशोधन के पक्ष में थे।

मालवीयजी ने अपने भापण में कहा कि वे श्री विपिनचन्द्र पाल के सशोधन से भी पूरी तौर पर सन्तुष्ट नही है, क्योकि उनके विचार में सरकार के सामने राष्ट्रीय माँग पेश करते समय उसे धमकी देना उचित नही है। पर वे सशोधन का समर्थन करते है, क्योकि उनके विचार में प्रस्ताव की तुलना मे सशोधन अच्छा है। उन्होने कहा कि वह आज की परिस्थिति मे असहयोग को 'न्यायसगत

१. वही, पृ० २०३-२०४।

और सवैधानिक' मानते है, और खिलाफत के प्रश्न पर मुसलमानो की भावनाओ के प्रति उनकी पूरी सहानुभूति है, और वे चाहते है कि विजयी राष्ट्र तुर्की साम्राज्य के साथ न्याययुक्त सन्धि करें। पर प्रस्तावित असहयोग द्वारा खिलाफत की समस्या का समाधान सम्भव नही दिखाई देता। लार्ड चेम्सफोर्ड, उन्होने कहा, अप्रैल में वापस जा रहे है, और पजाव काड से सम्बन्धित कई अफसर रिटायर हो चुके है। अव दो चार अपराधी अफसरो को दण्डित कराने के लिए देशव्यापी आन्दोलन चलाना किस तरह ठीक होगा ? स्वशासन ही अत्याचारो के निराकरण का साधन है। उसके लिए देशव्यापी जनान्दोलन नि सन्देह आवश्यक है, पर कौंसिलो का बहिष्कार हानिकर है। यदि काग्रेस ने उनका बहिष्कार किया, तो सरकार के समर्थक वहाँ घुस जायेंगे। पारस्परिक झगडों के निपटारे के लिए पचायतो का संगठन ठीक है, पर उनके स्थापित होने से पहले सरकारी अदालतो का वाइकाट कैसे हो सकता है ? सव वकीलो के लिए अदालतो का काम छोड देना भी सम्भव नही है। इस समय जव शिक्षा का विस्तार राष्ट्र की प्रगति के लिए परम आवश्यक है, विद्यालयो का वाइकाट घातक होगा।

काग्रेस के खुले अधिवेशन मे गाधीजी का प्रस्ताव भारी वहुमत से पास हो गया, और उस पर देश में जोर-शोर से काम प्रारम्भ हो गया। नवयुवको ने वहुत उत्साह से उसका स्वागत किया।

नागपुर अधिवेशन

दिसम्वर के अन्तिम सप्ताह में श्री सी० विजयराघवाचार्य की अध्यक्षता में काग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ, जिसमें असहयोग प्रस्ताव पर फिर से विचार हुआ। कतिपय नेताओ के आग्रह पर नये प्रस्ताव में स्वराज्य को प्रमुख स्थान दिया गया। प्रारम्भ में ही घोषित किया गया कि 'मौजूदा भारत सरकार ने जनता का विश्वास खो दिया है', और 'जनता स्वराज्य लेने को कृतसंकल्प है'। इस प्रस्ताव मे यह भी घोषित किया गया कि स्वराज्य ही सब शिकायतो के निराकरण का साधन है। स्कूलो और अदालतों के वहिष्कार के प्रस्तावो को सशोधित करते हुए कलकत्ता द्वारा निश्चित मान्यताओ को स्वीकार किया गया, विधान सभाओ के निर्वाचिको से अनुरोध किया गया कि वे अपने अपने क्षेत्र के सदस्यो से इस्तीफे की माँग करें। असहयोग के कार्यक्रम में सविनय-अवज्ञा और लगानवन्दी भी जोड दी गयी।

श्री चित्तरंजन दास ने इस प्रस्ताव को खुले अधिवेशन में प्रस्तुत किया। गांधीजी ने इसका अनुमोदन, और लाला लाजपत राय ने समर्थन किया। मिस्टर मुहम्मद अली जिना ने इसका विरोध किया। ज्वर से पीड़ित होने के कारण मालवीयजी अधिवेशन मे उपस्थित नही हो सके, पर उन्होने गाधीजी द्वारा यह सदेश भेज दिया कि उन्हे संशोधित रूप में भी प्रस्ताव मजूर नही है। प्रस्ताव भारी बहुमत से स्वीकार हो गया।

इस अधिवेशन मे गाधीजी ने प्रस्ताव किया कि 'इडियन नेशनल काग्रेस का लक्ष्य शान्त और न्यायसंगत उपायो द्वारा स्वराज्य प्राप्त करना है।' गाधीजी ने कहा 'प्रस्ताव के शब्द ऐसे है जिनसे दोनों अर्थ निकाले जा सकते है। ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर स्वराज्य, अथवा ब्रिटिश साम्राज्य के बाहर स्वराज्य। इस प्रस्ताव मे सब दलवालो के लिए गुंजायश है, जो ब्रिटिश साम्राज्य से सम्बन्ध रखना चाहते है, और जो ब्रिटिश साम्राज्य से सम्बन्ध रखना नही चाहते।' मालवीयजी और जिना साहब दोनो को यह प्रस्ताव भी पसन्द नही था। जिना साहब ने काग्रेस छोड दी, पर आगे चल कर मालवीयजी ने गाधीजी की व्याख्या स्वीकार करते हुए नये लक्ष्य पर हस्ताक्षर कर दिये। परन्तु इसके बाद भी वे पूर्ववत् साम्राज्य के अन्दर स्वराज्य की सम्भावना को सार्थक बनाने में संलग्न रहे, और कौन कह सकता है कि यदि साम्राज्य के बाहर स्वराज्य मिलना सभव होता, तो मालवीयजी उसे लेने से इनकार कर देते।

असहयोग का कार्यक्रम

उपाधियो का, तथा अवैतनिक सरकारी ओहदो का, और स्थानीय निकायो की मनोनीत सदस्यता का बहिष्कार, सरकार द्वारा आयोजित दरबारो और समारोहो मे जाने से इनकार, सरकारी तथा सरकार से सहायता प्राप्त स्कूलो और कालेजो का आनुक्रमिक बहिष्कार, वकीलो और वादियो द्वारा धीरे-धीरे अदालतो का बहिष्कार, विधान कौंसिलो का उम्मीदवारो और निर्वाचको द्वारा बहिष्कार, मद्यनिषेध, विदेशी माल का बहिष्कार, चरखा द्वारा सूत कातने को प्रोत्साहन, करघों द्वारा बुनी खादी का प्रयोग, राष्ट्रीय विद्यालयो की स्थापना, निजी झगडो के निपटाने के लिए गैरसरकारी पचायती अदालतो की स्थापना, छूतछात का निवारण, दलित जातियो का उत्थान, तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता असहयोग आन्दोलन का मुख्य कार्यक्रम था।

खिलाफत कान्फरेन्स

जुलाई सन् १९२१ के पहले सप्ताह में खिलाफत कान्फरेन्स ने अपने कराची अधिवेशन में मौलाना मुहम्मद अली के भाषण के बाद निश्चय किया कि "आज

से किसी ईमानदार मुसलमान के लिए फौज में काम करना या उनकी भरती में सहायता करना, या मौन स्वीकृति देना अनैतिक होगा।"[1] कान्फ्रेन्स ने यह भी घोषित किया कि यदि ब्रिटिश सरकार ने अगोरा सरकार से युद्ध छेडा, तो हिन्दुस्तान के मुसलमान सविनय-अवज्ञा प्रारम्भ कर देंगे, तथा पूर्ण स्वतंत्रता घोषित करके कांग्रेस के अहमदाबाद अधिवेशन में भारतीय गणतन्त्र का झंडा फहरा देंगे।[2]

कांग्रेस का निर्णय

जुलाई के अन्तिम सप्ताह मे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने घोषित किया कि "सरकार की सैनिक या असैनिक नौकरी करना अभीष्ट है अथवा नही, इस पर अपनी राय व्यक्त करना एक नागरिक का जन्मजात अधिकार है, और वह उस सरकार की नौकरी को छोडने की खुली अपील करने का हक रखता है, जिसने भारतीय जनता का विश्वास खो दिया है।"[3] इसी अधिवेशन में कांग्रेस कमेटी ने भारतीय जनता से अपील की कि वह ब्रिटेन के राजकुमार के स्वागत का बहिष्कार करे,[4] और विदेशी वस्त्रो का परित्याग कर स्वदेशी को अपनाये।

सितम्बर सन् १९२१ मे मौलाना मुहम्मद अली और मौलाना शौकत अली सेना के भडकाने के अभियोग में गिरफ्तार कर लिये गये। तब गांधीजी ने मौलाना मुहम्मद अली के कराची के भाषण को स्वयं सार्वजनिक तौर पर दोहराया और ५ अक्तूबर को कांग्रेस की वर्किंग कमेटी ने अपने एक वक्तव्य द्वारा घोषित किया कि "किसी भारतीय के लिए किसी भी हैसियत से उस सरकार की नौकरी करना राष्ट्रीय गौरव तथा राष्ट्रहित के विरुद्ध है जिसने रौलेट अधिनियम आन्दोलन के जमाने में जनता की न्यायसंगत आकांक्षाओ को दबाने के लिए सिपाहियो और पुलिस का प्रयोग किया, और जिसने तुर्कों, अरबो, मिस्रियो और दूसरे राष्ट्रो की राष्ट्रीय भावनाओ को कुचलने के लिए सेना का प्रयोग किया।"[5]

सरकार ने कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्यो के विरुद्ध, जिन्होंने इस वक्तव्य पर हस्ताक्षर किये थे, कोई कार्यवाही नही की। जिन लोगो ने २६ अक्तूबर को कांग्रेस का प्रस्ताव प्रसारित किया, उनसे भी कोई पूछताछ नही की। पर

---

१ पट्टाभि सीतारमैया वही, पृ० २१७।

२ वही, पृ० २१७। ३. वही, पृ० २१४।

४. वही, पृ० २१५। ५ वही, पृ० २१७।

१ नवम्बर को मौलाना मुहम्मद अली, मौलाना शौकत अली, सैफुद्दीन किचलू, शारदापीठ के शंकराचार्य, मौलाना निसार अहमद, पीर गुलाम मुजाददीद, तथा मौलाना हुसेन अहमद को, जिन्होंने खिलाफत कान्फरेन्स के कराची अधिवेशन में भाग लिया था, सजा दे दी।

५ अक्तूबर को बैठक में ही कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने उन लोगों को प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के आदेश पर व्यक्तिगत सविनय-अवज्ञा की इजाजत दे दी, जो सरकार द्वारा स्वदेशी के प्रचार के काम से रोके गये हों। इसी बैठक में राजकुमार के बहिष्कार का विस्तृत कार्यक्रम निश्चित हुआ, और तय किया गया कि जिस दिन राजकुमार भारत में उतरें, उस दिन सारे देश में हड़ताल हो।

नवम्बर के पहले सप्ताह में दिल्ली में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई। कमेटी ने फतवा बन्दियों की सजा की कड़ी आलोचना की। शान्ति और सुव्यवस्था के नाम पर सरकार द्वारा मोपलाओं पर किये जाने वाले अत्याचारों की भी कमेटी ने भर्त्सना की। उसने यह भी निर्णय किया कि खिलाफत, पंजाब और स्वराज्य के सम्बन्ध में भारत के निश्चय की सरकार द्वारा उपेक्षा के विरुद्ध निर्धारित शर्तें पूरी होने पर बरदोली में 'सामूहिक सविनय-अवज्ञा' आन्दोलन प्रारम्भ किया जाय।

राजकुमार का बहिष्कार

१७ नवम्बर को ब्रिटेन के राजकुमार ने बम्बई में पदार्पण किया। सारे देश में कांग्रेस के आदेश पर हड़ताल हुई। बम्बई में उपद्रव हुए, जो तीन-चार दिन तक चलते रहे, जिनमें लगभग चार सौ आदमी घायल हुए, और ५३ आदमियों की मृत्यु हो गयी। गांधीजी ने प्रायश्चित के रूप में पाँच दिन का उपवास किया, तथा श्रीमती सरोजनी नायडू के साथ शान्ति स्थापित करने के निमित्त बम्बई नगर में चक्कर लगाये।

इसके बाद कांग्रेस तथा खिलाफत कमेटी के स्वयंसेवकों की तत्परता तथा सरकारी दमन, दोनों ने जोर पकड़ा। स्वयंसेवकों ने विदेशी कपड़े के बहिष्कार तथा राजकुमार के स्वागत के विरोध में डटकर काम किया। सरकार ने स्वयंसेवकों की भरती को गैर-कानूनी घोषित करके स्वयंसेवकों की शक्ति को कुचलने का निश्चय किया। क्रिया प्रतिक्रिया ने सविनय-अवज्ञा का रूप धारण कर लिया। बंगाल में इसका शुभारम्भ चित्तरंजन दासजी की धर्मपत्नी बसंती देवी ने किया। बंगाल सरकार के आदेश की अवहेलना करते हुए बंगाल

के बहुत से नवयुवक स्वयंसेवक बन कर निकल पडे। सरकार ने उन्हें गिरफ्तार किया। नवयुवको का साहस और उत्साह फीका पडने के बजाय दुगुना हो गया। बगाल सरकार ने लगभग दो हजार स्वयसेवको को पकड कर जेल भेज दिया। श्री चित्तरजन दास और मौलाना अब्बुल कलाम आजाद भी अलीपुर जेल में बन्द कर दिये गये। आसाम, उत्तर प्रदेश, दिल्ली और पंजाब में भी दमन ने जोर पकडा। काग्रेस के अहिंसात्मक सार्वजनिक कार्यों में भी हस्तक्षेप होने लगा। भयभीत करने के आरोप में स्वयंसेवको को पीडित और दण्डित किया जाने लगा, और जेल में उन्हें तरह-तरह से परेशान किया जाने लगा। दफा १४४ का प्रयोग कर सार्वजनिक सभाओ का आयोजन कठिन बना दिया गया। समाचारपत्रो पर सरकारी नियंत्रण कडा कर दिया गया। बहुत से अन्य कार्यकर्ताओ के साथ लाला लाजपत राय, पडित मोतीलाल नेहरू, पंडित जवाहर लाल नेहरू भी गिरफ्तार कर लिये गये।

मालवीयजी की धारणाए

मालवीयजी ने असहयोग की नीति को सिद्धान्तत. स्वीकार करते हुए भी उसके कार्यक्रम के कतिपय अशो को अव्यावहारिक और हानिकर बता कर उसका विरोध किया। उनका मुख्य विरोध न्यायालयो, विधानसभाओ, तथा शिक्षा संस्थाओ के बाइकाट पर था। वे न्यायालयो के बाइकाट को अव्यावहारिक तथा विधान-सभाओ और शिक्षा सस्थाओ के बाइकाट को हानिकर समझते थे। उनकी धारणा थी कि विधान-सभाओ में भी स्वराज्य के लिए संघर्ष किया जा सकता है, सरकार की गतिविधि का तीव्र विरोध किया जा सकता है, और राष्ट्र के हित में उनका उपयोग आवश्यक है। वे शिक्षा सस्थाओ की व्यवस्था से पूरी तौर पर सन्तुष्ट नही थे। वे सब नवयुवको को देशप्रेम की शिक्षा देना आवश्यक समझते थे। पर वे राष्ट्र की प्रगति में शिक्षा संस्थाओ का योगदान भी स्वीकार करते थे। वे लाला लाजपत राय की तरह शिक्षा संस्थाओ के बहिष्कार को 'अनर्थकारी' समझते थे। वे तो चाहते थे कि इन सस्थाओ का बहिष्कार करने के बजाय सरकार पर दबाव डाल कर उन्हें अधिक उपयोगी बनाया जाय। उनका कहना था कि शिक्षा-प्रणाली के दोषो की समीक्षा करते समय हमें यह नही भूल जाना चाहिए कि उसने प्रसिद्ध विद्वानो को जन्म दिया है, ऐसे विद्वान पैदा किये है जिन्होने जीवन के भिन्न क्षेत्रो में ख्याति प्राप्त की है, जिन्होने देश के मान और मानसिक विकास की वृद्धि की है। वे चाहते थे कि विद्यार्थी देश-सेवक बनें, सेवा की क्षमता अपने में विकसित करें, रचनात्मक

कार्यों द्वारा देश-सेवा का अभ्यास करे, अपना जीवन जनता के जीवन से आत्मसात करें। वे यदि चाहें तो अपनी अन्तरात्मा के आदेश, पर स्वतंत्रता के निमित्त आत्मोसर्ग करें, और अपने जीवन को वलिदान कर दें। पर वे यह नही चाहते थे कि वाइकाट के हुडबोग मे फँसकर विद्यार्थी अपना समय नष्ट करें, अपनी पढाई-लिखाई वर्बाद करें। मालवीयजी स्वदेशी के पक्ष में थे। उनका खद्दर से कोई विरोध नही था, पर उन्हे विदेशी कपडो की होली बुरी लगती थी। उसे वे उचित नही समझते थे। वे गाधीजी के अनुरोध तथा काग्रेस के आदेश को ध्यान में रखकर केन्द्रीय असेम्वली का वहिष्कार कर सकते थे, वहाँ जाकर काम करने का विचार स्थगित कर सकते थे; पर सरकार द्वारा समर्थित शिक्षा संस्थाओ की निन्दा करना, तथा उनसे अपना सम्वन्ध विच्छेद कर लेना उनके लिए सम्भव नही था। न वे काशी विश्वविद्यालय से अपना सम्वन्ध विच्छेद कर सकते थे, और न उसका सरकार से सम्वन्ध विच्छेद करा सकते थे। विश्वविद्यालय के कोर्ट और कौसिल में भारी वहुमत उनका था, जो सरकार से उसका सम्वन्ध वनाये रखना चाहते थे। उस वहुमत को अल्पमत में वदल देना मालवीयजी के लिए भी नामुमकिन था। यदि मालवीयजी स्वयं उससे अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लेते, तो जो कुछ उसका राष्ट्रीय स्वरूप था, वह भी विकृत हो जाता, और उनके दस वर्ष के अथक परिश्रम को वहुत वडी क्षति पहुँचती।

इन सव मतभेदो के होते हुए भी गाधीजी से मालवीयजी के सम्वन्ध अच्छे वने रहे। गाधीजी उन्हे अपना वडा भाई समझते रहे, और मालवीयजी गाधीजी को सम्मानित भाई कह कर ही सम्बोधित करते रहे। इस बात की चिन्ता न करके कि उनकी वात पर ध्यान दिया जायगा अथवा नही, मालवीयजी कांग्रेस के अधिवेशनो में तथा अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी की वैठको मे जाते, और वहा अपने विचार रखते, एवं गाधीजी से अकेले मे वातचीत करते, और उन्हें अपनी वात समझाने का प्रयत्न करते रहे। यद्यपि उन्हें असहयोग आन्दोलन की कुछ वातें बुरी लगती थी, और उनकी समीक्षा वे समय-समय पर करते रहते थे, पर वे इसके साथ ही असहयोग आन्दोलन द्वारा जो जनजागृति पैदा हुई थी उसको भी स्वीकार करते थे, और मुक्त कंठ से उसकी प्रशंसा भी करते थे। उनका हृदय उनके साथ था जो अपने विवेक के अनुसार या दूसरे नेताओ के आदेश पर संघर्ष कर रहे थे, अपने सुख वैभव को राष्ट्रहित पर न्यौछावर कर रहे थे। वे नवयुवको के व्यवहार से क्षुब्ध हो न सरकार से मिल जाने को तैयार थे, न चुपचाप घर बैठ जाने को। कर्मनिष्ठ के लिए कर्म-संन्यास लेना, देशभक्त

के लिए जना-दोलन को दवाने में विदेशी सरकार का समर्थन करना, त्यागी के लिए त्याग के युग मे स्वार्थ की वात सोचना असभव था।

मालवीयजी लार्ड रीडिंग से मिलते, उनसे देश की समस्याओ पर वातचीत करते, पर स्वार्थ सिद्धि के वजाय राष्ट्रहित की वृद्धि ही इस विचार-विमर्श का लक्ष्य होता। उन्होंने राजकुमार के वहिष्कार का विरोध किया, इसलिए नही कि उनके इस कार्य से सरकारी क्षेत्रो में उनके मान की वृद्धि होगी, वल्कि इसलिए कि उनके विचार में वहिष्कार से निरर्थक कटुता वढेगी, सरकार किसी उपद्रव के वहाने से दमन प्रारम्भ कर देगी। सरकार ने उन्हे अपनी ओर खीचने का प्रयत्न किया, पर वह ऐसा नही कर पायी। वाइसराय ने उन्हे नाइटहुड की उपाधि से विभूपित करना चाहा, पर उन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया।

राष्ट्रहित को ध्यान में रखते हुए उन्होने गाधी-रीडिंग समझौता कराने की अवश्य कोशिश की। इस उद्देश्य से उन्होने लार्ड रीडिंग के वुलाने पर उनसे वात करने के वाद गाधीजी से अनुरोध किया कि वे वाइसराय से मिल कर देश की समस्या पर उनसे वातचीत करें। कुछ हिचकिचाहट के वाद गाधीजी राजी हो गये, और वे मई सन् १९२१ में वाइसराय से मिले भी, पर कोई नतीजा नही निकला।

मालवीयजी ने अपना प्रयास जारी रखा। वे एक तरफ वाइसराय से, और दूसरी ओर अलीपुर जेल में मौलाना आजाद और देशवन्धु दास से मिले। वाइसराय इस वात पर राजी थे कि मार्च सन् १९२२ मे शासन-सुधार के सम्बन्ध में गोलमेज कान्फ्रेन्स की जाय। जब मालवीयजी ने इसकी सूचना मौलाना आजाद और देशवन्धु दास को दी, तव उन्होंने सोचा कि राजकुमार के वहिष्कार के कारण ही "भारत सरकार समझौता ढूढने के लिए मजवूर हुई है। हमें स्थिति से लाभ उठाना चाहिए, और गोलमेज कान्फरेन्स में मिलना चाहिए"[1]। उन्हे यह स्पष्ट था कि "यह हमे हमारे लक्ष्य की ओर नही ले जायगा, फिर भी यह हमारे राजनीतिक सघर्प में एक वडा अग्रवर्ती कदम होगा।"[2] यह सोच कर दोनों नेता इस शर्त पर कि गोलमेज कान्फरेन्स से पहले सब काग्रेसी नेता छोड़ दिये जायेंगे, सरकार का प्रस्ताव स्वीकार करने को तैयार हो गये। इस पर मालवीय जी वाइसराय से फिर मिले। वाइसराय ने उन्हें आश्वासन दिया कि अलीवन्धु और दूसरे वे सब राजनीतिक कैदी, जो विचार-विमर्श में भाग लेंगे, छोड दिये जायेंगे। मौलाना आजाद और देशवन्धु दास ने इस वात को स्वीकार करते हुए एक पत्र में अपने विचारो को साफ-साफ लिखकर मालवीयजी द्वारा उसे गाधी

१. आजाद . इंडिया विन्स फ्रीडम पृ० २७। २. वही।

जी के पास भिजवा दिया। पर गाधीजी ने उनके सुझाव को मानने से इनकार कर दिया, जिसका उन्हें 'आश्चर्य और क्षोभ' था।[१] गाधीजी का आग्रह था कि सब राजनीतिक नेता और अलीबन्धु भी विना किसी शर्त के पहले छोड दिये जायें, उनकी रिहाई के वाद गोलमेज कन्फ्रेन्स के प्रस्ताव पर विचार किया जाय।

शिष्टमडल

इसके वाद भी मालवीयजी समझौता कराने के प्रयास मे संलग्न रहे। कुछ समय वाद २१ दिसम्वर को वे एक शिष्टमंडल के साथ वाइसराय से मिले। इस शिष्टमंडल में मालवीयजी के अतिरिक्त श्रीमती एनी वेसेंट, महाराजा मनीन्द्र चन्द्र नन्दी, मिस्टर हसन इमाम, मिस्टर फजलुल हक, मौलवी अव्दुल कासिम, श्री प्रफुल्ल चन्द्र राय, श्री एम० विश्वेश्वरैया, श्री कस्तुरी रंगा ऐयंगर, पंडित हृदयनाथ कुंजरू, मुशी ईश्वर शरण, श्री जमनादास द्वारकादास, सेठ घनश्यामदास विडला आदि शामिल थे।

डेपुटेशन का अनुरोध था कि दमनकारी कानून वापस लिये जायें, सब राजनीतिक वन्दी रिहा कर दिये जायें, तथा जनमत का प्रतिनिधित्व करनेवाली कान्फ्रेन्स बुलायी जाय। वाइसराय ने उत्तर में कहा कि उन्हें और उनकी कार्यपरिषद् को सम्मानित सज्जनो और उनके वच्चो को गिरफ्तार करना और जेल भेजना अच्छा नही लगता, पर देश मे शान्ति और सुव्यवस्था वनाये रखना और नागरिको की रक्षा करना सरकार का कर्तव्य है, और जव तक आन्दोलन वापस नही लिया जाता, तव तक व्यवस्था वनाये रखने के लिए आवश्यक कार्यवाही करनी ही होगी। कान्फ्रेन्स वुलायी जा सकती है, पर उसके लिए शान्ति के वातावरण की आवश्यकता है। पंजाव काड के सम्वन्ध में अव क्या किया जा सकता है। जो करने को कहा जाता है, वह ठीक नही जचता। खिलाफत के सम्बन्ध मे लार्ड चेम्सफोर्ड ने और मौजूदा सरकार ने काफी तगडे प्रतिवेदन भेजे हैं, और इस सम्वन्ध में भारत सरकार अव क्या कर सकती है। गोलमेज कार्फ्रेस बुलायी जा सकती है। पर राजनीतिक सुधार अभी तो चालू हुए है, शीघ्र ही उन्हें वदल देना कहा तक उचित होगा? फिर यह भी समझ लेना चाहिए कि चूँकि व्रिटिश पार्लियामेंट ही राज्यव्यवस्था में परिवर्तन कर सकती है, उसे विश्वास दिलाना होगा कि "भारतीय जनता की विपुल संख्या सम्राट् को वफादार है।" इसलिए वाइसराय ने कहा, "जो व्यक्ति राजकुमार

१. वही, पृ० २७।

का अपमान करने में सहायक होता है, वह भारत को तथा उसके भावी ऐश्वर्य को क्षति पहुँचाता है।"[१]

इसके बाद श्याम सुन्दर चक्रवर्ती ने गाधीजी को समझौते के लिए तार दिया। मालवीयजी और श्रीमती एनी बेसेंट के कहने पर पडित हृदयनाथ कुजरू और श्री जमनादास द्वारकादास गाधीजी से मिलने अहमदाबाद गये। बातचीत के बाद उन्हें आशा बंधी कि गाधीजी कुछ समय के लिए आन्दोलन बन्द करके गोलमेज कान्फ्रेन्स के लिए राजी हो जायेंगे। पर कलकत्ता लौटने पर जब उन्होने गाधीजी के वक्तव्य को पढा, तब उनकी आशा निराशा में बदल गयी। इस पर उन्होने एक लम्बा वक्तव्य प्रकाशित किया, जिसमें उन्होने गाधीजी के दृष्टिकोण की आलोचना करते हुए लिखा कि शिष्टमडल के आवेदन के उत्तर में जो बातें वाइसराय ने कही, उनसे सम्भव है कोई सहमत न हो, पर यह स्पष्ट है कि गोलमेज कान्फ्रेन्स प्रत्येक प्रश्न पर विचार करने को स्वतन्त्र होती। उन्होने लिखा कि वाइसराय का उत्तर शान्तिपूर्ण था, क्योकि वे तो यही चाहते थे कि बातचीत के जमाने में दोनो ओर से अस्थायी विराम का पालन हो ताकि सद्भावना के वातावरण में विचार-विमर्श हो सके।[२]

दूसरी ओर गाधीजी का कहना था कि २४ दिसम्बर की हडताल वापस की जा सकती थी, यदि सरकार स्वयसेवको की भरती के सम्बन्ध में प्रवर्तित अध्यादेश को वापस लेने को, तथा सत्याग्रहियो और फतवा कैदियो को छोडने को तैयार होती। उनकी राय में वाइसराय का उत्तर असन्तोषजनक था, और कान्फ्रेन्स में शामिल होकर खाली हाथ लौटना किसी तरह भी काग्रेस के लिए ठीक नही होता।[३]

मालवीयजी का प्रयास विफल रहा। राजनीतिक संघर्ष जारी रहा। कलकत्ते में २४ दिसम्बर को राजकुमार का बाइकाट दिल्ली से भी कही अधिक जोर-शोर से हुआ। पर मौलाना आजाद और देशबन्धु दास के विचार में "हमने राजनीतिक समझौते का एक सुनहरा अवसर खो दिया"।[४]

अहमदाबाद काग्रेस

देशबन्धु चित्तरजनदास की अनुपस्थिति में हकीम अजमल खाँ साहब ने जो अपनी भद्रता और सद्भावना के लिए सब वर्गों में सम्मानित थे, दिसम्बर सन्

१ 'इंडिया इन १९२१-१९२२', पृ० ३४९-३५१।
२. न्यू इण्डिया, २४ दिसम्बर, सन् १९२१।
३. न्यू इण्डिया, २९ दिसम्बर, सन् १९२१।
४. आजाद . वही, पृ० २८।

१९२१ मे काग्रेस के अहमदाबाद अधिवेशन की अध्यक्षता की। देशबन्धु दास द्वारा प्रेपित भापण मे, जिसे श्रीमती सरोजनी नायडू ने पढकर सुनाया, सरकार की नीति-रीति तथा गतिविधि की कडी आलोचना करते हुए घोपित किया गया कि वे इग्लैड के साथ समझौता करने को तैयार है, पर शर्त यह हे कि सरकार हमारे जन्मसिद्ध अधिकार अर्थात् स्वतन्त्रता को स्वीकार करे।

काग्रेस ने भारी बहुमत से लगान बन्दी प्रारम्भ करने का निश्चय किया। मालवीयजी ने प्रतिनिधियो को सलाह दी कि राजनीतिक समझौते का दरवाजा खुला रखा जाय, और आक्रमणशील सत्याग्रह प्रारम्भ करने का अर्थात् लगानबन्दी शुरू करने का निर्णय न लिया जाय। उन्होने कहा कि जहाँ तक उनकी जानकारी है, पिछले तीन-चार महीनो में सिमरना और थ्रास के सम्बन्ध मे वाइसराय ने भारत-मन्त्री को कई पत्र लिखे है, और यदि इनके सम्बन्ध में कोई अच्छा निर्णय हुआ, तो वह उनके प्रयासो का फल होगा। मालवीयजी ने स्वीकार किया कि स्वय-सेवको की भरती को गैर-कानूनी घोपित करना सरकार की "गम्भीर गलती" थी, और उसका विरोध आवश्यक और न्यायसगत है। पर उनके विचार में, उन्होने कहा, जहाँ यह घोपित करना जरूरी है कि सरकार की इस नीति का विरोध करने को काग्रेस कृतसंकल्प है, वहाँ यह बात भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि काग्रेस मौजूदा तनाव बनाये रखना नही चाहती। किसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए जीवन का बलिदान किया जा सकता है। पर जहाँ सम्मान के साथ राष्ट्रहित को हानि पहुँचाये बिना उसकी रक्षा की जा सकती है, वहाँ आत्मबलिदान की बात सोचना व्यर्थ है। इसलिए जबकि सरकार की नीति के उत्तर मे काग्रेस अपनी मौजूदा नीति जारी रखने का निर्णय घोपित करे, यह भी कहा जाय कि वह "बुद्धिसंगत शर्तो पर गोलमेज कान्फरेन्स के लिए तैयार है" और उसके द्वारा सूचित करें कि आप व्यर्थ में सघर्प जारी रखना नही चाहते उन्होने कहा कि कान्फरेन्स में आधिकारिक ढंग से स्वराज्य की माग काग्रेस द्वारा पेश की जा सकती है।[1] मालवीयजी का सुझाव भारी बहुमत से नामजूर हो गया।

काग्रेस ने घोपित किया : "जब सरकार के निरकुश, अत्याचारपूर्ण और शक्ति-घातक प्रयोग रोकने के लिए अन्य सभी उपायो का प्रयोग हो चुका है, तब सविनय-अवज्ञा ही सशस्त्र विद्रोह का सभ्य और प्रभावकारी विकल्प है।"[2] उसने काग्रेस के कार्यकर्ताओ को आह्वान किया कि वे "काग्रेस के आदेशो को

---

१ न्यू इण्डिया, ३० दिसम्बर, सन् १९२१, पृ० ८।

२ पट्टाभि सीतारमैया हिस्ट्री आफ दी इंडियन नेशनल काग्रेस, पृ० २२६।

ध्यान में रखते हुए जनता को वैयक्तिक और सामूहिक सविनय-अवज्ञा के लिए तैयार करें।" गाधीजी काग्रेस के एकमात्र प्रशासनिक अधिकारी नियुक्त कर दिये गये, और उन्हें अपने उत्तराधिकारी को नियुक्त करने के, तथा अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के सब अधिकारो को प्रयोग करने के अधिकार इन प्रतिबन्धो के साथ दे दिये गये कि "वे या उनका उत्तराधिकारी काग्रेस लक्ष्य को नही वदल सकेगा, और अखिल भारतीय काग्रेस की अनुमति लिये बिना सरकार से कोई सन्धि नही कर सकेगा।"[1]

अधिवेशन में मौलाना हसरत मुहानी ने पूर्ण स्वराज्य के पक्ष में प्रस्ताव पेश किया, पर गाधीजी ने उसका डटकर विरोध किया, और काग्रेस ने उसे अस्वीकार कर दिया।

जैसा कि पट्टाभि सीतारमैया ने लिखा है, "राजनीतिक विपयो पर मुसलमान मौलवियो द्वारा काग्रेस को सलाह देना अहमदावाद काग्रेस का विशिष्ट लक्षण था।" "कुरान, शरियत और हदीस की रोशनी में राजनीतिक विचारो की व्याख्या में उलमा ने महत्त्वपूर्ण भाग लिया, और कभी-कभी काग्रेस को अपने प्रस्तावो को उनकी सलाह की रोशनी में वदलना पडा।"[2]

सर्वदलीय कान्फरेन्स

काग्रेस अधिवेशन के वाद मालवीयजी ने कतिपय अन्य नेताओ के हस्ताक्षर से सर्वदलीय कान्फरेन्स आमन्त्रित की। उसका काम १४ जनवरी सन् १९२२ को सर शंकरन नायर की अध्यक्षता में लगभग ३०० व्यक्तियो की उपस्थिति मे प्रारम्भ हुआ। गाँधीजी ने भी व्यक्तिगत हैसियत से इसमें सम्मिलित होकर इसकी कार्यवाही में भाग लिया। शकरन नायर साहव गाधीजी की वातो से ऐसे क्षुब्ध हुए कि उन्होने अगले दिन की अध्यक्षता करने से इनकार कर दिया। उनके स्थान पर सर विश्वेश्वरैया अध्यक्ष बनाये गये, और उनकी अध्यक्षता में कान्फरेन्स चलती रही। इस सम्मेलन ने सरकार की दमन नीति की निन्दा की, काग्रेस से प्रार्थना की कि जव तक सरकार से वातचीत चलती है, तव तक सविनय-अवज्ञा प्रारम्भ न की जाय, और सरकार से माग की कि वह खिलाफत, पजाव और स्वराज्य के प्रश्नो पर विचार करने के लिए गोलमेज काफ्रेस वुलाये, 'क्रिमिनल ला अमन्डमेन्ट एक्ट' के अतर्गत जिन सस्थाओ पर रोक लगा दी गयी है उसे उठा ले, 'सेडिशस मीटिंग एक्ट' (राजद्रोह सभा अधिनियम)

---

१. वही, पृ० २२७। २. वही, पृ २२९।

उठा लिया जाय, और सभी सजा-प्राप्त और गिरफ्तार सत्याग्रही और फतवा कैदी छोड दिये जायें, और आन्दोलन में भाग लेने के कारण साधारण कानून के अन्दर जो गिरफ्तार या दडित है उनकी जांच के लिए एक कमेटी बैठा दी जाय।

कांग्रेस की वर्किंग कमेटी ने सर्वदलीय सम्मेलन की बात मान कर जनवरी के अन्त तक सविनय-अवज्ञा बन्द रखने का निश्चय किया, पर वाइसराय ने सम्मेलन की बात मानने से इनकार कर दिया। इस तरह मालवीयजी का यह प्रयास भी विफल हुआ, फिर भी इस कान्फ्रेंस का, जिसे गांधीजी "मालवीय कान्फ्रेंस" कहते थे, अपना महत्त्व था। खुले संघर्ष से कुछ दिन पहले २०० गैर-कांग्रेसी राष्ट्रवादी नेताओ और कार्यकर्ताओ की ओर से सरकार के सामने इस प्रकार की मांगो को पेश करना, और उनके आधार पर राष्ट्र की आकांक्षाओ की पूर्ति के लिए प्रयत्न करना नि:सन्देह महत्त्वपूर्ण प्रयास था।

गांधीजी का पत्र

गाँधीजी ने १ फरवरी को वाइसराय को सात दिन का नोटिस देते हुए लिखा कि यदि उनकी शर्तें सरकार ने स्वीकार नही की, तो सविनय अवज्ञा प्रारम्भ कर दी जायेगी। इस पत्र मे गाँधीजी ने विधिविहीन दमन की शिकायत करते हुए वाइसराय से मांग की कि वे सब असहयोगी बन्दी जो अहिंसात्मक कार्यो के लिए दण्डित किये गये है और जिन पर अहिंसात्मक अपराधो के नाम पर मुकदमे चल रहे है छोडे जायें, तथा देश में चालू अहिंसात्मक कार्रवाइयो के सम्बन्ध में अहिंसात्मक तटस्थता (गैरदस्तंदाजी) की नीति घोषित की जाय। प्रेस प्रशासनिक नियंत्रणो से मुक्त किया जाय, और हाल में समाचार पत्रो पर जो जुर्माने किये गये है और उनकी जमानतो को जब्त किया गया है, वे उन्हें लौटा दी जायें। उन्होने लिखा कि यदि सात दिन के अन्दर सरकार इस सम्बन्ध मे आवश्यक घोषणा प्रसारित कर दे, तो वह स्वयं उस समय तक के लिए आक्रमक ढंग की सविनय अवज्ञा को स्थगित करने को तैयार है, जब तक कैदी कार्यकर्ता नये सिरे से परिस्थिति पर विचार करके कुछ निर्णय करें। उन्होने यह भी लिखा कि यदि सरकार ऐसी घोषणा करे, तो उन्हे देश को यह परामर्श देने में हिचक नही होगी कि दोनो ओर की हिंसात्मक रुकावट के बिना जनमत को गढने का प्रयत्न किया जाय, और अपनी अपरिवर्तनीय माँगो की उपलब्धि के लिए उसकी प्रक्रियाओ पर विश्वास किया जाय। ऐसी दशा में आक्रमक सविनय अवज्ञा तभी शुरू होगी, जब सरकार तटस्थता नीति से हटेगी, या

भारतीय जनता की भारी बहुसंख्या की स्पष्ट रूप से व्यक्त राय को मानने से इनकार कर देगी।[1]

दुर्घटना

५ फरवरी को भयानक काड हो गया। पुलिस के दुर्व्यवहार से उत्तेजित भीड ने, जिसमें कांग्रेस के कुछ स्वयं-सेवक थे, थाने को आग लगा दी, और २१ कान्सटेबिलो और एक सब-इन्सपेक्टर की निर्मम हत्या कर दी। यह समाचार पा कर गाधीजी ने सविनय-अवज्ञा प्रारम्भ करने का विचार स्थगित कर दिया।

कांग्रेस वर्किंग कमेटी

१२ फरवरी को कांग्रेस की वर्किंग कमेटी ने सब कांग्रेस कमेटियो को आदेश दिया कि राष्ट्रीय सघर्ष छेडने की सारी तैयारियाँ बन्द कर दी जायें। उसने किसानो को सलाह दी कि वे हर प्रकार की मालगुजारी और लगान शीघ्र दे दें। उसने समस्त कांग्रेस सगठनो को आदेश दिया कि कानून तोडने के निमित्त न कोई जुलूस निकाला जाय, न कोई दूसरी कार्रवाई की जाय, पर ताडी और शराब की दुकानो पर विश्वसनीय कार्यकर्ताओ द्वारा धरना जारी रखा जा सकता है।

गाधीजी का स्पष्टीकरण

कुछ कांग्रेसी कार्यकर्ताओ की धारणा थी कि पडित हृदयनाथ कुजरू की रिपोर्ट पर, उनके विचारो से प्रभावित होकर और सम्भवत. मालवीयजी के कहने पर सत्याग्रह बन्द किया गया। पर गाधीजी ने घोषित किया कि इस निर्णय में कुंजरू साहब और मालवीयजी का कोई हाथ नही है, वह उनकी अपनी नीति और सिद्धान्तो पर आधारित है, और वे स्वय उसके लिए सर्वथा उत्तरदायी है। उनका कहना था कि जो समाचार उन्हे विभिन्न स्थानो से मिल रहे थे, उनसे स्पष्ट था कि यदि सत्याग्रह बन्द नही किया गया होता, तो उन्हे अहिंसात्मक असहयोग के बजाय हिंसात्मक संघर्ष का नेतृत्व करना पडता।

मालवीयजी का काम

१० मार्च को सरकार ने गाधीजी को गिरफ्तार कर लिया। १८ मार्च को उन्हे छ. वर्ष की सजा दे दी गयी। इस समय मालवीयजी के अतिरिक्त

---

१. पट्टाभि सीतारमैय्या वही, पृ० २३३-२३५।

राजेन्द्र प्रसादजी जेल के वाहर थे। काग्रेस के सामने काफी संकट की स्थिति थी। आसाम में उसे कुचला जा रहा था, सारे देश मे वेवसी का वातावरण था। सब मतभेद भुलाकर काग्रेस की सहायता करना, देश की जनजागृति को वनाये रखना मालवीयजी ने अपना कर्तव्य समझा। वे राजेन्द्र वावू के साथ आसाम गये, और वहा काम शुरू किया। राजेन्द्र वावू ने अपने एक सस्मरण मे लिखा है कि उस समय वहाँ गावो में पहुँचना आसान काम नही था। भय-वश न कोई पास आता था, न भाडे की गाडी मिलती थी। कांग्रेस के स्वयं-सेवक जहाँ तहाँ मिल जाते थे। ऐसे स्थानो में हम लोग गये तो लोगो मे जान आयी, जागृति आयी।

मालवीयजी ने वहाँ जाकर अफीम-विरोधी आन्दोलन चला दिया। उन दिनो आसाम मे अफीम की वहुत खपत होती थी। नशावन्दी काग्रेस के कार्यक्रम का अग था ही। मालवीयजी के अफीम के वाइकाट के आन्दोलन के कारण कम से कम कुछ समय के लिए दुकानो पर अफीम की विक्री काफी कम हो गयी, और जनता पर सरकार का आतक भी कम हो गया।[1]

मालवीयजी ने पजाव में कई जिलो का दौरा किया, और काफी जोरदार जोशीले भापण दिये। इन भापणो मे मालवीयजी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता, अस्पृश्यता निवारण, स्वदेशी, खद्दर आदि काग्रेस के रचनात्मक कार्यों को जोर-शोर से आगे वढाने की जनता से अपील की, उन्हें सार्वजनिक कामो में सक्रिय भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया। उन्होने स्त्रियो से अनुरोध किया कि वे सूत कातें और खद्दर की तेयारी में भरसक योगदान करें। उन्होने जनता से अपील की कि वह गाधी खद्दर फड में यथाशक्ति चन्दा दें, तथा ६ अप्रैल से १३ अप्रैल तक राष्ट्रीय सप्ताह मनायें। मालवीयजी ने वयस्क नवयुवको से अपील की कि वे काग्रेस के सदस्य बने, प्रत्येक जिले में राजनीतिक संस्था स्थापित करें, जनता में स्वराज्य के लक्ष्य का प्रचार करें, तथा सवको देश की स्थिति से अवगत करायें, अग्रेजो को स्पष्ट कर दे कि स्वराज्य की प्राप्ति उनका दृढ संकल्प है। मालवीयजी ने इन भाषणो में सरकार की नीति-रीति की आलोचना करते हुए सरकार से आग्रह किया कि वह जनमत को सतुष्ट करने के लिए, तथा राजनीतिक गतिरोध का समाधान करने के लिए काँग्रेस से वातचीत करने का प्रयत्न करे। उन्होने सरकार को चेतावनी दी कि वह दमन द्वारा जनता की भावनाओ और आकाक्षाओ को कुचल नही सकेगी,-नीति-रीति को वदल कर ही शान्त वातावरण तथा पारस्परिक सौहार्द प्रतिष्ठित किया जा सकता है।

---

१. मालवीयजी-जीवन झलकिया, पृ० २।

अपने भाषणो में मालवीयजी ने जनता से भी अनुरोध किया कि वह अपने में स्वराज्य के उत्तरदायित्व को वहन करने की क्षमता और शक्ति परिपुष्ट करे। गुजरावाला की सार्वजनिक सभा में उन्होने कहा कि साधारण अग्रेज की तुलना में साधारण हिन्दुस्तानी में देशभक्ति, संयम और आत्मत्याग कम होता है, और इन सद्गुणो की कमी उनके (भारतीयो के) पतन का कारण है। आयरलैंड जैसा औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त करने के लिए अंग्रेजो के चरित्र की इन विशेषताओ को भारतीय जनता को अपने मे पुष्ट करना होगा। तभी हम अंग्रेजो के समान व्यवहार किये जाने का दावा कर सकेंगे। उन्होने यह भी कहा कि सेना का प्रबंध स्वराज्य की कुंजी है। और जब तक हम सैनिक विषयो के प्रबध करने की क्षमता अपने में पैदा नही करते, तब तक स्वराज्य की आशा नही की जा सकती।

पंजाब में कतिपय सरकारी अफसरो के अत्याचारो तथा गैर-कानूनी कार्रवाइयों के आरोपो की जाच के लिए वे एक कमेटी भी नियुक्त करना चाहते थे। मालवीयजी के काम से उद्विग्न होकर सरकार उनकी गिरफ्तारी की बात सोचने लगी थी। लन्दन के प्रसिद्ध दैनिक 'टाइम्स' ने उनकी गतिविधि की कडी आलोचना करते हुए लिखा कि क्या पंडित मदन मोहन मालवीय, जो अपने आप ही देश के नेता बन बैठे है, पंजाब में फिर सन् १९१९ की स्थिति पैदा करना चाहते है ? पर मालवीयजी ने इन सब बातो की उपेक्षा करते हुए अपना काम जारी रखा।

चौरीचौरा

चौरीचौरा काण्ड के बाद उस क्षेत्र में पुलिस ने अत्याचार और आतक की हद कर दी। बहुत से निर्दोपो को बुरी तरह से मारा-पीटा गया, और सैकडो निर्दोपो का चालान कर दिया गया। पुलिस के आतक के कारण स्थानीय कार्य-कर्ताओ के लिए अभियुक्तो की सफाई का प्रबन्ध करना भी सभव नही हो रहा था। इस काम को मालवीयजी ने अपने हाथ मे लिया। उन्होने वहाँ की जनता की रक्षा और सहायता का यथासभव प्रबन्ध किया, प्रयाग हाईकोर्ट के कई वकीलो को वहाँ भेज कर सफाई के लिए आवश्यक तथ्यो को इकट्ठा कर-वाया, और कई दिन तक स्वय वकील की हैसियत से हाईकोर्ट में पैरवी की। उनके प्रयास से २२९ व्यक्तियो में से, जिन्हें फाँसी की सजा दी जा चुकी थी, १४३ को अपील में हाईकोर्ट द्वारा फाँसी की सजा नही दी गयी।

१४. हिन्दू संगठन

(१९०९ से १९२८ तक)

पंजाब हिन्दू सभा

दिसम्बर सन् १९०६ में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग का स्थापना-सम्मेलन ढाका में हुआ। उसके कुछ दिन बाद ही जनवरी सन् १९०७ में पंजाब में हिन्दू सभा स्थापित करने का कार्य प्रारम्भ हुआ। सब मामलो में सारे हिन्दू समाज के हितो के सरक्षण में तत्पर और सतर्क रहना ही इसका मुख्य उद्देश्य था। लगभग दो वर्ष तक इसने कोई विशेप कार्य नही किया।

जून सन् १९०९ में इसकी ओर से लार्ड मिंटो को एक आवेदनपत्र प्रस्तुत किया गया, जिसमे सरकार के पक्षपात की शिकायत की गयी, तथा बताया गया कि सरकारी नौकरियो के वितरण में मुसलमानो के साथ विशिष्ट व्यहार किया जाता है, पंजाव भूमि हस्तान्तरण अधिनियम में जब कि करीब-करीब सभी वर्ग के मुसलमानो को जमीन खरीदने की पूरी छूट है, उच्च वर्ग के हिन्दू इस अधिकार से वचित कर दिये गये है, तथा कौंसिलों की नयी चुनाव व्यवस्था किसी सर्वसामान्य न्यायसंगत नियम पर आधारित नही है। निवेदन पत्र में चुनाव व्यवस्था की समीक्षा करते हुए शिकायत की गयी कि किसी सम्प्रदाय का राजनीतिक महत्त्व अधिक समझना, और उसके लिए पृथक् निर्वाचन का तथा विशिष्ट नियमो की व्यवस्था करना सर्वथा अनुचित है। सरकार ने इस निवेदन पर कोई ध्यान नही दिया।

अक्तूबर सन् १९०९ मे लाहौर में पंजाव हाईकोर्ट के भूतपूर्व जज सर प्रतूल चन्द्र चटर्जी की अध्यक्षता में पंजाब हिन्दू सभा का पहला सम्मेलन आयोजित हुआ। राय बहादुर लाला लालचन्द, जो इस सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष थे, वास्तव में इस आन्दोलन के प्राण थे। उनकी धारणा थी कि निरन्तर संघर्ष जगत और जीवन का प्राकृतिक नियम है, और इस संसार मे वही जाति जीवित रह सकती है जो सबल और सुसंगठित हो। वे चाहते थे कि हिन्दू जाति के हितो के, तथा हिन्दुत्व की रक्षा और अभिवृद्धि के निमित्त सब हिन्दू अपने जातीय संगठन को मजबूत करें। उनकी धारणा थी कि कांग्रेस न तो हिन्दुओ में हिन्दुत्व की भावना को सुदृढ कर सकती है, और न हिन्दुओ के

राजनीतिक हितो की रक्षा कर सकती है। इन दोनो कामो की सिद्धि तो, उनके विचार में, हिन्दू महासभा द्वारा ही सम्भव हो सकती है।[1] लाल चन्दजी का तो सन् १९१२ में देहान्त हो गया, पर उनका चलाया आन्दोलन चलता रहा। फिर भी जैसा कि भाई परमानन्द ने लिखा है, "हिन्दू सभा का आन्दोलन पंजाब की जनता की कल्पनाशक्ति को आकर्षित नही कर सका। यह आन्दोलन हिन्दू समाज के विशिष्ट वर्ग में सीमित बना रहा। जनसाधारण तो उससे बिल्कुल ही अप्रभावित रहा।"[2]

अखिल भारतीय हिन्दू महासभा

सन् १९१२ में श्री शादी लालजी ने पंजाब हिन्दू सभा के दिल्ली अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए अखिल भारतीय हिन्दू महासभा की स्थापना पर जोर दिया। कुछ समय बाद हरिद्वार में इसका कार्यालय स्थापित हो गया, और वही किसी पर्व के अवसर पर इसके अधिवेशन होते रहे। पर सम्भवतः यह सस्था पंजाब हिन्दू महासभा से भी अधिक निष्क्रिय थी। सन् १९१६ में इस संस्था के प्रधान मन्त्री राय बहादुर लाला सुखवीर सिंह ने हरिद्वार में हरि की पैडियो पर गंगाजल का अविछिन्न प्रवाह होता रहे इस सम्बन्ध मे जो कार्य किया वही सन् १९१८ तक उसका मुख्य योगदान था। उसके मन्त्री पण्डित देवरत्न शर्मा ने हरिद्वार में रहकर जो थोडा बहुत काम किया, उसका प्रभाव देश के सार्वजनिक जीवन पर नगण्य था।

सन् १९१८ में दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में दिल्ली में कुरोली सदौली के राजा रामपाल सिंह की अध्यक्षता में अखिल भारतीय हिन्दू महासभा का पाँचवाँ अधिवेशन आयोजित हुआ। राजा साहब ने अपने अध्यक्षीय भाषण मे आशा व्यक्त की कि भारत को भी आत्मनिर्णय के अधिकार प्राप्त होगे। उन्होने कहा कि माटेग्यू द्वारा प्रस्तावित राजनीतिक सुधार उत्तरदायी शासन की क्रमश उपलब्धि की ओर ठोस कदम है, और उन्हें कुछ सशोधनो के साथ स्वीकार किया जा सकता है। उन्होने साम्प्रदायिकता पर आश्रित निर्वाचन पद्धति की त्रुटियो की ओर ध्यान दिलाते हुए सरकार से अनुरोध किया कि प्रचलित पद्धति मे आवश्यक सुधार किया जाय। उन्होने कहा कि हिन्दू महा-

---

१ भाई परमानन्द का फोरवर्ड (प्राक्कथन), पृ० V-X, इन्द्रप्रकाश : ए रिव्यू आफ दी हिस्ट्री एण्ड वर्क आफ हिन्दू महासभा एण्ड हिन्दू सघटन मूवमेन्ट।

२ भाई परमानन्द ' वही, पृ० XVI।

सभा किसी जाति या सम्प्रदाय के न्यायसंगत अधिकारो को भंग करना, या उनका अतिक्रमण करना नही चाहती। वह तो केवल "दूसरो के आक्रमण से हिन्दुओ के न्यायपूर्ण और उचित अधिकारो की रक्षा करना चाहती है।" उन्होने कहा कि हिन्दू धर्म तो कट्टरता, धर्मान्धता और भौतिकवाद के विरुद्ध तितिक्षा, विश्वजनीनता तथा आध्यात्मिकता का मूर्तरूप है। उन्होने कहा कि हिन्दू सभा का काम है कि वह हिन्दू समाज के विखरे हुए तत्त्वों को सगठित करे और मिलाये, सारे समाज की उन्नति के उपाय ढूँढे, ताकि हम फिर कीर्ति और सभ्यता के उस शिखर तक पहुँच सकें जहाँ हमारे पूर्वज पहुँच गये थे।[1]

इस सम्मेलन मे उत्तरदायी शासन की माग के पक्ष में, तथा साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के विरोध मे प्रस्ताव स्वीकार हुए। एक प्रस्ताव में कहा गया कि सम्प्रदाय के वजाय व्यक्ति ही प्रतिनिधित्व का आधार हो, पर यदि इस सिद्धान्त के विरुद्ध किसी अल्प-संख्यक गैर-हिन्दू समुदाय के साथ रियायत की जाती है, तो वैसी रियायत हिन्दुओ के साथ भी की जाय, जहाँ वे अल्प-संख्यक है। इस प्रस्ताव मे स्थानीय निकायो मे साम्प्रदायिक चुनाव पद्धति चालू करने का, तथा मुसलमानो को आवादी के अनुपात से कही अधिक स्थान दिये जाने का भी विरोध किया गया।[2]

अप्रैल सन् १९२१ में हरिद्वार में महाराजा बहादुर कासिम वाजार की अध्यक्षता में छठा अधिवेशन हुआ। इसमें ननकाना साहव में किये गये अत्याचारो के प्रति क्षोभ और रोष प्रकट किया गया, एव दक्षिण में ब्राह्मण और अब्राह्मण मे तथा पंजाव में सिक्खो और हिन्दुओ मे भेद पैदा करने की सरकारी नीति की निन्दा की गयी, और हिन्दुओ से अनुरोध किया गया कि वे कोई ऐसा कार्य नही करें जो हिन्दुओं की एकता को हानिकर हो। एक दूसरे प्रस्ताव के जरिये सरकार से अनुरोध किया गया कि उत्तर पश्चिमी प्रान्त पर केन्द्रीय सरकार का शासन वना रहे। इस अधिवेशन में गोरक्षा के सम्बन्ध मे पिछले अधिवेशन से कही कडा प्रस्ताव पास किया गया। इस प्रस्ताव मे गोरक्षा के सम्वन्ध मे हिन्दुओ की भावनाओ की उपेक्षा के लिए सरकार के प्रति रोष प्रकट करते हुए कहा गया कि अब समय आ गया है जब हिन्दुओ को स्वय 'न्यायसंगत और शान्तिमय उपायो द्वारा' इसके लिए प्रयत्न करना चाहिए, और आवश्यक 'त्याग और तपस्या के लिए तैयार हो जाना चाहिए।'[3]

---

१ इन्द्रप्रकाश : वही, पृ० ८२-८८।
२. इन्द्र प्रकाश . वही, पृ० १६३-१६४।
३. इन्द्र प्रकाश वही, पृ० १६५-१६७।

इस सबसे यह स्पष्ट है कि सन् १९२० तक मालवीयजी का हिन्दू महासभा के आन्दोलन से कोई विशेष सम्बन्ध नही था। वे राय वहादुर लाला लालचन्द आदि की काग्रेस-विरोधी भावनाओ और धारणाओ को ठीक नही समझते थे, और हिन्दुओ के लिए काग्रेस के नेतृत्व का अनुसरण उचित मानते थे, तथा स्वय उसके द्वारा देश की सेवा करते रहते थे।[1] हिन्दू धर्म के मूल तत्त्वो का ज्ञान और अनुसरण वे हिन्दुओ का कर्तव्य समझते थे, पर हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य को उभारना पाप समझते थे।[2] उन्होने सन् १९३१ में गोल मेज कार्फ्रेंस की अल्पसंख्यक कमेटी में स्पष्ट शब्दो में कहा कि वह हिन्दू महासभा के संस्थापक और प्रवर्तक (फाउण्डर) नही है।[3]

मोपला उपद्रव

असहयोग के जमाने में ही सन् १९२१ में मालबार में मोपला विद्रोह ने साम्प्रदायिकता का रूप धारण कर लिया। मोपलाओ ने हिन्दुओं की बडी दुर्गति की। मालवीयजी ने उनकी सहायता के लिए रुपये, अन्न, वस्त्र आदि भिजवाये। इस विद्रोह को दवाने के लिए सरकार ने वडी कडाई से काम लिया, मोपलाओ को बहुत त्रस्त किया। गाधीजी के लिखने पर मालवीयजी ने त्रस्त मोपलाओ के परिवारो को भी आर्थिक सहायता पहुँचायी।

मुलतान में उपद्रव

गाधीजी के गिरफ्तार होने के कुछ दिन वाद सितम्बर सन् १९२२ में मुलतान में हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा हुआ, जिसमें मुसलमानो ने हिन्दुओ पर बहुत अत्याचार किये। काग्रेस वर्किंग कमेटी ने हकीम अजमल खाँ, वाबू राजेन्द्र प्रसाद तथा मालवीयजी को जाँच के लिए भेजा। इन तीनो ने तथ्यो का पता लगा कर मुसलमानो को ही इसके लिए मूलत. उत्तरदायी ठहराया, हिन्दुओ की दयनीय दशा पर दु ख प्रकट किया। हिन्दू स्त्रियो की व्यथा सुनकर तो राजेन्द्रबावू रो पडे, और फिर मालवीयजी और हकीम साहव भी जोर-जोर से रोने लगे। इस प्रकार की घटनाओ से देश की रक्षा के लिए मालवीयजी ने मुलतान तथा लाहौर में हिन्दू मुसलमानो की मिली-जुली सभाओ में जनता से एकता कायम रखने

१. सन् १९०९ में काग्रेस के लाहौर अधिवेशन में मालवीयजी का अध्यक्षीय भाषण।

२. मालवीयजी के लेख, पृ० २४-२५।

३. राउन्ड टेविल कान्फ्रेन्स, सेकिंड सेशन, माइनारिटी कमेरी रिपोर्ट, पृ० १३५०।

की, तथा झगडा करनेवालो से नागरिक सुरक्षा सेना द्वारा मुकाबला करने की सलाह दी ।

मालवीयजी ने १६ सितम्बर सन् १९२२ को लाहौर में मौलाना अब्दुल कादिर के सभापतित्व में भाषण करते हुए साम्प्रदायिक उपद्रवो पर सन्ताप और लज्जा व्यक्त की । उन्होने कहा कि उनकी दृष्टि में "सब अत्याचारी धर्महीन और नास्तिक है",[1] "बुराई का परिणाम बुरा होता है", "हमारे लिए बडे शर्म की बात है कि हम थोडी वजह से इन्सानियत को छोड कर दूसरे इन्सानो के साथ जुर्म करें ।"[2] मुलतान मे मुसलमानो द्वारा किये गये अत्याचारो पर रज, अफसोस और लज्जा प्रकट करते हुए उन्होने उन हिन्दुओ पर भी "लानत" भेजी जिन्होने बेकसूर मुसलमानो पर हमला किया, चोटें लगायी और मकानो को जलाया, पर इस बात पर उन्होने सन्तोष प्रकट किया कि अपने धर्मस्थानो पर वार होने पर भी हिन्दुओ ने किसी मस्जिद का अपमान नही किया ।[3] अन्त में उन्होने कहा कि इस प्रकार की घटनाओ को "हिन्दू मुस्लिम दो जातियो का झगडा करार देना बिल्कुल बेजा होगा" । उन्होने कहा : "दुनियाँ में खुदा, परमात्मा, अकाल पुरुष एक है ''' हिन्दू, सिक्ख, पारसी, ईसाई, मुसलमान—सब उस परमात्मा के बन्दे है, उस बाप के बच्चे हैं । वह तमाम हिन्दुस्तानियो का ही नही, तमाम दुनिया के इन्सानो का ही नही, बल्कि प्राणिमात्र का रक्षक है । हम सब एक पिता की औलाद है, एक खालिक ही खिलकत है, एक जगत्पिता की, अकाल पुरुष की सन्तान है । हमारा यह रिश्ता पुराना है, मिटाये मिट नही सकता '''हम सबको चलते फिरते, सोते हर वक्त यह बात याद रखनी चाहिए कि मन्दिर, गुरुद्वारे, मस्जिद, गिरजे सब सम्मान के काबिल हैं" ।[4] उन्होने यह भी कहा कि हिन्दुस्तान के हिन्दुओ और मुसलमानो का दूसरा रिश्ता "इन्सानियत" का, और तीसरा रिश्ता "देशवासी" होने का है ।[5] उन्होने कहा · "ए खुदा के बन्दो ! अपने खुदा के बन्दो से इज्जत के साथ बर्ताव करो, लडाई करके ईश्वर के सम्मुख जाने के लिए अपने आपको नाकाबिल साबित मत करो" । उन्होने बताया कि एक ही देश में रहनेवाले हिन्दुओ और मुसलमानो का कर्तव्य है कि वे आपस में एकता कायम करें, और याद रखें कि स्वराज्य के लिए हिन्दू-मुसलमानो की एकता नितान्त आवश्यक है ।[6] उन्होने यह भी बताया कि जहाँ

१. सीताराम चतुर्वेदी : महामना पडित मदनमोहन मालवीय, खंड २ पृ० ७३ ।
२. वही, पृ० ७५ ।
३. वही, पृ० ७६ ।
४. वही, पृ० ७८-७९ ।
५. वही, पृ० ७९ ।
६. वही, पृ० ७९ ।

"अहिंसा हमारा मुख्य धर्म है", वहाँ "आततायियो को दण्ड देना भी हामरा कर्तव्य है"। आततायी वह है जो "चोरी-डाका मारने, लूटमार करने, आग लगाने, या बेकसूरो को सताने के इरादे से हमला करे।"[1] उन्होने कहा कि आत्मरक्षा का हक कानून भी स्वीकार करता है, और उसका समुचित प्रबन्ध जरूरी है। उन्होने सलाह दी कि हर मुहल्ले में "नागरिक सेना" बनायी जाय, और उसके सब सदस्य "परमात्मा को याद रखते हुए" प्रतिज्ञा करें कि वे "ईश्वर की पैदा की हुई हस्तियो से दुश्मनी नही रखेंगे—हिन्दुस्तान की इज्जत का खयाल रखेंगे", तथा "एक दूसरे के धर्म की इज्जत करते हुए, सब बहनो व भाइयो की इज्जत कायम रखेंगे"।[2]

जब मुसलमान गुण्डो के अत्याचारो के कारण हिन्दू मुसलमान झगडे और हिन्दुस्तानियो की परेशानियाँ बढती चली गयी, नागरिक सेना कही भी ठीक तौर पर बन नही सकी, और काग्रेस शान्ति बनाये रखने के लिए कोई प्रभावशाली कार्य नही कर सकी, तब राजेन्द्र प्रसादजी के अनुरोध पर मालवीयजी ने गया में आयोजित हिन्दू महासभा के सम्मेलन की अध्यक्षता स्वीकार कर ली। यह सम्मेलन काग्रेस के अधिवेशन के अवसर पर दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह मे आयोजित हुआ।

हिन्दू महासभा का गया सम्मेलन

मालवीयजी ने हिन्दू जाति की दुर्दशा का विश्लेषण करते हुए धर्म से विमुख होना ही उसका कारण बताया। उन्होने कहा : "हमारा धर्म औरो के गुणो का मान करना सिखाता है, सहनशील होना बताता है, और किसी पर आक्रमण करने की शिक्षा नही देता। साथ ही यह भी आदेश देता है कि यदि तुम्हारे धर्म पर कोई आक्रमण करे, तो अपनी रक्षा के लिए प्राण तक निछावर करने में कभी संकोच न करो। इस धर्म को शुद्ध हृदय से और अक्षरश. पालन करने से ही हिन्दू-मुसलमानो मे एकता स्थापित हो सकती है। जब तक हिन्दू और मुसलमान दोनो ही इतने बलवान् और सगठित नही हो जाते कि वे दूसरी जाति के गुण्डो और बदमाशो से अपनी रक्षा कर सकें, तब तक उनमें एकता स्थापित नही हो सकती।"[3] उनकी इच्छा थी कि "प्रत्येक भारतवासी पुरुष या स्त्री अपनी रक्षा करने के धर्म को अच्छी तरह समझ ले।"[4] उनका

---

१ वही पृ० ८१। २ वही, पृ० ८२।
३. वही, पृ० ८४। ४ वही, पृ० ८५।

यह भी निवेदन था कि सब हिन्दू "सच्चे, दृढ और अपने धर्म के पक्के हिन्दू हो, पर सदा इस बात का ध्यान रखे कि आप (वे) पहले भारतवासी है और फिर हिन्दू।" उन्होने हिन्दुओ से यह अपील की कि वे गाव-गाव में हिन्दू सभाएं स्थापित करें, अपनी गिरी दशा को सुधारने, तथा उन्नत करने का उपाय सोचें, और "अछूतो से प्रेम का व्यवहार करें। उन्हे भी अपना भाई समझ छूआछूत दूर करें, उनकी अवस्था को सुधारें, और उनकी उन्नति का मार्ग सोचे"।[1]

हिन्दू महासभा का सातवा अधिवेशन

अगस्त सन् १९२३ में काशी मे मालवीयजी की अध्यक्षता में हिन्दू महासभा का सातवा साधारण अधिवेशन सम्पन्न हुआ। उन्होने अपने अध्यक्षीय भाषण में हिन्दू जाति की प्राचीनता, विशिष्टता और गौरव की ओर प्रतिनिधियो का ध्यान आकृष्ट करते हुए बताया कि लोकमान्य तिलक की राय मे "कम से कम आठ हजार वर्ष से यह जाति जीवित है।'[2] मालवीयजी ने कहा, "ऋग्वेद के समय से आज तक यह जाति एक जीवित जाति के रूप में चली आती है।"[3]

अपने इस अभिभाषण में मालवीयजी ने कहा कि बौद्ध, जैन और सिक्ख भी वृहद् हिन्दू जाति के अग है। इस सम्बन्ध में उन्होने एक प्राचीन कवि के निम्नलिखित श्लोको को उद्धृत किया :—

य शैवा समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो।
बौद्धाः बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्त्तेति नैयायिका ॥
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्म्मेति मीमासका।
सोऽय नो विदधातु वाञ्छितफल त्रैलोक्यनाथो हरिः॥

इन श्लोको में कवि प्रार्थना करता है कि 'जिसको शैव लोग शिव कह कर पूजते है, वेदान्ती लोग, ब्रह्म कह कर, बौद्ध लोग बुद्ध, नैयायिक कर्त्ता, जैन धर्म के अनुयायी अर्हत, और मीमासक कर्म कहकर पूजते है, वह तीनो लोको का स्वामी आपका मगल करे।'[4]

मालवीयजी ने कहा कि जब कवि ने यह वाक्य कहे "उस समय सब धर्म के अग थे। ऐसा नही होता तो कवि इस तरह कदापि नही लिखता। सब एक ही धर्म की शाखा मान कर बर्तते थे। जैसे एक महावृक्ष की शाखाए होती है।"[5]

---

१ वही, पृ० ८४-८५।
२. वही, पृ० ९२।
३. वही, पृ० ९२।
४. वही, पृ० ९३।
५ वही, पृ० ९३।

उन्होने कहा "सिक्ख धर्म भी हमारे धर्म का एक अग है। गुरुग्रन्थ में भक्तिभाव के जो भजन है, वे श्रीमद्भागवत् के श्लोको के अक्षरशः अनुवाद है। पद के पद पढिये वही भाव अनुवाद के रूप मे मिलेंगे। उनके दसो गुरु हमारे धर्म के गुरु थे, वे परम पवित्र थे।"[१]

हिन्दू धर्म की विशेपता की चर्चा करते हुए उन्होने बताया कि "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" का सिद्धान्त उसकी प्रमुख विशेपता है। हमारे धर्म ने, उन्होने कहा, हमें बताया है कि "कीट पतग में, हाथी से चीटी तक सब मे एक ब्रह्म का अश है। एक ही अन्तर्यामी घट-घट में व्याप्त है। धर्म के पीछे किसी से मत लडो।" इसी कारण से, उन्होने बताया, "यद्यपि बौद्ध समय में कुछ विद्रोह हुए, तथापि थोडे समय के बाद ही वैदिक धर्म और बौद्ध धर्म के अनुयायी हिल मिलकर रहने लगे, तथा विद्वानो की गोष्ठियो और राजदरबारो में विप्रमण्डली का भी आदर होता था और बौद्धो का भी।"[२]

वर्णाश्रम धर्म का विश्लेषण करते हुए मालवीयजी ने कहा . "वर्ण में दोष भी है, गुण भी है। आश्रम में भी ऐसा ही है। परन्तु इनमें गुण बहुत है, दोष कम।"[३]

धार्मिक और सास्कृतिक साहित्य के भण्डार की चर्चा करते हुए उन्होने उसकी रक्षा के लिए आवश्यक प्रयत्न करना हिन्दुओ का पुनीत कर्तव्य बताया, और कहा : "इस निधि की रक्षा में हमारी रक्षा, उसके नाश में हमारा नाश है।"[४]

अन्त में मालवीयजी ने काफी विस्तार के साथ हिन्दू जाति की सामाजिक और साम्प्रदायिक समस्याओ पर प्रतिनिधियो का ध्यान आकृष्ट करते हुए "हिन्दू सघटन की आवश्यकता" पर जोर दिया, और आशा व्यक्त की कि "जैसे प्रेम से वे काग्रेस में जाते है, उसी प्रेम से हिन्दू महासभा मे एकत्र होकर विचार करें कि हिन्दू जाति का गौरव, हिन्दू जाति की प्रतिष्ठा किस प्रकार स्थापित्त कर सकेंगे।"[५]

उन्होने स्वीकार किया कि "रोग की अवस्था में सबका विचार रोग को दूर करने का होना चाहिए", पर कहा कि "औपधि भोजन नही है ' 'स्थायी सुधार

१. वही, पृ० ९४। २. वही, पृ० ९४।
३. वही, पृ० ९४। ४. वही, पृ० ९६।
५. वही, पृ० १००।

शाश्वत, सर्वकालीन है, सामयिक नही" और "कोई काम किसी को ऐसा नही करना चाहिए जो राष्ट्रीय आन्दोलन में विरोध पैदा करे।"[1]

उन्होंने शारीरिक दुर्बलता को हिन्दू जाति की विपत्तियो का एक मूल कारण बताते हुए उसे दूर करने के लिए ब्रह्मचर्य और व्यायाम की ओर समुचित ध्यान देने का आग्रह किया, तथा बालविवाह की प्रचलित प्रथा मे सुधार को आवश्यक बताया। उन्होंने शिक्षा के व्यापक प्रसार, तथा स्त्रियो के सर्वांगीण विकास की ओर भी प्रतिनिधियो का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने विद्वद् मण्डली से प्रार्थना की कि वे अन्त्यजोद्धार और शुद्धि के सम्बन्ध मे उचित व्यवस्था दें।[2]

उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता की आवश्यकता पर जोर देते हुए कहा कि स्वराज्य की प्राप्ति के लिए, "सर्वहित साधन" के लिए, हिन्दू और मुसलमान "भेद भाव भुलाकर" जहाँ तक हो सके देश का काम साथ-साथ करें।[3]

अस्पृश्यता की समस्या

हिन्दू सभा के सामने अन्त्यजो का उत्थान सबसे आवश्यक, पर सबसे कठिन समस्या थी। कट्टरपन्थी सनातनी छूत छात की प्रचलित व्यवस्था को दृढता से बनाये रखना चाहते थे, और उनके विरोध के कारण इस विषय मे हिन्दू सभा को बहुत सावधानी से कदम उठाना पडता था। वह प्रगतिशील नवयुवको की आकाक्षाओ, तथा समय की आवश्यकता को ठीक तौर पर पूरा नही कर पाती थी। फिर भी मालवीयजी के प्रयत्नो से सन् १९२३ मे हिन्दू सभा ने निर्णय किया कि सवर्ण हिन्दुओ के समान ही दलित जातियो को सार्वजनिक स्कूलो में पढने, कुओ तथा पानी के अन्य जरियो से पानी लेने सार्वजनिक सभाओ मे अन्य लोगो के साथ बैठने, सडको पर चढने तथा देवदर्शन का अधिकार है। उसने यह भी निर्णय किया कि प्रत्येक हिन्दू को, चाहे वह किसी जाति का हो, समान सामाजिक तथा राजनीतिक अधिकार है।

सन् १९२५ मे हिन्दू महासभा के कलकत्ता अधिवेशन मे लाला लाजपत राय की अध्यक्षता में लाला रामप्रसादजी ने अछूतो और शूद्रो को वेद पाठ करने का अधिकार देने का प्रश्न उठाया। इस पर वहाँ बैठे सनातनधर्मियो मे खलबली मच गयी। परिस्थिति को सुधारते हुए मालवीयजी ने कहा, "ईश्वर के दिये हुए प्रसाद सबके लिए सुलभ है। पर वेदो के अध्ययन करने

१. वही, पृ० १००। २. वही, पृ० १०१-१०९।
३. वही, पृ० १०१।

के लिए कठोर तपस्या की आवश्यकता है, जो सबके लिए साध्य नही है।.... गीता भूमण्डल में सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। उसका अध्ययन और मनन सबके लिए सुलभ है। शूद्र और अन्त्यज भी उसका पाठ करके सफल मनोरथ हो सकते है। वह वेद ही के समान पूज्य और फलप्रद है। मानवजाति के कल्याण के लिए उसमें सब कुछ है। आप लोग प्रयत्न करें कि घर घर में गीता का प्रचार हो। प्रत्येक हिन्दू के पास गीता की पोथी रहे। शूद्र और अन्त्यज भी उसका पाठ करें, और अल्प प्रयास से ही वेदो का मुख्य तत्त्व प्राप्त करें।"[1]

अछूतोद्धार के सम्बन्ध में हिन्दू महासभा ने जो प्रस्ताव जिस ढंग से स्वीकार किये थे वे स्वामी श्रद्धानन्दजी को पसंद नही थे। वे उन्हे पर्याप्त नही समझते थे। इसलिए वे हिन्दू सभा के तत्त्वावधान में आयोजित सार्वजनिक सभाओ में हिन्दूसभा के लक्ष्य, उद्देश्य और कार्यक्रम आदि पर भाषण करने के बाद कहते थे कि अब हिन्दू सभा की बैठक समाप्त हुई, और अब मैं व्यक्तिगत रूप से कुछ विचार आपके सामने रखूँगा। इसके बाद वे अछूतोद्धार के सम्बन्ध में अपने निजी विचार जनता के सामने प्रस्तुत करते थे। इन विचारो को हिन्दू महासभा ने स्वीकार नही किया था, और उससे संबंधित सनातनधर्मी उन्हें धर्मसगत नही समझते थे। पण्डित दीनदयालु व्याख्यानवाचस्पति ने श्रद्धानन्दजी की इस गतिविधि का विरोध किया। इससे कटुता पैदा हो गयी, जिसे मालवीयजी और लाला लाजपत राय कठिनाई से किसी प्रकार शान्त कर पाये।

शुद्धि की समस्या

शुद्धि का प्रश्न हिन्दू महासभा के सामने दूसरी कडी समस्या थी। बहुत से मलकाना राजपूत, जिनके पूर्वज किसी कारण से मुसलमान हो गये थे, इस शर्त पर हिन्दू समाज मे प्रवेश करने को तैयार थे कि उन्हें उनकी राजपूत बिरादरी स्वीकार करे। मुसलमान और प्रचलित परम्परा के उपासक सनातन-धर्मी दोनो शुद्धि के विरोधी थे। मुसलमान तबलीग (धर्मप्रचार) के जरिये दूसरे धर्मो पर विश्वास रखनेवाले व्यक्तियो को अपने मजहब (धर्म) में शामिल करना अपना अधिकार और कर्तव्य समझते थे। पर शुद्धि-आन्दोलन द्वारा मुसलमानों को हिन्दू बनाने की बात उन्हें असह्य थी। वह इस प्रक्रिया को हिन्दू-मुस्लिम झगडे की जड समझते थे। उनमें से कुछ का तो कहना था कि

१. वही, खण्ड १, पृ० ९३-९४।

इस समय दुनिया के अन्दर अगर कोई खुला और विश्वव्यापी धर्म है तो वह केवल "इस्लाम" ही है, और केवल इस्लाम को ही "तबलीग" का हक हासिल है। गाधीजी कहते थे कि धर्मपरिवर्तन कराने की दृष्टि से शुद्धि और तबलीग दोनों खत्म की जायें। पर मुसलमान तबलीग बन्द करने की बात सोच भी नही सकते थे, फिर भला दूसरे धर्मावलम्बी राष्ट्रीय एकता के नाम पर अपने धर्म के प्रचार का अधिकार कैसे छोड सकते थे। मालवीयजी का मुसलमानो से कहना था कि "आप अपने धर्म का प्रचार करते है तो आपको यह अधिकार नही है कि आप दूसरे भाइयो को अपने धर्म के प्रचार से रोकें।"[1] इस तर्क को गाधीजी भी स्वीकार करते थे। सनातनधर्मी भी इस बात को धर्मसंगत मानने को तैयार थे। पर फिर भी वे किसी ईसाई, मुसलमान को हिन्दू जाति में शामिल करना अपने धर्म और मर्यादा के विरुद्ध समझते थे, और इस कारण से शुद्धि का विरोध करते थे। मालवीयजी इस विचार से सहमत नही थे। उनका विचार था कि ज्ञान का प्रसार प्रत्येक ज्ञानवान् का कर्तव्य है। वे कहते थे, "जो लोग अज्ञान के कारण अपने धर्म से विमुख हो जाते है, उनके विषय में समस्त हिन्दू जाति और विशेषकर हमारे ब्राह्मण भाई अपराधी है जो अपने धर्म का ज्ञान अपने अज्ञानी भाइयो में नही फैलाते।"

"ज्ञानं प्राप्य तु ससारे य. परेभ्यो न यच्छति।
ज्ञानरूपी हरिस्तस्मै अप्रसन्नो हि लक्ष्यते॥"

(अर्थात् संसार में ज्ञान प्राप्त करके जो दूसरो को ज्ञान नही देता, उसके ऊपर ज्ञान रूपी ईश्वर अप्रसन्न से दिखलायी देते है।[2])

मालवीयजी का कहना था कि हमारे शास्त्रो में प्रायश्चित्त कराना एक पडित का धर्म है, और प्रायश्चित्त के बाद दोषी व्यक्ति निर्दोषी हो जाता है, उसके बाद उसके पुराने दोष या पाप की चर्चा धर्मविरुद्ध है। अतः हमारा कर्तव्य है कि हम अपने भूले-भटके भाइयो को सनातन-धर्म का मर्म समझा कर, उन्हें प्रायश्चित्त कराकर उनकी शुद्धि करें, उनके साथ सद्व्यवहार करें, उन्हें अपनी पंगत में शामिल करें। मालवीयजी का यह भी कहना था कि ईश्वरी ज्ञान सबके लिए है, उसका प्रचार हर विद्वान् का धर्म है। धर्म की व्यापकता और सार्वभौमिकता के लिए उसका विस्तार नितान्त आवश्यक है। उनके विचार में शास्त्रो में भी इसका विधान है, ऋषियो का आचरण भी

---

१. लाहौर में भाषण, २८ जून सन् १९२३।
२. 'अभ्युदय' २३, अक्तूबर सन् १९०८।

इसके अनुकूल है। मालवीयजी व्यावहारिकता की दृष्टि से भी शुद्धि का अनुष्ठान आवश्यक समझते थे। उनका कहना था : "यदि कोई चाहता है कि वह पूजा पाठ किया करे, गगा-स्नान करके भोजन करे, और आपके धर्म को पवित्र मानकर उसकी ज्योति से मुक्ति पाये, तो हम उससे कैसे कह दें कि तुम्हे हिन्दू होने का अधिकार नही ?"[1] उन्होने कहा : "प्राचीन काल के ऋषि समझदार थे। उन्होने इसीलिए असभ्यो को सभ्य किया था। यदि आज भी यह साधुमडली, पडितमण्डली, विद्वद्मण्डली यह आज्ञा दे दे कि जो छल या बल से मुसलमान बनाये गये है उन्हे वापस ले लो, तथा जो और लोग भी आना चाहते हो उन्हें भी ले लो, तो आज ही विजय की घोषणा हो जाय। विश्वनाथ का नाम लो, और आज ही यह व्यवस्था कर दो कि जो चाहे हिन्दू हो सकता है।"[2]

मालवीयजी के प्रयास से हिन्दू महासभा ने अपने बनारस अधिवेशन मे शुद्धि का प्रस्ताव पारित किया। इसके कुछ महीने पूर्व ही ३१ दिसम्बर सन् १९२२ को शाहपुरा (मेवाड) के राजाधिराज सर नाहर सिंह के नेतृत्व में आगरे में अखिल भारतीय क्षत्रीय महासभा का अधिवेशन हुआ, जिसमें साढे चार लाख मुस्लिम राजपूतो को शुद्धि द्वारा हिन्दु विरादरी में सम्मिलित करने का निश्चय किया गया। १३ फरवरी सन् १९२३ को अखिल भारतीय हिन्दू शुद्धिसभा गठित की गयी। स्वामी श्रद्धानन्द उसकी प्रवन्ध-समिति के अध्यक्ष चुने गये। उनकी देख-रेख में हजारो अतिथियो की उपस्थिति में मलकाना (मुस्लिम राजपूत) काफी वडी संख्या में हिन्दू भाइयो द्वारा बहुत उत्साह और धूमधाम से हिन्दू राजपूत विरादरी के अंग वना लिये गये। पर शुद्धि के सम्बन्ध में हिन्दू महासभा स्वयं कोई विशेप महत्त्वपूर्ण कार्य नही कर सकी। सनातन-धर्मावलम्वियो को इसमें कोई विशेप रुचि ही नही थी। आर्यसमाजियो ने अपने पुराने ढंग से आर्य समाज के तत्त्वावधान में काम करना ही उचित समझा। परिवर्तित राजनीतिक और सामाजिक स्थिति में उन मुसलमान परिवारो की दृष्टि में भी धर्मपरिवर्तन सारहीन हो गया, जिनके पूर्वज हिन्दू थे, और जो किसी समय फिर से हिन्दू धर्म ग्रहण करना चाहते थे।

स्त्रियो की रक्षा और उत्थान

स्त्रियो की रक्षा और उत्थान हिन्दू समाज की एक दूसरी वड़ी समस्या थी, जिसकी ओर ध्यान देना हिन्दू महासभा के लिए नितान्त आवश्यक था।

---

१. हिन्दू महासभा का ७ वा अधिवेशन १९२३, सीताराम चतुर्वेदी : वही, खण्ड २, पृ० १०९। २. वही।

मालवीयजी ने हिन्दू जनता से अनुरोध किया कि वे उन सब सामाजिक कुरीतियो को दूर करें जो स्त्रीजाति की उन्नति में बाधक है। स्त्रियो की समुचित रक्षा की आवश्यकता पर जोर देते हुए उन्होने कहा कि "जो पुरुष अपनी माता, बहन या पत्नी की रक्षा नही कर सकता, उसके जीवित रहने की कोई आवश्यकता नही, और यदि वह अपनी आँखो के सामने अपनी माता, बहिन या पत्नी पर आक्रमण देखकर जीता रहता है, तो उसका जीने से मर जाना बेहतर है।"[1]

वे चाहते थे कि हिन्दू स्त्रियो में इतनी मानसिक और शारीरिक शक्ति विकसित की जाय कि वे स्वयं हिम्मत के साथ गुण्डो से अपनी रक्षा कर सकें।

वे बाल-विवाह को हिन्दू जाति के ह्रास का एक बहुत बडा कारण समझते थे, और उस कुरीति को दूर करना हिन्दू जाति के उत्थान के लिए, विशेषत. स्त्री जाति के उत्कर्प के लिए, नितान्त आवश्यक समझते थे। सन् १९२३ मे ही उन्होने हिन्दू महासभा के अधिवेशन में कहा था : "आठ दस वर्ष की कन्याओ का विवाह करने से तो रजो-दर्शन के बाद ही विवाह करना श्रेष्ठ है और इसके लिए यदि नरक मे जाना पडे, तो नरक मे जाना अच्छा है, पर बाल-विवाह करना अच्छा नही।"[2] उनका आदेश था कि "लड़की का बारह तथा लड़के का अठारह वर्प की आयु से पहले विवाह कभी मत करो, और यदि कन्या का सोलह और बालको का २० या २५ वर्प की अवस्था में विवाह कर सको, तो और भी उत्तम है। ब्रह्मचर्य का प्राचीन नियम चलाओ, तभी हमारे पूर्वजो के समान उच्च श्रेणी के पुरुप पैदा हो सकेंगे।[2] उन्होने कहा . "मै २५ वर्प के विवाह को सबसे उत्तम समझता हूँ। उससे उतर कर २० वर्प की उम्र के विवाह को समझता हू। १८ वर्प से पहले तो किसी बालक का विवाह होना ही नही चाहिए।"[3] सन् १९३४ में तो उन्होने रावलपिंडी में पजाब सनातन धर्मसम्मेलन मे घोपित किया कि "सनातन धर्म यही है कि पहले पचीस वर्प तक ब्रह्मचारी रहो।"[4]

दहेज की प्रथा

वे दहेज जैसी दूसरी विवाह सम्बन्धी कुरीतिया भी दूर करना आवश्यक समझते थे। वे चाहते थे कि विवाह का उत्सव जितनी सादगी से किया जा

१. पजाब हिन्दू सम्मेलन, २३ फरवरी, सन् १९२३।
२ सीताराम चतुर्वेदी : वही, खण्ड २।
३ सीताराम चतुर्वेदी : वही, खण्ड २, पृ० १२०-१३१।
४ महामना पंडित मदन मोहन मालवीय जी के लेख और भापण, भाग १, पृ० १८८।

सके उतनी सादगी से किया जाय, व्यर्थ के खर्चे को जितना घटाया जा सके उतना घटाया जाय।

स्त्री-शिक्षा

वे स्त्री-शिक्षा पर भी जोर देते थे। वे उसे सारे समाज की उन्नति के लिए आवश्यक समझते थे। वे चाहते थे कि "जातीय जीवन के पुनरुत्थान के लिए स्त्रीशिक्षा के पवित्र कार्य को उत्साह और साहस के साथ किया जाय", स्त्रियों के "हृदय और मन की सारी शक्तियों का सम्यक् रूप से विकास किया जाय", "उनकी पूर्ण पुष्टि" की जाय।[1] उनके विचार में पुरुषो की तरह स्त्रियो को भी देश-हित का कार्य करना चाहिए। उन्हे याद रखना चाहिए कि ईश्वर का तत्त्व उनमें भी है, और जब तक वे इस मार्ग में अग्रसर नही होगी, तब तक देश की उन्नति सम्भव नही होगी।[2]

स्त्रियो का सम्मान

वे चाहते थे कि समाज मे स्त्रियो का समुचित आदर हो। हिन्दू मुसलमान, जाति और सम्प्रदाय के भेद को भुलाकर, सब माताओ, बहनो और बेटियो का आदर करना अपना कर्तव्य समझे, और उनकी मानमर्यादा और गौरव की रक्षा करे।

विधवा-विवाह

मालवीयजी इस तरह स्त्रियो के सर्वांगीण विकास के पक्ष में थे। वे यह भी चाहते थे कि विधवाओ की रक्षा, तथा उनके सम्मान और भरण-पोषण की ओर भी विशेष ध्यान दिया जाय।

मालवीयजी की अनुमति से हिन्दू महासभा ने स्त्री जाति की उन्नति के लिए बहुत से प्रस्ताव स्वीकृत किये, और बहुत सी सामाजिक कुरीतियो के विरुद्ध अपने ढग पर जनमन को प्रोत्साहित किया। पर उनके आग्रह के कारण विधवा विवाह के सम्बन्ध में हिन्दू महासभा मे कोई भी प्रस्ताव प्रस्तुत नही किया जा सका। स्वामी श्रद्धानन्दजी को यह बात बहुत अखरी। पर ४ अक्तूबर सन् १९४० को इस सम्बन्ध मे जब पडित यज्ञनारायण उपाध्याय और पडित महादेव शास्त्री की मालवीयजी से बातचीत हुई, और शास्त्रीजी ने उनसे पूछा कि विधवाओ की रक्षा कैसे की जाय, और विधवाओ का विवाह कराया जाय अथवा नही, तब

१. 'अभ्युदय', मार्गशीर्ष शुक्ल ९, सम्वत् १९६४।
२. कांग्रेस का अध्यक्षीय भाषण, सन् १९१८।

मालवीयजी ने कहा कि उनकी राय में "यदि विधवा चाहे तो उसका विवाह कर देना चाहिए, पर इसके सम्बन्ध में सनातनधर्मावलम्बियो की सभा की जानी चाहिए, और उसके निर्णय के अनुसार सब काम होना चाहिए।"[1] शास्त्रीजी से इस पुस्तक के लेखक को यह भी पता चला कि मालवीयजी ने स्वय एक विधवा-विवाह करा दिया था। पर जब उनकी विधवा बुआ को इसका पता चला, तब उन्होने मालवीयजी को बहुत डाँटा फटकारा। पडित यदुनन्दन उपाध्याय ने इस पुस्तक के लेखक को बताया कि एक बार मालवीयजी ने, उस समय जब कि वे बहुत वृद्ध हो गये थे, उनसे कहा कि यद्यपि उन्होने (मालवीयजी ने) बहुत से क्षेत्रो में बहुतो की सेवा की है, पर वे विधवाओ की कोई सेवा नही कर सके।

संरक्षा की समस्या

गुण्डो के अत्याचारो से जाति की रक्षा करने के लिए स्वय-सेवको का सगठन महासभा की चौथी बड़ी समस्या थी। मालवीयजी स्वय चाहते थे कि प्रत्येक क्षेत्र, नगर और मुहल्ले में हिन्दू-मुसलमानो का मिलाजुला नागरिक दल संगठित किया जाय, और इस दल के स्वय-सेवक सब जातियो के गुण्डो से समान रूप से निष्पक्ष भाव से सब जातियो के लोगो के जान-माल की रक्षा करें। पर जब ऐसे दल सगठित नही हो पाये, तब उन्होने महावीर दल संगठित करने की हिन्दुओ को सलाह दी। जब मुसलमानो ने इसका विरोध किया, तब उन्होने कहा कि यदि मुसलमान चाहे, तो वे भी मुहाफिज दल सगठित कर सकते है, और अच्छा तो यही होगा कि दोनो दलो के स्वयसेवक नागरिक सुरक्षा दल के स्वय-सेवको की हैसियत से आपस में मिल कर साम्प्रदायिक झगडो के अवसरो पर सारी जनता के जान-माल तथा धर्म-स्थानो की रक्षा करें। मालवीयजी ने यह भी कहा कि वे महावीर दलो को मुसलमानो पर आक्रमण करने के लिए नही, बल्कि हिन्दुओ की रक्षा के लिए संगठित करना चाहते हैं। दूसरी जातियो पर आधिपत्य प्रतिष्ठित करने की या उन्हें चोट पहुँचाने की उनकी इच्छा नही है। वे कहते थे, "हम प्रभुत्व नही चाहते, न ही हम किसी पर अधिकार चाहते है।"[2] वे यह जरूर चाहते थे कि हिन्दू अपनी दुर्बलता को दूर करके आततायियो का डट कर मुकाबला करे। पर वे यह नही चाहते थे कि हिन्दू मुसलमानो पर

---

१. रामनरेश त्रिपाठी : मालवीयजी के साथ तीस दिन, पृ० २४५।

२. हिन्दू महासभा का अध्यक्षीय भाषण, १९२३, सीताराम चतुर्वेदी . वही, खंड २, पृ० १००।

किसी प्रकार का अत्याचार करें। वे इस प्रकार के कामो को "घृणित" समझते थे, और उनकी "निन्दा" करते थे।[1] उनका कहना था कि "यदि कोई आदमी निर्दोष है और कोई हिन्दू उस पर अत्याचार करता है और आप मना नही करते तो आप बुरे है। यदि मुमलमान को अत्याचार करने से नही रोकते तो यह कायरपन है।"[2] उन्होने स्पष्ट शब्दो में यह भी कहा ' 'जब कही हिन्दुओ द्वारा अत्याचार होते मैंने देखा है, तब मुझे दुःख हुआ है। ऐसा करना ठीक नही है। बिहार में जो कुछ हुआ था, उससे मुझे सताप हुआ। कटारपुर में जो अत्याचार हुआ उसका मुझे दु ख है। वह ठीक नही हुआ, मुझे रोम रोम से दु.ख हुआ। मैंने उसको घृणित समझा। उसकी निन्दा की।"[3]

जब मार्च सन् १९३१ में कानपुर में दगा हुआ और उसमें दोनो ओर से अत्याचार हुए, तब उसके बाद ११ अप्रैल सन् १९३१ को कानपुर में एक सार्वजनिक सभा में भाषण करते हुए मालवीयजी ने कहा कि "मैं मनुष्यता का पूजक हू, मनुष्यत्व के आगे जाति-पाँति नही मानता। कानपुर में जो दगा हुआ उसके लिए हिन्दू मुसलमान इनमें से एक ही जाति जवाबदेह नही है। जवाबदेही दोनो जातियो पर समान है। मेरा आप सबसे आग्रहपूर्वक ऐसा कहना है कि अब भविष्य में आप अपने भाइयो से ऐसा युद्ध नही करेंगे। वृद्ध, बालक व स्त्रियो पर हाथ नही छोडेंगे। मन्दिर अथवा मस्जिद नष्ट करने से धर्म की श्रेष्ठता नही बढती। ऐसे दुष्कर्मों से परमेश्वर प्रसन्न नही होता। आप लोगो ने आपस में लडकर जो अत्याचार किये है उसका जवाब ईश्वर के सामने देना होगा। जब तक हिन्दू मुसलमान दोनो में प्रेम-भाव उत्पन्न नही होगा, तब तक किसी का भी कल्याण नही होगा। एक दूसरे का अपराध भूल जाइये और एक दूसरे को क्षमा कीजिये। एक दूसरे के प्रति सद्भाव और विश्वास बढाइये। गरीबो की सेवा कीजिये, उनको प्रेम से आलिगन कीजिये, और अपने कृत्यो का पश्चात्ताप कीजिये।"[4]

इस तरह मालवीयजी साम्प्रदायिक उपद्रवो के युग में भी हिन्दुओ को आत्मरक्षा के निमित्त सगठित और सबल होने का उपदेश देते हुए उनसे आग्रह करते थे कि वे सबके साथ मनुष्यता का व्यवहार करें, किसी के साथ अनाचार और अत्याचार न करें, तथा देश की विभिन्न जातियो और सम्प्रदायो में प्रेमभाव और सौहार्द को बढाने का ध्यान सदा रखें। उन्होने सन् १९२३ में हिन्दू महासभा के सम्मेलन में हिन्दू जनता को सम्बोधित करते हुए कहा :—

---

१ वही, पृ० १०१। २. वही, पृ० १०१।
३ वही, पृ० १०१।
४. सीताराम चतुर्वेदी : वही, खण्ड १, पृ० ९६।

'यह कभी मत भूलो कि हमारा देश भारतवर्ष है। इसमें भिन्न-भिन्न धर्म के लोग रहते बसते हैं। इस देश का भला इसी में है कि हम सबमें परस्पर मेल रहे। यदि यह याद रहा तो ठीक है, नहीं तो हिन्दू सभा निष्फल हो जायेगी। यदि यह याद रहा तो स्वराज्य पाने में भारी मदद मिलेगी। याद रखो कि यदि गिरजे या मस्जिद की तरफ हमारी नजर उठे, तो आदर की नजर उठे। यदि किसी मुसलमान या ईसाई के प्रति कोई शब्द निकले, तो आदर का शब्द निकले। बेइज्जती हो तो सह लेना, पर दूसरों का दिल दुखानेवाला शब्द कभी न बोलना। याद रखो, बलवान् ज्यादा सहन करता है। कमजोर को जल्दी गुस्सा आया करता है। यदि इस समय आप बल का ध्यान कर रहे हैं, तो इसका असर होना चाहिए। यदि कुछ भाई मन्दिरों पर भी हाथ उठायें, तो आप उनपर उतना ही हाथ उठाओ जितना उनकी दुष्टता दबा सके। उनसे बराबर प्रेम रखो। एक अपनी विवाहिता स्त्री के सिवा अन्य सबको, चाहे वे मुसलमान हों, चाहे ईसाई, उन्हें अपनी माता के समान समझो। कहीं ऐसा न हो कि किसी को यह कहने का मौका मिल जाय कि हिन्दू सन्तान अपने धर्म को खो बैठी है। अपना आचरण ऐसा बनाओ कि किसी मुसलमान या किसी ईसाई को बेजा शिकायत न हो। अपना लक्ष्य यही है कि--

सर्वे च सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात्॥

ऐसा लक्ष्य रखो कि उसमें अपनी भी उन्नति हो, और दूसरों का भी भला हो, कहीं किसी का अमंगल न हो।''[1]

महासभा के उद्देश्य

सन् १९२३ में मालवीयजी की अध्यक्षता में हिन्दू महासभा के लक्ष्य और नया संविधान निश्चित हुआ। "हिन्दू समाज के सभी पंन्थवालों में तथा सभी वर्ग-वालों में पारस्परिक प्रेम की वृद्धि करके एकीकरण द्वारा इस अपने महान् समाज को सुसंगठित, प्रबल व उत्कर्षोन्मुख बनाना, और उसकी सर्वांगीण प्रगति करना" हिन्दू सभा का मुख्य उद्देश्य था। संघटित हिन्दू जाति व भारत की अन्य धार्मिक जातियों के साथ परस्पर सद्भाव उत्पन्न करके भारत को स्वयं-शासित स्वराज्य-युक्त एवं महान् राष्ट्र बनाने का प्रयत्न करने के लिए उनसे मित्रता बढ़ाना, मालवीयजी के नेतृत्व में संघटित हिन्दू महासभा का दूसरा महत्त्वपूर्ण लक्ष्य था। हिन्दू जाति के निम्न वर्गों के साथ सब वर्गों की उन्नति करके उन्हें ऊँचा

१. सीताराम चतुर्वेदी . वही खंड २, पृ० ११०।

उठाना, हिन्दुओ के हित की जहाँ आवश्यकता हो वहाँ उसकी रक्षा करना, हिन्दुओ का सख्याबल कायम रखना व उसे बढाना, हिन्दू स्त्रियो की स्थिति सुधारना, गोरक्षण व गो-सवर्धन करना, हिन्दू जाति के धर्म, सदाचार, शिक्षण और सामाजिक, राजकीय और आर्थिक उन्नति के लिए प्रयत्न करना, उसके दूसरे उद्देश्य थे। हिन्दू महासभा ने अपने विधान मे एक टिप्पणी द्वारा यह भी स्पष्ट कर दिया था कि "हिन्दू सभा हिन्दू जाति के किसी भी विशेष पन्थ का, राजनीतिक पक्ष का, पक्षपात अथवा विरोध नही करेगी, अथवा किसी पथ के मत में रद्दोबदल नही करेगी।"[1]

मालवीयजी की नीति-रीति

मालवीयजी ने गया अधिवेशन से लेकर सन् १९२७ तक अर्थात् पाँच वर्ष तक हिन्दू महासभा का नेतृत्व किया, और इस जमाने मे हिन्दू महासभा के सब उद्देश्यो को सदा अपने सामने रखा। उन्होने हिन्दू समाज को सुसगठित, प्रबल एव उत्कर्षोन्मुख बनाने का प्रयत्न किया, साहस के साथ आततायियो का मुकाबला करने का उसे पाठ पढाया, पर साथ ही साथ मुसलमानो के साथ सौहार्द बनाये रखने का उसे उपदेश किया। उनका आदेश था कि "उन जीवो को नही मारना चाहिए जो किसो पर चोट नही करते। मारना उनको चाहिए जो आततायी हो, अर्थात् स्त्रियो पर या किसी दूसरे के धन या प्राण पर जो वार करते हो, या जो किसी के घर में आग लगाते हो। यदि ऐसे लोगो को मारे बिना अपना या दूसरो का प्राण या धन न बच सके तो उनको मारना धर्म है।"[2] उन्होंने हिन्दुओ के कतिपय हितो की रक्षा के निमित्त काग्रेस के विरुद्ध राजनीतिक दल संघटित किया, पर हिन्दू महासभाओं को किसी राजनीतिक पक्ष का पक्षपात करने को कभी सलाह नही दी, और स्वराज्य की माँग की प्राथमिकता पर सदा ध्यान रखा। उन्होने समाज-सुधार के काम में सनातन-धर्म पर दृढ निष्ठा रखनेवाले हिन्दुओ की धार्मिक भावनाओ को सदा ध्यान में रखा, और शास्त्रो के प्रमाण के आधार पर ही समाज-सुधार का कार्य सम्पन्न किया।

विद्वत् परिषद्

अगस्त सन् १९२३ में काशी मे तथा जनवरी सन् १९२५ में प्रयाग मे हिन्दू महासभा के अधिवेशनो के अवसरो पर समाज-सुधार के प्रश्नो पर सनातनधर्मी पडितो की व्यवस्था लेने के लिए मालवीयजी ने विद्वत् परिषदें

---

१ सीताराम चतुर्वेदी महामना मालवीयजी, पृ० ८८-८९।
२ धर्मोपदेश।

आयोजित की। कुछ पडितो ने परिपद् में भाग लेने से ही इनकार कर दिया, कुछ ने परिपद् में आकर समाज-सुधार का समर्थन करने से, प्रचलित प्रथाओ में संशोधन करने से इनकार कर दिया। पर कुछ विद्वानो ने शास्त्रो के आधार पर शुद्धि, अन्त्यजोद्धार, वाल-विवाह के सम्बन्ध में व्यवस्था देते हुए किसी अंश में समाज-सुधार का समर्थन किया। ये व्यवस्थाएँ मालवीयजी की तितिक्षा, बुद्धिमत्ता, अथक परिश्रम का परिणाम थी। वे स्वयं इनसे पूरी तौर पर संतुष्ट नही थे। फिर भी वे इन्हे लाभदायक समझते थे। इन्ही के आधार पर हिन्दू महासभा ने शुद्धि, अन्त्यजोद्धार, वाल-विवाह आदि सामाजिक प्रश्नो पर प्रस्ताव पास किये। पर वहुत से समाजसुधारको की दृष्टि में ये व्यवस्थाएं किसी व्यापक सामाजिक सिद्धान्त के वजाय शास्त्रों के प्रमाणो पर आधारित होने के कारण अपर्याप्त और अन्तराली थी, पूरी तौर पर कालानुरूप नही थी।

गौवो की सेवा

मालवीयजी गो-सेवा को मानवमात्र का, विशेपत. हिन्दुओ का पुनीत कर्तव्य समझते थे, और वे स्वयं इस काम में आजीवन संलग्न रहे। उनका कहना था कि 'गौ मानवजाति की माता के समान उपकार करनेवाली, वल और निरोगता देनेवाली, तथा उसकी आर्थिक उन्नति वढानेवाली देवी है। इसके उपकार से मनुष्य कभी उऋण नही हो सकता। गौ समान रीति से मानव मात्र की सेवा करती है। इसलिए सव जाति, धर्म और सम्प्रदाय के मनुष्यो को गोवंश की रक्षा करने, उसके साथ न्याय और दया का वर्ताव वढाने में प्रेम के साथ शामिल होना चाहिए।'

गोरक्षा के निमित्त उन्होने वहुत से सम्मेलनो को आयोजित किया, सनातन धर्म सभा और हिन्दू सभा के अधिवेशनो में गोरक्षा को पुष्ट किया, तथा स्थान-स्थान पर गोशालाओ और पिंजरा-पोलो को स्थापित कराने का प्रयत्न किया। उन्होने राजाओं, महाराजाओ, जमीदारो और तालुकेदारो से मिलकर गोचर भूमि के लिए जगह छुडवायी, एवं मथुरा में आशानन्द गोचर भूमि ट्रस्ट को स्थापित करने मे मदद की।

ब्राह्मण-अब्राह्मण सौहार्द

सन १९२४ में हिन्दू महासभा के विशेप अधिवेशन पर पारस्परिक सौहार्द की वृद्धि की आवश्यकता पर जोर देते हुए मालवीयजी ने कहा : "ब्राह्मण अब्राह्मण दोनो ही एक सभ्यता के अन्तर्गत है। दोनों को भाई-भाई की तरह

रहना चाहिए। ब्राह्मणो को चाहिए कि गुण और योग्यता जहाँ कही भी मिले, उसका आदर करें। ब्राह्मणो का राम, कृष्ण और बुद्ध की, जो ब्राह्मण नही थे, भक्ति करना इस बात का प्रमाण है कि गुण कही भी मिले उन्हे उसका आदर करने में संकोच नही होता था। दु ख की बात है कि सरकारी नौकरियो तथा दो एक मन्त्री पदो के लालच से, जो हिन्दूमात्र की एकता के सामने तुच्छ वस्तुएं हैं, हम आपस में झगडते है (हमें दूसरो का सुख और शक्ति देखकर प्रसन्न होना चाहिए। जब तक हमारी बुद्धि में विकार न आ जाये, हमारे लडने का कोई कारण नहीं) क्या महात्मा गाधी अब्राह्मण नही हैं, और क्या यह सत्य नही कि आज देश में जितनी उनकी प्रतिष्ठा है उतनी और किसी की नही है ? मैं अपने ब्राह्मण तथा अब्राह्मण भाइयो से आपस का भ्रम दूर करने का अनुरोध करता हूँ।"[1]

लाला लाजपत राय का अध्यक्षीय भाषण

अप्रैल सन् १९२५ में कलकत्ते में आयोजित सम्मेलन की लाला लाजपत राय ने अध्यक्षता की। अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होने कहा कि घृणा के बजाय 'प्रेम की वृद्धि ही हमारा उद्देश्य है।'[2] पर आत्मरक्षा का समुचित प्रबन्ध प्रत्येक व्यक्ति और समाज का पुनीत कर्तव्य है। अहिंसा के नाम पर गृहस्थो को संन्यासियो के धर्म की शिक्षा नही दी जा सकती। ऐसा करना वर्णाश्रम धर्म के मूल सिद्धान्त के विरुद्ध होगा।[3] उन्होने कहा कि वे चाहते है कि बच्चो, युवको और युवतियो के जीवन में आनन्द की भावना संचारित की जाय, उन्हे उत्साही, प्रयत्नशील और महत्त्वाकाक्षी बनाया जाय, क्योकि ऐसा कोई राष्ट्र 'स्वतन्त्रता और समृद्धि प्राप्त नही कर सकता जिसके युवक और युवतियाँ अभिलाषा-विहीन हो, संसार के प्रति उदासीन हों। उन्होने कहा कि वह मनुष्य जिसे स्वतन्त्र और समृद्ध होने की इच्छा नही, कभी सुखी नही हो सकता और वह सच्चे मानो में धार्मिक भी नही हो सकता। यह मोक्ष का मार्ग नही, विनाश का पथ है।[4]

लाला लाजपत राय ने कहा . "हिन्दुओ ने अब तक राष्ट्रीय नीति का अनुसरण किया है, और मैं समझता हूँ कि उन्हें इस पर डटे रहना चाहिए। यदि

१ सीताराम चतुर्वेदी : महामना पडित मदनमोहन मालवीय, खंड २, पृ० १२३।

२. इन्द्रप्रकाश ए रिव्यू आफ दी हिस्ट्री एन्ड वर्क आफ दी हिन्दू महासभा, पृ० ९१।

३ वही, पृ० ९१-९२। ४ वही, पृ० ९२-९३।

वे अपनी राष्ट्रीयता को साम्प्रदायिकता से बदल देगें, तो वे अपने किये कराये पर पानी फेर देंगे।[१] फिर भी हम इस बात की उपेक्षा नही कर सकते कि भारत मे ऐसे साम्प्रदायिक समूह है जो हमारी राष्ट्रीयता का अनुचित लाभ उठा रहे है, और अपनी साम्प्रदायिकता को इस हद तक आगे बढा रहे है, जो सारे राष्ट्र के हितो के लिए हानिकर है। हिन्दू समाज के लिए तो निश्चित ही अनर्थकारी है। ऐसी साम्प्रदायिकता का हमें विरोध करना ही होगा, क्योकि वह हमारे विचार मे चिरस्थायी दासता, चिरस्थायी फूट और अविच्छिन्न पराधीनता का कारण होगी।"[२]

उन्होने कहा . "दूसरे सम्प्रदायो से अपनी जाति की पोजीशन को निर्धारित करने के अतिरिक्त हिन्दू महासभा का कोई विशेष राजनीतिक काम नही है।"[३] हिन्दू साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के विरुद्ध है—लखनऊ समझौते को गलत समझते है—प्रतिनिधित्व के सर्वमान्य सिद्धान्त को मानने को तैयार है जो सारे हिन्दुस्तान पर लागू हो, इस प्रतिबन्ध के साथ कि निर्वाचन समूह संयुक्त होगा, और साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व विधान-सभाओं के बाहर लागू नही किया जायगा।"[४]

राजनीतिक प्रश्नो पर निर्णय

इस सम्मेलन में हिन्दू महासभा ने निश्चय किया कि "चूंकि देश में स्वराज्य को स्थापित करने और बनाये रखने के लिए शान्ति और सुख के लिए एक राष्ट्र का होना आवश्यक है, और राष्ट्रीय संस्थाओ और सेवाओ (नौकरियो) मे साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व एक संयुक्त राष्ट्र बनाने में हानिकर है, अतः हिन्दू महासभा इस प्रथा के परिचलन का दृढतापूर्वक विरोध करती है, और वह अपने गैर-हिन्दू भाइयो से प्रार्थना करती है कि वे ऐसी राष्ट्र विरोधी माँगे को छोड़ें, तथा राष्ट्रीय संहति और एक्य प्रतिष्ठित करने में हिन्दुओ का साथ दें।"[५]

२३ अगस्त सन् १९२५ को काफी वाद-विवाद के बाद हिन्दू महासभा की कार्यसमिति ने निश्चय किया कि हिन्दू सभा चुनावों में अपने प्रत्याशी खडा न करे, पर जहाँ इस बात का डर हो कि किसी प्रत्याशी का चुनाव हिन्दुओ

१. वही, पृ० ९३।
२ वही, पृ० ९३।
३. वही, पृ० ९३-९४।
४ वही, पृ० ९४।
५. वही, पृ० १७०।

के हित में नही होगा, वहाँ उसका विरोध करना हिन्दू मतदाताओ का कर्तव्य होगा।[1]

भाई परमानन्द इस निर्णय को ठीक नही समझते थे। वे चाहते थे कि हिन्दू सभा स्वयं प्रत्याशियो को खडा करे, और चुनाव लडे। समाचार-पत्रों और भापणो द्वारा उन्होने अपने इस विचार का प्रचार भी किया। पर उनके आग्रह के बावजूद अप्रैल सन् १९२६ मे हिन्दू महासभा ने अपने वार्षिक अधिवेशन में अपनी कार्यसमिति के निर्णय को स्वीकार कर लिया, पर कार्यसमिति को अधिकार दिया कि वह प्रान्तीय हिन्दू सभा के परामर्श से हिन्दू हितो की रक्षा के लिए उचित कार्रवाई करे और जहाँ आवश्यक हो, वहाँ अपने प्रत्याशी खडा करे।[2] इस प्रस्ताव में हिन्दू महासभा ने सब राजनीतिक पार्टियो से प्रार्थना की कि वे विधान-सभाओ में विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायो के सदस्यो को अपने सम्प्रदाय से विशेष रूप से सम्बन्धित मामले में अपनी स्वतत्र राय देने की छूट देगी।[3]

इसी अधिवेशन में हिन्दू महासभा ने यह निर्णय किया कि उसकी राय में 'चूंकि साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व और पृथक् निर्वाचन का सिद्धान्त विभिन्न सम्प्रदायो को पास लाने के बजाय राष्ट्रीय भावना के विकास में तथा म्युनिस्पैलटियो, जिला बोर्डों एव प्रान्तीय और राष्ट्रीय प्रतिनिधि सस्थाओ के निर्विघ्न सचालन में बाधक सिद्ध हुआ है, इसलिए सब राजनीतिक विचारो के हिन्दू राजनीतिज्ञ इस दोषपूर्ण सिद्धान्त का डट कर विरोध करेगे'। महासभा ने यह भी निश्चय किया कि किसी विशिष्ट सम्प्रदाय के हित में लखनऊ पैक्ट का आशिक सशोधन हिन्दुओ को स्वीकार नही होगा। इस प्रस्ताव में यह भी माँग की गयी कि प्रान्तीय स्वशासन या उत्तरदायी स्वायत्त-शासन की योजना में इस बात की स्पष्ट रूप से व्यवस्था कर दी जाय कि जाति या सम्प्रदाय के आधार पर नागरिक अधिकारो या सरकारी नौकरियो पर प्रतिबन्ध लगाना या भेद बरतना प्रान्तीय सरकारो के लिए गैरकानूनी होगा।[4]

अप्रैल सन् १९२७ में डाक्टर बी० एस० मुजे की अध्यक्षता में हिन्दू महासभा ने अपने दसवें अधिवेशन में निश्चय किया कि चूकि केन्द्रीय असेम्बली के कतिपय मुस्लिम सदस्यो द्वारा प्रस्तुत सुझावो पर मुसलमान स्वय सहमत नही, इसलिए इस पर कोई राय देना बिल्कुल व्यर्थ है। फिर भी हिन्दू सभा ने कहा कि प्रान्तो के पुनर्गठन के प्रश्न का चुनाव-पद्धति से कोई सम्बन्ध नही है, किसी

१ वही, पृ० १७३।
२. वही, पृ० १७३-१७४।
३. वही, पृ० १७४।
४. वही, पृ० १७४-१७५।

विशिष्ट समुदाय को बहुसंख्यक बनाने के लिए भी नये प्रान्त का गठन अनुचित ही है। इस प्रस्ताव मे हिन्दू महासभा ने साम्प्रदायिक समस्या पर विचार विमर्श के लिए चार सिद्धान्तो को प्रतिपादित किया (१) सब विधान कौंसिलो के लिए संयुक्त निर्वाचन पद्धति, (२) जनसंख्या, निर्वाचको की संख्या या कर जैसे अचर (एकरूप) सिद्धान्त के आधार पर किसी निश्चित समय तक के लिए विधान सभाओ में स्थानो की संरक्षता, (३) प्रत्येक प्रान्त मे मताधिकार की एकरूपता, (४) धार्मिक अधिकारो और रिवाजो का संवैधानिक संरक्षण।[1]

सन् १९२७ में दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह मे कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर मद्रास में पंडित मदन मोहन मालवीयजी की अध्यक्षता में हिन्दू महासभा का विशेष अधिवेशन हुआ। मालवीयजी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा, "राष्ट्रीयता हिन्दू महासभा का उतना ही लक्ष्य है, जितना हिन्दुत्व"। उन्होंने बताया कि हिन्दू सभा के दो उद्देश्य है: "(१) हिन्दू समाज के सब वर्गों में अधिक से अधिक एकता और संहति बढाना और उन्हें एक सूत्र में संगठित करना, तथा (२) हिन्दुओ और भारत के दूसरे सम्प्रदायो में सद्भावनाओ को प्रोत्साहित करना, और संयुक्त स्वशासित भारतीय राष्ट्र की उपलब्धि के निमित्त उनके साथ मैत्रीपूर्वक ढंग से व्यवहार करना,"[2] उन्होंने अपने इस अभिभाषण में दक्षिण के हिन्दुओ से ब्राह्मण-अब्राह्मण के विवाद को खत्म कर मेल के साथ राष्ट्रोत्थान के लिए काम करने का अनुरोध किया। उन्होंने अन्त्यजोद्धार के लिए सतत प्रयत्न करने की आवश्यकता की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए तथाकथित अस्पृश्यो के लिए देव-दर्शन की सुविधाएँ उपलब्ध कराने पर विशेष जोर दिया। उन्होंने कहा, "केवल यह बात कि कोई मनुष्य अस्पृश्य है, उसे मन्दिर मे प्रवेश करने और देवदर्शन से वंचित नही करता। यदि उसका हृदय शुद्ध है, तो ईश्वर उसकी प्रार्थना सुनता है, और मन्दिर में उसे देवाराधन करने देना चाहिए। जो व्यक्ति नैतिक रूप मे शुद्ध है, वह व्यक्ति ईश्वर को उस व्यक्ति से अधिक प्यारा है जो केवल शरीर से शुद्ध है।"[3] उन्होंने अपने इस भाषण मे विभिन्न सम्प्रदाओ में पारस्परिक सौहार्द की वृद्धि पर, तथा स्वतन्त्रता के लिए सतत प्रयत्न करने पर भी जोर दिया।[4]

---

१. वही, पृ० १७९-१८०।

२. इंडियन क्वाटरली रजिस्टर, जुलाई-दिसम्बर, १९२७, पृ० ३५३।

३. वही। ४. वही।

अप्रैल सन् १९२८ मे महासभा ने अपने जबलपुर अधिवेशन में पिछले वर्ष के निर्वाचन सम्बन्धी प्रस्ताव की सब बातो की इस नयी शर्त के साथ पुष्टि की कि किसी प्रान्त में बहुसंख्यको के लिए विधान-मंडलो मे स्थानो का संरक्षण नही होगा। महासभा ने यह भी स्पष्ट किया कि सरकारी नौकरियो में कोई साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व नहीं होगा, और वे सम्प्रदायो के लिए योग्यता और क्षमता के आधार पर, जिनका निर्णय खुली प्रतियोगिता परीक्षण द्वारा होगा, खुली रहेंगी। सीमा प्रान्त के सम्वन्व मे अपने गत वर्ष के निर्णय मे हेर-फेर करते हुए उसने माँग की कि बलूचिस्तान और सीमा प्रान्त में सामान्य प्रशासनिक और न्यायिक व्यवस्था शीघ्र से शीघ्र स्थापित की जाय ताकि उन्हे भारत के भावी संवैधानिक सुधारो से वचित रखने का कोई कारण न रहे।[1]

पर सिन्ध के सम्बन्ध में महासभा की धारणा पहले जैसी वनी रही। मालवीयजी ने महासभा के दूसरे नेताओ और प्रतिनिधियो को समझाया कि सर्वदलीय कान्फरेंस की नेहरू कमेटी ने सिन्ध की समस्या पर विचार करने के लिए एक उपसमिति नियुक्त की है, उसे विचार करने दीजिये। पर मालवीयजी के सुझाव की उपेक्षा करते हुए महासभा ने भारी बहुमत से निश्चय किया कि उसकी राय में किसी विशेष सम्प्रदाय की जनसंख्या को ध्यान मे रखकर किसी प्रान्त का विभाजन या किसी नये प्रान्त का निर्माण ठीक नही कहा जा सकता।

मालवीयजी के नेतृत्व की उपेक्षा

इसके वाद मालवीयजी ने हिन्दू महासभा के काम से बहुत हद तक अपना हाथ खीच लिया। यद्यपि वे हिन्दू महासभा के उपाध्यक्ष वने रहे, परन्तु उसकी नीति-रीति के निर्धारण मे उनका सक्रिय योगदान बन्द हो गया। वास्तव मे हिन्दू महासभा की गतिविधि और मालवीयजी के दृष्टिकोण में इतना अन्तर हो गया था कि उनके लिए उसका नेतृत्व करना संभव नही था। राय बहादुर लाला लालचन्द की तरह डाक्टर मुजे और भाई परमानन्द भी काग्रेस की नीति-रीति को ही हिन्दुओ की अधोगति का मूल कारण समझने लगे थे। ये दोनो नेता सोचने लगे थे कि हिन्दू-मुस्लिम एकता को स्वराज्य का मूलाधार वता कर काग्रेस ने हिन्दुओ के मनोवल को कम किया है, और साइमन कमीशन का वहिष्कार हिन्दुओ की भारी गलती थी। इन धारणाओ पर आधारित नीति-रीति मालवीयजी को मजूर नही थी। उनके लिए हिन्दू सभा के साथ काम करना असंभव हो गया। जव कि वे अन्त तक साइमत कमीशन का बाइकाट

१. इन्द्र प्रकाश' वही, पृ० १८१-१८२।

करते रहे, राजा नरेन्द्र नाथ ने पजाव विधान कौंसिल के सदस्य की हैसियत से कमीशन से सहयोग किया, और पजाव हिन्दू सभा की ओर से उसे निवेदनपत्र प्रस्तुत किया गया। इसी तरह जव कि सन् १९३० में मालवीयजी गोलमेज कान्फरेंस में शरीक होने को तैयार नही हुए, डाक्टर मुंजे ने हिन्दू महासभा के प्रतिनिधि की हैसियत से उसमें भाग लिया। इसी तरह जवकि मालवीयजी यह नही चाहते थे कि हिन्दू सभा चुनाओ मे भाग ले, हिन्दू महासभा ने सन् १९२९ में अपनी कार्यसमिति को चुनावा के सम्बन्ध मे उचित कार्यवाही करने का अधिकार दे दिया।

भाई परमानन्द की समीक्षा

वहुत से पर्यवेक्षको के विचार में सन् १९२३ और सन् १९२७ के वोच मे हिन्दू संघटन आन्दोलन ने जो प्रतिष्ठा प्राप्त की, उसका श्रेय मालवीयजी, स्वामी श्रद्धानन्द और लाला लाजपत राय की क्षमता और नेतृत्व को था। पर भाई परमानन्द इससे सहमत नही थे। उनके विचार मे "हिन्दू सघटन पूरे राष्ट्र से स्वत प्रसूत उपज की तरह उठा, और किसी व्यक्तित्व से उसका वहुत कम सम्वन्ध है। सघटन, शुद्धि और अछूतोद्धार से वने हुए हिन्दू सहति के स्पष्ट कार्यक्रम के साथ देश के सव प्रमुख नगरो मे हिन्दू सभाएँ शुरू की गयी। ऐसा दिखाई देता है कि मुस्लिम समाज के विरुद्ध क्रोध की लहर के परिणाम से हिन्दू जनता ने हिन्दू सघटन आन्दोलन को अपनाया। इस लहर ने कुछ वर्षो मे अपनी शक्ति खो दी। स्वामी श्रद्धानन्द ही ईमानदारी के साथ आन्दोलन की भावना से चिपके रहे, और उन्होने उसे अपनी प्राणशक्ति से पुष्ट किया। उनके वलिदान ने जिसे जनता को नये उत्साह में भर देना चाहिए था, हिन्दू आन्दोलन के नेताओ पर उलटा प्रभाव डाला। उत्साह ठढा पड गया, और हिन्दू आन्दोलन को फिर रोगस्थिति भोगनी पडी। साधारण जनता सघर्षप्रिय है, और सदा उस क्षेत्र में काम करना चाहती है जहाँ वह अपने रोष को अभिव्यक्त कर सके। हिन्दू सघटन का रचनात्मक कार्यक्रम उसके मनोभावो को अपील नही कर सका।"[1]

आलोचना

जनता की कठिनाइयाँ, आवश्यकताए, आकाक्षाएं और मनोवृत्तियाँ ही जनान्दोलन का आधार होती है। जनान्दोलन तभी जोर पकडता है जव जनता किन्ही कारणो से स्थिति से तग आकर उसमे आधारभूत परिवर्तन के लिए त्याग और वलिदान करने को तैयार हो जाती है, अपने पुराने आचार-विचारो का

१ इन्द्रप्रकाश वही, भाई परमानन्द का फोरवर्ड, पृ० xviii-xix।

उत्सर्ग भी ठीक समझने लगती है। हरेक जनान्दोलन का अपना नेता होता है। वही व्यक्ति किसी आन्दोलन का नेता बन सकता है जिसकी क्षमता पर जनता को विश्वास हो, जो जनता को उसकी राय में उसकी कठिनाइयो के निवारण का, तथा नयी स्थिति का मार्ग-दर्शन करा सके। नेता को भी अपने नेतृत्व की दिशा समय के साथ बदलनी होती है। जो व्यक्ति कालानुकूल आन्दोलन की दिशा में आवश्यक परिवर्तन करने की क्षमता नही रखता, वह उसका सही नेतृत्व नही कर सकता, और उसके नेतृत्व में आन्दोलन दीर्घकालीन नही हो सकता। संघर्ष आन्दोलन का लक्षण है, पर रचना उसका गुण और लक्ष्य है, तथा जनशक्ति की रक्षा और वृद्धि उसका कर्तव्य है। विभिन्न आवश्यकताओ को पूर्ति के लिए जनता को एक ही समय में बहुत से आन्दोलनो मे भाग लेना होता है, उनमें यथासभव सामजस्य स्थापित करना होता है। कभी-कभी एक ही नेता का सम्बन्ध कई आन्दोलनो से होता है। व्यक्तिगत कारण से भी सामंजस्य स्थापित करना उसके लिए अनिवार्य होता है। पर यदि किसी नेता का सम्बन्ध केवल एक आन्दोलन से हो, तो भी उसे समाजहित की दृष्टि से सामंजस्य की आवश्यकता स्वीकार करना होती है।

हिन्दू महासभा के आन्दोलन पर भी ये सब बाते लागू थी। सन् १९२३ में उत्तर भारत के हिन्दुओ का मुसलमानो के प्रति रोष और हिन्दू संघटन की ओर झुकाव उनकी कठिनाइयो, आवश्यकताओ, और मानसिक प्रतिक्रियाओं पर आश्रित थे। मालवीयजी, श्रद्धानन्दजी और लाजपतरायजी ने उन्हें पैदा नही किया, केवल उनका नेतृत्व किया। उनके अपने नेतृत्व का रूप भी बहुत कुछ परिस्थितियो की चुनौतियो का प्रत्युत्तर था।

स्वामी श्रद्धानन्द हिन्दू समाज के पुराने सेवक थे। उन्होने रचनात्मक ढग से समाज की बड़ी सेवा की थी, उसके सास्कृतिक उत्थान में महत्त्वपूर्ण योगदान किया था। पर उनके बहुत से सामाजिक और सास्कृतिक विचार सामाजिक पूर्वाग्रहो में फंसी हिन्दू जनता को पसन्द नही थे। इसलिए उन जैसे समाज-सेवी को भी बृहद् हिन्दू जाति कम से कम सन् १९१८ तक अपना सर्वसम्मत नेता स्वीकार करने को तैयार नही हुई। सन् १९१९ की घटनाओ ने उनके नेतृत्व को विकसित किया, उसे राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया, पर उसने बृहद् हिन्दू जाति के नेतृत्व का रूप तभी धारण किया जब परिस्थितियो से बाध्य हो बहुत से परम्परावादी हिन्दू शुद्धि और अछूतोद्धार के सम्बन्ध में श्रद्धानन्दजी के विचारो को सुनने और किसी हद तक मानने को तैयार हुए। उनके नेतृत्व में रचना और

संघर्ष का समन्वय था। उन्होने हिन्दुओ को मुसलमानो की चुनौतियो का साहस से मुकाबला करने का पाठ पढाया, और समझौता कान्फरेंसो में स्वय निर्भीकता-पूर्वक हिन्दू हितो की पुष्टि की, पर उसके साथ ही वे समाज के पुनर्निर्माण में संलग्न रहे। शुद्धि और अन्त्यजोद्धार दोनो ही उनके मूल मन्त्र थे। पर सम्भवत. शुद्धि से भी कही अधिक अन्त्यजोद्धार पर उनका आग्रह था, और उनके निर्माण-कार्य का क्षेत्र बहुत व्यापक था। राष्ट्रीय गौरव की रक्षा उनके नेतृत्व का महत्त्वपूर्ण अंग था। उन्होने हिन्दू महासभा का नेतृत्व करते हुए सरकार के कर्मचारियो की कभी खुशामद नही की, उनके सामने अपना और हिन्दू जाति का सिर झुकाने की बात नही सोची। वे हिन्दू जाति के बल पर परिस्थितियो का मुकाबला करना चाहते थे।

यही बातें लाला लाजपत राय के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। हिन्दू जाति के पुनरुत्थान मे स्वामी श्रद्धानन्द के समान ही उनकी पुरानी अभिरुचि थी। हिन्दू नवयुवको की शिक्षा, हिन्दू संस्कृति का पुनरुज्जीवन, हिन्दू समाज का सुधार, दलितोद्धार उनके प्रारम्भिक सार्वजनिक जीवन के मुख्य धधे थे। उन्होने सन् १९०९ में लिखा था . "नैतिकता की माग है कि किसी दूसरे विचार की अपेक्षा बिना न्याय और मानवता की शुद्ध भावना से हमें पतित वर्गो के उद्धार का काम शुरू कर देना चहिए — हिन्दुओ का साम्प्रदायिक हित भी इसी में है— हिन्दुत्व का घेरा इन वर्गो के बिना जीवित रह सकता है, पर नि शक्त ढाचे की तरह।"[1] वे हिन्दुत्व की पुष्टि के साथ-साथ देशहित की वृद्धि के लिए काम करना भी जरूरी समझते थे। उन्होने सन् १९०७ में लिखा था : "हमारे लिए उत्कृष्टरूप में अपेक्षित है कि प्रत्येक हिन्दुस्तानी पर्याप्त मात्रा में इतना देशभक्त और कर्तव्य-परायण हो कि वह इस विचार पर विश्वास और कार्य कर सके कि देश का हित सर्वोपरि है और सब व्यक्तिगत हितो को अभिभूत करता है।"[2] उनका सारा जीवन देश-हित की भावना से अनुप्राणित था, देश की स्वतंत्रता उनके जीवन का परम लक्ष्य था। किसी अखिल भारतीय हिन्दू मच का नेतृत्व ग्रहण करने से पहले ही उन्होने काग्रेस के राष्ट्रीय मंच पर नेता का गौरव प्राप्त कर लिया था। उनका आर्थिक चिन्तन और उनकी सामाजिक सहानुभूति समाजवाद के रूप में रग गये थे। हिन्दू हितो की रक्षा, दलित वर्गो का उत्थान, स्वतन्त्रता के लिए सघर्ष उनके नेतृत्व के मूल मन्त्र थे। वे हिन्दू महासभा को हिन्दू हितो की रक्षा

---

१ वी० सी० जोशी (सम्पादक) स्पीचेज एड राइटिंग्स आफ लाजपत राय, जि० १, पृ० १६७-१६८। २, वही, पृ० ५८।

का, और काग्रेस को स्वतत्रता सघर्ष का मंच स्वीकार करते थे, तथा दलितो के उत्थान के लिए दोनो मंचो का प्रयोग करना चाहते थे। वे हिन्दू-मुस्लिम एकता की आवश्यकता स्वीकार करते थे। पर उसके नाम पर हिन्दू हितो को न्यौछावर करने को तैयार नही थे। इसी तरह वे हिन्दू हितो की रक्षा के लिए सतत प्रयत्न आवश्यक समझते थे, पर उसके नाम पर स्वतत्रता की माग की उपेक्षा अनुचित मानते थे। वे स्वराज्य की कीमत पर अंग्रेजो से समझौता करके हिन्दू हितो की रक्षा की सम्भावना पर विचार करने को भी तैयार नही थे। उनकी दृढ धारणा थी कि स्वतत्र भारत में ही हिन्दुओ के गौरव और हितो की रक्षा और वृद्धि सम्भव है। किसी परतत्र जाति के लिए ब्रिटिश साम्राज्यशाही से न्याय की आशा निरर्थक है, और स्वतंत्रता की कीमत पर कभी किसी से कोई सौदा नही किया जा सकता। इसीलिए यद्यपि सन् १९२६ में उन्होंने काग्रेस की अडगा नीति का विरोध किया, और हिन्दुओं से अनुरोध किया कि वोट देते समय स्वराज्य के साथ-साथ हिन्दू हितो की रक्षा का भी ध्यान रखें, पर सन् १९२७ में काग्रेस पार्टी के नेताओ से कही अधिक सरकार की दमन नीति, मुद्रा नीति, तथा रिजर्व बैक की योजना का विरोध किया, और सन् १९२८ में साइमन कमीशन का बहिष्कार किया, नेहरू कमेटी द्वारा प्रस्तावित राजनीतिक व्यवस्था का समर्थन किया, तथा साइमन कमीशन के बहिष्कार में आयोजित जुलूस का नेतृत्व किया। जनता की प्रतिक्रियाओ से यह स्पष्ट है कि वे इन सब अवसरो पर हिन्दू जनता के मनोभावो का प्रतिनिधित्व करते थे।

मालवीयजी के वैयक्तिक और सार्वजनिक जीवन के विकास की प्रक्रिया कुछ भिन्न थी। सनातन-धर्म की परम्पराओ से पोषित जीवन में समाज-सुधार की भावना बहुत धीरे-धीरे काफी रुकावट के साथ विकसित हुई। पर सन् १९२२-२३ की स्थिति में उसने शुद्धि और अन्त्यजोद्धार के दृढ समर्थक का रूप धारण कर लिया। इसी तरह हिन्दू जाति के पुनरुत्थान की अभिलाषा ने, जो अब तक सास्कृतिक पुनर्जीवन के प्रयासो में अभिव्यक्त होती रही थी, हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य की भयंकर स्थिति में मालवीयजी को हिन्दू सघटन का समर्थक बना दिया। पर लाला लाजपतराय की तरह वे भी यह समझते रहे कि स्वतन्त्रता में ही भारतीय राष्ट्र और हिन्दू जाति का स्थायी हित निहित है, और स्वराज्य की कीमत पर ब्रिटिश साम्राज्यशाही से सौदेबाजी जघन्य पाप है, जनता के साथ घोर विश्वासघात है। उनका दृढ विश्वास था कि हिन्दू जनता स्वराज्य चाहती है, उसे अपना परम हित समझती है, और वह किसी व्यक्ति को चाहे वह कितना

ही बडा क्यो न हो अपना सच्चा नेता मानने को तैयार नही है जिसकी नीति-रीति या क्रिया-कलाप स्वतन्त्रता की ओर बढने में किसी प्रकार बाधक हो। मालवीयजी कांग्रेस को स्वतन्त्रता सघर्ष का मुख्य मच स्वीकार करते थे, और उसे इस रूप मे सुदृढ और सबल बनाना सब देशभक्तो का कर्तव्य समझते थे। उनकी दृष्टि में कांग्रेस की गलत नीतिरीतियो और क्रिया कलापो की खुली आलोचना हो सकती थी, और तगडा विरोध किया जा सकता था, पर उसके पीठ पीछे या उसके विरोध में साम्राज्यशाही से समझौता, उनकी दृष्टि मे, एक ऐसा अपराध था जिसे जनता कभी सहन नही कर सकती।

स्वामी श्रद्धानन्द और लाला लाजपत राय के निधन के बाद जिन व्यक्तियो ने हिन्दू महासभा को नया नेतृत्व प्रदान करने का प्रयत्न किया वे पुराने समाजसेवी और अनुभवी राजनीतिज्ञ थे। उन्होने देश की स्वतत्रता के निमित्त विभिन्न अवसरो पर काफी कष्ट सहे थे। हिन्दू महासभा के आन्दोलन की प्रगति में भी उनका महत्त्वपूर्ण योगदान था। उनके विचार हिन्दू महासभा के बहुत से कर्मठ कार्यकर्ताओ के विचारो और भावनाओ से मिलते-जुलते थे। उन्हें उनका विश्वास भी प्राप्त था, और अपनी नीतिरीति को हिन्दू जनता के सामने प्रस्तुत कर उसे अपनाने की अपील करने का उन्हें लोकतान्त्रिक अधिकार था। वे हिन्दू महासभा के निर्णय पर अपने विचारो और भावनाओ की छाप लगा सके, पर हिन्दू जनता को अपनी ओर आकृष्ट नही कर सके। इसका मूल कारण हिन्दू महासभा के पुराने नेताओं का विश्वासघात नही, बल्कि हिन्दू जनता की अपनी भावनाएं थी।

नये नेताओ को शिकायत थी कि पुराने नेताओ के अनुरोध पर साइमन कमीशन का बहिष्कार भारी गलती थी। उनके इस विचार की पुष्टि भारतमत्री लार्ड बर्केनहेड की इस युक्ति से होती है कि यदि हिन्दू कमीशन का बहिष्कार करेंगे, तो उसके निर्णय मुसलमानो के पक्ष में होगे। पर ये नेता भूल जाते है कि कमीशन के बहिष्कार का मूल कारण सचेत और प्रबुद्ध हिंदू जनता का रोष था, जिसे कांग्रेस के नेताओ और कार्यकर्ताओ के अतिरिक्त उन उदारदलीय नेताओ ने भी अनुभव किया जो असहयोग और सविनय-अवज्ञा के विरोधी और सहयोग की नीति के समर्थक थे। यदि इस देशव्यापी रोष की स्थिति में हिन्दू महासभा साइमन कमीशन से सहयोग करने की बात पुष्ट करती, तो वह जनता की भावनाओ को अपने पक्ष में मोड नही सकती थी। वह अपने को उससे बिल्कुल अलग कर लेती। सन् १९२९ मे तो पजाब हिन्दू महासभा के नेता राजा

नरेन्द्रनाथ ने विधान सभा के सदस्य की हैसियत से, और पडित नानक चन्द ने पजाब हिन्दू सभा के प्रतिनिधि की हैसियत से साइमन कमीशन के साथ सहयोग किया, पर वे न तो साइमन कमीशन के निर्णयो पर कोई प्रभाव डाल सके, और न हिन्दू जनता के मनोभावो को सहयोग की ओर मोड सके। सन् १९३० मे बहुत से उदारदलीय नेताओ के साथ डाक्टर बी० एस० मुजे, राजा नरेन्द्र नाथ आदि हिन्दू नेताओ ने भी गोलमेज कान्फरेंस में भाग लिया, पर वे जनता के मन पर प्रभाव नही डाल सके। नमक सत्याग्रह में हिन्दू युवको ने, हिन्दू महासभा के बहुत से नेताओ और कार्यकर्ताओ ने भी, डटकर भाग लिया, और सिद्ध कर दिया कि उनमें रोष, उत्साह और साहस की कमी नही। सन् १९३४ मे ब्रिटिश पार्लियामेंट ने जो व्यवस्था पास की, उसने भी सिद्ध कर दिया कि ब्रिटेन के कजरवेटिव दल ने उन हिन्दू नेताओ के विचारो और भावनाओ की उपेक्षा करते हुए, जिन्होने गोलमेज कान्फरेंस मे सहयोग की इच्छा से विचार-विमर्श में भाग लिया, विघटनकारी स्वतन्त्रता विरोधी शक्तियो को पुष्ट करना ही उचित समझा।

भाई परमानन्दजी का यह कहना ठीक है कि जिस क्षोभ ने सन् १९२३ में हिन्दू महासभा के आन्दोलन को गति प्रदान की, वह चार पाँच वर्ष मे ठडा पड गया। पर वे यह भूल गये कि पुराना क्षोभ ठडा पड जाने पर आन्दोलन की गतिविधि को बदलना अनिवार्य हो जाता है। यह ठीक है कि जनता सघर्षप्रिय होती है। पर युद्ध और दगो के रूप में सघर्ष भावना की अभिव्यक्ति प्रगतिघातक असह्य सकट उपस्थित करती है, और सुख की स्वाभाविक इच्छा किसी मनुष्य या समूह को सदा लडाई पर डटे नही रहने देती। दुर्भावनाओ और हानिकर प्रथाओ से सघर्ष ही सघर्ष शक्ति की अभिव्यक्ति का लाभकर उपयोग है। उस समय जबकि ब्रिटिश साम्राज्यशाही अपने कुचक्रो द्वारा हरिजनो को हिन्दू जाति से कम से कम राजनीतिक क्षेत्र मे बिलकुल अलग कर देना चाहती थी, हरिजनोद्धार का काम रचनात्मक भी था, संघर्षात्मक भी था। साम्राज्यशाही के कुचक्रो को नष्ट करने के लिए रचनात्मक ढंग से हिन्दू जाति की सहज सघर्ष भावना का उपयोग किया जा सकता था। भाई परमानन्द जैसे साहसी, त्यागी और कर्तव्यपरायण समाजसुधारक से तो हिन्दू जनता की आत्मरक्षा और सघर्ष का सहज भावनाओ को अन्त्यजोद्धार की ओर निर्दिष्ट करने की आशा की जा सकती थी। यदि रचनात्मक कार्य जैसे फीके कार्य में जनता की भावनाओ को अतर्ग्रस्त करना कठिन था, तो हिन्दू हितो के सम्बन्ध में प्रस्ताव, तथा उनके

सम्बन्ध में सरकार से गुप्त या प्रकट वार्ता किस तरह जनता को आन्दोलित कर सकती थी।

हिन्दू जाति का सजग वर्ग परतन्त्रता को ही हिन्दू जाति के सब कष्टो का मूल कारण समझने लगा था, और वह अपनी सारी शक्ति उसे उखाड फेंकने में ही लगा देना चाहता था। उसकी मनोवृत्ति को नया मोड देना असम्भव ही था, यदि यह सम्भव भी होता तो हितकर भी होता, यह कहना कठिन है।

जो भी हो, सन् १९२७ और सन् १९३७ के युग में मालवीयजी द्वारा सरकार की साम्राज्यशाही नीतियो और योजनाओ का विरोध, साइमन कमीशन का बाइकाट, सविनय-अवज्ञा आन्दोलनो मे योगदान, दूसरी गोलमेज कान्फरेंस में राष्ट्रीय मांगो का समर्थन, अन्त्यजोद्धार के लिए परम्परावादियो से संघर्ष, तथा प्रधानमन्त्री रेमसे मेकडानेल्ड के साम्प्रदायिक निर्णय के प्रश्न पर सरकार और काग्रेस दोनो से संघर्ष अवश्य हिन्दू जनता की संघर्ष भावना का प्रतिनिधित्व करते थे, जबकि नेहरू कमेटी की रिपोर्ट का समर्थन, तथा हिन्दू महासभा के अध्यक्ष श्री चक्रवर्ती विजयराघवाचार्य की अध्यक्षता मे आयोजित एकता सम्मेलन में हिन्दू-मुस्लिम समस्या को सुलझाने का भागीरथ प्रयत्न हिन्दू जनता की शान्ति-प्रिय मनोवृत्ति का प्रतीक था।

भी निश्चय हुआ कि मौलवियो और पण्डितो की ओर से घोषणा की जाय कि जान-माल तथा इबादतगाह (पूजा के स्थानो) पर हमला करना गुनाह है, पाप है।

कांग्रेस ने अपने अधिवेशन के अन्तिम दिन अर्थात् १९ सितम्बर को उपरोक्त कमेटी के निर्णय के अनुसार (१) जनाब अब्बास तैयबजी (२) जनाब टी० के० शेरवानी, (३) बाबू भगवान दास, (४) बाबू पुरुषोत्तम दास टण्डन, (५) मास्टर सुन्दर सिंह, (६) श्री जार्ज जोसेफ और (७) श्री बी० एच० भरूचा की एक जाच कमेटी नियुक्त की। उसे आदेश दिया गया कि जहा कही दगे हो, वहा जा कर वह उसकी जांच करे, तथा दगे बन्द करने का उपाय बताये। नेशनल पैक्ट की तैयारी के लिए डाक्टर एम० ए० अन्सारी और लाला लाजपतराय की कमेटी गठित की गयी। तीसरे प्रस्ताव द्वारा समाचारपत्रो पर कड़ा सार्वजनिक नियत्रण रखने की व्यवस्था की गयी। चौथे प्रस्ताव द्वारा निश्चय हुआ कि जिलो मे शान्ति और सुरक्षा बनाये रखने के लिए खिलाफत कमेटी, हिन्दू सभा तथा अन्य प्रमुख स्थानीय सस्थाओ की सलाह से जिला कांग्रेस कमेटियो के निरीक्षण मे जिला कमेटिया गठित की जाये। ये कमेटियाँ शान्ति-भग होने पर उसके दुष्परिणामो को कम करने का, तथा शान्ति प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न करें, और जनता को प्रोत्साहित करे कि ये प्रतीकारात्मक कार्यवाही के बजाय समझौते के जरिये विवाद का समाधान करे।

इन चार प्रस्तावो मे से तीन प्रस्तावो पर ठीक से काम नही हो सका। जाच कमेटी दंगो के कारणो की जाँच करने मे विफल रही, समाचार पत्र अतिरजित ढंग से दगो के समाचार छापते रहे, तथा अशान्त क्षेत्रो में शान्ति प्रतिष्ठित करने के निमित्त जिला कमेटिया भी ठीक तौर से गठित नही हो सकी। दगे होते ही रहे। पर मौलाना आजाद की सलाह और सहयोग से डाक्टर अन्सारी और लाला लाजपतराय ने नेशनल पैक्ट की रूपरेखा अवश्य तैयार कर ली।

नेशनल पैक्ट

इस नेशनल पैक्ट में पूर्ण स्वराज्य की माग फिर से पुष्ट की गयी, और स्वराज्य मिलने पर संघीय लोकतान्त्रिक सरकार प्रतिष्ठित करना निश्चित किया गया। पैक्ट में स्पष्ट किया गया कि देवनागरी और उर्दू लिपि मे हिन्दुस्तानी ही राष्ट्र-भाषा होगी, सबको पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त होगी, पर साम्प्रदायिक संस्थाओ पर सरकारी धन खर्च नही होगा। यह भी निश्चय किया गया कि सरकारी नौकरियो में, तथा शैक्षिक संस्थाओ मे सम्प्रदाय, रंग या जाति का कोई

भेद नही होगा, सयुक्त निर्वाचन-पद्धति स्थापित की जायगी, तथा विभिन्न सम्प्रदायो के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात से स्थान सुरक्षित किये जायेंगे। मुसलमान गोहत्या बन्द कर दे, और हिन्दू मस्जिदो के सामने बाजा बजाना बन्द कर दें।

बङ्गाल पैक्ट

इस नेशनल पैक्ट की उपेक्षा करते हुए इसके प्रकाशित होने के पहले ही देशबन्धु चित्तरजन दास ने बगाल के कतिपय मुसलमान नेताओ से मिलकर बगाल पैक्ट सूत्रवद्ध करके प्रकाशित कर दिया। इस पैक्ट द्वारा निर्धारित किया गया कि बगाल में (१) विधान कौंसिल मे पृथक् निर्वाचन के साथ जनसख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व होगा, (२) हर जिले में स्थानीय निकायो मे बहुसंख्यक सम्प्रदाय का साठ प्रतिशत, और अल्पसंख्यक सम्प्रदाय का चालीस प्रतिशत प्रतिनिधित्व होगा, (३) मुसलमानो के लिए सरकारी नौकरियो मे ५५ प्रतिशत स्थान सुरक्षित होगे, (४) मस्जिदो के सामने बाजा बजाने की आज्ञा नही होगी, (५) धार्मिक कुर्बानी के लिए गोहत्या पर कोई रुकावट नही होगी, पर गौ की हत्या इस प्रकार की जायेगी कि उससे हिन्दुओ की धार्मिक भावनाओ को चोट न पहुँचे, (६) धर्म से सम्बन्धित कोई भी कानून सम्प्रदाय विशेष के पिचहत्तर प्रतिशत सदस्यो की स्वीकृति बिना पास नही किया जायगा, (७) साम्प्रदायिक झगडो के निपटारे के लिए प्रत्येक तहसील में हिन्दुओ और मुसलमानो की सम्मिलित कमेटियाँ बनायी जायेंगी।

मालवीयजी ने बगाल पैक्ट का विरोध करते हुए कहा कि यद्यपि पैक्ट का सबध केवल बगाल से है, फिर भी इसका प्रभाव बगाल तक सीमित नही रह सकता। ऐसी दशा में प्रान्तीय स्तर पर प्रान्तीय काग्रेस कमेटी द्वारा राष्ट्रव्यापी प्रश्न पर कोई समझौता करना अनुचित था। उन्हें सन्देह था कि इस पैक्ट के बाद लाजपत राय अन्सारी नेशनल पैक्ट पर ठीक तौर से विचार नही हो सकेगा। लाला लाजपत राय भी बहुत क्षुब्ध थे।

दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में कोकनाडा में काग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी ने इन दोनो पैक्टो पर विचार किया। पडित मोतीलाल ने प्रस्ताव किया कि दोनो पैक्ट विचारार्थ डाक्टर अन्सारी और लाला लाजपत राय की कमेटी को भेज दिये जायें। बहुत से सदस्यो ने बंगाल पैक्ट की कडी आलोचना की, उसे रद्द करने की माग की, इसके लिए सशोधन प्रस्तुत किया। इस पर कुछ मुसलमानो ने काग्रेस छोडने की धमकी

दी। बहुमत से पंडित मोतीलाल नेहरू का प्रस्ताव स्वीकार हो गया। किसी कारण से इस अधिवेशन के लिए मालवीयजी कोकनाडा नही गये। पर उन्होंने तार द्वारा बंगाल पैक्ट के विरुद्ध अपनी समीक्षा अध्यक्ष को भेज दी। मई सन् १९२४ में बंगाल प्रान्तीय कान्फरेंस ने अपने सिराजगंज अधिवेशन मे बंगाल पैक्ट को भारी बहुमत से मजूर कर लिया।

यद्यपि नेशनल पैक्ट की तैयारी मे मौलाना आजाद का भी भरपूर सहयोग था, पर उनका झुकाव बंगाल पैक्ट की ओर था। उन्हें इस बात की खुशी थी कि गाधीजी की तरह देशबन्धु दास ने भी सकीर्ण साम्प्रदायिकता से ऊपर उठकर बंगाल के मुसलमानो की मॉगो को पाँच मिनट मे स्वीकार कर उन्हे बंगाल पैक्ट का स्वरूप दे दिया। उन्होने अपनी पुस्तक 'इंडिया विन्स फीडम' में लिखा है कि देशबन्धु दास चाहते थे कि जब तक बगाल और कलकत्ता कारपोरेशन की नौकरियो में मुसलमानो की सख्या जनसंख्या के अनुपात के बराबर नही हो जाती, तब तक बगाल सरकार द्वारा ६० प्रतिशत और कलकत्ता कारपोरेशन द्वारा ८० प्रतिशत नयी नियुक्तियो पर मुसलमान भरती किये जाये। आजाद साहब को दुःख था कि चित्तरजनदासजी की असामयिक मृत्यु के बाद उनकी घोषणा उनके कतिपय अनुयायियो ने अस्वीकार कर दी। नतीजा यह था कि "बंगाल के मुसलमान काग्रेस से दूर हो गये, और विभाजन के पहले बीज बो दिये गये।"[1]

गाधीजी का वक्तव्य

सख्त बीमारी के कारण फरवरी सन् १९२४ में गाधीजी छोड दिये गये। साम्प्रदायिक समस्या का पूरे तौर पर अध्ययन करने के बाद उन्होने मई सन् १९२४ मे हिन्दू-मुस्लिम समस्या पर एक विस्तृत वक्तव्य प्रकाशित किया। अहिंसात्मक उपायो के महत्त्व की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए उन्होंने लिखा कि समस्या को सुलझाने का सबसे उत्तम उपाय यही है कि तलवार के बजाय पंचायत से काम लिया जाय। लोगो को अपने मन से यह भ्रान्त धारणा निकाल देनी चाहिए कि अहिंसा कायरो का अस्त्र है। उन्हे यह समझना चाहिए कि कायरता की दवा बलप्रदर्शन नही, बल्कि सकट का सामना करना है। हिन्दुओ को मुसलमानो के आतक से नही डरना चाहिए, और मुसलमानों को समझना चाहिए कि अपने हिन्दू भाइयो को सताना उनकी मर्यादा के विरुद्ध है। हिन्दुओ को यह कभी नही सोचना चाहिए कि वे बलपूर्वक गोहत्या बन्द करवा सकते

---

१ आजाद . इंडिया विन्स फ्रीडम, पृ० ९-१२।

हैं, और मुसलमानो को भी यह समझना चाहिए कि वे बलपूर्वक मस्जिदो के सामने बाजा और आरती को नही रोक सकते। हिन्दुओ को उचित है कि वे मुसलमानो और अल्पसंख्यक समुदायो पर हो छोड दें कि वे किस तरह का प्रतिनिधित्व चाहते है, और इस सम्बन्ध मे उनका जो निर्णय हो उसे उदारतापूर्वक मान लें। राष्ट्रीय शासन मे नौकरियो का आधार योग्यता ही होना चाहिए, और उसकी जाँच के लिए भिन्नभिन्न सम्प्रदायो के प्रतिनिधियो को एक कमेटी होनी चाहिए। शुद्धि और तबलीग का काम ईमानदारी के साथ जँचे हुए व्यक्तियो द्वारा किया जाना चाहिए। गाली गलौज तथा उत्तेजना फैलाने वाले लेखो को रोकने के लिए जनमत तैयार किया जाना चाहिए, और नेताओ में जो अविश्वास बढ रहा है उसे दूर कर परस्पर विश्वास पैदा करना चाहिए। हिन्दुओ को कायरता त्याग कर विश्वास करना सीखना चाहिए, क्योकि विश्वास से ही विश्वास का उदय होता है।

मालवीयजी की धारणा

मालवीयजी के लिए गाधीजी के वक्तव्य की सब बातें स्वीकार करना सम्भव नही था। मिसाल के तौर पर जबकि गाधीजी चाहते थे कि आततायियो का सामना साहस के साथ पर अहिंसात्मक ढग से किया जाय, मालवीयजी आत्मरक्षा के निमित्त बल का प्रयोग न्यायोचित और अनिवार्य मानते थे। पर गाधीजी की तरह मालवीयजी भी हिन्दू-मुस्लिम एकता देशोद्धार के लिए आवश्यक समझते थे। मालवीयजी चाहते थे कि "हमारे सब सम्बन्ध देश-प्रेम की नीव पर स्थापित हो।"[1] उन्होने जून सन् १९२३ में कहा था कि 'अगर कोई हिन्दू किसी मुसलमान को मुसलमान होने के कारण हानि पहुचाये और कोई मुसलमान किसी हिन्दू को हिन्दू होने के कारण दुःख दे, तो हमारी गणना ससार की सभ्य जातियो में कभी नही हो सकती हमें एक दूसरे को भाई समझना चाहिए। हिन्दू मन्दिर मे जायें, मुसलमान मस्जिद में, और ईसाई गिरजा में। लेकिन देश के हित में हम सब को एक हो जाना चाहिए।"[2] वे चाहते थे कि सब हिन्दू और मुसलमान शपथ लें कि "हम धर्म और मत के कारण किसी भाई के साथ ज्यादती नही करेंगे, और तमाम बहनो, बेटियो और माताओ को सम्मान की दृष्टि से देखेंगे।"[3] मालवीयजी का कहना था कि किसी

---

१. सीताराम चतुर्वेदी महामना पडित मदन मोहन मालवीय, खंड २, पृ० ८७।
२ वही, खड २, पृ० ८७। ३ वही, खंड २, पृ० ८९।

धर्मवाले को अपने धर्म का प्रचार करने से रोका नही जा सकता, पर यह काम ऐसी रीति से करना चाहिए कि किसी को क्लेश न पहुँचे।"[१]

२३ फरवरी सन् १९२४ को पंजाव हिन्दू सम्मेलन में इसी वात पर जोर देते हुए उन्होंने कहा · "धर्म-प्रचार का काम वहुत शान्ति और धैर्य से होना चाहिए। जो कोई अपने धर्म से भ्रष्ट होता है, उसे अवश्य वचाने की कोशिश करो। परन्तु जो यत्न करो उसमें सदैव इस वात का ध्यान रखो कि परमात्मा हमारी सव वातो को देखता और सुनता है। अस्तु, इस वात का भी ध्यान रखना चाहिए कि तवलीग और शुद्धि का ज्यादा शोर मचाना या समाचारपत्रो में उसका आन्दोलन करते रहना परस्पर मेल में विघ्न डालता है।"[२] उनकी दृढ धारणा थी कि "जिस किसी को जो धर्मोपदेश ग्राह्य हो, उसे उसके ग्रहण करने से रोकना पाप है।" पर वे चाहते थे कि "हिन्दू और मुसलमान दोनो अपने धर्म के सिद्धान्तो को अच्छी तरह से समझ पक्के हिन्दू और पक्के मुसलमान वनें,"[३] "धार्मिक जीवन व्यतीत करे[४], और अपने-अपने दायरे के अन्दर काम करें, वहा वहुत-सा काम करने को मौजूद है"[५]। मालवीयजी कहते थे कि ' हिन्दूओ और मुसलमानो को एक दूसरे के साथ न्याय का वर्ताव करना चाहिए।"[६] उनका उपदेश था कि "जो वात आपको अपने लिए बुरी लगती हो वह और के लिए भी मत चाहो। जो न्याय अपने लिए चाहते हो, वही दूसरे भाइयो के लिए भी चाहो।"[७]

ये सव विचार जो मालवीय जी ने गाधी जी के वक्तव्य के पहले ही पंजाव हिन्दू महासभा के सम्मेलनो मे अध्यक्ष पद से किये भाषणो मे व्यक्त किये थे, गाधीजी के मई के वक्तव्य के विचारो और भावनाओ के अनुकूल थे।

गाधीजी का अनशन और एकता सम्मेलन

गाधीजी की कोशिशो के वावजूद अवस्था दिन पर दिन विगडती गयी। साम्प्रदायिक तनातनी और दगे जारी रहे। गाधीजी का धैर्य छूट गया और उन्होंने सितम्वर सन् १९२४ में २१ दिन का उपवास शुरू किया। जनता पर उनके उपवास का प्रभाव किसी हद तक जरूर पडा। २५ सितम्वर को दिल्ली में पंडित मोती लाल नेहरू की अध्यक्षता में एकता सम्मेलन आयोजित हुआ,

---

१ वही, खंड २, पृ० ९०।
२. वही, खंड २, पृ० ११८।
३. वही, खड २, पृ० ११८।
४. वही, खंड २, पृ० ११९।
५. वही, खंड २, पृ० ११९।
६. वही, पृ० ११६।
७. वही, पृ० ११८।

और उसमें हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य के कारणो पर कई प्रस्ताव पास किये गये। ये प्रस्ताव बहुत हद तक गांधीजी के उस वक्तव्य के अनुरूप थे जो उन्होंने गई मास में हिन्दू-मुस्लिम समस्या पर प्रकाशित किया था। इनमें मौलिक धार्मिक अधिकारो को मान्यता देते हुए अनुरोध किया गया कि इनका इस तरह प्रयोग किया जायगा कि उससे दूसरो की धार्मिक भावनाओ को कम से कम ठेस पहुँचे। इनमें धार्मिक विश्वासों की अभिव्यक्ति और व्यवहार की स्वतन्त्रता तथा धर्मपरिवर्तन एवं शुद्धि और तबलीग का अधिकार स्वीकार किया गया, पर व्यापक सहनशीलता को कर्तव्य निश्चित किया गया, और जनता से अनुरोध किया गया कि वह सदा दूसरो की भावनाओ को ध्यान में रखते हुए अपनी धार्मिक स्वतन्त्रता और अधिकार का प्रयोग करे। तर्क और अनुनय द्वारा ही धर्मपरिवर्तन का कार्य किया जाय, आर्थिक प्रलोभन आदि अनुचित उपायो का प्रयोग न किया जाय, सोलह वर्ष से कम उमर के बच्चो का धर्मपरिवर्तन उनके माता-पिता और अभिभावक के साथ ही किया जाय, धर्मपरिवर्तन के कारण कोई व्यक्ति पुराने धर्मावलम्बियो से दण्डित न किया जाय, तथा शुद्धि और तबलीग का कार्य शान्तिपूर्वक किया जाय। इन प्रस्तावो में स्वीकार किया गया कि जबरदस्ती गो-हत्या बन्द नही हो सकती और न मस्जिदों के सामने मुसलमान बाजा बन्द करा सकते है, पर हिन्दूओ और मुसलमानो से अनुरोध किया गया कि वे इन प्रश्नो पर एक दूसरो की भावनाओ का आदर करें, और इस तरह सद्भावना को पुष्ट करें। सम्मेलन ने घोषित किया कि किसी सम्प्रदाय द्वारा किसी दूसरे सम्प्रदाय के व्यक्तियो का सामाजिक या व्यापारिक बहिष्कार या सम्बन्ध-विच्छेद निन्दनीय है और पारस्परिक सौहार्द के विकास में बाधक है। उसने आशा व्यक्त की कि यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे के व्यवहार से अपनी धार्मिक भावनाओ पर आघात अनुभव करे, तो वह कानून की अवहेलना करने के बजाय पंचायत या अदालत द्वारा शिकायत दूर कराने का प्रयत्न करेगा। सम्मेलन ने १५ सदस्यो की एक राष्ट्रीय पचायत गठित की, और उसे स्थानीय पचायतो को गठित करने का आदेश दिया। ये सब प्रस्ताव मालवीयजी को मंजूर थे। इनके सूत्रीकरण में मालवीयजी का महत्त्वपूर्ण योगदान था, जिसकी भारत के अधिधर्माध्यक्ष (मेट्रोपालिटन) ने बहुत प्रशंसा की थी।

नवम्बर सन् १९२४ में बम्बई में एक सर्वदलीय सम्मेलन हुआ। उसने बगाल सरकार द्वारा जारी किये गये क्रिमिनल ला अमेंडमेंट आर्डिनेन्स (फौजदारी कानून सशोधन अध्यादेश) की निन्दा की, और इस अध्यादेश तथा सन् १८१८ के बगाल रेगूलेशन न० ३ को वापस लेने की माँग की। इस सम्मेलन ने सभी

राजनीतिक दलो की कमेटी बैठायी, जो साम्प्रदायिक समझौता तथा स्वराज्य के लिए एक योजना तैयार करे। कमेटी को आदेश दिया गया कि मार्च सन् १९२५ तक वह अपनी योजना उपस्थित करे।

जनवरी सन् १९२५ में दिल्ली में कमेटी की बैठकें हुईं। कमेटी दो भागो में विभाजित हो गयी। एक उपसमिति के जिम्मे राजनीतिक योजना तैयार करना, और दूसरी उपसमिति के जिम्मे साम्प्रदायिक समझौते की रूपरेखा प्रस्तुत करना था। दूसरी उपसमिति कोई विशेष कार्य नही कर पायी, और फरवरी में अनिश्चित काल के लिए स्थगित हो गयी। साम्प्रदायिक समस्याओ पर कोई समझौता न होने के कारण राजनीतिक योजना की रूपरेखा भी तैयार नही हो सकी। इस अवसर पर हिन्दू नेताओ ने स्पष्ट कर दिया कि वे प्रतिनिधित्व के किसी ऐसे सिद्धान्त को मानने को तैयार हैं जो सारे देश में सब पर समान रूप से लागू हो, पर शर्त यह है कि निर्वाचक मण्डल संयुक्त होगे, और विधान मंडलो को छोडकर किसी दूसरी निर्वाचित सस्था पर साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त लागू नही होगा।

कोहाट के दंगो की जाँच

एकता सम्मेलन के कुछ दिन बाद कोहाट के दगो की जाच के लिए काग्रेस की वर्किंग कमेटी ने महात्मा गाधी और मौलाना शौकत अली को नियुक्त किया। दोनो इस काम के लिए कोहाट जाना चाहते थे, पर सरकार ने उन्हे वहाँ जाने की इजाजत नही दी। तब उन्होने रावलपिंडी मे जाकर जाच का काम शुरू किया। तथ्यो के सम्बन्ध में उन दोनो की प्रतिक्रिया काफी भिन्न रही। २६ मार्च सन् १९२५ को अपनी और मौलाना शौकत अली की रिपोर्टो को प्रकाशित करते हुए गाधीजी ने लिखा कि अब तक लोग यह जानते हैं कि वे और अली-बन्धु बहुत-सी सार्वजनिक बातो में एक राय रखते है, अब उन्हें यह भी जानना चाहिए कि एक दूसरे पर पक्षपात का सन्देह किये बगैर और पुराने सौहार्द को बनाये रखते हुए उनका आपस में मतभेद भी हो सकता है।[1]

मानपत्र

१६ अप्रैल सन् १९२५ को कलकत्ता कारपोरेशन की ओर से डिप्टी मेयर श्री एच० एस० सोहरावर्दी ने मालवीयजी को मानपत्र पेश किया, जिसमें जनता के "अधिकारो और स्वतंत्रताओ के अनथक समर्थन", तथा उनके "हितो की

---

१. 'यंग इण्डिया', २६ मार्च, १९२५।

रक्षा" के निमित्त चिन्ता, और राष्ट्र की "अभिवृद्धि और शिक्षा" के निमित्त निरन्तर प्रयत्नो के लिए मालवीयजी के प्रति कृतज्ञता प्रकट की गयी। मालवीय जी के इस उपदेश की कि सब भारतीय "पारस्परिक अविश्वास और सन्देह के बगैर भाई-चारे और मैत्री के साथ आपस में मिलकर जीवन वितायें" कृतज्ञता के साथ सराहना की गयी। इस मानपत्र मे यह भी कहा गया कि "हम आपके इस "निवेदन" को भी नही भूल सकते कि हम सब "अपनी इच्छा" से "देश-हित" के लिए "दु ख भोगें", क्योकि "सर्वसामान्य पीडा, सामूहिक प्रयत्न से ही हम उस महान् चिरस्थायी शक्ति को पाने की आशा कर सकते है जो भारत में बसने वाले विभिन्न सम्प्रदायो को—हिन्दुओ और मुसलमानो को, बुद्धो और जैनो को, सिक्खो और पारसियो को, ईसाइयो और यहूदियो को—एक महान् और शानदार राष्ट्र में बाँध पायेगी।" इस मानपत्र में यह कहते हुए कि "बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के सस्थापक और प्रेरक" के रूप में आपने यह सिद्ध कर दिया है कि दृढ संकल्पी "निःस्वार्थ कार्यकर्ता" क्या कुछ कर सकता है, आशा व्यक्त की कि "विश्वविद्यालय, आपके निर्देशन मे, उस व्यापक उदारता और सार्वभौमिक सहानुभूति और बन्धुत्व को पुष्ट करेगा जो वेदान्त की मूलभूत शिक्षाएँ है, और जिसमें इस देश का ही नही, बल्कि सारे ससार का निस्तार निहित है।"

इस अवसर पर लाला लाजपतराय को भी एक मानपत्र दिया गया, जिसमें उनकी बहुत-सी सेवाओ का उल्लेख करते हुए कहा गया कि "आप उन लोगो में से है जिन्होने अपने देशवासियो को उन्नत करने में, उनके विचार विशाल और महान् बनाने में, और उनमें निर्भीकता, बन्धुत्व और स्वाधीनता के उस भाव का संचार करने में महान् कष्ट और यातनाएँ भोगी है, जो पराधीन राष्ट्र के उत्थान और उन्नति के लिए न स्वकीय हित की दृष्टि से, वरन् मानव समाज के कल्याण के विचार से परम आवश्यक है।"

दोनो ने कलकत्ता कारपोरेशन के प्रति अपना आभार व्यक्त करते हुए, कारपोरेशन के मेयर देशबन्धु चित्तरंजन दास की बीमारी पर चिन्ता करते हुए उनके स्वास्थ्य की ईश्वर से प्रार्थना की। मालवीयजी ने कहा: "जैसा स्वराज्य हम चाहते है, वैसा तो अभी प्राप्त नही हुआ है, फिर भी साम्राज्य के दूसरे बड़े नगर का शासन जनता के प्रतिनिधियो द्वारा हो रहा है, यह हर्ष और गौरव की बात है। कारपोरेशन में जिस प्रकार पारस्परिक सहयोग का भाव वर्तमान है, वह भारत के भावी स्वराज्य का द्योतक है।"[1]

---

१. 'आज': १९ अप्रैल, सन् १९२५, पृ० ४।

अली बन्धुओ का रोष

अप्रैल सन् १९२६ मे पण्डित मोतीलाल नेहरू ने मौलाना मुहम्मद अली मे भेट की। मुहम्मद अली साहब ने महात्मा गाधी, पडित मोती लाल नेहरू और पडित जवाहर लाल नेहरू को छोडकर सब काग्रसी हिन्दू नेताओ को मुसलमानो का शत्रु बताया, और सब प्रमुख खिलाफतवालो को राष्ट्रवादी घोषित किया। मौलाना शौकत अली साहब अपने छोटे भाई मौलाना मुहम्मद अली से भी कही अधिक रुष्ट दिखाई देते थे। वे तो महात्मा गाधी और पडित मोतीलाल नेहरू से भी बहुत नाराज थे, क्यो कि उनके विचार मे उन दोनो ने आपस मे एक होकर मुसलमानो को टुकडो में बाट दिया है, और वे दोनो "मुसलमानो की आवाज को दबाने के लिए" सरकार से "बातचीत" कर रहे है। मौलाना शौकत अली साहब की धारणा थी कि "उनके हिन्दू दोस्त मुसलमानो से घृणा करते है।" मौलाना कहते थे कि "जबतक हिन्दू उनसे शुद्ध चित्त से सम्मान के साथ समझौता नही करते, तब तक हम उनके साथ काम नही करेंगे, और यदि वे हम से अलग काम करते है और निरादर सहते है, तो इसमें हमारा क्या दोष है ? यदि वे हमसे लडने का निश्चय करते है, तो हम उनसे इस तरह लडेंगे कि व उसे बहुत समय तक याद रखेगे।"[1] एक दूसरे पत्र मे मौलाना शौकत अली ने डाक्टर सैयद महमूद को लिखा "ब्रिटिश शुरू से ही हमारे शत्रु है, उनसे कोई समझौता नही हो सकता, हिन्दू हमारे खून के प्यासे है, लेकिन अब हमारे अपने आदमी उनका समर्थन कर रहे हैं, यह बहुत ही दु खदायी है।"[2]

खिलाफत कान्फरेंस

जून सन् १९२६ मे खिलाफत कान्फरेस ने हिन्दू महासभा द्वारा आयोजित शुद्धि आन्दोलन का विरोध करते हुए हिन्दुओ को मुसलमान बनाने की नीति का समर्थन किया। मौलाना मुहम्मद अली ने कहा कि वे उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे है जब गाधीजी को मुसलमान बना लें।[3] कान्फरेंस के अत्यधिक साम्प्रदायिक वातावरण से क्षुब्ध हो मौलाना आजाद और डाक्टर अन्सारी ने उसकी कार्रवाई मे भाग नही लिया।[4]

---

१. शौकत अली साहब का डाक्टर सैयद महमूद को पत्र, देखिये, ए नेशनलिस्ट मुस्लिम एण्ड इंडियन पालिटिक्स, पृ० ९३।

२. वही, पृ० ९४। ३. कृपालानी : गाधीजी, पृ० १०५।

४. वही।

मौलाना आजाद और पंडित मोती लाल नेहरू का प्रयास

जुलाई सन् १९२६ मे मौलाना आजाद और पडित मोती लाल नेहरू ने 'इडियन नेशनल यूनियन' के नाम से एक राष्ट्रवादी संस्था गठित करने का विचार किया। इस संस्था की प्रस्तावित घोषणा में बताया गया कि १८ वर्ष या उससे अधिक आयु के वे सब लोग इस सस्था के सदस्य हो सकते हैं जो धार्मिक स्वतन्त्रता तथा दूसरो के विचारो और प्रथाओ के प्रति पूर्ण सहिष्णुता, एवं सम्प्रदायो और व्यक्तियो के सुनिश्चित कानूनी अधिकारो के आधार पर साम्प्रदायिक सम्बन्धो के समन्वय के लिए तैयार है। प्रत्येक सदस्य को प्रतिज्ञा करनी होगी कि 'वह सत्यभाव से स्वीकार करता है कि भारत के सब सम्प्रदायो द्वारा सर्वसामान्य सयुक्त राष्ट्रीयता की अनुभूति मे, तथा उनके सद्भावपूर्ण सहयोग में ही हिन्दुस्तान की स्थायी समृद्धि और स्वतन्त्रता निहित है, और उसका एकमात्र उद्देश्य सम्पूर्ण राष्ट्र का हित ही होगा।'

सर तेज बहादुर सप्रू, श्री श्रीनिवास शास्त्री, हकीम अजमल खा, महराजा साहब महमूदाबाद, डाक्टर अन्सारी, श्रीमती सरोजनी नायडू आदि ने इस विचार का समर्थन किया। मालवीयजी न निमन्त्रित किये गये, और न उन्होंने इस यूनियन के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये। दोनों नेताओं के निमंत्रण पर इतने कम लोग इकट्ठे हुए कि आयोजित कान्फरेंस को विचार-विमर्श का रूप देना पडा, और योजना के सम्बन्ध में आगे चल कर कोई विशेप काम नही हुआ।

लार्ड अर्विन का भाषण

१७ जुलाई सन् १९२६ को लार्ड अर्विन ने चेम्सफोर्ड क्लब में साम्प्रदायिक दगो पर क्षोभ प्रकट करते हुए और उनके लिए सरकार और उसके कर्मचारियो को निर्दोषी बताते हुए हिन्दू और मुसलमान नेताओ से अनुरोध किया कि वे अपने अपने सम्प्रदाय को सहनशीलता की शिक्षा दें, और इस तरह शान्ति प्रतिष्ठित करने की चेष्टा करें। अगस्त में केन्द्रीय विधान मण्डल को सम्बोधित करते हुए उन्होंने सरकारी अफसरो और कर्मचारियो को शान्ति बनाये रखने के लिए प्रयत्न करने की अपील की।

मुहम्मद याकूब का प्रस्ताव

कुछ दिन बाद मौलाना मुहम्मद याकूब ने एक प्रस्ताव द्वारा सरकार से अनुरोध किया कि धार्मिक त्योहारो और उत्सवो पर शान्ति की स्थापना के लिए

उचित कानूनी व्यवस्था की जाय। हिन्दू सदस्यो ने संशोधन पेश किया जिसमे सरकार से एक सर्वदलीय गोलमेज कान्फरेंस बुलाने का अनुरोध किया गया। गृह-सदस्य सर अलेकजेंडर मुडीमेन ने गोलमेज कान्फरेंस की निरर्थकता पर भाषण करते हुए असेम्बली के सदस्यो से अनुरोध किया कि वे शान्ति के निमित्त प्रयत्न करें। इसके बाद प्रस्ताव और संशोधन वापस ले लिये गये।

मौलवी मुहम्मद याकूब के इस प्रस्ताव पर बोलते हुए मालवीयजी ने कहा कि पुरानी गलतियो को भुलाकर हम सब प्रतिज्ञा करें कि हममे से प्रत्येक जन-साधारण के सम्पर्क मे आयेगा और जनता को केवल उसके अधिकार ही नही बल्कि एक दूसरे के प्रति उसके कर्तव्य भी बतायेगा, उसको कहेगा कि भविष्य मे वह गलत काम न करे, सदा ठीक काम करे। यदि हम इन अत्याचारो को गलत समझते हैं तो हमें दृढता से यह बात जनता को बतानी चाहिए। उन्होने इस अवसर पर यह भी कहा कि मस्जिद के सामने बाजा बजाने के सम्बन्ध में हमे निष्पक्ष रूप से पुराने स्थानीय रिवाजो का अनुसरण करना चाहिए। गौ-हत्या के सम्बन्ध में उन्होंने हिन्दुओ की भावनाओ की ओर ध्यान दिलाते हुए कहा कि यह काम इस तरह किया जाय जिससे निरर्थक हिन्दुओ की भावनाओ को ठेस न लगे। जो मुसलमान हिन्दुओ के बाजारो और गलियो में गौओ को इस तरह ले जाता है जिससे हिन्दुओं की भावनाओ को चोट पहुंचती है, वह मुसलमान अवश्य ही निन्दनीय और दण्डनीय है। इसी तरह उन्होने कहा कि वह हिन्दू भी निन्दनीय और दण्डनीय है जो उस मुसलमान से गाय छुडा लेने का प्रयत्न करता है जो उसे आपत्तिहीन ढग पर बूचडखाने में ले जा रहा है।[1]

मुसलमानो के विचार

साम्प्रदायिक तनातनी ने काग्रेस की शक्ति को तथा राष्ट्र की माँग को बहुत क्षति पहुंचायी। उसने राष्ट्रवादी मुसलमानो की शक्ति और प्रभाव को भी बहुत कम कर दिया। यद्यपि जमैयतुल-उलमा काग्रेस के साथ रही, पर केन्द्रीय खिलाफत कमेटी ने बिल्कुल साम्प्रदायिक रूप धारण कर लिया। मौलाना मुहम्मद अली ने भी कुछ ऐसे वक्तव्य दिये जिनके कारण राष्ट्रवादी शक्तियो से उनका सम्बन्ध भी टूटता चला गया। पर डाक्टर अन्सारी आदि राष्ट्रवादी मुसलमान काग्रेस के साथ रहे, और अपने ढंग से राष्ट्रीय एकता के लिए प्रयत्न करते रहे।

---

१. लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स, सन् १९२७, जि० पृ० १९२४-२६।

प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर मुसलमानो मे कई मत हो गये। जिन प्रान्तो मे मुसलमान अल्पसख्यक थे, उन प्रान्तो के मुसलमान चाहते थे कि सन् १९१६ के लखनऊ समझौते के अन्दर उन्हें उनकी सख्या के अनुपात से अधिक जो प्रतिनिधित्व दिया गया है वह बना रहे। पंजाब और बगाल के मुसलमान चाहते थे कि लखनऊ समझौते मे तब्दीली हो और उन्हे उनकी जनसख्या के अनुपात से स्थान दिये जावें। अधिकाश मुस्लिम कार्यकर्ता दोनो बातो का समर्थन करते थे। पर कुछ मुसलमान उन प्रान्तो मे जहाँ वे अल्प-सख्यक है मुसलमानो का प्रतिनिधित्व कम करने को तैयार थे। कुछ मुसलमान पृथक् निर्वाचन प्रणाली की बुराइयो को ध्यान मे रखते हुए संयुक्त निर्वाचन का समर्थन करते थे। पर अप्रैल सन् १९२४ में मुस्लिम लीग ने भारी बहुमत से यही निश्चय किया कि पृथक् निर्वाचन प्रणाली जारी रखी जाय, बंगाल और पंजाब में संख्या के अनुपात से मुसलमानो को प्रतिनिधित्व दिया जाय, पर जहाँ मुसलमान अल्प-सख्यक है, वहाँ सन् १९१६ का समझौता लागू रहे।

श्रद्धानन्द का बलिदान

दिसम्बर सन् १९२६ के अन्तिम सप्ताह मे एक मुसलमान ने स्वामी श्रद्धा-नन्दजी की, जो उस समय दिल्ली में बीमार थे, हत्या कर दी। इस कुकर्म ने सारे देश में सनसनी पैदा कर दी। सभी हिन्दुओ को, और अधिकाश मुसलमानो को इसका क्षोभ था। जैसे ही इसकी सूचना गाधीजी को मिली, उन्होने श्रद्धा-नन्दजी के शौर्य और दृढ निष्ठा की प्रशसा करते हुए लिखा कि स्वामीजी "सुधारक" और "कर्मण्य" थे। वे "जीवित विश्वास" और "साकार वीरता" थे। वे कभी भी "सकट से नही डरते थे"। वे 'एक योद्धा" थे, जो "रोगशय्या के बजाय युद्ध-क्षेत्र में" "मरना पसन्द" करता है।

काग्रेस का अधिवेशन

उसके दो एक दिन बाद श्रीनिवास ऐयगर की अध्यक्षता में गोहाटी में काग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ। इन अधिवेशन ने स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या पर शोक प्रस्ताव पास किया। उसने अपनी कार्य समिति को आदेश दिया कि वह हिन्दू और मुसलमान नेताओ की सलाह से हिन्दू-मुस्लिम मतभेद मिटाने के लिए उचित उपाय करे। श्री श्रीनिवास ऐयगर ने केन्द्रीय असेम्बली मे हिन्दू और मुस्लिम सदस्यो से इस सम्बन्ध में बात की।

मुसलमान विधायकों का निर्णय

२० मार्च सन् १९२७ को कतिपय मुसलमान नेताओं की बैठक दिल्ली मे हुई। उन्होंने मुसलमानो की तरफ से एक तालिका पेश की। वे लोग इन शर्तों पर प्रान्तीय तथा केन्द्रीय विधान कौंसिलो के लिए संयुक्त निर्वाचन प्रणाली स्वीकार करने को तैयार थे कि (१) सिंध को अलग प्रान्त बना दिया जाय, (२) उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त तथा बलूचिस्तान को अन्य प्रान्तों के समान अधिकार दिये जायें, (३) पंजाब तथा बंगाल में मुसलमानो को जनसंख्या के अनुसार प्रतिनिधित्व दिया जाय, (४) केन्द्रीय विधान मण्डल में मुसलमानो को एक तिहाई प्रतिनिधित्व दिया जाय।

इस वक्तव्य के प्रकाशित होने के तुरत बाद इस गोष्ठी मे उपस्थित दो तीन सज्जनो ने घोषित किया कि उन्होंने इस समझौते के पक्ष में राय नही दी है। कई अन्य मुस्लिम नेताओ ने भी संयुक्त निर्वाचन के विरुद्ध अपने वक्तव्य प्रकाशित किये, पर मिस्टर जिना ने इन सुझावों को पुष्ट किया और आशा व्यक्त की कि वे एक साथ लागू होंगे।

२३ मार्च को कतिपय हिन्दू विधायकों ने एक बैठक करके निश्चय किया कि (१) भारत की सब विधान सभाओं के लिए संयुक्त निर्वाचन प्रणाली चालू की जाय, (२) जनसंख्या के अनुपात से हर विधान सभा मे अल्प-संख्यको के लिए स्थान (सीटें) सुरक्षित किये जायें, (३) संविधान द्वारा धार्मिक और लौकिक अधिकारों की सुरक्षा की व्यवस्था की जाय, (४) प्रान्तो की पुनर्व्यवस्था का प्रश्न इस समय खुला छोड़ दिया जाय।

मई सन् १९२७ मे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने मुसलमानो के इन सुझावो का यह कहते हुए स्वागत किया कि प्रान्तीय विधान कौंसिल की तरह केन्द्रीय विधान सभाओ मे भी मुसलमानो के लिए सीटें (स्थान) सुरक्षित कर दी जायें, तथा आपसी समझौते से पुराने समझौते में सुधार किया जाय। उसने कार्यसमिति को आदेश दिया कि केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान सभाओ के निर्वाचित सदस्यो, तथा अन्य राजनीतिक नेताओ के परामर्श से मौलिक अधिकारो के आधार पर वह हिन्दुस्तान के लिए संविधान का मसविदा तैयार करे।

शिमला एकता सम्मेलन

सितम्बर सन् १९२७ मे शिमला में मिस्टर मुहम्मद अली जिना की अध्यक्षता में एकता कान्फरेंस आयोजित की गयी। इस कान्फरेंस में काफी वाद-विवाद के बाद मालवीयजी, डाक्टर मुंजे, प्रिन्सिपल दीवानचन्द, सरदार शार्दूल सिंह,

श्री जयराम दास दौलतराम, हकीम अजमल खाँ, डाक्टर अन्सारी, मौलाना अबुल कलाम आजाद और मौलाना मुहम्मद अली की कमेटी गठित की गयी। यह कमेटी भी कुछ निश्चय नही कर पायी। अन्त मे मालवीयजी के अनुरोध पर सबने मिलकर हिंसात्मक कार्रवाइयो को बन्द करने के पक्ष में एक अपील प्रकाशित कर दी। इसमें मतभेदो का समाधान करने के लिए और पारस्परिक सौहार्द की वृद्धि के लिए स्थानीय एकता वोर्डो को स्थापित करने की भी जनता से अपील की गयी।

प्रिंसिपल दीवानचन्द के सस्मरण से पता चलता है कि इस कान्फरेस मे अन्य हिन्दू नेताओ की तुलना मे मालवीयजी का रुख कही अधिक नरम था। यहाँ तक कि प्रिन्सिपल साहब को, जो यह स्वीकार करते थे कि "राजनीति मे मालवीयजी का स्थान वहुत ऊँचा था", "यह निश्चय नही था" कि 'राजनीति में मालवीयजी स्वभावत' अपने अनुकूल वातावरण में थे।"[1]

कलकत्ता सम्मेलन

कांग्रेस के अध्यक्ष श्री एस० श्रीनिवास ऐयगर के प्रयास से २७ अक्तूबर सन् १९२७ को कलकत्ता में दूसरी एकता कान्फरेंस आयोजित हुई। इसमे सर्व श्री एस० श्रीनिवास ऐयगर, टी० प्रकाशम्, तुलसीचन्द गोस्वामी, प्रफुल्ल चन्द्र राय, जे० एम० सेनगुप्त, मौलाना मुहम्मद अली, मौलाना शौकत अली, डाक्टर अन्सारी, दीनवन्धु सी० एफ० एडरूज आदि ने भाग लिया। इस सम्मेलन में मालवीयजी और लाला लाजपतराय उपस्थित नही थे।

इस सम्मेलन में धर्म-परिवर्तन के सम्वन्ध में सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया कि 'यह काफरेंस निश्चय करती है कि प्रत्येक व्यक्ति या समूह तर्क या अनुनय से दूसरो का धर्मपरिवर्तत कराने या पुनर्धर्म-परिवर्तन कराने को स्वतन्त्र है, पर कोई व्यक्ति या समूह वल, धोखा, या आर्थिक प्रलोभनो की भेट जैसे अनुचित उपायो से ऐसा नही करेगा। अठारह वर्ष से कम आयु के व्यक्तियो का धर्मपरिवर्तन नही कराया जायगा, जवतक कि वह उनके माता, पिता या अभिभावक के साथ न हो। यदि अठारह वर्प से कम आयु का कोई व्यक्ति अपने माता-पिता या अभिभावक के विना किसी दूसरे धर्म को मानने वाले से असहाय पाया जाय, तव उसे शीघ्र ही उसके धर्म के माननेवाले व्यक्तियो के सुपुर्द कर दिया जायगा। धर्मपरिवर्तन या पुनर्धर्मपरिवर्तन के वारे मे व्यक्ति,

---

१ महामना मालवीयजी वर्थ सेन्टिनरी कोमिमोरेशन वाल्यूम, पृ० २१

स्थान, या ढंग की कोई गोपनीयता नही होनी चाहिए । किसी धर्मपरिवर्तन या पुनर्धर्मपरिवर्तन के सम्बन्ध मे कोई प्रदर्शन या आनन्दोत्सव भी नही होना चाहिए ।[१]

श्री० टी० प्रकाशम् के विरोध की उपेक्षा करते हुए भारी बहुमत में गोवध और मस्जिद के सामने बाजा बजाने के सम्बन्ध में भी एक प्रस्ताव पास हुआ ।[२]

दूसरे दिन कलकत्ते में आयोजित अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने भी इन दोनो प्रस्तावो को स्वीकार कर लिया ।[३]

कांग्रेस का मदरास अधिवेशन

जब दिसम्बर मे गोवध सम्बन्धी प्रस्ताव कांग्रेस की विषय समिति के सामने पेश हुआ, तब देशरत्न राजेन्द्रप्रसादजी ने सोचा कि प्रस्ताव की यह बात कि "मुसलमान आंख बचाकर जहां चाहे गोवध कर सकते है—हिन्दू जनता कदापि नही मानेगी । यदि मुसलमान इस हक़ का इस्तेमाल करना शुरू करेंगे, तो इसका नतीजा बहुत बड़े पैमाने पर बलवा फ़साद के सिवा दूसरा कुछ न होगा । यह किसी तरह भी देश के लिए हितकर न होगा ।"[४] यह समझ कर उन्होने इसके सम्बन्ध में गाधीजी से बातचीत की । गाधीजी के कहने पर दूसरे दिन सारे प्रस्ताव पर फिर विचार हुआ, और धर्म-परिवर्तन सम्बन्धी प्रस्ताव को वैसा ही रख कर जैसा वह पहले था, गोकुशी और बाजा सम्बन्धी प्रस्ताव के बजाय यह सस्तुति की गयी कि "उन अधिकारो की पूर्वधारणा (पूर्वाग्रह) के बिना जिसका हिन्दू और मुसलमान दावा करते है—एक जहाँ वह चाहे बाजा बजाने और जुलूस निकालने का, और दूसरा जहाँ चाहे कुर्बानियाँ करने या खाने के लिए गोकुशी का—मुसलमान मुसलमानो से अपील करते है कि वे गायो के सम्बन्ध में हिन्दुओ की भावनाओ का जहा तक संभव हो लिहाज रखें, और हिन्दू हिन्दुओ से अनुरोध करते है कि वे मस्जिद के सामने बाजा बजाने के मामले में मुसलमानो की भावनाओ का यथासम्भव लिहाज़ रखें, और इसलिए यह कांग्रेस हिन्दू और मुसलमान दोनो से अनुरोध करती है कि गोवध को या मस्जिद के सामने बाजा बजाने को रोकने के लिए हिंसा या न्यायालयो का आश्रय न लें' ।[५]

---

१ इंडियन क्वाटरली रजिस्टर, सन् १९२७, जि० २, पृ० ५३ ।

२. वही, पृ० ५५-५८ । ३. वही, पृ० २५-३१ ।

४ राजेन्द्र प्रसाद : आत्मकथा, पृ० २७९ ।

५. इंडियन क्वाटरली रजिस्टर, सन् १९२७, जि० २, पृ० ३९८ ।

"कांग्रेस की राय है कि प्रान्तो की ऐसी पुनर्व्यवस्था अब उन प्रान्तो में प्रारम्भ कर देना चाहिए जहा भाषा के आधार पर उसके पुनर्गठन की माग है।

"कांग्रेस की राय है कि आन्ध्र, उत्कल, सिन्ध और कर्नाटक को अलग प्रान्त बना कर यह काम प्रारम्भ किया जा सकता है।

"भावी सविधान में अन्तरात्मा की स्वतन्त्रता की गारन्टी दी जायेगी, और किसी केन्द्रीय या प्रान्तीय विधायिका को कोई ऐसा कानून बनाने का अधिकार नही होगा जो अन्तरात्मा की स्वतन्त्रता मे हस्तक्षेप करता हो।

"अन्तरात्मा की स्वतन्त्रता का अर्थ है—विश्वास और आराधना की स्वतंत्रता, धार्मिक रिवाजो के पालन की और साहचर्य की स्वतत्रता, और दूसरो की भावनाओ का उचित आदर करते हुए, और दूसरो के इसी प्रकार के अधिकारो में हस्तक्षेप किये बिना धार्मिक शिक्षा और प्रचार की स्वतन्त्रता।

"अन्त साम्प्रदायिक मामलो में कोई विधेयक, प्रस्ताव, आवेदन या सशोधन किसी केन्द्रीय या प्रान्तीय विधायिका में प्रस्तावित विचार-विमर्शित, या पारित नही किया जायगा, यदि उस विधायिका में उनसे प्रभावित होनेवाले सम्प्रदाय के सदस्यो की तीन चौथाई बहुसख्या उस विधेयक, प्रस्ताव आवेदन या सशोधन के प्रवेश, विचार-विमर्श या पारित किये जाने के विरुद्ध हो।"[1]

इस तरह यह प्रस्ताव अन्त करण की स्वतन्त्रता, धार्मिक साहचर्य, शिक्षा-दीक्षा और प्रचार की स्वतन्त्रता, धर्मानुचरण की स्वतन्त्रता, सयुक्त निर्वाचन पद्धति, भाषा के आधार पर प्रान्तो का गठन, दूसरो की भावनाओ का यथोचित आदर जैसे लोकतान्त्रिक सिद्धान्तो पर आधारित था। इसमें पारस्परिक सौहार्द की पुष्टि तथा अल्प-संख्यको के सन्तोष के लिए कुछ अन्य आवश्यक बातो की भी व्यवस्था थी।

श्रीमती सरोजनी नायडू

इस प्रस्ताव को प्रस्तावित करते हुए श्रीमती सरोजनी नायडू ने बहुत ही भावोत्तेजक ढग से इसे "संयम और तितिक्षा के मेगनाकार्टा" के रूप मे स्वीकार करने की प्रार्थना की। उन्होने कहा, "यह उस एकता की ओर पहला कदम होगा जो आपको उस स्वतत्रता की ओर ले जायगा जिसका आप दावा करते है, और जिसके बिना राष्ट्र की हैसियत से आप कही कुछ नही है।"[2] उन्होने कहा, "परतन्त्रता से निस्तार का धर्म ही भारत का एकमात्र धर्म है"[3]

---

१. इंडियन क्वाटरली रजिस्टर सन्, १९२७, जिल्द २, पृ० ३९७-३९८।
२. वही, पृ० ४०२। ३. वही, पृ० ३९९।

और आशा व्यक्त की कि उसकी सिद्धि के लिए हम अपनी चिरसम्मानित परम्पराओ और अभिरुचियो को तिलाजलि देने को भी तैयार होगे। उन्होने अन्त में हिन्दू-मुस्लिम एकता की बुनियाद डालने की अपील की, जो हमारी स्वतन्त्रता की एक मात्र गारंटी है।[1]

मौलाना आजाद

मौलाना आजाद ने प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा कि यह प्रस्ताव हमे सन् १९१६ से कही आगे ले जाता है। हम एकता के मार्ग मे बडे रोडे को यानी पृथक् निर्वाचन पद्धति को दूर कर रहे है, और राष्ट्रीय सहति प्राप्त कर रहे है।[2] उन्होने भाषा के आधार पर प्रान्तो के बँटवारे का, तथा सीमा प्रान्त में राजनीतिक सुधारो को लागू करने का समर्थन किया। उन्होने स्वीकार किया कि गोवध और मस्जिद के सामने बाजा बजाने का "कोई आसान हल नही है, पर लडने से या न्यायालयो का दरवाजा खटखटाने से भी काम नही चल सकता। इसके लिए तो जरूरी है कि दोनो सम्प्रदाय एक दूसरे के अधिकारो की घोपणा करें, साम्प्रदायिक झगडो को त्याग कर एक दूसरे की भावनाओ का आदर करें। यही इस प्रस्ताव में किया गया है।"[3]

पण्डित गौरी शंकर आदि

पडित गौरी शकर मिश्र ने माँग की कि पृथक् निर्वाचन पद्धति के साथ-साथ साम्प्रदायिकता के आधार पर स्थानो के संरक्षण की व्यवस्था भी खत्म की जाय। श्री जगत नारायण लाल ने कहा कि गोवध और बाजे के सम्बन्ध में प्रस्ताव इतना अस्पष्ट है कि उससे झगडे घटने के बजाय बढ जायेंगे। सिंध के श्री चोइथराम ने सिंध को बम्बई प्रान्त से अलग करने का विरोध किया।

पडित गोविन्द वल्लभ पन्त और श्री जे० एम० सेनगुप्त ने प्रस्ताव के मन्तव्य को स्पष्ट करते हुए कहा कि वह हिन्दू और मुसलमानो के अधिकारो को स्वीकार नही करता, बल्कि दोनो के दावो का उल्लेख करते हुए दोनो से अनुरोध करता है कि वे अपने दावो पर डटे रहने के बजाय एक दूसरे की भावनाओ का आदर करें, तितिक्षा से काम लें। सरदार शार्दूल सिंह कवीश्वर, श्री सत्यमूर्ति तथा श्री श्रीनिवास ऐयंगर ने प्रस्ताव का समर्थन किया।

---

१ वही, पृ० ४००। २. वही, पृ० ४०२।
३. वही, पृ० ४०२-४०३।

श्रीनिवास ऐयंगर

श्री श्रीनिवास ऐयंगर ने कहा : "कांग्रेस उन दो महापुरुषों की नि सन्देह कृतज्ञ है, जिन्होने कांग्रेस के इस मद्रास अधिवेशन को स्मरणीय बना दिया है। ये महापुरुष महात्मा गाधी और पंडित मदन मोहन मालवीय है, जिन्होने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के कलकत्ता प्रस्ताव से पैदा हुई कठिनाइयो को दूर करना सम्भव कर दिया है।"[१] उन्होने कहा कि हम इस प्रस्ताव द्वारा "पक्के अत्यधिक साम्प्रदायिकता के युग से पूर्ण राष्ट्रीयता की ओर अपूर्ण राष्ट्रीयता की अस्थायी पगडडी से होकर प्रकट हो (उभर) रहे है"।[२]

मालवीयजी

मालवीयजी ने कहा कि मतभेदो को सुलझा कर झगडो को मिटाकर स्वराज्य के लिए आगे बढना ही इस प्रस्ताव का लक्ष्य है। इस प्रस्ताव द्वारा पृथक् निर्वाचन की पद्धति खत्म होती है। अच्छा होता यदि विधान मडलो मे स्थानो का रिजर्वेशन भी खत्म हो गया होता। हिन्दू और मुसलमानो को मिलकर एक प्रतिनिधि चुनने को तैयार होना चाहिए। चाहे कोई सदस्य किसी सम्प्रदाय या बिरादरी का हो, उसे समझना चाहिए कि उसे देश के हित में काम करना है। सीमा प्रान्त को भी न्यायिक प्रशासन की सुविधा होनी चाहिए। प्रस्ताव में व्यवस्था की गयी है कि यदि जनता के वित्तीय और आर्थिक हित मे भाषा के आधार पर प्रान्तो का पुनर्गठन हो तो होना ही चाहिए। मालवीयजी ने कहा कि मुसलमानो को गोवध बन्द कर देना चाहिए हिन्दुओ को मस्जिद के आगे बाजा नही बजाना चाहिए। हिंसा को त्याग कर, न्यायालयो मे दौड-दौड कर जाने की आदत छोड कर झगडो को आपस में मिलकर सुलझाना चाहिए। मालवीयजी ने कहा कि हमें उस दिन की प्रत्याशा करनी चाहिए, जब हमारे जहाज हमारे आदमियो से चालित हमारा झडा फहराते हुए हिन्दसागर मे चलें। हम चाहते है कि हमारी सेना हमारे कमान्डरो और जनरलो से आदेशित और नियंत्रित हो। हमारी लोक-सेवा के ऊँचे पदों पर विदेशी न हो। मालवीयजी ने कहा कि यह तभी संभव है जब सब जाति, बिरादरी और सम्प्रदाय के लोग मिल कर काम करें। हिन्दू और मुसलमान एक ईश्वर के बन्दे है, एक माता, भारत के बच्चे है। ६००० मील से आकर अंग्रेज हम पर शासन करते है। यह बहुत लज्जा की बात है। इसे धो डालना हमारा कर्तव्य है। ब्रिटिश सरकार एक दिन हम पर शासन नही कर सकती,

---

१. वही, पृ० ४०९। २ वही, पृ० ४०९-४१०।

यदि हिन्दू, मुसलमान, एंग्लो इंडियन आदि सब मिलकर अनुभव करें कि एक ही परमात्मा और एक ही भारतमाता है। इसी में हम सबका, उन्होंने कहा, कल्याण है।[1]

मौलाना मुहम्मद अली

मौलाना मुहम्मद अली ने मालवीयजी के बहुत ही अद्भुत भाषण की प्रशंसा करते हुए कहा कि यदि पंडित मदन मोहन मालवीय अपने इस प्रशसनीय भाषण के अनुसार काम करें, तो जब अर्ल विन्टरटैन (उपभारत-मन्त्री) हम से कहेगा कि वह अल्प-संख्यको का हिमायती है, तब हम उनसे कहेंगे कि यह ग़लत है, अल्प-संख्यको के हिमायती तो पंडित मालवीय है। मौलाना साहब ने बताया कि मिस्र में पिच्यानवे प्रतिशत मुसलमान और पाच प्रतिशत ईसाई रहते है। ज़गलोलपाशा का ईसाइयो के साथ ऐसा सद्व्यवहार रहता है कि जब मिलनर कमीशन मिस्र गया और उसने ईसाइयो से बात करनी चाही तो सबने कह दिया कि ज़गलोलपाशा से बातें की जाये। उन्होंने बहुत ही भावावेश में भर कर कहा, "मैं पडित मालवीय में अपना विश्वास रखने की प्रतिज्ञा करता हूँ, मैं उन्हे धोखा नही दूंगा। मैं विश्वास करता हूँ कि वे मुझे धोखा नही देंगे"।[2] क्या ही अच्छा होता यदि दो बडे नेता इस भावना से अनुप्राणित रहते हुए मिलकर काम कर पाते?

१. इडियन क्वाटरली रजिस्टर, १९२७, जि० २, पृ० ४०८-४०९।
२. वही, पृ० ४१०-४११।

१६. भारतीय लेजिस्लेटिव असेम्बली
१९२४—१९२६

चुनाव

नवम्बर सन् १९२३ में केन्द्रीय और प्रान्तीय कौसिलो का चुनाव हुआ। अन्य पार्टियो की तुलना में स्वराज्य पार्टी को बहुत अच्छी सफलता प्राप्त हुई। जबकि लिबरल पार्टी का, जिसने असहयोग के जमाने में सरकार के साथ सहयोग किया था, सफाया हो गया, स्वराज्य पार्टी ने बहुत से प्रान्तो में लगभग पचास प्रतिशत उन निर्वाचित स्थानो पर विजय प्राप्त कर ली जिन पर किसी वर्ग, सम्प्रदाय या हित के हिन्दुस्तानी खडे हो सकते थे। मध्य प्रदेश में तो उसने कौसिल में बहुमत प्राप्त कर लिया। बंगाल में बहुत से मुसलमान निर्वाचको ने स्वराज्य पार्टी का समर्थन किया, और उसने पृथक् निर्वाचन पर आधृत मुस्लिम स्थानो को जीत लिया। युक्त प्रान्त आदि कई प्रान्तो में काग्रेस के करीब-करीब सभी कार्यकर्ताओ ने स्वराज्य पार्टी के लिए डट कर काम किया, पर मद्रास, बिहार, गुजरात के अपरिवर्तनवादी तटस्थ रहे, जिसके कारण स्वराज्य पार्टी को पूरी सफलता प्राप्त नही हो पायी। मिसाल के तौर पर बिहार में स्वराज्य पार्टी दस-बारह सदस्य ही चुनवा सकी। सामन्तशाही और साम्प्रदायिक शक्तियो का सरकार से सहयोग बना रहा, और उनकी मदद से मध्य-प्रदेश और किसी हद तक बंगाल को छोड कर अन्य सब प्रान्तो में द्विविध शासन आसानी से चालू रखा जा सका।

नेशनलिस्ट पार्टी का गठन

सन् १९२३ में मालवीयजी ने एक स्वतत्र उम्मीदवार की हैसियत से इलाहाबाद-झासी-डिवीजन क्षेत्र से केन्द्रीय असेम्बली का चुनाव लडकर विजय प्राप्त की। उन्होने मिस्टर मुहम्मद अली जिना के नेतृत्व मे २४ सदस्यो की इडिपेंडेंट पार्टी गठित की। इस पार्टी ने भी निश्चय किया कि यदि सरकार राष्ट्रीय माग को स्वीकार करने से इनकार कर देगी, तो उसके विरुद्ध प्रतिरोध की नीति का अनुसरण किया जायगा। कुछ शर्तों के साथ इस पार्टी ने ४३ सदस्यों की स्वराज्य पार्टी से मिलकर नेशनलिस्ट पार्टी बनायी। इन दोनो पार्टियो के सहयोग के फलस्वरूप महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय प्रश्नो पर सरकारी पक्ष को बहुधा पराजित होना पडा। पर यह सहयोग एक वर्ष के बाद टूटने लगा।

सैनिक व्यवस्था

५ फरवरी सन् १९२४ को इंडियन टेरिटोरियल फोर्स और आक्जीलरी फोर्स के एकीकरण के प्रस्ताव पर बोलते हुए मालवीयजी ने कहा कि अब अंग्रेजो को भारत में अपने हिन्दुस्तानी भाइयो के साथ मित्र नागरिको की तरह रहने की मनोवृत्ति बना लेनी चाहिए। आक्जलरी फोर्स मे केवल अंग्रेजो को भरती करने के नियम की कडी आलोचना करते हुए उन्होने पूछा कि जब हिन्दुस्तानी और अग्रेज जज साथ बैठ कर हाईकोर्ट मे मुकदमो का फैसला कर सकते है, तो क्या कारण है कि केवल अंग्रेज जज ही आक्जलरी फोर्स का सदस्य हो सकता है ?[1] उन्होने कहा कि भारत की रक्षा का भार, देश के लिए शत्रु से लडने का उत्तर-दायित्व, हिन्दुस्तानियो को स्वयं वहन करना चाहिए, और इसके लिए एक नागरिक सेना संगठित की जानी चाहिए, तथा सारे देश के स्कूलो में देशभक्ति की शिक्षा स्पष्ट रूप से दी जानी चाहिए।[2] उन्होने माग की कि एक नागरिक सस्थान (सिटीजन एसोसिएशन) गठित किया जाय, वह हर जिले मे जा कर होनहार नौजवानो को चुने, उन्हे आवश्यक सैनिक शिक्षा दिये जाने का प्रवन्ध करे, उन्हे देशभक्ति की भावना से अनुप्राणित करे, और उन्हें आवश्यकता पडने पर "अपनी मातृभूमि के लिए अपना जीवन तक अर्पण करने को तैयार करे।"[3] उन्होने यह भी माग की कि राष्ट्ररक्षा-विभाग का उत्तरदायित्व एक हिन्दुस्तानी को सौंपा जाय, और हिन्दुस्तानियो को सैनिक शिक्षा प्राप्त करने की आवश्यक सुविधाएँ मुहैया की जायें।[4]

सर्वसम्मति से केन्द्रीय असेम्बली ने गवर्नर-जनरल-इन-कौंसिल से सस्तुति की कि शीघ्र ही विधान मण्डल के सदस्यो को शामिल करते हुए एक कमेटी नियुक्त की जाय जो आवश्यक जाच के बाद रिपोर्ट करे कि (१) टेरिटोरियल फोर्स को संशोधित और विस्तृत करने के लिए क्या काम किया जाय, ताकि वह स्थायी सेना की रिजर्व सेना की दूसरी पंक्ति का काम कर सके, और (२) बताये कि भारत की अस्थायी सेना में तथा आक्जीलरी फोर्स की व्यवस्था मे से रगभेद को दूर करने के लिए क्या किया जाय ?

१९ फरवरी सन् १९२५ को एक दूसरे प्रस्ताव पर बोलते हुए मालवीयजी ने भारतीय सेना मे उच्चस्तरीय कमीशन के पदो पर नियुक्ति के लिए भारतीय

---

१ लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट, सन् १९२४, जि० ४, पार्ट १, पृ० २४१।
२. वही, सन् १९२४, पार्ट १, पृ० २४२।
३ वही, सन् १९२४, पार्ट १, पृ० २४२।
४. वही, सन् १९२४, पार्ट १, पृ० २४२।

अफसरो के समुचित परिशिक्षण के निमित्त उच्चस्तरीय सैनिक कालेज खोलने पर ज़ोर दिया। उन्होंने कहा कि उच्चस्तरीय सैनिक शिक्षा के लिए बीस-पचीस भारतीयो को सैन्ड्हर्स्ट कालेज में परिशिक्षित करने से काम नही चलेगा। आठ दस्ते की योजना से तो सौ वर्ष में भी उच्चस्तर पर भारतीय सेना का भारतीयकरण नही हो सकता। सरकार के विरोध के बावजूद ३७ मतो के विरुद्ध ५९ मतो से असेम्बली ने उनके कुछ सशोधनो को स्वीकार करते हुए संस्तुति की कि एक कमेटी गठित की जाय जो रिपोर्ट करे कि उच्चस्तरीय सैनिक शिक्षा के निमित्त भारत में सैनिक कालेज खोलने के लिए तथा शिक्षित भारतीयो को सैनिक जीवन की ओर आकर्षित करने के लिए क्या किया जाय, और यह भारतीय सैनिक कालेज सेन्ड्हर्स्ट के स्थान पर काम करे, या इसका काम सैन्ड्हर्स्ट और वूलविच कालेजो द्वारा पूरा किया जाय और बताये कि किस गति से सेना के भारतीयकरण को तेज किया जाये।[1]

राजनीतिक माग

८ फरवरी सन् १९२४ को श्री रंगाचारियर ने भावी सविधान के संबंध में एक प्रस्ताव केन्द्रीय असेम्बली में प्रस्तुत किया। उन्होने संस्तुति की कि सरकार रायल कमीशन की नियुक्ति द्वारा, या किसी दूसरे ढग से मौजूदा शासन-व्यवस्था को इस तरह बदलने के लिए ठोस क़दम उठाये, जिससे हिन्दुस्तान को ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत पूर्ण स्वशासित डोमिनियन स्टेटस और प्रान्तो मे प्रान्तीय स्वायत्त शासन प्राप्त हो सके।

इस पर पण्डित मोतीलाल नेहरू ने यह संशोधन उपस्थित किया कि 'हिन्दुस्तान में पूर्ण उत्तरदायी शासन प्रणाली स्थापित करने के लिए हिन्दुस्तान के प्रतिनिधियो की गोलमेज़ कान्फरेंस बुलायी जाय, जो अल्पमत समुदायो के स्वार्थों और अधिकारो का पूरा ध्यान रखते हुए हिन्दुस्तान के लिए शासन-विधान तैयार करे। यह सविधान नवनिर्वाचित विधान असेम्बली के सामने पेश हो, और उसके द्वारा स्वीकृत हो जाने के बाद इसको ब्रिटिश पार्लियामेंट क़ानूनी रूप प्रदान करे।'

इस सशोधन पर स्वराज्य पार्टी के नेता ने बहुत ही प्रभावशाली विद्वत्तापूर्ण युक्ति-युक्त भाषण किया, जिसे समाचारपत्रो ने बहुत विस्तार के साथ प्रकाशित किया, और जिसने शिक्षित नवयुवको को बहुत ही अनुप्राणित किया। इस भाषण में पण्डित मोतीलालजी ने देश मे प्रचलित राजनीतिक व्यवस्था तथा सरकार की नीतिरीति की कडी आलोचना करते हुए जनता की राजनीतिक भावनाओ

---

१. वही, सन् १९२५, जि० ५, पार्ट २, पृ० १२३२-१२३७।

और मागो को बहुत ही उत्तम ढंग से पुष्ट किया। उन्होने कहा कि असहयोगी होते हुए भी हम सहयोग करने को तैयार है, यदि सरकार हमसे सहयोग करना चाहे। उन्होंने यह भी कहा कि जिन चीजो को हम देश के लिए हितकर समझते है उन्हें नष्ट करना हमारा काम नही। हम तो बुरी चीज़ो को नष्ट करना चाहते है, और चूँकि हम मौजूदा व्यवस्था को बुरा, दोषपूर्ण, देश के लिए हानिकर समझते है इसलिए उसे नष्ट कर नयी व्यवस्था स्थापित करना चाहते है।

इडिपेंडेंट पार्टी के नेता मिस्टर मुहम्मद अली जिना और मालवीयजी ने भी ज़ोरदार शब्दो में पण्डित मोतीलाल नेहरू के संशोधन का समर्थन किया। मालवीयजी ने आत्मनिर्णय के सिद्धान्त को पुष्ट करते हुए कहा कि भारतीयो को स्वयं अपने देश का सविधान बनाने का, तथा अपनी समस्याओ को सुलझाने का अवसर मिलना चाहिए। सविधान का निर्माण, उन्होने कहा, सरकार द्वारा नियुक्त कमीशन के बजाय जनता के प्रतिनिधियो की गोलमेज़ ही अच्छे तौर पर कर सकती है। इस बात का उत्तर देते हुए कि सन् १९१८ में माटेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट की अवहेलना करते हुए उन्होने पूर्ण उत्तरदायी व्यवस्था के लिए बीस वर्ष की अवधि निश्चित की थी, मालवीयजी ने कहा कि पिछले चार वर्षों मे सरकार ने जिस गलत तरीके से नये सुधारो को कार्यान्वित किया है, और जिस तरह से गलत नीतियो का अनुसरण करते हुए देश के आर्थिक हितो को क्षति पहुँचायी है, तथा जनता की नागरिक स्वतंत्रता का अपहरण किया है, उसे देखकर ब्रिटिश शासन का शीघ्र से शीघ्र विलीनीकरण और पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना ही उन्हें ठीक जचती है। उन्होने यह भी कहा कि असैनिक क्षेत्र मे पूर्ण उत्तरदायी प्रशासन प्रतिष्ठित करने के बाद भी सेना के भारतीयकरण करने मे, तथा सेना की व्यवस्था पर पूरा अधिकार हस्तान्तरित होने मे दस पन्द्रह वर्ष लग ही जायेंगे।[1]

केन्द्रीय असेम्बली ने भारी बहुमत से अर्थात् ४८ वोटों के विरुद्ध ७६ मतो से सशोधन को पास कर दिया। करीब-करीब सभी निर्वाचित हिन्दुस्तानी सदस्यो ने इस तरह नयी शासन व्यवस्था की माग का समर्थन किया। मनोनीत सदस्यो में श्री एन० एम० जोशी ने संशोधन के पक्ष मे, तथा श्री पी० एस० शिवस्वामी अय्यर ने उसके विरोध मे अपनी राय दी।

बजट पर बहस

मार्च सन् १९२४ मे बजट और वित्त विधेयक पर ज़ोरदार बहस हुई नेशनलिस्ट पार्टी के सदस्यो तथा प्रगतिशील स्वतंत्र सदस्यो ने डटकर २५

---

१. वही, सन् १९२४, जि० ४, पार्ट १, पृ० ५२७-५३८।

की गतिविधि तथा नीतिरीति की आलोचना की, तथा विभिन्न विभागो के सम्बन्ध मे राष्ट्रहित की दृष्टि से पुरोगामी नीतियाँ प्रतिपादित और पुष्ट की।

मालवीयजी ने बजट पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि बजट, मुद्रा, विनिमय तथा व्यापार के सम्बन्ध मे सरकार की कोई निश्चित सुनियोजित राष्ट्रीय नीति नही है। टैक्सो का बोझ बढता जा रहा है। व्यय को कम करने की ओर समुचित ध्यान नही दिया जा रहा है। उन्होने माग की कि आन्तरिक शान्ति का सब भार पुलिस और हिन्दुस्तानी सिपाहियो को सौप कर आन्तरिक सुरक्षा के नाम पर नियुक्त २७००० गोरी पलटनो को हटाकर साढे सात करोड रुपये वार्षिक की बचत की जाय। सेना मे उच्चपदो का उत्तरदायित्व ग्रहण करने के लिए योग्य भारतीय नवयुवको को इस तरह तैयार किया जाय कि बीस-पचीस वर्ष के अन्दर भारतीय सेना का समुचित भारतीयकरण हो सके, बाह्य आक्रमण से देश की रक्षा का सब भार भारतीय नवयुवक स्वयं वहन कर सकें। रेलवे की नीतिरीति की समीक्षा करते हुए मालवीयजी ने कहा कि जबकि रेलो के निर्माण पर लगभग ८००० करोड रुपये भारतीय करदाताओ को किसी न किसी रूप में लगाना पडे है, राजकोष को व्याज या मुनाफे के रूप में उससे कोई प्राप्ति नही हो रही है। इस सारी पुरानी लागत पर रेलो को उचित दर से व्याज राजकोष में अवश्य ही जमा करना चाहिए।[1]

विभिन्न विभागो की नीति-रीति के प्रति अपना अविश्वास प्रकट करने को निर्वाचित भारतीय सदस्यो ने सीमा शुल्क विभाग, नमक और अफीम विभागो एव आयकर (इनकम टैक्स) विभाग की मागो को नामजूर कर दिया, तथा वन विभाग और साधारण प्रशासन की मागो में सांकेतिक कटौती कर दी।

वित्त विधेयक का विरोध

१७ मार्च सन् १९२४ को पण्डित मोतीलाल नेहरू की सलाह से मालवीयजी ने केन्द्रीय असेम्बली से वित्त विधेयक को नामजूर कर देने की अपील की। प्रान्तीय द्विविध शासन की कडी आलोचना करते हुए उन्होने कहा कि हस्तान्तरित विषयो के कार्यवाहक मन्त्रियो की दशा उस धाया जैसी है जिस पर बच्चे की देखभाल-भरण-पोषण का उत्तरदायित्व हो, पर जिसके पास बच्चो को दूध पिलाने के पर्याप्त साधन भी न हो। धन की समुचित व्यवस्था न होने के कारण, उन्होने कहा, हस्तान्तरित विभागो मे निर्माण कार्य ठीक तौर पर नही

---

१. वही, सन् १९२४, जि० ४, पार्ट २, पृ० १२३४-१२४७।

हो रहा है। प्रान्तीय प्रशासन की बहुत सी दूसरी त्रुटियो की ओर भी ध्यान दिलाते हुए उन्होने कहा कि "द्विविधशासन विफल हो गया है", और उसे शीघ्र से शीघ्र "दफना" कर उसकी जगह पर "अधिक स्वस्थ और निर्दोष व्यवस्था की स्थापना ही "सरकार की मानमर्यादा और उपयोगिता, तथा जनता के कल्याण" के लिए लाभप्रद होगी।[1]

केन्द्रीय व्यवस्था की समीक्षा करते हुए उन्होने कहा कि इस प्रकार की मिश्रित और निकम्मी व्यवस्था किसी दूसरे देश मे नही पायी जाती, जहा सरकार जनता के प्रतिनिधियो के विचारो की उपेक्षा और विधान सभा के निर्णयो की अवहेलना करते हुए अपनी मनमानी कर सकती है। उन्होने सरकार को अपव्यय का दोषी ठहराते हुए कहा कि फौजी खर्चे का भार कम करना नितान्त आवश्यक है। उन्होने सरकार की कर नीति, शासन नीति तथा गतिविधि की कडी आलोचना करते हुए सरकार को जनता की नागरिक और धार्मिक स्वतत्रता अपहरण करने का दोषी ठहराया, और माग की कि सेना विभाग और गृह विभाग कौसिल के भारतीय सदस्यो के सुपुर्द किये जायें। आन्तरिक रक्षा के लिए नियुक्त अंग्रेजी सेना को हटाकर फौजी खर्च घटाया जाय, प्रशासनिक व्यय और नमक कर कम किया जाय, उत्तरदायी स्वशासन की स्थापना के लिए कदम बढाया जाय।[2]

भारत-मन्त्री ओलिवियर को, उन्होने कहा, अच्छे तौर पर समझ लेना चाहिए कि असेम्बली द्वारा पारित सविधान सम्बन्धी सस्तुतियो की उपेक्षा से समस्या का समाधान सम्भव नही है, राजनीतिक सहयोग की प्रक्रिया को बढाने के लिए तो जनता की आकाक्षाओ, और उसके प्रतिनिधियो की बातो पर ध्यान देना ही होगा।

अन्त मे मालवीयजी ने कहा . "जब तक टैक्सो से प्राप्त धन को खर्च करने मे इस देश की जनता के प्रतिनिधियो को वे अधिकार प्राप्त नही हो जाते, जो ससार मे प्रत्येक विधान सभा के सदस्यो को प्राप्त है, तब तक हम टैक्सो के भार को जारी रखने के पक्ष में अपना नैतिक समर्थन या वोट नही दे सकते।" इस बात का उत्तर देते हुए कि यदि वे वित्त विधेयक का समर्थन करने को तैयार नही थे, तो उन्होने बजट में की गयी मागो का समर्थन क्यो किया, मालवीयजी ने कहा कि उन्होने कुछ माँगो का विरोध किया और कुछ पर

१ वही, सन् १९२४, जि० ४, पार्ट ३, पृ० १९१५-१९१६।
२. वही, सन् १९२४, जि० ४, पार्ट ३, पृ० १९१६-१९२०।

चुप रहे, समर्थन किसी का नही किया। उन्होने यह भी कहा कि वह भविष्य में किसी वित्त विधेयक का समर्थन उस समय तक करने को तैयार नही है जव तक सरकार सन् १९१९ की शासन व्यवस्था में उचित परिवर्तन नही करती।[1]

सरकारी पक्ष की धमकियो की ओर सकेत करते हुए उन्होने कहा कि सरकार यदि चाहे तो वह सन् १९१९ की व्यवस्था वापस ले सकती है, पर यदि वह सभ्य सरकारो की तरह शासन करना चाहती है, तो उस ढोग के स्थान पर जो उसने रच रखा है उसे वास्तविकता सन्निष्ट करनी होगी।[2]

व्यापार मंडल के प्रतिनिधि सर पुरुषोमदास ठाकुरदास ने वित्त विधेयक का समर्थन काफी ज़ोरदार शव्दो में किया। उन्होने कहा कि वित्तीय व्यवस्था के विना किसी सरकार के लिए कोई काम करना संभव नही है। आर्थिक मागो को पास कर देने के वाद उसके लिए उचित वित्तीय प्रवंध असेम्वली का नैतिक कर्तव्य है। पंडित मोतीलाल नेहरू ने मालवीयजी की राय का ज़ोरदार शव्दो में समर्थन किया, और आशा व्यक्त की कि सव निर्वाचित सदस्य वित्त विधेयक को नामंजूर करके अपनी राजनीतिक माग को पुष्ट करेंगे।

अन्त मे ५७ मतो के विरुद्ध ६० मतो से अर्थात् ३ मतो की अधिकता से असेम्वली ने वित्त विधेयक नामजूर कर दिया। इस मतदान से यह स्पष्ट था कि यद्यपि साठ प्रतिशत से अधिक निर्वाचित सदस्य सरकार की गतिविधि से इतने क्षुब्ध थे कि वे अपने विश्वास और रोप को व्यक्त करने के लिए वित्त विधेयक नामंजूर करने को तैयार थे, पर कम से कम एक दर्जन निर्वाचित सदस्य, जिन्होने फरवरी मे पंडित मोतीलाल नेहरू के सशोधन का समर्थन किया था, वित्त विधेयक नामंजूर करने को तैयार नही थे।

राष्ट्रवादी समाचारपत्रो और शिक्षित नवयुवको द्वारा वित्त विधेयक के विरुद्ध किये गये मालवीयजी के इस भाषण का लगभग वैसा ही स्वागत हुआ जैसा राष्ट्रीय माग पर किये गये पंडित मोतीलाल नेहरू के भाषण का हुआ था।

ली कमीशन

९ जून सन् १९२४ को मालवीयजी ने सर पी० एस० शिवस्वामी अय्यर द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव में यह संशोधन पेश किया कि ली कमीशन द्वारा प्रस्तुत

---

१. वही, सन् १९२४, जि० ४, पार्ट ३, पृ० १९२४।

२. वही, सन् १९२४, जि० ४, पार्ट ३, पृ० १९२४।

प्रश्न को गत फरवरी में असेम्बली द्वारा पारित स्वशासन की माग से अलग नही किया जा सकता, और दोनो पर एक साथ ही विचार किया जा सकता है। इस संशोधन पर अपने विचार व्यक्त करते हुए मालवीयजी ने कहा कि कमीशन की सस्तुतियो से यह पता नही चल पाता कि उसे इस बात का भी ध्यान था कि भारत मे उत्तरदायी शासन प्रतिष्ठित होनेवाला है, और नयी शासन-व्यवस्था की आवश्यकताएँ आज जैसी नही होगी। कमीशन की कार्य-प्रणाली की आलोचना करते हुए उन्होने कहा कि बन्द कमरे मे गुप्त रूप से सरकारी अफ़सरो की गवाही लेना और फिर उन्हें प्रकाशित भी नही करना किसी तरह ठीक नही समझा जा सकता, क्योकि इससे पता ही नही चल पाता कि ये गवाहिया किस सिद्धान्त पर आधारित थी। उन्होने यह भी कहा कि जब तक ब्रिटेन में भारतीय सिविल सर्विस की भरती बन्द नही होती, तब तक पुरोगामी उत्तरदायी शासन की आशा नही की जा सकती। कमीशन की सस्तुतिया, उन्होने कहा, देश की सवैधानिक उन्नति में भारी बाधा पैदा कर सकती है, हानिकर सिद्ध हो सकती है। इनकी दोषपूर्ण संस्तुतियो को जनता के प्रति-निधि किसी हालत मे स्वीकार नही कर सकते।[1]

सितम्बर सन् १९२४ में पण्डित मोतीलाल नेहरू ने सारी नेशनलिस्ट पार्टी की ओर से एक बडा लम्बा चौडा संशोधन प्रस्तुत किया। मालवीयजी ने इसका समर्थन किया। दोनो ने बहुत ही युक्तियुक्त प्रभावशाली भाषणो द्वारा संशोधन की संस्तुतियो को पुष्ट किया। उन्होने माग की कि इग्लैड में सिविल सर्विस और मेडिकल सर्विस की भरती बन्द कर दी जाय। उन्होने यह भी माग की कि भारत में पब्लिक सर्विस कमीशन (लोकसेवा आयोग) स्थापित किया जाय, जिसका संविधान और कार्यक्षेत्र भारत की केन्द्रीय असेम्बली द्वारा निर्वाचित कमेटी की संस्तुतियो पर निश्चित किया जाय। उन्होने यह भी माग की कि राजकर्मचारियो को भरती करने और कन्ट्रोल करने के सब अधिकार भारत सरकार को हस्तान्तरित कर दिये जायें, और उनका प्रयोग केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान सभाओ द्वारा पारित क़ानूनो के आधार पर किया जाय। पडित मोतीलाल जी का संशोधन जिसमें मालवीयजी का सशोधन भी शामिल था, ४६ मतो के विरुद्ध ६८ मतो से पास हो गया।[2]

---

१. वही, सन् १९२४, जि० ४, पार्ट ४, पृ० २८२४-२८२९।
२. वही, सन् १९२४, जि० ४, पार्ट ५, पृ० ३१४७ ३१६४, ३३४६-३३५८।

मुडीमैन कमेटी

२८ फरवरी सन् १९२४ को पडित मोतीलाल नेहरू के राजनीतिक सुधार सम्बन्धी प्रस्ताव पर बोलते हुए सर मैलकम हेली ने कहा था कि सरकार मौजूदा शासन-व्यवस्था की प्रक्रियाओ की गतिविधि की जांच कराने को तैयार हैं। उन्होने वायदा किया था कि यदि गतिविधि के दोपो की जाच के बाद मौजूदा क़ानून के अन्तर्गत नियमो में परिवर्तन करके प्रगति की कोई सम्भावना और औचित्य प्रतीत हुआ तो सरकार उसकी संस्तुति करने को भी तैयार है। इसके बाद भारत सरकार ने क़ानून की प्रक्रिया की जाच के लिए, तथा व्यवस्था की गति-विधि मे सुधार की सम्भावनाओ पर विचार करने के लिए एक शासकीय कमेटी नियुक्त की। इसके कुछ समय बाद जुलाई मे गृह-सदस्य सर अलेकजेंडर मुडीमैन की अध्यक्षता में सरकार ने एक कमेटी गठित की जिसके अधिकाश सदस्य हिन्दुस्तानी राजनीतिज्ञ थे। गवर्नमेंट आफ़ इडिया ऐक्ट और नियमो के अन्तर्निहित दोपो तथा उसकी प्रक्रिया की कठिनाइयो की जाच करना, तथा उन कठिनाइयो और दोपो को दूर करने के लिए ऐक्ट के ढाचे, नीति और उद्देश्य के अनुरूप सुझाव देना इस कमेटी का काम था।

काफी जाच के बाद कमेटी ने ३ दिसम्बर सन् १९२४ को अपनी रिपोर्ट तैयार कर ली। कमेटी के अधिकांश सदस्यो ने निर्देश की शर्तों को ध्यान मे रखते हुए व्यवस्था की प्रक्रियाओं को सुधारने के निमित्त ऐक्ट के अन्तर्गत नियमो और कार्यविधि मे संशोधन करने के सम्बन्ध मे बहुत-सी संस्तुतियाँ की। पर सर तेज बहादुर सप्रू, सर पी० एस० शिवस्वामी अय्यर, डाक्टर आर० पी० पराजपेय, और मिस्टर मुहम्मद अली जिना ने अपनी अल्पसख्यक रिपोर्ट में बहुसंख्यक रिपोर्ट की बहुत-सी संस्तुतियो के औचित्य और महत्त्व को स्वीकार करते हुए निवेदन किया कि प्रस्तावित संशोधनो द्वारा राजनीतिक स्थिति की कठिनाइया दूर नही हो सकेंगी। उन्होने यह भी लिखा कि 'किसी ऐसी वैकल्पिक साक्रातिक व्यवस्था का आविष्कार भी नही किया जा सकता जो प्रशासनिक और राजनीतिक कठिनाइयो का सन्तोषपूर्वक समाधान कर सके'। उन्होने निवेदन किया कि उनके विचार मे प्रशासन में स्थायित्व को, तथा जनता के स्वेच्छिक सहयोग को प्राप्त करने के लिए जरूरी है कि स्वचालित विकास के प्रबन्धो के साथ सविधान को स्थायी आधार पर स्थापित किया जाय, और इस समस्या पर विचार करने के लिए रायल कमीशन या कोई दूसरी एजेन्सी नियुक्त की जाय।

राष्ट्रीय माग

७ दिसम्बर सन् १९२५ को गृह-सदस्य सर अलकजेंडर मुडीमैन ने केन्द्रीय असेम्बली में प्रस्ताव प्रस्तुत किया कि यह असेम्बली गवर्नर-जनरल-इन-कौंसिल को संस्तुति करती है कि वे 'सुधार जाच कमेटी' की वहुसख्यक रिपोर्ट मे 'निहित सिद्धान्त' को स्वीकार करें, और 'राज्य व्यवस्था में सुधार के लिए की गयी उनकी विस्तृत संस्तुतियो पर विचार करें।'

पण्डित मोतीलाल नेहरू ने इस प्रस्ताव पर एक सशोधन पेश किया। इसमें माग की गयी कि ब्रिटिश सरकार शीघ्र ही ब्रिटिश पार्लियामेंट मे भारत की सवैधानिक व्यवस्था में उन मूलभूत परिवर्तनो की घोपणा करे जिनसे देश मे उत्तरदायी शासन स्थापित हो सके। इस सशोधन में यह भी सस्तुति की गयी कि सरकार सब भारतीयो, यूरोपियनो और एग्लो-इडियनो के हितो का प्रतिनिधित्व करने वाली गोलमेज काफरेन्स या अन्य उपयुक्त एजेन्सी गठित करे जो इन सिद्धान्तो के आधार पर अल्पसख्यको के हितो को मान्यता प्रदान करते हुए शासन-व्यवस्था की योजना तैयार करे, जिसे केन्द्रीय असेम्बली के सामने स्वीकारार्थ पेश किया जाय, और उसकी स्वीकृति के वाद पार्लियामेंट को सवैधानिक कानून में उसे समाविष्ट करने को भेजा जाय। संशोधन मे जिन मूलभूत सिद्धान्तो को घोपणा की माग की गयी, वे थे—(१) भारत के राजस्व और उसकी राजकीय सम्पत्ति पर सब अधिकार भारतमन्त्री से गवर्नर-जनरल-इन-कौंसिल को हस्तान्तरित किये जायें, (२) सैनिक सेवाए, राजनीतिक और वैदेशिक विपय एवं पुराने कर्जे और भार की अदायगी के प्रश्नो को छोडकर जिनकी व्यवस्था भारत-मन्त्री के अधीन होगी, वाकी सब कामो के प्रवन्ध और व्यय के लिए गवर्नर-जनरल-इन-कौंसिल केन्द्रीय विधान मण्डल को उत्तरदायी होगी, (३) भारत-मन्त्री की कौंसिल खत्म कर दी जायगी, और उसका पद स्वशासित उपनिवेशो के मन्त्री के सदृश बना दिया जायगा, (४) भारतीय सेना का भारतीयकरण होगा, और सब प्रकार की सैनिक सेवाओ के लिए भारतीय भरती किये जायेंगे, तथा सेना के प्रबन्ध मे सेनाध्यक्ष की सहायता करने के लिए विधान-मण्डल को उत्तरदायी मन्त्री नियुक्त किया जायगा, (५) निश्चित समय के लिए सेना तथा राजनीतिक और वैदेशिक विपयो के प्रवन्ध पर गवर्नर-जनरल के विशेप साक्रान्तिक, सरक्षित और अवशिष्ट अधिकारो को छोडकर सब शासनिक विभागो का सचालन जनता द्वारा निर्वाचित विधान सभा को उत्तरदायी होगा, (६) प्रान्तो मे द्विविध शासन-व्यवस्था खत्म करके अन्त -प्रान्तीय और अखिल भारतीय

विषयो पर केन्द्रीय सरकार के साधारण और अवशिष्ट अधिकारो की रक्षा करते हुए प्रान्तो मे ऐकिक तथा स्वाधीन उत्तरदायी सरकार स्थापित की जायेगी, (७) कुछ निश्चित समय के बाद भारतीय विधानमण्डल को भारतीय सविधान में यथावश्यक संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा ।[1]

पडित मोतीलाल नेहरू ने प्रभावशाली ढग से 'सुधार जाच कमेटी' की अधिसंख्यक रिपोर्ट तथा प्रान्तीय और केन्द्रीय शासन-व्यवस्था की त्रुटियो की आलोचना करते हुए संशोधन में निहित मागो को पुष्ट किया । उन्होने कहा कि अब जब कि सरकार ने मौजूदा संविधान के निहित दोपो को करीब-करीब स्वीकार ही कर लिया है, इस सदन के लिए एक ऐसे उचित सविधान की माग करना जिसमें सब अधिकारो और हितो की रक्षा हो अवश्य ही बुद्धि-सगत है । आत्मनिर्णय ही, उन्होने कहा, नये सविधान का आधार हो सकता है। देशबन्धु चित्तरंजनदास के फरीदपुर भाषण के कुछ अंशो को उद्धृत करते हुए उन्होंने कहा कि यदि सरकार हृदय परिवर्तन के लिए तैयार हो, तो सहयोग की प्रक्रिया प्रशस्त हो सकती है ।[2]

सुधार जाच कमेटी के सदस्य सर पी० एस० शिवस्वामी अय्यर ने कहा कि अधिसख्यक रिपोर्ट की सभी संस्तुतिया अच्छी हैं, और उनका कार्यान्वयन लाभप्रद होगा, पर उससे समस्या का समाधान नही हो सकता । संशोधन की मागो का समर्थन करते हुए उन्होने कहा कि वे सब की सब लिबरल पार्टी ही की मागें हैं । सहयोग की कमी, उन्होने कहा, क्षमता की कमी का द्योतक नही है ।[3]

सुधार जाच कमेटी के दूसरे सदस्य जिना साहब ने वडे रोषभरे शब्दो मे लार्ड वर्केनहैड और सरकारी प्रवक्ताओ के विचारो की आलोचना की । उन्होने कहा कि सहयोग की कमी की दुहाई देकर राजनीतिक प्रगति मे अडचन डालना गलत है । उन्होने पूछा कि क्या सरकार चाहती है कि आज़ादी हासिल करने के लिए हिन्दुस्तान आयरलैड जैसी क्रान्तिकारी परिस्थिति पैदा करे । अन्त में उन्होंने कहा कि हिन्दुस्तान ने आज़ादी हासिल करना तय कर लिया है । या तो आप (सरकार) उचित भावना से उसका ढग, समय और परिमाण निश्चित करें, वरना वह स्वयं अपने लिए उन्हें निर्धारित कर लेगा ।[4]

---

१. वही, सन् १९२५, जि० ६, पार्ट २, पृ० ८५४-८५५ ।
२. वही, सन् १९२५, जि० ६, पार्ट २, पृ० ८५५-८६७ ।
३. वही, सन् १९२५, जि० ६, पार्ट २, पृ० ८७२-८७६ ।
४. वही, सन् १९२५, जि० ६, पार्ट २, पृ० ९३८-९४४ ।

अन्त में मालवीयजी ने बहुत ही आकर्षक ढग से आपत्तिहीन सयत भापा में सशोधन के विरोधियो की आलोचनाओ का उत्तर देते हुए उसका समर्थन किया। उन्होने सरकारी पक्ष की इस बात को स्वीकार किया कि पिछले साठ वर्षों में देश ने उन्नति की है, पर कहा कि यदि देश स्वतंत्र होता, तो अधिक प्रगति कर पाता। उन्होने सर मुहम्मद शफी के वक्तव्य को उद्‌धृत करते हुए कहा कि अधिसंख्यक रिपोर्ट तो वास्तव में अल्पसंख्यक रिपोर्ट है, क्योकि शफी साहब, जिन्होने इस अधिसंख्यक रिपोर्ट पर हस्ताक्षर किये है, स्वीकार करते है कि यद्यपि उसकी सस्तुतियो द्वारा दशा में कुछ सुधार हो सकता है, पर अल्पसख्यक सदस्यो द्वारा प्रस्तावित जाच ही भारतीय राजनीतिज्ञो को सन्तुष्ट कर पायेगी। उन्होने भूतपूर्व भारत-मन्त्री लार्ड ओलिवियर के भाषण का उद्धरण देते हुए आशा व्यक्त की कि भारत-मन्त्री लार्ड बर्केनहैड उनके विचारो पर ध्यान देकर अल्पसख्यक रिपोर्ट की मुख्य संस्तुति स्वीकार करेंगे। मालवीय जी ने कहा कि लार्ड बर्केनहैड की यह बात कि "हिन्दुस्तान को व्यक्तिक सत्ता (individual entity) बताना इतना ही निरर्थक है जितना यूरोप को व्यक्तिक सत्ता (entity) बताना" बिल्कुल ही बेतुकी है, क्योकि जबकि यूरोप बहुत से राज्यो में बंटा है जो आपस में बराबर युद्ध करते रहते है, हिन्दुस्तान की राजनीतिक सत्ता निर्विवाद है। मिस्टर कोक की शका का समाधान करते हुए उन्होंने कहा कि प्रत्येक राजनीतिक दार्शनिक की राय में, जिसने इस विपय पर विचार किया है, वे लोग जो एक देश में रहते है, जो एक प्रभुसत्ता की प्रजा है, जो एक शासन-व्यवस्था से शासित है, जो एक विधि-शृंखला से, जो उन सब को समान रूप से प्रभावित करती है, बधे है एक राष्ट्र बनाते है, चाहे वे धर्मो और मतो में किसी तरह भी विभाजित हों।[1] इस बात को स्वीकार करते हुए कि कतिपय बातो में हिन्दुओ और मुसलमानो में भारी मतभेद है, मालवीयजी ने कहा कि यदि सन् १९१६ में हिन्दू-मुस्लिम समझौता हो सकता था, तो वह अब भी हो सकता है। सरकार हमारी सर्वसम्मत प्रस्तुत माग स्वीकार करे, उस पर अमल करना शुरू करे, बाकी राजनीतिक प्रश्न भी पारस्परिक परामर्श और समझौता द्वारा तय कर लिये जायेंगे। असहयोग की मनोभावना का मूल कारण, उन्होने कहा, जनता की यह धारणा है कि सरकार उनपर विश्वास नही करती, उनकी बात नही सुनती। सहयोग की प्रक्रिया को बढाने के लिए सरकार को अपनी मनोवृत्ति बदलनी होगी। उन्होने कहा कि

१. वही, सन् १९२५, जि० ६, पार्ट २, पृ० ९९६-९९७।

जब सरकार भी स्वीकार करती है कि द्विविध-शासन सफल हुआ यह नही कहा जा सकता, तब उसे शालीनता से दफ़ना क्यों न दिया जाय ? उन्होने कहा कि केन्द्रीय असेम्बली पार्लियामेट के अधिकार को चुनौती नही देती, वह तो शान्ति और युद्ध के प्रश्न पर उसका अधिकार स्वीकार करती है। वह कई विषय निश्चित समय के लिए पार्लियामेंट को उत्तरदायी भारत-मन्त्री को सौंपने को तैयार है। वह तो केवल यह चाहती है कि देश के आन्तरिक प्रशासन के लिए वे व्यक्ति भारत की कार्यपरिषद् के सदस्य नियुक्त किये जाये जिन्हें जनता के प्रतिनिधियो का विश्वास प्राप्त हो, और वे असेम्बली को अपने कार्य के लिए उत्तरदायी हो।[1] उन्होने कहा कि यदि सरकार रायल कमीशन नियुक्त करना चाहती है तो कर सकती है। पर वह कमीशन ऐसा होना चाहिए जिसमें जनमत के सब प्रमुख रंगो के विश्वसनीय प्रतिनिधि शामिल हो, ताकि उसे सम्पूर्ण जनता का विश्वास प्राप्त हो।[2]

सर अलेकजेंडर मुडीमैन ने मालवीयजी के इस भाषण की प्रशसा की, पर उनकी बात मानने से इनकार कर दिया। फिर भी मोतीलालजी का संशोधन भारी बहुमत से स्वीकार हो गया। सभी निर्वाचित हिन्दुस्तानी सदस्यो ने, जो वहा उस समय उपस्थित थे, उसके पक्ष मे अपना मत दिया। मनोनीत गैर-सरकारी भारतीय सदस्यो मे सर्वश्री शिवस्वामी अय्यर, एन० एम० जोशी, डाक्टर एस० के० दत्त प्रभृति सज्जनो ने संशोधन के पक्ष में राय दी। नवाब सर अब्दुल कृयूम जैसे दो चार गैर-सरकारी मनोनीत भारतीयो ने ही संशोधन के विरोध में राय दी। सरकारी अफसरो के अतिरिक्त यूरोपियनो के प्रतिनिधियो और अंग्रेज मनोनीत सदस्यो का समर्थन ही सशोधन के विरुद्ध सरकार को प्राप्त हो सका।

मानव स्वतत्रता की पुष्टि

मानव-स्वतंत्रताओ का संरक्षण और समुचित आदर मालवीयजी सभ्य शासन का पुनीत कर्तव्य समझते थे। इसीलिए उन्होने अपने भाषणो में सरकार की दमननीति की आलोचना करते हुए बार-बार माग की कि सब दमनकारी क़ानून वापस लिये जाये। साधारण क़ानूनो द्वारा ही विधिवत् राजनीतिक अपराधो की भी जाच की जाय। तथाकथित राजनीतिक अपराधी छोड दिये जायें। वरना उन पर बाक़ायदा मुक़दमा चलाया जाय, उन्हें अपने को निर्दोष

१. वही, सन् १९२५, जि० ६ पार्ट, २ पृ० ९९९।
२. वही, सन् १९२५, जि० ६ पार्ट, २ पृ० १००१।

सिद्ध करने का मौका दिया जाय। उन्होने यह भी माग की कि जनता की मौलिक, नागरिक, और धार्मिक स्वतन्त्रताओ को पुष्ट किया जाय, और दमनकारी तरीको से उनका अपहरण कर आतक और अत्याचार की स्थिति पैदा न की जाय। उन्होने सरदार खडगसिह की रिहाई के प्रस्ताव का समर्थन किया,[1] और सरकार की भर्त्सना करते हुए माग की कि श्री बी० जी० हारनीमैन का निष्कासन रद्द किया जाय[2], और कहा की कि मौलाना हसरत मुहानी पर लगाया गया आरोप वापस लिया जाय, वरना उन पर विधिवत् मुकदमा चलाया जाय। उन्होने यह भी माग की कि तुर्की को जानेवाले खिलाफत के शिष्टमण्डल के सदस्यो को विधिवत् पासपोर्ट दिये जायें, और उन्हे वहा जाने से न रोका जाय। जाब्ता फौजदारी की दफा १४४ द्वारा नागरिको की शान्तिपूर्ण गतिविधि पर प्रतिबन्ध लगाने की शासनिक प्रवृत्ति की निन्दा करते हुए उन्होने कहा कि उन्होने स्वय छ बार दफा १४४ पर आधृत आज्ञा की अवहेलना करते हुए भाषण किये हैं, पर एक बार भी कही उसके कारण शान्ति भंग नही हुई।

मालवीयजी ने कहा कि दफा १४४ के जरिये सिक्खो की धार्मिक स्वतंत्रता पर प्रतिबन्ध लगाना, और उसकी अवहेलना करने पर उन्हे आहत करना, बुरी तरह मारना पीटना सर्वथा अन्याय है। सिक्खो पर किये जानेवाले अत्याचारो की बार-बार भर्त्सना करते हुए मालवीयजी ने माग की कि सिक्खो के धार्मिक अधिकारो की रक्षा की जाय, उनकी मागें स्वीकार की जाये, उनके साथ मानवोचित व्यवहार किया जाय, सिक्ख कैदियो के साथ न्याय हो, और उन्हे छोड दिया जाय।[3]

मालवीयजी केन्द्रीय असेम्बली में महाराजा नाभा के प्रश्न पर भी सरकार की आलोचना करना चाहते थे। पर असेम्बली के अध्यक्ष ने उन्हें ऐसा करने की इजाजत नही दी। पर पजाब हिन्दू सभा के अधिवेशन में उन्होने नाभा की स्थिति का विश्लेषण करते हुए कहा . "अगर फुलकियो की रियासतो के एक बडे राजा को गद्दी से उतारे जाने पर सिक्खो को रंज हो, तो किसी इसानी या ईश्वरीय नियम से सिक्खो का ऐसा अनुभव अनुचित नही कहा जा सकता"।[4] उनके वावेला पर कडा प्रतिबन्ध लगाना और इसके लिए उन्हें

---

१. वही, सन् १९२४, जि० ४ पार्ट, २ पृ० ९९४-१००० ।
२. वही, सन् १९२४, जि० ४ पार्ट, २ पृ० ८०२-८०३ ।
३ वही, सन् १९२४, जि० ४, पार्ट ३, पृ० १९४१-१९४२ ।
४ सीता राम चतुर्वेदी : महामना पंडित मदनमोहन मालवीय, खंड २. पृ० ११५ ।

मारना पीटना सर्वथा अनुचित है। सिक्खो द्वारा ग्रंथ साहब के शान्तिमय पाठ पर रोक लगाने का, मालवीयजी ने कहा, सरकार को कोई न्यायोचित अधिकार नही है। उन्होंने कहा कि जिन सिक्खो ने सख्त कष्ट सहते हुए भी अपना हाथ नही उठाया, उनपर "गोली चला देना किसी भी राज्य के लिए लज्जा और शर्म की बात है।"[१] सरकार को समझना चाहिए कि जिसके पास जितनी ही अधिक ताक़त हो, उतनी ही अधिक उसकी ज़िम्मेदारी होती है।[२] सिक्खो की समस्या का न्यायोचित समाधान निश्चय ही सरकार का कर्तव्य है।

सितम्बर सन् १९२५ में मालवीयजी ने सिक्खो द्वारा स्वीकृत सिक्ख गुरु द्वारा (सप्लीमेंटरी) बिल का समर्थन करते हुए सरकार से अनुरोध किया कि सिक्ख वन्दी बिना किसी शर्त के छोड दिये जायें।[३]

लोक न्याय की पुष्टि

लोक न्याय की पुष्टि तथा मानव-स्वतंत्रताओ के संरक्षण के निमित्त मालवीयजी ने श्री विट्ठल भाई पटेल द्वारा प्रस्तुत 'स्पेशल लाज़ रिपील बिल' का[४], तथा सर हरिसिंह गौड द्वारा प्रस्तुत 'क्रिमिनल ला (अमेंडमेंट) ऐक्ट सन् १९०८' की बहुत सी धाराओ को रद्द करने का समर्थन किया। उन्होने काफी विस्तार के साथ इस कानून के दुरुपयोग की चर्चा करते हुए कहा कि जब वह अधिनियम जो "डकैतो और अराजकतावादियो" और क्रान्तिकारियो के नियंत्रण के लिए बनाया गया था, "उन लोगो को दण्डित करने और उनकी अन्तरात्मा (स्पिरिट) को कुचलने के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है जिन्होने अपराध नही किया," तब यह स्पष्ट है कि उसका "सावधानी, मर्यादा और ईमानदारी से प्रयोग नही हो रहा है," और उसे रद्द कर देना ज़रूरी है।[५] सरकार के विरोध के बावजूद ये दोनो विधेयक बहुमत से पास हो गये।

सितम्बर १९२४ मे मालवीयजी ने बंगाल आर्डिनेन्स १९२४ के विरोध में प्रस्तुत प्रस्ताव का समर्थन किया। मार्च सन् १९२५ में उन्होने 'बंगाल क्रिमिनल

---

१. वही, पृ० ११५। २. वही, पृ० ११५।
३ लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स, सन् १९२५, जि० ६, पार्ट १, पृ० ५३४-५३५।
४. वही, सन् १९२५, जि० ५, पार्ट १, पृ० ९२४-९३३।
५. वही, सन् १९२४, जि० ४, पार्ट ५, पृ० ३५३५-३५३९।

संशोधन (सप्लीमेंटरी) विल' का विरोध किया, और जब असेम्बली द्वारा उसके रद्द किये जाने पर गवर्नर-जनरल ने उसे पास करने की संस्तुति की, तब मालवीय जी ने काफ़ी कडे शब्दो में सरकार का विरोध किया। उन्होने कहा कि इस प्रकार की सस्तुति अवश्य ही "अवैधानिक" है, यद्यपि भारत की व्यवस्था इसकी इजाज़त देती है। इस तरीके से उस विधेयक को पास कराने का प्रयत्न, जिसे जनता के प्रतिनिधियो ने असेम्बली में रद्द कर दिया हो, "भारत के जनमत का घोर अपमान" हैं, और भारत की "संवैधानिक अवस्था को नग्नरूप में खोल कर रख देता है।" विधेयक की कडी समीक्षा करते हुए उन्होने कहा कि वह अनावश्यक है। जिन ९६ व्यक्तियो को वंगाल अध्यादेश के अन्दर गिरफ्तार करके नजरबन्द किया गया है, उनमें से किसी एक के विरुद्ध भी मुक़दमा चला कर "किसी न्यायालय में उनका अपराध सिद्ध नही किया गया है।" इस प्रकार के "अध्यादेश को पाच वर्ष तक चालू रखना निन्दनीय है"।[1]

सीमाशुल्क नीति

मार्च १९२४ में बजट पर भाषण करते हुए मालवीयजी ने राष्ट्रहित की दृष्टि से मुद्रानीति को निर्धारित करने की, सूती कपडो पर उत्पादन शुल्क को ख़त्म करने की, तथा आयात शुल्क द्वारा भारतीय उद्योगो को वित्तीय संरक्षण प्रदान करने की माग की। इन मागो को वे समय-समय पर दोहराते रहे, और उनको पुष्ट करनेवाले प्रस्तावो का समर्थन करते रहे। सितम्बर सन् १९२४ में उन्होने श्री कस्तूर भाई लाल भाई द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव का समर्थन करते हुए माग की कि सूती कपडो पर उत्पादन शुल्क (एक्साईज़ ड्यूटी) ख़त्म की जाय।[2]

फौलाद संरक्षक विधेयक

जब सन् १९२४ में सरकार ने फ़ौलाद सरक्षक विधेयक असेम्बली में प्रस्तुत किया, तव मालवीयजी ने किसी अश में उसका स्वागत किया। दूसरे भारतीय सदस्यो की तरह उन्हें भी इस वात की खुशी थी कि सरकार ने आख़िर भारत के वहुत बडे उद्योग को आयात-शुल्क द्वारा वित्तीय संरक्षण देने का निश्चय किया। उन्हें इस बात की भी खुशी थी कि सरकार आयात-शुल्क से प्राप्त धन के एक अश को वदान्यता (वाउन्टी) के रूप में टाटा तथा दूसरे फ़ौलाद के

---

१. वही, सन् १९२५, जि० ५, पार्ट ३, पृ० २८७५-२८७७।
२. वही, सन् १९२४, जि० ४, पार्ट ५, पृ० ४०७२-४०७६।

भारतीय देशज उद्योगो को देना चाहती है। पर प्रस्तुत विधेयक में नये विदेशी कारखानो को भी वदान्यता (वाउन्टी) दिये जाने की व्यवस्था थी। यह वात मालवीयजी तथा वहुत से दूसरे भारतीय सदस्यो को ठीक नही लगती थी। इसलिए विधेयक के इस अश का उन्होंने डट कर विरोध किया, और माग की कि विधेयक के इस अश को निकाल दिया जाय। मालवीयजी को भय था कि वहुत से विदेशी व्यापारी वित्तीय संरक्षण से लाभ उठाकर यहाँ अपना औद्योगिक आधिपत्य स्थापित करना चाहते है। उनका कहना था कि यथावश्यक विदेशी पूंजी का प्रयोग एक वात है, और देश के औद्योगिक जीवन को विदेशी पूंजी-पतियो के हाथ में सौंप देना दूसरी वात है। जहा किसी स्थिति में पहली चीज अनिवार्य और लाभप्रद है, वहाँ दूसरी चीज़ सर्वथा हानिकर और भयावह है। उनका यह भी कहना था कि देशज उद्योगो की उन्नति के लिए जनता को कुछ आर्थिक कष्ट सहने के लिए प्रेरित और वाध्य किया जा सकता है, पर विदेशियो के व्यापार की अभिवृद्धि के लिए भारतीय जनता को कष्ट सहने के लिए वाध्य करना अन्याय होगा। किसी सभ्य देश मे ऐसा नही होता, और यहा भी ऐसा करना अवश्य ही अनुचित होगा।[1] उन्होने कहा कि मै किसी ऐसे देश को नही जानता जिसमे "साधारण कर-दाताओ पर कर लगाया गया हो, और करो के द्वारा वदान्यता (वाउन्टी) दी गयी हो, केवल देशज उद्योगो को ही नही वल्कि उन उद्योगों को भी जो देशज न हो और सम्पूर्णतः विदेशी हो।"[2] अधिकाश निर्वाचित भारतीय सदस्य मालवीयजी की वात से सहमत थे, पर सरकार मालवीयजी की वात मानने को तैयार नही थी।

मालवीयजी स्वयं श्रमिक वर्ग के नेता श्री एन० एम० जोशी की इस वात को स्वीकार करते थे कि उद्योगो के संरक्षण के साथ मजदूरो की न्यायसगत मागो का भी संरक्षण होना चाहिए। इस सम्बन्ध मे उनका कहना था कि जब कोई कम्पनी केन्द्रीय असेम्वली से संरक्षण मागने आती है, तव असेम्वली का, जो जनता का, न केवल पूंजीपतियो का, प्रतिनिधित्व करती है, अधिकार है कि वह इस आश्वासन का आग्रह करे कि मजदूरो की युक्तिसंगत उचित शिकायतो पर विचार किया जायगा, तथा जहा आवश्यक होगा वहा उन्हें दूर किया जायगा।[3]

---

१. वही, सन् १९२४, जि० ४, पार्ट ३, पृ० २३२०-२३२४।
२. वही, सन् १९२४, जि० ४, पार्ट ३, पृ० २३२८।
३. वही, सन् १९२४, जि० ४, पार्ट ३, पृ० २३२३।

साराश, जबकि निर्वाचित सदस्य कुछ संशोधनो के साथ विधेयक को पास करना चाहते थे, सरकार को वे सशोधन स्वीकार नही थे। सरकार ने विधेयक को वापस लेने की धमकी दी। गतिरोध को दूर करना आवश्यक समझ पडित मोतीलाल नेहरू ने दोनों पक्षो को समझौता करने की सलाह दी, और उनके माध्यम से सरकार और जनता के कतिपय प्रमुख प्रतिनिधियो में समझौता हो गया। इसके आधार पर पण्डित मोतीलालजी ने सशोधन प्रस्तुत किया कि नयी कम्पनियो को भी गवर्नर-जनरल-इन-कौंसिल द्वारा वदान्यता (बाउन्टी) दी जा सकती हैं, बशर्ते कि (१) वह इडियन कम्पनी ऐक्ट, १९१३ के अन्दर बनी और पजीकृत हुई हो, (२) उसके शेयर कैपिटल की धनराशि कम्पनी के परिपत्र मे रुपये में व्यक्त की गयी हो, (३) डाइरेक्टरो का एक अश, जिसे सरकार निर्धारित करे, भारतीय हो, (४) वह माल तैयार करने की (मैनूफैक्चरिंग) प्रक्रिया में भारतीयो को शिल्प वैज्ञानिक (प्राविधिक) प्रशिक्षण की सुविधाएँ मुहैया करे।

मालवीयजी को यह सशोधन स्वीकार था, और उनकी अनुमति से असेम्बली ने इसे स्वीकार कर लिया। पर चूँकि मालवीयजी इससे पूरे तौर पर संतुष्ट नही थे, उन्हाने यह सशोधन भी प्रस्तुत किया कि असेम्बली की सहमति से ही नयी कम्पनियो को वदान्यता (बाउन्टी) दी जा सकेगी।[1] अर्थ-सदस्य मिस्टर ब्लेकेट ने मालवीयजी के तर्क का उत्तर न देते हुए उनकी वाक्पटुता का तिरस्कार करते हुए उनके इस सशोधन को स्वीकार करने से इनकार कर दिया। असेम्बली ने भी इसे नामजूर कर दिया।

इस पर अन्तिम बार बोलते हुए मालवीयजी ने कहा कि वह न इसका विरोध कर सकते है और न समर्थन। उन्होने कहा कि वह इसका समर्थन नही करेंगे, क्योकि इसने विदेशी पूँजी की मात्रा पर जो इस देश मे आ सकेगी, कोई सीमा नही निश्चित की है, और असेम्बली की स्वीकृति के लिए इस सम्बन्ध में प्रस्ताव प्रस्तुत करने को सरकार को बाध्य नही किया है, वह इसका विरोध भी नही करेंगे, क्योकि भारतीय फौलाद उद्योग को यह सरक्षण मुहैया करता है, और क्योकि नयी कम्पनियो की बाउन्टी (वदान्यता) का प्रश्न असेम्बली के सामने पेश करना सरकार के लिए सम्भव है।[2]

विधेयक को मोतीलालजी के सशोधन सहित असेम्बली ने पास कर दिया।

---

१. वही, सन् १९२४, जि० ४, पार्ट ३, पृ० २६६७।

२. वही, सन् १९२४, जि० ४, पार्ट ३, पृ० २७२९।

मुद्रा और विनिमय कमीशन

जनवरी सन् १९२५ में श्री वंकटपति राजू ने प्रस्ताव किया कि विनिमय और मुद्रा के सम्पूर्ण प्रश्न की जाच करने को, और उनके संबंध में संस्तुति करने को शीघ्र ही एक ऐसी कमेटी नियुक्त की जाय जिसका अध्यक्ष एक भारतीय हो, और जिसके अधिकाश सदस्य भी भारतीय हो। मालवीयजी ने इसका समर्थन करते हुए वहुत ही मधुर भापा में सरकार से इसकी वातें मानने का अनुरोध किया।[1] पर सरकार ने इस प्रश्न पर जाच करने की आवश्यकता को स्वीकार करते हुए प्रस्ताव को शर्तें मानने से इनकार कर दिया। सरकार के विरोध के वावजूद ३८ वोटो के मुकावले में ५२ वोटो से प्रस्ताव पास हो गया।

अगस्त सन् १९२५ में सम्राट् ने मुद्रा और विनिमय कमीशन नियुक्त किया। इसके ६ सदस्य अंग्रेज़ और चार भारतीय थे। इसका अध्यक्ष भी एक अंग्रेज़ ही था। जिना साहव ने २० अगस्त को इस पर विचार करने के लिए 'काम रोको प्रस्ताव' प्रस्तुत किया। भारतीय सदस्यो ने कमीशन की बनावट पर आपत्ति की। सरकारी प्रवक्ताओ ने जोश में भरकर कहा कि इस प्रकार के प्रश्न की जाच के लिए निष्पक्ष और क्षमता-सम्पन्न व्यक्ति ही नियुक्त किये जा सकते हैं। इस पर कुछ गैर-सरकारी सदस्यो ने कमीशन के कतिपय सदस्यो की क्षमता और निष्पक्षता पर भी टीका टिप्पणी कर दी। इससे तनाव और कटुता वढ गयी। मालवीयजी ने कमीशन के किसी सदस्य के व्यक्तित्व पर छीटाकशी को अनुचित वताते हुए सरकार से अनुरोध किया कि वह कमीशन में तीन हिन्दुस्तानी सदस्यो को और नियुक्त करने की सिफारिश करे।[2] पर सरकार इसके लिए राजी नही हुई। इस पर सरकार के विरोध के वावजूद ४५ वोटो के मुकावले मे ६५ वोटो से प्रस्ताव पास हो गया। सभी प्रगतिशील निर्वाचित भारतीय सदस्यो के साथ-साथ मनोनीत सदस्यो में डाक्टर एस० के० दत्त, श्री एन० एम० जोशी, सर शिवस्वामी अय्यर, तथा श्री चिम्मन लाल सीतलवाद ने भी प्रस्ताव के पक्ष में मत दिये।

वजट पर बहस

मार्च सन् १९२५ में स्वराज्य पार्टी और इंडिपेंडेंट पार्टी में खिचाव पैदा हो गया। वे सव वातो में एक राय नही हो सके, जिसके कारण कई मामलो में राष्ट्रीय पक्ष को पराजय का सामना करना पडा। स्वराज्य पार्टी के सदस्यो

---

१. वही, सन् १९२५ जि० ५, पार्ट १, पृ० १८५-१८८।

२. वही, सन् १९२५ जि० ६, पार्ट १, पृ० १८९-१९१।

द्वारा प्रस्तुत कटौती और विलोपन के बहुत से प्रस्ताव भारी बहुमत से गिर गये, और सरकार की बहुत सी आर्थिक मागें आसानी से मंजूर हो गयी, फिर भी अफीम, सूती कपडो पर उत्पादन शुल्क आदि कुछ विपयो से सम्बन्धित मागो पर कटौती के प्रस्ताव पास हो गये, और असेम्बली ने फिर एक बार उत्पादन शुल्क को उठा लेने की माग को पुष्ट किया, तथा सरकार की अफ़ीम सम्बन्धी नीति की आलोचना की। मालवीयजी ने माग की कि देश में अफ़ीम की खपत कम की जाय, तथा विदेशो को औपधीय प्रयोजनो के लिए ही अफ़ीम भेजी जाने की व्यवस्था की जाय।

१४ मार्च सन् १९२५ को पडित मोतीलाल नेहरू ने प्रस्ताव किया कि वजट में से कार्यकारिणी परिषद् (एक्जीक्यूटिव) के लिए की गयी ६२०००) के अनुदान की माग निकाल दी जाय। जिना साहव और मालवीयजी दोनो ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया। मोतीलालजी ने अपने इस प्रस्ताव को केन्द्रीय सरकार के विरुद्ध निन्दा-प्रस्ताव घोपित करते हुए सरकार की गति-विधि, नीति-रीति की बहुत ही प्रभावशाली ढंग से कडी आलोचना की। जिना साहव ने भी बहुत ही ज़ोरदार शब्दो मे सरकार के कार्यों की समीक्षा करते हुए राष्ट्रीय पक्ष को पुष्ट किया।

मालवीयजी ने अपने भाषण में सरकार की आलोचना करते हुए कहा कि केन्द्रीय शासन-व्यवस्था "एक ऐसी मिश्रित (दोगली) व्यवस्था है जो न तो शुद्ध निरंकुशता है और न ही लोकतान्त्रिक सवैधानिक सरकार के सादृश्य है।" उन्होने माग की कि गृह और वित्त विभाग भारतीय सदस्यो को हस्तान्तरित किये जायें, राष्ट्रीय रक्षा के विभाग का कार्यभार एक भारतीय सदस्य को सौपा जाय, वैदेशिक तथा राजनीतिक विभाग का भार भी गवर्नर-जनरल के वजाय किसी दूसरे सदस्य के सुपुर्द किया जाय। उन्होने यह भी माग की कि केन्द्रीय असेम्वली को रियासतो के मामलो पर भी विचार करने का अधिकार प्राप्त हो। उन्होने इस अवसर पर कोहाट मे हिन्दुओ पर किये गये अत्याचारो की चर्चा करते हुए उपद्रवो की जाच के लिए एक स्वतंत्र जाच कमेटी नियुक्त करने की भी माग की।[1]

इडिपेंडेंट पार्टी के मुसलमान सदस्यो को मालवीयजी की यह वात बुरी लगी। जिना साहव ने भी मालवीयजी के इस काम को उचित नही समझा। उन्होने कहा कि अब जबकि वहा एक प्रकार से शान्ति कायम हो गयी है,

१. वही, सन् १९२५, जि० ५, पार्ट ३, पृ० २३६९-२३७२।

जाच कमेटी की नियुक्ति करके स्थिति को गंदा करना ठीक नही होगा। मोती लालजी का प्रस्ताव ४८ मतो के विरुद्ध ६५ मतो से पास हो गया।

वित्त विधेयक

१६ मार्च सन् १९२५ को श्री विट्ठल भाई पटेल ने वित्त विधेयक पर बोलते हुए असेम्बली से अपील की कि इस पर विस्तार से विचार ही नही किया जाये। उन्होंने अपने भाषण मे जिना साहब पर भी छीटाकशी की। उन्होने कहा कि जिना साहब तो द्विविध शासन (डायरकी) की सफलता पर विश्वास करते थे। जिना साहब को पटेल साहब की छीटाकशी बुरी लगी। उन्होंने मुंह बिगाड कर उसका जवाब दिया, जिसका पटेल साहब ने प्रत्युत्तर दिया। पटेल साहब का सुझाव असेम्बली ने स्वीकार नही किया।

१८ मार्च सन् १९२५ को पंडित मोतीलाल नेहरू ने वित्त विधेयक को रद्द कर देने के पक्ष में बहुत ज़ोरदार भाषण किया। जिना साहब और श्री विपिन चन्द्र पाल ने मोतीलालजी के विचार का विरोध किया। विवाद ने पारस्परिक प्रत्यारोप और व्यक्तिगत कटाक्ष का रूप धारण कर लिया, भयकर स्थिति पैदा कर दी। प्रमुख नेताओ के वादविवाद से सरकारी पक्ष खुश था। बहुत से राष्ट्रवादी इस निरर्थक विवाद से दुःखी थे। कुछ राष्ट्रवादी सदस्य जिना साहब की इस बात से सहमत थे कि जब सब प्रगतिशील तत्त्वो ने मिलकर दो दिन हुए मोतीलालजी के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए केन्द्रीय कार्यपरिषद् पर अर्थात् भारत सरकार पर अपना रोष प्रकट ही कर दिया था, तब वित्त विधेयक को रद्द कर देने का प्रस्ताव पेश करके आपस मे विवाद खडा करने की कौन जरूरत थी ? इस कटुता की स्थिति मे चुप रहना ही मालवीयजी ने उचित समझा। वित्त विधेयक पर न वे बोले, और न उन्होने अपना मत दिया। ४० मतो के विरोध में ७५ मतो से वित्त विधेयक स्वीकार हो गया।

मालवीयजी की गतिविधि

स्वराज्य पार्टी और इंडिपेंडेंट पार्टी मे बढते हुए वैमनस्य से मालवीयजी दुःखी थे। वे दोनो पार्टियो के पारस्परिक सौहार्द को राष्ट्र-कल्याण की वृद्धि के लिए आवश्यक समझते थे। उनके लिए स्वराज्य पार्टी का विरोध करते हुए सरकार का समर्थन करना असह्य था। इसलिए उन्होने इंडिपेंडेंट पार्टी के उन निर्णयो को मानने से इनकार कर दिया, जिनमें उसने स्वराज्य पार्टी के विरुद्ध सरकार के पक्ष में वोट देना निश्चित किया। ऐसे अवसरो पर मालवीयजी या तो तटस्थ रह जाते, या खुल कर स्वराज्य पार्टी का समर्थन कर देते थे। इस

तरह जब स्वराज्य पार्टी की इच्छा के विरुद्ध इडिपेडेंट पार्टी ने मार्च सन् १९२५ मे वित्त विधेयक का समर्थन किया, तब मालवीयजी तटस्थ रहे। इसी तरह जब जिना साहब ने पडित मोतीलाल नेहरू का विरोध करते हुए रेलवे की मागो पर सरकार का समर्थन किया, तथा जब सेना विभाग के खर्चे पर जिना साहब ने सरकार के समर्थन मे वोट दिया, तब मालवीयजी ने स्वराज्य पार्टी का साथ दिया। इसी तरह भारत-मन्त्री के अधीन इंगलैंड में होने वाले व्यय के अनुदान के प्रश्न पर जिना साहब तटस्थ रहे, उनकी पार्टी के अधिकाश सदस्यो ने सरकार का समर्थन किया, मालवीयजी ने विपक्ष मे वोट दिया।

सहयोग

इस विषम परिस्थिति मे भी स्वराज्य पार्टी और इडिपेंडेंट पार्टी ने कुछ महत्त्वपूर्ण मामलो मे मिलकर काम किया। १९ मार्च सन् १९२५ को इडिपेंडेंट पार्टी ने विट्ठल भाई पटेल द्वारा प्रस्तुत 'स्पेशल लाज् रिपील बिल' के पक्ष मे वोट देकर उसे पास कराया। इसी तरह २० अगस्त सन् १९२५ को 'मुद्रा और विनमय कमीशन' पर जिना साहब के काम रोको प्रस्ताव का स्वराज्य पार्टी ने समर्थन किया। सितम्बर सन् १९२५ में राजनीतिक सुधारो के सम्बन्ध में पडित मोतीलाल नेहरू द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव का इडिपेंडेंट पार्टी ने समर्थन किया। जनवरी सन् १९२६ में दोनो पार्टियो ने मिलकर रेलवे बोर्ड में भारतीयो की नियुक्ति पर आग्रह करते हुए रेलवे बोर्ड से सम्बन्धित अनुदान की माग को बजट मे से निकाल देने का प्रस्ताव पास कराया, तथा माग की कि राजनीतिक नजरबन्द रिहा किये जायें, उन पर लगे सब प्रतिबन्ध हटा दिये जायें।

कौंसिल का बाइकाट

काग्रेस के आदेश का पालन करते हुए मार्च सन् १९२६ में पडित मोतीलाल नेहरू ने स्वराज्य पार्टी के सदस्यो द्वारा असेम्बली के बहिष्कार का निर्णय घोषित किया। उसके बाद असेम्बली मे निर्वाचित सदस्यो की शक्ति आधी रह गयी, और वह सरकार के हाथ की कठपुतली बन गयी। उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी प्रस्ताव को पास कराना नामुमकिन हो गया।

दोषारोपण

गृह-सदस्य सर अलेक्जेंडर मुडीमैन ने स्वराज्य पार्टी के निर्णय पर खेद प्रकट करते हुए उसे ही असहयोग की परिस्थिति के लिए उत्तरदायी ठहराया, और कहा कि इससे कोई लाभ होनेवाला नही है। कुछ दिन बाद एक प्रस्ताव पर बोलते हुए जिना साहब ने स्वराज्य पार्टी पर छीटाकशी की। उन्होने कहा कि

जबकि इंडिपेंडेंट पार्टी और उदार दलीय सदस्य सरकार के साथ सहयोग कर रहे हैं, केवल सात हजार सदस्यो की काग्रेस पार्टी असहयोग करती है, और दावा करती है कि वह सारे देश का कार्य है।

मालवीयजी का उत्तर

मालवीयजी ने इस असहयोग की परिस्थिति के लिए सरकार के व्यवहार को ही उत्तरदायी ठहराया। उन्होंने कहा कि जनता की माग को पूरा करने के लिए सरकार को जो कुछ करना चाहिए था वह उसने नही किया और उसे अपना रुख़ बदलना चाहिए।[1] उन्होने यह भी कहा कि सरकार की वित्तीय और राजनीतिक नीतियो के प्रति नापसन्दगी ज़ाहिर करने के लिए वित्त विधेयक को रद्द कर देना सर्वथा वैध है, उसे अनुचित बताना ग़लत है, और उसके लिए पडित मोतीलाल नेहरू से कही अधिक वे उत्तरदायी हैं, क्योकि उन्होंने ही उसे रद्द करने की सदन से अपील की थी।[2] उन्होने कहा कि राष्ट्रीय माग के सम्बन्ध में जनता का प्रतिनिधित्व काग्रेस अवश्य करती है। देश में शीघ्र ही उत्तरदायी सरकार की स्थापना हो, यह काग्रेस की दृढ, तीव्र, अमिट इच्छा है, और यही कुल मिलाकर देश की मनोभावना है। सरकार के व्यवहार की कडी आलोचना करते हुए मालवीयजी ने कहा कि जब सरकार ने सभी राष्ट्रवादियो की संयुक्त राजनीतिक माग को ठुकरा दिया, तब वह किस मुंह से काग्रेस पार्टी को असहयोग के लिए दोषी ठहराते हुए सहयोग की माग करती है। सरकार और जनता के प्रतिनिधियो मे अच्छे सम्बन्ध नि:सन्देह आवश्यक हैं, पर यह तभी सम्भव है जब सरकार शासन को जनमत के अनुसार जनहित में बदलने को तैयार हो। सरकार की गतिविधि, उसकी नीतिरीति की बहुत ही प्रभावोत्पादक ढंग से कडी आलोचना करते हुए उन्होंने मौजूदा शासन-व्यवस्था को बदलने पर ज़ोर दिया। उन्होंने कहा : "उत्तरदायित्व का अभाव अच्छे प्रशासन में भारी बाधा है। सरकार को जनता के प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी होना ही चाहिए"। उन्होंने इन शब्दो के साथ अपनी कतिपय पुरानी मांगो को दुहराते हुए जिना साहब के इस प्रस्ताव का समर्थन किया कि 'कार्यपरिषद के लिए की गयी माग को बजट से निकाल दिया जाय।'[3] पर स्वराज्य पार्टी के सदस्यो की अनुपस्थिति के कारण जिना साहब का यह प्रस्ताव ३१ मतो के विरुद्ध ४७ मतो से नामंजूर हो गया।

---

१. वही, सन् १९२६, जि० ७, पार्ट ३, पृ० २१४७।
२. वही, सन् १९२६, जि० ७, पार्ट ३, पृ० २४०९।
३. वही, सन् १९२६, जि० ७, पार्ट ३, पृ० २४०५-२४१४।

१७. चुनाव संघर्ष

काग्रेस का कानपुर अधिवेशन

सन् १९२५ मे सितम्बर के अन्तिम सप्ताह में पण्डित मोतीलाल नेहरू ने काग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में प्रस्ताव किया कि यदि फरवरी सन् १९२६ तक सरकार राष्ट्र की माँग स्वीकार न करे, तो स्वराज्य पार्टी विधान कौंसिलो का वहिष्कार कर दे। मालवीयजी ने इस प्रस्ताव में यह संशोधन पेश किया कि 'विधान कौंसिलो में सब कार्य इस प्रकार किये जायेंगे जिससे उत्तरदायी सरकार की निकट भविष्य में स्थापना में उनका सवसे अधिक प्रयोग हो सके, राष्ट्रीय उद्देश्य को आगे बढाने के लिए जब आवश्यक होगा तव सहयोग किया जायगा, और जव आवश्यक होगा तव प्रतिरोध किया जायगा।' इस संशोधन का श्री एम० आर० जयकर ने अनुमोदन किया। काग्रेस ने भारी वहुमत से सशोधन को नामजूर करते हुए प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इस पर जयकर साहव ने घोपित किया कि श्री एन० सी० केलकर, डाक्टर बी० एस० मुंजे और उन्होंने निश्चय किया है कि स्वराज्य पार्टी और विधान कौंसिलो की सदस्यता से इस्तीफा देकर देश में काग्रेस के इस निर्णय के विरुद्ध प्रचार किया जाय। उन्होंने काग्रेस स्वराज्य पार्टी के विरोध में 'रिस्पासिव कोआपरेशन पार्टी' (अनुक्रियाशील सहयोगिक दल) वनाने का निर्णय किया। मालवीयजी ने भी इंडिपेंडेंट काग्रेस पार्टी के नाम से एक दल गठित करने का निश्चय किया। इस अधिवेशन में गाधीजी ने राजनीतिक प्रस्ताव पर अपने विचार व्यक्त नही किये, और आगे चलकर उन्होंने घोपित किया कि वे एक वर्प तक देश की राजनीति में कोई भाग न लेकर केवल रचनात्मक काम करेंगे।

तेजवहादुर सप्रू का प्रयास

चुनाव में सक्रिय भाग लेने के लिए सर तेज वहादुर सप्रू काग्रेस की नीति के विरोधी प्रगतिशील राजनीतिज्ञो की एक राष्ट्रवादी पार्टी गठित करना चाहते थे। उनकी अध्यक्षता में ३ अप्रैल सन् १९२६ को वम्बई में सर्वदलीय सहमिलन सम्मेलन हुआ। सम्मेलन ने स्वराज्य अर्थात् उत्तरदायी शासन और औपनिवेशिक स्वतन्त्रता को प्राप्त करने के लिए नयी नेशनलिस्ट पार्टी वनाने का निश्चय किया। इस सम्मेलन ने सन् १९१९ की राजव्यवस्था को अपर्याप्त और असन्तोपजनक स्वीकार किया, पर अपने लक्ष्य की सिद्धि के लिए उसका यथासंभव उपयोग

करना आवश्यक समझा। इस काम के लिए मन्त्रिपद को स्वीकार करना भी उचित घोषित किया गया। सवैधानिक आन्दोलन को मान्यता प्रदान करते हुए 'सामूहिक सविनय-अवज्ञा' तथा 'टैक्सो की गैर-अदायगी (अशोधन)' का विरोध किया गया। इस नये सगठन मे जिना साहब, मालवीयजी और श्रीमती एनी बेसेंट को शामिल करने का विचार भी व्यक्त किया गया।

मालवीयजी काग्रेस से पृथक् इस प्रकार की पार्टी बनाने के पक्ष मे नही थे। वे तो सब राष्ट्रवादी राजनीतिज्ञो को काग्रेस में आमन्त्रित कर काग्रेस को एक सुदृढ राष्ट्रवादी मोर्चा बनाना चाहते थे। उन्होने दिसम्बर सन् १९२५ मे काग्रेस के कानपुर अधिवेशन में अपने इस सुझाव को प्रस्तुत भी किया था। सर तेजबहादुर सप्रू के प्रयास के उत्तर में भी उन्होने यही बात कही। उन्होने कहा कि सब राष्ट्रवादी काग्रेस के लक्ष्य को स्वीकार करके कांग्रेस मे शामिल हो जाये, और काग्रेस 'अनुक्रियाशील सहयोग' (रिस्पासिव कोआपरेशन) की नीति को अपना कर एक बृहद् राष्ट्रीय संगठन की हैसियत से स्वराज्य के लिए प्रयत्न करे। उन्होने जनकल्याण की रक्षा और वृद्धि के लिए एक लम्बा-चौडा कार्यक्रम भी प्रस्तुत किया। पर जब मालवीयजी की बात काग्रेस ने अपने अधिवेशन में स्वीकार नही की थी, तब मोतीलालजी या काग्रेस की अध्यक्षा श्रीमती सरोजनी नायडू उसे कैसे स्वीकार कर सकते थे ? सर तेज बहादुर भी काग्रेस के 'क्रीड' पर हस्ताक्षर कर काग्रेस में शामिल होने को तैयार नही थे। इसलिए मालवीयजी की यह बात आगे नही बढ पायी।

सप्रू साहब द्वारा प्रस्तावित नेशनलिस्ट पार्टी भी गठित नही हो सकी। श्रीमती एनी बेसेंट ने 'रिस्पासिव कोआपरेशन' पार्टी का समर्थन करने का निश्चय किया, तथा जिना साहब ने, जो इस प्रकार की पार्टी बनाने के पक्ष में थे जो काग्रेस और लिबरल पार्टी के बीच की हो, एक स्वतन्त्र उम्मीदवार की हैसियत से चुनाव लडना ही उचित समझा। मालवीयजी ने पडित हृदयनाथ कुंजरू, मुंशी ईश्वरशरण आदि उदारदलीय राजनीतिज्ञो को अपनी पार्टी में शामिल कर चुनाव मे उनका समर्थन किया। उन्होने श्री सी० वाई० चिन्तामणि का भी इस चुनाव में समर्थन किया।

मोतीलालजी का प्रयास

साम्प्रदायिकता के वातावरण मे विशुद्ध साम्प्रदायिक नीतियों के आधार पर साम्प्रदायिक पार्टी या सस्था द्वारा चुनाव लडने के विचार को भी बहुत से साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के लोगो ने पुष्ट किया। हिन्दू महासभा ने जनवरी सन्

१९२६ में ही उसकी चर्चा शुरू कर दी। इस बात से घबडा कर मार्च में पडित मोतीलाल नेहरू ने हिन्दू महासभा के वार्षिक अधिवेशन मे उपस्थित होकर उससे ऐसा न करने की अपील की। उनकी इस बात का हिन्दू महासभा पर भला क्या प्रभाव पडने वाला था ? उन्हे यह कहकर ही टाल दिया गया कि यदि वे मुसलमानो को साम्प्रदायिकता के आधार पर चुनाव लडने से नही रोकते या रोक पाते, तो फिर हिन्दुओ को ही क्यो रोकते है ? पर जब मालवीयजी और लाजपतरायजी ने महासभा के नाम पर चुनाव लडने या लडाने से इनकार कर दिया, तब बात खत्म हो गयी। हिन्दू सभा को सघटित रूप से चुनाव लडने का विचार छोडना पडा। दो चार स्थानो पर ही कुछ सज्जनो ने हिन्दू सभा के नाम पर चुनाव लड़े, पर किसी प्रमुख राजनीतिज्ञ ने ऐसा नही किया। हिन्दू महासभा से संबधित अधिकाश राजनीतिज्ञो ने इडिपेंडेट काग्रेस पार्टी और रिस्पासिव कोआपरेशन पार्टी का ही समर्थन किया।

नेहरू-जयकर वार्ता

अप्रैल सन् १९२६ में मोतीलालजी और जयकर साहब का मन्त्रि-पद स्वीकार करने के सम्बन्ध में एक समझौता हो गया जो 'साबरमती पैक्ट' के नाम से प्रसिद्ध हुआ, पर यह समझौता टिकाऊ नही रहा। इस समझौते मे यह तय हुआ था कि सरकार की ओर से फरवरी सन् १९२४ की माँग का उत्तर सन्तोषजनक समझा जायगा, यदि प्रान्तो में मन्त्रियो को अपने अधिकार, उत्तरदायित्व और कर्तव्यो के समुचित निर्वाह के लिए साधन सुनिश्चित कर दिये जायें। इसके प्रकाशित होते ही श्री टी० प्रकाशम् आदि कतिपय काग्रेसी नेताओ ने इसका विरोध किया। इस पर पडित मोतीलाल नेहरू ने अपने एक वक्तव्य में उसकी व्याख्या करते हुए कहा कि मन्त्रिपद को स्वीकार करने से पहले तीन बातो को पूरा करना आवश्यक होगा—(१) विधान कौसिल को मन्त्री पूरे तौर पर उत्तरदायी हो तथा वे सरकार के नियत्रण से मुक्त कर दिये जायें, (२) राष्ट्र-निर्माण के विभागो के विकास के लिए राजस्व का पर्याप्त अश प्रदान किया जाय, (३) हस्तातरित विभागो मे लोक-सेवको (सर्विसेज) का पूरा नियत्रण मन्त्रियो को दिया जाय। जयकर साहब को समझौते की यह व्याख्या मजूर नही थी। ५ मई सन् १९२६ की अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी की बैठक मे मोतीलालजी ने घोषित किया कि समझौते की व्याख्या के सम्बन्ध में भारी मतभेद के कारण वह खत्म हो गया है।[1]

१. पट्टाभि सीतारम्मैय्या : हिस्ट्री आफ दी इंडियन नेशनल काग्रेस, जि० २, पृ० ३००-३०१।

मोतीलाल-मालवीय वार्ता

इसके बाद सन् १९२६ में ही मोतीलालजी की मालवीयजी से भी बातचीत हुई। पर इन दोनो में भी नीतिरीति के सम्बन्ध में कोई समझौता नही हो सका। मोतीलालजी कानपुर काग्रेस द्वारा स्वीकृत स्वराज्य पार्टी की नीति से हटने को तैयार नही थे, शायद उसमें मौलिक परिवर्तन करना उनके लिए सम्भव भी नही था। दूसरी ओर मालवीयजी स्वराज्य पार्टी की पुरानी नीति का अनुसरण निरर्थक और हानिकर, अतः उसमे मूलभूत परिवर्तन आवश्यक समझते थे।

मालवीयजी का सुझाव था कि साम्प्रदायिक समस्याओ पर समझौता न होने पर विधायकों को अपना मत अपनी इच्छा के अनुसार व्यक्त करने की छूट दी जाय, अविच्छिन्न विरोध के बजाय विवेचक (डिस्क्रिमिनेटिंग) विरोध की नीति अपनायी जाय, राजनीतिक विरोध को व्यक्त करने के लिए कार्य-परिषद (एक्ज़ीक्यूटिव कौंसिल) से संबधित आर्थिक माँग पर ही कटौती का प्रस्ताव किया जाय, अपव्यय के विरोध में वित्त विधेयक को रद्द कराने का प्रयत्न किया जाय, और जब तक राजनीतिक कैदी विशेषतः बंगाल अध्यादेश के अन्दर गिरफ्तार कैदी न छोडे जायें, तब तक प्रान्तो में मन्त्रिपद स्वीकार न किया जाय, पर इस शर्त के पूरा होने पर प्रान्तीय विधायक बहुमत से मन्त्रिपद को स्वीकार करने का निश्चय कर सकते है।

ये सब बातें मोतीलालजी स्वीकार करने को तैयार नही थे। उनका कहना था कि प्रान्तो में मन्त्रिपद तभी स्वीकार किया जाय, जब सब दमनकारी क़ानून वापस ले लिये जायें, और गैर-सरकारी सदस्यो को मनोनीत करने की प्रथा खत्म कर दी जाय, मन्त्रियो को अपने विभागो पर पूरा कन्ट्रोल रखने का अधिकार हो, तथा राष्ट्रीय निर्माण के लिए समुचित फंड का प्रबन्ध हो। वे स्वराज्य पार्टी की लिस्ट में तब्दीली करके मालवीयजी के उम्मीदवारो को भी कोई स्थान देने को तैयार नही थे। वे सब विषयो पर विचार करने के लिए काग्रेस का विशेष अधिवेशन बुलाने को भी राज़ी नही थे।

लाजपत राय का दृष्टिकोण

किसी नये आधार पर नये साथियो के साथ नयी पार्टी बनाने के बजाय काग्रेस के तत्त्वावधान में गठित काग्रेस पार्टी में काम करना, उसे अधिक शक्तिशाली बनाना ही लाला लाजपत राय को ठीक जँचता था। इसलिए पंडित मोतीलाल नेहरू के कहने पर उन्होने जनवरी सन् १९२६ मे कांग्रेस पार्टी का सदस्य

बनकर मार्च सन् १९२६ में लाहौर में ब्रेडला हाल में काग्रेस पार्टी के समर्थन में एक बहुत ही जोशीला, प्रभावशाली भाषण किया, पर मालवीयजी और जयकर साहब की तरह वे भी अचर, अविच्छिन्न प्रतिरोध, और अपरिमित अवरोध की नीति, तथा सदन-त्याग की प्रतिक्रियाओ को निरर्थक और हानिकर, तथा लोकमान्य तिलक द्वारा प्रतिपादित अनुक्रियाशील सहयोग की नीति के आधार पर काग्रेस पार्टी की नीति-रीति का निरूपण श्रेयस्कर समझते थे। जब इस सम्बन्ध में उनका और पंडित मोतीलाल नेहरू का कोई सन्तोषजनक समझौता नही हो सका, तब वे भी मालवीयजी के साथ हो गये।

मालवीयजी और जयकर साहब की नीति-रीति में काफी सामंजस्य था। इसलिए दोनो ने मिलकर काम करने का निर्णय किया। निश्चय हुआ कि बंगाल, मध्य प्रदेश और बम्बई प्रान्त में रिस्पासिव कोआपरेशन पार्टी (अनुक्रियाशील सहयोगिक दल) जो पहिले ही गठित हो चुकी है कार्य करेगी। पंजाब, संयुक्त प्रान्त, बिहार आदि प्रान्तो में इडिपेंडेंट काग्रेस पार्टी गठित की जायेगी। दोनो पार्टियो के निर्वाचित सदस्य केन्द्रीय असेम्बली में संयुक्त ससदीय पार्टी गठित कर काम करेंगे।

चुनाव घोषणा-पत्र

इसके बाद काग्रेस पार्टी ने अपनी चुनाव-घोषणा में पुरानी स्वराज्य पार्टी की नीति-रीति और कार्यवाहियो के औचित्य को पुष्ट करते हुए अचर और निरन्तर प्रतिरोध तथा अपरिमित अवरोध की नीति का पुनः प्रतिज्ञापन किया। इस घोषणा में बताया गया कि जबकि स्वराज्य पार्टी ने काग्रेस के विशेष अधिवेशन की स्वीकृति प्राप्त करने के बाद चुनाव मे भाग लिया, इडिपेंडेंट काग्रेस पार्टी और रिस्पासिव कोआपरेशन पार्टी काग्रेस के निर्णय के विरुद्ध, कांग्रेस पार्टी के उम्मीदवारो के विरुद्ध चुनाव लडना चाहती है। ये दोनो पार्टियाँ इस कारण निश्चय ही काग्रेस-विरोधी है, और सुदृढ संघटन के अभाव में देश में कुछ ठोस काम नही कर सकेंगी।[1]

दूसरी ओर इंडिपेंडेंट काग्रेस पार्टी ने अपनी चुनाव-घोषणा में स्वराज्य पार्टी की नीतिरीति और कार्यवाहियो के औचित्य को चुनौती दी। उसने घोषित किया कि स्वराज्य पार्टी की पुरानी प्रतिरोध और अवरोध की नीति निरर्थक और हानिकर सिद्ध हुई है, और उससे अपेक्षित परिणाम प्राप्त नही हुए है।

---

१. इडियन क्वाटरली रजिस्टर, सन् १९२६, जि० २।

सदन को छोडकर चले आने की प्रक्रिया भी बिल्कुल नाकामयाब साबित हुई है। इस घोषणापत्र मे यह भी कहा गया कि चूँकि काग्रेस के कानपुर अधिवेशन के बाद जनमत में काफी परिवर्तन हो गया है, और चूँकि काग्रेस की मौजूदा कार्य-कारिणी उन प्रश्नो पर जो जनता को उद्विग्न कर रहे है देश का आदेश प्राप्त करने के लिए काग्रेस का विशेष अधिवेशन बुलाने को तैयार नही है, उन कॉग्रेसियो के लिए, जो स्वराज्य पार्टी की नीति और कार्यक्रम से सहमत नही है, काग्रेस के तत्त्वावधान में एक स्वतंत्र कॉग्रेस दल गठित कर आगामी चुनावो मे देश का आदेश प्राप्त करना अनिवार्य हो गया है।[1]

इस घोषणा मे इंडिपेंडेंट काग्रेस पार्टी ने विधान सभाओ का मौजूदा संविधान दोषपूर्ण बताते हुए यह भी घोषित किया कि पूर्ण उत्तरदायी सरकार को प्रतिष्ठित करने की प्रक्रिया को गति देने के लिए, जनता के हितो की रक्षा और वृद्धि के लिए, अन्याय और कुशासन के विरुद्ध उनकी प्रतिरोध की शक्ति को पुष्ट करने के लिए इन विधान कौंसिलो का जितना भी उपयोग हो सकेगा किया जायेगा। प्रान्तीय पार्टी अपने बहुमत से प्रान्त में मन्त्रिपद स्वीकार करने का निर्णय भी कर सकती है। साम्प्रदायिक मतभेद के सब मामलो में प्रतियोगी गुटों में बुद्धि-संगत समझौता कराना पार्टी के सदस्यो का कर्तव्य होगा, पर जब किसी विषय मे कोई ऐसा समझौता नही हो पाये, तब पार्टी का प्रत्येक सदस्य जिस तरह ठीक और उचित समझे उस तरह विधान कौंसिलो में वोट करने को स्वतंत्र होगा। पार्टी ने यह भी घोषित किया कि वह रिस्पासिव कोआपरेशन पार्टी के साथ मिल कर काम करेगी, पर उस पार्टी को अधिकार होगा कि जहाँ वह पहले से बनी हुई है वहाँ स्वतंत्र रूप से कार्य करे।[2]

रिस्पासिव कोआपरेशन पार्टी ने भी अविच्छिन्न प्रतिरोध और अवरोध की नीति का विरोध करते हुए अनुक्रियाशील सहयोग की नीति के आधार पर देशहित की पुष्टि और वृद्धि के निमित्त विधान सभाओ तथा मन्त्रिपदो का यथासभव उपयोग अपना ध्येय निश्चित किया।

चुनाव अभियान

अपनी तथा नयी पार्टी की नीति को स्पष्ट करते हुए लाला लाजपतराय ने कहा कि इस समय जबकि मुट्ठी भर काग्रेसी मुसलमानो को छोडकर सारा मुस्लिम समाज जी-जान से सरकार के साथ सहयोग करने को तैयार है, हिन्दुओ के लिए "असहयोग की मनोवृत्ति से विधान कौसिलो में जाना व्यर्थ नही, हानिकर

१. वही।
२. वही।

है।"[1] कौसिल के साथ खिलवाड नही किया जा सकता। मौजूदा स्थिति में राष्ट्र और समाज के हित में उनका ठीक-ठीक प्रयोग ही लाभप्रद है। कोई व्यक्ति सरकार से सहयोग न करना चाहे, न करे। वास्तव में कोई भारतीय देशभक्त ऐसा करना नही चाहता। पर यदि कोई वहिष्कार की मनोवृत्ति से अपने को प्रभावित होने देता है, तो वह निश्चय ही उन मार्गों और रीतियो में घिर जायगा जो देश और हिन्दू समाज के लिए अनर्थकारी होगी।[2] उन्होने कहा कि वे मुसलमानो से समझौता करने के पक्ष मे है, और स्वीकार करते है कि "ठीक समय पर ठीक समझौता राजनीति का प्राण है।"[3] पर वे और उनकी पार्टी "हिन्दू अधिकारो की कीमत पर एकता खरीदना नही चाहते।" उनकी पार्टी की धारणा है कि "हिन्दू समाज के प्रति न्याय से राष्ट्रीयता का कोई विरोध नही है।"[4] उन्होने कहा कि वे "प्रत्येक सम्प्रदाय के न्यायपूर्ण अधिकारो से सुसगत, दृढ और वास्तविक राष्ट्रीयता के पक्ष में है, और वे उस मनोवृत्ति को पुष्ट करना चाहते है जो सरकार या किसी दूसरे सम्प्रदाय का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए अपने देश या समाज का सम्मान बेचने को तैयार न हो।"[5] उन्होने घोपित किया कि वे "यह नही चाहते कि हिन्दू जनता कौसिलो में उन्हें भेजे जो हिन्दू राज्य के विचार के समर्थक है, या सरकार के साथ प्रत्युत्तर सहयोग (काउन्टर अलायस, करने के पक्ष में है।"[6] वे तो यह चाहते है कि "हिन्दू निर्वाचक सच्चे राष्ट्रवादियो, दृढ देशभक्तो, और पक्के हिन्दुओ को भेजे, जो सरकार से इस तरह पर कोई समझौता न करें और उस हद तक न झुकें जिससे हिन्दू समाज की पोजीशन संकट में पड जाय।"[7]

लाला लाजपतराय की इन सब बातो से मालवीयजी पूरे तौर पर सहमत थे। वे मुसलमानो से मिलकर रहना देश के हित में आवश्यक समझते थे, हिन्दू राज्य के विचार को गलत समझते थे। सरकार से सहयोग करने के सम्बन्ध में मुसलमानो से होड करना भी वे ठीक नही समझते थे। पर वहिष्कार की मनोवृत्ति से सरकार के हर काम में अडंगा लगाना भी उन्हें पसन्द नही था। वे इसे अव्यावहारिक और हानिकर मानते थे। उन्होने तो सन् १९२२ में ही काग्रेस में कौसिलो में प्रवेश करने के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा था कि

---

१. वी० एस० जोशी (सम्पादक): लाला लाजपतराय, राइटिंग्ज एंड स्पीचेज, जि० २, पृ० ३१९। २. वही, पृ० ३१९।
३ वही, पृ० ३२१। ४. वही, पृ० ३१८।
५ वही, पृ० ३२१। ६. वही, पृ० ३१९।
७. वही, पृ० ३१९।

हमें कौंसिलो का उपयोग करना चाहिए, जहाँ संभव हो वहाँ सरकार से सहयोग किया जाय, जहा आवश्यक हो वहाँ उसका विरोध किया जाय। उनका विश्वास था कि न्याय पर आश्रित समझौता ही टिकाऊ हो सकता है, और वे उसके लिए सदा तैयार थे। वे मुसलमानो के साथ किसी हद तक उदारता का व्यवहार करना भी ठीक समझते थे, पर वे उनकी सब मागें मानने को तैयार नही थे। स्वतंत्रता के लिए सतत प्रयत्न करने के साथ-साथ हिन्दू हितो की रक्षा करना भी वे हिन्दू विधायको का कर्तव्य समझते थे। उन्हें दुःख था कि स्वराज्य पार्टी के हिन्दू सदस्य हिन्दू हितो की रक्षा के निमित्त अपने दिल की बात कहने से, अपने निर्वाचको की भावनाओ को व्यक्त करने से घबड़ाते हैं, जिसके कारण बहुत से महत्त्वपूर्ण प्रश्नो पर, जिनका हिन्दुओ के हितो और अधिकारों से गहरा सम्बन्ध होता है, ठीक तौर पर विधान कौंसिलो में विचार भी नही हो पाता।

कड़वाहट

सन् १९२३ के चुनावो से कही अधिक सन् १९२६ के चुनावो ने मालवीयजी और मोतीलालजी के आपसी सम्बन्धो में कडवाहट पैदा कर दी। मालवीयजी मोतीलालजी से छ: मास छोटे थे। वे मालवीयजी पर, उनके रहने-सहने के ढंग पर, सदा फबतियाँ कसते रहते थे। पर मालवीयजी को सदा ध्यान रहता था कि मोतीलालजी उनसे बडे है और इसलिए जब वे उनसे मिलते उनके साथ "अदब का बर्ताव" करते थे। "जैसे कोई छोटा अपने बड़ो के सामने जाता है, वैसे ही वे उनके सामने जाते थे।"[1] सन् १९२३ के चुनाव में स्वराज्य पार्टी के कार्य-कर्ताओ ने मालवीयजी की उन सभाओ को भंग करने की, मालवीयजी को अपमानित करने की भरसक चेष्टा की, जिनमें उन्होने स्वराज्य पार्टी के उम्मीद-वार के विरुद्ध प्रोफेसर पी० के० तेलग का समर्थन किया। मोतीलालजी ने स्वयं काशी की सार्वजनिक सभा में चुनाव के अवसर पर मालवीयजी पर फबतियाँ कसी। पर मालवीयजी ने इस सब की उपेक्षा करते हुए स्वराज्यपार्टी के उम्मीद-वारों का दूसरे स्थानो पर समर्थन किया।

सन् १९२६ में तनाव इतना बढ गया कि मालवीयजी स्वयं मोतीलालजी के विरुद्ध चुनाव में खडा होना चाहते थे, ताकि हिन्दू जनता निश्चय कर सके कि उसे किस नेता की नीतिरीति पसन्द है। पर काग्रेस के कतिपय कार्यकर्ताओ के अनुरोध पर मालवीयजी अपने पुराने निर्वाचन क्षेत्र से ही खडे हो गये। पर

१. पुरुषोत्तमदास टंडन : देखिये, मालवीयजी, जीवन झलकिया, पृ० ३।

इसके दो दिन बाद मोतीलालजी ने लाला लाजपत राय के विरुद्ध रायज़ादा हंसराज को कांग्रेस पार्टी के उम्मीदवार की हैसियत से खडा कर दिया। इस बात से क्षुब्ध हो लाला लाजपत राय ने अपने जालंधर निर्वाचन क्षेत्र के अतिरिक्त लाहौर निर्वाचन क्षेत्र से भी चुनाव लडने का निश्चय किया। इससे कडवाहट काफी बढ गयी। मोतीलालजी बार बार कांग्रेस पार्टी के उम्मीदवार रायज़ादा हंसराज और दीवान चम्मन लाल के समर्थन में जालंधर, लाहौर आदि स्थानो में भाषण करते, और मालवीयजी वहाँ जा कर लाला लाजपत राय का समर्थन करते थे। दोनो ओर के कार्यकर्ता एक दूसरे पर फब्ती कसते, बुरा भला कहते। मालवीयजी को ये बाते पसद नही थी। उनकी उपस्थिति में जब एक बार अमृतसर की एक सार्वजनिक सभा में किसी कार्यकर्ता ने मोती लालजी पर छीटाकशी की तो मालवीयजी ने उसे रोक दिया, और आधे घंटे तक मोती लालजी की इतनी प्रशसा की कि लोग दग रह गये।[1]

संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) मे मालवीयजी के अतिरिक्त लाला लाजपत राय ने भी दौरा किया। ये दोनो उन सात नगरो मे भी गये जहा से मोती लालजी खडे थे। उन्होने वहा कांग्रेस पार्टी की नीतिरीति का विरोध किया, अपनी पार्टी की नीतिरीति का समर्थन किया, प्रान्तीय कौंसिल के लिए खडे किये गये अपनी पार्टी के उम्मीदवारो को वोट देने की अपील की। पर उन्होने मोतीलालजी के व्यक्तित्व तथा उनकी उम्मीदवारी के विरुद्ध एक शब्द नही कहा। मेरठ की एक सार्वजनिक सभा में मालवीयजी को एक मानपत्र भेंट किया गया, और एक कवि ने उनकी प्रशंसा करते हुए पडित मोतीलाल नेहरू की निन्दा करना शुरू की। मालवीयजी ने कवि को कविता पढने से रोक कर कहा "मोतीलाल जी मेरे बडे भाई हैं, मैं उनकी शान के विरुद्ध कोई बात नही सुन सकता।"[2]

इस चुनाव मे पडित मोतीलाल नेहरू के विरुद्ध कोई साधु खडे हो गये थे। यह सज्जन मालवीयजी की पार्टी के उम्मीदवार नही थे। उन्होने और लाला लाजपत राय ने उनके समर्थन मे कही कोई भाषण नही किया। मोतीलालजी की तुलना में उक्त सज्जन का व्यक्तित्व और कार्य नगण्य था, उनके समर्थक इसलिए कांग्रेस की नीतिरीति के बजाय मोतीलालजी के व्यक्तित्व पर कीचड फेंकते रहते थे।

---

१. मालवीयजी, जीवन झलकिया, पृ० १९४।

२. सीताराम चतुर्वेदी : महामना मालवीयजी, पृ० १५५।

मोतीलालजी को सम्भवत: सन्देह था कि मालवीयजी ने ही उनके विरोध में उक्त साधु को खड़ा किया था, और उसकी अपमानजनक बातो मे उनका हाथ था। पर मोतीलालजी या उनके किसी समर्थक ने इस सन्देह के समर्थन में कोई प्रमाण पेश नही किया। मोतीलालजी की जीवनी के लेखक श्री बी० आर० नन्दा ने भी इसकी कोई चर्चा मोतीलालजी की जीवनी में नही की है।

मोतीलालजी को दुःख था कि इस चुनाव मे उनके बहुत से पुराने कार्यकर्ताओ ने, यहा तक कि उनके भतीजे श्यामलालजी ने भी, उनकी पार्टी के विरोध मे काम किया। उन्हे क्षोभ था कि उनके पुराने साथियो ने उन्हें हिन्दू-विरोधी कहा, उन्हे गोकुशी को क़ानूनी बनवाने का, तथा काबुल के साथ षड्यन्त्र करने का दोषी बताया। चुनाव के बाद उन्होने लाला लाजपत राय के उर्दू साप्ताहिक "वन्देमातरम" पर उसके काबुल सम्बन्धी आरोपो के लिए मानहानि का मुक़दमा दायर कर दिया, और माग की कि या तो संपादक क्षमा याचना करें, या एक लाख रुपया हर्जाने में दे। मामले ने काफी तेजी पकडी। तब गाधीजी ने बीच मे पडकर किसी तरह उसे शान्त कराया, मुक़दमा वापस कराया।

मोतीलालजी को यह भी सदेह था कि लाला लाजपत राय और मालवीयजी बिडला के रुपये की सहायता से गोहाटी के काग्रेस अधिवेशन पर क़ब्ज़ा कर लेने के प्रयत्न मे है। पर उनका यह सन्देह सर्वथा निर्मूल सिद्ध हुआ। लाला लाजपत राय, जयकर, और केलकर गोहाटी अधिवेशन मे शामिल नही हुए। अणे साहब और मुंजे वहाँ गये, पर चुप रहे। मालवीयजी ने कुछ शर्तों के साथ मन्त्रिपद स्वीकार कर लेने की बात जरूर की, पर काग्रेस ने मोतीलालजी द्वारा प्रस्तुत और समर्थित स्वराज्य पार्टी के पुराने कार्यक्रम को स्वीकार कर लिया। इस पर मोतीलालजी ने अपने सुपुत्र जवाहरलाल को लिखा कि "हम दृढता से सब प्रतिक्रियावादियो के विरुद्ध डटे रहे, और हमने ज़बर्दस्त बहुमत से जो चीज हम चाहते थे उसे पास करा दी।"[1] सभवतः गोहाटी काफरेन्स मोतीलालजी के संसदीय दल की भारी विजय थी, क्योंकि जो राजनीतिक प्रस्ताव वहाँ स्वीकार हुआ उसमे सविनय-अवज्ञा का औपचारिक सकेत भी नही था।[2]

इस संदेह और कटुता की स्थिति मे भी लाला लाजपत राय ने आम चुनाव के बाद लाहौर निर्वाचन क्षेत्र के उपचुनाव मे स्वतन्त्र उम्मीदवार श्री नन्दलाल

१ नन्दा नेहरूजी, पृ० २६९।
२ पट्टाभि सीतारामैय्या : हिस्ट्री आफ दी इडियन नेशनल काग्रेस, पृ० ३१२।

बैरिस्टर का विरोध करते हुए कांग्रेस पार्टी के उम्मीदवार श्री चम्मनलाल का समर्थन किया, और उनकी विजय में महत्त्वपूर्ण योगदान किया।

जवाहरलालजी द्वारा कटु आलोचना

पंडित जवाहर लाल नेहरू को कांग्रेस पार्टी और नेशनलिस्ट पार्टी के बीच में चुनाव संघर्ष बुरा लगता था। वे समझ नही पाते थे कि "सिद्धान्त के किन आधारो ने नयी पार्टी को पुरानी पार्टी से अलग किया।"[1] उनकी राय में नयी नेशनलिस्ट पार्टी अधिक नरम दृष्टिकोण प्रस्तुत करती थी, और स्वराज्य पार्टी से अधिक दक्षिण-पक्षीय थी। वह बिल्कुल हिन्दू पार्टी थी, जो हिन्दू महासभा के निकट सहयोग मे काम करती थी।[2] उन्होंने लिखा, "नेशनलिस्ट पार्टी ने सफलता की बडी मात्रा प्राप्त की, पर इस सफलता ने लेजिस्लेटिव असेम्बली के राजनीतिक वातावरण को अवश्य ही नीचे गिरा दिया। गुरुत्व केन्द्र अधिक दक्षिण की ओर हटा। स्वराज्य पार्टी स्वयं कांग्रेस का दक्षिण पक्ष था। अपनी शक्ति को बढाने के प्रयत्न मे उसने बहुत से संदिग्ध व्यक्तियों को अपने में घुस आने दिया, और इसके कारण उसके गुण मे क्षति पहुँची है। नेशनलिस्ट पार्टी ने भी इसी नीति का अनुसरण किया, पर अधिक नीचे स्तर पर, और खिताबधारियो, बडे जमीदारों, उद्योगपतियो आदि का पचरंगी जत्था जिसका राजनीति से कोई सम्बन्ध नही उसकी पंक्ति मे आ गया।"[3]

नेहरू साहब की आलोचना किसी अंश मे ठीक थी। नेशनलिस्ट पार्टी हिन्दू पार्टी कही जा सकती थी, क्योकि उसके सभी सदस्य हिन्दू थे। कांग्रेस पार्टी राष्ट्रीय पार्टी होने का दावा कर सकती थी, क्योकि इसमें कुछ मुसलमान भी थे, और बम्बई कौंसिल की कांग्रेस पार्टी का नेता एक पारसी राजनीतिज्ञ मिस्टर के० एफ० नारीमान था। इसमे भी संदेह नही कि स्वतन्त्रता से संबधित मौलिक बातो मे दोनो पार्टियो की एक राय थी। फिर भी दोनो की नीति रीति में अंतर अवश्य था। इस अंतर के आधार पर कांग्रेस पार्टी की तुलना में नेशनलिस्ट पार्टी को अधिक नरम और दक्षिण-पंथी कहा जा सकता था, पर अंतर यदि बहुत बुनियादी नही, तो उसे सतही भी नही समझा जा सकता। इसके कारण ही सन् १९२५ में स्वराज्य पार्टी टूटी थी, और उसका संतोषजनक समाधान न होने पर दो पार्टियो का बनना स्वाभाविक था। फिर भी इसमे संदेह नही कि चुनाव में इन दो पार्टियो का संघर्ष हितकर नही समझा जा

---

१. जवाहरलाल नेहरू : आटोबायोग्राफी, पृ० १५७।
२. वही। ३. वही, पृ० १६०।

सकता था। मोतीलाल-लाजपतराय विवाद ने तो संघर्ष को और भी अशोभनीय बना दिया था। इसमें संदेह नही कि यदि दोनो ने मिलकर काम किया होता, तो उम्मीदवारो के चयन का स्तर कही ऊँचा होता। होड में दोनो ओर से कुछ गलत आदमी उम्मीदवार जरूर बनाये गये। पर यदि काग्रेस को शिकायत थी कि मालवीयजी की पार्टी ने गणेश शंकर विद्यार्थी के विरुद्ध एक ऐसे व्यक्ति को खडा किया जिसका भारत की राजनीति मे कोई योगदान नही था, तो लाला लाजपतराय को इस बात की शिकायत थी कि काग्रेस की ओर से एक ऐसा व्यक्ति अपना प्रत्याशी खडा किया गया जो 'सरकार का मुखबिर'' रह चुका था।[1]

यह कहना कि नेशनलिस्ट पार्टी की सफलता ने 'लेजिस्लेटिव असेम्बली के राजनीतिक स्तर को अवश्य ही नीचे गिरा दिया' बिल्कुल निराधार है। लाला लाजपतराय, मालवीयजी और जयकर साहब के नेतृत्व में गठित नेशनलिस्ट पार्टी का काम केन्द्रीय असेम्बली मे किसी तरह भी काग्रेस पार्टी के काम से कम गौरवपूर्ण, तगडा और प्रभावकारी नही था। वास्तव में कभी-कभी तो नेशनलिस्ट पार्टी के नेता लाला लाजपतराय और उपनेता मालवीयजी का विरोध काग्रेस पार्टी के नेता पडित मोतीलाल नेहरू और उपनेता श्री श्रीनिवास ऐयंगर से अधिक तगडा होता था। पडित मोतीलाल नेहरू और श्री श्रीनिवास ऐयगर के पारस्परिक सबंधो से भी जो क्षोभ और अव्यवस्था काग्रेस पार्टी मे पैदा हो गयी थी, उसका शताश भी नेशनलिस्ट पार्टी मे नही था। समाज-सुधार के प्रश्नो पर लाला लाजपतराय और मालवीयजी के विचारो मे बहुत अतर था। पर उसके कारण पार्टी मे क्षोभ की स्थिति पैदा नही हुई। दोनो ने पूरी पारस्परिक सद्भावना के साथ अपने विचार असेम्बली में प्रस्तुत कर दिये। पार्टी के साधारण सदस्यो को भडका कर अपने को ऊँचा उठाने की, और दूसरे को नीचा गिराने की बात तो इन दोनो मे कोई सोच ही नही सकता था।

जवाहर लाल जी द्वारा मालवीयजी के विचारों की आलोचना

सन् १९२६ के चुनावो के संदर्भ में ही पडित जवाहर लाल नेहरू ने मालवीयजी के विचारो और सेवाओ की भी समीक्षा की। उन्होने लिखा: ''मालवीयजी केवल राष्ट्रवादी थे, आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन से उनका कोई सम्बन्ध नही था। वे सास्कृतिक, सामाजिक, और आर्थिक क्षेत्रो में पुरानी

१ वि० सी० जोशी : लाला लाजपतराय, राइटिंग्ज एण्ड स्पीचेज जि० २, पृ० ३२१।

परम्परागत व्यवस्था के समर्थक थे और हैं। भारतीय राजे-महराजे, तालुकेदार और ज़मीदार उन्हें ठीक ही अपना शुभचिन्तक मित्र समझते हैं। जो परिवर्तन वे तीव्रता से चाहते हैं वह हिन्दुस्तान में विदेशी नियंत्रण का पूर्ण विलीनीकरण है। नौजवानी की शिक्षा और अध्ययन बहुत कुछ उनके चिन्तन को प्रभावित करते हैं, और वे इस बीसवीं शताब्दी के गतिशील, क्रान्तिकारी, युद्धेतर संसार को टी० एच० ग्रीन और जान स्टुअर्ट मिल तथा ग्लैडस्टन और मार्ले की अर्ध-स्थिर उन्नीसवीं शताब्दी के चश्मे से, तथा तीन-चार हजार पुरानी हिन्दू संस्कृति और समाजदर्शन के आलोक में देखते हैं। विरोधों से संपृक्त यह एक अद्‌भुत समुच्चय है, और इन विरोधों का समाधान करने की क्षमता पर उन्हें आश्चर्यजनक विश्वास है। विभिन्न क्षेत्रों में उनकी लम्बी सार्वजनिक सेवा ने, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी जैसी बड़ी संस्था की स्थापना में उनकी सफलता ने, उनकी स्पष्ट सच्चाई और गंभीरता ने, उनकी प्रभावशाली वाग्मिता ने, उनके सरल स्वभाव और आकर्षक व्यक्तित्व ने, भारतीय जनता को, विशेष रूप से हिन्दू जनता को, उनका प्रिय बना लिया था, और बहुत से वे लोग भी, जो यदि उनसे सहमत न हों और राजनीति में उनका अनुसरण न करते हों, तो भी उनका आदर करते और उनसे स्नेह रखते हैं। अपनी आयु और अपनी लम्बी सार्वजनिक सेवा के कारण वे भारतीय राजनीति के वरिष्ठ सदस्य हैं। पर वे एक ऐसे वरिष्ठ हैं जो कुछ कुछ समयातीत हैं और मौजूदा संसार से सपर्क-रहित हैं। उनकी वाणी ध्यान आकर्षित करती थी, पर जो भाषा वे बोलते वह बहुतों की समझ में नहीं आती थी, बहुत से उस पर ध्यान नहीं देते थे।[1]"

यदि आवेग में आकर जवाहरलालजी ये सब बातें न कहते तो अच्छा होता। इनसे तो यही सिद्ध होता है कि मालवीयजी की सार्वजनिक सेवा और क्षमता तथा उनका शील उनके नेतृत्व का मूलाधार था, और उनके व्यक्तित्व ने जनता को इतना मोहित कर लिया था कि जब उन्हें उनकी बात ठीक नहीं जँचती थी, तब भी वे उनका आदर करते थे। यदि यह और भी बता दिया जाता कि सन् १९२६ में नयी पार्टी के नेतृत्व का उत्तरदायित्व ग्रहण करने से पहले उन्होंने बीस वर्ष प्रान्तीय और केन्द्रीय विधान कौंसिलों में बहुत ही क्षमता के साथ राष्ट्रीय पक्ष का प्रतिनिधित्व किया था, तो यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता कि जो उत्तरदायित्व उन्होंने सन् १९२६ में ग्रहण करने का निश्चय किया उसके वे सर्वथा योग्य थे।

---

१. जवाहरलाल नेहरू : आटोबायोग्राफी, पृ० १५७-१५८।

नेहरूजी स्वीकार करते हैं कि मालवीयजी "राष्ट्रवादी" थे, राजनीतिक स्वतंत्रता की उपलब्धि उनके सार्वजनिक जीवन का मुख्य लक्ष्य था। यही तो उस समय राष्ट्र की सबसे बडी माँग थी, यही तो स्वराज्य पार्टी और काग्रेस पार्टी का मुख्य ध्येय था; इसके लिए सतत प्रयत्न करना प्रत्येक देशभक्त कार्यकर्ता का कर्तव्य था। चालीस वर्ष तक अथक प्रयत्न करने के बाद भी वे इस कर्तव्य के पालन में डटे रहे, यह क्या कोई कम बात है ? यदि वे अपनी पुरानी सेवाओ से संतुष्ट होकर, या नवयुग के युवक राजनीतिज्ञो के तौर तरीके से रुष्ट होकर राजनीति से अलग हो गये होते, या किसी आर्थिक या सामाजिक कार्यक्रम को प्राथमिकता देने लगे होते तो वे अपने कर्तव्य-पथ से हट गये होते।

नेहरूजी ने लिखा है कि 'मालवीयजी का हृदय अक्सर काग्रेसकैम्प में था'। नेहरूजी की यह बात अवश्य ही भ्रामक है। वे सन् १८८६ मे काग्रेस मे शामिल हुए और उसके बाद जीवन पर्यंत काग्रेस में बने रहे। वे काग्रेस को स्वतत्रता संघर्ष का रंगमंच स्वीकार करते थे, और उसके इस स्वरूप को विकसित करने के लिए सदा प्रयत्न करते रहते थे। काग्रेस के प्रति उनकी निष्ठा अचल थी। उन्होने काग्रेस को छोडने की, या उसके विरुद्ध कोई स्थायी राजनीतिक सस्था बनाने की बात कभी सोची ही नही। सन् १९३२ मे काग्रेस के दिल्ली अधिवेशन की अध्यक्षता स्वीकार करते हुए मालवीयजी ने जो वक्तव्य दिया था, उसमें उन्होने लिखा था कि "काग्रेस के प्रायः जन्मकाल से ही उसके साथ मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध रखने का मुझे सौभाग्य प्राप्त रहा है। कई अवसरो पर जबकि कुछ महत्त्व के प्रश्नो पर मेरा मतभेद रहा है, उसके प्रति मेरी श्रद्धा-भक्ति में कमी नही पडने पायी।"[1] मालवीयजी की इस निष्ठा के प्रति जवाहर लालजी की चाहे कुछ ही राय क्यो न हो, डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद, पट्टाभि सीतारामैय्या और स्वय गाधीजी को इसमे कोई संदेह नही था।

नेहरूजी की यह बात कि 'मालवीयजी परम्परागत आर्थिक, सास्कृतिक और सामाजिक व्यवस्था के समर्थक थे, और आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन से उनका कोई वास्ता नही था' बिल्कुल ही भ्रामक है। बीसवी शताब्दी के प्रथम दशक में मालवीयजी ने युक्त प्रान्त की कौंसिल में बजट की आलोचना करते हुए जो भाषण किये थे, उनको पढने से तो यह स्पष्ट होता है कि मालवीयजी केवल राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करना ही नही, बल्कि राष्ट्र का आर्थिक और सास्कृतिक नवनिर्माण भी करना चाहते थे। वे आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा पद्धति

१. 'आज', ७ अप्रैल सन् १९३२।

के समर्थक थे, और चाहते थे कि भारतीय विद्यार्थी प्राचीन भारतीय वाङ्मय के साथ-साथ आधुनिक ज्ञान-विज्ञान और शिल्पशास्त्र का भी अध्ययन करें, और उनकी सार्थक उपलब्धियाँ ग्रहण करें, तथा राष्ट्र के नवनिर्माण में उनका उपयोग करें। उन्होने अपने समकालीन सभी राजनीतिज्ञो की तरह मालगुजारी के स्थायी बन्दोबस्त की माँग को पुष्ट किया, पर उसके साथ यह भी माँग की कि किसानो का लगान पचीस तीस प्रतिशत घटा दिया जाय, और इस घटे लगान के आधार पर मालगुजारी का भी स्थायी बन्दोबस्त किया जाय। उन्होने तो एक बार भारतीय विधान कौंसिल मे घोषित किया कि उन्होने बंगाल के ढग के स्थायी बन्दोबस्त का कभी समर्थन नही किया। उन्होने कृषि आयोग के सामने गवाही देते हुए कहा कि उन्होने पिछले चुनावो मे जमीदारो से स्पष्ट शब्दो में कहा था कि यदि वे उनके साथ काम करना चाहते है, तो उन्हे (जमीदारो को) अपने काश्तकारो के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार करना होगा।[1] मालवीयजी ने कमीशन से यह भी कहा था कि वे चाहते है कि किसानो को अधिक हृष्ट-पुष्ट और ऊँचा जीवन विताने की सुविधा प्राप्त हो, उनमे आत्मसम्मान तथा आत्म-निर्भरता की भावना पुष्ट की जाये, उन्हे सरकार के प्रशासनिक, माल, तथा पुलिस के अफसरो एव जमीदारो और उनके कारिन्दो की ओर मुँह उठाकर बात करने की शिक्षा दी जाय, उन्हे बताया जाय कि उन्हें नागरिकता के वही अधिकार प्राप्त है जो उनके अधिक सम्पन्न संगी-साथियो को प्राप्त है।[2] सन् १९३१ मे उन्होने नेहरूजी द्वारा प्रस्तुत मौलिक अधिकारो की रूपरेखा स्वीकार करते हुए किसानो के उन अधिकारो को मान्यता प्रदान किये जाने की माँग का समर्थन किया, जिसका उल्लेख उस रूपरेखा मे था। सन् १९३६ में नेहरू साहब के नेतृत्व में काग्रेस ने जो चुनाव घोषणा तैयार की, उसमें भी किसानो के सम्बन्ध मे कोई ऐसी बात नही कही गयी थी, जिसका किसी न किसी रूप में मालवीयजी ने उससे पहले ही समर्थन न किया हो। यह ठीक है कि सन् १९२८ में मालवीयजी ने सर्वदलीय सम्मेलन में जमीदारो के आर्थिक अधिकारो की रक्षा के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पेश किया था, पर इसका भी यही मतलब था कि बिना मुआवजे के, बिना समुचित कानूनी व्यवस्था के, जमीदारिया जब्त नही की जा सकती। कुछ नवयुवको ने इसका विरोध जरूर किया, पर किसी

---

१. एग्रीकलचरल कमीशन रिपोर्ट, जिल्द ७, पृ० ७३२, पृ० ४२६

२. वही, पृ० ७०९।

वयोवृद्ध काग्रेसी नेता ने, किसी काग्रेसी विधायक ने, इसके खिलाफ आवाज नही उठायी। इस से यह स्पष्ट है कि सन् १९२६-३१ में कृपि व्यवस्था के सम्बन्ध में मालवीयजी के विचार उतने क्रान्तिकारी भले ही न हो जितने जवाहर लालजी के थे, पर उनमें सुधार और परिवर्तन जरूर निहित थे, और वे कम से कम इतने प्रगतिशील जरूर थे जितनी कांग्रेस की सन् १९३६ की चुनाव घोषणा।

मालवीयजी चाहते थे कि पुराने कला-कौशल और शिल्पो की समुचित रक्षा की जाय, पर वे यह भी चाहते थे कि आधुनिक शिल्प विज्ञान, यंत्र-विज्ञान और विद्युत-विज्ञान की शिक्षा का भी देश में समुचित प्रबन्ध किया जाय, और इन सबकी मदद से बडे-बडे कल कारखाने खोले जायें, और बडे पैमाने पर देश में औद्योगीकरण किया जाय। उन्होने केन्द्रीय असेम्बली मे ब्रिटेन के राजनीतिक आधिपत्य के साथ साथ उसके आर्थिक आधिपत्य का भी विरोध किया, राजनीतिक स्वराज्य के साथ साथ आर्थिक स्वराज्य की माग को भी पुष्ट किया। जहा उन्होने इस बात की माग की कि वित्तीय संरक्षणो द्वारा भारत मे देशज उद्योगो की वृद्धि की जाय, वहाँ उन्होने श्री एन० एम० जोशी की इस माग का भी समर्थन किया कि मजदूरो के हितो और अधिकारो की समुचित रक्षा की जाय, और ब्रिटिश उद्योगो और औद्योगिको को बाउन्टी या साम्राज्यिक अधिमान देने का विरोध किया। सन् १९२८-२९ में जहा उन्होने कम्युनिस्टो की धर्म-सम्बन्धी धारणाओ का विरोध किया, वहा उनकी कतिपय आर्थिक और सामाजिक धारणाओ को न्याय सगत और धर्मानुकूल बताया। इस सबके बाद मालवीयजी को 'यथा पूर्वस्थितिवादी' नही कहा जा सकता। वे समाजवादी नही थे। पर सन् १९१९ मे रेलो के राष्ट्रीयकरण के पक्ष मे जो तर्क उन्होने दिये वे समाजवादी ही थे।[1] फिर सन् १९२६ मे किस काग्रेसी नेता ने अपने को समाजवादी घोपित किया था? वास्तव में उस समय काग्रेस के वरिष्ठ नेताओ में जिस व्यक्ति का झुकाव समाजवाद की ओर दिखाई पडता था, वह नेशनलिस्ट पार्टी के नेता लाला लाजपत राय थे, जिन्होने नवम्बर सन् १९२० में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस के प्रथम अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में पूंजीवाद को चुनौती देते हुए कहा था. "सैन्यवाद और साम्राज्यवाद पूंजीवाद के जुडवा बच्चे हैं। वे तीन में एक और एक मे तीन हैं। उनकी छाया, उनके फल और उनकी छाल—सभी जहरीले होते हैं।"[2]

---

१. इंडियन लेजिस्लेटिव कौंसिल सन् १९१८ जि० ५६, पृ० १०९८।
२. जोशी : लाला लाजपत राय, राइटिंग्ज एंड स्पीचेज जि० २, पृ० ५७।

यह ठीक है कि समाज-सुधार के मामले में मालवीय जी के विचार यथोचित प्रगतिशील नही थे, पर केन्द्रीय असेम्बली में इस कमी की पूर्ति नेशनलिस्ट पार्टी के नेता लाला लाजपत राय करते थे।

यह ठीक है कि मालवीयजी टी० एच० ग्रीन, जान स्टुअर्ट मिल, ग्लैडस्टन, के विचारो से प्रभावित थे। यही सिद्ध करता है कि उनका चिंतन पुरातनवादी नही, वल्कि समन्वयवादी था, उनकी उदारवादी धारणाएं व्यक्तिवाद के वजाय 'सामाजिक उपयोगिता' या 'सामाजिक हित' के मूलभूत सिद्धान्त पर आधारित थी, और वे 'पुलिस राज्य' के वजाय 'कल्याण राज्य' पर विश्वास करते थे, स्वतन्त्रता और समता पर आश्रित लोकतन्त्र पर उनकी निष्ठा थी। ये सव धारणाएं नि सदेह उन्नीसवी शताब्दी के विचारको द्वारा प्रतिपादित की गयी थी, और सम्भवत: उस शताब्दी के अतिम दशक मे ही मालवीयजी ने उन्हे ग्रहण कर लिया था। वे इन सव वातो को वीसवी शताव्दी के भारत के लिए भी, स्वतन्त्र भारत के राजनीतिक निर्माण के लिए भी आवश्यक समझते थे। स्वतंत्र भारत के लिए जो सविधान पंडित नेहरू की सहमति से तैयार हुआ वह सर जान स्टुअर्ट मिल और ग्लैडस्टन के विचारो से मिलता जुलता लोकतान्त्रिक विधान है, जिसमें मुआवजा देकर ही निजी सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण तथा जमीदारी को खत्म करने की व्यवस्था है, और समाजवादी समाज को स्थापित करने की कोई चर्चा नही है।

१८. लेजिस्लेटिव असेम्बली

१९२७-१९३०

दलों की स्थिति

सन् १९२६ के चुनाव में उत्तर प्रदेश और पंजाब में कांग्रेस पार्टी की करारी हार और इंडिपेंडेंट कांग्रेस पार्टी की भारी विजय हुई। मध्य प्रान्त, महाराष्ट्र में श्री जयकर साहब की 'रिसपानसिव कोआपरेशन पार्टी' ने कांग्रेस पार्टी को हराकर अपने उम्मीदवारों को जिता दिया। दोनों पार्टियों के सभी प्रमुख नेता केन्द्रीय असेम्बली के सदस्य निर्वाचित हो गये। इन दोनों पार्टियों ने मिलकर नेशनलिस्ट पार्टी गठित की। इसमें कुछ वे सदस्य भी शामिल हो गये जिन्होंने स्वतंत्र उम्मीदवार की हैसियत से चुनाव लड़ा था। बीस सदस्यों की इस पार्टी के लाला लाजपत राय नेता, और मालवीय जी उपनेता चुन लिये गये।

मद्रास, बंगाल, बिहार आदि प्रान्तों में अत्यधिक सफलता मिलने के कारण केन्द्रीय असेम्बली में कांग्रेस पार्टी ही प्रमुख विरोधी दल बना रहा। पर इस पार्टी के सदस्यों की संख्या पहले से कुछ कम हो गयी, जिसके कारण उसकी पोजीशन को धक्का लगा। पंडित मोतीलाल नेहरू नेता और कांग्रेस के अध्यक्ष वी० एस० श्रीनिवास ऐयंगर उपनेता चुने गये।

असेम्बली में नेशनलिस्ट पार्टी और कांग्रेस पार्टी ने सब राष्ट्रीय प्रश्नों पर मिलकर काम किया। पर सरकार के विरुद्ध सफलता प्राप्त करने के लिए इन दोनों पार्टियों की संयुक्त शक्ति भी काफी नहीं थी। इसके लिए जिना साहब की इंडिपेंडेंट पार्टी की सहायता की आवश्यकता होती थी। पर विरोधी पक्ष को इस दल का पूरा बल नहीं मिल पाता था। कभी कभी जब जिना साहब स्वयं कांग्रेस पार्टी का साथ देने को तैयार हो जाते थे, तब भी उनकी पार्टी के सदस्य सरकार का साथ दे देते थे, या तटस्थ रह जाते थे।

पर कांग्रेस पार्टी की अनुशासन-हीनता भी विरोधी-पक्ष की परेशानी का एक बड़ा कारण बन गयी थी। इसके कारण बहुधा उस समय जबकि मोतीलाल जी ने सरकार के विरोध में वोट किया, कांग्रेस पार्टी के बहुत से सदस्यों ने वोट नहीं दिया, संभव है वे उस समय सदन में हो ही नहीं।[१] वास्तव में

१. लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स, सन् १९२८, जि० १, पृ० ७०९।

मोतीलालजी स्वयं अनुशासन-हीनता से इतने क्षुब्ध थे कि वे केन्द्रीय असेम्बली के सदस्य भी बने रहना नही चाहते थे। उन्होने जवाहरलालजी को लिखा—"पार्टी के मामले बद से बदतर होते जा रहे है। मैंने पार्टी के उपनेता श्री ऐयंगर को, जो काग्रेस के अध्यक्ष है, पार्टी के सब मामलो में पूरा और स्वतत्र अधिकार दे दिया है, जबकि मैने अपने को लगभग पीछे रखा है। उन्होने इस बात से लाभ उठा कर रंगा अय्यर तथा दूसरों को भिन्न भिन्न तरीको से मुझे बदनाम करने में बढावा देकर पार्टी मे मनमुटाव और असन्तोप को प्रोत्साहित किया। जब मैं अनुशासन की कार्रवाई लेने को बाध्य हुआ, तब उन्होने उनकी ओर से मध्यस्थता की, और सदस्यो में उनके लिए सहानुभूति बढायी। जब कार्यवाही वापस ले ली गयी, तब उन्होने उनको किसी दूसरी शरारत में लगा दिया। मेरे सामने यही विकल्प है कि मैं कडाई से बग़ावत की भावना को दबा दूं, या रिटायर हो जाऊ। मै सोचता हू कि दूसरा रास्ता ही ठीक होगा, लेकिन मैं अभी पूरे तौर पर निर्णय नही कर पाया हूँ"।[1] मोतीलालजी ने गाधीजी को भी लिखा "मैंने असेम्बली से खिसक जाने की प्रक्रिया आरम्भ कर दी है। पिछले सेशन में मैंने यथासभव अपने को पीछे रखा। जब सितम्बर में नया सेशन होगा, मैं सम्भवत: यूरोप में हूँगा। गवर्नर-जनरल चाहे तो वह मेरी सीट खाली घोपित कर सकते है। पर मुझे डर है कि वे ऐसा नही करेंगे"।[2] इस पत्र में उन्होने यह भी लिखा कि वे तो स्वय यही चाहेंगें कि असेम्बली से "बाहर रह कर जितनी भी अधिक से अधिक सेवा वह कर सकें करें।"[3] इसी अवसर पर डाक्टर अन्सारी ने भी काग्रेस पार्टी की गतिविधि पर एक वक्तव्य प्रकाशित किया। इसका भी मोतीलालजी को काफी क्षोभ था।

दिसम्बर सन् १९२७ मे कागेस ने अपने अधिवेशन में कौसिलो में काग्रेस पार्टी का कार्यक्षेत्र बहुत सीमित कर दिया, और मई सन् १९२९ में उसने सदस्यो को आदेश दिया कि वे असेम्बली की बैठको में न जायें। इन कारणो से भी वे सन् १९२८ और सन् १९२९ मे बहुत ही कम काम कर सके। जनवरी सन् १९३० में काग्रेस पार्टी ने असेम्बली का बहिष्कार कर दिया। वास्तव में सन् १९२७ के बाद कुछ प्रश्नो को छोडकर जिनमें काग्रेस पार्टी ने भी भाग लिया, नेशनलिस्ट पार्टी को ही मुख्य विरोधी दल का उत्तरदायित्व वहन करना पडा। काग्रेस पार्टी की अनुपस्थिति के कारण जनता-पक्ष को बार-बार पराजित होना पडा।

---

१. नन्दा : नेहरूजी, पृ० २७०।
२. वही। ३. वही।

समाज-सुधार

समाज-सुधार के प्रश्न पर मालवीयजी के दल मे भी मतभेद था। लाला लाजपतराय पुराने समाज-सुधारक थे, वे कानून द्वारा सामाजिक कुरीतियो का निराकरण सर्वथा उचित और आवश्यक समझते थे। पंडित हृदय नाथ कुंजरू और मुंशी ईश्वर शरण भी बिल्कुल उनके साथ थे। पर मालवीयजी बाल-विवाह आदि कुरीतियो का निराकरण हिन्दू-जाति के उत्थान के लिए आवश्यक समझते हुए भी समाज-सुधार के प्रश्नो पर हिन्दुओ के परम्परागत विचारो और भावनाओ का ध्यान रखना विधायको का कर्तव्य समझते थे। इसलिए जबकि लाला लाजपत राय, पंडित हृदय नाथ कुजरू, मुंशी ईश्वर शरण आदि ने श्री हर विलास शारदा द्वारा प्रस्तुत हिन्दू विवाह-विधेयक का डट कर समर्थन किया, मालवीयजी ने उसे जनमत के लिए प्रसारित करने, और उसके पक्ष मे जनमत तैयार करने के प्रस्ताव का समर्थन किया। उन्होने यह भी कहा कि एक वर्ष से कम आयु की विधवाएँ केवल हिन्दुओ मे ही नही, बल्कि मुसलमानो और ईसाइयो मे भी पायी जाती है, और इसलिए बाल-विवाह के सम्बन्ध मे एक ऐसा व्यापक कानून पास होना चाहिए जिसका सम्बन्ध सब सम्प्रदायो से हो[1]। मालवीयजी सोलह वर्ष की कन्या और पचीस वर्ष के नवयुवक के विवाह को ही सर्वोत्तम समझते थे। बारह वर्ष की आयु मे कन्या का विवाह तो वे घटिया दर्जे का विवाह मानते थे। फिर भी हिन्दू जनता की परम्परागत भावनाओ को ध्यान में रखते हुए वे कानून द्वारा १२ वर्ष को ही कन्याओ के विवाह की निम्नतम सीमा निर्धारित करना उचित समझते थे। उन्होने इसलिए शारदा साहब के विधेयक मे इस प्रकार के संशोधन का समर्थन किया। उन्होने कहा कि प्रतिनिधि व्यवस्था मे प्रतिनिधियो के लिए हिन्दू जनता की भावनाओ का ध्यान रखना आवश्यक है, बहुत से ऐसे प्रगतिशील देश है जहाँ विवाह की निम्नतम आयु बारह वर्ष ही है, और यहाँ भी यही आयु निर्धारित करना उचित होगा। उन्होने यह भी कहा कि जिन देशो मे विवाह रद्द कर दिये जाते है, वहाँ किसी को दंडित नही किया जाता, जबकि प्रस्तुत विधेयक मे दण्ड का भी विधान है। वे भी बाल-विवाह और संसर्ग के कुप्रभाव से समाज की रक्षा के लिए सहयोग की सम्मति आयु (एज आफ कंसेंट) १४ वर्ष निर्धारित करने को तैयार थे[2]। मालवीयजी का संशोधन नामंजूर हो गया, और मूल विधेयक केन्द्रीय असेम्बली ने बहुमत से पास कर दिया।

---

१. वही सन् १९२७, जि० ५, पृ० ४४३९-४४४६।

२. वही, सन् १९२९, जि० ५, पृ० १०४२-१०५४, १२९५-१२९६।

इसी तरह जब आर्य-समाजियो के आग्रह पर "आर्य विवाह विधेयक" केन्द्रीय असेम्बली मे प्रस्तुत हुआ, तब मालवीयजी ने यह कह कर उसका विरोध किया कि आर्य समाजी तो हिन्दू-समाज का अग है, उनके लिए अलग विवाह सम्बन्धी कानून पास करना नामुनासिब है। पर पंडित हृदयनाथ कुजरू ने इस विधेयक का भी डट कर समर्थन किया।

इसी तरह सन् १९२९ मे जबकि मालवीयजी ने यह कह कर कि असेम्बली को हिन्दुओ के पर्सनल-ला मे हस्तक्षेप नही करना चाहिए, हिन्दू-ला इनहेरिटेंस अमडमेट बिल (हिन्दुओ के कानून विरासत मे सशोधन विधेयक) का विरोध किया, उनकी पार्टी के अधिकांश सदस्यो ने उसके पक्ष में अपना मत प्रदान किया।

पर फरवरी सन् १९२८ में मालवीयजी ने अछूतोद्धार के निमित्त जयकर द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव का तथा लाला लाजपत राय द्वारा प्रस्तुत परिशिष्ट का पूरे तौर पर समर्थन किया। श्री एम० आर० जयकर का प्रस्ताव था कि "असेम्बली गवर्नर-जनरल-इन-कौंसिल को संस्तुति करती है कि वह अछूतो तथा दूसरे दलित वर्गो की शिक्षा के निमित्त तथा उनको सब सरकारी नौकरियो, विशेषत पुलिस सर्विस, को खोलने के निमित्त विशेष सुविधाए देने के लिए आदेश निकाले।" लाला लाजपत राय ने प्रस्ताव किया कि इसके अन्त मे यह जोडा जाय कि "असेम्बली गवर्नर-जनरल-इन-कौंसिल से यह भी संस्तुति करती है कि वह दलित वर्गो की शिक्षा के लिए केन्द्रीय कोष से एक करोड रुपया मजूर करे, और यह आज्ञा निकाले कि वे सब कुएँ जो निजी नही है, वे सब सडकें जो सार्वजनिक है, और वे सब संस्थाएं जिनका सरकारी फन्डो से अंशतः या पूर्णत. आर्थिक प्रबध किया जाता है, दलित वर्गो के लिए खुली रहेगी, तथा अछूतो की और उनकी जो अछूत तो नही है पर सरकारी विवरण में दलित वर्गो में शामिल किये गये है, एक सूची तैयार की जायेगी।"

प्रस्ताव और सशोधन के पक्ष मे बोलते हुए मालवीयजी ने शिक्षा की ओर सरकार का विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट किया। उन्होने कहा कि उन्हो ने तो सन् १९१६ में ही भारतीय विधान कौंसिल मे कहा था कि दलित वर्गो के उत्थान का प्रश्न शिक्षा पर निर्भर है, उन वर्गों में शिक्षा के प्रसार के लिए जो कुछ सरकार कर सकती है उसे वह करे। उस समय, मालवीयजी ने कहा, उन्होने यह भी कहा था कि "सरकार और समाज के स्कूल दलित वर्गों के लिए उतने ही खुले हो जितने दूसरे बच्चो के लिए।" उन्होने कहा कि यदि सरकार

प्रति वर्ष कुछ करोड रुपये उनकी शिक्षा पर खर्च करने को तैयार हो, तो उनकी समस्या सुलझ जाय। खेद है कि सरकार उनके प्रति सहानुभूति तो बहुत प्रकट करती है, पर उनके उत्थान के लिए करती बहुत कम है। मालवीयजी ने सरकार की शिक्षा-नीति की कडी आलोचना करते हुए आशा प्रकट की कि सरकार प्रस्ताव और संशोधन दोनो स्वीकार कर लेगी।[1]

सरकार का उत्तर संतोपजनक नही था। सरकारी प्रवक्ता श्री गिरजाशकर वाजपेयी ने लाला लाजपतराय का सशोधन स्वीकार करने से इनकार कर दिया। उन्होने कहा कि सन् १९१९ के सविधान के अंतर्गत शिक्षा हस्तान्तरित विपय है, जिसका प्रवंध प्रान्तीय विधान सभा को उत्तरदायी मन्त्रियो के हाथ मे है, और जिनपर केन्द्रीय सरकार का कोई विशेप अधिकार या नियंत्रण नही है। सरकार, उन्होने कहा, अछूतो और अन्य दलितो के उत्थान के लिए प्रयत्न करती रही है, और आगे भी करती रहेगी।

एक अंग्रेज् सदस्य ने प्रस्ताव किया कि जयकर साहव के प्रस्ताव मे से पुलिस सर्विस का विशेप उल्लेख निकाल दिया जाय। यह सशोधन सदन ने स्वीकार कर लिया। पर लाला लाजपत राय का संशोधन २४ के विरुद्ध ४७ रायो से रद्द हो गया, और सरकार की अनुमति से जयकर साहव का मूल प्रस्ताव "पुलिस" शब्द निकाल देने पर मजूर हो गया।

लाला लाजपत राय के संशोधन रद्द होने का मूल कारण स्वराज्य पार्टी की उपेक्षा थी। जवकि मालवीयजी की पार्टी के सव सदस्यो ने, औद्योगिक सर पुरुषोत्तमदास ठाकुर दास ने, मनोनीत मजदूर नेता एन० एम० जोशी ने, ईसाई पादरी एन० सी० चटर्जी ने, तथा अपने तीन मुसलमान साथियो के साथ जिना साहव ने लाला लाजपत राय के संशोधन के पक्ष मे वोट दिये, स्वराज्यपार्टी के सदस्य मतदान के समय असेम्वली में उपस्थित ही नही थे। अंग्रेज् सदस्यो ने सरकारी और मनोनीत सदस्यो के साथ सशोधन के विरोध मे राय दी।

मुद्रा विधेयक

भारत सरकार सन् १९२६ मे ही स्वराज्य पार्टी के सदस्यो की अनुपस्थिति में एक विधेयक द्वारा भारतीय रुपये की दर सोलह पैस के बजाय अठारह पैस कर देना चाहती थी। पर मतदान के समय स्वराज्य पार्टी के सदस्यो के उपस्थित हो जाने पर विधेयक पास नही कराया जा सका, और समस्या पर विचार नये

१. वही, सन् १९२८, जि० १, पृ० ७१२-७१६।

निर्वाचन तक टल गया। सन् १९२७ में सरकार ने इस विधेयक को प्रस्तुत किया, भारतीय नेताओं और विधायकों ने फिर इसका विरोध किया।

मालवीयजी ने करेंसी बिल (मुद्रा विधेयक) पर अपने विचार व्यक्त करते हुए सरकार की वित्त नीति की कड़ी आलोचना की। उन्होंने अपने लम्बे भाषण में राजनीतिज्ञों, अर्थशास्त्र के विद्वानों, तथा सरकारी अफसरों के वक्तव्यों का उद्धरण देते हुए सिद्ध किया कि ब्रिटिश सरकार द्वारा निर्धारित भारत की मुद्रा नीति भारत के हित के बजाय ब्रिटेन के हित को लाभान्वित करती रही है। उन्होंने माँग की कि देश में स्वर्णमुद्रा के साथ स्वर्णमान प्रतिष्ठित किया जाय, भारतीय स्वर्णमुहर तौल और शुद्धता में ब्रिटिश अशरफी सावरन के समान हो, दोनों की एक जैसी स्थिति हो, एवं जो भी चाहे वह अपने सोने को टकसाल द्वारा स्वर्ण मुहर में गढवा सके। उन्होंने कहा कि सरकार ने रुपये के सिक्के में दस आने की चाँदी लगाकर छः आने की बचत इसलिए ही की थी कि आगे चलकर मुद्रा-अतिरिक्त निधि (रिजर्व फन्ड) द्वारा स्वर्णमुद्रा चालू की जाय, और बहुत से विशेषज्ञों ने इसकी सलाह भी दी थी। पर सरकार ने ऐसा न करके भारी अनर्थ किया है, और भारत के हितों को हानि पहुँचायी है।[1]

उन्होंने यह भी माँग की कि सम्प्रति रुपये की दर अठारह पेंस न बढाकर सोलह पेंस ही कायम रक्खी जाये। उन्होंने ब्रिटेन के भारत-मन्त्री तथा भारत के वित्त-सदस्य पर आरोप लगाया कि वे अंग्रेजों की हित-वृद्धि के लिए ही रुपये की दर अठारह पेंस निर्धारित करते है, क्योंकि वे जानते है कि इस तरकीब से भारत में ब्रिटिश माल १२½ प्रतिशत सस्ता हो जायगा, और उसकी खपत बढ जायेगी, तथा भारत में रहनेवाले अंग्रेजों को भी अपना रुपया ब्रिटेन भेजते समय अधिक ब्रिटिश मुद्रा मिल सकेगी। उनकी निश्चित धारणा थी कि अठारह पेंस की दर भारत के किसानों और औद्योगिकों को हानिकारक सिद्ध होगी। वित्तीय संरक्षण साढे बारह प्रतिशत घट जाने के कारण विदेशी माल से प्रतियोगिता (होड) बढ जायेगी, और भारतीय उद्योगों की क्षति होगी। किसानों को भी निर्यात में हानि उठानी पडेगी। उन्हे सोलह पेंस के बजाय अठारह पेंस के लिए एक रुपया मिल सकेगा। सरकारी अफसरों का कहना था कि रुपये की दर ऊँची कर देने से मजदूरों को लाभ होगा, क्योंकि उन्हे माल सस्ते दामों में मिल सकेगा। इसके जवाब में मालवीयजी का कहना था कि "मजदूरों का हित रोजगार में है, उन्हे काम तभी मिल सकेगा, जब पूँजीपति

१. वही, सन् १९२७ जि० २, पृ० १७८१।

उद्योगों में अपनी पूँजी लगाने में लाभ देखेंगे, और यह तभी हो सकेगा जब उद्योग उन्हे उचित मुनाफा छोडे। अगर आप उद्योगो को हानि पहुँचाते हो, अगर आप विदेशी उद्योगो की होड को अधिक तीव्र (गंभीर) बना देते हो, और अगर आप उसके (पूँजीपति) लिए उद्योग चलाना निरर्थक बना देते हो, तो उद्योग खत्म हो जायगा और उसके साथ ही मजदूर की मजदूरी भी जाती रहेगी। इस तरह पूँजीपतियो के साथ-साथ मजदूरो को भी क्षति पहुँचेगी।"[1]

केन्द्रीय असेम्बली मे ६५ सदस्यो ने सोलह पेंस की दर के पक्ष में, और ६८ सदस्यो ने इसके विपक्ष में वोट दिये, और इस तरह राष्ट्रवादियो का संशोधन स्वीकार नही हो सका।

अन्तिम बार मुद्रा विधेयक पर बोलते हुए मालवीयजी ने कहा कि मतदान से यह प्रत्यक्ष है कि जनता के अधिकाश प्रतिनिधि सोलह पेंस की दर के पक्ष मे है, उन्हें सरकारी सदस्यो और सरकार द्वारा मनोनीत सदस्यो के वोटो के कारण ही पराजित होना पडा है। उन्होने उस सवैधानिक व्यवस्था की कडी आलोचना की, जिसके अन्तर्गत सरकार केन्द्रीय असेम्बली मे लगभग दो तिहाई निर्वाचित सदस्यो को इस तरह पराजित कर सकती है। उन्होने कहा कि मौजूदा संविधान, जो इतने स्थायी सिविल सर्वेन्टो (सरकारी नौकरो) को असेम्बली में बैठने का तथा सरकार को इतने सदस्यो को मनोनीत करने का अधिकार देता है, अवश्य ही "दोषपूर्ण" और "अनैतिक" है। उन्होने माँग की कि सरकारी सदस्यो को अपने इच्छानुसार वोट देने की छूट दी जाय[2], पर सरकार ने मालवीयजी की इस माँग की ओर कोई ध्यान नही दिया।

अन्त मे ५१ वोटो के विरुद्ध ६५ वोटों से सरकार द्वारा प्रस्तुत मुद्रा विधेयक पास हो गया। इस समय जहाँ एक अग्रेज उद्योगपति तथा सभी भारतीय औद्योगिको ने और सभी राष्ट्रवादी सदस्यो ने विधेयक के विरुद्ध वोट दिया, वहाँ मिस्टर मुहम्मद अली जिना, मियाँ मुहम्मद शफी, औद्योगिक इब्राहीम रहमतुल्ला तथा खान बहादुर सरफराज हुसेन खाँ को छोड़ कर जिना साहब की इडिपेंडेंट पार्टी के मुसलमान सदस्यो ने विधेयक के विरुद्ध वोट नही दिये। यदि इडिपेंडेंट पार्टी का भी पूरा-पूरा सहयोग प्राप्त हो जाता तो सरकार की पराजय निश्चित थी।

---

१. वही, सन् १९२७, जि० २, पृ० १७७३-१७७९।

२. वही, सन् १९२७, जि० २, पृ० २१३८।

पण्डित मोतीलाल नेहरू स्वयं यह निश्चय नही कर पाते थे कि रुपये की कौन-सी दर व्यावहारिक और देश के हित में होगी। वे संभवतः यह चाहते थे कि क़ानून द्वारा कोई दर निश्चित न की जाय, और व्यापार की स्वतंत्र प्रक्रिया द्वारा विनमय का दर व्यवस्थित हो। पर उन्होने अपने दूसरे साथियो के साथ सोलह पेंस के पक्ष मे वोट दिया। अन्त में उन्होने सरकार से अनुरोध किया कि विधेयक वापस ले लिया जाय। पर जब सरकार इसके लिए तैयार नही हुई, तब उन्होने उसके विपक्ष में वोट दिया।

फौलाद संरक्षण विधेयक

सन् १९२१ में फौलाद और लोहा उद्योग के वित्तीय संरक्षण के प्रश्न पर विचार करने के बाद टेरिफ बोर्ड ने बाउन्टी (वदान्यता) दिये जाने की सिफारिश की। सन् १९२३ में टैरिफ बोर्ड ने इस उद्योग के सरक्षण के प्रश्न पर फिर विचार किया। इस बार उसने सस्तुति की कि आयात शुल्क द्वारा वित्तीय सरक्षण की व्यवस्था की जाय। उसने सस्तुति की कि ब्रिटेन के सामान पर एक बुनियादी आयात शुल्क लगाया जाय, और दूसरे देशो के माल पर अधिक शुल्क लगाया जाय। इन सस्तुतियो के आधार पर सरकार ने फौलाद विधेयक तैयार करके असेम्बली मे स्वीकृति के लिए प्रस्तावित किया।

मालवीयजी का विरोध

मालवीयजी टाटा के कारखाने के महत्त्वपूर्ण योगदान के बहुत प्रशसक थे, और आयात शुल्क द्वारा भारतीय फौलाद उद्योग का वित्तीय सरक्षण उचित समझते थे। पर उनके विचार मे प्रस्तावित विधेयक मे आवश्यकता से अधिक सरक्षण की व्यवस्था की गयी थी, और उपभोक्ताओ को परिस्थिति की माग से कही अधिक बोझ वहन करने को बाध्य किया जा रहा था। उनकी धारणा थी कि इतने अधिक सरक्षण से अन्य उद्योगो पर भी निरर्थक बुरा प्रभाव पडेगा।

इस विधेयक में अन्य देशो के माल की तुलना में ब्रिटेन के माल पर आयात शुल्क की दर कम थी। मालवीयजी और सभी राष्ट्रवादी सदस्य इस भेद-मूलक शुल्क व्यवस्था के विशेष रूप से विरोधी थे। उनका कहना था कि "अन्य यूरोपियन औद्योगिको की तुलना में ब्रिटेन के औद्योगिक अपना माल सस्ते दामो में बेच सकें इसके लिए उन्हें अधिमानिक (प्रिफरेनशियल, तरजीही) शुल्क द्वारा मदद देना इस असेम्बली का काम नही है।" ब्रिटेन के पूंजीपतियों के

---

१. वही, सन् १९२७, जि० १, पृ० १०७९-१०८२।

लाभ के निमित्त भारतीय उपभोक्ताओं को आर्थिक बोझ वहन करने के लिए बाध्य करना वे सर्वथा अनुचित समझते थे ।[1]

कांग्रेस स्वराज्य पार्टी और जयकर साहब का दल भी इस बात से बिल्कुल सहमत था । पर मिस्टर मुहम्मद अली जिना और उनकी पार्टी इस राय से पूरे तौर पर सहमत नहीं थी । उन्होंने विभेदात्मक शुल्क व्यवस्था का समर्थन किया, और उनकी पार्टी की मदद से केन्द्रीय असेम्बली में विधेयक पास हो गया ।

देशी उद्योगों का संरक्षण

मालवीयजी ने सूती तागा को आयात शुल्क द्वारा संरक्षण दिये जाने का समर्थन करते हुए मांग की कि मिल के कपड़े का भी इसी तरह संरक्षण किया जाय । इस समय उन्होंने कहा कि "हमें मिल के उद्योग और करघे के उद्योग, दोनों को राष्ट्रीय उद्योग" समझना होगा, और दोनों को समानुभूति और सहयोग देना होगा । उन्होंने यह भी कहा कि भारत में तैयार किये गये सूती तागे से बना वस्त्र ही स्वदेशी समझा जा सकता है । उन्होंने जापान की औद्योगिक प्रगति की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट करते हुए सरकार से अनुरोध किया कि वह "देश के उद्योगों को वास्तविक संरक्षण देने में और उन्हें खड़ा करने में जनता के साथ मिलकर काम करे ।"[2]

असैनिक-विमानन-विधेयक (सिविल एविएशन बिल) पर बोलते हुए मालवीयजी ने कहा : "भारतीयों के हित में भारत के गौरव के लिए विमानन का विकास किया जाय ।" असैनिक विमानन या तो सरकारी कारोबार हो, या एक भारतीय कम्पनी द्वारा, जिसके अधिकांश डाइरेक्टर भारतीय हों, संचालित हो ।[3]

रिजर्व बैंक विधेयक

सन् १९२७ में ही सरकार के वित्त सदस्य ने रिजर्व बैंक विधेयक प्रस्तुत किया । इस पर सन् १९२८ तक वाद-विवाद चलता रहा । सरकार रिजर्व बैंक को "शेयर कैपिटल बैंक" के रूप में गठित करके उसे राजकोष और मुद्रा का प्रबंध सौंपना चाहती थी । वह यह भी चाहती थी कि सब अनुसूचित बैंकों की

---

१. वही, सन् १९२७, जि० १, पृ० १०८२ ।

२. वही, सन् १९२७, जि० ५, पृ० ४१०६ ।

३. वही, सन् १९२७, जि० २, पृ० १५६७-१५७० ।

पूँजी का एक अंश रिजर्व बैंक में जमा रहे, ताकि किसी बैंक की दुर्व्यवस्था के कारण देश को वित्तीय संकट का सामना न करना पडे। वह इस बैंक के गवर्नर, डिप्टी गवर्नर और तीन डाइरेक्टरो को स्वयं नियुक्त करना चाहती थी, और वह व्यापार मण्डलो और केन्द्रीय कोआपरेटिव बैंक को भी कतिपय डाइ-रेक्टरो को निर्वाचित करने का अधिकार देने को तैयार थी, पर वह डाइरेक्टरो के बोर्ड में विधान सभाओ को प्रतिनिधित्व देने के विरुद्ध थी। उसका विचार था कि बैंक को राजनीति से अलग रक्खा जाय, और इसलिए व्यवस्थापिका द्वारा कोई डाइरेक्टर निर्वाचित या नियुक्त न किया जाय। इस बैंक की स्थापना के बाद ब्रिटेन के भारत-मन्त्री अपना आर्थिक नियंत्रण कम करने को तैयार थे।

केन्द्रीय असेम्बली के सभी सदस्य रिजर्व बैंक के महत्त्व को स्वीकार करते थे, और सुसंघटित केन्द्रीय बैंक की स्थापना के पक्ष में थे। पर उसके संघटन की रूप-रेखा के सम्बन्ध में सरकार और अधिकाश निर्वाचित सदस्यो में गहरा मतभेद था, जिसके कारण उस समय बैंक स्थापित ही नही हो सका। जबकि सरकार "शेयर कैपिटल बैंक" स्थापित करना चाहती थी, असेम्बली के राष्ट्रवादी सदस्य "स्टेट बैंक" के पक्ष में थे। प्रारम्भ मे सर पुरुषोत्तमदास ठाकुर दास प्रभृति औद्योगिक "शेयर कैपिटल बैंक" के पक्ष में दिखायी देते थें, पर अन्त में वे भी स्टेट बैंक के विचार के पक्ष मे हो गये। असेम्बली के अधिकाश निर्वाचित सदस्य चाहते थे कि रिजर्व बैंक पर विधान मंडल का भी समुचित नियंत्रण हो, और उसके सचालन में जनता के प्रतिनिधियो का भी हाथ हो, और इसलिए उनकी माग थी कि रिजर्व बैंक के कम से कम तीन डाइरेक्टर केन्द्रीय असेम्बली और राज्य सभा (कौंसिल आफ स्टेट) के निर्वाचित सदस्यो द्वारा चुने जायें, तथा कुछ डाइरेक्टरों को प्रान्तीय विधान कौंसिलो के सदस्य चुने। सरकार इस बात को मानने को तैयार नही थी। तिस पर भी प्रवर समिति के अधिकाश सदस्यो ने इसकी संस्तुति की।

केन्द्रीय असेम्बली में वित्त-सदस्य सर बेसिल ब्लेकट ने प्रवर समिति की अल्प संख्यक रिपोर्ट की संस्तुतियो का समर्थन किया। मालवीयजी ने अधिसंख्यक रिपोर्ट को पेश किया। उन्होने वित्त-सदस्य की नीति की आलोचना करते हुए कहा कि संसार में कोई देश ऐसा नही जहा दो केन्द्रीय शेयर कैपिटल बैंक हो। ऐतिहासिक कारणों से बैंक आफ इग्लैंड अवश्य शेयर कैपिटल बैंक है, पर कई अन्य देशो में केन्द्रीय बैंक का स्वरूप बहुत अंश में स्टेट बैंक जैसा है। स्टेट बैंक के विचार का समर्थन करते हुए उन्होने कहा : "स्टेट बैंक भारत की सारी जनता

का बैंक होगा, भारत की सम्पूर्ण जनता उसकी पूंजी की मालिक होगी, जो कुछ नफा उसे प्राप्त होगा, वह सरकार द्वारा भारत की सारी जनता में बँटेगा[1]; दूसरी ओर शेयर कैपिटल बैंक मुट्ठी भर धनियो की सम्पत्ति होगा, उनके हित में ही उसका संचालन होगा। उन्होंने बताया कि इसी समय एक पूंजीपति एक करोड़ रुपये के शेयर खरीदने को तैयार है, कुछ दूसरे पूंजीपति भी उन्ही की तरह एक बड़ी रकम के शेयर खरीद सकते हैं। ऐसी दशा में, उन्होंने कहा, "रिजर्व बैंक जनता का बैंक नही होगा। फिर राजकोष का प्रबन्ध, मुद्रानीति का निर्धारण, तथा दूसरे बैंको की पूँजी के एक अंश का सरक्षण उसके सुपुर्द करना कैसे उचित समझा जा सकता है? 'शेयर कैपिटल बैंक' का सचालन देश की जनता के हित में ही होगा, यह कैसे कहा जा सकता है?"[2]

मालवीयजी ने बताया कि बैंको के अधिकाश शेयर-होलडर्स (हिस्सेदार) बैंक के प्रबंध में कोई सार्थक भाग या दिलचस्पी नही ले पाते, सारा सचालन कुछ थोड़े से व्यक्तियो के हाथ में ही होता है और उनकी हितदृष्टि से ही उसकी नीति निर्धारित होती है।[3] प्रवर समिति के बहुसंख्यको की ओर से यह माग पेश करते हुए कि केन्द्रीय असेम्बली और राज्य सभा के निर्वाचित सदस्यो को रिजर्व बैंक के तीन डाइरेक्टरो को चुनने का अधिकार हो, उन्होंने कहा कि यदि सरकार गवर्नर, डिप्टी गवर्नर और दो डाइरेक्टर नियुक्त करती है, तो जनता के प्रतिनिधियो को भी कुछ डाइरेक्टर चुनने का अधिकार मिलना ही चाहिए। देश का वित्तीय नियंत्रण अवश्य ही जनता के प्रतिनिधियो को हस्तान्तरित होना चाहिए। उन्होंने कहा कि दोनो सदनो के १३२ निर्वाचित सदस्यो द्वारा जिस तरह उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से और आसानी से डाइरेक्टरो का चुनाव हो सकता है, उतना सारे देश मे बिखरे शेयर-होल्डरो द्वारा नही हो सकता।

उन्होंने अन्त में जोरदार शब्दो में कहा कि जिस प्रकार से सरकार रिजर्व बैंक गठित करना चाहती है उसका अर्थ तो यह होगा कि एकमात्र देश की जनता के हित मे बैंक को चलाने के बजाय वह इस तरह चलाया और संचालित किया जायगा जिससे उन हितो की उपेक्षा हो, उनका बलिदान हो, और

---

१. वही, सन् १९२७, जि० ४, पृ० ३४७१।
२ वही, सन् १९२७, जि० ४, पृ० ३४६९।
३. वही, सन् १९२७, जि० ४, पृ० ३४६९।

असेम्बली के पास बैंक की प्रक्रियाओ को नियंत्रित करने और रोकने के पर्याप्त अवसर और उपाय भी न हो।[1]

राष्ट्रवादी तत्त्वों और सरकार में संघर्ष चलता ही रहा। वित्त-सदस्य सर बेसिल ब्लेकट ने महसूस किया कि बहुत से निर्वाचित सदस्यो के तगडे विरोध के कारण विधेयक का पास होना कठिन है। उन्होने सोचा कि यदि सरकार अपनी बात पर डटी रहती है, तो वह पराजित भी हो सकती है, और यदि शक्तिशाली राजनीतिक और आर्थिक हितो के विरोध के बावजूद वह दो-एक वोट से जीत भी गयी, तो यह विजय रिजर्व बैंक के हित मे नही होगी।[2] यह सोचकर उन्होने घोषित किया कि वह रिजर्व बैंक को स्टेट बैंक के रूप में स्थापित करने को तैयार है, बशर्ते कि असेम्बली के निर्वाचित सदस्य डाइरेक्टरो के निर्वाचन के सम्बन्व में श्री श्रीनिवास ऐयगर द्वारा प्रस्तुत "स्टाक होल्डर योजना" स्वीकार कर लें, जिसमे प्रत्येक होल्डर को केवल एक वोट देने का अधिकार था, और जो अपने वोटो से कुछ ट्रस्टियो को चुनेंगे जो रिजर्व बैंक के डाइरेक्टर चुनेंगे। वित्त-सदस्य का यह सुझाव बहुत से निर्वाचित सदस्यो को मजूर था और यदि वे चाहते, तो इस रूप में विधेयक आसानी से पास हो सकता था। पर उन्होने विधेयक पर अन्तिम निर्णय अगले सत्र के लिए स्थगित कर दिया।

इसके बाद उन्होने लन्दन जा कर विधेयक के सम्बन्ध मे भारत-मन्त्री से बातचीत की। वापस लौटने पर उन्होने १ फरवरी सन् १९२८ को दूसरा रिजर्व बैंक विधेयक प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जिसमे उसे शेयर-होल्डर बैंक का रूप दिया गया था, पर असेम्बली के अध्यक्ष विट्ठल भाई पटेल ने ब्रिटेन के हाउस आफ कामन्स की परम्पराओं के आधार पर उसकी अनुमति नही दी, तब पुराने विधेयक के ऊपर ही विचार प्रारम्भ हुआ।

प्रवर समिति की बहुसंख्यक रिपोर्ट की संस्तुति के अनुसार पुराने विधेयक की धारा ८ मे यह सशोधन प्रस्तुत किया गया कि बैंक के तीन डाइरेक्टर केन्द्रीय विधान मण्डल द्वारा चुने जायें। यह संशोधन ४९ वोटो के मुकाबले में ५० वोटो से अर्थात् एक वोट के बहुमत से नामजूर हो गया। इसके बाद पूरी धारा ८ पर वोट लिये गये, और यह धारा एक वोट से अर्थात् ४८ वोटो के

---

१. वही, सन् १९२७, जि० ४, पृ० ३४७५।

२. कोटमेन : इडिया इन १९२७-२८, पृ० २७।

मुकाबले में ४९ वोटो से नामंजूर हो गयी। जहाँ सरकारी सदस्यों ने, श्री एन० एम० जोशी को छोडकर अन्य मनोनीत सदस्यों ने, तथा ब्रिटिश व्यापार मंडलो के प्रतिनिधियो ने धारा ८ के पक्ष में वोट दिये, वहाँ नेशनलिस्ट पार्टी के करीव करीब सभी सदस्यो ने विपक्ष में वोट दिये। जिना साहव के नेतृत्व में गठित इंडिपेंडेंट पार्टी के भी वहुत से सदस्यो ने, तथा मर पुरुषोत्तम दास ठाकुर दास, सर आर० के० षण्मुखम् चेट्टी, मिस्टर फजल इब्राहीम रहमतुल्ला ने भी विरोध में ही वोट दिये। काग्रेस स्वराज्य पार्टी के उपनेता श्री श्रीनिवास ऐयंगर तथा उसके वहुत से दूसरे सदस्यो ने भी सरकार के विपक्ष में राय दी। पर किसी कारण से स्वराज्य पार्टी के नेता पण्डित मोती लाल नेहरू और उसके लगभग पचास प्रतिशत सदस्यो का सहयोग विरोध पक्ष को प्राप्त नही हो सका।[1]

दूसरे दिन अर्थात् १० फरवरी को वित्त-सदस्य सर वेसिल ब्लेकट ने निर्वाचित सदस्यो पर असहयोग का दोपारोपण करते हुए रिजर्व बैंक विधेयक वापस लेने की घोषणा की। इस अवसर पर जमुनादास मेहता, मिस्टर जिना, मिस्टर फजल इब्राहीम रहमतुल्ला, श्री षण्मुखम् चेट्टी, मालवीयजी और लाला लाजपत राय ने कडे शब्दो में सरकार के व्यवहार की आलोचना की, और वित्त-सदस्य से अधिक भारत-मन्त्री को इसके लिए मुख्य रूप से दोपी बताया। दूसरी ओर से यूरोपियनो के प्रतिनिधि मिस्टर एच० सी० कोक ने सरकार का समर्थन करते हुए कहा कि रिजर्व बैंक जैसे आर्थिक सस्थान को राजनीति से अलग रखना ही व्यापारी वर्ग उचित समझता है।

मालवीयजी ने सरकार के इस व्यवहार को भारत-मन्त्री की क्रूरता बताते हुए कहा कि यह वित्तीय स्वशासन के सिद्धान्त के विरुद्ध है। उन्होने कहा कि यदि हम इस विधेयक को अपने ऊपर लादने देते तो यह बैंक जनता का हित-वर्धक बैंक नही होता, वल्कि ऐसा बैंक होता जो जनता को उस तरह से राष्ट्रीय जीवन का निर्माण नही करने देता जिस तरह उसे विकसित करना चाहिए।[2] उन्होने कहा कि वे "वित्तीय नियंत्रण को भारत-मन्त्री से भारत सरकार को नही, वल्कि जनता के प्रतिनिधियो को हस्तान्तरित कराना चाहते है।[3]

श्री जमनादास मेहता ने कहा कि सरकार द्वारा प्रस्तुत विधेयक के पास हो जाने पर तो जनता के प्रतिनिधियो को मुद्रा नीति की परीक्षा करने के

१. लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट, सन् १९२८, जि० १, पृ० २१२।
२ लेजिस्लेटिव असेम्वली डिबेट, सन् १९२८, जि० १, पृ० २७६।
३ वही, सन् १९२८, जि० १, पृ० २७६।

उतने भी अधिकार नही रह जाते जितने इस समय हैं।[1] मिस्टर फजल इब्राहीम रहमतुल्ला ने कहा कि जब बैंक जनता के हित के लिए है, तब जनता के प्रतिनिधियो को सरकार से अपनी बात मनवाने का अवश्य अधिकार है, और सरकार को जनता के प्रतिनिधियो पर विधेयक लादने का या यह कहने का अधिकार नही कि वे सदन के सशोधनो और सुझावो को मानने को तैयार नही है।[2] मिस्टर षण्मुखम चेट्टी ने कहा कि "प्रात काल वित्त-सदस्य की घोषणा राहत, अपमान और दुःख की भावनाओ से ग्रहण की गयी है, राहत क्योकि हमें उपहास और विडम्बना से छुटकारा मिल जाता है, दु ख क्योकि हम वित्त शासन की सम्भावना से वचित कर दिये गये है, और अपमान क्योकि हम ह्वाइट-हाल के तानाशाह के शिकार बना दिये गये है।"[3]

लाला लाजपतराय ने कहा : "जबतक वे (सरकार) अल्प संख्या की मदद से इस सदन पर अपने सुधार लादने का इरादा करेंगे, जैसा कि उन्होने मुद्रादर के प्रश्न पर किया है, तब तक उन्हें इस सदन में और बाहर जनता के प्रतिनिधियो के ठोस विरोध का सामना करना होगा। अगर सरकार जनमत का विरोध करती है, तब जनमत सरकार का विरोध करेगा"।[4] मिस्टर कोक के भाषण का जवाब देते हुए लाला लाजपत राय ने कहा कि यूरोपियन व्यापारियो की राय को देश की राय समझने की आदत छोड देना चाहिए, और जितनी जल्दी ही इसे छोड दिया जाय उतना ही अच्छा है।[5] उन्होने यह भी कहा कि यूरोपीयन व्यापारी समाज की सहायता से और उन थोडे से सदस्यो की राय से जिन्हें वे (सरकार) अपने साथ फुसला कर मिला सके, इस देश मे शासन करने का प्रयत्न निष्फल होगा और यथासभव मतैक्य और शक्ति से उसका विरोध किया जायगा।[6] यदि सरकार एक वोट से विपक्ष को पराजित कर सकती है, तो विरोधी दल भी एक वोट से उसे हरा सकता है। कुछ थोडे से व्यक्तियो को छोडकर, जो किसी न किसी कारण से सरकार के साथ हैं, सभी जानकार भारतीय सरकार की राय के विरुद्ध है, और वे जनता के प्रतिनिधियो का नियत्रण चाहते है। उन्होने यह भी कहा कि जब यूरोपीयन व्यापारी राजनीति का प्रश्न उठाते है

१ वही, सन् १९२८, जि० १, पृ० २७४।
२ वही, सन् १९२८, जि० १, पृ० २८४।
३ वही, सन् १९२८, जि० १, पृ० २८०।
४ वही, सन् १९२८, जि० १, पृ० २७८-२७९।
५ वही, सन् १९२८, जि० १, पृ० २७९।
६ वही, सन् १९२८, जि० १, पृ० २७९।

तो क्या वे कह सकते है कि उनका अपना व्यापार राजनीति से मुक्त है । इस अवसर पर भी कम से कम प्रत्यक्ष रूप से असेम्बली को पण्डित मोतीलाल नेहरू की प्रतिक्रिया का पता नही चल सका ।

बजट पर बहस

बजट और वित्त विधेयक की बहसो में केन्द्रीय असेम्बली के सदस्यो ने काफी दिलचस्पी और तत्परता से भाग लिया । यद्यपि बजट के दो तिहाई से अधिक भाग पर केन्द्रीय असेम्बली को वोट करने का कोई अधिकार नही था, फिर भी करीब-करीब सभी विभागो से सम्बन्धित किसी न किसी माँग पर केन्द्रीय असेम्बली को वोट देने का अधिकार प्राप्त हो गया था, और उन माँगो पर सांकेतिक कटौती के प्रस्ताव पेश करके असेम्बली के सदस्य प्रशासन के विभिन्न विभागो की नीति-रीति और क्रियाकलापो की समीक्षा कर सकते थे । इसी तरह वित्त विधेयक में संशोधन पेश करके वे सरकार की वित्त नीति पर प्रभाव डालने का प्रयत्न कर सकते थे । असेम्बली के सदस्यो ने अपने इन दोनो अधिकारो का यथासंभव प्रयोग करने का प्रयत्न किया । उन्होने अपने कटौती के प्रस्तावो तथा वित्तीय सशोधनो द्वारा प्रशासन को लोकप्रिय दिशा में मोडने का प्रयत्न किया । उन्होने मांग की कि रेलवे बोर्ड का पुनर्गठन किया जाय, रेलवे की सब सेवाओ का भारतीयकरण हो, तीसरे दर्जे का भाडा कम किया जाय, तीसरे दर्जे के यात्रियो की सुविधाओ की ओर अधिक ध्यान दिया जाय, पोस्टकार्ड और लिफाफो की कीमत कम की जाय, नमक-कर घटाया जाय, देश की औद्योगिक व्यवस्था का संरक्षण और विस्तार वित्त-नीति का एक प्रमुख लक्ष्य हो, आयात शुल्क और निर्यात शुल्क को निर्धारित करते समय इस लक्ष्य पर विशेष रूप से ध्यान रखा जाय । उन्होने यह भी माँग की कि प्रशासनिक लोक सेवाओ तथा सेना का भारतीयकरण किया जाय ।

सरकार पर अविश्वास

सन् १९१९ की संवैधानिक व्यवस्था में केन्द्रीय असेम्बली को गवर्नर-जनरल या उसकी कार्य परिषद के सदस्यो के वेतन को मजूर करने का कोई अधिकार नही था । पर उनकी यात्राव्यय की मद पर वोट देने का अर्थात् उससे संबंधित माग को स्वीकार करने का असेम्बली को अधिकार अवश्य था । इस मद की माग पर कटौती का प्रस्ताव पास करके असेम्बली सरकार की नीति के विरुद्ध अविश्वास प्रकट कर सकती थी । असेम्बली के सभी प्रगतिशील तत्त्वो ने मिल कर प्रत्येक वर्ष इस प्रकार अपना अविश्वास प्रकट किया ।

वित्त विधेयक को मजूर किया जाय अथवा नही, इस बात में भारतीय सदस्यो में काफी मतभेद था। मुस्लिम सेंट्रल पार्टी के साथ-साथ जिना साहब को इडिपेंडेंट पार्टी भी वित्तविधेयक को बिल्कुल रद्द कर देना ठीक नही समझती थी। भारतीय औद्योगिक वर्ग के सदस्यो की भी यही राय थी। पर कांग्रेस पार्टी और नेशनलिस्ट पार्टी वित्तविधेयक को नामंजूर करने के पक्ष मे थी, यद्यपि इन दोनो पार्टियो के कुछ सदस्य इस विषय पर अपना वोट नही देते थे। मालवीयजी वित्तनीति की आलोचना करते हुए वित्तविधेयक को नामजूर करने के पक्ष मे अपना मत देते रहते थे।

मार्च सन् १९२७ मे वित्तविधेयक का विरोध करते हुए मालवीयजी ने कहा : "टैक्सो द्वारा जो धन वसूल किया जाता है उसके व्यय को सुव्यवस्थित करने का जब हमें अधिकार नही, तब टैक्सो के लगाने का उत्तरदायित्व भी हम नही ले सकते।"[1] गाँवो को दयनीय दशा की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए उन्होने माँग की कि नयी दिल्ली के निर्माण पर बहुत-सा रुपया खर्च करने के बजाय गाँवो की दशा सुधारने में, तथा भारतीय जनता को औद्योगिक शिक्षा और शिल्पविज्ञान की शिक्षा देने में अधिक रुपया खर्च किया जाय।

१७ मार्च सन् १९२८ को असेम्बली को वित्तविधेयक नामजूर करने की सलाह देते हुए मालवीयजी ने कहा कि युद्ध के बाद भारी करारोपण (टैक्सेशन) उस समय बनाये रखना जबकि उसकी जरूरत नही है "जनता के प्रति अपराध है।"[2] उन्होने सविधान की वित्तीय व्यवस्था की आलोचना करते हुए कहा कि सरकार के खर्चे के ऊपर केन्द्रीय असेम्बली का नियत्रण नगण्य है, क्योकि जब कि दो तिहाई बजट पर असेम्बली का कोई अधिकार ही नही है, एक-तिहाई बजट के सम्बन्ध में भी असेम्बली के वोट की अवहेलना करते हुए गवर्नर-जनरल अपने विशेष अधिकार का प्रयोग कर कटौती की रकम पुनः स्थापित कर सकता है।[3] उन्होने सरकार की मुद्रानीति की कडी आलोचना की[4], और बहुत क्षोभ के साथ कहा कि खर्चा कम करने के सम्बन्ध मे सरकार ने इंचकेप कमेटी की सस्तुतिओ पर उचित ध्यान नही दिया।[5] उन्होने कहा कि वित्तीय और सैनिक

१. वही, सन् १९२७, जि० ३, पृ० २७२७।
२ वही, सन् १९२८, जि० २, पृ० १६५४।
३ वही, सन् १९२८, जि० २, पृ० १६५३-१६५४।
४. वही, सन् १९२८, जि० २, पृ० १६६६।
५ वही, सन् १९२८, जि० २, पृ० १६५५।

प्रशासन इतना बुरा है कि भारत मे प्रत्येक व्यक्ति यह कह सकता है कि "जब तक मौजूदा व्यवस्था कायम है तब तक सरकार की वफादारी उसका कर्तव्य नही है।"[१] उन्होने कहा कि हमारी माँग है कि (१) वाइसराय की कौंसिल केबिनेट की तरह व्यवहार करे, और जनता के प्रतिनिधियो को उत्तरदायी हो, तथा (२) अपने वित्तो पर भारत का नियन्त्रण हो।[२] उन्होने कहा कि हम अपने देश के गृह विभाग, वित्त विभाग, उद्योग-विभाग और भारत सरकार के दूसरे विभागो पर कन्ट्रोल करने का अधिकार चाहते हैं।[३]

५ मार्च सन् १९२९ को बजट पर बोलते हुए मालवीयजी ने फौजी खर्चे को कम करने का आग्रह करते हुए कहा कि भीतर के दंगो को शान्त करने के लिए ब्रिटिश सैनिको का प्रयोग न किया जाय। उन्होंने माग की कि रुपये की दर फिर से १६ पैस निर्धारित की जाय, तथा किसानो को बैंको से कर्ज लेने की सुविधाएँ मुहय्या की जायें। जनता की बहुत-सी कठिनाइयो की चर्चा करते हुए उन्होने कहा कि जब तक शासन व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन नही होता, प्रशासक वर्ग जनता को उत्तरदायी नही बनाया जाता, तब तक जनता की कठिनाइयो का निराकरण और समस्याओं का समाधान नही हो सकता।[४]

१२ मार्च सन् १९२९ को पंडित मोतीलाल नेहरू ने एक्जीक्यूटिव कौंसिल की माग में कटौती का प्रस्ताव पेश किया। मालवीयजी ने काफी कडे शब्दो में सरकार की नीति-रीति, गतिविधि की समीक्षा करते हुए मोतीलालजी का समर्थन किया।[५] कटौती का प्रस्ताव ५२ वोटो के विरुद्ध ६३ वोटो से स्वीकार हो गया।

२० मार्च सन् १९२९ को वित्त विधेयक पर बोलते हुए मालवीयजी ने माग की कि अनिवार्य विलम्ब के बगैर देश में औपनिवेशिक स्वराज्य (डोमीनियन स्टेटस) प्रतिष्ठित किया जाय।[६]

सेना नीति

केन्द्रीय असेम्बली के आग्रह पर सन् १९२५ में लेफ्टिनेंट-जनरल सर एडरू स्कीन की अध्यक्षता मे एक कमेटी गठित की गयी। इस कमेटी ने

---

१ वही, सन् १९२८, जि० २, पृ० १६६८।

२ वही, सन् १९२८, जि० २, पृ० १६६८।

३. वही, सन् १९२८, जि० २, पृ० १६६९।

४. वही, सन् १९२९, जि० २, पृ० १५५६-१५६२।

५ वही, सन् १९२९, जि० २, पृ० १८००-१८०८।

६. वही, सन् १९२९, जि० २, पृ० २२४०-२२४६।

सर्वसम्मति से संस्तुति की कि आठ यूनिट की योजना को खत्म करके एक ऐसी योजना चालू की जाय जिसके जरिये सन् १९५२ तक भारतीय सेना में किंग-कमीशन अफसरो में आधी सख्या भारतीय अफसरो की हो। कमेटी ने सर्वसम्मति से यह भी संस्तुति की कि सन् १९३३ में भारत मे सैंडहर्स्ट के स्तर का सैनिक कालेज खोला जाय, भारतीयो को सेना के सब विभागो में भरती किया जाय। उसने यह भी सस्तुति की कि जब तक भारत में सैंडहर्स्ट जैसा सैनिक विद्यालय नही खुलता अर्थात् १९३३ तक सैंडहर्स्ट कालेज मे दस के स्थान पर बीस भारतीय प्रतिवर्ष भरती किये जायें। उसकी यह भी संस्तुति थी कि कार्नवेल और वूलविच के सैनिक विद्यालयो में भी निश्चित सख्या में भारतीय नवयुवक भरती किये जायें, तथा भारतीय विश्वविद्यालयो में सैनिक शिक्षा का यथोचित प्रबन्ध किया जाय।

कमेटी ने अपनी रिपोर्ट नवम्बर सन् १९२६ में भारत सरकार के पास भेज दी थी। पर सरकार ने उसे अप्रैल सन् १९२७ मे प्रकाशित किया। इस बीच में मार्च सन् १९२७ मे बजट की सेना विभाग की मद पर केन्द्रीय असेम्बली में बहस हुई।

पंडित हृदयनाथ कुंजरू ने इस मद की माँग पर सौ सौ रुपये की कटौती के दो प्रस्ताव पेश किये। एक प्रस्ताव का सम्बन्ध "भारतीय प्रादेशिक सेना" (इंडियन टेरिटोरियल फोर्स) और दूसरे का सम्बन्ध सैनिक नीति और व्यय से था। कुंजरू साहब के ये दोनो प्रस्ताव ४४ वोटो के विरुद्ध ६३ वोटो से पास हो गये।

इसके बाद सेना विभाग की माँग पर बोलते हुए मालवीयजी ने सरकार की सेना-नीति की कडी आलोचना की, और माँग की कि सेना पर खर्चा घटाया जाय, सेना का बजट ५५ करोड रुपये से घटा कर चालीस करोड कर दिया जाय। उन्होने कहा कि भारत की रक्षा का भार भारतीयो को स्वय ग्रहण करना चाहिए, और इसके लिए उन्हे तैयार रहना चाहिए। भारतीय सेना को, उन्होने कहा, ब्रिटिश सेना की दुम नही होना चाहिए। उन्होने राष्ट्रीय रक्षा कौंसिल के गठन का सुझाव प्रस्तुत किया, और आशा व्यक्त की कि 'भारतीय रियासतें भी इस प्रयास मे साथ देंगी।'[1]

यद्यपि जिना साहब और उनकी पार्टी के कतिपय सदस्यो ने कुंजरू साहब के कटौती के प्रस्तावो का समर्थन किया था, पर सेना विभाग की सारी माँग

---

१. वही, सन् १९२७, जि० ३, पृ० २३०९-२३१०।

रद्द करने की बात उन्हें ठीक नही जँची, और वे तटस्थ रहे। फिर भी ४६ रायो के विरुद्ध ५५ रायो से सारी मांग रद्द कर दी गयी।

२४ मार्च सन् १९२७ को वित्त विधेयक पर बोलते हुए मालवीयजी ने कहा कि ब्रिटेन का सैनिक कार्यालय एक तानाशाह है, जो भारत पर अत्याचार करता है, मनमाने ढग पर अपनी आक्रमणशील साम्राज्यशाही योजनाओ को भारत पर लाद देता है, उसे साम्राज्यिक युद्धो मे भाग लेने पर, और उसका खर्चा वहन करने पर मजबूर करता है। उन्होने सरकार की अग्रवर्ती नीति (फारवर्ड पालिसी) की समीक्षा करते हुए कहा कि आक्रमणशील नीति का भारत की रक्षा से कोई विशेष सम्बन्ध नही है, वह तो विशुद्ध साम्राज्यिक नीति है, ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार ही उसका लक्ष्य है। बहुत से अंग्रेज अफसरो और विशेषज्ञो के विचारो का उद्धरण देते हुए उन्होंने कहा कि अफगान युद्ध का सारा खर्चा भारत के बजाय ब्रिटेन को वहन करना चाहिए था। उन्होने कहा कि ब्रिटिश सेना के अंग के रूप मे ही, तथा ब्रिटिश साम्राज्य के हित मे ही गोरो सेना भारत मे रहती है, और इसलिए उसका सब खर्चा ब्रिटेन को ही वहन करना चाहिये।[1]

स्कीन कमेटी की रिपोर्ट पर बहस

१ अप्रैल सन् १९२७ को स्कीन कमेटी की रिपोर्ट प्रकाशित की गयी, और २५ अगस्त को डाक्टर बी० एस० मुंजे ने केन्द्रीय असेम्बली में प्रस्ताव पेश किया कि १५ वर्ष के अन्दर ही सेना के आधे उच्चाधिकारी भारतीय आफिसर बना दिये जायें। स्कीन की संस्तुतिओ के अनुसार भारतीय सेंडहर्स्ट कालेज खोला जाय, और सेना के उन विभागो में भी भारतीय भरती किये जायें जिनमें वे अब तक भरती नही किये जाते है।

कांग्रेस पार्टी के नेता श्रीनिवास ऐयंगर ने संशोधन पेश किया कि यद्यपि ब्रिटिश युवको के भरती करने का विचार भारतीय जनमत के तथा भारत के राजनीतिक लक्ष्य के विरुद्ध है, फिर भी केन्द्रीय असेम्बली की राय है कि (स्कीन)कमेटी की सर्वसम्मत संस्तुतिओ से भारत में सेना के भारतीयकरण में ठोस शुरुआत होगी, और इसलिए वह गवर्नर-जनरल-इन-कौंसिल को संस्तुति करती है कि वे उन संस्तुतिओ को स्वीकार करने की तथा शीघ्र ही उन्हें कार्यान्वित करने की कृपा करेंगे।"

---

१. वही, सन् १९२७, जि० ३, पृ० २७२१-२७२८।

अन्त में मत विभाजन के बिना श्री श्रीनिवास ऐयंगर का संशोधन असेम्बली ने स्वीकार कर लिया।

कमांडर-इन-चीफ की घोषणा

मार्च सन् १९२८ में कमांडर-इन-चीफ सर विलियम वर्डवुड ने बजट की बहस में भाग लेते हुए सरकार की सेना नीति की घोषणा की। उन्होंने भारतीय सेंडहर्स्ट कमेटी की कतिपय सस्तुतिओ को स्वीकार करते हुए दो तीन महत्त्वपूर्ण संस्तुतिओ को मानने से इनकार कर दिया। उन्होने घोपित किया कि भविष्य मे प्रति वर्ष १० के बजाय २० भारतीय नवयुवक सेंडहर्स्ट मे भरती किये जायेंगे, और वाइसराय-कमीशन प्राप्त अफसरो के उच्चस्तरीय परिशिक्षण के लिए प्रतिवर्ष दस-पाँच स्थान सैंडहर्स्ट में संरक्षित रहेंगे। उन्होने यह भी घोपित किया कि वूलविच और कारनवेल में भी प्रतिवर्ष छ: भारतीय भरती किये जायेंगे। इस तरह प्रतिवर्ष ३७ भारतीयो को उच्चस्तरीय सैनिक शिक्षा के लिए भरती किया जायेगा। पर सरकार, उन्होने कहा, कमेटी की यह सस्तुति स्वीकार करने को तैयार नही है कि सन् १९५२ तक भारतीय सेना मे आधे उच्चस्तरीय अफसर भारतीय होगे। उन्होने यह भी घोपित किया कि आठ यूनिटो की योजना चालू रहेगी, और सैंडहर्स्ट जैसी उच्चस्तरीय शैक्षिक संस्था भारत में इस समय स्थापित नही की जायेगी। अन्त मे उन्होने कहा कि सरकार चाहती है कि सवैधानिक विकास के साथ-साथ सेना का भी भारतीय-करण हो, औपनिवेशिक सेनाओ की तरह राष्ट्रीय आधार पर भारतीय सेना भी सगठित हो, पर भारतीयकरण की नीति किसी पूर्व निश्चित समय के मापक्रम द्वारा निर्धारित नही की जा सकती।

विरोध

१० मार्च सन् १९२८ को जिना साहब ने सेनापति की घोपणा पर विचार करने के लिए सदन में काम रोको प्रस्ताव पेश करने की इजाजत माँगी। सरकार के प्रवक्ता सर बेसिल ब्लेकट ने यह स्वीकार करते हुए कि प्रश्न सार्वजनिक महत्त्व का है कहा कि इस पर तीन-चार दिन के बाद "सेना विभाग के अनुदान' पर बहस करते समय विचार किया जा सकता है। पर मालवीयजी आदि ने जिना साहब का समर्थन किया। मालवीयजी ने कहा: "यह प्रश्न कि भारत में सैनिक कालेज खोला जाय अथवा न खोला जाय, देश की जनता के सामने जीवन-मरण का प्रश्न है। इस देश मे भावी उत्तरदायी शासन का सारा प्रश्न इस पर निर्भर है, और इसलिए इस प्रश्न से सम्बन्धित घोषणा

पर जनता की प्रतिक्रियाओ को शीघ्र से शीघ्र व्यक्त करना नितान्त आवश्यक है।[1] अध्यक्ष ने प्रस्ताव पेश करने की इजाजत दे दी। जिना साहब का प्रस्ताव बहुमत से पास हो गया। १४ मार्च को दीवान चमन लाल ने सेना की माँग पर कटौती का प्रस्ताव पेश किया, जो बहुमत से पास हो गया।

१७ मार्च सन् १९२८ को वित्त विधेयक का विरोध करते हुए मालवीयजी ने फौजी खर्चे को भारत की आवश्यकता और सामर्थ्य से अधिक बताते हुए कहा कि उसे कम करने के लिए सेना का भारतीयकरण, तथा जापान के ढंग पर सेना का गठन आवश्यक है। उन्होने कहा कि भारत की रक्षा की समुचित व्यवस्था, उसके गौरव की पुष्टि, तथा खर्चे की कमी इन सबके लिए ब्रिटिश सैनिको और अफसरो के स्थान पर योग्य भारतीयो की नियुक्ति आवश्यक है। उन्होने माँग की कि आन्तरिक सुरक्षा का भार भारतीय सैनिको के सुपुर्द कर दिया जाय, तथा आन्तरिक दंगो को शान्त करने के लिए अंग्रेज सैनिको का प्रयोग न किया जाय, क्योकि उससे अंग्रेजो और भारतीयो मे कटुता पैदा होती है।[2] उन्होने यह भी माँग की कि प्रति वर्ष लगभग पाँच हजार ब्रिटिश सैनिक कम कर दिये जायें, और धीरे-धीरे आन्तरिक सुरक्षा के साथ-साथ बाह्य सुरक्षा का भार भी भारतीय सैनिको के सुपुर्द कर दिया जाय।[3] उन्होने उच्चस्तरीय सैनिक कालेज खोलने का आग्रह करते हुए कहा कि इस समय हमारे सैनिक एक मात्र भृतिभोगी (मर्सिनरी) है, उनमे देशभक्ति और राजभक्ति की भावना का संचार किया जाय, और भारतीय सेना को सच्चे मानो मे राष्ट्रीय सेना बनाया जाय।[4]

१९ सितम्बर सन् १९२९ को श्री एम० आर० जयकर के प्रस्ताव पर बोलते हुए मालवीयजी ने कहा : "जिस तरह बुद्धि किसी विशेषवर्ग की इजारादारी नही है, इसी तरह सैनिक भावना (शौर्य) भी किसी विशेष वर्ग की इजारादारी नही है"।[5] उन्होने कहा कि जिस तरह शिवाजी ने सब जातियो के नवयुवको को अपनी सेना मे भरती किया और गुरुगोविन्द सिंह ने जाति-पाँति की उपेक्षा करते हुए सुदृढ सिक्ख पथ स्थापित किया, उसी तरह सब सम्प्रदायो

१ वही, सन् १९२८, जि० २, पृ० १२४३।
२. वही, सन् १९२८, जि० २, पृ० १६५८।
३. वही, सन् १९२८, जि० २, पृ० १६६३।
४. वही, सन् १९२८, जि० २, पृ० १६६२।
५. वही, सन् १९२९, जि० ४, पृ० १००५।

और जातियो के योग्य नवयुवको को भरती करके भारतीय सेना का निर्माण किया जाय। उन्होने भिन्न-भिन्न सम्प्रदायो के नवयुवको को विभिन्न सस्थाओ में शिक्षा दिये जाने का विरोध करते हुए कहा कि सेना में देशभक्ति का सचार करने के लिए जिस पर देश का भविष्य निर्भर है, यह आवश्यक है कि सब सैनिक रंगरूट, चाहे वे किसी जाति या सम्प्रदाय के हो, "समान नियमो के अधीन", बिना किसी पार्थक्य के, "समान रूप से एक ही सस्था में" साथ-साथ शिक्षा प्राप्त करें, तथा जीवननिर्वाह करे, खेले-कूदें और काम करें।[1]

पब्लिक सेफ्टी बिल

सितम्बर सन् १९२८ में विदेश से आने वाले कम्युनिस्टो की गतिविधि और कामो पर खास तौर पर रोक लगाने के लिए सरकार ने 'पब्लिक सेफ्टी बिल' (सार्वजनिक सुरक्षा विधेयक) के नाम से असेम्बली में एक विधेयक प्रस्तुत किया। कांग्रेस और नेशनलिस्ट पार्टियो के सदस्यो के अतिरिक्त कतिपय अन्य सदस्यो ने भी विधेयक का डटकर विरोध किया। अन्त में उसके पक्ष और विपक्ष मे वोटो की सख्या बराबर रही, तब ब्रिटेन की कामन्स सभा की परम्परा का अनुकरण करते हुए असेम्बली के अध्यक्ष विट्ठल भाई पटेल ने विपक्ष में अपनी राय दी और विधेयक नामजूर हो गया।

फरवरी सन् १९२९ मे सरकार ने दुबारा विधेयक को असेम्बली मे पेश किया और सदन ने बहुमत से उसे प्रवर समिति के पास भेज दिया। पर जब १ अप्रैल को समिति की रिपोर्ट सदन मे पेश करने का प्रस्ताव आया, तब अध्यक्ष ने कहा कि इस विधेयक का मेरठ के साजिश (विद्रोह) मुकदमे से काफी सम्बन्ध है, इसलिए सरकार या तो मेरठ मुकदमे तक इस विधेयक पर विचार स्थगित कर दे, या मुकदमा वापस ले ले।[2] ४ अप्रैल को गृह सदस्य केरार साहब ने सदन के नियमो की व्याख्या करते हुए कहा कि मुकदमे को वापस लिए बिना विधेयक को प्रवर समिति की रिपोर्ट पर बहस हो सकती है, और सरकार अध्यक्ष की दोनो बातों में से कोई भी बात मानने को तैयार नही है। इस पर दो दिन तक कुछ अन्य प्रमुख सदस्यो की राय सुनने के बाद ११ अप्रैल को अध्यक्ष ने विधेयक पर विचार करना वर्जित कर दिया।[3]

---

१. वही, सन् १९२९, जि० ४, पृ० १००५-१००६।
२. वही, सन् १९२९, जि० ३, पृ० २६५३।
३. वही, सन् १९२९, जि० ३, पृ० २९८७-९१।

दूसरे दिन अर्थात् १२ अप्रैल को वाइसराय ने केन्द्रीय विधान
दोनो सदनो की संयुक्त बैठक को सम्बोधित करते हुए कहा कि उनकी
अध्यक्ष का निर्णय नियमो के मूल अभिप्राय के अनुकूल नही है, पर
अन्दर उनका निर्णय ही प्रामाणिक है। दूसरी ओर, उन्होने कहा,
समुचित सुरक्षा के लिए विधेयक को कानून की शक्ल देना मेरी सरक
राय मे जरूरी है, और इसलिए उसे अध्यादेश के रूप मे जारी किया जा
इसके बाद पटेल साहब ने वाइसराय को लिखा कि अध्यक्ष की रूलिंग (व्य
पर आक्षेप करना सर्वथा अनुचित था। इस पर वाइसराय ने अपने निजी
के पत्र द्वारा अध्यक्ष को सूचित किया कि उनकी रूलिंग पर आक्षेप क
उनका कोई इरादा नही था।[१]

मालवीयजी ने सितम्बर सन् १९२८ तथा फरवरी सन् १९२९ में प
सेफ्टी बिल का विरोध किया। इसे उन्होने "अनावश्यक" तथा उसकी ध
को "आपत्तिजनक" बताया[२]। उन्होने कहा कि इस विधेयक द्वारा कम्यु
के प्रसार को, उसकी ओर नवयुवको की प्रवृत्ति को रोका नही जा स
"सब हडतालें प्रारम्भ से अन्त तक गलत नही है"[३]। हडतालो के समय
मजदूरो के लिए विदेश से भेजी सहायता को गैर-कानूनी घोषित क
उन्होने कहा, अवश्य ही अनुचित होगा। उन्होने कैनेडा और आस्ट्रेलि
कानूनो की प्रासगिक धाराओ के उद्धरण देते हुए कहा कि सरकार क
कहना कि प्रस्तुत विधेयक उन कानूनो की व्यवस्था के अनुकूल है, बिल्कुल
है। जबकि आस्ट्रेलिया और कैनेडा के कानूनो मे किसी जांच के बाद, अभि
द्वारा प्रस्तुत सफाई पर विचार करने के बाद, किसी विदेशी को निष्क
का दण्ड देने की व्यवस्था है, प्रस्तावित विधेयक मे बिना किसी मुकद
अभियुक्त को अपनी सफाई पेश करने का मौका दिये बगैर प्रशासन अधि
को निष्कासन का अधिकार दिये जाने की व्यवस्था है। न्यायिक अधि
को प्रशासनिक अधिकारिओ के सुपुर्द करना, बिना न्यायिक जाँच (ट्रायल
सजा देना, उन्होने कहा, नि.सन्देह अन्याय है, सुव्यवस्था के नाम पर प्रशास
निरंकुशता स्थापित करना है।[४] उन्होने अन्तर्राष्ट्रीय कानून के प्रसिद्ध वि

१ वही, सन् १९२९, जि० ४, पृ० १११।
२. वही, सन् १९२८, जि० ३, पृ ८५६।
३ वही, सन् १९२९, जि० १, पृ० ५९३।
४. वही, सन् १९२८, जि० ३, पृ० ८५७-८५८; वही, सन् १९
जि० १. पृ० ५८८।

प्रोफेसर ओपेनहाइमर के विचारो का उद्धरण देते हुए कहा कि अन्तर्राष्ट्रीय कानून कहता है कि हमें दूसरे राज्यो की जनता के साथ उसी सभ्य आधार पर व्यवहार करना चाहिए जिस पर हम अपनी जनता के साथ व्यवहार करते है।[१] मालवीयजी ने यह भी कहा कि सरकार के समर्थक "पाइनीयर" समाचार पत्र ने भी यह स्वीकार किया है कि "किसी आदमी को पूरी तौर पर यह जानकारी कराये विना कि उसे किस अभियोग का सामना करना है दण्ड दे देना अन्याय है। जब तक अभियोग सिद्ध न हो और सबधित व्यक्ति को जवाब देने का पूरा मौका न मिला हो, तब तक एक कुख्यात कम्युनिस्ट को भी निर्वासित करना ब्रिटिश न्याय नही है।"[२]

मालवीयजी ने कहा कि जिस तरह ब्रिटेन में हडतालो को पारस्परिक परामर्श द्वारा शान्त करने की कोशिश की जाती है, उसी तरह भारत में भी की जानी चाहिए। उसके लिए "कठोर अधिकार" की कौन जरूरत है?[३] उन्होने औद्योगिक श्रमिकों की दयनीय दशा का विश्लेषण करते हुए कहा कि सरकार को दगो (विस्फोटो) पर आश्चर्य है, जबकि "मुझे आश्चर्य है कि ये दगे पहले क्यो नही हुए, और कही अधिक संख्या में क्यो नही हुए?"[४] पठानो के अत्याचार और अमानुषिक व्यवहार द्वारा हडताल को बन्द कराने का प्रयत्न निन्दनीय है। बम्बई की दुर्व्यवस्था का उत्तरदायित्व सरकार की वित्तीय नीति पर है, उसने रुपये की दर अठारह पैस निश्चित करके ऐसी औद्योगिक स्थिति पैदा कर दी है कि बम्बई के बहुत से पूजीपति स्वयं चाहते है कि हडताल जारी रहे, ताकि उन्हे माल तैयार करके उसे गोदामो में जमा करते रहने की जरूरत न पडे।[५] दशा को सुधारने के लिए वित्त नीति बदलनी होगी, मजदूरो की आर्थिक स्थिति को ठीक करना होगा।

उन्होने कहा कि नवयुवकों को कम्युनिज्म के प्रभाव से बचाने के लिए उनमें देशभक्ति की भावना को सचरित करना होगा, उनकी स्वराज्य की माग

१. वही, सन् १९२९, जि० १, पृ० ५९२।
२ वही, सन् १९२९, जि० १, पृ० ५९४।
३ वही, सन् १९२९, जि० १, पृ० ५९४।
४. वही, सन् १९२९, जि० १, पृ० ५९८।
५ वही, सन् १९२९, जि० १, पृ० ५९८-५९९।
६ वही, सन् १९२९, जि० १, पृ० ६०२;
वही, सन् १९२८, जि० ३, पृ० ८५५।

को पूरा करना होगा। यदि ये अपने देश में स्वशासन प्रतिष्ठित नही करते, तब ये संसार मे कही भी अपने साथी मनुष्यो द्वारा मनुष्य की तरह व्यवहार किये जाने के पात्र नही है।[१] उन्होने कहा कि यदि सब दलों से समर्थित राष्ट्रीय माग को सरकार स्वीकार करने को तैयार नही होगी, तो नवयुवको की भावना उग्र होगी, उनमें भारत और ब्रिटेन के बीच पूर्ण विच्छेद हो—यह भावना बढ़ेगी, जिसे हथियारो द्वारा दबाया नही जा सकेगा।[२]

कम्युनिज्म के सिद्धान्तो की चर्चा करते हुए मालवीयजी ने कहा कि कम्युनिज्म सत्य, न्याय, धर्म और प्राकृतिक नियम के विरुद्ध है।[३] उन्होने कहा कि राष्ट्रवादी हिंसा और शक्ति द्वारा व्यक्तिगत सम्पत्ति के अपहरण या अधिग्रहण के कम्युनिस्ट सिद्धान्त को ठीक नही समझते। उन्होने कहा कि कानून की उचित व्यवस्था को छोड किसी अन्य उपाय से कानूनी ढंग से उपार्जित सम्पत्ति के उपभोग में बाधा पहुंचाने के हम विरुद्ध है[४]। उन्होने यह भी कहा कि हम नही चाहते कि "यथोचित कानून और उस कानून के अन्दर उचित प्रशासनिक आज्ञा को छोड कर" किसी दूसरे ढग पर "किसी व्यक्ति को उसकी सम्पत्ति के उपभोग (उपयोग) से वंचित किया जाय।"[५] इस बात में सदन के सब निर्वाचित सदस्य सरकार के साथ हैं, और कम्युनिस्टो की रीति-नीति के विरुद्ध हैं।

पर मालवीयजी ने कहा कि वे कम्युनिस्टो की इस बात को स्वीकार करते है कि "समाज का निर्माण इस प्रकार होना चाहिए कि जो उसके लिए काम करे वह पुरस्कृत किया जाय",[६] और उसे सुखी जीवन व्यतीत करने की सुविधा प्राप्त हो। उन्होने कहा कि वे कम्युनिस्ट सकलतवाला के इस विचार से भी सहमत है कि "सब मनुष्यो का जन्म एक ढंग से हुआ है, और सब ही वृद्धि और विकास के समान नियमो के अधीन हैं। यदि सब को एक प्रकार की शिक्षा दी जाय, तो परिणाम भी एक जैसा होगा, केवल उसकी आकृति और अभिव्यक्ति ही एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य से भेद दिखला पायेगी।"[७] समाज

१. वही, सन् १९२९, जि० १, पृ० ६०४।
२. वही, सन् १९२९, जि० १, पृ० ६०४।
३. वही, सन् १९२८, जि० ३, पृ० ८५२।
४. वही, सन् १९२९, जि० १, पृ० ५८७-५८८।
५. वही, सन् १९२९, जि० १, पृ० ५८८।
६. वही, सन् १९२९, जि० १, पृ० ५८६-५८७।
७. वही, सन् १९२९, जि० १, पृ० ५८७।

की इस कम्युनिस्ट कल्पना को भी स्वीकार करने को वे तैयार थे कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सव आवश्यकताओ की पूरी-पूरी पूर्ति के अनुरूप पुरस्कार मिलना चाहिए, जव तक वह व्यक्ति अपनी योग्यताओ के अनुसार ईमानदारी के साथ समाज के लिए काम करता है।[1] उन्होने घोपित किया कि यह सव सिद्धान्त तो प्राचीन भारतीय सस्कृति के अनुकूल है और इनके आधार पर समाज का निर्माण आवश्यक और अनिवार्य है।

ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल

मजदूरो के क्रियाकलापो पर विशेपतः हडतालो पर, प्रतिवन्ध लगाने के लिए सरकार ने असेम्वली में ट्रेड डिस्प्यूट्स विल पेश किया। मजदूरो की ओर से ट्रेड यूनियन काग्रेस के नेता दीवान चम्मन लाल ने उसका विरोध किया। काग्रेस पार्टी और नेशनलिस्ट पार्टी के अन्य वहुत से सदस्यो ने भी उसका विरोध किया। शान्तिपूर्ण उपायो द्वारा झगडो का निपटारा इस विधेयक का लक्ष्य वताया जाता था। पर दीवान चम्मन लाल आदि की धारणा थी कि इस विधेयक द्वारा औद्योगिक मजदूरो के हितो की पूरी तौर पर रक्षा नही होती, और मजदूरो के हको को अनुचित ढंग पर सीमित किया जा रहा है। सर्वश्री जमनादास मेहता, वी० वी० जोग्या, एस० श्रीनिवास ऐयंगर, एम० एस० अणे आदि ने भी विधेयक का विरोध किया। औद्योगिक फजल इब्राहीम रहमतुल्ला ने विधेयक को कडा वनाने पर जोर दिया। उन्होने इसके लिए एक संशोधन भी प्रस्तुत किया। पर भारी वहुमत से वह नामंजूर हो गया। केवल १३ सदस्यो ने संशोधन के पक्ष मे राय दी।

३८ वोटो के विरुद्ध ५६ वोटो से विधेयक पास हो गया। जब कि काग्रेस पार्टी और नेशनलिस्ट पार्टी के अधिकाश सदस्यो ने, तथा उनके नेता मोतीलालजी और मालवीयजी ने विधेयक के विपक्ष में वोट दिये, जिना साहब ने किसी तरफ वोट नही किया, और उनकी पार्टी के अधिकाश सदस्यो ने विधेयक के पक्ष में अपने वोट दिये। मिस्टर फजल इब्राहीम रहमतुल्ला ने इस धारणा से कि सदन ने उनका सशोधन स्वीकार नही किया, विधेयक के विरोध में वोट दिया। पर जिन १२ सदस्यो ने उनके संशोधन का समर्थन किया था, उन सब ने विधेयक के पक्ष में वोट दिया। सर पुरुपोत्तम दास ठाकुर दास, सेठ घनश्याम दास बिडला आदि कतिपय औद्योगिको ने भी किसी तरफ वोट नही दिये।

---

१. वही, सन् १९२९, जि० १, पृ० ५८७।

व्यक्तिगत स्वतन्त्रता

जिस तरह मालवीयजी ने पब्लिक सेफ्टी बिल का विरोध किया तथा ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल के विरुद्ध वोट दिया, उससे यह स्पष्ट है कि वे संपत्ति के अधिकार से कही अधिक मानव व्यक्तित्व की स्वतन्त्रता और गौरव की रक्षा, तथा सबके लिए सुखी जीवन की व्यवस्था को महत्त्व देते थे। वे इन्हें मानव के मौलिक अधिकार मानते थे। वे चाहते थे कि प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्र सम्मानित जीवन व्यतीत करने की, तथा अपने व्यक्तित्व के विकास की सुविधाएँ प्राप्त हो। वे कहते थे कि प्रत्येक व्यक्ति और जनसमूह को संस्था संगठित करने का, सभा और प्रदर्शन आयोजित करने का, अपने विचारो को प्रकाशित करने का, भाषण करने का, तथा अपने साथियो को सलाह देने का, तथा उनके साथ हडताल करने का न्यायसंगत और युक्तिसगत अधिकार है। उन्होने असेम्बली में बार बार माँग की कि मानव के इन अधिकारो की कानून द्वारा रक्षा की जाय, और जो मौजूदा कानून और व्यवहार इनके विरुद्ध है, उन्हें बदला जाय। उन्होने जोरदार शब्दो मे सरकार की निन्दा करते हुए कहा : "जब तक भीड हिंसात्मक नही हो जाती या गैरकानूनी काम नही करने लगती, कानून के अन्दर किसी मनुष्य को सगीन प्रयोग करने का, या भीड में किसी मनुष्य पर गोली चलाने का कोई अधिकार नही है, और यदि वह ऐसा करता है तो वह अपने खतरे पर ऐसा करता है।"[1]

धार्मिक स्वतन्त्रता

धार्मिक स्वतन्त्रता पर अपने विचार व्यक्त करते हुए मालवीयजी ने कहा कि यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति को धर्म के सिद्धान्तो और मतो पर अपने विचार व्यक्त करने का, उन पर वादविवाद करने का अधिकार है, पर जिन बातो से साथियों की भावनाओ को आघात पहुँचे उन्हें उसे बचाना ही चाहिए। इस तरह धार्मिक महापुरुषो, धर्म के प्रवर्तको, अवतारो, धर्मगुरुओ के सम्बन्ध में बातचीत करते समय उनका व्यक्तित्व श्रद्धापूर्ण सम्मान का अधिकारी समझा जाना चाहिए, अर्थात् उनकी चर्चा सम्मानपूर्वक की जानी चाहिए।[2] नेशनलिस्ट पार्टी के नेता लाला लाजपत राय भी इस बात से सहमत थे। वे भी धार्मिक व्यक्तित्वो की अश्लील आलोचना के विरोधी थे, तथा धर्म और

---

१. वही, सन् १९२७, जि० १, पृ० १०२९।
२. वही, सन् १९२७, जि० ४, पृ० ३९४७-३९५०।

श्रेष्ठ धार्मिक व्यक्तियो के साभिप्राय अपमान को 'अपराध' मानते थे और कानून द्वारा उसे बन्द कर देना देश में शान्ति और सौहार्द प्रतिष्ठित करने के लिए आवश्यक समझते थे ।

कांग्रेस के निर्णय

मालवीयजी काग्रेस के लाहौर अधिवेशन के निर्णयो से पूरी तौर पर सन्तुष्ट नही थे । वे अब भी औपनिवेशिक स्वराज्य के पक्ष में थे, उसे ही पूर्ण स्वतन्त्रता मानते थे, और काग्रेस के विधान में घोषित 'स्वराज्य' की व्याख्या अनावश्यक समझते थे । वे विधान सभाओ का वहिष्कार भी उचित नही समझते थे । वे चाहते थे कि वहाँ भी सरकार का डटकर विरोध किया जाय, स्वराज्य के लिए संघर्ष किया जाय । उनका यह भी कहना था कि काग्रेस के वजाय जनता के प्रतिनिधियो को स्वयं वहिष्कार के प्रश्न पर विचार-विमर्श करके निर्णय करना चाहिए था । काग्रेस टिकट पर निर्वाचित सदस्यो के लिए काग्रेस के नियंत्रण और आदेश की अवहेलना या उपेक्षा करना ठीक हो अथवा न हो, पर नेशनलिस्ट पार्टी के टिकट पर निर्वाचित मालवीयजी इस प्रश्न पर काग्रेस के निर्णय को मानने के लिए बाध्य नही थे । अत. मालवीयजी और नेशनलिस्ट पार्टी के दूसरे सदस्यो ने तुरन्त इस्तीफा देने के वजाय केन्द्रीय असेम्बली के बजट सत्र में भाग लेने का निर्णय किया । आन्ध्र के प्रमुख नेता टी० प्रकाशम, आसाम के प्रमुख नेता टी० आर० फूकन, उडीसा के नेता नील कंठ दास, पजाव के मजदूर नेता दीवान चम्मन लाल तथा मद्रास के एम० के० आचार्य और के० वी० रंगास्वामी ऐयंगर और वंगाल के एस० सी० मित्र और अमरनाथ दत्त, आदि काग्रेस पार्टी के सदस्यो ने भी असेम्बली का बाइकाट नही किया, और उनमें से अधिकाश ने 'न्यू स्वराज्य पार्टी' के नाम से एक नया दल गठित कर लिया ।

बजट

५ मार्च सन् १९३० को बजट पर अपने विचार व्यक्त करते हुए मालवीयजी ने कहा कि यह बजट हमें याद दिलाता है कि भारत एक ऐसी व्यवस्था के अधीन है जिसमें सरकार जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियो को उत्तरदायी नही है, और वह इंग्लैंड से प्राप्त आदेशो से नियत्रित इच्छा के अनुसार प्रशासन का सचालन करती है ।[1] उन्होने कहा कि इस व्यवस्था के अन्तर्गत "जनता के प्रतिनिधियो

---

१. वही, सन् १९३०, जि० २, पृ० १३३३ ।

के लगातार प्रोटेस्ट के बावजूद" खर्च बढ़ता चला जा रहा है।[1] उन्होंने बहुत ही सन्तप्त हृदय से कहा कि उससे "अधिक दुष्ट सरकार" कौनसी हो सकती है जिसमें जनता की भावनाओं को व्यक्त करने के लिए सरकार द्वारा नियत नियमों के अन्तर्गत जनता द्वारा निर्वाचित जनता के प्रतिनिधियो को यह भी अधिकार नही कि वे सरकार को मजबूर कर सकें कि जो द्रव्य उनके वोटो से एकत्रित किया जाता है उसे जैसा वे ठीक समझते हैं वैसे ही खर्च किया जाय।[2] उन्होने कहा कि ऐसी "बुरी शासन-व्यवस्था से जितनी जल्दी हमारा पिंड छूटे उतना ही भारत और बाह्य जगत में मानव जाति के लिए अच्छा होगा।"[3]

मालवीयजी ने सरकार की सेनानीति की आलोचना करते हुए कहा कि जबकि यूरोप के राजनीतिज्ञो की धारणा है कि राजस्व का २० प्रतिशत से अधिक सेना पर खर्च न किया जाय, भारत सरकार इसकी ओर ध्यान नही दे रही है। जबकि सभी देशों ने युद्ध के बाद खर्चे को घटाकर करो में काफी कमी कर दी है, इस देश में अब भी जनता को युद्धकालीन करो का भार वहन करना पड़ रहा है।[4] सरकार की मुद्रा नीति की भर्त्सना करते हुए उन्होने कहा कि १६ पैंस के बजाय १८ पैंस की दर निश्चित करके सरकार ने भारतीय उद्योगो और वित्तीय स्थिति को भयंकर विपत्ति में डाल दिया है।[5] उन्होंने कहा कि सरकार एक ओर आय-कर में वृद्धि की माँग करती है, और दूसरी ओर कपड़ो पर लगाये जाने वाले कर में ब्रिटेन के कपडों पर ५ प्रतिशत की छूट चाहती है। यह कहाँ का न्याय है? सरकार चाहती है कि राजस्व की वृद्धि के लिए सूती कपडो पर आयात शुल्क ११ प्रतिशत से बढ़ा कर १५ प्रतिशत कर दिया जाय, और उन कपडो पर जो ब्रिटेन से नही आते है ५ प्रतिशत संरक्षण शुल्क लगाया जाय। इस तरह सरकार ब्रिटेन के कपड़ो पर आयात शुल्क में ५ प्रतिशत की छूट देती है। इस सुझाव को प्रस्तुत करते समय, मालवीयजी ने कहा, सरकार हमें यह नही बताती कि इस छूट से हिन्दुस्तान को क्या लाभ होगा। पिछले पाँच वर्षो में सूती कपडो में जापान का व्यापार ३३० लाख गज बढ गया है, जबकि उसी जमाने में लंकाशायर का व्यापार

१. वही, सन् १९३०, जि० २, पृ० १३३३।
२. वही, सन् १९३०, जि० २, पृ० १३३३।
३. वही, सन् १९३०, जि० २, पृ० १३३४।
४ वही, सन् १९३०, जि० २, पृ० १३३४।
५. वही, सन् १९३०, जि० २, पृ० १३३४-१३३५।

३८० लाख गज घट गया है ।[1] प्रस्तावित अधिमान के जरिये ब्रिटेन के व्यापार को लाभ अवश्य होगा, वह सम्भवतः हिन्दुस्तान में जापान के इस व्यापार को खत्म कर देगा, पर क्या इससे हिन्दुस्तान को भी कोई लाभ होनेवाला है ? उन्होंने बताया कि फिसकल कमीशन (शुल्क आयोग) की धारणा है कि इस प्रकार की व्यवस्था से अधिमान-प्राप्त देश के व्यापार को अवश्य लाभ होगा, पर शुल्क की नीची दर के कारण सरकार की आमदनी घटेगी, और उपभोक्ताओं को कोई लाभ नही होगा ।[2] ऐसी हालत में टेरिफ बोर्ड से पूछे बिना ब्रिटेन के माल को ५ प्रतिशत का अधिमान देना सर्वथा अनुचित है ।

कटौती का प्रस्ताव

७ मार्च सन् १९३० को श्री एन० सी० केलकर ने प्रस्ताव किया कि एक्जीक्यूटिव कौंसिल से सम्बन्धित वित्तीय मांग को घटाकर एक रुपया कर दिया जाय । उन्होंने कहा कि भारत सरकार जनता को उत्तरदायी नही है और कटौती का यह प्रस्ताव इस सवैधानिक स्थिति के विरुद्ध निन्दा का प्रस्ताव है । उन्होंने यह भी कहा कि यह प्रस्ताव गाधीजी के अल्टीमेटम के अनुरूप है जिससे सिद्ध होता है कि जो लोग कौंसिल में रहकर काम कर रहे है और जो इसे छोड कर बाहर चले गये है उनका ध्येय एक ही है ।

कटौती के इस प्रस्ताव पर बोलते हुए मालवीयजी ने कहा कि इस समय कोई भी ऐसा स्वाभिमानी भारतीय नही है जो सवैधानिक प्रगति के प्रश्न को, जो राष्ट्र के सम्मान और हितो से बहुत सम्बन्धित है, केवल ब्रिटिश सरकार के निर्णय पर छोडने को तैयार होगा ।[3] उन्होंने भारत सरकार से मांग की कि वह ब्रिटिश सरकार से अनुरोध करे कि वह गोलमेज कांफरेन्स को शीघ्र बुलाने का कष्ट करे और घोषित करे कि वह सहमत है कि "विधान के संशोधन" द्वारा भारत में "डोमिनियन स्टेटस" प्रतिष्ठित किया जायगा ।[4] उन्होंने कहा कि यदि ब्रिटिश सरकार इस प्रकार की घोषणा करे, तो वह वायदा करते है कि महात्मा गाधी उसे स्वीकार कर लेंगे, और अपना आन्दोलन बन्द कर देंगे ।[5]

---

१. वही, सन् १९३०, जि० २, पृ० १३३८ ।
२. वही, सन् १९३०, जि० २, पृ० १३३६-१३३७ ।
३. वही, सन् १९३०, जि० २, पृ० १४०४ ।
४. वही, सन् १९३०, जि० २, पृ० १४०७ ।
५. वही, सन् १९३०, जि० २, पृ० १४०७ ।

जिना साहब ने कटौती के प्रस्ताव का जोरदार शब्दों में समर्थन किया। उन्होंने यहाँ तक कहा कि सरकार को समझ लेना चाहिए कि हिन्दू हमसे समझौता करें अथवा न करें, वे हमारे साथ आगे बढ़ें या न बढ़ें, हम आगे बढ़ेंगे, और हम इस देश में मुसलमानो और दूसरे अल्प सख्यको के लिए संरक्षणो की समुचित व्यवस्था के साथ उत्तरदायी शासन-व्यवस्था चाहते है।[1]

कटौती का प्रस्ताव ३९ वोटो के मुकावले में ५० वोटों से रद्द हो गया। कटौती के प्रस्ताव के विरोध मे वोट देनेवालो मे केवल २२ भारतीय थे, जिनमें अधिकाश गवर्नर-जनरल द्वारा मनोनीत थे। इस तरह लगभग तीन चौथाई निर्वाचित हिन्दुस्तानी निन्दा का प्रस्ताव पास करने के पक्ष मे थे। कांग्रेस पार्टी द्वारा असेम्वली का वाइकाट ही भारतीय पक्ष की पराजय का मूल कारण था।

वल्लभ भाई पटेल की गिरफ्तारी

१० मार्च सन् १९३० को सरदार वल्लभभाई पटेल की गिरफ्तारी पर सरकार की भर्त्सना करते हुए मालवीयजी ने आशा व्यक्त की कि सरकार दमन के बजाय सुलह की नीति का अनुसरण करेगी, तथा भारत को उसके जन्म-सिद्ध अधिकार को देने का वायदा करेगी, और इस तरह संघर्ष और कष्टो को टाल कर सन्तोष और आनन्द का अवसर प्रदान करेगी।[2] पर यदि सरकार ने इस वात का वायदा नही किया कि संविधान का आगामी संशोधन "डोमिनियन स्टेटस" के आधार पर आधारित होगा, तो यह मामला "लीग आफ नेशन्स के पास भेजा जायगा, और सम्पूर्ण जगत् के जनमत के कठघरे में सरकार को खड़ा होना होगा।"[3]

सूती कपड़ा उद्योग (संरक्षण) विधेयक

मार्च सन् १९३० के दूसरे सप्ताह मे सरकार की ओर से एक आयात शुल्क विधेयक प्रस्तुत किया गया। इसमे सब देशो के सूती कपड़ो के आयात पर ११ प्रतिशत के बजाय १५ प्रतिशत आयात शुल्क लगा देने की व्यवस्था थी, और यह भी प्रस्ताव था कि ब्रिटेन के माल को छोडकर अन्य देशो के माल पर ५ प्रतिशत संरक्षण शुल्क और लगेगा। मालवीयजी और दूसरे वहुत से निर्वाचित सदस्य ब्रिटेन के माल पर ५ प्रतिशत की छूट ठीक नही समझते थे।

१. वही, सन् १९३०, जि० २, पृ० १४०८।
२. वही, सन् १९३०, जि० २, पृ० १५२२।
३. वही सन् १९३०, जि० २, पृ० १५२२।

उन्होने इस साम्राज्यिक अधिमान का डटकर विरोध किया। वाणिज्य-सदस्य ने घोपित किया कि यदि उनकी यह बात स्वीकार नही की गयी, तो वह पूरा विधेयक वापस ले लेंगे। इससे भयभीत होकर औद्योगिक वर्ग के अधिकाश विधायक इस छूट का समर्थन करने को तैयार हो गये। जिना साहव ने भी, जो स्वय एक संशोधन प्रस्तुत करना चाहते थे, इस भय के कारण विधेयक का पूरी तौर पर समर्थन करना ही उचित समझा।[1] वित्त-सदस्य ने यह भी कहा कि इस छूट या अधिमान का विरोध गोलमेज कांफरेन्स के कामो में बाधा पहुँचा सकता है।

मालवीयजी को ये बातें बुरी लगी। उन्होने इस प्रकार की धमकियो को "विधिविहित निरंकुशता का अत्याचार"[2] बताकर सरकार की भर्त्सना की। उन्होंने कहा कि सरकार की मुद्रा नीति ने बम्बई के उद्योग की दशा बहुत बिगाड दी है, और उसे इस समय २० प्रतिशत संरक्षण की जरूरत है और यदि हमारी शक्ति होती तो हम इतना संरक्षण उसे जरूर दे देते।[3] यदि सरकार इस प्रकार का प्रस्ताव पेश करने को तैयार हो, तो वह और उनकी पार्टी उसका समर्थन करेगे। पर वह और उनके साथी ब्रिटिश माल पर ५ प्रतिशत की छूट देकर उस पर १५ प्रतिशत और दूसरे देशो के माल पर २० प्रतिशत का आयात शुल्क लगाने की व्यवस्था का समर्थन करने को तैयार नही है।

मालवीयजी की धारणा थी कि प्रस्तावित व्यवस्था से बम्बई के उद्योगों को कोई दीर्घकालीन लाभ होने वाला नही है। उनका विश्वास था कि "सरकार के प्रस्ताव से बम्बई के औद्योगिको को "अल्पकालिक" और "दिखावटी राहत" भले मिल जाये, पर "वदान्यता (बाउन्टी) का विष" आगे चलकर "भारी संकट" उपस्थित कर देगा।[4] वदान्यता के बल पर लंकाशायर दूसरे देशो के व्यापार को धक्का देकर भारत के बाजार मे छा जायेगा, और "बम्बई का उद्योग बहुत देर तक लंकाशायर का मुकाबला नही कर सकेगा"।[5] मालवीयजी को इस बात का भी भय था कि अधिमान के जरिए भारत के बाजार पर कब्जा करके लंका-शायर जब उचित समझेगा तब कपड़ो की कीमत बढा देगा, और हम उसे रोक

---

१ वही, सन् १९३०, जि० ३, पृ० २४३०।
२ वही, सन् १९३०, जि० ३, पृ० २६२६।
३. वही, सन् १९३०, जि० ३, पृ० २६१५।
४. वही, सन् १९३०, जि० ३, पृ० २६२१।
५. वही, सन् १९३०, जि० ३, पृ० २६२६।

नही सकेंगे ।[१] इस तरह प्रस्तावित व्यवस्था सारे देश के लिए हानिकर सिद्ध होगी । बम्बई के औद्योगिको को, मालवीयजी ने कहा, अच्छी तौर पर समझ लेना चाहिए कि "बम्बई समृद्ध नही हो सकता, अगर भारत कगाल और विकृत हो जाता है, और देश में मन्दी हो जाती है ।"[२]

उन्होने कहा : "सरकार विप की एक बडी बूँद के साथ हमें दूध का प्याला देना चाहती है, मेरी आपसे विनती है कि आप उसे लेने से इनकार कर दे और इस महान् देश की जनता की हैसियत से अपने जन्म-सिद्ध अधिकार के रूप मे विशुद्ध और निर्मल दूध का प्याला लेने का आग्रह करें ।"[३]

मालवीयजी ने कहा कि उनके लिए उनका देश ही सर्वोपरि है । उसका चिन्तन ही उनका मुख्य विपय है । बम्बई के उन मित्रों को, जिन्होंने बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी को बहुत आर्थिक सहायता दी है, समझना चाहिए कि बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के हित पर देश का हित कुर्बान नही किया जा सकता । उन्होने कहा "मै अपनी आत्मा और अपने परमात्मा के प्रति निष्ठाहीन हो जाऊँगा, यदि मै हिन्दू यूनिवर्सिटी के हितो या किसी दूसरे हित को अपने और अपने देश के हितो के बीच टिकने दूँ । यदि सौ हिन्दू यूनिवर्सिटियो का बलिदान करना भी आवश्यक होगा, तो मै आशा करता हूँ कि ईश्वर मुझे शक्ति प्रदान करेगा कि मै बिना हिचक के उन्हे बलिदान कर दू, और अपने देश के हित का बलिदान न करूँ" ।[४]

मालवीयजी को सन्देह था कि भारत सरकार स्वयं लंकाशायर के कपडो को अभिमान शुल्क या वदान्यता देने के पक्ष में नही थी, और ब्रिटिश सरकार के दबाव और आग्रह से बाध्य होकर ही उसने इस प्रकार का प्रस्ताव असेम्बली के सामने पेश किया । उन्होने सरकार से माँग की कि इस विषय पर जो पत्रव्यवहार भारत मन्त्री से हुआ है, वह असेम्बली के पटल पर रखा जाय, और जब सरकार ने ऐसा करने से इनकार किया तब मालवीयजी ने कहा . "हमने उस पत्र को पेश करने की माँग की जो भारत सरकार ने सम्राट् के मन्त्री को भेजा है, पर भारत सरकार ने उस पत्र को प्रस्तुत नही किया । इसलिए जैसा

---

१. वही, सन् १९३०, जि० २, पृ० १७४७ ।
२ वही, सन् १९३०, जि० ३, पृ० २६२७ ।
३. वही, सन् १९३०, जि० ३, पृ० २६२७ ।
४. वही, सन् १९३०, जि० ३, पृ० २६२६ ।

कि हरेक वकील कहेगा, अनुमान यही है कि वह गवाही जो पेश नही की जाती वह उस पार्टी को जो उसे पेश नही करती अवश्य ही हानिकर होगी।'[1]

भारत सरकार और भारत-मन्त्री के व्यवहार को अनुचित घोषित करते हुए उन्होंने बहुत ही सन्तप्त हृदय से कहा : "विदेशी सरकार की अधीनता सबसे बड़ा अभिशाप है जो किसी राष्ट्र पर हो सकता है। वह जनता के पुरुषत्व को नष्ट करता है और भयंकर मात्रा में नैतिक स्वभाव को प्रभावित करता है। विदेशी नौकरशाही सरकार एक ऐसी सस्था है जो उन लोगो को भ्रष्ट कर देती है जिन पर वह अपना अधिकार, आश्रय, और प्रभाव का प्रयोग करती है। उसकी मौजूदगी ही भ्रष्टाचारी प्रभाव रखती है।"[2]

मालवीयजी की दृढ धारणा थी कि भारत सरकार का व्यवहार और उसकी धमकी उद्घोषित वित्तीय स्वतन्त्रता का अपहरण करती है। उन्होने माँग की कि सरकार उस घोषणा का आदर करना अपना कर्तव्य समझ निर्वाचित सदस्यो के निर्णय को स्वीकार करे, और सरकारी सदस्य विधेयक पर वोट न करें। उन्होने असेम्बली के अध्यक्ष श्री विट्ठल भाई पटेल के समक्ष व्यवस्था की आपत्तियाँ प्रस्तुत की। इन पर अपना निर्णय व्यक्त करते हुए सभाध्यक्ष ने कहा कि उचित यही होगा कि सरकारी सदस्य संशोधन पर वोट न करे ताकि भारतमन्त्री असेम्बली के निर्वाचित सदस्यो की राय का ठीक-ठीक पता लगा सकें, वित्तीय स्वतन्त्रता के निमित्त निश्चित कर सके कि सरकार की राय और असेम्बली के निर्णय में से कौन बात ठीक है।[3] उन्होने यह भी घोषित किया कि वित्तीय स्वतन्त्रता की घोषणा और मर्यादा के अन्दर असेम्बली विधेयक के एक अंश को स्वीकार करते हुए दूसरे अश को नामजूर कर सकती है।[4] पर चूँकि अध्यक्ष का इस प्रकार का सुझाव सरकारी सदस्यो को वोट न देने के लिए बाध्य नही कर सकता था, उन्होने अध्यक्ष की राय की अवहेलना करने का निश्चय किया। वाणिज्य-मन्त्री ने भी अपनी धमकी वापस नही ली। इस पर मालवीयजी के संशोधन पर वोट लेने से पहले अध्यक्ष ने कहा, "मैंने सरकार को कुछ सुझाव दिया था, और उन्होने उसे स्वीकार नही किया। वाणिज्य-सदस्य ने इस सदन

---

१. वही, सन् १९३०, जि० ३, पृ० २६१५।
२. वही, सन् १९३०, जि० ३, पृ० २६१६।
३. वही, सन् १९३०, जि० ३, पृ० २६७६।
४. वही, सन् १९३०, जि० ३, पृ० २६७५।

को जो धमकी दी है, वह वापस नही हुई, और इस दृष्टि से मैं अभिलेख में दर्ज करता हूँ कि इस महत्त्वपूर्ण विषय पर असेम्बली कोई भी निर्णय ले, वह इस सदन का स्वतन्त्र वोट नही होगा।"[1] सरकारी सदस्यो ने मालवीयजी के संशोधन के विरुद्ध वोट दिये, और संशोधन ४४ वोटो के मुकाबले में ६० वोटो से नामजूर हो गया। मिस्टर षन्मुखम चेट्टी का संशोधन ४२ वोटो के मुकाबले में ६२ वोटो से स्वीकार हो गया। मालवीयजी ने वोटो का विश्लेषण करते हुए कहा कि जिन सदस्यो ने उनके संशोधन के विरुद्ध वोट दिये उनमे २६ सरकारी सदस्य थे। इस तरह गैरसरकारी सदस्यो का बहुमत उनके संशोधन के पक्ष में था। इसी तरह जिन सदस्यो ने श्री षन्मुखम चेट्टी के संशोधन के पक्ष में राय दी उनमें २६ सरकारी सदस्य थे। गैरसरकारी सदस्यो के वोटो का विश्लेषण करने से पता चलता है कि सेठ घनश्यामदास बिडला ने मालवीयजी के संशोधन के पक्ष में राय दी और सर षन्मुखम् चेट्टी के संशोधन के विरोध में वोट दिया, बाकी सब औद्योगिको ने मालवीयजी के संशोधन का विरोध किया और मिस्टर षन्मुखम् चेट्टी के संशोधन का समर्थन किया। बम्बई के नरम दलीय सदस्य सर कावसजी जहाँगीर ने भी सरकार का साथ देना ही उचित समझा। नेशनलिस्ट पार्टी और नयी स्वराज्य पार्टी के सभी सदस्यो ने, जिनमें पंडित हृदयनाथ कुजरू, मुन्शी ईश्वर शरण, श्री एन० सी० केलकर, श्री एम० एस० अणे, श्री एम० आर० जयकर, श्री टी० प्रकाशम, श्री टी० आर० फूकन, श्री नीलकंठदास, दीवान चम्मनलाल भी थे, मालवीयजी के सशोधन के पक्ष में और चेट्टी साहब के सशोधन के विरुद्ध राय दी। कुछ मुसलमान सदस्यो ने, जिनमें युक्तप्रान्त के जनाब मुशहिर हुसैन किदवाई और बंगाल के डाक्टर अब्दुल्ला सोहरावर्दी भी थे, मालवीयजी के सशोधन का समर्थन तथा चेट्टी साहब के संशोधन का विरोध किया, पर मिस्टर जिना और उनकी इंडिपेंडेंट पार्टी के करीब-करीब सभी सदस्यो ने, जिनमें डाक्टर जियाउद्दीन और डाक्टर के० एल० हैदर तथा मौलाना मुहम्मद याकूब भी थे, मालवीयजी के विरोध में तथा चेट्टी साहब के पक्ष में राय दी। चेट्टी साहब का सशोधन मूलरूप से सरकारी प्रस्ताव के पक्ष में था, उसमें और सरकार के प्रस्ताव मे केवल शब्दों का हेर-फेर था। चेट्टी साहब का संशोधन, जो सरकारी सदस्यों के वोट से पास हुआ, ब्रिटिश माल पर १५ प्रतिशत और दूसरे विदेशी माल पर २० प्रतिशत आयात शुल्क लगाने के पक्ष में था।

---

१. वही, सन् १९३०, जि० ३, पृ० २७१०।

इस विधेयक पर अन्तिम वार बोलते हुए मालवीयजी ने कहा कि जब अध्यक्ष के सुझाव की अवहेलना करते हुए सरकारी सदस्यो के वोट से प्रस्ताव को पास कराने का निश्चय सरकार ने कर लिया है, तव मेरी पार्टी का सदन मे रहना व्यर्थ है।[1] इस विधेयक की वहस में अब और भाग लेना "पाप" होगा।[2] यह कहकर वे और उनकी पार्टी के सब सदस्य सदन छोडकर चले गये। इसके बाद दीवान चम्मन लाल ने भी यह कह कर कि वे मालवीयजी से सहमत है, नयी स्वराज्य पार्टी के दूसरे सदस्यो के साथ सदन छोड दिया। इन पार्टियो की अनुपस्थिति में सरकार ने आसानी से विधेयक पास करा लिया।

इस्तीफा

कुछ दिन बाद मालवीयजी ने असेम्बली की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया। उन्होने अपने ९ पृष्ठ के त्यागपत्र में काफी विस्तार के साथ सरकार की प्रशासनिक, सैनिक, आर्थिक और वित्तीय नीति की समीक्षा की। उन्होने कहा कि वे मौजूदा वैधानिक सुधारो को अपर्याप्त और असन्तोपजनक समझते हैं। फिर भी यदि सरकार ने सुधारो की भावना के अनुरूप काम किया होता, तो देश का कुछ भला हो सकता था। पर सरकार ने ऐसा नही किया। पिछले दस वर्ष के अनुभव ने सिद्ध कर दिया है कि वह सरकार, जो असेम्वली को उत्तरदायी नही है और उसके द्वारा हटायी नही जा सकती, सरकारी और मनोनीत सदस्यो के अपने गुट द्वारा और उन वोटो की सहायता से जिन्हे वह अपने अधिकार और आश्रय (पेट्रोनेज) के वल पर जुटा सकती है, किसी भी प्रस्ताव को कार्यान्वित कर सकती है, और जनता को सहायता और राहत पहुँचाने से इनकार कर सकती है, चाहे वह कितनी ही आवश्यक क्यो न हो। उसने यह भी प्रदर्शित कर दिया है कि "इन सुधारो के बावजूद ब्रिटेन के हितो में भारत का शोषण करने की भारत सरकार की शक्ति वहुत कम घटी है" और उसने अपनी इस शक्ति का प्रयोग पहले की तरह ही स्वच्छन्दता से किया है। यह साफ हो गया है कि मौजूदा असेम्वली उस समय "जनता के हितो की रक्षा करने में असमर्थ है जब सरकार द्वारा उन पर प्रहार किया जाय या उन्हे जोखम में डाला जाय।" उन्होने लिखा कि आयात शुल्क विधेयक पर सरकार का व्यवहार संसार के किसी निष्पक्ष न्यायाधिकरण के समक्ष न्यायसंगत सिद्ध नही किया जा सकता। इसलिए, उन्होने कहा, मैंने निश्चय किया है कि "अब मै असेम्वली का सदस्य रहकर उस संविधान का समर्थन न करूं जिसके अन्तर्गत

---

१. वही, सन् १९३०, जि० ३, पृ० २७१७।
२. वही, सन् १९३०, जि० ३, पृ० २७१७।

मेरी जनता के ऊपर इस प्रकार का अन्याय लादा जा सकता है। इस व्यवस्था के स्थान पर एक अच्छी व्यवस्था प्रतिष्ठित करने के प्रयत्न मे ही मैं अब अपना समय लगाऊँगा। मुझे आशा है कि इस देश की जनता के साथ न्याय के निमित्त और संसार के सभ्य राष्ट्रो के समक्ष अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए आप और दूसरे न्यायप्रिय अंग्रेज उस बडी तब्दीली को प्रतिष्ठित करने में हमारी सहायता करेंगे जो हमें अपने मामलो के प्रबन्ध की वही स्वतंत्रता प्रदान करेगी, जो आपको अपने देश मे प्राप्त है।

इसके बाद श्री विट्ठल भाई पटेल ने भी असेम्बली की अध्यक्षता और सदस्यता से इस्तीफा दे दिया।

साइमन रिपोर्ट की आलोचना

मालवीयजी के इस्तीफे के बाद असेम्बली का दस बारह दिन का एक छोटा-सा सत्र जुलाई में आयोजित किया गया। इस सत्र में १० जुलाई को वित्त-सदस्य ने गोलमेज कान्फरेन्स के खर्चे के लिए २,६६,००० रुपये के अनुदान की माँग पेश की। सेन्ट्रल मुस्लिम पार्टी के सम्मानित सदस्य मिया मुहम्मद शाहनवाज ने १०० रुपये की कटौती का सशोधन पेश करते हुए साइमन कमीशन की संस्तुतियो की कडी आलोचना की। काफी बहस के बाद ४१ वोटो के विरुद्ध ६६ वोटो से कटौती का प्रस्ताव पास हो गया, और इस तरह कमीशन की रिपोर्ट करीब करीब सभी निर्वाचित भारतीय सदस्यो ने रद्द कर दी।

समीक्षा

असेम्बली में काग्रेस पार्टी ही सबसे बडी पार्टी थी। उसके पूर्ण सहयोग के बिना किसी महत्त्वपूर्ण विषय पर सरकार को हराना असम्भव था। पर इसके लिए नेशनलिस्ट पार्टी का सहयोग भी नितान्त आवश्यक था। उसने डट कर सरकार का विरोध किया। तीन वर्ष के अन्दर किसी भी प्रश्न पर नेशनलिस्ट पार्टी की उपेक्षा के कारण विरोधी पक्ष को हार का सामना नही करना पड़ा। वित्त विधेयक को रद्द करने के प्रश्न पर नेशनलिस्ट पार्टी के कतिपय सदस्य तटस्थ रहे, पर इस प्रश्न पर स्वराज्य पार्टी के सब सदस्यों ने भी अपने नेता पंडित मोती लाल नेहरू का साथ नही दिया। बहस में नेशनलिस्ट पार्टी का योगदान किसी तरह काग्रेस पार्टी से कम नही रहा। मालवीय जी, लाला लाजपत राय, मिस्टर जयकर, मिस्टर केलकर, मुंशी ईश्वर शरण,

पंडित हृदयनाथ कुंजरू आदि ने हर प्रश्न पर सरकार की नीतिरीति और क्रियाकलापो की कडी समीक्षा की। वास्तव मे मुद्राविधेयक, रिजर्व बैंक विधेयक, पब्लिक सेफ्टी बिल (सार्वजनिक रक्षा विधेयक) पर तथा सीमा शुल्क आदि कतिपय प्रश्नो पर मालवीयजी के भाषण सबसे उत्तम और उनकी समीक्षा सर्वोपरि थी। साइमन कमीशन, सैनिक नीति, तथा राजनीतिक सुधार के प्रश्नो पर सरकार को कांग्रेस और नेशनलिस्ट पार्टी के अतिरिक्त जिना साहब की इंडिपेंडेंट पार्टी के तगडे विरोध का भी सामना करना पडा। इन प्रश्नो पर जिना साहब की समीक्षा भी काफी महत्त्वपूर्ण होती थी। समाज-सुधार के प्रश्नो पर मालवीयजी का योगदान नगण्य था, पर नेशनलिस्ट पार्टी के नेता लाला लाजपत राय और उसके सम्मानित सदस्य मुंशी ईश्वर शरण और पंडित हृदय नाथ कुजरू का योगदान भरपूर था। मजदूरों की समस्याओ पर कांग्रेस पार्टी के सदस्य और मजदूर आन्दोलन के नेता दीवान चम्मन लाल और जमनादास मेहता का कार्य भी सराहनीय था।

●

१९. साइमन कमीशन और नेहरू रिपोर्ट

साइमन कमीशन

नवम्बर सन् १९२७ में संवैधानिक प्रगति की जाँच के लिए सर जान साइमन की अध्यक्षता में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने सात सदस्यो का एक स्टैट्यूटरी कमीशन नियुक्त किया। इस कमीशन के सभी सदस्य पार्लियामेंट के यूरोपियन सदस्य थे और इसकी नियुक्ति इस सिद्धान्त पर आश्रित थी कि भारत के संविधान की गतिविधि का निर्णय करना ब्रिटिश पार्लियामेंट का ही उत्तरदायित्व है। कमीशन की नियुक्ति की घोषणा करते हुए वाइसराय ने यह भी कहा कि सम्राट् की सरकार की राय में गवाहियाँ लेने में कमीशन का काम आसान हो जायगा, यदि वह केन्द्रीय विधान मंडल के निर्वाचित और मनोनीत गैरसरकारी सदस्यो को अपने में से एक कमेटी नियुक्त करने को आमन्त्रित करे, और उसे लिखित रूप में अपने विचार कमीशन के सामने पेश करने का मौका दे।

बाइकाट

भारतीय समाचारपत्रो और राजनीतिज्ञो ने इसकी कडी आलोचना की। सरकार को उदारदलीय नेताओ के सहयोग की आशा थी, पर वे भी सरकार के साथ सहयोग करने को तैयार नही हुए। वे ब्रिटिश पार्लियामेंट के संवैधानिक अधिकार को स्वीकार करते थे। पर उन्हें कमीशन में किसी एक हिन्दुस्तानी का भी नियुक्त न किया जाना अखरता था, और केन्द्रीय विधान मडल की संयुक्त कमेटी का साक्षी या परीक्षार्थी के रूप में कमीशन के सामने उपस्थित होना अपमानजनक दिखाई देता था। जिना साहब बहुत क्षुब्ध थे। करीब-करीब सभी प्रगतिशील संस्थाओ के प्रमुख नेताओ ने कमीशन के विरुद्ध वक्तव्य प्रकाशित किये।

मालवीयजी के वक्तव्य

मालवीयजी ने साइमन कमीशन की नियुक्ति से पहले ही ब्रिटिश सरकार से तार द्वारा माँग की थी कि कमीशन में हिन्दुस्तानी सदस्यो की संख्या यूरोपियनो के बराबर हो, और स्पष्ट शब्दो में चेतावनी दे दी थी कि यदि कमीशन में हिन्दुस्तानी नही रखे गये, तो हिन्दुस्तान उसका बाइकाट करेगा। जब कमीशन

नियुक्त हो गया, तब अन्य नेताओ की तरह मालवीयजी ने भी जनता को उसके बाइकाट की सलाह दी। उन्होने जनता से अपील की कि "वह दृढ-प्रतिज्ञ होकर जितनी शीघ्र हो इस शासन-प्रणाली का अन्त कर देने के लिए प्राणपण से तैयार हो जाये", तथा "प्रतिज्ञा करे कि वे अपने देश भाइयो के साथ जाति-पाँति का भेद छोडकर अपने ही सदृश उनके जीवन, उनकी प्रतिष्ठा, तथा उनकी स्वतंत्रता का आदर करेंगे, तथा जातिगत या व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए देश के स्वार्थ का बलिदान नही करेंगे"।[1] २४ नवम्बर के इस लेख में मालवीयजी ने सलाह दी कि (१) जनवरी सन् १९३० तक पूर्ण स्वराज्य ले लेने की घोषणा की जाय, (२) सभी दलो और विचारों के प्रतिनिधि काग्रेस के मद्रास अधिवेशन में उपस्थित हो, (३) प्रान्तीय कौसिलो और केन्द्रीय असेम्बली के सब निर्वाचित सदस्य काग्रेस के सदस्य समझे जायें, (४) नवनिर्मित काग्रेस फरवरी सन् १९२८ में पूर्ण स्वराज्य के उपयुक्त शासन-विधान तैयार करे।[2]

मालवीयजी ने अपने इस लेख में यह भी लिखा कि ब्रिटिश सरकार और जनता को यह भी सूचित किया जाय कि "यदि वह काग्रेस द्वारा प्रस्तावित राज्यव्यवस्था को पूर्णतः अथवा परस्पर निर्णीत परिवर्तनो के साथ स्वीकार नही करती, तो काग्रेस को वाध्य होकर भारतीय जनता को यह आदेश देना पडेगा कि वह असहयोग का चरम स्वरूप धारण करे, अर्थात् करो का देना वन्द कर दे, तथा ब्रिटिश वस्तुओ के पूर्णतः वहिष्कार का आन्दोलन करे"।[3]

मालवीयजी यह चाहते थे कि भारतीय नागरिक समाज स्थापित किया जाय, जिसके द्वारा प्रत्येक गाँव और नगर में नागरिकता की शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा का प्रवन्ध किया जाय, तथा प्रत्येक भारतीय में अपने को भारतीय राज्य का स्वतन्त्र नागरिक समझने की भावना पैदा की जाय।[4]

उनकी यह भी इच्छा थी कि नवनिर्मित काग्रेस की समितियो में पूर्ण विश्वसनीय नेता हो, जो दो वर्षों तक अपने सभी अन्य कामो को छोडकर स्वराज्य की प्राप्ति के निमित्त अपना तन, मन, धन सब कुछ लगा दें, और जनता को इसकी शिक्षा दें।[5]

---

१. हिन्दुस्तान टाइम्स, २४ नवम्बर, सन् १९२७।
२. वही। ३. वही।
४. वही। ५. वही।

ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल

२५ नवम्बर को भारत-मन्त्री लार्ड बर्कनहेड ने पार्लियामेंट में कहा कि केन्द्रीय विधान मंडल को साक्षी समक्ष बैठना किसी तरह न्याय संगत नही होगा। वे तो ईमानदारी से सहयोगी के रूप में कमीशन से सहयोग करने को निमंत्रित किये गये हैं। प्रधान-मन्त्री वाल्डविन ने इस आश्वासन की ओर संकेत करते हुए यह भी स्पष्ट कर दिया कि ब्रिटिश पार्लियामेंट को अपना उत्तर-दायित्व स्वयं वहन करना होगा, कोई दूसरी प्रतिनिधि संस्था उसमें हिस्सेदार नही बनायी जा सकती।

मालवीयजी की प्रतिक्रिया

इस पर २७ नवम्बर को मालवीयजी ने एक लेख में कहा कि यद्यपि पार्लियामेंट मे केन्द्रीय कमेटी के सम्बन्ध में सहयोगी और समकक्ष जैसे शब्दो का प्रयोग किया गया है, पर कमीशन की किसी कार्य-प्रणाली द्वारा वे समकक्षता प्राप्त नही कर सकते। इसलिए हिन्दुस्तान का बहिष्कार जारी रहेगा।[1]

बहिष्कार

दिसम्बर मे कांग्रेस, हिन्दू महासभा, अखिल भारतीय लिबरल फेडरेशन आदि संस्थाओ ने ब्रिटिश सरकार की नीतिरीति की आलोचना करते हुए साइमन कमीशन के बहिष्कार की जनता तथा विधान कौंसिलो से अपील की। लिबरल फेडरेशन ने अपने वार्षिक अधिवेशन मे निर्णय किया कि कमीशन की योजना स्वीकार नही की जा सकती, क्योंकि वह अपने देश के भावी संविधान के बनाने में समता के आधार पर भाग लेने के अधिकार से भारतीय जनता को वंचित करती है। हिन्दू महासभा ने भी योजना को आपत्तिजनक और अपमानजनक घोषित करते हुए जनता से अपील की कि वह किसी मंजिल और किसी रूप मे कमीशन से सहयोग न करे।

कांग्रेस

कांग्रेस ने भी डाक्टर अन्सारी की अध्यक्षता में आयोजित अपने मद्रास अधिवेशन में हर मंजिल में और हर प्रकार से कमीशन के बाइकाट का निर्णय किया। उसने विधान कौंसिलो के निर्वाचित सदस्यो से अपील की कि वे कमीशन के साथ सहयोग करने से इनकार कर दें। उसने स्थानीय कांग्रेस संगठनों को आदेश दिया कि वे बाइकाट को प्रभावशाली बनाने के लिए उसके सम्बन्ध में

१. हिन्दुस्तान टाइम्स २७ नवम्बर, १९२७.

जनता में प्रचार करे, तथा जिस दिन कमीशन भारत आये उस दिन सारे देश में उसके विरोध मे हड़ताल और प्रदर्शन आयोजित किये जायें, और जब कमीशन किसी नगर में जाये तब वहाँ भी विरोधी प्रदर्शन हो। उसने जनता को आह्वान किया कि वे इन प्रदर्शनो में भाग लेकर उन्हें सफल बनाये। इस अधिवेशन में काग्रेस ने यह भी निश्चय किया कि देश की दूसरी पार्टियो के सहयोग से भारत का सविधान तैयार किया जाय। इसी अवसर पर काग्रेस ने राजनीतिक अधिकारों के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पास करते हुए कतिपय उन समस्याओ का समाधान प्रस्तुत किया जिनके कारण हिन्दुओ और मुसलमानो के पारस्परिक सम्बन्धो में उलझने पैदा हो रही थी। इसी अधिवेशन में काग्रेस ने पूर्ण स्वतन्त्रता के पक्ष में भी प्रस्ताव पास किया।

मुस्लिम लीग की प्रतिक्रिया

साइमन कमीशन के बहिष्कार के प्रश्न पर गहरा मतभेद हो जाने के कारण मुस्लिम लीग दो टुकडो मे बँट गयी। एक के प्रमुख नेता जिना साहब और दूसरे के सर मुहम्मद शफी थे। जिना साहब को सर अली इमाम, डाक्टर अन्सारी, मौलाना आजाद, और मौलाना मुहम्मद अली आदि का, और शफी साहब को सर अमीर अली, और हिज हाइनेस आगा खा, डाक्टर मुहम्मद इकबाल, मौलाना हसरत मोहानी आदि का समर्थन प्राप्त था। दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में दोनो गुटो ने एक दूसरे पर दोपारोपण करते हुए मुस्लिम लीग के नाम पर अलग-अलग अधिवेशन किये। शफी साहब की अध्यक्षता में आयोजित अधिवेशन में सहयोग के पक्ष में, तथा जिना साहब के नेतृत्व में आयोजित अधिवेशन में बाइकाट के समर्थन में प्रस्ताव पास हुए।

राजनीतिक समझौते के सम्बन्ध मे मुस्लिम विधायको का मार्च सन् १९२७ का सुझाव शफी साहब की लीग स्वीकार करने को तैयार नही थी। उसने राजनीतिक सुधारो से सम्बन्धित मद्रास काग्रेस के प्रस्ताव को भी नामजूर कर दिया। पर कलकत्ते में आयोजित मुस्लिम लीग काफरेन्स ने काग्रेस का प्रस्ताव इस शर्त पर स्वीकार किया कि जब सिन्ध अलग प्रान्त बना दिया जायेगा, तथा सीमाप्रान्त और बलूचिस्तान में राजनीतिक सुधार लागू कर दिये जायेंगे, तब सयुक्त निर्वाचन-पद्धति भी चालू हो जायगी। ऐसी स्थिति में जनसंख्या के आधार पर विधान मण्डलो में स्थान सुरक्षित होगे; पर जिस अनुपात से हिन्दू अपने बहु-संख्यक प्रान्तो में मुसलमानो को अधिक स्थान देने को तैयार होगे, उसी अनुपात से सीमा प्रान्त, सिन्ध और बलूचिस्तान में

हिन्दुओं को स्थान दिये जायेंगे। इसके बाद लीग के कलकत्ता अधिवेशन में मालवीयजी ने भारत को "समृद्धि और अधिकार के नये युग में" प्रवेश कराने के लिए एकता को सुदृढ करने की अपील की। उन्होंने कहा : "हम यह याद रखें कि हम पहले हिन्दुस्तानी और बाद को हिन्दू और मुसलमान हैं, हम एक दूसरे के साथ न्याय का व्यवहार करें, और यदि हमने ऐसा किया तो स्वराज्य कोई रोक नही सकता।" इसके बाद जिना साहब ने कहा—"जलियांवाला बाग शारीरिक हत्याकाउ था, साइमन कमीशन हमारी आत्माओ पर कुठाराघात है। एकमात्र गोरो का कमीशन नियुक्त करके लार्ड बर्केनहेड ने स्वशासन के लिए हमारी अयोग्यता घोषित की है। मैं पडित मालवीय का स्वागत करता हूँ। मैं काग्रेस और हिन्दू महासभा के मंचो से हिन्दुओं के मैत्री के हाथ का स्वागत करता हूँ। मुझे यह भेट उन सब रियायतो से अधिक प्रिय है। हमें मैत्री के हाथ को कस कर पकडना चाहिए। यह शुभ दिन है और इसके लिए हमको लार्ड बर्केनहेड को धन्यवाद देना चाहिए।"[1]

कमीशन की कार्य-प्रणाली

७ फरवरी सन् १९२८ को कमीशन की कार्यप्रणाली के सम्बन्ध में सर जान साइमन का लिखा पत्र वाइसराय ने प्रकाशित किया। इस पत्र में बताया गया कि कमीशन का काम सात अंग्रेज और सात हिन्दुस्तानियो के बीच संयुक्त स्वतन्त्र कान्फरेन्स का रूप धारण करेगा। केन्द्रीय विषयो के सम्बन्ध में सात हिन्दुस्तानियों का चुनाव केन्द्रीय विधान मण्डल करेगा। कमीशन अपनी रिपोर्ट सम्राट् की सरकार को भेजेगा, हिन्दुस्तानी सदस्य अपनी रिपोर्ट केन्द्रीय विधान मंडल को भेज सकते है। वे चाहे तो उनकी रिपोर्ट कमीशन की रिपोर्ट मे परिशिष्ट के रूप में नत्थी की जा सकती है। जब विभिन्न प्रान्तो की स्थिति की जाँच के लिए कमीशन प्रान्तो में जायेगा, तब वह वहाँ की प्रान्तीय विधान कौंसिल द्वारा निर्वाचित सात हिन्दुस्तानी सदस्यो के साथ काम करेगा।

भारतीय नेताओ को साइमन साहब की यह योजना पसन्द नही थी। उन्होने ८ फरवरी को दिल्ली में इकट्ठे होकर घोषित किया कि वे कमीशन के बहिष्कार पर अडिग है, और कमीशन की शर्तों पर उसके साथ सहयोग करने को तैयार नही हैं। २० फरवरी को जिना साहब ने असेम्बली के साथियों से

१. इण्डियन क्वाटरली रजिस्टर, सन् १९२७, जि० २।

सलाह करने के बाद साइमन कमीशन के बाइकाट के निर्णय को दुहराते हुए सब पार्टियों के सार्वजनिक कार्यकर्ताओं और सब राजनीतिक संस्थाओं से अपील की कि वे आपस में मिलकर साम्प्रदायिक समस्या हल करें, भारत के संविधान की रूपरेखा तैयार करके कनवेंशन द्वारा इसे स्वीकार करायें, तथा उसकी स्थापना के लिए प्रयत्न करें[1]।

केन्द्रीय असेम्बली द्वारा बाइकाट

१६ फरवरी सन् १९२८ को लाला लाजपत राय ने केन्द्रीय असेम्बली में प्रस्ताव प्रस्तुत किया कि यह असेम्बली गवर्नर-जनरल इन-कौंसिल को संस्तुति करती है कि सदन को कमीशन का गठन और योजना बिल्कुल नामंजूर है, और इसलिए वह किसी अवस्था और ढंग में कमीशन से सहयोग नहीं करेगी। इस प्रस्ताव को पेश करते हुए उन्होंने बहुत ही कटु शब्दों में ब्रिटिश सरकार की आलोचना करते हुए स्पष्ट कहा कि समता के आधार पर ही जनता के प्रतिनिधि सरकार से सहयोग कर सकते हैं। सरकार की इस धमकी का जवाब देते हुए कि यदि अंग्रेज चले जायेंगे तो देश में अराजकता फैल जायेगी, उन्होंने कहा कि किसी विदेशी या विदेशी संस्था द्वारा संगीन की नोक पर कानून की अराजकता लागू करने से बड़ी अराजकता क्या हो सकती है?[2]

इस प्रस्ताव पर सेंट्रल मुस्लिम पार्टी के सम्मानित सदस्य सर जुलफिकार अली खाँ ने संशोधन पेश किया कि "यह असेम्बली गवर्नर-जनरल-इन कौंसिल को संस्तुति करती है कि वह सम्राट् की सरकार को इस असेम्बली की यह राय बता दे कि भारतीय साविधिक आयोग (इण्डियन स्टैट्यूटरि कमीशन) द्वारा प्रस्तुत कार्यप्रणाली असेम्बली के स्वीकारात्मक विचार के योग्य है"।

लाला लाजपत राय के प्रस्ताव का समर्थन जोरदार भाषणों द्वारा सर्वश्री एस० श्रीनिवास ऐयंगर, एम० आर० जयकर, मुहम्मद अली जिना, टी० सी० गोस्वामी, मोतीलाल नेहरू, पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, रंगा अय्यर तथा मालवीय जी ने किया। सरकार की ओर से श्री केरार, सर भूपेन्द्र मित्र, सर बेसिल ब्लेकट ने सर जुल्फिकार अली खाँ साहब के संशोधन का समर्थन किया।

मालवीयजी ने कहा कि वे आत्मनिर्णय के सिद्धान्त को मानते हैं। उनके विचार में "जनता द्वारा जनहित में जनता की सरकार ही सर्वोत्तम है।"

---

१ नौमानः मुस्लिम इंडिया, पृ० २६९।

२. असेम्बली डिबेट्स, सन् १९२८, जि० १, पृ० ३८४।

"भारत के संविधान का निर्माण", उन्होने कहा, "भारतीयो के सुपुर्द ही किया जाना चाहिए।" ब्रिटिश पार्लियामेन्ट उसे नियमानुसार कानूनी रूप दे दे। उन्होंने कहा, "हम स्वतन्त्रता चाहते है, और हमारा दावा है कि हम अपना शासन स्वय चलाने के योग्य है, और अग्रेज जवर्दस्ती हमें अपने अधिकार के अधीन वनाये रखना चाहते है।" उन्होने कहा . "अपना अधिकार प्राप्त करने के वास्ते युद्ध और समझौता, यही दो तरीके हैं। हम इस समय समझौते द्वारा अधिकार प्राप्त करने के प्रयत्न मे है। पर यदि हम इसमें विफल हुए तो शासन की मौजूदा पद्धति से छुटकारा पाने के लिए इस देश की जनता दूसरे उपायो को, हर सभव और न्यायसगत उपाय, को अपनाने के लिए सोचने को वाध्य होगी।"[1]

लाला लाजपत राय का प्रस्ताव वहुमत से स्वीकार हो गया। ६८ सदस्यो ने उसके पक्ष मे और ६३ ने उसके विरोध में राय दी।

इसके कुछ दिन वाद वजट पर बहस के दौरान में १३ मार्च सन् १९२८ को पण्डित मोतीलाल नेहरू ने साइमन कमीशन के खर्चे के लिए अनुदान की माँग का विरोध किया। मालवीयजी ने मोती लालजी की राय का समर्थन किया। दोनो की राय थी कि जिसने कमीशन नियुक्त किया उसे ही उसका खर्चा वहन करना चाहिए। सरकार के प्रवक्ता ने कहा कि जबकि कमीशन काम कर रहा है, तब उसके लिए अनुदान नामजूर करना अवैधानिक होगा। इसके उत्तर में मालवीयजी ने कहा · "भारतीय जनता के प्रतिनिधियो की आकाक्षाओं का ध्यान रखे बिना भारत की ओर से रुपया खर्च करना सरकार का सर्वाधिक अवैधानिक कार्य है।"[2] ५९ रायो के विरुद्ध ६६ रायो से असेम्बली ने अनुदान की माँग रद्द कर दी।

बाइकाट प्रदर्शन

काग्रेस की तरह नेशनलिस्ट पार्टी ने भी साइमन कमीशन के विरुद्ध आयोजित प्रदर्शनो मे भाग लिया। जहाँ भी कमीशन गया वहाँ जनता ने उसके विरुद्ध प्रदर्शन किये, 'साइमन वापस जाओ' के नारे लगाये। पुलिस ने प्रदर्शनकारी जनता को बुरी तरह मारा पीटा। लखनऊ में पण्डित गोविन्द वल्लभ पंत और पण्डित जवाहरलाल नेहरू पर भी प्रहार किये गये। पर लाहौर में तो उसने

१. वही, सन् १९२८, जि० १, पृ० ४८८।

२. वही, सन् १९२८, जि० २, पृ० १३८३।

अपनी बर्बरता की हद कर दी। वहाँ प्रदर्शन का नेतृत्व लाला लाजपत राय कर रहे थे। मालवीयजी उसमें शामिल थे। लालाजी के नेतृत्व में जुलूस शान्ति के साथ आगे बढता चला जा रहा था। सरकार ने रोक के लिए एक स्थान पर सड़क पर काँटेदार तार लगवा दिये थे, जिसे तोडकर साइमन कमीशन के सदस्यो तक पहुँचना किसी के लिए भी सभव नही था। फिर भी पुलिस के अफसरो और सारजेण्टो ने वयोवृद्ध नेता लाला लाजपत राय को इस तरह पीटा कि कुछ दिन बाद १७ नवम्बर को उनका निधन हो गया।

१४ फरवरी सन् १९२९ को पण्डित द्वारिका प्रसाद मिश्र ने केन्द्रीय असेम्बली में लाला लाजपत राय के निधन पर एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया। प्रस्ताव मे गवर्नर-जनरल-इन-कौंसिल से संस्तुति की गयी थी कि वे "भारत-मन्त्री और उनके द्वारा ब्रिटिश सरकार को असेम्बली का यह सदेश पहुँचा दें कि यह सदन लाला लाजपत राय के निधन पर २५ नवम्बर सन् १९२८ को किये गये मजदूर दल के प्रश्न पर उप-भारत-मन्त्री अर्ल विंटरर्टन के अपमान-जनक उत्तर पर अपना रोप प्रकट करता है, और विश्वास करता है कि लाला लाजपत राय के निधन में उस चोट से जल्दी हुई, जो उन्हें लाहौर में साइमन कमीशन के आगमन पर बहिष्कार-प्रदर्शन का नेतृत्व करते हुए पुलिस के हाथो पहुँची थी, तथा उसकी राय है कि व्वायड कमेटी द्वारा जो जाँच की गयी वह अवास्तविक थी, और जान बूझकर पुलिस द्वारा किये गये अपराधो को उचित सिद्ध करने तथा छिपाने के लिए नियुक्त की गयी थी"।

पडित द्वारिका प्रसाद मिश्र ने मिस्टर ब्रायड के पक्षपातपूर्ण व्यवहार का विश्लेपण करते हुए कहा कि भारत की 'नयी पीढी का सरकार पर से विश्वास बिल्कुल उठ गया है', और 'लाला लाजपत राय के कत्ल ने ब्रिटिश सरकार के प्रति अनम्य विद्वेप के हमारे भाव को केवल पुष्ट कर दिया है'।

मुंशी ईश्वर शरण ने सशोधन उपस्थित किया कि मूल प्रस्ताव के स्थान पर यह कहा जाय कि "असेम्बली गवर्नर-जनरल-इन-कौसिल से संस्तुति करती है कि वे गृहसदस्य, पण्डित मोतीलाल नेहरू, पण्डित मदन मोहन मालवीय, सर पुरुपोत्तमदास ठाकुरदास, नवाब सर साहबजादा अब्दुल कयूम, मौलवी मुहम्मद याकूब और मुशी ईश्वरशरण की एक कमेटी उन आरोपो की जाँच के लिए नियुक्त करे जो असेम्बली की नेशनलिस्ट पार्टी के नेता लाला लाजपत राय पर प्रहार, तथा उनके द्वारा उनकी मृत्यु के सम्बन्ध में किये जाते है, और कमेटी को आदेश दे कि वह अपनी नियुक्ति के एक मास के अन्दर अपनी रिपोर्ट दे"।

रायजादा हंसराज ने, जो लाहौर के जुलूस में लाला लाजपत राय के साथ थे सब हाल विस्तार से बताते हुए कहा कि पुलिस सिर्फ लाला जी को पीटना चाहती थी, और यदि सब चोटें उनको लगती तो उनकी वहीं मृत्यु हो गयी होती। सर्वश्री जयकर, मोतीलाल नेहरू और जिना ने सरकार की कड़ी आलोचना की।

मालवीयजी ने कहा कि यदि सरकार निष्पक्ष जाँच कराने को तैयार नहीं है तो उसे चुपके से लाला लाजपत राय और लाला हंसराज जैसे सम्मानित व्यक्तियों का बयान स्वीकार करना चाहिए। उन्होंने कहा कि जनता की दृढ़ धारणा है कि पुलिस का आघात पूर्व-विमर्शित था। उन्हें शक है कि जिस अनजान व्यक्ति ने लाला लाजपत राय पर कुछ देर छतरी लगायी, उसने पुलिस को लालाजी को पहचनवाने के लिए ऐसा किया था। मालवीयजी ने कहा कि प्रदर्शन शान्त था, उसे शान्त रखने में लालाजी का महत्त्वपूर्ण हाथ था, शान्ति-पूर्ण प्रदर्शन करने का सब नागरिकों को अधिकार है। उन्होंने बताया कि यदि दफा १४४ नहीं लगायी गयी होती, तो लालाजी और वह प्रदर्शन में सम्मिलित नहीं होते। पुलिस के दुर्व्यवहार से, मालवीयजी ने कहा, लाला लाजपत राय को शारीरिक चोट से भी कहीं अधिक मानसिक वेदना हुई। वे समझ नहीं पाते थे कि उन जैसा व्यक्ति भी इस तरह एक साधारण पुलिस अधिकारी द्वारा सबके सामने पीटा जा सकता है। मालवीयजी ने बताया कि दो डाक्टरों का बयान है कि चोट ने लालाजी की मृत्यु में जल्दी कर दी। इस बयान की उपेक्षा नहीं की जा सकती। उन्होंने कहा कि इस मामले में सरकार के व्यवहार ने मौजूदा शासन-व्यवस्था के विरुद्ध जनता में असन्तोष बढ़ा दिया है। सरकार लाला हंसराज के बयान को स्वीकार करके पश्चाताप प्रकट क्यों नहीं करती?

काफी लम्बी बहस के बाद ४५ वोटों के विरुद्ध ५७ वोटों से मुंशी ईश्वर शरण का संशोधन असेम्बली ने पास कर दिया।

सर्वदलीय कांफरेन्स

१२ फरवरी सन् १९२८ को दिल्ली में सर्वदलीय सम्मेलन आयोजित किया गया। इसमें निश्चय हुआ कि उत्तरदायी शासन के आधार पर हिन्दुस्तान के लिए विधान तैयार किया जाय, लेकिन जिन्हें पूर्ण स्वराज्य पर विश्वास है उन्हें उसके लिए प्रयत्न करते रहने की स्वतन्त्रता होगी। इसके बाद १९ मई को बम्बई में सर्वदलीय कांफरेन्स की बैठक हुई। यहाँ संविधान की रूपरेखा तैयार करने को पंडित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक कमेटी गठित की

गयी। मोतीलालजी के अतिरिक्त सर्वश्री तेजबहादुर सप्रू, अली इमाम, एम० आर० जयकर, एम० एस० अणे, शुएब कुरेशी, जी० आर० प्रधान, तथा सरदार मगल सिह कमेटी के सदस्य नियुक्त हुए। पडित जवाहर लाल नेहरू ने कमेटी के मन्त्री का काम किया।

कमेटी के सामने साम्प्रदायिक प्रश्न ही सबसे जटिल प्रश्न था। जबकि सिक्ख प्रतिनिधि सरदार मंगल सिह किसी भी सम्प्रदाय के लिए स्थानो के संरक्षण के पक्ष मे नही थे, कतिपय हिन्दू सदस्य अल्प-संख्यको के लिए स्थान सुरक्षित किये जाने के पक्ष मे थे। मुसलमान सदस्य चाहते थे कि अल्पसंख्यक और बहुसख्यक दोनो हालतो मे मुसलमानो के लिए स्थान सुरक्षित हो। अन्ततोगत्वा इस प्रश्न के कुछ अश को पूरी काफरेन्स के निर्णय पर छोड़ते हुए कमेटी की रिपोर्ट तैयार की गयी। इसका कुछ अश जवाहर लालजी की सहायता से मोतीलालजी ने, और कुछ अश सर तेजबहादुर सप्रू ने लिखा।

लखनऊ अधिवेशन

अगस्त के अन्तिम सप्ताह में लखनऊ में काफरेन्स का अधिवेशन हुआ। उसमे कमेटी की रिपोर्ट पर विचार हुआ, तथा सिध और पंजाब के प्रतिनिधियो ने आपस में बातचीत करके सर्वसम्मति से कुछ निर्णय किये, जिन्हें काफरेंस ने स्वीकार किया। सिध के प्रतिनिधियो ने तय किया कि स्वराज्य मिलने पर सिध एक अलग प्रान्त होगा। पजाब के मुसलमान प्रतिनिधियो ने निश्चय किया कि वे सयुक्त निर्वाचन के साथ नेहरू रिपोर्ट की प्रतिनिधि सम्बन्धी सस्तुति स्वीकार करते है, और यदि निर्वाचन-पद्धति वयस्क मताधिकार पर आश्रित हो, तो किसी सम्प्रदाय के लिए कोई स्थान सुरक्षित न किया जाय, पर दस वर्ष के बाद स्थिति पर फिर से विचार किया जा सकता है। मास्टर तारा सिंह, और ज्ञानी शेर सिंह ने आनुपातिक प्रतिनिधित्व का समर्थन किया।

मालवीयजी ने कांफरेन्स में प्रस्ताव किया कि उन राजनीतिक पार्टियो की स्वतन्त्रता पर कोई रोक लगाये बिना जो पूर्ण स्वतन्त्रता पर विश्वास करते है, यह काफरेन्स निश्चित करती है कि भारत में उत्तरदायी शासन प्रतिष्ठित किया जाय, और उसका स्तर स्वशासित डोमिनियन से किसी प्रकार कम न हो। कुछ बहस के बाद बहुमत से प्रस्ताव स्वीकार हुआ।

मालवीयजी ने यह भी प्रस्ताव किया कि कमेटी की संस्तुतिओं मे सम्पत्ति के मौलिक अधिकार को नागरिको के मौलिक अधिकारो में शामिल किया जाय।

इस प्रस्ताव का आशय यह था कि भारतीय कामनवेल्थ की स्थापना के समय जिन लोगों के अधीन जो जायज (ला-फुल) सम्पत्ति होगी, उस पर उनका पूरा अधिकार माना जायगा, और उसके उपयोग की उन्हें पूरी स्वतन्त्रता होगी। प्रस्ताव स्वीकार हुआ।

कमेटी ने पण्डित मदन मोहन मालवीय, लाला लाजपत राय, डा० एनी बेसेंट, डाक्टर अन्सारी, मौलाना अबुल कलाम आजाद, श्री सी० विजयराघवाचार्य तथा मिस्टर अब्दुल लतीफ कसूरी को भी कमेटी में शामिल कर लिया।

नेहरू कमेटी की अन्तिम रिपोर्ट पर लाला लाजपतराय के अतिरिक्त, जो साइमन कमीशन के बहिष्कार मे आयोजित जुलूस मे चोट खाने के कारण बीमार हो गये थे, बाकी सबके हस्ताक्षर थे। पर लाला लाजपत राय ने २७ अक्तूबर सन् १९२९ को ही अपने एक भाषण में कहा था—"नेहरू रिपोर्ट के सिद्धान्त ही वे सिद्धान्त हैं जिन पर इस समय हिन्दुस्तान के लिए लोकतान्त्रिक संविधान तैयार किया जाना सभव है। वह अल्पसंख्यको को काफी गारटी (सुरक्षा) प्रदान करता है, और वह उनके लिए राष्ट्र के राजनीतिक और आर्थिक कार्यों मे ठोस और प्रभावकारी भाव सुनिश्चित करता है।"[1] उन्होने कहा कि यह रिपोर्ट जैसी है मैं जी-जान से इसका समर्थन करता हूँ, और "मै सारे हिन्दुस्तान के हिन्दुओ को सलाह दूँगा कि वे क्रीडकौशल मिश्रित विशुद्ध देशभक्ति की भावना से इसे स्वीकार करें और इसका समर्थन करे।"[2]

काग्रेस ने नेहरू कमेटी द्वारा प्रस्तावित संविधान को "भारत की राजनीतिक और साम्प्रदायिक समस्याओ की ओर एक बडा योगदान" मानते हुए उसका "स्वागत" किया, पर यह भी स्पष्ट कर दिया कि यदि ३१ दिसबर सन् १९२९ तक या उससे पहले इस संविधान को सरकार ने मजूर नही किया, तो काग्रेस उसे मानते रहने को तैयार नही होगी, और उसके बाद सरकार को कर या अन्य आर्थिक सहायता न दी जाय इस बात की जनता को सलाह देते हुए अहिंसात्मक असहयोग फिर चालू कर दिया जायगा।

सर्वदलीय कांफरेन्स का कलकत्ता अधिवेशन

दिसम्बर में सर्वदलीय काफरेन्स की बैठक में कतिपय उपस्थित सज्जनो ने मांग की कि मालवीयजी द्वारा प्रस्तावित सम्पत्ति सम्बन्धी धारा प्रस्तावित

---

१. जोशी : लाला लाजपत राय स्पीचेज एंड राइटिंग्स, जि० २, पृ० ४४४।

२. वही, पृ० ४४९।

संवैधानिक योजना में से निकाल दी जाय। मालवीयजी ने इस सुझाव का विरोध करते हुए कहा कि यदि नयी व्यवस्था समझौते तथा रजामन्दी से बनाना है, तो जमीदारो की भावनाओ का भी ध्यान रखना ही होगा, तथा जमीदारो और खेतिहरो के बीच में न्यायसगत और उचित सम्बन्धों को प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न करना ही होगा। उन्होने यह भी कहा कि सम्पत्ति संबधी प्रस्तावित धारा एक सुप्रसिद्ध परम्परा है जो प्रत्येक लोकतान्त्रिक सविधान में पायी जाती है। जब्ती से सम्पत्ति की रक्षा ही इसका मुख्य उद्देश्य है। उन्होने यह भी कहा कि यदि न्याय की प्रतिष्ठा तथा देश के हित में जमीदारी व्यवस्था में परिवर्तन कभी आवश्यक समझा जाय, तो यह धारा उसमे बाधक नही होगी। उन्होने कहा कि भारतीय पार्लियामेट भूमिस्वामियो को समुचित मुआवजा दे कर कानून द्वारा सम्पूर्ण भूमि प्राप्त कर सकती है। उन्होने इस विचार का खण्डन करते हुए कि मौजूदा सरकार के अधीन स्वामित्त्व के जो कुछ अधिकार प्राप्त हुए है वे सब दोषपूर्ण है, कहा कि निजी सम्पत्ति की परम्परा बहुत पुरानी है। सशोधन नामजूर हो गया।

इस कान्फरेन्स में कतिपय उग्रवादी सदस्यों ने औपनिवेशिक स्वराज्य अर्थात् डोमिनियन स्टेटस के सुझाव का विरोध करते हुए पूर्ण स्वराज्य का समर्थन किया, और इस सम्बन्ध मे कई प्रस्ताव प्रस्तुत किये। कुछ वाद-विवाद के बाद सब सशोधन नामंजूर हो गये, और औपनिवेशिक स्वराज्य की व्यवस्था स्वीकार हो गयी। मालवीयजी ने इस विवाद मे कोई भाग नही लिया। पडित मोतीलाल नेहरू ने काग्रेस की स्थिति का स्पष्टीकरण करते हुए कहा कि चूँकि नेहरू कमेटी द्वारा तैयार की हुई व्यवस्था देश के प्रमुख दलो मे सबसे अधिक सहमति की द्योतक है इसलिए काग्रेस उसे स्वीकार करती है, और निश्चय करती है कि वह उसे अपना लेगी, यदि ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ३१ दिसम्बर सन् १९२९ तक उसे पूरी तौर पर स्वीकार कर ले।

सर अली इमाम, डाक्टर अन्सारी, मौलाना अबुल कलाम आजाद, राजा साहब महमूदाबाद आदि मुसलमान नेता कमेटी द्वारा प्रस्तावित व्यवस्था स्वीकार करने को तैयार थे। करीब-करीब सभी ईसाई और पारसी भी इसे ठीक समझते थे। काग्रेस, लिबरल दल, और नेशनलिस्ट पार्टी से सबंधित सभी हिन्दू नेता भी इसे स्वीकार करते थे। हिन्दू सभा के नेताओ का भी कोई विशेष विरोध नही था, यद्यपि सिन्ध के सम्बन्ध में उनमें मतभेद अवश्य था, और बंगाल के कतिपय हिन्दू नेता अपने प्रान्त में अपने हितो की रक्षा के निमित्त जनसंख्या के अनुपात से हिन्दुओ के लिए विधान सभा में स्थान सुरक्षित रखना चाहते थे। पर सेंट्रल

खिलाफत कमेटी और मुस्लिम लीग नेहरू रिपोर्ट की संस्तुतिओ से इतनी असंतुष्ट थी कि उनके प्रतिनिधियो ने सर्वदलीय कांफरेन्स में भाग लेने से भी इनकार कर दिया। सेंट्रल सिक्ख लीग भी संतुष्ट नही थी।

इस परिस्थिति में कांफरेन्स ने डाक्टर अन्सारी की अध्यक्षता में एक कमेटी साम्प्रदायिक प्रश्नो पर विचार करने के लिए बनायी। मालवीयजी भी इस कमेटी के सदस्य बनाये गये। कमेटी ने मुस्लिम लीग तथा केन्द्रीय खिलाफत कमेटी के प्रतिनिधियो से बातचीत की, सेन्ट्रल सिक्ख लीग के सदस्यो से भी मुलाकात की। कमेटी ने कुछ बातें स्वीकार की, कुछ सुझाव रद्द कर दिये, और कुछ माँगो पर कोई सर्वसम्मत राय नही व्यक्त की। उसने यह स्वीकार किया कि संविधान तब तक सशोधित नही होगा या बदला जायेगा जब तक प्रस्तावित सशोधन या तब्दीली भारतीय पार्लियामेण्ट के दोनो सदनो से अलग अलग उपस्थित सदस्यों के अस्सी प्रतिशत बहुमत से स्वीकार न हो, और जब तक दोनों सदनो की सयुक्त बैठक में उसे अस्सी प्रतिशत उपस्थित सदस्य स्वीकार न करें। कमेटी ने संस्तुति की कि अवशिष्ट अधिकार केन्द्रीय विधान मंडल में ही निहित रहें। कमेटी ने हिन्दू सभा बगाल की यह बात मानने से इनकार कर दिया कि बगाल में हिन्दुओ के लिए उनकी जनसख्या के अनुपात से स्थान सुरक्षित किये जायें। कमेटी इस बात पर सहमत नही हो सकी कि मुसलमानों के लिए केन्द्रीय विधान सभा मे एक तिहाई स्थान सुरक्षित किये जायें, और सिक्खो के लिए पंजाब विधान सभा में तीस प्रतिशत स्थान सुरक्षित रहे।

डाक्टर अन्सारी ने कमेटी की रिपोर्ट कांफरेन्स में पेश की। जिना साहब ने इस अवसर पर वहाँ उपस्थित हो रिपोर्ट की आलोचना की। उन्होने हिन्दू-मुस्लिम समझौते को देश की उन्नति के लिए नितान्त आवश्यक बताते हुए मुसलमानो के हितो की रक्षा के लिए कई संशोधन पेश किये। उन्होंने प्रस्ताव किया कि केन्द्रीय विधान सभा में संयुक्त निर्वाचन द्वारा एक तिहाई निर्वाचित स्थान मुसलमानो को दिये जायें। उन्होने कांफरेन्स से यह भी अनुरोध किया कि यदि वयस्क मताधिकार लागू न हो, तो पंजाब और बंगाल के मुसलमानो के लिए जनसंख्या के अनुपात से विधान सभाओ में स्थान सुरक्षित रखने की संस्तुति की जाय, और इस प्रश्न पर दस वर्ष के बाद फिर विचार किया जाय। उनका एक प्रस्ताव यह था कि अवशिष्ट अधिकार प्रान्तो को सौंपे जायें। उन्होंने यह भी कहा कि सिंध का पृथक्करण और उत्तर पश्चिम प्रान्त में

राजनीतिक सुधारो की व्यवस्था नेहरू रिपोर्ट के लागू होने पर निर्भर नही की जा सकती। जिना साहब ने कहा कि मुसलमानो से यह कैसे आशा की जा सकती है कि यदि सरकार नेहरू रिपोर्ट को स्वीकार किये वगैर सिन्ध को वम्बई प्रदेश से अलग करने के लिए, और उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त में राजनीतिक सुधारो की व्यवस्था को चालू करने को तैयार हो जाय, तो मुसलमान उन्हे नामजूर कर दें।

सर तेज बहादुर सप्रू ने अवशिष्ट अधिकारो को केन्द्र मे वनाये रखने पर आग्रह करते हुए जिना साहव की अन्य वातो पर गभीरता से विचार करने का काफरेन्स से अनुरोध किया। उन्होने नेहरू रिपोर्ट की संस्तुतियो के औचित्य पर प्रकाश डालते हुए कहा कि यदि जिना साहव जिद करें तो केन्द्रीय असेम्वली में मुसलमानो को तैतीस प्रतिशत स्थान दे दिये जायें। अखिल भारतीय ईसाई काफरेन्स के प्रतिनिधि रलिया राम तथा रेवेरेन्ड आर० वनर्जी ने साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का विरोध करते हुए कहा कि 'यह राष्ट्रीय एकता को उत्पन्न करने में ही विफल नही हुआ है, राष्ट्र की जीवन-शक्ति को भी नष्ट कर रहा है'। श्री एम० आर० जयकर ने भी जिना साहव के सशोधनो और सुझावो का विरोध किया। काफरेन्स ने उन सवको रद्द कर दिया। मालवीयजी ने जिना साहव के सशोधनो पर अपनी कोई राय व्यक्त नही की।

जव काफरेन्स ने सेंट्रल सिक्ख लीग के इस प्रस्ताव को स्वीकार करने से इनकार कर दिया कि सिक्खो को पजाव की विधान सभा मे तीस प्रतिशत स्थान दिये जायें, तव उसके सव प्रतिनिधि काफरेन्स छोडकर चले गये। इस पर ईसाइयो के प्रतिनिधि रलिया राम ने प्रस्ताव किया कि पंजाव, उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त और वलूचिस्तान में सिक्ख अल्पसंख्यको को प्रान्तीय और केन्द्रीय विधान सभाओ में प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध मे वही अधिकार प्राप्त हो जो किसी दूसरे अल्पसंख्यक समुदाय को दिये जाने की व्यवस्था की जाय। मालवीयजी ने सिक्खो की माग को न्यायसंगत वताते हुए डाक्टर आलम के इस सुझाव का समर्थन किया कि पंजाव के हिन्दू, मुसलमान और सिक्ख स्वयं एक काफरेन्स मे इस वात पर निर्णय करें। उन्होंने सरदार मगल सिंह की इस वात का समर्थन किया कि प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर साम्प्रदायिकता के वजाय राष्ट्रीयता के दृष्टि-कोण से विचार किया जाय। उन्हें इस वात की खुशी थी कि पजाव के हिन्दुओ ने अपने लिए स्थानो को सुरक्षित करने का प्रश्न काफरेन्स के सामने उपस्थित नही किया।

काफरेन्स की इस बैठक में सरदार मेहताब सिंह ने यह प्रस्ताव किया कि साम्प्रदायिकता बिल्कुल खतम कर दी जाय, और प्रस्तावित योजना को आवश्यक संशोधन के लिए नेहरू कमेटी के पास लौटा दिया जाय। पर सी० विजय-राघवाचार्य की सलाह से अध्यक्ष ने, इस अवस्था में जबकि मुसलमानो के लिए स्थानो को सुरक्षित रखने की बात स्वीकार हो चुकी है, इस प्रस्ताव को नियम-विरुद्ध बता कर उसे प्रस्तुत करने की आज्ञा नही दी। फिर भी डाक्टर एनी बेसेन्ट ने श्री रलिया राम के सिक्ख सम्बन्धी प्रस्ताव पर बोलते हुए कहा कि साम्प्रदायिकता को बिल्कुल मिटा दिया जाय। उन्होने बहुत दुःख के साथ कहा कि निर्धनता और अकाल से संघर्ष करने के बजाय साम्प्रदायिकता से संघर्ष करने मे और एक संविधान बनाने मे इतना समय बर्बाद करना पड रहा है।

इस तरह सर्वदलीय काफरेन्स सविधान की रूप-रेखा तैयार करने में सफल रही, पर साम्प्रदायिक समस्या को सुलझाने मे विफल रही। करीब करीब सभी हिन्दू नेता उसे स्वीकार करने को तैयार थे। कांग्रेस से सम्बन्धित नेशनलिस्ट मुसलमान भी उसका पूरी तौर पर समर्थन करते थे। पर हिजहाइनेस सर आगा खा, सर मुहम्मद शफी, मौलाना मुहम्मद अली आदि बहुत से मुस्लिम नेता उसे स्वीकार नही करते थे। उन्होंने दिल्ली मे आयोजित मुस्लिम काफरेन्स मे चौदह सूनी कार्यक्रम निश्चित किया। जिना साहब क्षुब्ध थे। पर उन्होने भी अन्त में इन चौदह सूत्रो को स्वीकार कर लिया और ये सब जिना साहब के नाम से प्रसिद्ध होने लगे। फिर भी जब मार्च सन् १९२९ में पडित मोतीलाल नेहरु ने केन्द्रीय असेम्बली मे प्रस्ताव किया कि एक्जीक्यूटिव कौसिल के लिए जो वित्तीय व्यवस्था बजट मे की गयी है, वह निकाल दी जाय, तब मालवीयजी और जयकर साहब के साथ-साथ जिना साहब ने भी इसका समर्थन किया। सबने डोमीनियन स्टेटस को प्राप्ति राष्ट्र का लक्ष्य बताते हुए उस ढंग का उत्तरदायी शासन शीघ्र ही स्थापित किये जाने की माग की। जो मुसलमान सदस्य मोतीलालजी और जिना साहब से पूरी तौर पर सहमत नही थे, उनमे से अधिकाश तटस्थ रहे, और प्रस्ताव ५२ रायो के विरुद्ध ६२ रायो से स्वीकार हो गया।

२०. नमक सत्याग्रह और गोलमेज कांफरेन्स

वाइसराय को पत्र

जून सन् १९२९ में भारत-मन्त्री के निमन्त्रण पर वाइसराय लार्ड अर्विन ने प्रधान-मन्त्री, भारत-मन्त्री आदि से भारत की स्थिति पर विचार-विमर्श करने के लिए लन्दन जाने का निश्चय किया।

उस समय मालवीयजी ने उन्हे देश की राजनीतिक स्थिति पर एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होने वाइसराय को बताया कि जनता पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए उतावली हैं, और यद्यपि अधिकाश विवेकशील अब भी औपनिवेशिक स्वराज्य के पक्ष में हैं, जनमत का झुकाव पूर्ण स्वराज्य की ओर इतनी तेजी से बढ रहा हैं कि किसी सभा में कुछ थोडे से सम्मानित व्यक्ति ही किसी विरोधी प्रदर्शन की रुकावट के वगैर औपनिवेशिक स्वराज्य अर्थात् डोमिनियन स्टेटस की चर्चा कर सकते हैं। उन्होने यह भी लिखा "जनता में यह भावना जोरो से फैल रही हैं कि ब्रिटेन उसकी स्थापना के लिए राजी न होगा, और सघर्प करके ही स्वतंत्रता जीतनी होगी।" उन्होने लिखा . "भावनाओ की उत्तेजना तथा औपनिवेशिक स्वराज्य के समर्थको की स्थिति की कमजोरी का कारण ब्रिटिश सरकार द्वारा इस प्रकार की घोषणा का अभाव है कि संविधान के आगामी सशोधन द्वारा 'डोमिनियन स्टेटस' की स्थापना सम्भव हैं।" उन्होने आशा व्यक्त की कि मजदूर सरकार समस्या पर अच्छी तौर से विचार करके कोई ऐसा काम करेगी जिससे जनता को विश्वास हो कि औपनिवेशिक स्वराज्य की माग पर सजीदगी से विचार किया जा रहा है। अन्त मे उन्होने आशा की कि लन्दन से वाइसराय महोदय कोई ऐसा समझौता नही लायेंगे, जो औपनिवेशिक सरकार की स्थापना से कम हो, और ब्रिटिश इंडिया तथा भारतीय रियासतो के मान्य प्रतिनिधियो की काफरेन्स आमन्त्रित की जायेगी।[1]

वाइसराय ने मालवीयजी को तो उनके पत्र का कोई उत्तर नही दिया, पर सर तेज बहादुर सप्रू और श्री विट्ठल भाई पटेल को जरूर लिखा कि समस्या को सुलझाने का भरसक प्रयत्न किया जायगा, और आशा व्यक्त की कि वे दोनो

---

१. प्रोसीडिंग्ज राउण्ड टेबिल काफरेन्स, सेकिण्ड सेशन, पृ० १२२०-१२२१।

भी इस कार्य में उनकी सहायता करेंगे। उन्होने पटेल साहब को लिखा कि वे काग्रेस के नेताओ को आधे मार्ग पर मिलाने का प्रयत्न करेंगे।

वाइसराय की घोषणा

लन्दन में ब्रिटिश मंत्रिमण्डल से बात-चीत करने के बाद ३१ अक्तूबर सन् १९२९ को वाइसराय ने ब्रिटिश सरकार के मन्तव्य की घोषणा की। उन्होने घोषित किया कि आगामी शरद्ऋतु में लन्दन में एक गोलमेज काफरेन्स निमंत्रित की जायेगी, जिसमे ब्रिटिश भारत, भारतीय रियासतो और ब्रिटेन की समस्त पार्टियो के प्रतिनिधि मिलकर नये भारतीय संविधान की रूपरेखा तैयार करेंगे। उन्होंने यह भी कहा कि उन्हें ब्रिटिश मंत्रिमण्डल ने यह स्पष्ट रूप से कहने को अधिकार दिया है कि उसकी राय मे सन् १९१७ की घोषणा में यह अन्तर्निहित है कि भारत की संवैधानिक उन्नति का स्वाभाविक परिणाम, जैसा वहा सोचा गया है, डोमिनियन स्टेटस की प्राप्ति है।

वाइसराय के वक्तव्य की संभावना पर काग्रेस के अध्यक्ष मोतीलाल नेहरू ने काग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठक बुलायी। दूसरे बहुत से नेता भी जमा हो गये। १ नवम्बर सन् १९२९ को दिल्ली में नेताओ की काफरेन्स हुई।

काफरेन्स में उपस्थित नेताओ ने वाइसराय की घोपणा का स्वागत किया और आशा व्यक्त की कि गोलमेज काफरेन्स डोमीनियन स्टेटस की स्थापना को तिथि निश्चित करने के वजाय भारत के लिए डोमीनियन सविधान तैयार करने के लिए बैठेगी। उपस्थित नेताओ ने अपने वक्तव्य मे यह भी लिखा कि शान्ति-पूर्ण वातावरण को स्थापित करने के लिए मेल मिलाप की नीति अपनायी जाय, शासन में नयी उदार भावना संचारित की जाय, शासन परिषदो और विधान सभाओ के सम्बन्धो को प्रस्तावित लक्ष्य के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया जाय, संवैधानिक तरीको और व्यवहारो को अधिक मान्यता प्रदान की जाय ताकि जनता अनुभव कर सके कि नया युग प्रारम्भ हो गया है।

ब्रिटेन के राजनीतिक क्षेत्रो मे वाइसराय की घोपणा का कोई विशेप स्वागत नही हुआ। लार्ड रीडिंग, लार्ड वर्कनहेड आदि के आक्षेपो का उत्तर देते हुए भारतमन्त्री वेजवुड वेन ने कहा कि वाइसराय की घोपणा तो सन् १९१७ की घोपणा की व्याख्या है। उस पर लायड जार्ज ने भारत-मन्त्री का उपहास उड़ाया।

पार्लियामेंट की बहस ने घोषणा का प्रभाव कम कर दिया। फिर भी भारतीय नेताओ ने वाइसराय की घोषणा के आधार पर सहयोग की प्रक्रिया को चालू रखने का प्रयास जारी रखा। सप्रू साहब ने इस सम्बन्ध में वाइसराय और पडित मोतीलाल नेहरू से बातचीत की, और उनके अनुरोध पर मोतीलाल जी के निमत्रण पर १६ नवम्बर को प्रयाग में दूसरी काफरेन्स सम्पन्न हुई। इसने वाइसराय की घोषणा पर पार्लियामेंट की बहस को निराशाजनक बताते हुए दिल्ली काफरेन्स की घोषणा का समर्थन किया, और आशा व्यक्त की कि शीघ्र ही स्पष्ट उत्तर दिया जायगा।

इसके बाद पटेल साहब और सर तेज बहादुर सप्रू ने वाइसराय से फिर बातचीत की। २३ दिसम्बर सन् १९२९ को महात्मा गाधी, पडित मोतीलाल नेहरू, प्रेजीडेंट पटेल, सर तेजबहादुर सप्रू और मिस्टर जिना वाइसराय से मिले। इस भेंट में काग्रेस की ओर से यह स्पष्ट कर दिया गया कि जब तक सरकार इस बात का आश्वासन नही देती कि डोमीनियन सविधान की तैयारी ही काफरेन्स का उद्देश्य होगा और ब्रिटिश सरकार उसका समर्थन करेगी, तब तक काग्रेस के लिए उसमें शामिल होना सभव नही होगा। वाइसराय ने इसके उत्तर में कहा कि प्रत्येक प्रतिनिधि को अपना सुझाव काफरेन्स मे प्रस्तुत करने की स्वतत्रता होगी, और काफरेन्स में मतैक्य की प्रत्येक मात्रा ब्रिटेन के विचारो पर अपना प्रभाव डालेगी ही। उन्होने यह भी कहा कि काफरेन्स सहमति की अधिक से अधिक मात्रा जानने के लिए बुलायी गयी है, और उनके या सम्राट् की सरकार के लिए काफरेन्स के काम के सम्बन्ध मे कोई पूर्व-धारणा निश्चित करना या पार्लियामेंट की स्वतंत्रता सीमित करना सभव नही है। इस अवसर पर सप्रू साहब और जिना साहब ने गाधीजी और मोतीलालजी को बहुत समझाने का प्रयत्न किया, पर उनका कोई प्रभाव नही पड पाया। मोतीलालजी ने साफ शब्दो मे कह दिया कि कोई हिन्दुस्तानी डोमीनियन स्टेटस से कम लेने को तैयार नही होगा, और वाइसराय का गोलमोल आश्वासन स्वीकार नही किया जा सकता।

महात्मा गाधी और पण्डित मोती लाल नेहरू वाइसराय के उत्तर से संतुष्ट नही थे, पर श्री तेज बहादुर सप्रू और जिना साहब उसे पर्याप्त समझ कर काफरेन्स मे भाग लेने को राजी हो गये। लिबरल फेडरेशन ने वाइसराय की ३१ अक्तूबर की घोषणा का स्वागत किया, चूँकि उसने आधिकारिक रूप से इस राय की पुष्टि की कि भारत के लिए डोमीनियन स्टेटस ही सन् १९१७ की

घोषणा में निर्दिष्ट था, चूँकि वह निश्चित रूप से स्वीकार करती है कि ब्रिटिश भारत और भारतीय रियासतें मिल कर सयुक्त भारत बनायें, और चूंकि वह भारत के भावी सविधान के वनाने में ब्रिटिश मन्त्रिमंडल के साथ समता के स्तर पर परामर्श करने के अधिकार के भारतीय दावे को स्वीकार करती है। मालवीयजी इस कांफरेन्स में भाग लेने को राजी नही हुए, पर सरकार के निमंत्रण पर हिन्दू सभा के नेता डाक्टर मुंजे, राजा नरेन्द्र नाथ उसमें भाग लेने को राजी हो गये। श्री एम० आर० जयकर भी तैयार हो गये।

कांग्रेस का निर्णय

दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह मे पंडित जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ। कांग्रेस ने निश्चय किया कि गोलमेज सम्मेलन में भाग लेना व्यर्थ है, विधान सभाओ का वहिष्कार किया जाय, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भावी चुनावो में कोई भाग नही लिया जाय। यह भी निर्णय किया गया कि विधान की धारा १ मे वर्णित 'स्वराज्य' शब्द का अर्थ पूर्ण स्वतत्रता होगा। उसने राष्ट्र से रचनात्मक कार्यक्रम उत्साह से चलाने का अनुरोध किया, और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिकार दिया कि वह जब चाहे तव सीमित क्षेत्रो में या व्यापक रूप से, जिन प्रतिवन्धो के साथ ठीक समझे, सविनय अवज्ञा और कर-बन्दी शुरू करे।

पूर्ण स्वराज्य दिवस

२६ जनवरी को कांग्रेस के आदेश पर सारे देश में 'पूर्ण स्वराज्य दिवस' मनाया गया। जनता ने ब्रिटिश शासन के दुराचारो को काफी विस्तार के साथ बताते हुए प्रतिज्ञा की कि अहिंसात्मक ढग से स्वराज्य प्राप्त करने के लिए वे "ब्रिटिश सरकार से सब स्वैच्छिक सहयोग को खत्म करने की, तथा सविनय अवज्ञा की और करवन्दी की तैयारी करेंगे"। उन्होने "सत्य संकल्प" किया कि वे कांग्रेस के उन आदेशो का पालन करेंगे, जिन्हे वह समय-समय पर पूर्ण स्वराज्य की स्थापना के लिए जारी करे।

ग्यारह सूत्र

३० जनवरी सन् १९३० को गाधीजी ने अपने अंग्रेजी साप्ताहिक 'यंग-इंडिया' मे नमक-कर का अन्त, लगान में पचास प्रतिशत की कमी, विदेशी कपडे पर संरक्षक आयात, सोलह पेंस रुपये की दर, फौजी खर्चे मे तथा सरकारी अफसरो के वेतन में कमी, पूरी तौर पर नशाबन्दी, राजनीतिक कैदियो की रिहाई,

नागरिक अधिकारो की रक्षा, खुफिया पुलिस की बर्खास्तगी, हथियार रखने की छूट, तथा तटवर्ती नौका परिवहन का भारतीय पोतो के लिए सरक्षण— ये ग्यारह मागें पेश करते हुए लिखा कि यदि सरकार इन्हें स्वीकार करने को तैयार हो तो सविनय अवज्ञा शुरू नही की जायगी।

यद्यपि बहुत से काग्रेसी नेता गाधीजी के इस बयान को पसन्द नही करते थे, फिर भी फरवरी मे अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी ने गाधीजी को संघर्ष का नेता स्वीकार करते हुए उन्हें उसकी गतिविधि निश्चित करने का अधिकार दिया। इस प्रस्ताव मे काग्रेस ने आशा व्यक्त की कि आन्दोलन के प्रारम्भ हो जाने पर काग्रेसजन सविनय प्रतिरोध की हर सभव सहायता करेंगे, तथा हर स्थिति में अहिंसा का पालन करेंगे। वर्किंग कमेटी ने यह भी आशा व्यक्त की कि जब यह अभियान जनान्दोलन का रूप धारण कर लेगा, तब वकील और विद्यार्थी सरकार से अपना सहयोग विच्छेद कर उसमे सक्रिय भाग लेगे।

वाइसराय को पत्र

२ मार्च को गाधीजी ने वाइसराय को एक लम्बा पत्र लिखा, जिसमें उन्होने काफी विस्तार से यह बताते हुए कि ब्रिटिश सरकार की नीति-रीति के कारण हिन्दुस्तान की गरीब जनता का किस तरह शोषण हो रहा है, और उसकी दशा किस तरह दयनीय होती जा रही है, सविनय अवज्ञा प्रारम्भ करने का अपना निर्णय व्यक्त किया। उन्होने लिखा कि सविनय अवज्ञा आन्दोलन पूर्णरूप से अहिंसात्मक होगा और वह नमक कानून को तोडने से प्रारम्भ किया जायगा, क्योकि उनकी राय में गरीब आदमी की दृष्टिकोण से यह कर सबसे अधिक अन्यायपूर्ण है। उन्होने यह भी लिखा कि जिन 'बुराइयो' की पत्र में चर्चा की गयी है, उन्हे दूर करने को यदि वाइसराय तैयार हो, तो आन्दोलन स्थगित किया जा सकता है। अन्यथा १२ मार्च से प्रतिरोध का कार्य प्रारम्भ हो जायगा।[1]

डांडी यात्रा

पत्र का सन्तोषजनक उत्तर न मिलने पर १२ मार्च को गाधीजी ने साबरमती आश्रम के ७९ साथियो के साथ नमक कानून तोडने के लिए डाडी

---

१ पट्टाभि सीतारमैया : हिस्ट्री आफ दि इडियन नेशनल काग्रेस, खण्ड १, पृ० ३७२-३७६।

की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में जनता ने इनका भव्य स्वागत किया। वे स्वयं इकट्ठी भीड़ को खद्दर, नशाबन्दी तथा अस्पृश्यता-निवारण का उपदेश देते हुए अहिंसात्मक संघर्ष मे भाग लेने की सलाह देते जाते थे। उनका कहना था कि ब्रिटिश शासन से भारत का नैतिक, भौतिक, सास्कृतिक और आध्यात्मिक अधःपतन हुआ है और इसलिए वह "इस शासन को अभिशाप" समझते है और इस "शासन-व्यवस्था को नष्ट" करना चाहते है। वे यह भी कहते जाते थे कि "हमारा युद्ध अहिंसात्मक है। हम किसी को मार डालना नही चाहते, पर इस सरकार के अभिशाप को मिटा देना हम अपना कर्तव्य" समझते है[1]। गाधीजी ने ६ अप्रैल को डाडी में नमक कानून को तोडकर सत्याग्रह शुरू कर दिया। यद्यपि सरदार वल्लभ भाई पटेल, पंडित जवाहर लाल नेहरू और श्री जे० एम० सेनगुप्त बहुत पहले गिरफ्तार कर लिये गये थे, पर सरकार ने गांधीजी को फौरन गिरफ्तार नही किया। वे लगभग चार सप्ताह अपने ढंग से अपना काम करते रहे। पर जब गाधीजी ने धरसना में सत्याग्रह करने का निर्णय किया, तब मई के पहले सप्ताह में वह गिरफ्तार करके यरवदा जेल भेज दिये गये।

पेशावर कांड

२३ अप्रैल सन् १९३० को पेशावर में भारी जुलूस निकाला गया। दूसरे दिन खान अब्दुल गफ्फार खा गिरफ्तार कर लिये गये। इस पर जनता ने पेशावर में फिर जुलूस निकाला। उस जुलूस पर फौज ने गोली चलायी। लगभग २२५ आदमी आहत हुए। यह समाचार पा कर कि इस गोलीकाड में बहुत से आदमी मारे गये, मालवीयजी मई सन् १९३० मे पेशावर चल दिये। रास्ते में कई स्थानो पर पंजाब की जनता ने उनका भव्य स्वागत किया। रास्ते में ही उन्हें आज्ञा मिली कि वे पेशावर मे प्रवेश नही कर सकते, पर वे आगे बढते चले गये। इस पर सरकार ने उन्हें पेशावर से कुछ दूर एक स्टेशन पर रोक कर दूसरी गाडी से वापस कर दिया। इस अवसर पर मोती लालजी ने कांग्रेस के स्थानापन्न अध्यक्ष की हैसियत से श्री विट्ठल भाई पटेल की अध्यक्षता में एक जाच कमेटी नियुक्त की। सरकार ने पटेल साहब को भी पेशावर नही जाने दिया। पेशावर की स्थिति बहुत समय तक सरकार को परेशान करती रही। वे खुदाई खितमदगारो का साहस कुचल न सके।

---

२ वही, पृ० ३८४।

कांग्रेस वर्किंग कमेटी

मई सन् १९३० में प्रयाग में कांग्रेस की वर्किंग कमेटी की बैठक हुई। उसने गांधीजी के नेतृत्व तथा सविनय अवज्ञा के प्रति अपनी पूर्ण निष्ठा प्रकट करते हुए सब वर्ग के लोगो से अनुरोध किया कि वे स्वतंत्रता-संघर्ष में भाग लें, और अपनी शक्ति भर कुर्बानिया करें। उसने नमक सत्याग्रह को जारी रखते हुए उन प्रान्तो में जहाँ रैयतवारी भूमि-व्यवस्था चालू है, लगान बन्दी की, तथा अन्य प्रान्तो मे चौकीदारी टैक्स न देने की सविनय अवज्ञा शुरू करने की अनुमति दी। उसने मध्य प्रदेश तथा बम्बई में वन सम्बन्धी कानूनो को तोडने के प्रयत्नो का अनुमोदन करते हुए निश्चय किया कि दूसरे प्रान्तों में प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की स्वीकृति से इस प्रकार के दूसरे कानूनो को तोडा जा सकता है। उसने विदेशी वस्त्रो के पूर्ण बहिष्कार की आवश्यकता की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए विदेशी कपडो की दुकानो की पिकेटिंग करने का कांग्रेस कमेटियों को आदेश दिया। वर्किंग कमेटी ने जनता से अनुरोध किया कि वह ब्रिटिश वस्तुओ के बहिष्कार को कारगर बनाने का, तथा ब्रिटिश बैंकिंग, इश्योरेंस, शिपिंग आदि सस्थाओ का बहिष्कार करने का प्रयत्न करे। कमेटी ने प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी को आदेश दिया कि नशाबन्दी का प्रचार किया जाय, तथा शराब की दुकानो का पिकेटिंग किया जाय। कमेटी ने हाथ से कते और हाथ से बुने कपडे के उत्पादन की वृद्धि की आवश्यकता की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया।

संघर्ष और दमन

गाधीजी की गिरफ्तारी और कांग्रेस कमेटी के नये प्रस्ताव के बाद आन्दोलन ने और जोर पकडा। सत्याग्रहियो ने धरसना, वादला आदि नमक डिपो पर बार बार आक्रमण किया, स्त्रियो ने जोरशोर से विदेशी कपडो तथा शराब की दुकानो की पिकेटिंग की। जगह जगह पर गैरकानूनी ढंग पर नमक बनाया गया। विभिन्न स्थानो पर सार्वजनिक सभाएँ और जुलूस आयोजित किये गये, जिनमें हजारो नरनारियो और बच्चो ने बहुत ही साहस और उत्साह से भाग लिया। बम्बई में निश्चय हुआ कि प्रतिमास की चार तारीख को गाधी दिवस, और अन्तिम रविवार को झडा दिवस मनाया जाय। मध्य प्रदेश और बम्बई प्रान्त में जगलो का कानून जोरशोर से तोडा गया।

सरकार ने आन्दोलन को दबाने के लिए कई नये दमनकारी अध्यादेश, तथा सार्वजनिक सभाओ को बन्द करने के लिए आदेश जारी किए। सभाओ और जुलूसो को भंग करने के लिए बडी निर्दयता के साथ निहत्थी जनता

पर लाठियो का प्रहार किया गया। सरकार के अपने बयान के अनुसार मई में विभिन्न स्थानो पर चौदह बार गोली चलायी गयी, जिसमें ५० से अधिक लोग मारे गये, और ३०० से अधिक घायल हुए। आन्दोलन को दबाने के लिए सरकार के कर्मचारियो और पिट्ठुओ ने विदेशी कपड़ो और शराब की दुकानो पर पिकेटिंग करनेवाले स्वयं-सेवको के साथ दुर्व्यवहार किया। आन्दोलन और दमन का यह चक्र जून में भी चलता रहा। सरकार के एक वक्तव्य से पता चलता है कि १५ जुलाई तक प्रेस आध्यादेश के अन्दर १३१ समाचार-पत्रो से दो लाख चालीस हजार रुपये की नयी जमानतें मागी गयी।

समझौते का प्रयास

२० मई को गाधीजी की गिरफ्तारी के कुछ दिन बाद जार्ज स्लोकाम्बे उनसे जेल में मिले। उसके बाद स्लोकाम्बे साहब ने समझौते के सम्बन्ध में काग्रेस के स्थानापन्न अध्यक्ष पडित मोती लाल नेहरू से बातें की। इसके बाद सप्रू साहब और जयकर साहब द्वारा बातचीत का सिलसिला शुरू हुआ। बात चीत कई महीने चलती रही, पर कोई समझौता नही हो पाया। लार्ड अर्विन ने समझौते के सम्बन्ध में भारत-मन्त्री को कई पत्र लिखे। पर कंजरवेटिव पार्टी के नेताओ के विरोध के कारण ब्रिटेन की मजदूर सरकार ने वाइसराय की बात न मानना ही ठीक समझा।

कांग्रेस वर्किंग कमेटी

२७ जून को पडित मोती लाल नेहरू की अध्यक्षता में प्रयाग मे काग्रेस की वर्किंग कमेटी की बैठक हुई। कमेटी ने विदेशी कपडो तथा ब्रिटिश माल के बाइकाट को अधिक तीव्र बनाने के लिए काग्रेस कमेटियो को आदेश दिया। कमेटी ने यह भी आदेश दिया कि उन सरकारी कर्मचारियो और पिट्ठुओं का सामाजिक बहिष्कार किया जाय जिन्होने स्वय-सेवको के साथ अनुचितु अपमानजनक व्यवहार किया है। कमेटी ने यह भी आदेश दिया कि फौज और पुलिस के कर्तव्यो के सम्बन्ध में उसके ७ जून के प्रस्ताव को, जिसकी कापियाँ सरकार ने जब्त कर ली है, अधिक से अधिक प्रसारित किया जाय। कमेटी ने सरकार की मुद्रा नीति की कडी आलोचना करते हुए जनता को सलाह दी कि वह अपने निर्यात का मूल्य स्वर्ण मे वसूल करे, सरकार के प्रति अपने आर्थिक दावो को स्वर्ण में लेने को आग्रह करे, तथा अपनी मुद्रा सम्पत्ति को स्वर्ण में बदलने का प्रयत्न करे।

इसके बाद सरकार ने काग्रेस वर्किंग कमेटी को गैरकानूनी घोषित कर दिया। पंडित मोती लाल नेहरू गिरफ्तार कर लिये गये, और उन्होने सरदार वल्लभ भाई पटेल को, जो तीन मास की सजा काट कर रिहा हो गये थे, अपनी जगह पर स्थानापन्न अध्यक्ष मनोनीत कर दिया। मालवीयजी वर्किंग कमेटी के सदस्य बना लिये गये।

जुलाई के अन्तिम सप्ताह में बम्बई में सरदार वल्लभ भाई पटेल की अध्यक्षता में काग्रेस की वर्किंग कमेटी की बैठक हुई। मालवीयजी भी इस बैठक में उपस्थित थे। चूँकि बम्बई में कमेटी अभी तक अवैध घोषित नही हुई थी, इसलिए सरकार के हस्तक्षेप के बिना तीन दिन तक उसकी बैठकें होती रही।

तिलक जयन्ती

३१ जुलाई को रात को तिलक जयन्ती मनाने के लिए श्रीमती हंसा मेहता के नेतृत्व में एक वृहद् सार्वजनिक जुलूस निकाला गया, जिसमें वल्लभ-भाई पटेल, मालवीयजी, जयरामदास दौलतराम, मनिबेन पटेल, श्रीमती कमला नेहरू, श्रीमती अमृत कौर, डाक्टर हार्डिकर आदि शामिल थे। बम्बई सरकार ने दफा १४४ लगाकर जुलूस पर रोक लगा दी। जुलूस तितर-बितर होने के बजाय सडक पर बैठ गया, और सारी रात वर्षा में वहाँ ही डटा रहा। प्रात: काल बम्बई के गृह-सचिव हाटसन की आज्ञा से प्रतिष्ठित नेताओ और महिलाओ को गिरफ्तार करके जेल भेज दिया गया, और बाकी जुलूस को लाठियो की मार से तितर-बितर कर दिया गया। मालवीयजी आदि सभी नेताओ को २०० रुपया जुर्माना या १५ दिन की सजा दे दी गयी। इनमें से सरदार वल्लभ भाई पटेल और श्री जयरामदास दौलतराम यरवदा जेल भेज दिये गये, जहाँ उन्होने १४ और १५ अगस्त को अन्य काग्रेसी नेताओ के साथ सप्रू साहब और जयकर साहब से बातचीत की। मालवीयजी की गिरफ्तारी और सजा की सूचना पा कर बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के लगभग सौ विद्यार्थी सत्याग्रह करने को बम्बई चल दिये, पर उनके वहाँ पहुँचते-पहुँचते मालवीयजी छोड दिये गये। सुना जाता है कि किसी अनजान व्यक्ति ने उनका जुर्माना अदा कर दिया था, जिसका मालवीयजी को बहुत क्षोभ था।

जेल से छूटने के बाद मालवीयजी सत्याग्रह के सम्बन्ध में दौरा करना चाहते थे। इसके लिए उन्होने एक कार्यक्रम भी तैयार कर लिया था। पर जब उन्हें पता चला कि सरकार ने दिल्ली में काग्रेस की वर्किंग कमेटी पर रोक

लगा दी है, और वह वहाँ उसकी बैठक नहीं होने देना चाहती, तब मालवीयजी दौरे का कार्यक्रम स्थगित कर दिल्ली चल दिये।

गिरफ्तारी

२० अगस्त सन् १९३० को दिल्ली में डाक्टर अन्सारी की अध्यक्षता मे उनके मकान पर ही कांग्रेस की वर्किंग कमेटी की बैठक हुई। कमेटी का काम समाप्त होते-होते डाक्टर अन्सारी, मालवीयजी आदि कमेटी के सभी उपस्थित सदस्य गिरफ्तार कर लिये गये। सबको छ-छ. मास की सजा दे दी गयी।

मालवीयजी प्रयाग की नैनी जेल मे भेज दिये गये। यहाँ उन्होंने पडित जवाहर लाल नेहरू के बहनोई रणजीत एस० पण्डित से जर्मन भाषा सीखना शुरू की, तथा स्वयं कैदियो को कथा सुनायी। उन्होने यहाँ पंडित जवाहर लाल नेहरू से भारतीय राजनीति पर भी काफी बातचीत की, जिससे पारस्परिक सौहार्द में काफी वृद्धि हुई। जब मालवीयजी जेल मे बीमार पड़ गये, तब वे अस्पताल भेज दिये गये, और २४ दिसम्बर को प्रधान-मन्त्री रमसे मेकडोनल्ड के आदेश पर रिहा कर दिये गये।

सरकार का रोष

सरकार मालवीयजी की गतिविधि से बहुत क्षुब्ध थी। वह अपना सारा रोष बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी पर उतारना चाहती थी। उसने विश्वविद्यालय पर यह आरोप लगाकर कि वहाँ उग्र राजनीति का प्रचार होता है और वहाँ का वातावरण राजनीतिक है, उसे वार्षिक अनुदान देना बन्द कर दिया। वह चाहती थी कि विश्वविद्यालय आश्वासन दे कि भविष्य में उसके व्यवहार में मौलिक परिवर्तन होगा, विश्वविद्यालय मे उग विचार के साम्राज्य-विरोधी राजनीतिज्ञो को अपने विचार व्यक्त करने की इजाजत नही दी जायेगी, जिन अध्यापको ने सविनय अवज्ञा में भाग लिया है उन्हे बर्खास्त कर दिया जायगा, और जिन विद्यार्थियो ने उसमें भाग लिया है उन्हे निकाल दिया जायगा। मालवीयजी सरकार के आरोप और उसके सुझावो को मानने को तैयार नही थे। इन सब प्रश्नो पर उस समय ही जबकि वे जेल में थे, उनकी सलाह से विश्वविद्यालय ने केन्द्रीय और प्रान्तीय अधिकारियो के साथ पत्र-व्यवहार किया, जिसका विस्तृत विवरण 'बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी' के अध्याय में दिया गया है। जेल से छूटने के बाद उन्हें सरकार के कड़े दृष्टिकोण के कारण जिन कठिनाइयो का विश्वविद्यालय को सामना करना पड़ रहा था, उनके निराकरण पर बहुत समय

लगाना पडा। उन्होने सरकार के अधिकारियो और जनता दोनो को स्पष्ट कर दिया कि वे सरकार की शर्तें मानने को और उन शर्तो के साथ सरकारी अनुदान या आर्थिक सहायता लेने को तैयार नही है। यह संघर्प फरवरी सन् १९३१ तक चलता रहा, और अर्विन-गाधी समझौते के बाद ही शान्त हुआ।

संघर्ष

काग्रेस के कार्यकर्ताओ ने भी सरकार के दमन और आतक की उपेक्षा करते हुए काग्रेस वर्किंग कमेटी के निर्णयो और गाधीजी के आदेश के अनुसार जोश और साहस के साथ संघर्प जारी रखा, और वर्किंग कमेटी द्वारा निर्धारित कार्यक्रम की करीब-करीब सभी बातो को कार्यान्वित करने की कोशिश की। मुद्रा सम्बन्धी प्रस्ताव का प्रचार वे नही कर सके, शायद उसे अव्यावहारिक समझ कर उस पर उन्होने कोई विशेप ध्यान नही दिया, पुलिस और सैनिको से सबधित प्रस्ताव का भी वे कितना प्रचार कर पाये, इसका भी पता नही चलता, पर सारे देश में कार्यकर्ताओ और स्वयं-सेवको ने डटकर विदेशी कपडो और शराब की दुकानो का पिकेटिंग किया, तथा ब्रिटिश माल के बहिष्कार पर विशेष रूप से जोर दिया। बंगाल तथा बिहार और उडीसा में तो ब्रिटिश माल के बहिष्कार में इतनी सफलता प्राप्त हुई कि सन् १९३० में उसका आयात केवल पाँच प्रतिशत रह गया। करनाटक के कनारा जिले में ताडी-विरोधी अभियान में तीन लाख ताड और खजूर के वृक्ष काट डाले गये। शराब और ताडी की बिक्री बहुत कम हो गयी। सरकार की आबकारी से आमदनी सभी प्रान्तो में कम हो गयी। वह मध्य प्रदेश में ६० प्रतिशत और केरल में ७० प्रतिशत कम हो गयी। प्रत्येक प्रान्त में विभिन्न स्थानो और अवसरो पर विशेष रूप से विदेशी कपड़ो की होली, तथा ताडी के प्रयोग के विरुद्ध प्रचार होता रहा। कानून के विरुद्ध नमक का बनना भी जारी रहा, पर धीरे-धीरे इसका महत्त्व कम हो गया। दफा १४४ की अवहेलना करते हुए सभाओ और जुलूसो का ताँता भी अन्त तक जारी रहा। मध्य प्रदेश में जगलो के कानूनो को भी काफी सफलता के साथ तोडा जाता रहा, जिसमें बहुत से वनबासियो ने सक्रिय योगदान किया। शोलापुर में आन्दोलन ने इतना जोर पकड़ा कि अपने अधिकार को पुनः स्थापित करने के लिए सरकार को वहाँ १५ मई को ही मार्शल-ला लागू करना पडा। कर्नाटक में केनरा जिले में तथा गुजरात के बारदोली और बोरसद के किसानो ने लगान बन्दी का जोर-शोर से सत्याग्रह किया। बिहार के कतिपय जिलो में चौकीदारी टैक्स को देना बन्द कर दिया गया, और

युक्तप्रान्त में अक्तूबर सन् १९३० में मालगुजारी और लगान, दोनो की अदायगी बन्द कर देने का अभियान प्रारम्भ किया गया। बंगाल के मिदनापुर जिले में भी लगान-बन्दी हुई।

गोलमेज कांफरेन्स

१२ नवम्बर सन् १९३० को लन्दन मे सम्राट् के स्वागत-सन्देश से गोलमेज काफरेन्स प्रारम्भ हुई, जो १९ जनवरी सन् १९३१ तक ब्रिटेन के प्रधानमंत्री मेकडोनल्ड की अध्यक्षता मे चलती रही। लार्ड चान्सलर लार्ड सेनके फ़ेडरल स्ट्रक्चर कमेटी के अध्यक्ष चुने गये। छः दिन तक काफरेन्स के पूरे अधिवेशनो में कांफन्रेस के सदस्यो ने भारत की राजनीतिक स्थिति और संवैधानिक समस्याओ पर अपने विचार व्यक्त किये। सर तेज बहादुर सप्रू, मिस्टर मुहम्मद अली जिना, महाराजा बीकानेर, महाराजा पटियाला, महाराजा अलवर, नवाब भोपाल आदि ने 'अखिल भारतीय सघ' के विचार को सिद्धान्त रूप में स्वीकार किया। लन्दन की कंजरवेटिव पार्टी की ओर से लार्ड पील, ने और लिबरल पार्टी की ओर से लार्ड रीडिंग ने भावी संविधान में अपनी-अपनी पार्टी की धारणाओ को बताया। श्री श्रीनिवास शास्त्री, मिया मुहम्मद शफी, डाक्टर अम्बेदकर, महाराजा रीवां, कर्नल गिडने आदि ने भी अपने अपने विचार काफरेन्स के समक्ष उपस्थित किये।

लार्ड पील और लार्ड रीडिंग की बातो से यह स्पष्ट था कि ब्रिटेन की कंजरवेटिव और लिबरल पार्टिया केन्द्र में उत्तरदायी शासन-व्यवस्था स्थापित करने को तैयार नही थी। भारतवासी यूरोपियन और एंग्लो-इंडियन भी कुछ शर्तों के साथ प्रान्तो में ही उत्तरदायी व्यवस्था के विस्तार के पक्ष में थे। खा अब्दुल कयूम खा को केवल सीमा-प्रान्त की चिन्ता थी। मिस्टर फजलुलहक, सर मुहम्मद शफी और सर पी० सी० मित्र ने राष्ट्रीय माग की चर्चा करते हुए अल्प-संख्यको के हितो पर ही अधिक जोर दिया। पर ब्रिटिश भारत के अन्य करीब करीब सभी प्रतिनिधियो ने प्रान्तीय स्वायत्त-शासन के साथ साथ केन्द्र में उत्तरदायी शासन की स्थापना तथा ब्रिटिश कामनवेल्थ में बराबर के डोमीनियन पद को राष्ट्र की माग घोषित किया, इसी पर सब से अधिक जोर दिया। मौलाना मुहम्मद अली ने तो कहा कि वे पूर्ण स्वराज्य के समर्थक हैं। ब्रिटिश भारत के अधिकांश प्रतिनिधियो ने इस बात पर जोर दिया कि यदि राष्ट्रीय माग स्वीकार नही होगी, तो संघर्ष तीव्र हो जायगा, पुरानी व्यवस्था के आधार पर शान्ति और व्यवस्था प्रतिष्ठित नही रखी जा सकेगी। भारतीय नरेशो की बातो से यह

स्पष्ट था कि जबकि महाराजा रीवा को भारतीय संघ की सार्थकता और औचित्य पर सन्देह था, कुछ राजे और नवाब इसका स्वागत करने को तैयार थे, पर उन शर्तों के साथ जिन पर समझौता होना कठिन मालूम होता था।

सारी कांफरेन्स की ६ बैठकों के बाद विभिन्न विषयों पर विचार करने के लिए उपसमितियां गठित की गयी और उनकी रिपोर्टों पर अन्त मे १६ और १९ जनवरी सन् १९३१ को पूरी कांफरेन्स में विचार हुआ। उपसमितियों की रिपोर्टें पूरी तौर पर सन्तोषजनक नहीं थीं। गहरे मतभेद के कारण बहुत से महत्त्वपूर्ण विषयों पर कोई निर्णय ही नहीं लिया जा सका। जो निर्णय हुए भी, उन्हें भी 'अन्तरिम' समझा गया। फेडरल स्ट्रक्चर समिति ने यह तो निश्चय किया कि ब्रिटिश भारत से सम्बन्धित प्रान्त उन अधिकारों के आधार पर जो भारत सरकार उन्हें हस्तान्तरित करे उन रियासतों को मिलाकर जो स्वेच्छा से ऐसा चाहें, एक भारतीय संघ स्थापित करें, पर महाराजा रीवा और महाराजा धौलपुर ने इस निर्णय का स्वागत करते हुए स्पष्ट कर दिया कि उनकी स्वीकृति अस्थायी है, संघ व्यवस्था की पूरी रूप रेखा तैयार हो जाने पर ही वे निश्चय कर सकते हैं कि वे संघ में शामिल हों अथवा न हों। इस समिति ने अस्थायी तौर पर वित्तीय संरक्षणों के सम्बन्ध में भी कुछ फैसले किये। अल्प-सख्यक कमेटी सर्वसम्मति से कोई महत्त्वपूर्ण निर्णय नहीं ले सकी, और कांफरेन्स की बैठक में मुसलमानों की ओर से खान बहादुर हाफिज हिदायत हुसैन ने घोषित किया कि अल्पसंख्यक और अस्पृश्य वर्ग हिन्दुस्तान के लिए स्वशासन की व्यवस्था करनेवाले किसी संविधान को मानने को राजी नहीं हो सकते, जब तक उनकी मांगें युक्तियुक्त ढंग पर पूरी नहीं की जाती।[1] डाक्टर अम्बेदकर ने भी यह बात स्वीकार करते हुए कि "जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में-राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक-प्रत्येक व्यक्ति को एक मूल्य के आदर्श की उपलब्धि ही" अस्पृश्य वर्गों का लक्ष्य है, घोषित किया कि जिस प्रकार बहुत ही सीमित मताधिकार के आधार पर नया विधान तैयार किया जा रहा है, वह भारत की सरकार को उच्चवर्गों द्वारा जनता पर शासन जरूर बना देगा"[2]। उन्हें इस बात का क्षोभ था कि जबकि दूसरे अल्प-संख्यकों के अधिकार ब्रिटिश सरकार ने राजनीतिक कारणों से बहुत पहले ही स्वीकार कर लिये हैं, प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में अस्पृश्य वर्गों के दावे की उपेक्षा की जा

---

१. इंडियन राउंड टेबिल कांफरेन्स १२ नवम्बर सन् १९३०—१९ जनवरी सन् १९३१ विवरण, पृ० ४०४। २. वही, पृ० ४३९।

रही है।[१] उन्होने यह भी कहा कि केन्द्रीय शासन के नौकरशाही ढांचे में परिवर्तन पर ध्यान जरूर दिया गया है, पर परिवर्तन दिखावटी है, महत्त्वपूर्ण नही है, उत्तरदायित्व बोगस है, वास्तविक नही है"।[२] श्री० जे० एन० वसु ने काफरेन्स के निर्णयो की समीक्षा करते हुए कहा : "बहुधा जनता के साधारण अधिकारो की उपेक्षा करते हुए निहित स्वार्थो की सेवा की गयी है"।[३] मजदूरो के अभिवक्ता श्री शिवराव ने कहा कि काफरेन्स ने मजदूरो की एक बात भी स्वीकार नही की है, और जब तक आगे चलकर प्रस्तावित प्रस्ताव ठीक तौर पर संशोधित नही होते, नयी व्यवस्था मजदूरो के लिए हितकर नही हो सकती।[४] भारतीय संघ पर अपने विचार व्यक्त करते हुए सर शफात अहमद खाँ ने कहा कि भारतीय नरेशो का भारत के राजनीतिक अखाड़े में प्रवेश सन्देह से खाली नही है, पर ऐसा दिखाई देता है कि सघ को स्थापित किये विना केन्द्र में उत्तरदायी व्यवस्था की स्थापना असम्भव है। इसलिए, उन्होने कहा, भारत असमंजस में फँस गया है। "नरेशो के विना मौजूदा निरंकुश शासन जारी रहेगा, नरेशो के साथ विधान आकार में लोकतान्त्रिक होगा, व्यवहार में अल्पतन्त्रीय" होगा[५]। श्री एच० पी० मोदी ने कहा . "सघीय व्यवस्था विकसित हो अथवा न हो, भारत को केन्द्र में स्वायत्तता की इतनी पूर्ण मात्रा मिलनी चाहिए जितनी परिस्थिति इजाजत दे।"[६] उन्होने रिपोर्ट में लिखित बहुत से वित्तीय संरक्षणो पर भी आपत्ति करते हुए कहा "पूर्ण वित्तीय और कर-सम्बन्धी स्वायत्तता भारत की अवाधित मांग है।"[७] श्री चन्द्रशेखर बरुआ ने कहा कि भारत के राजनीतिक विकास के समय कुछ सरक्षणो की व्यवस्था अनिवार्य है, पर उनकी व्यवस्था करते समय यह नही भूल जाना है कि हमारा उद्देश्य हिन्दुस्तान को इतनी अधिक स्वतन्त्रता देना है जितनी इस साम्राज्य की दूसरी डोमिनियनें उपभोग कर रही है, और उसे इतनी जल्दी देना है जितनी वह व्यावहारिक हो।[८]

यद्यपि अर्धगोरो के प्रवक्ता कर्नल गिडने को क्षोभ था कि उनके हिन्दुस्तानी भाइयो ने यूरोपियनो के निहित व्यावसायिक हितो को मानने से इनकार

१. वही, पृ० ४३९। २. वही, पृ० ४३८।
३. वही, पृ० ४०२। ४. वही, पृ० ४१३।
५. वही, पृ० ४१०। ६. वही, पृ० ४४३।
७. वही, पृ० ४४३। ८. वही, पृ० ४६१।

कर दिया,[1] पर कंजर्वेटिव पार्टी के प्रवक्ता लार्ड पील और लिबरल पार्टी के प्रवक्ता लार्ड रीडिंग गोलमेज काफरेन्स के निर्णयो से काफी सन्तुष्ट थे। भारत-निवासी यूरोपियनो के प्रवक्ता मिस्टर गोविन जोन्स तथा सर हुवर्ट कार भी काफी सन्तुष्ट थे। वे यह और चाहते थे कि (१) रियासतो को प्रतिनिधित्व का बड़ा अश मिले, ताकि वे उसके जरिये स्थिरता और प्रशासनिक अनुभव ला सकें, (२) विधान मंडलो में ताज का पर्याप्त प्रतिनिधित्व हो, जिसे साक्रान्तिक काल खत्म होने पर घटा दिया जाय, (३) कार्यपालिका की पदावधि पार्लियामेंट का जीवन-काल हो, या जब तक वे विधान मडल के दो तिहाई सदस्यो का विश्वास न खो दें, या गवर्नर जनरल उन्हे बर्खास्त न कर दे।[2]

काफरेन्स की आखिरी बैठक में श्री जाधव ने तथा श्री चन्द्रशेखर बरुआ[3] आदि ने सरकार से अनुरोध किया कि शान्ति का वातावरण स्थापित करने के लिए राजनीतिक बन्दी छोड दिये जायें। सर तेज बहादुर सप्रू ने भी प्रधानमन्त्री से अनुरोध किया कि वे अपने अभिभाषण में राजनीतिक बन्दियो की रिहाई की घोषणा करें। उन्होने भारत के राजनीतिज्ञो से भी अनुरोध किया कि वे संघर्ष को बन्द कर देश की राजनीतिक समस्याओ को सुलझाने में रचनात्मक योगदान करें।

प्रधान-मन्त्री की घोषणा

प्रधानमन्त्री मेकडोनल्ड ने अपने अन्तिम भाषण में काफरेन्स की सफलता पर अपना हर्ष प्रकट करते हुए संरक्षणो के औचित्य को समझाते हुए तथा वास्तविक प्रगति के लिए सहयोग की आवश्यकता पर जोर देते हुए घोषित किया कि "मैं चाहूँगा कि यह काफरेन्स भारत और हमारे बीच के सम्बन्धो में एक नया अध्याय प्रारम्भ करे। यदि सर तेज बहादुर सप्रू की भारत को और हमें की गयी अपील की भारत में सुनवायी हुई, और सिविल शान्ति घोषित और सुनिश्चित कर दी गयी, तो सम्राट् की सरकार उनकी अपील का, जो उनके बहुत से साथियो द्वारा भी पुष्ट की गयी है, उचित उत्तर देने में पीछे नही रहेगी।"[4]

अन्त में उन्होने घोषित किया : "सम्राट् की सरकार की राय है कि भारत के शासन के लिए उत्तरदायित्व केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान मण्डलों पर उन प्रतिबन्धो के साथ रखा जाय जो संक्रान्ति-काल में कतिपय दायित्व के

---

१. वही, पृ० ४०६।
२. वही, पृ० ४८४।
३. वही, पृ० ४५६, ४६३।
४. वही, पृ० ४८०।

अनुपालन की गारन्टी के लिए तथा अन्य विशेष स्थितियो का सामना करने के लिए आवश्यक हो, और जो उन गारन्टिओ से यूक्त हो जिन्हे अल्प-संख्यक अपनी स्वतन्त्रताओ और अधिकारो की रक्षा के लिए आवश्यक समझें। इस मूलभूत नीति की व्याख्या करते हुए उन्होने कहा कि (१) संरक्षित अधिकार इस तरह तैयार किये जायेगे और प्रयोग मे लाये जायेगे कि वे नये संविधान द्वारा पूर्ण उत्तरदायित्व की ओर प्रगति मे बाधक न हो। (२) केन्द्रीय शासन द्विसदनीय विधानमंडल मे गठित अखिल भारतीय संघ होगा, जिसमें भारतीय रियासतें और ब्रिटिश भारत दोनो शामिल होगे। (३) सघीय आधार पर गठित विधान मंडल को प्रशासन (कार्यपालिका) उत्तरदायी होगा। (४) रक्षा सम्बन्धी मामले और वैदेशिक विषय गवर्नर-जनरल के हाथ मे रक्षित रहेंगे। (५) आकस्मिक सकट में राज्य में शान्ति बनाये रखने का तथा अल्पसंख्यको के सवैधानिक अधिकारो के अनुपालन कराने का विशेष उत्तरदायित्व गवर्नर-जनरल का होगा, और उसे पूरा करने के लिए उचित अधिकारो की व्यवस्था की जायगी। (६) वित्तीय उत्तरदायित्व उन शर्तो के साथ हस्तान्तरित किया जायगा जो भारतमन्त्री के अधिकार के अधीन लिये वित्तीय आभारो को पूरा करने के लिए, तथा भारत की वित्तीय स्थिरता और साख को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए जरूरी हो, (७) इस तरह मौजूदा परिस्थिति में केन्द्रीय विधानमडल और कार्यपालिका दोनो का द्विविधता का स्वरूप होगा, (८) गवर्नरो के प्रान्त पूर्ण उत्तरदायित्व के आधार पर गठित किये जायेंगे, (९) प्रान्तीय विषयो का क्षेत्र इस तरह निर्धारित किया जायगा, जिससे प्रान्तो को स्वशासन की अधिकतम सम्भव मात्रा प्राप्त हो सके, और संघीय सरकार का अधिकार उन प्रबन्धो तक सीमित होगा जो संघीय विषयो के प्रशासन के लिए और संविधान द्वारा निश्चित अखिल भारतीय विषयो के उत्तरदायित्व को निभाने के लिए जरूरी हो, (१०) गवर्नरो के लिए निम्नतम विशेष अधिकार इस तरह सुरक्षित किये जायेंगे कि वे विशेष परिस्थितियो में शान्ति सुरक्षित रख सकें, तथा पब्लिक सर्विसेज (लोकसेवाओ) और अल्पसख्यको के कानून द्वारा निश्चित अधिकारो को बनाये रख सकें। (११) प्रान्तीय विधानमंडलो का विस्तार किया जायगा, और वे अधिक उदार मताधिकार पर आधारित होगे; (१२) संवैधानिक प्रबन्धो द्वारा राजनीतिक प्रतिनिधित्व के अतिरिक्त, इस बात की भी गारन्टी दी जायगी कि धर्म, प्रजाति, सम्प्रदाय या जाति के भेद स्वयं नागरिक (सिविक) निर्योग्यताएं नही बनें।[1]

---

१. वही, पृ० ४८२-४८४।

समझौता

२५ जनवरी सन् १९३१ को गाधीजी तथा काग्रेस वकिंग कमेटी के अन्य सब सदस्य छोड दिये गये। १५ फरवरी को काग्रेस की ओर से गाधीजी ने वाइसराय से बातचीत शुरू की। कुछ दिन तक बातचीत काफी सौहार्दपूर्ण ढंग से होती रही। पर बाद को इतना गतिरोध पैदा हो गया कि समझौता असम्भव दिखाई देने लगा। सर तेज बहादुर सप्रू और श्री श्रीनिवास शास्त्री ने गतिरोध दूर करने की भरसक कोशिश की। अन्त में ५ मार्च को प्रात. काल एक बजे गाधीजी और वाइसराय में समझौता हो गया।

५ मार्च को भारत सरकार ने एक विज्ञप्ति द्वारा समझौते की शर्तें प्रकाशित की। इस विज्ञप्ति में यह स्पष्ट कर दिया गया कि गोलमेज काफरेन्स में उसकी विचाराधीन योजना पर विस्तार के साथ विचार किया जायगा। सघ व्यवस्था, भारतीय उत्तरदायित्व, तथा भारत के हितो में देश की रक्षा, वैदेशिक मामले, अल्पसख्यको की पोजीशन, भारत की आर्थिक साख और दायित्व की अदायगी आदि विपयो के सम्बन्ध में संरक्षण या प्रतिबन्ध इस विचाराधीन योजना के मुख्य अंग है। विज्ञप्ति में यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि प्रधानमन्त्री की १९ जनवरी की घोषणा के अनुसार सवैधानिक सुधार की योजना पर होने वाले विचार-विमर्श में काग्रेस के प्रतिनिधियो को शामिल करने के लिए उचित कार्यवाही की जायगी।

पडित जवाहर लाल नेहरू को यह समझौता पसन्द नही था। वे इसे आत्म-सर्म्पण समझते थे। पर अन्त में वे इसे स्वीकार करने को राजी हो गये, और काग्रेस वकिंग कमेटी ने इसे सर्वसम्मति से मजूर कर लिया, और सविनय अवज्ञा को वापस लेकर पिकेटिंग आदि के सम्बन्ध में आवश्यक आदेश जारी कर दिये। सरकार की ओर से भी समझौते को कार्यान्वियन करने के लिए आवश्यक कार्यवाहियाँ की जाने लगी।

कराची अधिवेशन

समझौते के कुछ दिन बाद मार्च में ही सरदार वल्लभ भाई पटेल की अध्यक्षता मे कराची में काग्रेस का अधिवेशन हुआ। उसने गाधी-अर्विन समझौते का समर्थन किया, पर यह स्पष्ट कर दिया कि उसका ' पूर्ण स्वराज्य का लक्ष्य अक्षुण्ण बना रहता है," और यदि उसके प्रतिनिधि को गोलमेज काफरेन्स में हिस्सा लेने का अवसर मिला, तो वह वहाँ इस लक्ष्य के लिए प्रयत्न करेगा, और विशेप रूप से देश की "सरक्षण सेनाओ पर, वैदेशिक मामलो पर, वित्त पर, कर

सम्बन्धी और आर्थिक नीतिओ पर नियन्त्रण प्राप्त करने की कोशिश करेगा।" प्रतिनिधि मंडल एक निष्पक्ष न्यायाधिकरण द्वारा भारत मे ब्रिटिश सरकार के वित्तीय निर्णयो (ट्रैंजैक्शन्स) की जाँच कराने का भी अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा, ताकि यह निर्णय हो सके कि दातव्यो में कितना भारत को और कितना इंगलिस्तान को देना है। वह इस बात का भी प्रयत्न करेगा कि भारत और इंगलिस्तान दोनो मे से प्रत्येक को अधिकार हो कि वह "स्वेच्छा से साझादारी खत्म कर सके, और भारत उस समाधान को स्वीकार करने को स्वतन्त्र होगा जो स्पष्टत: उसके हित मे आवश्यक हो।"

कांग्रेस ने गाधीजी को गोलमेज कांफरेन्स के लिए अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया, और कांग्रेस वर्किंग कमेटी को अधिकार दिया कि वह गाधीजी के नेतृत्व मे काम करने के लिए अन्य प्रतिनिधियो को भी नियुक्त कर सकती है।

कांग्रेस ने इस अवसर पर सरदार भगत सिंह और उनके साथी सर्व श्री सुखदेव और राजगुरु के बलिदान पर प्रस्ताव पारित किया। इस प्रस्ताव मे कांग्रेस ने राजनीतिक हिंसा को नापसन्द करते हुए तथा इन तीनो नवयुवको के शौर्य और कुर्बानी की प्रशंसा करते हुए राय जाहिर की कि "इन तीनो की फासी निरर्थक बदले का काम है, तथा राष्ट्र की सर्वसम्मत छोटी सी माग का सकल्पित तिरस्कार है।" उसने यह भी कहा : "सरकार ने दो राष्ट्रो के बीच सद्भावना की वृद्धि करने का, जो इस समय सर्वसम्मति से आवश्यक है, तथा उस दल को जो निराशा से पराभूत हो हिंसा करते हैं; शान्ति के मार्ग की ओर आकर्षित करने का सुनहरा अवसर खो दिया है।"

इस प्रस्ताव को जवाहर लालजी ने पेश किया, और मालवीयजी ने इसका अनुमोदन किया। मालवीयजी ने बहुत ही संतप्त हृदय से भगतसिंह आदि क्रान्तिकारियो के 'बलिदान' के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए नौजवानो के क्रान्तिकारी कार्यों के लिए सरकार की स्वराज्य-विरोधी गतिविधि को उत्तरदायी ठहराया, पर 'अहिंसात्मक कार्यक्रम' पर अपनी आस्था प्रकट करते हुए उन्होने नौजवानो से कहा : "यदि आप वास्तव में भगतसिंह से प्रेम करते हो, तो प्रण करो कि हम शान्तिमय मार्ग पर चलते हुए विदेशी राज्य को शीघ्र से शीघ्र हटायेंगे।"

साम्प्रदायिक निर्णय

जुलाई सन् १९३१ में मालवीयजी और डाक्टर अन्सारी की रजामन्दी से कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने साम्प्रदायिक समस्या पर एक योजना तैयार की जो एक वक्तव्य के रूप में प्रसारित की गयी। योजना में जिसे वर्किंग कमेटी विशुद्ध

सम्प्रदायवाद और विशुद्ध राष्ट्रवाद पर आश्रित प्रस्तावो में समझौता घोषित करती थी निर्धारित किया गया कि (१) सविधान की मौलिक अधिकार सम्बन्धी व्यवस्था द्वारा सब सम्प्रदायो को उनकी संस्कृतिओ, भाषाओ, लिपिओ, धार्मिक विश्वासो और व्यवहारो तथा धार्मिक स्थायी निधिओ की गारंटी दी जायेगी, (२) संविधान की विशेष व्यवस्था द्वारा प्रत्येक सम्प्रदाय का पर्सनल ला सुरक्षित किया जायगा, (३) विभिन्न प्रान्तो में अल्पसंख्यको के राजनीतिक और दूसरे अधिकारो की रक्षा केन्द्रीय सरकार का उत्तरदायित्व होगा, (४) सब वयस्क पुरुषो और स्त्रियो को वोट देने का अधिकार होगा, हर हालत मे यह अधिकार एक-सा होगा और इतना विस्तृत होगा कि वह प्रत्येक सम्प्रदाय की जनसंख्या के अनुपात को निर्वाचक सूची में अभिव्यक्त कर सके, (५) भारत के भावी सविधान में संयुक्त निर्वाचन ही प्रतिनिधित्व का आधार होगा। सिंध में हिन्दुओ के लिए, आसाम में मुसलमानों के लिए, पजाव मे तथा उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त में सिक्खो के लिए, तथा उन प्रान्तो में जहाँ वे जनसंख्या के २५ प्रतिशत से भी कम है, हिन्दुओ और मुसलमानो के लिए संघीय और प्रान्तीय विधान सभाओ मे उनकी जनसंख्या के अनुपात से स्थान सुरक्षित होगे और उन्हें दूसरे स्थानो पर चुनाव लडने का अधिकार होगा, (६) नियुक्तियाँ निर्दलीय आयोग द्वारा की जायेंगी जो निम्न योग्यताए निर्धारित करेगा, तथा लोकसेवा की कार्य-कुशलता और देश की लोक-सेवाओ में उचित हिस्से के लिए सब सम्प्रदायो को समान अवसर के सिद्धान्त को ध्यान में रखेगा, (७) संघीय और प्रान्तीय मंत्रिमण्डल के गठन में संवैधानिक परम्परा (कन्वेंशन) द्वारा अल्पसख्यको के हितो को मान्यता दो जायेगी, उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त और बलूचिस्तान की सरकार और प्रशासन का ढांचा दूसरे प्रान्तो के ढाँचो के समान होगा, (९) सिन्ध एक पृथक् प्रान्त बनाया जायगा, बशर्ते कि सिन्ध की जनता पृथक् प्रान्त के वित्तीय वोझ को वहन करने को तैयार हो, (१०) देश का भावी विधान संघीय होगा, अवशिष्ट अधिकार संघ की इकाइयो में निहित होगे, जव तक कि और जाँच के वाद यह सिद्ध न हो जाय कि यह भारत के सर्वोच्च हितों के विरुद्ध होगा।[1]

मौलिक अधिकार

अगस्त सन् १९३१ मे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने कराची कांग्रेस में प्रस्तावित मौलिक अधिकारो के प्रस्ताव को किसी हद तक सशोधित कर

१. वही पृ० ४८०-४८१।

निश्चित किया। इस प्रस्ताव में नागरिकों की मौलिक स्वतन्त्रताओं, उनके धार्मिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकारो की व्याख्या के अतिरिक्त किसानो और मजदूरों के आर्थिक हितों की रक्षा के सम्बन्ध में भी निर्देशन थे। यह प्रस्ताव निःसन्देह मौलिक अधिकारों से सुसज्जित लोकतान्त्रिक कल्याणराज्य की रूपरेखा प्रस्तुत करता था। प्रस्ताव के शुरू में ही घोषित कर दिया गया था कि 'काग्रेस की ओर से स्वीकृत होनेवाले किसी भी शासन विधान में' इन बातो की व्यवस्था रहनी चाहिए, या स्वराज्य सरकार को यह अधिकार होना चाहिए कि वह इनकी व्यवस्था कर सके।

इस तरह गोलमेज सम्बंधी कराची का प्रस्ताव, साम्प्रदायिक समझौता सम्बन्धी काग्रेस वर्किंग कमेटी का वक्तव्य, और मौलिक अधिकार सम्बन्धी अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी का यह प्रस्ताव काग्रेस के लक्ष्य, सिद्धान्तो और नीति को अच्छी तौर पर स्पष्ट कर देते हैं। मालवीयजी को काग्रेस के ये तीनों प्रस्ताव मंजूर थे, यद्यपि पूर्ण स्वतन्त्रता की उनकी व्याख्या में औपनिवेशिक स्वराज्य के सिद्धान्त की पुट थी।

सरकार गोलमेज कांफरेन्स में काग्रेस को बीस प्रतिनिधि देने को तैयार थी। कतिपय काग्रेसी नेता भी चाहते थे कि काग्रेस प्रतिनिधि मंडल १५ सदस्यो का हो। पर अन्त में यही निश्चय हुआ कि अकेले गाधोजी ही कागेस का प्रतिनिधित्व करें। वाइसराय ने गांधीजी को विश्वास दिलाया था कि वे मालवीयजी, श्रीमती सरोजनी नायडू तथा डाक्टर अन्सारी को भी गोलमेज काफरेन्स में आमन्त्रित करेंगे, पर उन्होने डाक्टर अन्सारी को आमंत्रित नही किया।

●

२१. गोलमेज कांफरेन्स का दूसरा सत्र

लन्दन यात्रा

२९ अगस्त सन् १९३१ को 'राजपूताना' जहाज से गाधीजी, और बहुत से दूसरे महानुभाव गोलमेज काफरेन्स में भाग लेने लन्दन के लिए रवाना हुए। रास्ते में नवाब भूपाल ने गाधीजी और मालवीयजी से बातें की। गाधीजी काग्रेस की मांग पर अडिग रहे। इससे कम पर वे सरकार से कोई समझौता करने को तैयार नही थे। मालवीयजी ने भी नवाव साहव से स्पष्ट शब्दों में कह दिया—"जीवन-मरण का प्रश्न है, मै लन्दन इसलिए नही जा रहा हूँ कि पौने सोलह आना लेकर लौटू। गाधीजी का साथ मैं हरगिज नही छोडूँगा।" नवाव भूपाल ने कहा—"फिर तो बात टूटेगी।" मालवीयजी ने कहा, "चाहे जो हो।"[1]

१२ सितम्बर को मालवीयजी और गाधीजी लन्दन पहुँचे। वहा एक सभा में दोनो का स्वागत, तथा गाधीजी का भाषण हुआ। इसके बाद मालवीयजी ने गाधीजी के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में चिन्ता व्यक्त करते हुए सेठ घनश्यामदास बिडला से कहा—"गाधीजी कपडे नही पहनते, कही इन्हें कुछ हो न जाये। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि रोग हो तो मुझे हो, मौत आये तो मुझे आये।"[2]

गांधीजी

१५ सितम्बर सन् १९३१ को गाधीजी ने फेडरल स्ट्रक्चर कमेटी (संघ ढाचा समिति) में पहली बार बोलते हुए काग्रेस के इतिहास और पोजीशन की कुछ चर्चा करने के वाद दावा किया कि वह भारत की प्रमुख राजनीतिक और राष्ट्रीय संस्था है, जो देश के 'सब हितो और वर्गों' का प्रतिनिधित्व करती है। यद्यपि उसने रियासतो के आन्तरिक मामलो में कभी हस्तक्षेप नही किया, फिर भी उसने समय-समय पर राजाओ की भी सेवा की है।[3] काग्रेस, उन्होने कहा, 'किसानो की संस्था है और बनती चली जा रही है' और गरीब जनता की सेवा वह अपना कर्तव्य समझती है।[4] अपने सम्बन्ध में उन्होने कहा, 'एक समय था

१. घनश्यामदास बिडला की डायरी के कुछ पन्ने, पृ० २६।
२. वही, पृ० ३१।
३. राउंड टेबिल कान्फ्रेन्स : सेकिंड सेशन जि० १, पृ० ४३।
४. वही, पृ० ४३।

जब मैं ब्रिटिश प्रजा होने और कहे जाने पर गर्व करता था। पर कई वर्षों से मैंने अपने को 'ब्रिटिश प्रजा' कहना बन्द कर दिया है। मैं अपने को प्रजा के बजाय 'विद्रोही' कहा जाना चाहूँगा। लेकिन मैं अब नागरिक होने की आकांक्षा करता हूँ, साम्राज्य में नही कामनवेल्थ में, अगर ईश्वर की इच्छा से सम्भव हो तो चिरस्थायी साझेदारी में, पर ऐसी साझेदारी में नही, जो एक राष्ट्र द्वारा दूसरे पर आध्यारोपित हो।'[1]

राष्ट्रीय माग के सम्बन्ध में कांग्रेस के निर्णयों को प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कांग्रेस के प्रस्ताव को पढ कर सुनाया और कहा कि यह उसका आदेश पत्र है जिसकी पुष्टि उनका कर्तव्य है। इस प्रस्ताव की कतिपय बातों की व्याख्या करते हुए गांधीजी ने कहा कि कांग्रेस वित्तीय ऋण की अदायगी से इनकार नही करती, पर जानना चाहती है कि उसका कितना भार भारत पर वाजिब है।[2] उन्होंने कहा कि कांग्रेस अनिवार्य रूप से सम्बन्ध विच्छेद की बात नही करती, वह तो केवल "सम्बन्ध विच्छेद करने के अधिकार" का दावा करती है, और चाहती है कि सम्बन्ध स्वैच्छिक हो, दो बिल्कुल बराबरो के बीच में हो, दोनो के "पारस्परिक हित" मे हो।[3]

गाधीजी की इस व्याख्या से स्पष्ट था कि यदि ब्रिटिश मंत्रिमण्डल और पार्लियामेंट भारत को स्वतंत्रता देने को, केन्द्र और प्रान्त दोनो मे उत्तरदायी शासन स्थापित करने को, सेना, वैदेशिक विषय, वित्त, सीमा शुल्क और आर्थिक नीति पर कन्ट्रोल देने को, तथा सरक्षणो के सम्बन्ध में कांग्रेस के विचारो पर समुचित ध्यान देने को तैयार होती, तो कांग्रेस भी भारत को ब्रिटिश कामनवैल्थ का स्वैच्छिक स्वतंत्र सदस्य बनाने को राजी हो जाती।

१७ सितम्बर को गाधीजी ने कहा कि यहा उपस्थित हम सब भारतीय 'राष्ट्र द्वारा, जिसका हमें प्रतिनिधित्व करना चाहिए, चुने हुए नही है, हम सरकार द्वारा चुने हुए है' और प्रतिनिधियो की सूची में स्पष्ट खाली स्थान है, अर्थात् जिन्हें यहां होना चाहिए नही हैं। उन्होने माग की कि सरकार क्या देना चाहती है, उसे बताये, ताकि उस पर विचार किया जा सके।[4] सरकार के इस आक्षेप का उत्तर देते हुए कि कांग्रेस भारत में अपनी समानान्तर (पैरेलल) सरकार स्थापित करना चाहती है, गाधीजी ने कहा : 'यद्यपि मौजूदा सरकार ने

---

१. वही, पृ० ४३।
२. वही, पृ० ४६।
३. वही, पृ० ४५।
४. वही, पृ० १५७।

हम पर धृष्टता के साथ समानान्तर सरकार स्थापित करने का दोष लगाया है; मैं इस अभियोग को अपने ढंग पर मंजूर करूंगा। यद्यपि हमने कोई समानान्तर सरकार स्थापित नही की है, हम निःसन्देह किसी न किसी दिन मौजूदा सरकार को हटा देने की, और यथोचित प्रक्रिया मे विकास के पथ में उस सरकार का उत्तरदायित्व ग्रहण करने की भी आकाक्षा करते है।'

जबकि करीब-करीब सभी चाहते थे कि संघीय विधान मडल के दो सदन हो, गाधीजी की राय में एक सदन ही पर्याप्त था।[1] इसी तरह जबकि मताधिकार को अधिक व्यापक बनाने की आवश्यकता को स्वीकार करते हुए भी अधिकाश वयस्क मताधिकार के पक्ष में नही थे, गाधीजी इसके पक्ष मे थे,[2] पर उन्होने प्रत्यक्ष चुनाव पद्धति के बजाय परोक्ष चुनाव पद्धति का समर्थन किया।[3] उन्होने यह भी स्पष्ट किया कि यद्यपि हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख ग्रन्थियो को सुलझाने के लिए वे उन तीनो के सम्बन्ध में 'विशेप व्यवहार' की बात सोचने को तैयार है, पर वे अन्य वर्गों और हितो के लिए 'विशेप प्रतिनिधित्व' की व्यवस्था के विरुद्ध है[4]।

उन्होने संयुक्त राज्य अमरीका की तरह के दो प्रकार के मुख्य न्यायालयो की स्थापना का विरोध किया। वे नही चाहते थे कि एक ऐसा सुप्रिम कोर्ट हो जो सघ के सविधान, संघ के कानून, संघ सरकार के आदेशो से सम्बन्धित मामलो पर निर्णय करे, और दूसरा ऐसा सुप्रिम कोर्ट या सर्वोच्च न्यायालय हो जो प्रान्तीय कानूनो और आदेशो से सम्बन्धित मामलो की अपील सुने। वे चाहते थे कि भारत के फेडरल कोर्ट का क्षेत्राधिकार यथासंभव विस्तृत हो, वही देश का सर्वोच्च मुख्य न्यायालय हो, उसे सघीय कानूनो और आदेशो के साथ साथ प्रान्तीम कानूनो और आदेशो से सम्बन्धित मामलो की अपीलें सुनने का का भी अधिकार हो।[5] गाधीजी की यह भी माग थी कि सविधान में जनता के मौलिक अधिकारो की भी व्यवस्था हो, न्यायालयो द्वारा उनका न्यायिक संरक्षण हो, और इस सम्बन्ध में रियासतें फेडरल कोर्ट का न्यायाधिकार स्वीकार करें।[6] उन्होने काफरेन्स में उपस्थित राजाओ को सम्बोधित करते हुए कहा कि रियासती जनता के अपने प्रतिनिधि नही है, उनके हितो और आकाक्षाओ के प्रतिनिधित्व का भार भी आप पर है। अच्छा यही होगा कि इस सम्बन्ध में

---

१. वही, पृ० १६२। २. वही, पृ० १६०।
३. वही, पृ० १५९। ४. वही, पृ० १६३।
५. वही, पृ० ७२१। ६. वही, पृ० ७२२।

आप कुछ ऐसा निश्चय करें कि आप की प्रजा अनुभव कर सके कि राजाओं द्वारा उनका प्रतिनिधित्व हो रहा है।[१] गाधीजी ने कहा : "फेडरल कोर्ट को सर्वोच्च न्यायालय की पोजीशन प्राप्त हो, जिसके बाहर कोई व्यक्ति जो भारत में रहता हो, न जा सके।"[२] उन्होने कहा कि मेरे विचार में "जितने अधिकार आप फेडरल कोर्ट को देंगे, उतना ही अधिक विश्वास हम संसार और राष्ट्र में प्रेरित कर सकेंगे।"[३]

१७ नवम्बर सन् १९३१ को फेडरल स्ट्रकचर कमेटी में गाधीजी ने सेना और वैदेशिक विषयो पर पूरे नियत्रण की माग की, और कहा कि मौजूदा सेना, ब्रिटिश "आधिपत्य की सेना है", और "यह सारी सेना भंग कर दी जाय", यदि वह भारत के नियंत्रण में हस्तान्तरित नही होती।[४]

१९ नवम्बर सन् १९३१ को गाधीजी ने अंग्रेजो के व्यापारिक हितो के संरक्षण की विशेष व्यवस्था का विरोध किया। उन्होने प्रस्तावित संरक्षणो को भारतीय जनना के हितो के विरुद्ध बताया। उन्होने प्रजाति के आधार पर किसी प्रकार का पक्षपात या विरोध दोनो को गलत बताया।

मालवीय जी

मालवीयजी ने गाधीजी की तरह काग्रेस को राष्ट्र की प्रमुख संस्था बताते हुए उसकी ओर से प्रस्तुत गाधीजी के अधिकाश विचारो तथा राष्ट्रीय माँग का समर्थन किया, तथा उन सब पर अपने विचारो का स्पष्टीकरण किया। उन्होने पूर्ण स्वतन्त्रता, पूर्ण उत्तरदायी शासन, अखिल भारतीय सघीय व्यवस्था, वयस्क मताधिकार, प्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली, सर्विसेज (लोकसेवाओ) के भारतीयकरण तथा ब्रिटेन के साथ स्वतन्त्र भारत के मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने की डटकर पुष्टि की। स्वतन्त्रता के लिए वे प्रान्तीय स्वशासन के साथ-साथ केन्द्र में उत्तरदायी शासन व्यवस्था भी आवश्यक समझते थे। वे गाधीजी के इस विचार से सहमत थे कि 'वाह्य शक्ति द्वारा प्रशासित और संचालित सुदृढ केन्द्र और सुदृढ प्रान्तीय स्वशासन दो विरोधी विचार है, प्रान्तीय स्वशासन और केन्द्रीय उत्तरदायित्व का साथ-साथ कार्यान्वियन नितान्त आवश्यक है।' उनकी धारणा थी कि "केन्द्रीय सरकार प्रशासनिक व्यवस्था का प्राण है, और जब तक वह

---

१. वही, पृ० ७२२।   २. वही, पृ० ७२२।
३. वही, पृ० ७२३।   ४. वही, जि० २ पृ० १००१, १००३।

निर्दोष और स्वस्थ आधार पर प्रतिष्ठित नही होती, तब तक निर्दोष प्रान्तीय व्यवस्था असंभव है।"[1] उन्होने कहा कि भारत में राष्ट्रीय स्वशासन को स्थापित किए बिना जनता की भावनाओ की तुष्टि तथा अखिल भारतीय संघ की स्थापना नामुमकिन है। शान्ति और सुव्यवस्था को प्रतिष्ठित करने के लिए उत्तरदायी शासन के मूलभूत सिद्धान्तो के आधार पर केन्द्रीय व्यवस्था का पुनर्गठन नितान्त आवश्यक है।

मालवीयजी गाधीजो के इस विचार से भी सहमत थे कि संरक्षण अर्थात् सेना राष्ट्र के अस्तित्व का तत्व है, और जब तक किसी राष्ट्र का संरक्षण किसी बाह्य शक्ति द्वारा नियन्त्रित है, तब तक वह राष्ट्र नि.सन्देह उत्तरदायित्व ढंग से शासित नही समझा जा सकता।[2] उनका कहना था कि राष्ट्रीय संरक्षण का उत्तरदायित्व स्वशासन का महत्त्वपूर्ण अग है, और सेना पर केन्द्रीय विधान सभा का पूरा नियन्त्रण स्वस्थ उत्तरदायी प्रशासकीय व्यवस्था की स्थापना के लिए नितान्त आवश्यक है। वे चाहते थे कि सेना का नियन्त्रण भारतीय सदस्य को हस्तान्तरित कर दिया जाय, जो राष्ट्रीय सरकार के दूसरे मन्त्रियो की तरह केन्द्रीय विधान सभा को उत्तरदायी हो, और संकटकालीन परिस्थिति में ही मन्त्रिमण्डल की राय से गवर्नर-जनरल सेना के संचालन और प्रबन्ध का भार स्वयं ग्रहण कर सके। अपने विचार को स्पष्ट करते हुए मालवीयजी ने कहा: "जब मैं सेना को भारतीय सदस्य के अधीन रखने की बात कहता हूँ, तब मेरा तात्पर्य वैसे ही अधिकार से है जैसा कि प्रत्येक सभ्य शासन के अधीन सदस्य को दिया जाता है।" वे राष्ट्र की प्रगति के लिए सेना का पुनर्गठन और भारतीयकरण भी आवश्यक समझते थे। उनके विचार में भारतीय जनता के लिए राष्ट्रीय राजस्व का पैतालिस प्रतिशत सेना पर खर्च करना अवश्य ही कष्टदायक है। वे चाहते थे कि स्थायी सेना को घटाकर एक नागरिक सेना गठित की जाय जो संकट में काम में लायी जा सके। उनकी धारणा थी कि नागरिक सेना का व्यय स्थायी सेना की तुलना में कम होगा, और उसके द्वारा "जनता मे राष्ट्र की रक्षा की भावना" भी जागृत और विकसित होगी।[1] देश के आर्थिक भार को कम करने के लिए वे गोरी पल्टनो को घटाना और हटाना आवश्यक समझते थे। उनका प्रस्ताव था

१. इण्डियन राउंड टेबिल कान्फरेन्स, सेकिंड सेशन, फेडरल स्ट्रकचर कमेटी, जि० २, पृ० १२२३। २. वही, पृ० १००१

कि गोरी पल्टन का वह भाग जो देश की आन्तरिक सुरक्षा के लिए नियत है ब्रिटेन वापस बुला लिया जाय, तथा उसका दूसरा भाग भी धीरे-धीरे कम करके भारतीय सेना का पूर्ण भारतीयकरण कर दिया जाय। वे चाहते थे कि भारतीय सेना में सब जाति, सम्प्रदाय, और वर्ग के भारतीय भरती किये जायें, और उन्हें हर प्रकार के अस्त्र-शस्त्रो की ऊँची से ऊँची शिक्षा दी जाय, ताकि भारतीय नवयुवक सेना के प्रत्येक विभाग में काम करने की क्षमता प्राप्त कर सकें। उन्होने बताया कि उन्होंने विश्वयुद्ध के बाद गठित रोलिसन कमेटी को कहा था कि सैनिक शिक्षा के लिए भारत में एक उच्चस्तरीय कालेज तथा कुछ सैनिक स्कूल स्थापित हो, और सरकार से वायदा किया था कि यदि वह इस काम के लिए धन लगाने में असमर्थ हो, तो सैनिक कालेज के लिए धन एकत्र करने को वे तैयार है। इसके बाद सरकार ने देहरादून में एक स्कूल स्तर की सैनिक शिक्षा सस्था अवश्य स्थापित की, पर वह देश की सैनिक आवश्यकता के लिए पर्याप्त नही समझी जा सकती। उनकी धारणा थी कि भारतीय सेना का पुनर्गठन और परिशिक्षण सेना के भारतीय सदस्य का उत्तरदायित्व होना चाहिए।[1]

कांफरेन्स के सभी भारतीय सदस्य प्रान्तीय स्वशासन के साथ ही केन्द्र मे उत्तरदायी शासन की स्थापना के पक्ष में थे। देशी नरेशों ने तो साफ तौर पर कह दिया था कि वे अखिल भारतीय सघ में तब तक शामिल नही होंगे जब तक केन्द्र मे उत्तरदायी शासन व्यवस्था लागू नही की जाती। सभी प्रान्तीय सदस्य सेना के भारतीयकरण के भी पक्ष मे थे। पर सर तेज बहादुर सप्रू और श्री श्रीनिवास शास्त्री आदि चाहते थे कि कुछ काल के लिए सेना का भारतीय सदस्य केन्द्रीय विधान मण्डल के बजाय गवर्नर-जनरल को उत्तरदायी हो।[2] मालवीयजी इस सुझाव को स्वीकार करने को तैयार नही थे।[3] जिस तरह मालवीयजी गोरी पलटन कम करके और हटाकर तथा नागरिक सेना को संघटित करके भारतीय सेना का भारतीयकरण करना चाहते थे, वह गतिविधि भी सम्भवत बहुत से भारतीय सदस्यो को अव्यावहारिक दिखाई देती थी, कम से कम वे इतने आग्रही नही थे जितने मालवीयजी। लार्ड रीडिंग आदि अंग्रेज सदस्य तो इसे बिल्कुल ही मानने को तैयार नही थे।[4] सर तेज बहादुर सप्रू की यह भी राय थी कि वैदेशिक मन्त्री भी गवर्नर-जनरल को

---

१ वही, ९८०-९९१।
२. वही, पृ० ९७२, १००८।
३. वही, पृ० ९८१।
४. वही, पृ० ९९७।

ही उत्तरदायी हो, वह भारतीय मन्त्रिमण्डल का सदस्य होते हुए इस विभाग के प्रबन्ध के लिए विधान मण्डल को उत्तरदायी न हो।[1] यही राय श्री श्रीनिवास शास्त्री की थी।[2] पर मालवीयजी की तरह श्री० ए० आर० ऐयंगर चाहते थे कि रक्षा और वैदेशिक विषय, दोनो ही विधान मडल के अधीन हो।[3]

गाधीजी की तरह मालवीयजी भी वयस्क मताधिकार के पक्ष में थे। दोनो का विचार था कि इससे जनता का राजनीतिक स्तर ऊँचा उठेगा। पर जवकि गाधीजी का झुकाव परोक्ष निर्वाचन पद्धति की ओर दिखाई देता था, मालवीयजी प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली के पक्ष में थे। इसी तरह जवकि गाधीजी एक सदनोय विधायिका के पक्ष में थे, मालवीयजी दो सदन आवश्यक समझते थे, और दूसरे सदन मे रियासतो के प्रतिनिधियो को चालीस प्रतिशत स्थान देने को तैयार थे। पर जवकि विधेयको का संशोधन वे दूसरे सदन का मुख्य काम समझते थे, द्रव्य विधेयको (मनी विल्स) पर पहले सदन का ऐकान्तिक अधिकार ही वे उचित समझते थे। रियासतो के प्रवक्ता चाहते थे कि दोनो सदनो के अधिकार समान हो, और पहले सदन में भी रियासतो के प्रतिनिधियो के लिए एक तिहाई स्थान सुरक्षित किये जायें। मालवीयजी इन वातो को स्वीकार करने को तैयार नही थे।

काग्रेस के पूर्णस्वराज्य सम्वन्धी निर्णय को ध्यान में रखते हुए गाधीजी ब्रिटेन से भारत के भावी मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध को "स्वैच्छिक समान साझादारी" के नाम से सम्वोधित करते थे, मालवीयजी अपने पुराने अभ्यास के अनुरूप उसे पूर्ण "औपनिवेशिक पद (डोमीनियन स्टेटस)" कहते थे। यद्यपि भाषा भिन्न थी, दोनो के विचार और भाव एक जैसे थे। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के वयोवृद्ध सदस्य लार्ड वेलफोर ने सन् १९१८ मे ही ब्रिटिश सरकार की ओर से घोषित कर दिया था कि पूर्ण स्वतन्त्र उपनिवेश 'कामनवेल्थ के समान और स्वतन्त्र सदस्य है।' इस रूप में ही सन् १९२५ में देशवन्धु चितरजन दास ने अपने फरीदपुर भाषण में ब्रिटिश कामनवेल्थ की सदस्यता के विचार का समर्थन किया था। सन् १९३१ में ब्रिटिश पार्लियामेट ने भी वेस्ट मिनिस्टर स्टेचूट में दास साहव के विचार के विल्कुल अनुरूप ही कामन्वेल्थ की सदस्यता की व्याख्या की थी। काफरेन्स के अन्य सभी सदस्य 'डोमीनियन स्टेटस' को ही भारत का राजनीतिक ध्येय स्वीकार करते थे।

---

१. वही, पृ० १०१०। २. वही, पृ० १००८।
३. वही, पृ० १०२३।

गाधीजी की तरह मालवीयजी भी उन ब्रिटिश व्यापारियों को, जो भारत में कोई व्यापार कर रहे थे, यह विश्वास देने को तैयार थे कि उनके व्यापार, उद्योग तथा सम्पत्ति के सम्बन्ध में कोई ऐसा कानून या आदेश पारित नही किया जायगा जो समान रूप से भारतीय औद्योगिको और व्यापारियो पर लागू न हो। पर दोनों में से कोई भी यह आश्वासन देने को तैयार नही था कि किसी प्रकार का भेदमूलक कानून या भेदमूलक आदेश जारी नही किया जायगा। गाधीजी ने स्पष्ट तौर पर कहा कि गरीब जनता की आर्थिक दशा को सुधारने के लिए भारत सरकार को बहुत से ऐसे कानून पास करना होगे जिन्हे औद्योगिक वर्ग या सम्पत्ति-सम्पन्न अपने विरुद्ध समझ सकते हैं। मालवीयजी ने कहा कि देश के औद्योगिक विकास के लिए भारत सरकार को नाना प्रकार से भारतीय उद्योगो को ऐसी सहायता देनी होगी जो भारत में चालू विदेशी उद्योग व्यापार को समान रूप से नही दी जा सकती। उन्होने कहा : "भारत में व्यापार करने वालो के हको की चर्चा एक बात है, भारत के देशज उद्योगो की न्यायसगत उपायो द्वारा उन्नति करना दूसरी बात है। भारत में व्यापार करने वाले विदेशी और अग्रेज अपने व्यापारिक अधिकारो की रक्षा माँगने के हकदार हैं, पर वे भारत में भारतीय देशज उद्योगो के समान सहायता और संरक्षण मागने के अधिकारी नही हैं"[1]। इन कारणो से बेन्थल की इस माग का विरोध करते हुए कि अंग्रेजो के व्यापार का संरक्षण भारतीय व्यापार के समान हो, और कोई भेदमूलक कानून पास न हो, तथा गाधीजी के सुझाव की भाषा को किसी अंश में सशोधित करते हुए मालवीयजी ने प्रस्ताव किया कि केवल प्रजाति, धर्म या रग के आधार पर किसी व्यक्ति के विरुद्ध जो हिन्दुस्तान में विधिसंगत ढग से रह रहा है या प्रवेश करता है न कोई भेदमूलक कानून पास किया जायगा न कोई भेदमूलक प्रशासनीय कार्यवाही की जायेगी।[2] मालवीयजी और गाधीजी के विचार में इस प्रकार की व्यवस्था द्वारा विदेशी व्यापारियो के न्यायसंगत हितो की भरपूर रक्षा हो सकेगी। इस सम्बन्ध में लार्ड रीडिंग से, जो बेन्थल की तरह सब प्रकार के भेदमूलक कानून के विरुद्ध थे, और चाहते थे कि ब्रिटिश उद्योग और व्यापार की भारत के उद्योग व्यापार के समान ही रक्षा हो, मालवीयजी का विवाद भी हुआ।

श्री एम० आर० जयकर, श्री श्रीनिवास शास्त्री, श्री ए० आर० ऐयंगर प्रभृति बहुत से दूसरे नेताओ ने मालवीयजी के विचारो का समर्थन किया।

---

१. वही, पृ० ११२३। २. वही, पृ० ११२४, ११३०।

श्री श्रीनिवास शास्त्री ने स्पष्ट शब्दो में कहा कि देशी उद्योगों को प्रोत्साहित करने के लिए जो भी सहायता सरकार द्वारा दी जाती है, उसका भार जनता को सहन करना होता है, जिसे वह राष्ट्र के हित में वहन कर सकती है, पर विदेशी उद्योगो को वही सहायता देकर भारतीय जनता को भार वहन करने के लिए वाध्य करना न्यायसंगत नही समझा जा सकता। भारतीय औद्योगिको के प्रतिनिधि सर फीरोज सेठना और सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास ने भी बैन्थल के विचारो का विरोध करते हुए मालवीयजी के विचारो का समर्थन किया। उन्होने बहुत से दृष्टान्त देते हुए बताया कि भारत में अंग्रेज औद्योगिको ने भारतीय व्यापार और उद्योगो की प्रगति में किस तरह रोडे अटकाये, और कहा कि कामनवेल्थ की सदस्यता के नाम पर अंग्रेज औद्योगिक उन सुविधाओ की आशा नही कर सकते जिनसे भारत के औद्योगिक विकास को क्षति पहुंचे। सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास ने कहा कि जिस समान साझादारी की चर्चा बेन्थल साहब करते है, वह तो भारत के आर्थिक विकास में बाधा डालेगी, देश के आर्थिक सुधार और उन्नति पर अनुद्धार्य बन्धकपत्र लागू कर देगी, और काफरेन्स में विचाराधीन राजनीतिक स्तर की उन्नति को निरर्थक कर देगी"।[1]

सम्पत्ति अधिकार

गांधीजी ने सम्पत्ति-सम्बन्धी हितो की रक्षा के सम्बन्ध में प्रस्ताव किया कि किसी मौजूदा स्वत्व मे जो न्यायसंगत ढंग से प्राप्त किया गया है, और जो राष्ट्र के उत्कृष्ट हितो के विरुद्ध नही है, हस्तक्षेप नही किया जायगा, बजुज एक कानून के जरिये जो इन स्वत्वो पर लागू हो। जब मालवीयजी का ध्यान सम्पत्ति सम्बन्धी उस प्रस्ताव की ओर दिलाया गया, जो उन्होने सन् १९२८ में लखनऊ में सर्वदलीय काफरेन्स में प्रस्तावित किया था, तब उन्होने उसे मानते हुए भी गाधीजी के इस प्रस्ताव का समर्थन करना न्यायोचित बताया, अर्थात् उनके विचार में इन दोनो में कोई मौलिक विरोध नही था।[2] गाधीजी और मालवीयजी दोनो ने कहा कि राष्ट्रहित सर्वोपरि है, और उसकी रक्षा और वृद्धि के निमित्त सब सभ्य देशो में वैयक्तिक सम्पत्ति और स्वत्वो में कानून द्वारा हस्तक्षेप और परिवर्तन होता ही रहता है। अपने इस तर्क के समर्थन में मालवीयजी ने कई देशो की संवैधानिक धाराओ का उदाहरण देते हुए स्पष्ट शब्दो में कहा कि ब्रिटिश शासन में सरकारी अफसरो ने राष्ट्र के हितो की उपेक्षा

१. वही, पृ० १०७५। वही, पृ० ११२९।

करते हुए गलत तरीके से राष्ट्र की सम्पत्ति पर कतिपय व्यक्तियो का स्वत्व प्रतिष्ठित कर दिया है, उन सब स्वत्वो की तुलना न्यायसंगत विधि से प्राप्त स्वत्वों से नही की जा सकती। गलत तरीको से प्राप्त स्वत्व की जाच कानून के आधार पर न्यायालयो द्वारा अवश्य ही न्यायसंगत है।[1] सर तेज बहादुर सप्रू का विचार था कि स्थायी प्रदानो का फिर से संपरीक्षण न्यायोचित नही होगा।[2]

अल्पसंख्यक कमेटी

२८ सितम्बर सन् १९३१ को अल्पसंख्यक कमेटी की पहली बैठक हुई। कुछ बातचीत के बाद कमेटी की बैठक तीन दिन के लिए स्थगित हो गयी। १ अक्तूबर को गाधीजी ने कहा कि बैठक को एक सप्ताह के लिए और स्थगित कर दिया जाय, ताकि किसी छोटी सी गोष्ठी में या वैयक्तिक विचार विमर्श द्वारा शान्ति के वातावरण मे समाधान ढूंढा जा सके। कई सदस्यो ने इसका विरोध किया, पर अन्त में बैठक एक सप्ताह के लिए मुलतवी कर दी गयी। इसके बाद गांधीजी ने कांफरेन्स के बहुत से सदस्यो से अनौपचारिक ढंग से साम्प्रदायिक समस्या पर बातचीत की, पर कोई सर्वसम्मत समाधान नही निकल पाया।

८ अक्तूबर को अल्पसंख्यक कमेटी की दूसरी बैठक हुई। गाधीजी ने गम्भीर खेद और गम्भीरतर नदामत के साथ स्वीकार किया कि वह प्रतिनिधियो से अनौपचारिक बातचीत द्वारा साम्प्रदायिक समस्या का कोई समाधान निकालने में बिल्कुल विफल रहे है। उन्होने यह भी कहा कि विफलता के कारण भारतीय प्रतिनिधियो की बनावट में निहित थे। करीब करीब हम सब पार्टियो या ग्रुपो के निर्वाचित प्रतिनिधि नही है, बल्कि सरकार की नामजदगी से ही यहाँ है। समाधान के लिए जो व्यक्ति अनिवार्य रूप से आवश्यक है, वे भी यहाँ नही पाये जाते। गाधीजी को सलाह थी कि अल्पसंख्यक कमेटी की बैठकें उस समय तक के लिए स्थगित कर दी जाये जब तक सविधान की बुनियादी बातें तय नही हो जाती, और यदि उसके बाद भी साम्प्रदायिक प्रश्न बने रहे, तो संविधान में न्यायिक ट्रिब्युनल की नियुक्ति की व्यवस्था कर दी जाय, जो इसका निर्णय करे।[3]

---

१. वही, पृ० ११२७, ११२९। २. वही, पृ० ११२७।

३. राउंड टेबिल कांफरेन्स, सेकिन्ड सेशन-माइनारिटी कमेटी, जि० २।

साम्प्रदायिक समस्या

इसके बाद अल्पसंख्यक कमेटी तो पाँच सप्ताह के लिए स्थगित हो गयी, पर साम्प्रदायिक समस्या बराबर परेशान करती रही। गाधीजी की इस बात के जवाब में कि बुनियादी राजनीतिक और सवैधानिक प्रश्नो के तय हो जाने के बाद ही वास्तविकता के आधार पर साम्प्रदायिक समस्या का समाधान संभव है, मुसलमान प्रतिनिधियो का कहना था कि मुसलमानो के लिए उनके अधिकारो और हितो का समुचित प्रबन्ध तथा राज्याधिकार मे उनके हिस्से का निर्णय ही सर्वाधिक बुनियादी प्रश्न है। सर शफात अहमद खाँ ने घोषित किया : "जब तक साम्प्रदायिक समस्या हल नही होती और हमें (मुसलमान प्रतिनिधियो को) पता नही चलता कि उनकी स्थिति क्या है, तब तक अन्य विषयो पर हमारे विचार-विमर्श में कोई यथार्थता नही है।"[1] मिस्टर मुहम्मद अली जिना और सर मुहम्मद शफी ने घोषित किया कि जब तक मुसलमानो की माँगें और संरक्षाए संविधान में शामिल नही हो जाती तब तक वह उन्हें मंजूर नही होगा।[2] गाँधीजी का यह सुझाव कि प्रत्याशित सविधान में अनिश्चित प्रश्नो पर निर्णय करने के लिए न्यायिक ट्रिब्युनल की नियुक्ति की व्यवस्था कर दी जाय, मुसलमान प्रतिनिधियो को मंजूर नही था, क्योकि वे तो सबसे पहले साम्प्रदायिक प्रश्नो पर सर्वसम्मत निर्णय भारत के सवैधानिक ढाँचे को निश्चित करने के लिए जरूरी समझते थे।

अल्पसंख्यक पैक्ट

इस गतिरोध और तनाव की स्थिति में यूरोपियन समुदाय के नेता ब्रान्थल साहब ने सब अल्पसंख्यको से बातचीत करके एक अल्पसंख्यक पैक्ट तैयार करवाया। सिक्ख इस पैक्ट में शामिल नही किये गये। यह पैक्ट पृथक् निर्वाचन पद्धति और पृथक् प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त पर आधारित था, और उसके समर्थको का दावा था कि वे भारतीय जनता के ४६ प्रतिशत व्यक्तियो का प्रतिनिधित्व करते है। सर हेनरी गिडने का कहना था कि 'हममें से जिन्होने इस प्रपत्र पर हस्ताक्षर किये है, उन्होने भारतीय राजनीति में एक और फूट पैदा करने के उद्देश्य से ऐसा नही किया है।' 'उनका लक्ष्य तो विभिन्न सम्प्रदायो के

---

१. वही, जि०, पृ० १००८।

२. वही, पृ० ९६४-९६५; पृ० १२१३-१२१४।

दृष्टिकोण और हितो की यथासंभव स्पष्ट व्याख्या करके और उन्हे सीमित कर के सहमति का यथासंभव बड़ा सामूहिक माप प्राप्त करना था'।

१३ नवम्बर सन् १९३१ को अल्पसंख्यक कमेटी की बैठक हुई। प्रधानमंत्री मैकडोनल्ड ने कमेटी का ध्यान अल्पसख्यक पैक्ट की ओर दिलाते हुए कहा कि साम्प्रदायिक प्रश्न की गुत्थी संविधान की तैयारी में रुकावट पैदा कर रही है। गाधीजी ने कहा कि पैक्ट के समर्थक चाहे कुछ कहे, काग्रेस ब्रिटिश भारत ही नही, बल्कि सारे भारत की ८५ प्रतिशत जनता का प्रतिनिधित्व करती है। उन्होने अपनी पुरानी बात को दोहराते हुए साम्प्रदायिक प्रश्न का निर्णय करने के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त न्यायिक ट्रिब्युनल का सुझाव पेश किया। उन्होने यह भी कहा कि हिन्दू, मुसलमान और सिक्खो को जो हल मजूर होगा उसे काग्रेस स्वीकार कर लेगी, पर वह किसी दूसरे अल्पसंख्यको के लिए विशेष रिजर्वेशन या विशेष निर्वाचन पद्धति का समर्थन नही करेगी।

प्रधानमंत्री मेकडोनल्ड की अनुमति से हिज हाइनेस आगा खॉ ने अल्पसंख्यक पैक्ट पेश किया और कहा : "हम यह स्पष्ट कर देना चाहते है कि इस कठिन और उलझी समस्या के ऊपर बहुत सावधानी और चिन्ता के साथ सोचने के बाद हम इस समझौते पर आये है, और उसे पूरा स्वीकार करना चाहिए। इस समझौते के सब अंश अन्योन्याश्रित है, और समझौता पूरा का पूरा लागू होता है या गिर जाता है।"

प्रधानमंत्री नही चाहते थे कि पैक्ट की सार्थकता पर कोई वाद-विवाद हो, पर विवाद छिड ही गया। कुछ सदस्यों ने इसका समर्थन और कुछ ने ने इसका विरोध किया। बहस ने तनाव की गम्भीर स्थिति पैदा कर दी।

मालवीयजी अल्पसंख्यक कमेटी में अन्त तक चुप रहे। उन्होने इस तरह गाधीजी का मूक समर्थन किया। केवल एक बार जब सर मुहम्मद शफी ने मालवीयजी की ओर संकेत करते हुए कहा कि यहाँ हिन्दू-महासभा के प्रवर्तक भी मौजूद है, तब मालवीयजी ने कहा कि मैं उसका प्रवर्तक या संस्थापक नही हूँ।[1]

अन्त में प्रधान-मन्त्री रेमजे मेकडोनल्ड ने विश्वास दिलाया कि अबतक जो काम गोलमेज कांफरेन्स में हुआ है उसे बेकार नही होने दिया जायगा, सरकार

१. राउन्ड टेबिल कांफरेन्स-सेकिंड सेशन-माइनारिटी कमेटी प्रोसीडिंग, जि० २, पृ० १३५०।

अपने पुराने वायदे पर अमल करती रहेगी। सर चिम्मनलाल सीतलवाद की इस बात की ओर संकेत करते हुए कि मेकडोनल्ड साहब स्वयं इस ग्रन्थी को सुलझाएँ, उन्होने पूछा कि 'क्या कमेटी के सब सदस्य मुझसे साम्प्रदायिक समस्या का समाधान करने की, मेरे निर्णय को स्वीकार करने की प्रार्थना पर हस्ताक्षर करने को तैयार है ?'[1] इस पर श्री श्रीनिवास शास्त्री ने कहा कि इस ओर के हम सब राजी है। इस पर मेकडोनल्ड ने कहा कि मैं किसी एक व्यक्ति या ग्रुप की नही, बल्कि कमेटी के सब सदस्यो की स्वीकृति चाहता हूँ।[2]

इसके बाद मालवीयजी, डाक्टर मुजे, राजा नरेन्द्र नाथ तथा डाक्टर एस० के० दत्त ने एक पत्र द्वारा मेकाडोनल्ड को सूचित किया कि वे चाहते हैं कि वे इस समस्या का निपाटरा करें, पर किसी मुसलमान ने इस प्रकार का कोई पत्र मेकाडोनल्ड को नही भेजा।

केन्द्रीय उत्तरदायित्व

भारतीय प्रतिनिधियो की परेशानी का सबसे बडा कारण तो नये भारत-मन्त्री की गतिविधि थी जिससे काफरेन्स टूटती नजर आती थी। वे सब की बात सुनते जाते थे, पर अपनी बात स्पष्ट रूप से नही कहते थे। वे साइमन कमीशन की रिपोर्ट से काफी प्रभावित दिखाई देते थे। उन्होने ९ नवम्बर सन् १९३१ को ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल को लिखा था कि "जब तक पार्टियाँ प्रान्तीय स्वशासन के रूप में अनुभव और शक्ति के साथ केन्द्र का ढाँचा निर्णय करने को नही बन जाती, तब तक संघ पर विचार करना समय से पूर्व है। इस बात को स्वीकार करना संघ को पाँच वर्ष के लिए सम्भवत. दस वर्ष के लिए मुलतवी करना है।"[3] इस गोपनीय नोट का हिन्दुस्तानी प्रतिनिधियो को सम्भवत कोई पता नही हो सका, पर भारत-मन्त्री की गतिविधि से उन्हें ऐसा दिखाई देता था कि वह पारस्परिक परामर्श की प्रक्रिया का अन्त कर, केन्द्र में उत्तरदायी शासन की स्थापना के प्रश्न को खटाई में डालकर साइमन कमीशन के सुझावो के आधार पर प्रान्तीय स्वशासन ही प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। इससे भारतीय प्रतिनिधियो के साथ-साथ ब्रिटेन के मजदूर दल के प्रतिनिधि भी विचलित थे।

---

१ वही, पृ० १३८६। २ वही, पृ० १३८७।

३ ताराचन्द्र : हिस्ट्री आफ दी फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया, जि० ३, पृ० १७५।

इस विषम परिस्थिति में सर तेज बहादुर सप्रू, सर चिमनलाल सीतलवाद, सर काउसजी जहाँगीर, सर फिरोज सेठना, श्रीमती सुबरायन, श्री श्रीनिवास शास्त्री, श्री रामचन्द्र राव, दीवान बहादुर मुदालियर, श्री एम० आर० जयकर, श्री ताम्बे, श्री एन० एम० जोशी, श्री जाधव, श्री वी० वी० गिरि तथा श्री शिवराव ने फेडरल स्ट्रक्चर कमेटी के अध्यक्ष लार्ड सेनके को एक पत्र लिखा, जिसमे उन्होने लिखा कि हमारी यह निश्चित राय है कि सघीय आधार पर उत्तरदायी व्यवस्था को भविष्य में स्थापित करने का केवल आश्वासन पाकर पहली किस्त के रूप में प्रान्तीय स्वशासन को आरम्भ करने के विचार का जरा-सा भी समर्थन करने को भारत की कोई भी प्रतिष्ठित पार्टी तैयार नही होगी। यदि सम्राट् की सरकार यह कदम उठाना ही चाहती है, तो वह हमारी सहमति से नही, बल्कि हमारी सलाह के बिल्कुल विरुद्ध होगा, और इस काम के लिए सरकार को सम्पूर्ण और अनन्य उत्तरदायित्व स्वयं ग्रहण करना होगा। हम गत १९ जनवरी की सरकारी घोषणा की पूर्ति की माँग करते है, जिसकी कुछ दिन हुए प्रधानमन्त्री ने राष्ट्रीय सरकार की ओर से साफ तौर पर पुष्टि की थी। केन्द्र मे उत्तरदायित्व की स्थापना को भविष्य के लिए छोड कर किसी नये वक्तव्य या प्रान्तीय स्वशासन के विधेयक की प्रस्तावना में घोषणा की पुनरावृत्ति को हमारा समर्थन नही होगा, और भारत में उसे विश्वासघात और देश की आवश्यकताओ के सर्वथा अपर्याप्त समझकर बुरा माना जायगा।

ब्रिटिश लेबर पार्टी के सम्मानित प्रतिनिधि प्रोफेसर लीज स्मिथ ने भी इस पत्र की बातो को ठीक समझते हुए उनकी पुष्टि में उस पर हस्ताक्षर कर दिये थे। उन्होने फेडरल स्ट्रक्चर कमेटी मे भावी राजनीतिक प्रक्रिया पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि प्रान्तीय स्वशासन की 'व्यवस्था अठारह मास में चालू की जा सकती है, जबकि अखिल भारतीय संघ की व्यवस्था को बनाने में तीन वर्ष या उससे कुछ अधिक समय लगेगा, फिर भी उनके विचार में जल्दी में प्रान्तीय स्वशासन को अलग से चालू करने से कही अच्छा होगा कि केन्द्र और प्रान्त दोनो में साथ-साथ उत्तरदायित्व शासन स्थापित किया जाय।'[1] भारतीय प्रतिनिधियो ने इस बात का पूरी तौर पर समर्थन किया।

तेज बहादुर सप्रू ने कहा कि "केन्द्र में उत्तरदायित्व से पृथक् प्रान्तीय स्वशासन का मैं अनन्य विरोधी हूँ—इस अवसर पर प्रान्तीय स्वशासन को

१. वही, जि० २, फेडरल स्ट्रक्चर कमेटी, पृ० ११६५-११६७।

स्वीकार करके हम अपने भविष्य को हानि पहुँचाने को तैयार नही हैं।"[1] श्री श्रीनिवास शास्त्री ने कहा "जनता केवल प्रान्तीय स्वशासन से सन्तुष्ट नही होगी, और सन्देह और अविश्वास के वातावरण में भयकर स्थिति पैदा होगी, जो भविष्य के लिए बहुत हानिकर होगी।"[2] दीवान बहादुर मुदालियर ने कहा कि वह जस्टिस पार्टी की ओर से यह स्पष्ट कह देना चाहते हैं कि उसके लिए, जिसने सदा ब्रिटेन से सहयोग किया है, केन्द्रीय उत्तरदायित्व के अभाव में प्रान्तीय स्वशासन की योजना कार्यान्वयन करना, तथा असन्तुष्ट जनता के आन्दोलन का दमन करना असम्भव है।[3] भारतीय मजदूरो के नेता एन० एम० जोशी ने कहा कि श्रमिक वर्ग जनता के कल्याण की वृद्धि के लिए स्वशासन चाहता है, और समझता है कि जब तक पूर्ण स्वशासन प्रतिष्ठित नही होता, तब तक देश के राजनीतिज्ञो और सरकार के लिए जनकल्याणकारी रचनात्मक कार्यो पर अपना ध्यान केन्द्रित करना संभव नही है।[4] एम० आर० जयकर ने कहा: "मेरे देश ने स्वतन्त्र होने का निश्चय कर लिया है। अब प्रश्न यह है कि क्या आप उसे वह सदिच्छा से देंगे ताकि हिन्दुस्तान से आपके सम्बन्ध बने रहें और दोनो के व्यापारिक सम्बन्ध चालू रहे, या उसे कटुता के वैकल्पिक ढग से देना चाहते है।"[5] श्रीमती सुबरायन ने कहा "इस समय सारे भारत की दृष्टि प्रान्त पर नही बल्कि केन्द्र पर जमी हुई है। वही हमारी राष्ट्रीयता का प्रतीक है। जो सुधार मिलेंगे उनका मूल्याकन एकमात्र केन्द्र में प्राप्त उत्तरदायित्व की मात्रा से होगा। उसकी अस्वीकृति या स्थगन सारे देश में जनता के सर्व वर्गों और श्रेणियो में बहुत ही दु खद निराशा पैदा कर देगा।"[6]

श्री पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास ने अपनी ओर से तथा अपने साथी घन श्याम दास बिडला एवं अपने व्यापार मंडल के अध्यक्ष जमाल मुहम्मद की ओर से भारतीय प्रतिनिधियो द्वारा प्रस्तुत पत्र का समर्थन किया। उन्होने कहा कि "भारतीय अधूरे सुधारो से तग आ गये हैं", और उन्हें सन्तुष्ट करने के लिए "केन्द्र में सच्चे ठोस सुधार" बहुत आवश्यक है। उन्होने कहा कि यदि भारत में ब्रिटिश व्यापार की रक्षा करनी है, तो जो थोडी सी सद्भावना बच रही है उसे ब्रिटिश सरकार की सद्भावना से सीचना होगा, वरना कम्युनिज्म और

---

१. वही, पृ० ११६९।
२. वही, पृ० ११७७-११७८।
३ वही, पृ० ११७२।
४. वही, पृ० ११७३-११७४।
५. वही, पृ० ११७६।
६. वही, पृ० ११७६।

बालशेविज्म का वृक्ष बढेगा, 'जिसके लिए जानकारो की दृष्टि में भारत सरकार और ब्रिटिश सरकार ही उत्तरदायी समझी जायेंगी[1] ।

मालवीयजी ने कहा कि यदि प्रान्तीय स्वशासन ही स्वीकार करना था, तो फिर गाधीजी यहाँ क्यो निमंत्रित किये गये, और काफरेन्स में रियासतो के राजे-महाराजे तथा राजनीतिज्ञ क्यो इकट्ठे किये गये, क्योकि जब तक केन्द्र में उत्तरदायी पद्धति स्थापित नही होती तब तक वे अपनी रियासतो को संघ में सम्मिलित करने को तैयार नही है। उन्होने कहा कि १९ जनवरी सन् १९३१ को प्रधान-मन्त्री मैकडोनल्ड ने अपनी घोपणा मे केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान पालिकाओ पर भारतीयो को शासन का उत्तरदायित्व सौंपने का वचन दिया था, और अब यदि सरकार केवल प्रान्तीय स्वशासन प्रतिष्ठित करेगी, तब भारतीय जनता उसे "विश्वासघात" का दोषी अवश्य ठहरायेंगे, वे समझेंगे कि उन्हें "ठगा गया है" और "अशान्ति दस गुनी वढ जायेगी" ।[2] मालवीयजी ने कहा कि मिस्टर जिना और सर मुहम्मद शफी भी कहते है कि वे राष्ट्र की प्रगति में बाधा नही डालना चाहते, केवल अल्पसंख्यको के हितो की समुचित रक्षा चाहते है। भारत और ब्रिटेन के पारस्परिक सम्बन्धो के वडे प्रश्न पर समझौता हो जाने पर अल्पसंख्यको के हितो की रक्षा का प्रश्न समझौते द्वारा तय किया जायगा ।[3]

अन्त में भूतपूर्व भारत-मन्त्री वेजवुड बेन ने बहुत ही सतप्त हृदय से कहा कि "ग्रेट ब्रिटेन और भारत के सम्बन्धो में इस प्रकार की काफरेन्स पहले कभी देखने में नही आयी—क्या यह सहयोग मौन सरकार से नष्ट कर दिया जायगा, जो हमारी टिप्पणियाँ लिख लेगी, पर उन पर कुछ कहेगी नही और अन्त में एक ऐसा मनमाना आदेश निकालेगी........जो इस कमेटी की इच्छाओ के विरुद्ध होगा। इस क्षण भारत में शान्ति और भारतीय जनता में सहयोग और सब कुछ दाँव पर है, और मैं बहुत गम्भीरता से अनुरोध करता हूँ कि हमें सरकार से आश्वासन मिले कि वह अपने अनुमोदन द्वारा, जो इस कमेटी की सर्वसगत माँग है, दोनो देशो की जनता में शान्ति और सद्भाव का मार्ग खुला रखेगी ।[4]

पिलीनरी सेशन

काफी निराशा और असन्तोष के वातावरण में पूरी काफरेन्स का अधिवेशन २८ नवम्बर सन् १९३१ को प्रारम्भ हुआ। बहुत से प्रतिनिधि इसलिए असन्तुष्ट

१. वही, पृ० ११७९ ।
२ वही, पृ० १२२४ ।
३. वही, पृ० १२२४ ।
४. वही, पृ० १२२९ ।

थे कि उनकी बातो पर ध्यान नही दिया गया। वहुतो को इस वात का क्षोभ था कि जितना काम हो सकता था नही हुआ, और ब्रिटेन के प्रतिनिधि मंडल ने फेडरल स्ट्रक्चर कमेटी के विचार-विमर्श को सफल बनाने में पर्याप्त योगदान नही किया। ब्रिटेन की नेशनल गवर्नमेण्ट के मौन ने तथा तरह-तरह की खबरो ने, एव धौलपुर-पटियाला ग्रुप के राजाओ के दृष्टिकोण ने, और अल्पसंख्यक कमेटी की विफलता ने बैन्थल जैसे थोडे से प्रतिनिधियो को छोडकर, जो भारत की राजनीतिक प्रगति में रोडे अटकाना ही अपना कर्तव्य समझते थे, वाकी सबको परेशान और उदास कर दिया था। फिर भी ब्रिटिश भारत के अधिकाश प्रतिनिधियो की यही कामना थी कि रियासतें किसी तरह भारतीय संघ में सम्मिलित होने को राजी हो जायें, और यदि वे राजी न हो तो भी नये राजनीतिक सुधार प्रान्तो तक सीमित न रहें। कर्नल गिडने, हाफिज हिदायत हुसैन, मिस्टर फजलुल हक, गजनवी आदि कुछ लोगो को छोडकर वाकी सभी हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि चाहते थे कि प्रान्तो के साथ ही साथ केन्द्र में भी उत्तरदायी शासन स्थापित किया जाय।

गाधीजी ने इस अवसर पर अपने विचारो को स्पष्ट करते हुए कहा : "भारत को वास्तविक स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। उसे किसी नाम से पुकारा जा सकता है। गुलाब किसी दूसरे नाम से भी उतनी ही मीठी सुगन्ध देगा, पर उसे स्वतन्त्रता का गुलाब होना चाहिए।"[२] उन्होने कहा . "मैं ग्रेट ब्रिटेन का साथी बनना चाहता हूँ। लेकिन मैं हूबहू उस स्वतन्त्रता का उपयोग करना चाहता हूँ, जिसका आप उपभोग कर रहे हैं, और मैं इस साझेदारी को केवल भारत के लाभ के लिए नही, केवल पारस्परिक लाभ के लिए ही नही चाहता, इसलिए भी चाहता हूँ कि वह भारी वोझ जो संसार को कणो में पीस रहा है उसके कंधो से उठ सके।"[३]

गाधीजी ने कहा कि काग्रेस उन सरक्षणो को देने के लिए वचनबद्ध है जिन्हे "भारत के हित मे प्रमाणित किया जा सके"। यह संरक्षण अवश्य ही "ग्रेट ब्रिटेन के हित में भी होना चाहिए", पर प्रस्तावित संरक्षण भारत के हित में नही हैं, इसलिए उन्हें स्वीकार नही किया जा सकता।[४]

---

१. इण्डियन राउड टेविल कान्फ्रेस, पिलीनरी सेशन प्रोसीडिंग्ज, पृ० २६९।
२. वही, पृ० २६९।
३. वही, पृ० २७९।
४. वही, पृ० २७१।

उन्होने स्वीकार किया कि जब तक अल्पसंख्यको की समस्या नही सुलझती, तब तक भारत के लिए स्वराज्य नही, पर उन्होने कहा जब तक विदेशी शासन के रूप में पच्चर सम्प्रदाय को सम्प्रदाय से, वर्ग को वर्ग से अलग करती रहती है, तब तक कोई वास्तविक सजीव समाधान नही हो पायेगा, इन सम्प्रदायो में कोई जीवित मित्रता नही होगी ।[1]

राजाओ को सम्बोधित करते हुए गाधीजी ने कहा कि यदि वे कुछ मौलिक अधिकारो को सारे भारत की सामान्य थाती के रूप में स्वीकार करते और यदि वे इन अधिकारो की न्यायालयो द्वारा जाँच किये जाने की अनुमति देते, और "अपनी प्रजा के लिए प्रतिनिधित्व का एक अश जोडते, तो वे अपनी प्रजा को बहुत कुछ सन्तुष्ट कर पाते, तथा सारे संसार और सारे भारत को दिखा पाते कि वे भी लोकतान्त्रिक भावना से उत्साहित है, वे विशुद्ध निरकुश रहना नही चाहते, बल्कि ग्रेट ब्रिटेन के सम्राट् जार्ज की तरह सवैधानिक राजा बनना चाहते है ।"[2]

मालवीयजी ने बहुत संतप्त हृदय से कहा कि यहाँ भारत की समस्या पूरी तौर पर नही समझी गयी है—यहाँ यह वातावरण नही है कि जिसमें भारत की जनता को सही दशा और जो भारत माँगता है उसकी सच्चाई की मान्यता हो सके ।[3] उन्होने कहा कि जनता की आर्थिक दशा आधी भी इतनी अच्छी नही जितनी उसे होना चाहिए, और "हम उनको इस दयनीय दशा से उबार नही सकते जब तक हमारे हाथ में हमारे मामलो के प्रबन्ध करने का अधिकार न हो ।"[4] भारतीय जनता की स्वतन्त्रता की अभिलाषाओ की उपेक्षा नही की जा सकती। उन्हे यह कह कर भी सन्तुष्ट नही किया जा सकता कि सरकार अपनी गतवर्ष की प्रतिज्ञा पर दृढ है, या नया संविधान बनाने में दो या तीन वर्ष लगेगे ।[5] उन्होने कहा कि आवश्यक बातो पर सहमति की घोषणा तुरन्त होनी चाहिए । उसके बाद शीघ्र ही एक प्रभावशाली प्रतिनिधिमंडल भारत भेजा जाय जो तीन मास में भारत की दशा की सही जानकारी प्राप्त करके भारतीय जनता की कामनाओ का मूल्याकन करे, और उसके बाद शीघ्र नया सविधान तैयार किया जाय। उन्होने कहा कि उन युक्तियुक्त संरक्षणो की व्यवस्था की जा सकती है जो भारत के हित में हो, पर

---

१. वही, पृ० २७३ ।
२. वही, पृ० २७४ ।
३. वही, पृ० २७५ ।
४. वही, पृ० २७९ ।
५. वही, पृ० २८० ।

जब तक सेना पर खर्चा घटाकर आधा नही किया जाता, और जब तक यह निश्चय नही हो जाता कि दूसरी स्वतंत्र सरकारो की तरह हमें भी खर्चे के सारे बजट को पुनरायोजित करने का पूर्ण अधिकार होगा, हमें यह विचार करने का कि कौन सी बचतें चालू की जायें, वैसा ही अधिकार होगा, जैसा दूसरी स्वतत्र सरकारो को है", तब तक "उत्तरदायी सरकार या उसकी छाया की बात करने से क्या लाभ है ?"[१] उन्होने कहा "हममें से कोई नही चाहता कि जनता सरकार के विरुद्ध विद्रोह करे, हम चाहते है कि कानून का आदर किया जाय, पर कानून को भी व्यक्ति की स्वतंत्रता का आदर करना चाहिए, और व्यक्ति को वह देना चाहिए जिसे वह सरकार से दावा करने का अधिकार रखता है।"[२] उन्होने कहा "भारत की जनता को स्वतंत्रता का अधिकार उतना ही है, जितना आपको।"[३] अन्त में उन्होने ईश्वर से प्रार्थना की कि वह अग्रेजो को अधिकारों को हस्तान्तरित करने की सद्‌बुद्धि, उदारता और शक्ति प्रदान करे।[४]

प्रधानमन्त्री की घोषणा

१ दिसम्बर सन् १९३१ को प्रधान मन्त्री मेकडोनल्ड ने काफरेन्स के पूर्ण सत्र में सरकार की ओर से वक्तव्य देते हुए कहा कि मोजूदा नेशनल गवर्नमेन्ट आश्वासन देती है कि पुरानी गवर्नमेन्ट द्वारा घोषित नीति ही उसकी नीति है। उन्होने उस नीति-वक्तव्य के कुछ अशों को उद्‌धृत करते हुए उद्‌घोषित किया कि सरकार अखिल भारतीय सघ को "भारत की सवैधानिक समस्या का एक आशाजनक समाधान"[५] समझती है और उसको स्थापित करने का प्रयत्न करेगी। उन्होने यह भी घोषित किया कि सम्राट् की सरकार साक्रातिक काल के लिए कुछ रिजर्वेशन और सेफगार्ड के साथ उत्तरदायी सघ सरकार के सिद्धान्त को स्वीकार करती है, और इस बात से सहमत है कि गवर्नरो के प्रान्तो में ऐसा उत्तरदायी शासन स्थापित किया जाय जो अपने क्षेत्र में अपनी नीतियों को कार्यान्वियन करने में बाह्य हस्तक्षेप और आदेशो से अधिक से अधिक सम्भव स्वतत्रता' का उपभोग करें।[६]

उन्होने कहा कि अखिल भारतीय सघ को स्थापित करने में काफी समय लगेगा, जबकि प्रान्तो में वास्तविक स्वशासन की व्यवस्था शीघ्र ही आसानी

---

१ वही, पृ० २७९। २. वही, पृ० २८२।
३. वही, पृ० २८२। ४. वही, पृ० २८२।
५. वही, पृ० २९०। ६. वही, पृ० २९१।

से की जा सकती है। इसलिए कुछ लोगो का सुझाव है कि प्रान्तीय स्वशासन की दिशा मे शीघ्र कदम उठाया जाय, पर चूंकि काफरेन्स चाहती है कि एक ही विधान में केन्द्र और प्रान्त दोनो की व्यवस्था हो, इसलिए सम्राट् की सरकार इस समय प्रान्तों मे उत्तरदायित्व के विस्तार की दिशा में जल्दी करना नही चाहती, पर इस सम्बन्ध में "कोई अटल निर्णय लेना भी आवश्यक नही समझती", क्योंकि "विचार और परिस्थितिया वदल सकती है"।[1]

प्रधान-मंत्री ने घोपणा की कि कुछ विशेप संरक्षणो के साथ उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त में सन् १९१९ के राजनीतिक सुधार शीघ्र ही चालू कर दिये जायेंगे, और यदि वित्तीय स्थिति सन्तोपजनक पायी गयी तो सिन्ध को अलग प्रान्त बना दिया जायगा। उन्होंने वायदा किया कि विभिन्न समस्याओ पर विचार करने के लिए कमेटियाँ नियुक्त की जायेंगी। संघ को स्थापित करने के लिए उसकी समस्याओ को विचार-विमर्श द्वारा हल करने का प्रयत्न किया जायगा। साम्प्रदायिक समस्या की गम्भीरता पर काफरेन्स का ध्यान, आकर्षित करते हुए उन्होंने कहा "नैसर्गिक अधिकारो की व्यवस्था से ही समस्या का समुचित समाधान सभव नही है, अल्पसख्यको के लिए विशेप प्रतिनिधित्व की भी व्यवस्था करनी होगी जिस पर काफी विचार करना होगा, ताकि वे एक तरफ अपने उद्देश्य के लिए पर्याप्त हो, और दूसरी ओर वे प्रतिनिधि उत्तरदायी शासन के सिद्धान्तो पर इतना अतिक्रमण न करें कि वे निरर्थकता के बराबर हो जायें।"[2]

प्रधानमंत्री का यह वक्तव्य बहुत ही निराशाजनक था, क्योकि इसमे (१) भारत के लिए डोमीनियन स्तर की स्वतंत्रता और समता की कोई घोषणा नही थी, (२) गवर्नर-जनरल के विशेप सुरक्षित अधिकारो, तथा वित्तीय और व्यावसायिक सरक्षणो की सीमाओ की भी सुस्पष्ट व्याख्या नही थी, (३) इस बात का भी पूरा आश्वासन नही था कि प्रान्तो और केन्द्र, दोनो में उत्तरदायी व्यवस्था साथ-साथ स्थापित की जायेगी, (४) केन्द्र मे उत्तरदायी शासन के प्रश्न को अखिल भारतीय संघ की स्थापना के साथ इस तरह जोड दिया गया था कि राजाओ की रजामन्दी के बिना केन्द्र में उत्तरदायित्व का शुभारम्भ असंभव हो गया था, (५) जनता के मौलिक अधिकारो की संवैधानिक व्यवस्था के सम्बन्ध में कोई आश्वासन नही था, (६) यह भी स्पष्ट नही था कि अनिर्णीत प्रश्नो पर विचार-विमर्श के लिए गोलमेज काफरेन्स का तीसरा सत्र होगा।

---

१. वही, पृ० २९२। २. वही, पृ० २९५।

चिन्ता

प्रधानमन्त्री की इस घोषणा से कही अधिक भारत-मन्त्री सर सेमुअल होर की कडी प्रशासनिक नीतिरीति चिन्ताजनक थी। गोलमेज काफरेन्स के पहले सत्र के बाद सहयोग की प्रक्रिया को बढाने का प्रयत्न किया गया था, इस बार गाधीजी के यह आश्वासन देने पर भी कि वे सविनय अवज्ञा प्रारम्भ करना नही चाहते और विचार-विमर्श के लिए समय देने को तैयार है, कांफरेन्स के खत्म होते-होते दमन जोरो से प्रारम्भ कर दिया गया। जब इसका समाचार लन्दन में मालवीयजी को मिला, तब वे वहाँ प्रधानमन्त्री तथा ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के कई अन्य सदस्यो, विरोधी दलो के नेताओ, दो भूतपूर्व वाइसरायो से, और कुछ प्रसिद्ध वकीलो से मिले, और उन्होने उनका ध्यान विशेष रूप से काले कानून के भयकर स्वरूप की ओर आकर्षित करते हुए अनुरोध किया कि उन्हें वापस लिया जाय।

सम्राट् से भेंट

लन्दन में गोलमेज काफरेन्स के अवसर पर मालवीयजी की सम्राट् पंचम जार्ज से भेंट हुई। पहुँचते ही बादशाह ने उनसे पूछा कि क्या वे मिस्टर गान्धी के अनुयायी है। मालवीयजी ने कहा कि नही, मैं उनका सहयोगी हू। इसके बाद ही बादशाह ने कहा कि 'यदि हिन्दुस्तान में हमारे एक आदमी पर भी वार होगा, तो उसके लिए मै एक लाख आदमी यहा से भेजूगा।' इसके उत्तर मे मालवीयजी ने कहा कि 'आप यह क्या कह रहे है ? आप हमारा हक स्वीकार करें, और हिन्दुस्तान चलकर दरबार करें, औपनिवेशिक स्वराज्य की घोषणा करें, इससे हमारे देश के सब लोग 'धन्य-धन्य' कहेंगे, और एशिया में आपका कीर्तिमान होने लगेगा। आपके एक आदमी पर वार हो और उसका बदला लेने के लिए एक लाख आदमी यहा से भेजें जायें, यह प्रश्न हल करने के लिए हम यहाँ नही आये है।' इसके बाद भारत-सम्राट् ने बात का सिलसिला बदल दिया, तथा रुखाई और धमकी की भावना छोड कर प्रेम और सद्भाव का प्रदर्शन करते हुए बातचीत करने लगे।

समीक्षा

काफरेन्स मे मालवीयजी, श्रीमती सरोजनी नायडू, श्री ए० रंगास्वामी ऐयगर तथा सेठ घनश्यामदास बिडला ने गाधीजी का समर्थन किया, जबकि अन्य प्रतिनिधि बहुत हद तक उनके प्रति उपेक्षित रहे। श्री श्रीनिवास शास्त्री आदि कतिपय प्रतिनिधियो को शिकायत रही कि मालवीयजी ने अपनी बातें

कहकर समस्याओ के समाधान में योगदान करने के वजाय बड़ी निष्ठा के साथ गाधीजी का समर्थन किया।

लन्दन जाने से पहले ही मालवीयजी ने राजव्यवस्था, साम्प्रदायिक समस्या तथा मौलिक अधिकारो पर पारित काग्रेस के प्रस्तावो को स्वीकार कर लिया था। कांफरेन्स में उनका समर्थन मालवीयजी का कर्तव्य था। आगा खा-होर-वेन्थल के कुचक्रो से घवड़ा कर राष्ट्रीय मागो को प्रतिपादित करने के वजाय कुचक्रो की गुत्थियो में अपने को फँसा लेना कौन बुद्धिमानी होती? उन्होने गाँधीजी का भरपूर समर्थन जरूर किया। काफरेंस में कौन ऐसा व्यक्ति था जिसके विचारो से मालवीयजी के विचार अधिक मिलते थे? और जहाँ नही मिलते थे, वहाँ उन्होने उसे काफी साहस से व्यक्त किया। मिसाल के तौर पर गाँधीजी द्वारा प्रतिपादित एक सदनीय विधान सभा के वजाय उन्होने द्विसदनीय विधान मडल का समर्थन किया, गाधीजी के परोक्ष निर्वाचन का विरोध करते हुए उन्होने प्रत्यक्ष निर्वाचन पद्वति को पुष्ट किया। उन्होने बहुत ही खुले शब्दों में घोषित किया कि वह डोमीनियन स्टेटस के पक्ष में हैं, और ब्रिटिश कामनवेल्थ में स्वतन्त्र और समान प्रभुसत्तासम्पन्न राज्यव्यवस्था को ही पूर्ण स्वराज्य मानते हैं। वित्तीय और सम्पत्ति सम्बन्धी सरक्षणो के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव गाधीजी ने किये उनका कुछ संशोधनो के साथ ही मालवीयजी ने समर्थन किया। दोनो ने इन प्रस्तावो के पक्ष में भिन्न तर्क उपस्थित किये, और जिन तर्को के आधार पर मालवीयजी ने उनकी पुष्टि की, उन्ही के आधार पर सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास और कतिपय उदार दलीय सदस्यों ने उनका अनुमोदन किया। इसी तरह मालवीयजी ने गाधीजी से कही अधिक विस्तार के साथ सघीय व्यवस्था से सम्बन्धित प्रस्तावों का विश्लेषण किया। इस तरह कुछ बातों मे उन्होने गाधीजी के विचारो का समर्थन किया, कुछ प्रस्तावो पर सप्रू साहव के विचारो की पुष्टि की, और कुछ विषयो पर अपने स्वतन्त्र विचार व्यक्त किये।

करीव करीब सभी ब्रिटिश राजनीतिज्ञ मालवीयजी के विचारो से सहमत नही थे। भारत के भूतपूर्व वाइसराय और ब्रिटिश लिवरल पार्टी के प्रमुख प्रवक्ता लार्ड रीडिंग से तो कई वार उनका विवाद भी हुआ। फिर भी, जैसा कि सर तेजवहादुर सप्रू ने अपने एक संस्मरण में लिखा है, "इस कान्फ्रेन्स में कोई भी ऐसा हिन्दुस्तानी नही था जिसे मालवीयजी से अधिक मात्रा में ब्रिटिश राजनीतिज्ञो का सम्मान प्राप्त था।"[1]

---

१. हिन्दुस्तान रिव्यू, दिसम्बर, सन् १९४६, पृ० ३५४।

२२. दूसरा सविनय अवज्ञा आन्दोलन, एकता कांफरेन्स, हरिजनोद्धार

१९३२-३४

लार्ड विलिंगडन

लार्ड अर्विन के उत्तराधिकारी लार्ड विलिंगडन, जो बम्बई और मद्रास के गवर्नर रह चुके थे, पुरानी साम्राज्यशाही मनोवृत्ति रखते थे। उन्होंने दूसरी गोलमेज काफरेन्स के जमाने में ही भारतमन्त्री सर सेमुअल होर की अनुमति से दमन आरम्भ कर दिया था। यद्यपि यह दमन देशव्यापी था, पर सीमाप्रान्त, युक्तप्रान्त, और बंगाल में उसका विशेष जोर था।

पत्र-व्यवहार

२८ दिसम्बर सन् १९३१ को गाधीजी लन्दन से बम्बई वापस आये। कार्यकर्ताओ ने अपने-अपने प्रान्त की गम्भीर स्थिति उन्हें बतायी। इसके बाद २९ दिसम्बर को गाधीजी ने वाइसराय को तार दिया, जिसमें उन्होने युक्तप्रान्त, सीमाप्रान्त और बगाल के अध्यादेशो और गिरफ्तारियो की, तथा सीमाप्रान्त के गोली-काड की चर्चा करते हुए पूछा कि "क्या इसका मतलब यह है कि हमारे बीच में मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध खत्म हो गये है, या आप चाहते है कि मैं आपसे मिलू और काग्रेस को परामर्श देने में मार्गदर्शन प्राप्त करूँ।"[1] इस तार से यह स्पष्ट था कि कांग्रेस की नीति निश्चित करने से पहले गाधीजी वाइसराय से बात करना चाहते थे।

३१ दिसम्बर को वाइसराय के निजी सचिव ने गाधीजी को सूचित किया कि वाइसराय "आपसे उन कार्यवाहियो के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करने को तैयार नही होंगे जिन्हे भारत सरकार ने सम्राट् की सरकार की पूरी सहमति से बंगाल, युक्तप्रान्त और उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्त में करना आवश्यक पाया है। ये उपाय हर हालत में चालू रखने होंगे, जब तक कि वे उस उद्देश्य को पूरा

---

१. पट्टाभि सीतारमैय्या, हिस्ट्री आफ दी इंडियन नेशनल काग्रेस, जि० १, पृ० ५११।

न कर पायें, जिसके लिए वे लागू किये गये थे, अर्थात् अच्छे शासन के लिए आवश्यक कानून और व्यवस्था की संरक्षा",[1] पर वाइसराय उनसे "भेंट करने को और उन्हे यह वताने को तैयार है कि सहयोग की उस भावना को वनाये रखने के लिए, जो गोलमेज काफरेन्स की कार्यवाहियो को अनुप्राणित करती थी, वे अपना क्या प्रभाव डाल सकते है।"[2]

यह तार निश्चय ही निराशाजनक था। इसका मतलव तो यही था कि वाइसराय गाधीजी की वात सुनने को तैयार नही थे, उन्हे केवल अपनी वात समझाना चाहते थे।

१ जनवरी को गाधीजी ने वाइसराय के सचिव को एक दूसरा तार दिया जिसमें उन्होने वाइसराय के उत्तर पर क्षोभ प्रकट करते हुए, तथा उनके तर्को का उत्तर देते हुए वाइसराय से अनुरोध किया कि कोई शर्तं लगाये वगैर मिला जाय, और वे वाइसराय से वायदा करते है कि वे उन तथ्यो को जो उनके सामने रखे जायँगे निष्कपट बुद्धि से विचार करेंगे। उन्होने काग्रेस वर्किंग कमेटी का सत्याग्रह सम्बन्धी प्रस्ताव भेजते हुए लिखा कि यदि वाइसराय उनसे मिलने को तैयार हो तो सविनय अवज्ञा का कार्य स्थगित कर दिया जायगा, इस आशा पर कि अन्त में उस पर अमल करने की आवश्यकता ही नही होगी।[3]

वाइसराय ने सविनय अवज्ञा की धमकी के साथ वर्किंग कमेटी और गाधीजी की शर्तो पर उनसे मिलने से इनकार कर दिया।

सविनय अवज्ञा

२ जनवरी सन् १९३२ को काग्रेस वर्किंग कमेटी ने सविनय अवज्ञा के सम्बन्ध में १२ सूत्रीय कार्यक्रम निश्चित किया। उसमे अहिंसा पर विशेष जोर दिया गया। उसमें आदेश दिया गया कि उन्ही स्थानो पर सविनय अवज्ञा आरम्भ हो, जहाँ जनता संघर्ष के अहिंसात्मक लक्षण को समझती हो, और जान-माल की क्षति वर्दाश्त करने को तैयार हो। घोर उत्तेजना की स्थिति में भी विचार, वचन और कार्य मे अहिंसा का पालन किया जाय, क्षति पहुँचाने के इरादे से सरकारी अफसरो, पुलिस और राष्ट्र-विरोधी तत्त्वो का सामाजिक वहिष्कार न किया जाय, क्योंकि वह अहिंसा की भावना के विरुद्ध है। वही लोग जुलूस और

---

१. वही, पृ० ५१२।
२. वही, पृ० ५१२।
३. वही, पृ० ५१२-५१४।

प्रदर्शनो मे भाग लें जो अपनी जगह से हटे बगैर लाठी और गोली का प्रहार सहन करने को तैयार हो। पूरी तौर पर अहिंसा का ध्यान रखते हुए शराब तथा विदेशी वस्त्रो की दुकानो का स्त्रियो द्वारा पिकेटिंग हो। इस कार्यक्रम द्वारा कांग्रेसजनो को आदेश हुआ कि वे हाथ का कता और हाथ का बुना खद्दर ही प्रयोग करें। विदेशी कपड़ो का वहिष्कार, बिना लाइसेन्स के नमक का वनाना और जमा करना, ब्रिटिश माल और सस्थाओं का वहिष्कार, एवं अनैतिक कानूनो तथा जनता को हानि पहुँचानेवाले कानूनो और आदेशो का, और अध्यादेशों के अन्दर जारी की गयी न्यायविहीन आज्ञाओ का सविनय उल्लंघन उसके अंग घोषित हुए।[1]

४ जनवरी को प्रातःकाल गाधीजी और सरदार पटेल गिरफ्तार कर लिये गये, और चार नये अध्यादेश जारी कर दिये गये। कुछ दिन के अन्दर ही वे सारे देश पर लागू कर दिये गये, सभी प्रमुख काग्रेसी नेता और कार्यकर्ता गिरफ्तार कर लिये गये, काग्रेस और उससे सम्बन्धित संस्थाएं गैरकानूनी घोषित कर दी गयी, और उनकी चल और अचल सम्पत्तियाँ जब्त कर ली गयी। नये अध्यादेश पुराने अध्यादेशो से भी अधिक कडे, तीव्र और व्यापक थे, मानव अधिकारो पर कुठाराघात थे। अराजकता से देश की रक्षा करना, सुशासन के ढांचे को बनाये रखना, इनका उद्देश्य बताया जाता था। पर सुशासन के आधारभूत सिद्धान्तो की अवहेलना, तथा क्रूर अवैधानिक उपायो द्वारा जनान्दोलन का दमन ही अध्यादेशो पर आश्रित शासन का वास्तविक लक्ष्य था। मानव गौरव का अनादर, नागरिक स्वतन्त्रताओ का अपहरण, वैधीकृत आतंक की स्थापना अध्यादेश शासन के प्रमुख ध्येय थे।

काग्रेस के आदेश के अनुसार सरकार के कानूनो, अध्यादेशो और आदेशो की सविनय अवज्ञा इस जनान्दोलन का मुख्य काम था। सरकार की निषेध-आज्ञाओ का उल्लघन करते हुए सभाएँ करना, जुलूस निकालना, तथा गाधी दिवस, मोती लाल दिवस, सीमा प्रान्त दिवस, शहीद दिवस और झडा दिवस मनाना, एवं साहस के साथ पुलिस की लाठियो के प्रहार को सहन करना काग्रेस के कार्यकर्ताओ और स्वयसेवको का साधारण काम था। सभी प्रान्तो में ब्रिटिश माल और ब्रिटिश संस्थाओ के वहिष्कार का विशेष रूप से प्रयत्न किया गया, शराब की दुकानो तथा विदेशी वस्त्रो की दुकानो का डटकर धरना दिया गया। नमक का वनाना भी जारी रहा। मध्यप्रदेश, करनाटक, युक्तप्रान्त, मद्रास प्रान्त

---

१. वही, पृ० ५१४-५१७।

तथा विहार के कतिपय स्थानो में जगलो का कानून तोडा गया। युक्तप्रान्त और बंगाल के कुछ भागों में लगानबन्दी का काम भी हुआ।

मालवीयजी के प्रयास

भारत को वापस आते हुए मालवीयजी रास्ते में पेरिस रुक गये, और वहां उन्होने सिलवा लेवी आदि विद्वानो तथा कतिपय राजनीतिज्ञो से भेंट की, तथा उन्हें एक भोज दिया। जब उन्हें यह समाचार मिला कि वाइसराय गाधीजी से वातचीत करने को तैयार नही है, तब उन्होंने प्रधानमन्त्री, भारतमन्त्री तथा वाइसराय को तार दिये कि गाधीजी से सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाय, और आशा व्यक्त की कि समझौते द्वारा काग्रेस और सरकार के बीच में विवाद-ग्रस्त बातो का निपटारा किया जायगा।

बम्बई आकर तीन चार दिन तक परिस्थिति का अध्ययन करने के बाद उन्होंने २९ जनवरी सन् १९३२ को एक पत्र में परिस्थिति का विस्तार के साथ विश्लेपण करते हुए वाइसराय से अनुरोध किया कि "दमन नीति का अवलम्बन करके आपने जो भारी भूल की है उसको सुधारें, काले कानूनो को वापस लें, और महात्मा गाधी को तथा इस नीति के अनुसार जो दूसरे लोग कैद किये गये हैं उन सभी स्त्रियो, पुरुपो तथा वालको को छोड दें, जो जुर्माने वसूल हो चुके हो वे लौटा दिये जायें, तथा देश मे फिर कानून का राज्य स्थापित किया जाय। जिन विशेप वातो के विषय में कुछ प्रान्तो मे सरकार और जनता में मतभेद है, उन्हें तय करने के लिए महात्माजी तथा अन्य काग्रेसी नेताओ को सरकार आमंत्रित करे, और सब लोग मिलकर उन स्थानो मे जा कर सब तरह से सन्तोपजनक स्थिति उत्पन्न करने का प्रयत्न करें, और जब आप इस प्रकार शान्त परिस्थिति उत्पन्न कर चुकें, तब महात्मा गाधी और अन्य व्यक्तियो को शासन-सुधार सम्बन्धी बडे प्रश्नो पर विचार करने के लिए निमंत्रित करें, और उन्हें भारत के लिए ऐसा शासन-विधान बनाने के प्रयत्न में सहायता करने का अवसर दें, जिससे उसे ग्रेट ब्रिटेन की बराबरी का गौरव प्राप्त हो जाय, और इस प्रकार इंगलैंड और भारत के बीच ऐसा सम्बन्ध स्थापित हो जाय जो दोनो के लिए सम्मानजनक और हितकर हो।[1]"

२८ फरवरी सन् १९३२ को उन्होने लन्दन को एक समुद्री तार भेजने का प्रयत्न किया, जिसमे उन्होंने संक्षेप में भारत की परिस्थिति का दिग्दर्शन कराने

१. सीताराम चतुर्वेदी : महामना पंडित मदन मोहन मालवीय, खण्ड ३, पृ० १९५-२१०।

के निमित्त कुछ ऐसी चुनी हुई घटनाओं का जिक्र किया, जो उस तारीख तक भारत सरकार की उस दमन-नीति के कारण देश के सभी भागो में हो रही थी, जो सत्याग्रह आन्दोलन को दवाने और कांग्रेस को कुचलने के उद्देश्य से जारी थी। पर सरकार ने उस तार को लन्दन नही जाने दिया।

स्वदेशी आन्दोलन

इस बीच काशी में मालवीयजी ने अपनी अध्यक्षता में अखिल भारतीय स्वदेशी संघ स्थापित किया। डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र राय, डाक्टर भगवान दास, पण्डित हृदयनाथ कुंजरू और श्री मुशीर हुसैन किदवई उपाध्यक्ष, तथा श्री शिवराव, आचार्य जे० बी० कृपालानी और प्रोफेसर मुकुट बिहारीलाल मन्त्री मनोनीत किये गये। इसका प्रत्यक्ष उद्देश्य स्वदेशी का प्रचार था, पर जनता की राजनीतिक चेतना को दृढ करना, तथा उसके उत्साह को बढाये रखना भी उसका परोक्ष लक्ष्य था। अन्य सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के साथ-साथ कांग्रेस के कार्यकर्ताओ ने भी इसका स्वागत किया। कई प्रान्तो और नगरो में इसकी प्रान्तीय और जिला शाखाएँ स्थापित हुईं, पर बंगाल और उत्तर प्रदेश मे ही सबसे अधिक काम हुआ। बम्बई में 'स्वदेशी लीग' ने, तथा मद्रास में 'वाई इंडिया लीग' ने भी काफी काम किया।

मालवीयजी के आदेश पर स्वदेशी सघ के तत्त्वावधान में २९ मई सन् १९३२ को अखिल भारतीय स्वदेशी दिवस मनाया गया। देश के विभिन्न नगरो में बहुत उत्साह और उल्लास के साथ जुलूस निकाले गये, और सार्वजनिक सभाएँ की गयी। इस अवसर पर मालवीयजी ने एक वक्तव्य प्रसारित किया, जिसमें उन्होने ब्रिटिश भारत की जनता के साथ-साथ देशी रियासतों के राजाओं, सरकारों और प्रजा से भी स्वदेशी सघ और स्वदेशी प्रदर्शनी आयोजित करने का अनुरोध किया। उन्होने लिखा : "स्वदेश का अर्थ है अपना देश और स्वदेशी के मतलब हैं अपने देश के लोग और अपने देश की चीजें। भारत जिस तरह ब्रिटिश भारत की जनता का देश है, उसी तरह देशी रियासतो के लोगो और राजाओं का देश है, और मातृभूमि की भलाई के लिए स्वदेशी आन्दोलन को प्रोत्साहित करना देशी रियासतो के राजाओ और वहाँ की जनता का उतना ही कर्तव्य है जितना ब्रिटिश भारत की जनता का"। इस वक्तव्य में उन्होंने यह भी लिखा, "जनता का आर्थिक सुधार किसान और कारखानेदार दोनों के उद्योग-धंधो की उन्नति पर निर्भर है। स्वदेशी आन्दोलन में संलग्न लोगो को इन

दोहरे कामों को ध्यान में रखना चाहिए, किसानो की भलाई के लिए घरेलू उद्योग-धंधो को भी प्रोत्साहित करना चाहिए ।"[1]

बहुत ही शानदार जुलूस के बाद, जिसमें सब वर्गों और राजनीतिक विचारों के लोगों ने बहुत जोश के साथ भाग लिया, वाराणसी के टाउनहाल में मालवीयजी की अध्यक्षता मे विराट सभा हुई। मालवीयजी ने अपने भाषण में कहा कि गोखले 'स्वदेशी' को 'देश के प्रति गाढ प्रेम' कहते थे, और गाधी उसे 'कामधेनु' कहते है। हमारा कर्तव्य है कि हम सकल्प करें कि स्वदेशी चीजें ही काम में लायेंगे और जो चीज हमारे देश मे नही बनती, उसका प्रयोग यथा सम्भव टाल देंगे। स्वदेशी ही खरीदो, स्वदेशी ही बेचो—इसका खूब प्रचार होना चाहिए।[2]

मालवीयजी के आदेश पर पंडित रामनारायण मिश्र के अथक प्रयत्न से वाराणसी मे सेंट्रल हिन्दू स्कूल के मैदान में स्वदेशी प्रदर्शनी हुई। इसका उद्घाटन करते हुए मालवीयजी ने देश को आर्थिक और औद्योगिक स्थिति का चित्र खीचते हुए जनता से अनुरोध किया कि वे स्वदेशी के व्रत को धारण कर निष्ठा, लगन और त्याग के साथ राष्ट्र के आर्थिक और औद्योगिक उन्नति के निमित्त स्वदेशी के पवित्र आन्दोलन में भाग लें।

मालवीयजी के इन क्रियाकलापो का अंग्रेज अफसरो पर क्या प्रभाव हुआ, उसका अनुमान इस बात से किसी हद तक हो सकता है कि जब अगले वर्ष मई सन् १९३३ मे इस पुस्तक का लेखक बनारस जिला हरिजन सेवक सघ के मन्त्री की हैसियत से बनारस जिले के अंग्रेज पुलिस सुपरिंटेंडेंट से मिला, तब उन्होने बहुतसी इधर-उधर की बातें करते हुए कहा : "मैं नही जानता कि मालवीयजी का स्वदेशी कहा खत्म होता हैं, और उनकी राजनीति कब शुरू होती है।"

कांग्रेस की अध्यक्षता

१४ मार्च सन् १९३२ को कांग्रेस के स्थानापन्न अध्यक्ष मौलाना अबुल कलाम आजाद की गिरफ्तारी पर उनके आदेश पर श्रीमती सरोजनी नायडू ने कांग्रेस के संचालन का उत्तरदायित्व ग्रहण किया। वे २६ मार्च को मालवीयजी से मिलने बनारस आयी। यहा उन्होने मालवीयजी से देश की दशा तथा कांग्रेस के

१. 'आज', २९ मई सन् १९३२।
२. 'आज', १ जून सन् १९३२।

भावी कार्यक्रम पर कई घटे बात की। इसके आस-पास ही गोलमेज काफरेन्स की परामर्श-समिति के अध्यक्ष लार्ड लोथियन ने मालवीयजी को लिखा कि आप कमेटी को अपनी राय दीजिये। मालवीयजी ने इसके उत्तर में लिखा कि जब तक सब आर्डिनेंस (अध्यादेश) वापस नही लिये जायेंगे, सब राजनीतिक कैदी छोडे नही जायेंगे, और सरकार अपनी दमननीति बन्द नही करेगी, तब तक मैं किसी कमेटी से सहयोग करने की बात सोच भी नही सकता।[1]

दिल्ली के कार्यकर्ताओ से बात-चीत करने के बाद श्रीमती सरोजनी नायडू ने निश्चय किया कि अप्रैल के अन्तिम सप्ताह में दिल्ली में मालवीयजी की अध्यक्षता में काग्रेस का वार्षिक अधिवेशन किया जाय। जब स्थानापन्न अध्यक्षा श्रीमती सरोजनी नायडू ने मालवीयजी को अधिवेशन की अध्यक्षता स्वीकार करने को लिखा, तब उन्होने इस उत्तरदायित्व को स्वीकार करते हुए एक छोटा-सा वक्तव्य प्रकाशित किया। उन्होने लिखा—"काग्रेस के प्राय: जन्मकाल से ही उसके साथ घनिष्ट सम्बन्ध रखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त रहा है। कई अवसरों पर जबकि कुछ महत्त्व के प्रश्नो पर मेरा मतभेद रहा है, उसके प्रति मेरी श्रद्धा भक्ति में कमी नही पडने पायी। मैं सदा काग्रेस द्वारा ही देश-सेवा का यत्न करता रहा हूँ। अत इस अवसर पर काग्रेस के सिद्धान्त, विचार और कार्य का पथ-प्रदर्शक बनने का आदेश मेरे लिए धर्मादेश है, जिसका पालन करना अवश्य ही मेरा कर्तव्य है"।[2]

२० अप्रैल को मालवीयजी ने एक लम्बा तार ब्रिटेन को भेजने के लिए तैयार किया। उसमें उन्होने २० अप्रैल तक की घटनाओ का विश्लेषण करते हुए सरकार के दमन की कड़े शब्दो में निन्दा की। उन्होने लिखा कि यद्यपि सरकार की घोषणा के मुताबिक अब तक ६६ हजार ६ सौ आदमी गिरफ्तार किये गये है, पर वास्तव में उनकी संख्या ८० हजार से कम नही है। उन्होंने लिखा कि जिन्हें गिरफ्तार किया गया है उनमें ५ हजार से अधिक स्त्रियाँ है। इन गिरफ्तारियो में से बहुत-से लोगो का सम्बन्ध काग्रेस के झंडे के फहराने से है। लगभग ४२६ स्थानो पर झंडा फहराने के अभियोग में हजारो नागरिक गिरफ्तार कर लिये गये है। ये गिरफ्तारियाँ, उन्होने लिखा, सर्वथा अनुचित और अन्यायपूर्ण है। उन्होने यह भी लिखा कि बहुत से सम्मानित नागरिक बिना किसी न्याय-संगत कारण के गिरफ्तार कर लिये गये और जब छोडे गये, तब उन्हें आदेश

१. 'आज', अप्रैल सन् १९३२।
२. 'आज', ७ अप्रैल सन् १९३२।

हुआ कि वे नियत समय पर आज्ञानुसार पुलिस थाने में हाजरी दें। इस अपमानजनक आदेश का उल्लंघन करने पर इस आरोप पर उन्हें कडी सजाएँ दे दी गयी। जब कैदियो को तीन श्रेणियो में विभाजित करने के नियम बनाये गये थे, उस समय कहा गया था कि राजनीतिक कैदी 'ए' श्रेणी में रहेंगे, पर इस आश्वासन की उपेक्षा की जा रही है, तीन सौ-चार सौ राजनीतिक कैदियो को छोड कर वाकी सब 'बी' और 'सी' श्रेणी मे रक्खे गये हैं। काग्रेस के अवैतनिक कोषाध्यक्ष सेठ जमनालाल बजाज, और श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय जैसे सम्मानित व्यक्ति 'सी' श्रेणी में है। महात्मा गाधी की धर्मपत्नी कस्तूरबा गाधी भी कुछ समय तक 'सी' श्रेणी में ही रखी गयी थी। जेल मे कैदियो के साथ जिलाधिकारियो का व्यवहार अमानुषिक, निन्दनीय और अन्यायपूर्ण है। सरकार के अत्याचार और दमन से समस्या सुलझनेवाली नहीं है।[1]

सरकार ने मालवीयजी का यह तार लन्दन नही जाने दिया। इस पर उनके सुपुत्र गोविन्दजी ने उनके निजी सचिव की हैसियत से उसे पुस्तकाकार में प्रकाशित कर दिया। भारत के कुछ समाचारपत्रो में भी वह प्रकाशित हो गया।

भारत सरकार ने काग्रेस की स्वागत समिति को गैर-कानूनी घोषित करते हुए उसके पदाधिकारियो को गिरफ्तार कर लिया। श्रीमती सरोजनी नायडू को आदेश हुआ कि वे बम्बई से बाहर न जायें, काग्रेस के हजारो प्रतिनिधियों को रास्ते में रोक लिया गया, दिल्ली में कार्यकर्ताओ को ढूंढ ढूंढ कर गिरफ्तार किया जाने लगा। इस पर भी अधिवेशन किये जाने का निर्णय बना रहा। २३ अप्रैल को सरकार के आदेश की उपेक्षा करते हुए श्रीमती सरोजनी नायडू बम्बई से दिल्ली रवाना हुई, पर कुछ दूर जाने पर उन्हे गिरफ्तार कर लिया गया, और दूसरे दिन उन्हे एक वर्ष की सजा दे दी गयी। मालवीयजी से भी कहा गया कि वे दिल्ली न जायें, पर उन्होने इसकी उपेक्षा की, और अपने सुपुत्र गोविन्दजी, तथा डाक्टर मंगल सिह और श्री रंजीत पण्डित के साथ दिल्ली चल दिये। जमनापुल पर चारो व्यक्ति गिरफ्तार कर लिये गये।

इन तमाम बातो के बावजूद निश्चित समय पर चांदनी चौक में घटाघर के पास लगभग १५० काग्रेस कार्यकर्ता इकट्ठे हुए, और उन्होंने एक कार्यकर्ता की अध्यक्षता में, जिसका नाम सेठ रणछोड़दास घोषित किया गया, काग्रेस का अधिवेशन विधिवत् सम्पन्न करके दस मिनट के अन्दर पूर्ण स्वराज्य, अहिंसा, सविनय अवज्ञा और बाइकाट के सम्बन्ध में प्रस्ताव स्वीकार किये। इतने में

---

१. सीताराम चतुर्वेदी : महामना पंडित मदन मोहन मालवीय, खण्ड ३।

पुलिस के बहुत से सिपाही वहां पहुंच गये, और सब कार्यकर्ता गिरफ्तार कर लिये गये, जिन्होने पुलिस गाडी में चलते-चलते प्रस्तावो की छपी प्रतियाँ जनता मे वितरित की। इसके बाद नौ बजे से बारह बजे के बीच में बहुत से जत्थो ने चादनी चौक में आने का प्रयत्न किया। इनमें एक जत्था स्त्रियो का, दूसरा जत्था मौलाना हफीजुल रहमान की अध्यक्षता में मौलवियो का था, और तीसरा जत्था सिक्खो का भी था जिन्होने बहुत ही शान के साथ शीशगज गुरुद्वारे से चांदनी चौक जाने का प्रयत्न किया। सभी जत्थे बीच में ही रोक कर गिरफ्तार कर लिये गये। इस तरह दोपहर १२ बजे तक ८०० कार्यकर्ता गिरफ्तार हो गये। सायंकाल को फिर काग्रेसी जत्थो ने आना शुरू किया। पर इस बार पुलिस ने गिरफ्तार करने के बजाय मार-पीट कर जत्थों को तितर-बितर करने का प्रयत्न किया।

भारत-मन्त्री की घोषणा

इसके बाद भारत-मन्त्री सर सेमुएल होर ने पार्लियामेंट में घोषित किया कि सरकार उन भारतीयो से सहयोग करने को तैयार है, जो पार्लियामेंट द्वारा निर्धारित नीति के अनुसार सहयोग करने को राजी हो।

मालवीयजी का वक्तव्य

२ मई को मालवीयजी और उनके साथी छोड दिये गये। ३ मई को मालवीयजी ने प्रयाग से एक लम्बा वक्तव्य प्रसारित किया, जिसमें उन्होने कहा कि दिल्ली का अधिवेशन साबित करता है कि काग्रेस ने लोगो के दिलों में कितनी गहरी जड जमा ली है, और इस बडी संस्था की ओर से जो आन्दोलन हो रहा है, उसे दबाने का प्रयत्न करना ब्रिटिश सरकार जैसी शक्तिशाली सरकार के लिए भी कितना व्यर्थ है।[1] भारतमन्त्री के वक्तव्य की समालोचना करते हुए उन्होंने कहा कि भारत-मन्त्री और प्रधान-मन्त्री ने पार्लियामेंट में जिन "सरक्षणो पर जोर दिया है" उन्हे गाधीजी और काग्रेस की वर्किंग कमेटी "भारत के लिए सन्तोषजनक नही समझते", और उन्हें "चुपचाप मान लेना काग्रेस के लिए सम्भव नही है।"[2] काग्रेस तो भारत के लिए इंगलैंड तथा स्वाधीन देशों के समान ही स्वाधीनता चाहता है। "भारत और इंगलैंड के बीच मित्रता की यही शर्त है", और यही दोनो के लिए सम्मानयुक्त है।"[3] इस

१. 'आज', ४ मई सन् १९३२।
२. वही।
३ वही।

वक्तव्य में उन्होने यह भी लिखा कि भारत-मन्त्री को भारतीयो के स्वभाव के सम्बन्ध में भ्रम है कि उस समय जब कि "भारत के अस्सी हजार पुत्र और पुत्रिया जेल में बन्द है ... कोई स्वाभिमानी भारतीय भारत में नयी योजना को कार्यान्वित करने को सरकार से समझौता करने का कोई प्रस्ताव स्वीकार कर सकता है ।[1]

सांप्रदायिक निर्णय और गाधीजी का अनशन

१७ अगस्त १९३२ को प्रधान-मन्त्री मेकडोनल्ड ने साम्प्रदायिक समस्या पर अपना निर्णय प्रकाशित किया । राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से यह निर्णय नि सन्देह हानिकर था । पृथक् निर्वाचन द्वारा पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचन का विस्तार ही इसका लक्ष्य था । पृथक निर्वाचन पद्धति द्वारा अस्पृश्यो के लिए भी पृथक् प्रतिनिधित्व की व्यवस्था उसका एक विशिष्ट लक्षण था । गाधीजी को इस कारण उस पर विशेष रूप से आपत्ति थी । उन्होंने १३ नवम्बर सन् १९३१ में ही गोलमेज कांफरेन्स की अल्पसंख्यक कमेटी में कह दिया था कि वे अपनी जान पर खेल कर हिन्दू समाज से हरिजनो (अस्पृश्यो) को पृथक् करने का विरोध करेंगे ।

११ मार्च १९३२ को उन्होंने जेल से ही भारत-मत्री सर सेमुअल होर को चेतावनी दे दी थी कि यदि पृथक निर्वाचन क्षेत्रो द्वारा अस्पृश्यो के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की जायेगी, तो वे उसके विरोध में आमरण अनशन करेंगे । उन्होने लिखा कि उनकी राय में पृथक् निर्वाचन अस्पृश्यो और हिन्दुत्व, दोनो के लिए घातक हैं । वह हिन्दू समाज को 'विघटित' कर देगा और अस्पृश्यो को 'हानिकर' होगा । उन्होने लिखा कि उनके लिए यह प्रश्न राजनीतिक नही, बल्कि नैतिक और धार्मिक है ।[2]

१८ अगस्त सन् १९३२ को गाधोजी ने प्रधान-मन्त्री मेकडोनल्ड को सूचित किया कि वे २० सितम्बर को दोपहर से किसी प्रकार का भोजन लिये बिना आमरण अनशन करेंगे, पर वह बन्द कर दिया जायगा, यदि ब्रिटिश सरकार अपनी इच्छा से या जनमत के दबाव पर, अपने निर्णय को बदल देगी, और अस्पृश्य वर्गों के लिए साम्प्रदायिक निर्वाचन की योजना वापस ले लेगी, जिनके

---

१ वही ।

२ पट्टाभि सीतारमैय्या हिस्ट्री आफ दी इडियन नेशनल काग्रेस, जि० १, पृ० ५३९-५४१ ।

प्रतिनिधि सार्विक निर्वाचन क्षेत्रो से सामान्य सामूहिक मताधिकार के अन्दर, फिर वह चाहे कितने ही क्यो न हों, चुने जाने चाहिए।[1]

८ सितम्वर सन १९३२ को प्रधान मंत्री ने गाधीजी को लिखा कि सरकार की योजना मे दलित वर्ग हिन्दू समाज के अग वने रहेंगे, और हिन्दू निर्वाचको के साथ वरावर स्तर पर मतदान करेंगे, लेकिन पहले वीस वर्ष के लिए निर्वाचक के रूप में हिन्दू समाज का अंग रहते हुए वे विशेष निर्वाचन क्षेत्रो की सीमित सख्या द्वारा अपने अधिकारों और हितो की सुरक्षा के साधन प्राप्त करेंगे, जिसकी आज की परिस्थिति में आवश्यकता है।[2] उन्होने लिखा कि इस योजना में दलित वर्ग के मतदाता सामान्य हिन्दू निर्वाचको की सूची में होगे, और चुनावो में ऊँची जाति के प्रत्याशियो को उनके वोटो की याचना करनी होगी, और उन्हें ऊँची जाति के मतदाताओ की, इस तरह हर प्रकार से हिन्दू समाज की एकता वनायी रखी गयी है।[3] प्रधान मन्त्री ने गाधीजी को सूचित किया कि दलित वर्गों के लिए थोडे से ही स्थान सुरक्षित किये गये हैं, और सरकार का यह निर्णय दोनो पक्षो की सहमति से ही वदला जा सकता है।

इसके उत्तर में गाधीजी ने प्रधान-मन्त्री को सूचित किया कि उनकी राय में दलित वर्गो को दो वोट मिल जाने से ही वे या हिन्दू समाज विघटन से नही वच पाते। दलित वर्गों के लिए पृथक् चुनाव क्षेत्र की स्थापना में मुझे विष के इंजेक्शन का वोध होता है, जो हिन्दुत्व को नष्ट करने के लिए अभिकल्पित है, और जो दलित वर्गों का कोई हित करने वाला नही है।[4] उन्होने यह भी सूचित किया कि उनका निर्णय भी अपनी जगह पर अटल है।

ये सव पत्र १२ सितम्वर को प्रकाशित कर दिये गये। आमरण अनशन की सूचना ने सारे देश में तहलका मचा दिया। वहुत से सज्जनो ने गाधीजी से आमरण अनशन न करने का अनुरोध किया, पर वे अपने निर्णय पर दृढ रहे। सप्रू साहव ने माग की कि गाधीजी रिहा कर दिये जायें, पर जिन शर्तों पर सरकार उन्हें छोडने को तैयार थी वे उन्हे मजूर नही थी।

२० सितम्वर को गाधीजी का अनशन आरम्भ हुआ। दलित वर्गों के नेता श्री एम०सी० राजा ने पृथक् निर्वाचन व्यवस्था की निन्दा में एक वक्तव्य प्रसारित

१. वही, पृ० ५४२-५४३।
२. वही, पृ० ५४५।
३. वही, पृ० ५४५।
४. वही, पृ० ५४६।

किया । मालवीयजी ने हिन्दू नेताओ की कांफरेन्स आमन्त्रित की । पहले दिल्ली और बम्बई में, अन्त में पूना में हिन्दू नेताओ ने बातचीत की, और २५ सितम्बर को गाधीजी की अनुमति से, तथा श्री एम० सी० राजा और डाक्टर अम्बेदकर की सहमति से एक समझौता निश्चित किया गया, जो 'पूना पैक्ट' के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

पूना पैक्ट

इस पैक्ट द्वारा केन्द्रीय असेम्बली में हरिजनो के लिए सार्विक (जनरल) स्थानो के १८ प्रतिशत स्थान सुरक्षित कर दिये गये । इसी तरह प्रान्तीय विधान कौंसिलो के लिए भी सार्विक स्थानो मे हरिजनो की संख्या निश्चित कर दी गयी, जो साम्प्रदायिक निर्णय द्वारा निश्चित संख्या तथा हरिजनो की जनसंख्या के अनुपात से अधिक थी । चुनाव के सम्बन्ध मे निश्चय हुआ कि प्रत्येक हरिजन स्थान के लिए हरिजन मतदाता चार हरिजन प्रत्याशी चुनेंगे, और इनमें से एक साधारण चुनाव द्वारा सार्विक क्षेत्रो में सब मतदाता मिलकर चुनेंगे । यह प्रथा दस वर्ष तक चालू रहेगी, पर पारस्परिक समझौते से हरिजनो द्वारा प्रत्याशियो का चुनाव इसके पहले भी खत्म हो सकता है ।[1]

यह पैक्ट हरिजन और सवर्ण हिन्दू नेताओ के हस्ताक्षर से २५ सितम्बर को निश्चित हुआ, और २६ सितम्बर को सरकार ने इसे स्वीकार कर लिया, और उसी दिन सायंकाल ५-१५ बजे गाधीजी ने अपना अनशन समाप्त कर दिया । इस प्रयास की सफलता में मालवीयजी का महत्त्वपूर्ण योगदान था । पर उनके साथ ही साथ सर्वश्री अमृतलाल ठक्कर, राजगोपालाचारी, सरदार पटेल, राजेन्द्रप्रसाद, एम० आर० जयकर, हृदयनाथ कुंजरू, चुन्नीलाल मेहता, घनश्याम दास बिडला, एम० सी० राजा, बी० आर० अम्बेदकर तथा श्रीमती सरोजनी नायडू का भी भरपूर योगदान था ।

बम्बई मे विराट सभा

जन्मजात अस्पृश्यता के निवारण के लिए सवर्ण हिन्दुओ द्वारा सतत प्रयत्न इस समझौते का आवश्यक अंग था । इसका शुभारम्भ २५ सितम्बर को बम्बई में मालवीयजी की अध्यक्षता में आयोजित विराट सभा में किया गया । बम्बई के अतिरिक्त अन्य प्रान्तो के भी बहुत से सम्मानित हिन्दू नेताओ की उपस्थिति ने सभा को कांफरेन्स का रूप प्रदान कर दिया । कांफरेन्स ने निश्चय किया कि

---

१. वही, पृ० ५३४ ।

अब से हिन्दुओं में अपने जन्म के कारण कोई अछूत नही समझा जायगा, और जो अब तक ऐसे माने गये है उन्हें दूसरे हिन्दुओ के समान ही सार्वजनिक कुओं, सार्वजनिक सडकों, सार्वजनिक विद्यालयो तथा दूसरी सार्वजनिक संस्थाओ को प्रयोग करने का अधिकार होगा। इस अधिकार को पहले अवसर पर ही कानूनी मान्यता दे दी जायेगी, और यह स्वराज्य संसद के पहले अधिनियमो में से होगा, यदि उसे स्वराज्य से पहले ही ऐसी मान्यता प्राप्त नही हो गयी है। काफरेन्स में यह भी निश्चय हुआ कि न्यायसंगत और शान्तिमय उपायो द्वारा मन्दिरो में प्रवेश के सम्बन्ध में लगी रुकावटो के साथ उन सब सामाजिक असमर्थताओ को, जो इस समय तथाकथित अछूतो पर लागू है, दूर कराना भी सब हिन्दू नेताओ का कर्तव्य होगा।[1]

इस काफरेन्स ने अस्पृश्यता-निवारण संस्थान (एन्टी अनटचेबिलिटी लीग) स्थापित करने का भी निर्णय किया। सेठ घनश्यामदास बिडला अध्यक्ष, और श्री अमृतलाल ठक्कर प्रधानमंत्री नियुक्त हुए। बिडला साहब की देख-रेख में ठक्कर साहब की तत्परता और कार्यकौशल से सस्थान ने तेजी से प्रगति की। सारे देश में इसकी शाखाएँ स्थापित हो गयी, और उसके तत्त्वावधान में अस्पृश्यता-विरोधी प्रचार के साथ-साथ बहुत-सा हरिजन हितकारी रचनात्मक कार्य हुआ। आगे चल कर यह संस्था 'हरिजन सेवक सघ' के नाम से विख्यात हुई। इसे प्रगतिशील हिन्दू जनता का व्यापक समर्थन प्राप्त था।

आमरण अनशन के बाद जेल की पाबन्दियाँ फिर से गाधीजी पर लगा दी गयी। पर गाधीजी के आग्रह पर अस्पृश्यता-निवारण से सम्बन्धित उनके कार्यों पर से सरकार ने रुकावटें हटा ली।

एकता कांफरेन्स

बम्बई में ही मौलाना आजाद और सैयद महमूद मालवीयजी से मिले और उनसे हिन्दू-मुस्लिम समस्या पर बातचीत की। उसके बाद डाक्टर सैयद महमूद मौलाना शौकत अली से मिले। अक्तूबर के पहले सप्ताह में मौलाना आजाद, मौलाना शौकत अली और डाक्टर सैयद महमूद ने बम्बई कौंसिल के मुसलमान सदस्यो को सूचित किया कि मुस्लिम हितो के संरक्षणो के साथ संयुक्त निर्वाचन के आधार पर हिन्दू-मुस्लिम समझौता करने को मौलाना शौकत अली तैयार हो गये है, तथा मौलाना आजाद और डाक्टर सैयद महमूद मुसलमानो की मागो

---

१. वही, पृ० ५३६।

को मनवाने के लिए हिन्दुओ पर दबाव डालेंगे। इसके बाद कतिपय मुस्लिम नेताओ ने एक काफरेन्स में जमा होकर एकता काफरेन्स के विचार का स्वागत किया, और मुस्लिम मागो के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव मंजूर किया। एक वक्तव्य द्वारा मुस्लिम कांफरेन्स के अध्यक्ष डाक्टर इकबाल ने इस प्रस्ताव को पसन्द किया।

इसके बाद मालवीयजी के नेतृत्व मे इलाहाबाद में एकता काफरेन्स आयोजित हुई। उनके अनुरोध पर श्री सी० विजयराघवाचार्य ने दो चार दिन सम्मेलन की अध्यक्षता की। पर मालवीयजी को ही उसके संचालन का भार मुख्यतः वहन करना पड़ा। इकहत्तर वर्ष की आयु में उन्हें अकसर दिन में बारह-चौदह घटे काम करना पडता था। अन्त में २४ दिसम्बर सन् १९३२ को एकता सम्मेलन कमेटी ने सर्वसम्मति से एक समझौता किया।

इस समझौते में कहा गया कि इस सम्मेलन की राय में जनता को पूर्ण उत्तरदायी तथा सरकार के पूर्ण अधिकारो से सम्पन्न केन्द्रीय सरकार ही भारत की आवश्यकताओ को पूरा कर सकती है, और जनहित को सुरक्षित रख सकती है। सम्मेलन ने माग की कि रक्षा, वैदेशिक नीति, वित्तीय अधिकारो के साथ केन्द्रीय शासन, उन संरक्षणो के साथ जो भारतीय हितों के लिए प्रामाण्य रूप से आवश्यक हो, भारतीय जनता को हस्तान्तरित कर दिये जायें। उसने यह भी निश्चय किया कि प्रान्तीय सरकारें स्वाधीन हो, और प्रान्तीय विधान सभाओ को पूरे तौर पर उत्तरदायी हो। यह भी निश्चय हुआ कि केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारो के अधिकारों की विस्तृत सूचिया तैयार की जायें, तथा अवशिष्ट अधिकारो का प्रयोग प्रासागिकता तथा अनुसूचित विषयो से घनिष्ठता के आधार पर केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारो द्वारा किया जाये। यह भी निश्चित किया गया कि न्याय की दृष्टि में सब नागरिक समान होंगे। सबको सार्वजनिक सडको, सार्वजनिक कुओ तथा अन्य सार्वजनिक स्थलो के प्रयोग का समान अधिकार होगा, और उन सबकी स्वतन्त्रता और जीवन की राज्य द्वारा रक्षा की जायेगी। इन सब मामलो में धर्म, सम्प्रदाय, जाति, प्रजाति, और लिंग के आधार पर नागरिको में कोई भेद नही किया जायगा। कानूनी या प्रशासनिक व्यवस्थाओं द्वारा अल्पसंख्यक सम्प्रदायो के नागरिको के सम्बन्ध में न कोई भेदमूलक व्यवहार स्थापित किया जायगा, और न किसी भेदमूलक ढंग पर उनकी व्याख्या की जायेगी, या उनका प्रयोग किया जायगा। साधारण सार्वजनिक व्यवस्था और शिष्टता के अधीन प्रत्येक नागरिक को विश्वास की स्वतंत्रता, तथा अपने धर्म की

स्वतंत्र अभिव्यक्ति और व्यवहार की गारटी होगी। प्रत्येक अल्पसंख्यक समुदाय को अपने खर्चे पर परोपकारी, धार्मिक, सास्कृतिक, शैक्षिक और सामाजिक संस्था स्थापित करने का, तथा संचालन और प्रबन्ध करने का, और उनमें अपनी भाषा और लिपि प्रयोग करने का, एव अपने धर्म के अनुसरण करने का समान अधिकार होगा। निजी ससर्ग, व्यापार और धर्म, एव प्रेस, प्रकाशन और सार्वजनिक सभाओ और भापा और लिपि के प्रयोग के स्वतत्र प्रयोग पर कोई प्रतिबन्ध नही लगाया जायगा। प्रत्येक नागरिक को अधिनियम के अनुसार हथियार रखने का अधिकार होगा। सिक्खो को कृपाण रखने की स्वतंत्रता होगी। स धारण लिपि के रूप में हिन्दी और उर्दू अक्षरो के प्रयोग के अधिकार के साथ हिन्दुस्तानी केन्द्रीय सरकार की भापा होगी। अंग्रेजी के उपयोग की इजाजत होगी। प्रान्तो में प्रान्तीय भापा सरकारी भापा होगी, पर हिन्दुस्तानी और अंग्रेजी के उपयोग की इजाजत होगी। मौलिक अधिकारो का प्रारूप बनाने के लिए जो कमेटी नियुक्त की जायगी वह इन बातो को, तथा नेहरू रिपोर्ट को बुनियादी अधिकार सम्बन्धी सस्तुतियो को, एवं कराची में स्वीकृत कांग्रेस के प्रस्तावो को ध्यान में रखेगी।

यह भी निश्चय किया गया कि प्रत्येक सम्प्रदाय के धर्म, संस्कृति और परसनल ला की पूरे तौर पर रक्षा की जायगी, और उसके लिए (१) बुनियादी अधिकारो से सम्बन्धित परिच्छेद में प्रत्येक सम्प्रदाय को संस्कृति, भाषा, लिपि, शिक्षा तथा धर्म की स्वीकारोक्ति और व्यवहार की एव धर्मादा कोष के अधिकार की गारटी दी जायेगी, (२) सविधान की विशिष्ट व्यवस्था द्वारा परसनल ला सुरक्षित किया जायगा, (३) विभिन्न प्रान्तो में अल्पसख्यक सम्प्रदायो के राजनीतिक और अन्य अधिकारो की रक्षा का उत्तरदायित्व सुप्रीम कोर्ट के कार्य-क्षेत्र के अन्तर्गत होगा, (४) सम्बन्धित सम्प्रदाय के जनमत के समर्थन पर ही किसी सम्प्रदाय के परसनल ला में तब्दीली हो सकेगी, (५) मुसलमानो के परसनल ला में इस्लाम के सिद्धान्तो के आधार पर ही कोई तब्दीली की जा सकेगी। यह भी निश्चय हुआ कि यदि किसी सम्प्रदाय के दो-तिहाई विधायको की राय में विधान सभा द्वारा पारित कोई बिल उनके धर्म को या धर्म पर आधारित किसी सामाजिक व्यवहार को प्रभावित करता हैं, या यदि एक तिहाई विधायकों की राय में कोई बिल बुनियादी अधिकारो को प्रभावित करता है, तो ये विधायक उस बिल के पारित होने के एक मास के अन्दर अपनी आपत्ति विधान-सभा के अध्यक्ष को भेज सकते हैं, और वह उसे गवर्नर या गवर्नर-जनरल के

पास भेज देगा, जो उस बिल के प्रचलन को एक साल के लिए रोक देगा और उसके बाद उसे विधान-सभा के पास फिर से विचार करने के लिए भेज दिया जायगा। उसके बाद गवर्नर या गवर्नर-जनरल स्वनिर्णय द्वारा उसे स्वीकार या रद्द कर सकता है, और उसकी वैधानिकता पर सुप्रीम कोर्ट में विचार किया जा सकता है।

इस सम्मेलन में यह भी निश्चय हुआ कि सेना प्रान्तीयता से निर्मुक्त होगी, और सभी जाति और सम्प्रदाय के लोग योग्यता के आधार पर उसमें भरती हो सकेंगे। भरती करते समय परिवार की सैनिक परम्परा का ध्यान रखा जायगा, पर इस परम्परा के अभाव के कारण किसी भारतीय नागरिक को सेना में भरती करने से रोका नही जा सकेगा।

यह भी निश्चय हुआ कि केन्द्रीय और प्रान्तीय मन्त्रिमण्डल विधान-सभाओ को संयुक्त रूप से उत्तरदायी होंगे, और उनमें संवैधानिक परम्परा (कनवेन्शन) द्वारा प्रमुख अल्पसंख्यक सम्प्रदायो के सदस्य भी शामिल किये जायेंगे, जिन्हें संबधित सम्प्रदाय के काफी विधायकों का समर्थन प्राप्त हो। यह भी निश्चय हुआ कि सम्प्रदाय, जाति, धर्म, प्रजाति या लिंग के आधार पर कोई भारतीय नागरिक न तो सरकारी नौकरी से वंचित किया जायगा, और न उसकी पदोन्नति या प्रतिस्थापन किया जा सकेगा। सब नियुक्तियाँ निर्दलीय केन्द्रीय और प्रान्तीय पब्लिक सर्विस कमीशनो (लोक सेवा आयोग) द्वारा होगी, जिसमे सभी प्रमुख सम्प्रदायो के सदस्य होंगे। एक कमेटी नियुक्त की जायेगी जो सरकारी नौकरियो में क्षमता बनाये रखते हुए योग्यताओ को निर्धारित करेगी, जिससे उनमें विभिन्न सम्प्रदायों का प्रतिनिधित्व हो सके।

यह भी निश्चय हुआ कि सब विधान-सभाओ के चुनाव संयुक्त निर्वाचन पद्धति द्वारा होगे, पर दस वर्ष तक मुसलमानो के लिए केन्द्र में, बंगाल और पजाब मे, तथा उन प्रान्तो मे जहाँ वे अल्पसंख्यक है, कतिपय स्थान सुरक्षित रहेंगे। इसी तरह पजाब और केन्द्र में सिक्खो के लिए, तथा पंजाब, बंगाल और सिन्ध में हिन्दुओ के लिए संयुक्त निर्वाचन पद्धति के अन्तर्गत निश्चित अनुपात से स्थान सुरक्षित रहेगें, और इसी प्रकार का प्रबन्ध हिन्दुओ के लिए उत्तर पश्चिम सीमा-प्रान्त में भी किया जायगा। यह निश्चय किया गया कि केन्द्रीय विधान-सभा में मुसलमानो के लिए ३२ प्रतिशत स्थान सुरक्षित रहेंगे, १ स्थान एंग्लो-इंडियन के लिए सुरक्षित होगा, और बाकी स्थान आम चुनाव क्षेत्र होगे। बंगाल में मुसलमानो के लिए ५१ प्रतिशत, और हिन्दुओं के लिए ४४ प्रतिशत

स्थान होंगे। इस अनुपात में विशेष निर्वाचन क्षेत्र भी शामिल हैं। पंजाब में मुसलमानो के लिए ५१ प्रतिशत, हिन्दुओ के लिए २७ प्रतिशत, सिक्खों के लिए २० प्रतिशत, और भारतीय ईसाइयो के लिए ३ स्थान और एंग्लो इंडियन के लिए एक स्थान सुरक्षित रहेगा। सिन्ध में हिन्दुओ के लिए ३७ प्रतिशत स्थान सुरक्षित होगे। जिन प्रान्तो में मुसलमान अल्पसंख्यक हैं, उन प्रान्तो में सन् १९१६ के काग्रेस-लीग समझौते के अनुसार गुरुत्व के साथ उनके लिए स्थान सुरक्षित होगे। इस दस वर्ष की अवधि में जबकि संयुक्त निर्वाचन पद्धति के अन्तर्गत कतिपय साम्प्रदायिक समूहो के लिए विधान-सभाओ में स्थान सुरक्षित होंगे, मौलाना मुहम्मद अली का फार्मूला (नुसखा) चुनाव के परिणामो की घोषणा में प्रयोग किया जायगा, अर्थात् उन उम्मीदवारो में से जिन्हें सम्बन्धित सम्प्रदाय के कम से कम तीस प्रतिशत वोट मिले हैं वह चुना जायगा जिसे सबसे अधिक वोट सयुक्त निर्वाचन में प्राप्त है। यदि किसी भी उम्मीदवार को अपने सम्प्रदाय के तीस प्रतिशत वोट भी प्राप्त नही है, तो उनमें से उन दोनो में से जिन्हें अपने सम्प्रदाय के सबसे अधिक वोट मिले हैं, वह चुना जायगा जिसे सब निर्वाचको के सबसे अधिक वोट प्राप्त हुए हैं।

कुछ शर्तों के साथ सिन्ध को भी एक अलग प्रान्त बनाना निश्चित हुआ, पर यह स्पष्ट कर दिया गया कि सिन्ध का पृथक्करण देश के साम्प्रदायिक समझौते का अविच्छिन्न अंग है, और यदि किसी कारण से पूरा समझौता लागू नही होता तो यह पृथक्करण भी लागू नही होगा।

यह भी निश्चय हुआ कि उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्त मे उसी तरह की सरकार और शासन-व्यवस्था संस्थापित की जाय जैसी अन्य प्रान्तो में है, और प्रशासन की साधारण सवैधानिक पद्धति बलूचिस्तान में भी लागू की जाय।

अन्त में यह निश्चय हुआ कि इस समझौते के विभिन्न अंग परस्पर संबंधित है, और पूरा समझौता एक अविभाज्य इकाई समझा जायगा और लागू किया जायगा।

मुसलमानो की इस राय पर विचार करने के लिए कि उनके विवाह और तलाक के मामलो का निर्णय करने को काजी नियुक्त किये जायें, एक कमेटी नियुक्त की गयी।[1]

---

१ इण्डियन क्वाटरली रजिस्टर, सन् १९३२, जि० २।

मालवीयजी का वक्तव्य

एकता कांफरेन्स के बाद मालवीयजी ने एक काफी लम्बा वक्तव्य प्रसारित किया जिसमें उन्होंने स्वीकार किया कि विशुद्ध राष्ट्रीय दृष्टिकोण से आँकने पर इस समझौते में कई दोष दिखाई देंगे, पर इसका कारण तो वह परिस्थिति है जिसमें उसे तैयार करना पडा है। फिर भी राष्ट्रीय एकता के बडे लक्ष्य को ध्यान में रखकर यह कहा जा सकता है कि यह एक श्रेष्ठ प्रासाद है जो जनता की राष्ट्रीय स्वतन्त्रता और आत्मनिर्णय की आशाओ और आकाक्षाओ को, एवं उनके राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक उत्थान को प्रतिष्ठापित करता है। उन्होने आशा व्यक्त की कि समझौते ने एकता और सद्‌भाव की जिन शक्तियो को पैदा किया है वे सब पार्टियो को जनहित की वृद्धि की दिशा में प्रेरित करेंगी। इस समझौते के जरिये यूरोपियनों की मदद से हिन्दुओ और मुसलमानो के दरमियान एकता आसानी से प्रतिष्ठित हो सकती है। अगर बंगाल में जो अत्यधिक प्रतिनिधित्व यूरोपियनो को दिया गया है उसका एक भाग वे छोडने को तैयार हो जायें, तो समस्या आसानी से हल हो जाती है और उन्हें भी हिन्दुओ और मुसलमानो की सद्‌भावना प्राप्त होगी, जिससे वे कौंसिल में "अधिक नैतिक प्रभाव" डाल सकेंगे। मालवीयजी ने इस वक्तव्य में यह भी कहा कि यदि यूरोपियन राजी न हो, तो भी हिन्दू और मुसलमान आपस में मिलकर दूसरे अल्पसंख्यको के सहयोग से ऐसा समझौता कर सकते है, जिसे प्रधान-मन्त्री को मानना पडेगा।

गतिरोध

उसके बाद बगाल की समस्या सुलझाने के लिए मालवीयजी, मौलाना आजाद, राजेन्द्र प्रसादजी आदि कतिपय नेता यूरोपियनो तथा हिन्दुओ और मुसलमानो के प्रतिनिधियो से बातचीत करने के लिए कलकत्ता गये। यूरोपियनों ने बात करने से इनकार कर दिया। हिन्दू नेताओ से मालवीयजी और राजेन्द्र प्रसादजी ने कई दिन बातचीत की। अन्त में बगाल के हिन्दू नेताओ ने यह सुझाव पेश किया कि हिन्दू और मुसलमान दोनो मिलकर यूरोपियनो के अत्यधिक प्रतिनिधित्व का विरोध करें, पर बंगाल के मुसलमानो के प्रमुख नेता फजजुल हक साहब इसके लिए तैयार नही हुए।[1]

---

१. चौधरी खलीकुज्जमा पाथ वे टु पाकिस्तान, पृ० ११९।

मुसलमानों का विरोध

वास्तव में सर फजले हुसेन इस एकता-सम्मेलन को पसन्द नही करते थे। उनके इशारे पर सम्मेलन के जमाने मे ही २० नवम्बर सन् १९३२ को आल इंडिया मुस्लिम काफरेन्स की वर्किंग कमेटी, आल इंडिया मुस्लिम लीग की कौंसिल, और जमयैत-उल-उलमाए हिन्द (कानपुर) की वर्किंग कमेटी की संयुक्त काफरेन्स ने निश्चय किया कि उनकी राय मे समझौते का प्रस्तावित आधार मुसलमानो के हितो के लिए हानिकर तथा अव्यावहारिक और अग्राह्य है। १० दिसम्बर सन् १९३२ को राजा साहब सलीमपुर द्वारा आयोजित सर्वदलीय मुस्लिम काफरेन्स ने भी २० नवम्बर के निर्णय की पुष्टि की। इन दोनो कांफरेन्सो ने मेकडोनल्ड के साम्प्रदायिक निर्णय को मुस्लिम दृष्टिकोण से किसी हद तक दोषपूर्ण बताते हुए भी उसे स्वीकार करना उत्तरदायी स्वशासन की प्रगति के लिए आवश्यक समझा। इस तरह मुसलमानो के एक बडे समूह का झुकाव एकता-सम्मेलन के निर्णयो से अधिक साम्प्रदायिक निर्णय की ओर था।[२]

भारत-मन्त्री की घोषणा

दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में भारत-मन्त्री सर सेमुएल होर ने घोषित किया कि केन्द्रीय असेम्बली में पृथक् निर्वाचन द्वारा मुसलमानो के लिए एक तिहाई स्थान सुरक्षित किये जायेंगे। इस घोषणा का मुसलमानो में व्यापक रूप से स्वागत हुआ और एकता-सम्मेलन के सब निर्णय खटाई में पड गये।

सुभापचन्द्र बोस की राय में यद्यपि काफरेन्स किसी सफल निर्णय पर नही पहुँच पायी, फिर भी उसका नैतिक महत्त्व था, उसने वातावरण को साफ करने में बडा काम किया।[३]

मुस्लिम यूनिटी बोर्ड

इसके बाद चौधरी खलीकुज्जमा साहब ने जिन्होने एकता-सम्मेलन के काम में बडी दिलचस्पी ली थी, मुस्लिम लीग के नेता राजा साहब सलीमपुर की अध्यक्षता में मुस्लिम यूनिटी बोर्ड गठित किया, जिसने निश्चय किया कि पार्टियो

---

१. इण्डियन काटरली रजिस्टर, सन् १९३२, जि० २,

२. वही।

३. सुभापचन्द्र बोस . इण्डियन स्ट्रगिल, पृ० २५१।

का सर्वसम्मत समझौता ही साम्प्रदायिक निर्णय का विकल्प है।[१] बोर्ड के अध्यक्ष राजा साहब सलीमपुर तो पृथक् निर्वाचन पर आश्रित मेकडोनल्ड के साम्प्रदायिक निर्णय को मौलाना मुहम्मद अली के फार्मूले पर आश्रित संयुक्त निर्वाचन पद्धति से अच्छा समझते थे, और वे एकता-सम्मेलन के निर्णयो को स्वीकार करने को तैयार नही थे। बोर्ड के सेक्रेटरी चौधरी खलीकुज्जमा साहब का एकता-सम्मेलन के निर्णयो में भरपूर योगदान था, और वे मुहम्मद अली फार्मुला के समर्थक थे। पर वे भी आगे चल कर पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचन को ठीक समझने लगे थे। उन्होने अपनी आत्मकथा में लिखा है—"सर सैयद अहमद खाँ के सुयोग्य उत्तराधिकारी नवाव मोहसन-उल-मुल्क ने मुसलमानो के लिए जो अद्वितीय मूल्यवान् अधिकार प्राप्त किया, वह पृथक् निर्वाचन था, जिसके विरुद्ध हमने व्यूह की रचना ही नही की, वल्कि उनकी निन्दा की जिन्होंने उसका समर्थन किया।[२]"

कलकत्ता अधिवेशन

कांग्रेस के स्थानापन्न अध्यक्ष अणे साहब ने अप्रैल सन् १९३३ के पहले सप्ताह में कलकत्ते में कांग्रेस का अधिवेशन करने का निर्णय कर मालवीयजी से उसकी अध्यक्षता करने का अनुरोध किया। मालवीयजी उसके लिए तैयार हो गये, पर जब वे नियत समय पर कलकत्ता के लिए रवाना हुए, तब आसन्सोल स्टेशन पर वे और उनके साथ श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू और डाक्टर सैयद महमूद भी गिरफ्तार कर लिये गये। इसी तरह अणे साहब और लगभग एक हजार प्रतिनिधि भी रास्ते में ही रोक लिये गये। स्वागत समिति के अधिकारी और सदस्य भी पकड़ लिये गये। जो प्रतिनिधि कलकत्ता पहुँच पाये उनमें से भी अधिकाश अधिवेशन से पहले ही गिरफ्तार कर लिये गये।

फिर भी पूर्वघोषित समय पर और पूर्वघोषित स्थान पर कई सौ प्रतिनिधि इकट्ठे हो गये। श्रीमती सेन गुप्ता की अध्यक्षता में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन सम्पन्न हुआ। पुलिस ने उपस्थित प्रतिनिधियो को बुरी तरह आहत किया। फिर भी प्रतिनिधियो ने बहुत धैर्य के साथ विषय-निर्धारिणी समिति द्वारा निश्चित सात प्रस्ताव स्वीकार किये। अधिवेशन ने इन प्रस्तावो द्वारा लाहौर कांग्रेस के 'पूर्ण स्वराज्य' सम्बन्धी प्रस्ताव की, तथा कांग्रेस की वर्किंग कमेटी के 'सविनय अवज्ञा' सम्बन्धी प्रस्ताव की फिर से पुष्टि की, विदेशी कपडे और ब्रिटिश माल के

---

१. खलीकुज्जमा : पाथ वे टु पाकिस्तान, पृ १२०।

२. चौधरी खलीकुज्जमा वही, पृ० ९१।

बाइकाट की, तथा खद्दर को अपनाने की जनता से अपील की, एवं घोपित किया कि भारत की जनता ब्रिटिश सरकार द्वारा बनाये हुए संविधान को और श्वेतपत्र की योजना को स्वीकार नही करेगी। काग्रेस ने देश को गाधीजी के अनशन की सफलता पर बधाई देते हुए आशा व्यक्त की कि शीघ्र ही छुआछूत दूर हो जायगी। उसने कराची काग्रेस के बुनियादी अधिकारो के प्रस्ताव को भी फिर से पुष्ट किया।

मालवीयजी का अभिभाषण

काग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन के लिए जो अध्यक्षीय भाषण मालवीयजी ने तैयार किया था, उसमें उन्होने सरकार की दमन नीति की निन्दा करते हुए कहा : "यह अनुमान है कि पिछले पन्द्रह महीनो में कई हजार स्त्रियो और बच्चो सहित लगभग एक लाख बीस हजार मनुष्य गिरफ्तार और कैद कर लिये गये हैं"। पर "सरकार", उन्होने कहा, "इस प्रकार आन्दोलन बन्द नही कर सकेगी।"[1]

श्वेत पत्र की निन्दा करते हुए मालवीयजी ने कहा कि ब्रिटिश सरकार ने नये विधान को ऐसे दम्भ-भरे अधिकार को मानकर बनाया है कि ब्रिटिश पार्लियामेंट का यह कर्तव्य और नैतिक भार है कि वह इस बात का निर्णय करे कि कहाँ तक और किन-किन नियंत्रणो और सरक्षणो के साथ वह भारत को अपने घरेलू शासन में अधिकार देगी। सरकार की इस मनोवृत्ति की भर्त्सना करते हुए उन्होने आशा व्यक्त की कि कोई भी स्वाभिमानी भारतीय, जो मातृभूमि के प्रति अपना उचित धर्म समझता है, श्वेतपत्र से सम्बन्धित किसी भी मामले में भाग नही लेगा, जब तक कि ब्रिटिश सरकार अपनी वर्तमान नीति में परिवर्तन न करे, और भारतीयो को बराबरी का सम्मान न दे, जो इंग्लैंड की तरह ही अपने देश का स्वयं प्रबन्ध करने के अधिकारी हैं। उन्होंने कहा : "भारत और इगलैंड का सम्बन्ध विषाक्त आधार पर स्थित है, और सरकार के लिए उचित मार्ग यही होगा कि वह अपना व्यवहार जनता के अनुकूल तथा स्वतंत्रता, समानता, पारस्परिक सद्भाव और मैत्री के आधार पर स्थिर करे, और वे द्वेष और दुर्भाव दूर हो जिनका वर्तमान परिस्थिति में एक मात्र अनिवार्य प्रतिफल सविनय अवज्ञा है"।[2]

---

१. इंडियन क्वाटरली रजिस्टर, सन् १९३३, जि० १।

२. वही।

मालवीयजी ने अंग्रेज विधि-विशेषज्ञो के प्रमाणो के आधार पर यह सिद्ध किया कि किन्ही परिस्थितियो में सरकार के कानूनो और आज्ञाओ की सविनय अवज्ञा संवैधानिक है। उन्होने कहा : "सरकार के उस कानून की अवज्ञा, जो अन्यायपूर्ण और दमनात्मक है और जनता की प्राथमिक स्वतंत्रताओ का अपहरण करता है, जनता का एक ऐसा महत्त्वपूर्ण संवैधानिक अधिकार है जिसके द्वारा जनता विधान सभा तथा निरकुश शासक को अपने अधिकार को विवेक और न्याय की सीमा में प्रयोग करने को बाध्य कर सकती है।"[1]

मालवीयजी ने कहा : "हमारी सबसे बडी स्वतंत्रता विचार की स्वतंत्रता है। इसके द्वारा सरकार भी अपने कर्तव्य के अधीन हो जाती है। इसने सब काल में सत्यता को अमरत्व प्रदान किया है और ससार के उन लोगो के पवित्र रक्त से अपनी अज्ञानता धोयी है, जिन्होने उसे प्रकाशित किया था। अतः हमारा यह कर्तव्य है कि हम लोग ऐसे कानून और आज्ञा का विरोध करें जिससे हमारे सहमिलन और सम्भाषण की स्वतत्रता का अपहरण होता है। महात्मा गाधी ने ऐसी परिस्थिति में अहिंसात्मक सविनय अवज्ञा के प्रयोग की भारतीयो को शिक्षा देकर मानव समाज की महान् सेवा की है। यह प्रतिवाद वैध और अहिंसात्मक है"।[2]

मालवीयजी का वक्तव्य

अधिवेशन के बाद श्रीमती सेन गुप्ता को छ महीने की कडी सजा दे दी गयी, पर मालवीयजी तथा बहुत से दूसरे बन्दी छोड दिये गये। मालवीयजी आसनसोल से सीधे कलकत्ता गये, और वहाँ उन्होने पुलिस के सिपाहियो और यूरोपियन सारजेन्टो के अत्याचारो और अमानुषिक व्यवहार की जाँच की, आहतों के बयान लिये। वाराणसी वापस आकर ९ अप्रैल सन् १९३२ को उन्होने ६ पृष्ठ का एक लम्बा वक्तव्य प्रकाशित किया। इसमें उन्होने बताया कि लगभग २,५०० प्रतिनिधियो ने अधिवेशन में भाग लेने का प्रयत्न किया, लगभग एक हजार रास्ते में गिरफ्तार कर लिये गये, १४०० से अधिक कलकत्ता पहुँच गये, इनमें से अधिकाश को अधिवेशन से पहले ही पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया, फिर भी पुलिस की सतर्कता के बावजूद श्रीमती नलनी सेन गुप्ता की अध्यक्षता में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ और सात प्रस्ताव पास हुए। इस अवसर पर

---

१ वही।

२. वही।

पुलिस ने प्रतिनिधियो को खूब मारा पीटा, पर वे सब यातनाओ को सहते हुए अपने कार्य में डटे रहे। इस वक्तव्य में मालवीयजी ने काफी विस्तार के साथ यह भी बताया कि अधिवेशन से पहले ही जो प्रतिनिधि गिरफ्तार किये गये थे, इनमें से बहुतो को पुलिस थाने में ले जाकर सार्जेन्टो ने बहुत ही अमानुषिक ढंग से आहत किया, कई आहतो को तो अस्पताल भेजना पडा। अपने वक्तव्य के अन्त में मालवीयजी ने लिखा कि अधिवेशन में मारपीट की बात तो समझी जा सकती है, पर हिरासत में कैदियो को पाशविक ढग में आहत करना किसी तरह भी ठीक नही समझा जा सकता। आहतो के प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त करते हुए मालवीयजी ने उन्हें उनके धैर्यपूर्ण साहस पर बधाई दी, और लिखा कि उनके मौन कष्ट शीघ्र उस व्यवस्था को खत्म कर देंगे जो इस अपराध पर कि वे अपने देश के लिए वही स्वतन्त्रता चाहते है जो उनके दमन करनेवालो को अपने देश में प्राप्त है, लोगो के साथ इस तरह निर्दयतापूर्ण व्यवहार करने की, तथा उन्हे अपमानित करने की इजाजत देती है।

मालवीयजी के इस वक्तव्य के बाद लेजिस्लेटिव असेम्बली के २५ सदस्यो ने भारत सरकार के गृहमन्त्री को लिखा कि मालवीयजी के आरोपो की जाच करायी जाय। गृह-सदस्य सर हेरी हेग ने उन्हें उत्तर दिया कि बगाल सरकार को आरोपो की जाच कराने के लिए लिखा जा रहा है। मई में ब्रिटिश पार्लियामेंट के एक सदस्य के एक प्रश्न का उत्तर देते हुए भारतमन्त्री सर सेमुअल होर ने कहा कि बगाल सरकार ने ये सब आरोप गलत बताये है। इस पर मालवीय जी ने भारत-मन्त्री को लिखा कि उनके आरोपो की सार्वजनिक खुली जाच करायी जाय, और वे उन्हें सही साबित करने को तैयार है, पर यदि सरकार इसके लिए तैयार नही है, तो उन पर मुकदमा चलाया जाय। भारतीय समाचार-पत्रो ने भी सरकार की निन्दा करते हुए मालवीयजी की इन मागो को दोहराया। बहुत से आहत सज्जनो ने भी मालवीयजी के वक्तव्य की पुष्टि में समाचार-पत्रो को अपनी आपबीती की सूचना दी। इस पर भी भारतमन्त्री ने मार्गन जोन्स के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा कि सरकार किसी पर मुकदमा चलाना नही चाहती। जिन्हें दुर्व्यवहार की शिकायत है वे यदि चाहें तो न्यायालय में दावा दायर कर सकते है।

गतिविधि

दूसरे सविनय अवज्ञा आन्दोलन के जमाने में एक बार चौधरी खलीकुज्जमा मालवीयजी से मिले और उन्होंने उनसे कहा कि आन्दोलन को बन्द करने की

घोषणा की जाय। इस पर श्री जगन्नाथ प्रसाद रावत ने मालवीयजी से अकेले में बात की, और उनसे अनुरोध किया कि वे इस प्रकार का कोई वक्तव्य न दें। उसके बाद मालवीयजी ने खलीकुज्जमा साहब से कह दिया कि जिसने आन्दोलन चलाया है, वही उसे बन्द कर सकता है।

खलीक साहब ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि "मालवीयजी, सर टी० बी० सप्रू और डाक्टर अन्सारी को इस बात पर राजी करने के लिए कि वे सविनय अवज्ञा आन्दोलन को बन्द कराने के लिए गाधीजी पर अपना प्रभाव काम में लावें, वे इलाहाबाद, बनारस, कानपुर, दिल्ली दौडते फिरे"।[1]

मालवीयजी के निजी पत्रो के देखने से पता चलता है कि एक बार मद्रास के प्रसिद्ध नेता श्री सत्यमूर्ति ने मालवीयजी को लिखा कि वे वाराणसी या किसी दूसरे केन्द्रीय स्थान में उन कांग्रेसजनो की एक सभा आयोजित करें जो इस समय जेल से बाहर है, और उस सभा में कौंसिल सम्बन्धी कार्यक्रम पर विचार किया जाय। पर मालवीयजी ने यह नही किया।

प्रोफेसर राधेश्याम शर्मा ने बताया कि जब प्रान्तीय काफरेन्स के लिए धन इकठ्ठा करने की मालवीयजी से प्रार्थना की गयी, तब उन्होने कहा कि इस समय रुपया इकट्ठा करना तो कठिन है, उनके मकान को गिरवी रख कर रुपया जुटाया जा सकता है। जब लोगो को इसका पता लगा, तब उन्होने काफरेन्स के लिए रुपया दे दिया।

डाक्टर पट्टाभि सीतारमैया ने लिखा है कि सन् १९३२-३३ के सकट काल में मालवीयजी "अपने दुर्दमनीय आत्मबल और अपूर्व शक्ति द्वारा कांग्रेस के कार्यकर्ताओ को प्रोत्साहित और अनुप्राणित करते रहे"। उन्होने यह भी लिखा है कि "सन्देह और कठिनाई के अवसरो पर कांग्रेस के कार्यकर्ता उनके (मालवीयजी) के पास जाते और कभी निराश होकर नही लौटते थे।"[2] श्री जयप्रकाश नारायण, जो कांग्रेस सचिव की हैसियत से उस समय सारे देश में भ्रमण करते थे, मालवीयजी की आदमियत और उनके सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार से बहुत प्रभावित हुए। उन्हे मालवीयजी उत्प्रेरणा और प्रोत्साहन के महास्रोत, पीडितो के बडे सहायक, तथा राष्ट्रीय आन्दोलन के पक्के समर्थक प्रतीत हुए। आचार्य नरेन्द्र देव और युक्त प्रान्त के दूसरे बहुत से नेताओ और कार्यकर्ताओ का भी ऐसा ही अनुभव था।

---

१. खलीकुज्जमा : पाथ वे टु पाकिस्तान, पृ० १२०।
२. पट्टाभि सीतारमैया : वही, पृ० ५८९।

गांधीजी का अनशन

२ मई सन् १९३३ को इक्कीस दिन के उपवास का निर्णय कर गाधीजी ने मालवीयजी को आशीर्वाद के लिए पत्र लिखा। मालवीयजी ने गाधीजी को लिखा "आपका २ तारीख का पत्र कल सायंकाल मिला, परमात्मा की आप पर कृपा हो। जैसा कि मैंने उपवास दिवस के अपने भाषण में कहा था मेरी यह निश्चित धारणा है कि भगवान् ने ही आपको इस निर्णय का आदेश दिया है। मैं उन्ही से प्रार्थना कर रहा हूँ कि वे इस महान् व्रत को सफलतापूर्वक पूरा करने की आपको शक्ति दें, और मेरा विश्वास है कि वे आपको शक्ति देंगे। मेरा अनुरोध है कि आप अनन्य भाव हो जावें। जो भगवान् हमारा रक्षक और सहायक है, उसके अतिरिक्त अन्य सभी विचारो को यथाशक्ति अपने मन से निकाल दीजिये। द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) के जप के साथ-साथ दिन के किसी भाग में श्वास-प्रश्वास के साथ 'सोहम्' का भी अभ्यास कीजिये। प्रकाश और जीवन की धारा को अन्तर मे बनाये रखने में यह अभ्यास सहायक होगा। कुछ महान् तपसियो की दृष्टि आपके तप की ओर लगी है, और असख्य जन आपकी सफलता के लिए प्रार्थना कर रहे है। अपने पास के वातावरण को सब प्राणियो मे स्थित वासुदेव की चर्चा के अतिरिक्त अन्य बातो से अधिक से अधिक मुक्त रखिये। भगवान् के इस आदेश और प्रतिज्ञा को ध्यान में रखिये—'मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात् तरिष्यामि'। स्वास्थ्य ठीक होते ही आप से मिलूंगा"।[1]

गाधीजी ने तार द्वारा उत्तर दिया "आपके आशीर्वाद मेरे लिए सुखकारी है। मैं आदेश का तत्त्वत पालन कर रहा हूँ। बचपन से ही राम नाम मेरा तावीज रहा है। मैं अच्छा हूँ और शान्ति का अनुभव करता हूँ। अनुरोध करता हूँ कि आप आने का कष्ट न करें"।[2]

८ मई सन् १९३३ को गाधीजी ने आत्मशुद्धि तथा हरिजनोद्धार के निमित्त २१ दिन का अनशन प्रारम्भ किया, और उनके परामर्श पर काग्रेस के स्थानापन्न अध्यक्ष अणे साहब ने छः सप्ताह के लिए सत्याग्रह स्थगित कर दिया। इस समय गाधीजी ने, जिन्हें अनशन के कारण सरकार ने रिहा कर दिया था, आशा व्यक्त

---

१. महामना मालवीयजी बर्थ सेन्टिनरी कोमिमोरेशन वाल्युम, पृ० १८२ (त्रिलोचन पन्त का लेख)।

२. वही, पृ० १८२।

की कि सरकार अध्यादेश वापस ले लेगी, और सब राजनीतिक कैदियो को छोड़ देगी। पर सरकार ने इस पर कोई ध्यान नही दिया।

विठ्ठल भाई पटेल और सुभाष चन्द्र बोस को, जो उस समय यूरोप में थे, गाधीजी की ये बातें पसन्द नही आयी। उन्होने एक संयुक्त वक्तव्य में लिखा कि सविनय अवज्ञा को स्थगित करने के निर्णय ने पिछले तेरह वर्ष के कामो पर पानी फेर दिया। यह निर्णय, उन्होने लिखा, सविनय अवज्ञा की, और गाधीजी के नेतृत्व की विफलता का, और इस बात का द्योतक है कि अधिक उग्र नीति और नेतृत्व की आवश्यकता है।[1] जनता पर इस वक्तव्य का कोई विशेप प्रभाव नही पड़ा। सुभाष बाबू ने स्वयं स्वीकार किया कि "मित्रो ने भी सोचा कि उस समय जब उनका (गांधीजी का) जीवन अनशन के कारण खतरे में था, महात्मा की आलोचना करना घृणित काम था।"[2]

जो भी हो, गाधीजी के इस अनशन ने हरिजनोद्धार के आन्दोलन में नयी जान डाल दी। सारे देश मे बहुत से कार्यकर्ताओ ने बहुत ही जोरशोर से अस्पृश्यता के निवारण के लिए काम किया, और २९ मई को हरिजन दिवस मनाया, जुलूस निकाले, और सभाएँ की।

व्यक्तिगत सत्याग्रह

जुलाई के दूसरे सप्ताह में गाधीजी के आदेश पर अणे साहब ने घोषित किया कि उन सब लोगो से, जो काग्रेस संगठन से किसी प्रकार की सहायता की आशा बिना व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा की क्षमता रखते हो, ऐसा करने की आशा की जाती है।

गांधीजी ने अपने साबरमती आश्रम को भंग कर आश्रम-निवासियो को व्यक्तिगत सत्याग्रह करने की सलाह दी, और स्वयं इसी उद्देश्य से १ अगस्त को रास गाव में जाने का निश्चय किया। पर रात को वे और ३४ आश्रम-निवासी गिरफ्तार कर लिये गये। ४ अगस्त को वे इस आदेश के साथ छोड दिये गये कि वे यरवदा गाव को छोड कर पूना में रहेंगे। गाधीजी ने इस आदेश को मानने से इनकार कर दिया। इस पर वे उसी दिन गिरफ्तार कर लिये गये, और उन्हें एक वर्ष की सजा दे दी गयी।

---

१. सुभाषचन्द्र बोस : इंडियन स्ट्रगल पृ० २६२।

२ सुभाष चन्द्र बोस . वही, पृ० २६३।

गाधीजी की गिरफ्तारी और सजा के समाचार ने व्यक्तिगत सत्याग्रह के अभियान को गति प्रदान की। विभिन्न प्रातो में सैकडो व्यक्तियों ने सत्याग्रह किया। १४ अगस्त को कार्यवाहक अध्यक्ष श्री एस० माधवराव अणे ने व्यक्तिगत सत्याग्रह किया। उसके कुछ दिन बाद उनके उत्तराधिकारी सरदार शार्दूल सिंह गिफ्तार कर लिये गये। उन्होने गिरफ्तार होने से पहले कार्यवाहक अध्यक्ष और डिक्टेटरो की प्रथा खत्म कर दी, और सत्याग्रह ने शुद्ध व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा का रूप धारण कर लिया।

हरिजन आन्दोलन

इधर गाधीजी ने जेल में फिर अनशन शुरू कर दिया, और वे २३ अगस्त को बीमारी के कारण बिना किसी शर्त के छोड दिये गये। उन्होने निश्चय किया कि वे ३ अगस्त सन् १९३४ तक हरिजनोद्धार का कार्य ही मुख्य रूप से करेंगे, वे स्वयं सविनय अवज्ञा नही करेंगे, पर उसके सम्बन्ध में दूसरो को सलाह दे सकेंगे।

९ नवम्बर सन् १९३३ को गाधीजी ने 'हरिजन सेवक सघ' के तत्त्वावधान में हरिजनोद्धार के निमित्त देशव्यापी दौरा प्रारम्भ किया, जो नौ महीने के बाद २९ जुलाई सन् १९३४ को वाराणसी में समाप्त हुआ। इस दौरे में गाधीजी ने अस्पृश्यता-निवारण के धार्मिक और नैतिक स्वरूप की व्याख्या करते हुए सवर्ण हिन्दुओं से अनुरोध किया कि वे जन्मजात अस्पृश्यता की घृणित भावना को त्याग कर हरिजनो के साथ आत्मीयता का व्यवहार करें। उन्होने बार-बार कहा कि ऊँच-नीच और अस्पृश्यता की भावनाए हिन्दू समाज के अभिशाप हैं, और उनसे छुटकारा पाना समाज और जीवन की पवित्रता और उत्कर्ष के लिए बहुत जरूरी हैं। इस दौरे मे उन्होने लगभग १२,५०० मील की यात्रा की और ८ लाख रुपये हरिजन कार्य के लिए जमा किये। उन्हें पूना और देवघर में छूतछात के समर्थको के हिंसात्मक दुर्व्यवहार का, तथा लालनाथजी के उत्तेजनात्मक कृत्यो का सामना करना पडा। फिर भी जब ५ जुलाई को गाधीजी को पता चला कि उस समय जबकि लालनाथजी हरिजनोद्धार की सभा में अस्पृश्यता के पक्ष में बोलना चाहते थे तो जनता ने उन्हे पीटा, तब गाधीजी ने इस व्यवहार की निन्दा करते हुए लालनाथजी को सभा मे अपने विचार व्यक्त करने को निमंत्रित किया, और घोषित किया कि वे सात दिन का उपवास करेंगे, जिसे उहोने दौरे के खत्म होने के बाद ७ अगस्त से १३ अगस्त तक किया।

अन्त्यजोद्धार

मालवीयजी अपने ढंग पर सनातन धर्म महासभा के माध्यम और सहयोग से धर्म-प्रचार करते हुए सवर्ण हिन्दुओ को सनातन धर्म के उदार सर्वजनीन सिद्धान्तो का, तथा हरिजनो को सदाचार का उपदेश देते हुए अन्त्यजोद्धार का काम करते रहे। जब जुलाई सन् १९३४ में गाधीजी हरिजनोद्धार के काम से वाराणसी आये, तब उनकी सभा में ही उनकी अनुमति से श्री देवनायकाचार्य ने अन्त्यजोद्धार के कार्य को शास्त्रविरुद्ध प्रमाणित करने का प्रयत्न किया। इसके बाद मालवीयजी ने अपने भाषण मे शास्त्रो का प्रमाण देते हुए कहा कि हमारे सनातन धर्म की महिमा है कि मनुष्य चाहे किसी जाति मे रहे, किन्तु धर्म से चले तो उसका उद्धार हो सकता है। मैं धर्मग्रन्थो के अध्ययन के अनुसार कहता हूँ कि हरिजनो को भी देवदर्शन का लाभ मिलना चाहिए। यही अभिलाषा गाधीजी की भी होगी। स्कन्द पुराण मे ही इसका प्रमाण है कि यदि चाण्डाल सदाचारी हो, तो वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य के समान आदर पाने के योग्य हो जाता है। यदि ऐसा हो सकता है तो फिर हम अपने अछूत भाइयो को सदाचारी क्यो न बनाये ? हम उनको सदाचारी बनाकर दिखा दें कि जो भाई छोटे से छोटा हो उसे भी हिन्दू धर्म ऊँचा उठा सकता है।[1] उन्होने कहा कि सदाचार ऐसी वस्तु है जिससे नीच कुल में उत्पन्न होकर भी मनुष्य ऊँचा सम्मान पा सकता है। इस प्रकार का उपदेश महात्मा गांधी भी आपको देते है। वे चाहते है कि इन लोगो की तकलीफ दूर हो। यदि कुएँ पर हमारा एक अछूत भाई रामदास जाता है, जिसके सिर पर चुटिया है, जो एकादशी व्रत रखता है, सत्यनारायण की कथा सुनता है गंगा-स्नान करता है, यदि वह प्यासा रह गया तो समझ लो कि हमारे पूर्व पितर सब प्यासे रह गये। चाडाल भी हमारा अंग है। हमारा धर्म है कि स्मृति मे उनके लिए जो मार्ग दिखाया गया है, उसका उन्हे उपदेश दें।[2] उन्होने कहा कि "आज चार-पाँच करोड़ हिन्दू अछूत कहे जाते है। इनमें अछूता वे ही लोग है जो मैले काम करनेवाले है। वे मानव जाति की वह सेवा करते है, जो कोई नही कर सकता। यदि वे एक दिन भी अपना काम बन्द कर दें, तो हमारी क्या दुर्गति होगी, विचार कर लो। भगवान् ने कहा—'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धि लभते नरः'— अपने अपने काम में लगे हुए लोग मेरा पद पा सकते है। ये भंगी चमार अपना काम करें, फिर जब स्नान करके सूर्य नारायण को

---

१ सीताराम चतुर्वेदी महामना मालवीय जी, पृ० ६५।

२ वही, पृ० ६६।

अर्घ्य दें, मन्त्र जपें तो बोलो उनका मंगल होगा कि नही ? ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्त्यज सबके लिए भगवान् के दर्शन का अधिकार है। जहाँ मन्दिर के अधिकारी प्रसन्नता से जाने का अवसर दें, वहाँ गर्भद्वार के बाहर से ही दर्शन करा दें। जहाँ आज्ञा न हो वहाँ न जायें। अन्त में मालवीयजी ने कहा "हमे इन अछूतो को जल देना है, रहने को स्थान देना है, और इन्हें शिक्षा देनी है। मैं तो चाहता हूँ कि उनके चार करोड़ घरो में मूर्तियाँ रखी हो, और भगवान् का भजन हो, तभी तो मंगल होगा।"[1]

मालवीयजी के नेतृत्व में सनातन धर्म महासभा ने अन्त्यजोद्धार का समर्थन करते हुए निर्णय किया कि अस्पृश्य कही जानेवाली जातियो को सर्वसाधारण कुएं, तालाब, बावली, बाग, सडक, सराय, श्मशान घाट तथा सर्वसाधारण स्कूलो और सभाओ में जाने के लिए कोई रोक नही होनी चाहिए। उसने यह भी निर्णय किया कि "जो जातियाँ अस्पृश्य मानी गयी है, वे भी सनातन धर्म को माननेवाली है और सनातनधर्मी होने के कारण उनको देव-दर्शन का अधिकार है और उनको गर्भ मन्दिर के बाहर से सर्वमान्य मर्यादा के अनुसार दर्शन पाने का अवसर देना चाहिए। महासभा ने मन्दिरो के प्रबन्ध-कर्ताओ से अनुरोध किया कि वे अपने अपने मन्दिर की स्थिति के अनुसार इन जातियो को देवदर्शन प्राप्त करने का प्रबन्ध कर दें। उसने यह भी निर्णय किया कि इन जातियो के लोगो की "सनातन धर्म के अनुयायी होने का पूरा-पूरा लाभ प्राप्त करने में सहायता की जाय, तथा जहाँ-जहाँ अदीक्षित हिन्दू सन्तान है, वहाँ-वहाँ ब्राह्मण से लेकर अन्त्यज पर्यन्त पुरुष और स्त्री समस्त सनातन-धर्मावलम्बी सन्तान को जिनको दीक्षा लेने की श्रद्धा हो, तद्देशीय मर्यादा के अनुसार शैव पंचाक्षर मन्त्र की दीक्षा दी जाय"।

इसी अवसर पर मालवीयजी ने हरिजनोद्धार के निमित्त 'अन्त्यजोद्धारविधि' नाम से एक पुस्तक प्रकाशित की। इसमें उन्होंने बहुत सी पौराणिक कथाओं का उल्लेख करके बताया कि देवदर्शन का उन सबको अधिकार है, जिनका उस पर विश्वास हो, और उसके द्वारा निकृष्ट भी उत्कृष्ट हो सकता है। मन्त्र दीक्षा के महात्म्य की काफी विस्तार से चर्चा करते हुए उन्होंने बताया :

"यथा काञ्चनता याति कास्यं रसविधानत.।
तथा दीक्षाविधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम्"

---

१. वही, पृ० ८७।

'जिस तरह रस के विधान से कासा काञ्चन हो जाता है, इसी तरह दीक्षा द्वारा मनुष्य द्विजत्व अर्थात् श्रेष्ठता प्राप्त कर लेते हैं।'

मालवीयजी ने यह स्वीकार करते हुए कि जन्म ही वर्ण का मूलाधार है 'सनातन धर्म' के नाम से प्रकाशित लेख मे बताया कि

(तप. श्रुतञ्च योनिश्च त्रयं ब्राह्मणकारणम् (पातञ्जलि)।)

तप, ज्ञान और जन्म ब्राह्मण के कारण है अर्थात् 'पूर्ण ब्रह्मणत्व' के लिए तीनो आवश्यक है।

उन्होने बताया कि श्रीमद्भागवत में नारद ने विभिन्न वर्णों के लक्षणों का वर्णन करते हुए कहा है :

"यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम्।
यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत्"।[१]

(अर्थात् 'जिस पुरुप को जिस वर्ण को प्रकट करनेवाला जो लक्षण कहा गया है, जहाँ वह लक्षण दूसरे मे भी दिखाई दे तो उसको उसी गुणवाले वर्ण के नाम से बताना चाहिए।')

मालवीयजी ने कहा कि इसी तरह युधिष्ठिर ने तक्षक के एक प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा है—

"शूद्रे तु यद् भवेल् लक्ष्म द्विजे तच्च न विद्यते।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मण:"।[२]

"सत्यं दानं क्षमा शीलमानृशंस्यं तपो घृणा।
दृश्यन्ते यत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृत."॥[३]

"यत्रैतल् लक्ष्यते सर्प वृत्तं स ब्राह्मणः स्मृत.।
यत्रैतन्न भवेत् सर्प तं शूद्रमिति निर्दिशेत्"॥[४]

('शूद्र में यदि ब्राह्मण के गुण हो और ब्राह्मण मे वे गुण न हो, तो न वह शूद्र शूद्र है और न वह ब्राह्मण ब्राह्मण।')

('हे नागेन्द्र, जिसमे सत्य, दान, क्षमा, शील, अहिंसा, तप, दया दिखायी दे, उसको ब्राह्मण कहते है।')

---

१. भागवत ७-११-२५।
२. महा भारत, वनपर्व, १८०-२५।
३. महा भारत, वनपर्व, १८०-२१।
४. महा भारत, वनवर्व, १८०-२६।

(जहाँ अच्छा शील स्वभाव दिखायी दे, उसको ब्राह्मण कहना, जहाँ वह दिखाई न दे उसे शूद्र कहना चाहिए।)

मालवीयजी ने 'अन्त्यजोद्धार विधि' में धर्मव्याध और ब्राह्मण के वार्तालाप की चर्चा करते हुए बताया कि धर्मव्याध ने ब्राह्मण से कहा—

"शूद्रयोनौ हि जातस्य सद्गुणानुपतिष्ठत ।
वैश्यत्वं लभते ब्रह्मन् क्षत्रियत्वं तथैव च ॥[1]
आर्जवे वर्तमानस्य ब्राह्मण्यमभिजायते" ॥[2]

शूद्रयोनि में भी उत्पन्न हुआ पुरुष यदि अपने मे अच्छे गुण सम्पन्न करे, तो हे ब्राह्मण, वह वैश्य हो जाता है और क्षत्रिय भी। यदि वह सदाचरणपूर्ण जीवन बितावे तो उसमें ब्राह्मण की योग्यता भी प्राप्त हो जाती है।'

उन्होने कहा कि महाभारत मे यह भी कहा गया है·

"यस्तु शूद्रो दमे सत्ये धर्मे च सततोत्थितः ।
तं ब्राह्मणमहं मन्ये वृत्तेन हि भवेद् द्विजः" ॥[3]
"वर्णोत्कर्पमवाप्नोति नरः पुण्येन कर्मणा ।
यथाऽपकर्पं पापेन इति शास्त्रनिदर्शनम्" ॥[4]

'जो शूद्र मन और इन्द्रियो के रोकने में, सत्य में, धर्म में, सदा लगा रहता है, उसको मैं ब्राह्मण मानता हूँ। ब्राह्मण चरित्र से ही होता है।'

मनुष्य पुण्य कर्मो के करने से वर्ण मे ऊपर उठ जाता है और नीच कर्म करने से नीचे गिर जाता है। यह शास्त्र का कहना है।

'सनातन धर्म' के लेख मे, जो जुलाई सन् १९३४ में लिखा गया था, मालवीयजी ने यह भी बताया—

"शूद्रोऽपि शीलसम्पन्नो गुणवान् ब्राह्मणो भवेत् ।
ब्राह्मणोऽपि क्रियाहीन शूद्रात् प्रत्यवरो भवेत्" ॥[5]

'शील-सम्पन्न, गुणवान् शूद्र भी ब्राह्मण हो जाता है और क्रियाहीन ब्राह्मण भी शूद्र से नीचे गिर जाता है।

---

१. महाभारत, वनपर्व, २१२.११।
२. महाभारत, वनपर्व, २१२.१२।
३. महाभारत, वनपर्व, २१५।
४. महाभारत, शान्तिपर्व, १६१।
५. महाभारत, वनपर्व, १८० २५।

इस प्रकार के शास्त्रीय प्रमाण देते हुए मालवीयजी अपने इस लेख के अन्त में कहते हैं : "यदि ऊपर लिखे विचार शास्त्र के अनुकूल है तो इन्ही के अनुसार अछूतो की आर्थिक दशा सुधार कर, सदाचार सिखा कर, उनको मन्त्रदीक्षा देकर उनका उद्धार करना हमारा धर्म है। ईसाई, मुसलमान जिन अछूतो को अपने धर्म मे मिलाते है, उनको अपने समाज मे बराबर का स्थान देते है। अछूत सनातन धर्म समाज के अंग है; इनकी उन्नति करना, इनके दुःख दारिद्र्य को दूर करने का यत्न करना, इनको सामान्य और धार्मिक शिक्षा देना, और समाज के दूसरे अंगों के समान इनकी रक्षा करना और इनको आगे बढाना, हमारा आवश्यक कर्तव्य है। इससे हमारे धर्म की रक्षा और वृद्धि होगी, और धर्म को किसी प्रकार की हानि नही पहुँचेगी। हिन्दू जाति का इसी में भला होगा, ऐसे ही मार्ग का अवलम्बन करने से सनातनधर्म की महिमा, पूर्ण रीति से स्थापित होगी। इसी प्रकार धर्मबुद्धि से धर्म के प्रश्नों का निर्णय करने से और उनके अनुसार चलने से समाज मे धार्मिक एकता और शक्ति स्थापित होगी।"[1]

'अन्त्यजोद्धार विधि' मे उन्होने पुराणो के बहुत से प्रमाण देते हुए बताया कि शूद्र, अतिशूद्र आदि को भी सवर्ण हिन्दुओ की तरह भगवान् की भक्ति करने का पूरा अधिकार है, और वे सब भी भगवद्भक्ति द्वारा गौरव और सद्गति प्राप्त कर सकते है, और उनके इस पवित्र कार्य में बाधा पहुँचाने का किसी को कोई अधिकार नही है। मालवीयजी ने बहुत से प्रमाणो को उद्धृत करते हुए बताया कि काशीखण्ड मे लिखा है :

"शालिग्राम-शिला येन पूजिता तुलसीदलैः।
स पारिजातमालाभि पूज्यते सुरसद्मनि ॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा यदि वेतरः।
विष्णुभक्तिसमायुक्तो ज्ञेय सर्वोत्तमश्च स" ॥[2]

अर्थात् 'तुलसीदल से शालिग्राम की पूजा करनेवाले चाहे कोई भी हो वह देवताओ के यहां पारिजात की माला से पूजा जाता है। विष्णुभक्ति से युक्त, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्त्यज को सर्वोत्तम समझना चाहिए।'

---

१. महामना पंडित मदन मोहन मालवीयजी के लेख और भाषण भाग १ धार्मिक पृ० १३-१४।

२. काशी खण्ड अध्याय १८, श्लोक ६२, ६३।

उन्होंने बताया कि 'पद्मपुराण उत्तरखण्ड' में आया है कि कलियुग में विष्णु के ध्यान में लगे हुए शूद्र धन्य होते हैं। वे इस लोक में सुख भोगकर परलोक में विष्णु पद प्राप्त करते हैं।

"कलौ धन्यतमा. शूद्रा विष्णुध्यानपरायणा.।
इहलोके सुखं भुक्त्वा यान्ति विष्णो. सनातनम्" ॥[1]

मालवीयजी ने बताया कि चण्डालादि विषयक कथादि में अर्थवाद की कल्पना करना ठीक नही है। शिष्टो का यह वचन है कि "भगवान् के नाम में जो मनुष्य अर्थवाद की सम्भावना करता है, वह नरक मे गिरना है।"

"अर्थवादं हरेर्नाम्नि सम्भावयति यो नर ।
स पापिष्ठो मनुष्याणा निरये पतति स्फुटम्" ।[2]

मालवीयजी का कहना था कि "अन्त्यजो में जो कुछ भी त्रुटि समझी जाती है, उसका सबसे प्रबल कारण उनमे विद्या-प्रचार की कमी है।"[3] उनकी धारणा थी कि अन्त्यजो को भी विद्या का अधिकार है। उन्होने बताया कि देवी पुराण में आया है कि विद्या कुल की, जाति की, रूप की, और पुरुष सम्बन्धी पात्रता की परवाह नही करती है। किन्तु जो कोई भी उसको पढता है, उसका उपकार करती है।

"न हि विद्या कुल जातिरूपं पौरुषपात्रताम् ।
वशाते सर्वलोकाना पठिता उपकारिका" ॥[4]

उन्होने बताया कि यही पर एक श्लोक बडे गौरव का है :

"अन्त्यजा अपि या प्राप्य क्रीडन्ते ग्रहराक्षसैः।
सा विद्या केन गीयेत यस्याः कोऽन्य. समोऽपि न" ॥

अर्थात् 'जिस विद्या के प्रभाव से या विद्या को पढ कर अन्त्यज भी चन्द्र सूर्यादि ग्रह और पराक्रमशील राक्षसो के साथ खेला करते हैं, और जिसके बराबर इस ससार में और कोई भी नही है, उस विद्या की उपमा किससे हो सकती है ?'[5]

---

१ महामना पडित मदनमोहन मालवीयजी के लेख और भाषण, भाग-१-(धार्मिक) पृ० २६६।
२. वही, पृ० २७१।
३. वही, पृ० २८३।
४. वही, पृ० २८४।
५. वही, पृ० २८४।

मालवीयजी ने बताया कि शूद्रों को द्विज-सेवा के अतिरिक्त श्राद्ध, देवपूजन, दर्शन, गर्भाधानादि द्वादश संस्कार, व्रत उपवास, पौराणिक मन्त्रजप, मालाधारण, स्तुति, दया, दान और अहिंसा आदि अनेक धर्मों का पूर्ण अधिकार है।[१]

याज्ञवल्क्य ने, उन्होंने कहा, अन्त्यज पर्यंत सब शूद्रों को सत्य, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, दान, दया और शान्तिधर्म का उपदेश किया है।

"अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रह.।
दानं दमो दया शान्ति. सर्वेपा धर्मसाधनम्" ॥[२]

मालवीयजी ने बताया कि मनुस्मृति में भी दिया गया है।

"अहिंसा सत्यमस्तेय शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन् मनुः"[३]

मालवीयजी ने बताया कि भगवान् कृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है कि यदि दुराचारी भी मुझे अनन्यभाव से भजता है, तो उसे साधु ही समझना चाहिए, वह "धर्मात्मा" हो जाता है और "शश्वच्छान्ति" प्राप्त कर लेता है। "यही बात है कि भगवान् रामचन्द्र एक अन्त्यजजाति की बुढिया स्त्री शबरी की कुटिया में गये, और उसके अर्घा, फल, फूलादि को ग्रहण किया। यही बात है कि जाजलि जैसा तपस्वी ब्राह्मण एक बनिया तुलाधार के पास धर्मोपदेश सुनने गया, और एक तपस्वी ब्राह्मण धर्मोपदेश के लिए धर्मव्याध के पास गया"।[४]

सारांश

मालवीयजी के वक्तव्यो, भाषणो और लेखो से यह स्पष्ट है कि हिन्दू समाज और हिन्दू धर्म की रक्षा, कीर्ति और अभिवृद्धि के लिए एव तथाकथित अस्पृश्यो के अभ्युदय और नि.श्रेयस के लिए छूतछात की प्रथा का धर्मानुकूल परिशोधन मालवीयजी नितान्त आवश्यक समझते थे। वे जन्म को वर्णों का मूल-आधार मानते थे। पर उनके विचार में अन्त्यज शूद्र वर्ण का अंग है, तथा शील, सदाचार और भगवद्भक्ति द्वारा अन्त्यज पर्यन्त सभी शूद्र द्विजत्व प्राप्त कर सकते हैं, लोक में आदरणीय और सम्मानित होकर अभ्युदय और नि.श्रेयस

१. वही, पृ० २७८।
२. वही, पृ० २६९।
३. वही, पृ० २६८।
४. वही, पृ० २७२।

की सिद्धि कर सकते हैं, परमानन्द प्राप्त कर सकते हैं। उनकी दृढ धारणा थी कि वेदो के अध्ययन तथा वेदमन्त्रो के जप तथा वैदिक तप का अधिकार शूद्रो को भले ही न हो, पर धर्मज्ञान और लौकिक विद्या प्राप्त करने का, सर्वसामान्य शील और सदाचार पालन करने का पौराणिक मन्त्रो की दीक्षा लेने और उनका जप करने का, तथा भगवान् की विधिवत् आराधना करने का उन्हे पूरा अधिकार है। कोई व्यक्ति उन्हें उनके इस अधिकार से वंचित नही कर सकता। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णों से सम्बन्धित व्यक्तियो का कर्तव्य है कि शास्त्र-विहित शील, सदाचार और भगवद्भक्ति द्वारा वे स्वय द्विजत्व के वास्तविक अधिकारी बनने का प्रयत्न करें, और अन्त्यज परयन्त सब शूद्रो को उसका उपदेश दें, उनके साथ आत्मौपम्य व्यवहार करें, तथा उनके उत्कर्ष में उनकी यथोचित् सहायता करें। यही सनातनधर्म का आदेश है, इसी में सनातनधर्म का गौरव है।

२३. साम्प्रदायिक निर्णय

साम्प्रदायिक निर्णय

१७ अगस्त सन् १९३२ को प्रधान-मन्त्री मेकडोनल्ड ने अपना साम्प्रदायिक निर्णय घोषित किया। पिछले बीस वर्षों में एक राजनीतिक नेता की हैसियत से वे कई बार साम्प्रदायिक निर्वाचन-पद्धति के विरुद्ध अपने विचार व्यक्त कर चुके थे। १२ जनवरी सन् १९३१ को तो उन्होंने प्रधान-मन्त्री की हैसियत से भी कामन्स सभा में साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली की निन्दा की थी। वे सयुक्त निर्वाचन प्रणाली के समर्थक समझे जाते थे। सम्भवत इसी कारण मालवीयजी, डाक्टर मुंजे, राजा नरेन्द्र नाथ और डाक्टर एस के दत्त ने, जो सयुक्त निर्वाचन के पक्ष में थे, साम्प्रदायिक समस्या पर अपना निर्णय देने की उनसे प्रार्थना की थी; और सम्भवतः इसी कारण से पृथक् निर्वाचन के समर्थक मुसलमानो में से किसी ने भी उनके निर्णय या फैसले को मानने का उन्हे कोई आश्वासन नही दिया था।

पर मेकाडोनल्ड का साम्प्रदायिक निर्णय, जिसे उन्होने 'अवार्ड' (पंचनिर्णय) के नाम से घोपित किया, लोकतान्त्रिक भावना के बजाय सम्प्रदायवादी और पृथकतावादी प्रेरणाओ और प्रवृत्तियो पर आधारित था। वह नि सन्देह लोकतान्त्रिक संहति का विनाशक तथा सामाजिक विघटन को बढ़ानेवाला था। मेकडोनल्ड ने उन सब शक्तियो की उपेक्षा करते हुए जो विभिन्न जातियो, सम्प्रदायो, वर्गों को एक सूत्र में बाँधने के पक्ष मे थी, विघटनकारी तत्त्वो को ही भारत का वास्तविक प्रवक्ता स्वीकार करते हुए उनकी आकाक्षाओ की तुष्टि ही ठीक समझी।

मेकाडोनल्ड ने अपने साम्प्रदायिक निर्णय द्वारा भारतीय निर्वाचको को मुसलमान, दलित वर्ग, पिछड़ा वर्ग, भारतीय ईसाई, सिक्ख, व्यावसायिक और औद्योगिक वर्ग, जमीदार, मजदूर, विश्वविद्यालय आदि कोटियो में विभाजित कर दिया, और इन सब के लिए पृथक् निर्वाचन पद्धति द्वारा पृथक् प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की। अर्ध-गोरे और यूरोपियनो के लिए भी पृथक् प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की गयी। व्यावसायिक वर्ग को प्रजातीयता के आधार पर विभाजित कर यूरोपियन व्यापार-मंडलो के प्रतिनिधित्व का अलग से प्रबन्ध कर दिया।

मेकडोनल्ड का साम्प्रदायिक निर्णय ब्रिटेन की साम्राज्यवादी कंजर्वेटिव पार्टी के राजनीतिज्ञो की बडी विजय थी। जिस तरह उन्होने मजदूरो के नेता मेकडोनल्ड की सहायता से सन् १९३१ में ब्रिटेन की लेवर पार्टी को पराजित किया, इसी तरह सन् १९३२ में मेकडोनल्ड के साम्प्रदायिक निर्णय के माध्यम से वे भारत की राष्ट्रवादी शक्तियो को मुसबीत में डालने में सफल हुए। ऐसे महानुभाव की न्यायभावना पर विश्वास करना, जिसने अपनी पार्टी के साथ गद्दारी की हो, और उससे पचनिर्णय की प्रार्थना करना मालवीयजी की सबसे बडी राजनीतिक गलती थी।

मालवीय-जिना वार्ता

अप्रैल सन् १९३४ मे मालवीयजी की जिना साहब से बातचीत हुई। जिना साहब ने उनसे कहा कि जब तक कोई अच्छा विकल्प (सबस्टीट्यूट) तय नही पाता, तब तक मेकडोनल्ड के साम्प्रदायिक निर्णय को स्वीकार करके सरकार द्वारा प्रस्तुत योजना का विरोध किया जाय। मालवीयजी साम्प्रदायिक निर्णय मानने को तैयार नही थे। वे पृथक् निर्वाचन-पद्धति के स्थान पर सयुक्त निर्वाचन-पद्धति लागू करने के पक्ष में थे। यदि कोई पारस्परिक समझौता न हो पाये, तो सन् १९१६ की काग्रेस-लीग योजना द्वारा निश्चित निर्वाचन व्यवस्था भी चालू रखने को वे तैयार थे। उनका यह भी सुझाव था कि पंजाब में जहाँ मुसलमानो को प्रान्तीय कौंसिल मे ४९ प्रतिशत स्थान मिले हैं, मुसलमान कम से कम एक बार उन चार विशिष्ट (स्पेशल) स्थानो से जो विश्वविद्यालय, व्यापार और श्रमिक वर्ग को दिये गये है, खडे न हो। जिना साहब को ये बातें मजूर नही थी। इसलिए बिना किसी अच्छे परिणाम के बातचीत खत्म हो गयी।

रांची कांफरेन्स

२ और ३ मई सन् १९३४ को राची में स्वराज्य पार्टी को संघटित करने के लिए काफरेन्स आयोजित हुई। इस काफरेन्स में निश्चित हुआ कि केन्द्रीय असेम्बली के चुनाव लडे जायें। स्वराज्य पार्टी का विधान और कार्यक्रम निर्धारित हुआ। श्वेतपत्र को रद्द करने के लिए प्रयत्न करना, राष्ट्रीय माँग की तैयारी के लिए संविधान सभा को बुलाने की माँग करना, उन सब कानूनो, अध्यादेशो और रेगूलेशनों को जो राष्ट्र के स्वस्थ विकास मे तथा पूर्ण स्वराज्य की उपलब्धि में बाधक है रद्द करवाना, सब राजनीतिक कैदियों की रिहाई के लिए प्रयत्न करना, उन सब कामो, कानूनों और प्रस्तावो का विरोध करना जो

देश का शोपण करने को परिकल्पित है, गाँवो का संगठन करना; श्रम, मुद्रा, विनमय तथा खेती आदि में सुधार कराने का प्रयत्न करना, एवं काग्रेस के रचनात्मक कार्य को आगे बढ़ाना स्वराज्य पार्टी का कार्यक्रम निश्चित हुआ। साम्प्रदायिक निर्णय के सम्बन्ध में कुछ निश्चय नही किया गया।

वक्तव्य

९ मई सन् १९३४ को मालवीयजी ने लाहौर से एक वक्तव्य प्रसारित किया जिसमें उन्होने सलाह दी कि जुलाई में काग्रेस का अधिवेशन आयोजित किया जाय जो सविनय अवज्ञा को स्थगित कर कौंसिल के कार्यक्रम को चालू करे, जिसका संचालन स्वराज्य पार्टी के वजाय काग्रेस द्वारा ही हो। उन्होंने इस वक्तव्य में यह भी कहा कि राची में आयोजित स्वराज्य पार्टी ने साम्प्रदायिक निर्णय पर अपनी राय को स्थगित करके ठीक नही किया। "पृथक् निर्वाचन पद्धति के फौलादी ढाँचे से समन्वित साम्प्रदायिक निर्णय तो हमें विभाजित करने और सदा परतंत्रता में बनाये रखने के लिए तैयार किया गया है, और इसलिए हम सब भारतीयो को मिल कर उसकी निन्दा करनी चाहिए। काग्रेस साहस के साथ घोपित करे कि ऐसा कोई विधान जो सयुक्त निर्वाचन पर आधारित न हो स्वीकार-योग्य नही होगा। संयुक्त निर्वाचन के पक्ष में देशव्यापी प्रचार किया जाना चाहिए"। श्वेत-पत्र की आलोचना करते हुए मालवीयजी ने कहा कि "उसका उद्देश्य तो उत्तरदायी सरकार का रूप और उपकरण प्रदान करते हुए सारे अधिकार को ग्रेट ब्रिटेन के प्रतिनिधियो के हाथ में बनाये रखना, और भारतीय सविधान की ऐसी नीव डालना है जिस पर लोकप्रिय स्वशासन या उत्तरदायी शासन का निर्णय कभी हो ही नही सके, और भारत को डोमीनियन स्टेटस जैसी स्वतंत्रता भी प्राप्त न हो सके"।[1]

आल इंडिया कांग्रेस कमेटी

१८ और १९ मई सन् १९२४ को मालवीयजी की अध्यक्षता में पटना में अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी का अधिवेशन हुआ। कमेटी ने गाधीजी के वक्तव्य को स्वीकार करके सामूहिक सत्याग्रह को वन्द करने का, और गाधी जी को विशेष स्थिति में व्यक्तिगत सत्याग्रह करने की इजाजत देने का निर्णय किया। इसके बाद गाधीजी ने कौंसिलो में प्रवेश करने के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पेश किया। उन्होने कहा कि वे अब भी कौंसिलो के वहिष्कार को ही ठीक

---

१. इंडियन क्वाटरली रजिस्टर, सन् १९३४, जि० २, पृ० २८२।

समझते हैं। पर यह समझकर कि कांग्रेस में बहुत से लोग कौंसिलों में काम करने के पक्ष में हैं, वह एक व्यावहारिक आदर्शवादी के रूप में इस प्रस्ताव को प्रस्तुत करते हैं। पर उन्होंने कहा . "कांग्रेस आत्महत्या करेगी, यदि उसका ध्यान केवल कौंसिलों के कार्य में लगा रहेगा। इस तरह स्वराज्य नहीं मिल सकता, स्वराज्य तो जनता की व्यापक चेतना द्वारा ही आ सकता है।"[1] अणे साहब ने प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए कहा कि यद्यपि स्वराज्य कौंसिलों द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता, फिर भी यदि संगठित प्रयत्न किये जायें, तो कौंसिलों द्वारा रुकावटें दूर की जा सकती हैं। मालवीयजी ने पहले प्रस्ताव की व्याख्या करते हुए कहा कि सविनय अवज्ञा और कौंसिलों में प्रवेश परस्पर विरोधी नहीं हैं, वे एक दूसरे के साथ चल सकते हैं। अन्त में कांग्रेस कमेटी ने सोशलिस्टों के संशोधन को सत्तर प्रतिशत वोटों से नामंजूर करते हुए गांधीजी का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इस प्रस्ताव द्वारा कमेटी ने निश्चय किया कि 'मालवीयजी और डाक्टर अन्सारी' अधिक से अधिक पच्चीस सदस्यों का पार्लियामेंटरी बोर्ड गठित करें। यह बोर्ड अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अधीन काम करेगा, और जो नियम वह बनायेगा वे कांग्रेस वर्किंग कमेटी के पास उसकी स्वीकृति के लिए भेजे जायेंगे। २५ व्यक्तियों का जो बोर्ड गठित हुआ, उसके अध्यक्ष डाक्टर अन्सारी बनाये गये। सर्वश्री विधानचन्द्रराय और भूलाभाई देसाई प्रधान-मन्त्री नियुक्त हुए। यह भी निश्चय हुआ कि डाक्टर अन्सारी की अनुपस्थिति में मालवीयजी अध्यक्ष का काम करेंगे।

कांग्रेस के निर्णय

जून सन् १९३४ में कांग्रेस की वर्किंग कमेटी ने सरकार के श्वेत-पत्र और साम्प्रदायिक निर्णय पर एक प्रस्ताव पास किया। उसने घोषित किया कि श्वेत-पत्र किसी तरह भी भारतीय जनता की इच्छा को अभिव्यक्त नहीं करता, सभी राजनीतिक पार्टियों से न्यूनाधिक तिरस्कृत कर दिया गया है, कांग्रेस के लक्ष्य से कम पड़ता है, यदि वह उसकी ओर प्रगति को रोकता न हो। श्वेतपत्र का एक मात्र सन्तोषजनक विकल्प वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचित संविधान सभा से तैयार किया संविधान है। इस सभा में यदि आवश्यक हो तो प्रमुख अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधि अपने अल्पसंख्यक निर्वाचकों द्वारा चुने जा सकते हैं। इस प्रस्ताव में वर्किंग कमेटी ने कहा : "श्वेत-पत्र के गिर जाने पर साम्प्रदायिक निर्णय आपसे आप गिर जाता है। संविधान सभा का कर्तव्य होगा कि वह अन्य

---

१ वही, पृ० २९१।

बातो के साथ-साथ प्रमुख अल्पसंख्यको के प्रतिनिधित्व का तरीका निश्चित करे और हितो की रक्षा की व्यवस्था करे। चूंकि साम्प्रदायिक निर्णय पर देश के विभिन्न सम्प्रदाय बुरी तरह विभक्त है, और चूंकि कांग्रेस भारतीय राष्ट्र से सम्बन्धित सभी सम्प्रदायो का प्रतिनिधित्व करने का दावा करती है, इसलिए कांग्रेस उस समय तक जब तक मतभेद बना है साम्प्रदायिक निर्णय को न स्वीकार कर सकती है, न रद्द कर सकती है। पर साम्प्रदायिक प्रश्न पर कांग्रेस की नीति की व्याख्या जरूरी है। कांग्रेस किसी ऐसे समाधान को प्रतिपादित नही कर सकती जो विशुद्ध राष्ट्रीय न हो। पर राष्ट्रीयता से गिरा हुआ सुझाव भी वह मानने को बचनबद्ध है, यदि सबन्धित पार्टियां उस पर सहमत है और उस समाधान को भी अस्वीकार करने को वचनबद्ध है जिस पर संबधित पार्टिया सहमत न हो। दूसरे आधारो पर गंभीर आपत्तियो के अतिरिक्त राष्ट्रीय मापदण्ड से साम्प्रदायिक निर्णय बिल्कुल असन्तोषजनक है, यह भी स्पष्ट है कि साम्प्रदायिक निर्णय के अशुभ परिणामो को रोकने का उपाय यही है कि सर्व-सम्मत समाधान का मार्ग और उपाय ढूढा जाय, न कि इस घरेलू मामले पर ब्रिटिश सरकार या किसी दूसरे बाह्य अधिकारी से अपील की जाय"।

इस तरह कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने सरकार की प्रस्तावित व्यवस्था की कडी आलोचना करते हुए उसे नामंजूर कर दिया। उसने मेकडोनल्ड के साम्प्रदायिक निर्णय को सर्वथा दोषपूर्ण बताया, पर निश्चय किया कि परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए वह उसे न तो मंजूर करती है और न रद्द करती है।

मालवीयजी को कांग्रेस का यह निर्णय पसन्द नही था। वे चाहते थे कि कांग्रेस प्रधान-मंत्री के साम्प्रदायिक निर्णय को स्पष्ट शब्दो में रद्द करने की घोषणा करे। चूकि कांग्रेस का नेतृत्व इसके लिए तैयार नही था, मालवीयजी ने पार्लियामेंटरी बोर्ड से इस्तीफा दे दिया। उनके साथी एस० एम० अणे ने कांग्रेस की वर्किंग कमेटी से त्यागपत्र दे दिया। पर गाधीजी के आग्रह पर और आश्वासन पर कि इस प्रश्न पर फिर विचार किया जायगा, दोनो ने अपने त्यागपत्र वापस ले लिये।

२९ जुलाई को वाराणसी में कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने इस प्रश्न पर फिर से विचार करने के बाद पुराने निर्णय पर डटा रहना ही उचित समझा। इस पर इन दोनो ने फिर इस्तीफे दे दिये।

नेशनलिस्ट मुसलमानो का दृष्टिकोण

१८ जुलाई सन् १९३४ को कांग्रेस पार्लियामेंटरी बोर्ड के सदस्य चौधरी खलीकुज्जमा ने बोर्ड के सेक्रेटरी मिस्टर आसफ अली को लिखा कि साम्प्रदायिक निर्णय के सम्बन्ध में हिन्दू महासभा के विरुद्ध तगड़ा मोर्चा कांग्रेस को मुसलमानों का विश्वास प्राप्त करने में सहायक होगा, और मुसलमानो का सहयोग ही भारत के भविष्य को शानदार और कामयाब बना सकता है। इसलिए उन्होने लिखा, परिणाम चाहे कुछ भी हो, महासभा से समझौता करने के बजाय उसके विरुद्ध चुनाव अवश्य लडना चाहिए। पर मुसलमान उम्मीदवारो का प्रश्न बहुत कठिन है। हमारे हिन्दू दोस्त यह नही समझ पाते कि हमारे लिए मुसलमान उम्मीदवारो को कांग्रेस के टिकट पर खडा होने के लिए राजी करना मुमकिन नही है, क्योकि वे जानते है कि चुनाव में यह बात उनके लिए महाभार होगी। बम्बई में किये गये संकेत का प्रभाव इतना फौरी (तुरन्त) नही होगा कि वह उनके दिमाग में ऐसी तब्दीली पैदा कर दे जिसका मौजूदा चुनाव पर प्रभाव पड पाये। कुछ समय बाद यह मुसलमाना को शान्त अवश्य कर देगा, पर इसमे समय लगेगा। इसलिए जो कुछ हम कर सकते है, वह यही है कि अपने सम्प्रदाय के नेतृत्व को प्रतिक्रियावादियो से छीनने के लिए मुस्लिम यूनिटी बोर्ड के टिकट पर जो कांग्रेस के साथ सहयोग करने को तैयार है, कुछ चुनाव लडे जायें।[1]

इससे कुछ मास पहले फरवरी सन् १९३४ में जिना साहब और खलीकुज्जमा साहब की बातचीत हुई थी। जिना साहब ने खलीक साहब से कहा कि यदि वे उनका साथ नही देगें, तो वह हिन्दुस्तान लौट कर नही आयेंगे। इस पर खलीक साहब ने जवाब दिया : "साम्प्रदायिक निर्णय के सम्बन्ध में जो स्टेंड मैंने लिया है उसके बाद हम एक दूसरे के बहुत करीब आ गये है, और कौन जानता है कि भविष्य में हम कामन लक्ष्य के लिए मिलकर काम न करते हो।"[2]

९ अगस्त सन् १९३४ को 'मुस्लिम यूनिटी बोर्ड' ने चुनाव लडने का निश्चय किया, चुनाव घोषणा तैयार की, तथा कई उम्मीदवारो का चयन किया, जिनमे कांग्रेस पार्लियामेंटरी बोर्ड के सदस्य मिस्टर तसद्दुक अहमद खाँ शेरवानी भी थे।

---

१. चौधरी खलीकउज्जमा : पाथवे टु पाकिस्तान, पृ० १२७।
२. चौधरी खलीकउज्जमा : वही, पृ० १३१।

डाक्टर अन्सारी कांग्रेस वर्किंग कमेटी के फैसले को बिल्कुल ठीक समझते थे। वे साम्प्रदायिक निर्णय को ठीक नही समझते थे, पर उनकी दृढ धारणा थी कि जबतक समझौते के जरिये उसका कोई विकल्प तय नही हो पाता, तब तक उसे रद्द करना उचित नही होगा।

कांग्रेस के दूसरे मुसलमान नेताओं और कार्यकर्ताओ के भी करीब-करीब यही विचार थे। वे मालवीयजी और अणे साहब के इस्तीफे से खुश थे।[1] कम से कम चौधरी खलीकुज्जमा साहब तो मालवीयजी और अणे साहब को ही नही, सोशलिस्टो को भी, सम्प्रदायवादी ही समझते थे। उनकी धारणा थी कि इन सोशलिस्टो से, जो "सोशलिस्टों से अधिक हिन्दू है, सम्प्रदायवादी अधिक "सोशलिस्ट कम है", एक जुदा (पृथक्) मंच से भी सहयोग करना नामुमकिन होगा।[2]

समीक्षा

पर सुभाषचन्द्र बोस और जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस के निर्णय को बहुत अच्छा नही समझते थे। सुभाष बाबू का कहना था कि श्वेतपत्र की तरह साम्प्रदायिक निर्णय को भी तुरंत रद्द कर देना चाहिए, चाहे उसका विकल्प तुरंत मिल पाये या नही[3]। उन्हें दु:ख था कि राष्ट्रवादी मुसलमानो के आग्रह पर कमेटी को यह हास्यास्पद निर्णय करना पडा कि वह साम्प्रदायिक निर्णय को न तो स्वीकार करती है और न नामंजूर करती है। ऐसा दिखाई देता है कि नेशनलिस्ट मुसलमान सम्भवतः अनजाने अपने साम्प्रदायिक धर्मावलम्बियो की लीक में प्रवेश कर रहे है।[4]

सन् १९३४ मे पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने भी नेशनलिस्ट मुस्लिम पार्टी की गतिविधि की समीक्षा करते हुए लिखा : "कांग्रेस में बहुत से मुसलमान थे। उनकी संख्या काफी बड़ी थी और उनमें बहुत ही योग्य, लब्धप्रतिष्ठ और लोकप्रिय मुसलमान शामिल थे। इन कांग्रेसी मुसलमानो में से बहुतो ने मिल कर अपने को 'मुस्लिम नेशनलिस्ट पार्टी' के नाम से एक ग्रुप में गठित किया, और उन्होने साम्प्रदायिक मुसलमान नेताओ से संघर्ष किया। प्रारम्भ में उन्हें इसमें कुछ सफलता प्राप्त हुई, और मुसलमान बुद्धिजीवियो का एक बडा अश

१. चौधरी खलीकउज्जमा : वही, पृ० १३२।
२ वही, पृ० १३३।
३. सुभाव चन्द्र बोस : इण्डियन स्ट्रगिल पृ० २६८।
४. वही, पृ० २६८।

उनके साथ दिखाई देता था। पर वे सब उच्च-मध्य श्रेणी के लोग थे, और उनमें गतिशील व्यक्तियो की कमी थी। वे अपने पेशे और व्यवसाय में लगे थे, और जनता से उनका सम्पर्क टूट गया था। वास्तव में वे कभी जनता के पास गये ही नही। बैठको में जमाव, पारस्परिक समझौते और पैक्ट यही उनका तरीका था, और इस खेल में उनके प्रतिद्वन्द्वी साम्प्रदायिक नेता अधिक दक्ष थे। धीरे-धीरे उन्होने नेशनलिस्ट मुसलमानो को एक पोजीशन से दूसरी पोजीशन पर खदेडना शुरू किया, और उन्हे एक-एक करके उन सब सिद्धान्तो को छोडने पर मजबूर किया जिनके लिए वे खडे थे। नेशनलिस्ट मुसलमानो ने अगले अपवान (रिट्रीट) को रोकने की तथा छोडी बुराई की नीति का अनुसरण कर अपनी पोजीशन को दृढ करने की कोशिश की। पर इसने सदा दूसरे अपवान का और दूसरी छोटी बुराई के विकल्प का रास्ता दिखाया। एक समय आया जब कुछ भी नही बचा जिसे वे अपना कह सकें, कोई बुनियादी सिद्धान्त नही था जिस पर वे खडे थे, बजुज एक के और वही उनकी गुट का लगर था, यानी संयुक्त निर्वाचन-पद्धति। लेकिन छोटी बुराई की नीति ने उनके सामने घातक विकल्प उपस्थित किया, और वे बिना उस लगर के कठिन परीक्षा से बाहर निकले। बस आज वे उस सिद्धान्त और व्यवहार के लेशमात्र से भी वंचित खडे है जिसके आधार पर उन्होने अपना ग्रुप बनाया था, और जिसे उन्होने गर्व के साथ अपने मस्तूल शिखर पर लगाया था। एक ग्रुप की हैसियत से नेशनलिस्ट मुसलमानो की विफलता और विलोपन—व्यक्तिगत हैसियत से वे अब भी प्रभावशाली नेता है—एक दयनीय कथा है। इसे कई वर्ष लगे और उसका अन्तिम अध्याय इसी वर्ष (१९३४) में ही लिखा गया है"।[1]

रमजे मेकडोनल्ड के साम्प्रदायिक निर्णय की समीक्षा करते हुए नेहरूजी ने लिखा: "साम्प्रदायिक निर्णय एक प्रत्यक्ष बेतुकी चीज है। उसे स्वीकार करना असम्भव था, क्योकि जब तक वह बना रहता था तब तक किसी प्रकार की स्वतन्त्रता अलभ्य थी। इसलिए नही कि वह मुसलमानो को बहुत देता है। सम्भवतः जो कुछ वे मागते है वह करीब करीब सभी उन्हे दूसरे रूप में दिया जाना संभव था। 'ब्रिटिश गवर्नमेंट ने हिन्दुस्तान को एक दूसरे को संतोलन और निष्प्रभावन करते हुए आपस में बहुत से पृथक् भागो में बाट दिया, ताकि विदेशी ब्रिटिश तत्त्व सर्वोपरि रह सके। उसने ब्रिटिश गवर्नमेंट पर अधीनता अनिवार्य बना दी"।[2]

१, जवाहरलाल नेहरू · आटोबायोग्राफी, पृ० १३९।
२. वही, पृ० ५७६।

साम्प्रदायिक निर्णय पर कांग्रेस की नीति की समीक्षा करते हुए जवाहर लालजी ने लिखा : "साम्प्रदायिक निर्णय पर कांग्रेस का दृष्टिकोण विलक्षण था, और परिस्थितियों के संदर्भ में वह इससे भिन्न कैसे हो सकता था ? वह उनकी पुरानी तटस्थ और दुर्बल नीति का अनिवार्य परिणाम था। परिणामों पर ध्यान दिये बगैर पहली अवस्था में दृढ़ नीति का ग्रहण करना और अनुसरण करना अधिक गौरवपूर्ण और सही होता। चूंकि कांग्रेस उनके लिए तैयार नहीं, उसके लिए जो मार्ग उसने अपनाया उसके अतिरिक्त दूसरा मार्ग नहीं था"।[1]

राजेन्द्र प्रसादजी ने अपनी 'आत्मकथा' में कांग्रेस के निश्चय का समर्थन करते हुए लिखा है : "वर्किंग कमेटी के इस निर्णय का यह अर्थ नहीं था कि वह उसका समर्थन करती है अथवा उसे न्यायसंगत समझती है। उसने उसकी निन्दा कड़े शब्दों में की थी। पर वह उसका विरोध नहीं करना चाहती थी, क्योंकि विरोध का अर्थ होता दूसरों के साथ खुल्लमखुल्ला झगड़ा और यह विरोध अनावश्यक भी था। कमेटी ने तो सारे विधान को ही नामंजूर कर दिया था। इस लिए विधान का यह अंश भी सबके साथ नामंजूर हो गया था। अलग से नामंजूर करने का अर्थ यह भी होता था कि हम परोक्ष रूप में और अंशों को मान लेते हैं, तभी तो एक अंश को विशेष रूप से नामंजूर करते हैं। साथ ही विधान का यही अंश ऐसा था जिसको बदलने का अधिकार हमारे हाथ में था, किसी दूसरे अंश को बदलने की शक्ति हमको विधान द्वारा नहीं मिली थी। इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर वर्किंग कमेटी ने अपना निश्चय व्यक्त किया था, जिसका सारांश यह था कि कमेटी सारे विधान को नामंजूर करती है और सारे विधान के साथ यह अंश भी गिर जायगा, और यद्यपि वह उसे राष्ट्रीयता की दृष्टि से घातक समझती है तथापि उपरोक्त कारणों से न उसे स्वीकार करती है, और न विरोध करती है।"[2]

इन सबसे यह स्पष्ट है कि कांग्रेस के दो प्रमुख वामपक्षी नेता, जवाहर लाल नेहरू और सुभाषचन्द्र, नेशनलिस्ट मुसलमानों के व्यवहार से, मैकडोनल्ड के साम्प्रदायिक निर्णय से, तथा उस पर कांग्रेस वर्किंग कमेटी के दृष्टिकोण से असन्तुष्ट थे। जवाहर लाल इस दृष्टिकोण को पुरानी दुर्बल नीतियों का अनिवार्य परिणाम समझ कर उसका किसी अंश में समर्थन करते थे। राजेन्द्र प्रसादजी

१. वही, पृ० ५७५-५७६।

२. राजेन्द्र प्रसाद : आत्मकथा, पृ० ४१६।

ने वर्किंग कमेटी के निर्णय के पक्ष में जो बात कही है, वह किसी अंश में सत्य होते हुए भी सर्वथा ठीक नही समझी जा सकती। यह बात कि जब कमेटी ने सारे विधान को ही नामंजूर कर दिया था, तब विधान का यह अंश (साम्प्रदायिक निर्णय) भी सबके साथ नामंजूर हो जाता है और विधान के किसी एक अंश को विशेष रूप से नामंजूर करना भ्रामक होता, वर्किंग कमेटी के इस निर्णय से मेल नही खाती कि वह साम्प्रदायिक निर्णय को न स्वीकार करती है और न रद्द करती है। यह ठीक है कि साम्प्रदायिक निर्णय को समझौते के जरिये बदला जा सकता था। वर्किंग कमेटी कह सकती थी कि वह सारे विधान के साथ-साथ साम्प्रदायिक निर्णय को भी रद्द करती है, परन्तु जब कि वह समझौता द्वारा साम्प्रदायिक समस्या का समाधान कर साम्प्रदायिक निर्णय को बदलने का प्रयत्न करेगी, सारे देश की सामूहिक शक्ति द्वारा प्रस्तावित विधान का प्रतिरोध करेगी। यदि प्रस्ताव इस रूप में पास कर दिया गया होता, तो मालवीयजी, अणे साहब और बगाल के काग्रेसी नेता संभवत. सन्तुष्ट हो जाते, और काग्रेस का खुला विरोध नही करते।

काग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी

१८ और १९ अगस्त सन् १९३४ को कलकत्ते में मालवीयजी की अध्यक्षता में आयोजित राष्ट्रवादियो की सभा में 'काग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी' बनाने का निश्चय किया गया। इस दल के निर्णयो का स्पष्टीकरण करते हुए मालवीयजी ने एक विस्तृत वक्तव्य प्रकाशित किया। इसमें उन्होने बताया कि कांग्रेस पालियामेंटरी बोर्ड की सदस्यता से उनके त्यागपत्र का यह आशय नही है कि उन्होने कांग्रेस से चिरकाल के लिए एकदम सम्बन्ध त्याग दिया है। काग्रेस से साम्प्रदायिक निर्णय के अतिरिक्त और किसी बात में उनका मतभेद नही है। उन्होने बताया कि उनका विश्वास है कि काग्रेस की कार्यकारिणी समिति तथा पालिया-मेंटरी बोर्ड ने इस साम्प्रदायिक निर्णय के सम्बन्ध में जिस नीति को स्वीकार किया है वह काग्रेस की उस नीति और सिद्धान्त के सर्वथा प्रतिकूल है जिसका पालन और पोषण वह अपने जन्म-दिन से कर रही है और यह नीति अवश्य ही देश के कल्याण के लिए "घोर घातक" और "विशेषत' हिन्दुओ के लिए—दोषपूर्ण और अग्राह्य" है। उन्होने यह भी घोषित किया कि जिस दल को वे सघटित करना चाहते है, वह केवल राष्ट्रीय भाव के आधार पर काम करेगा, और उस प्रयत्न का सर्वथा साथ देगा जो साम्प्रदायिक प्रश्न का सर्वसम्मत निर्णय करने के लिए प्रयत्नशील है। उन्होने यह भी घोपित किया कि इस दल

के विचार में जब तक सम्बन्धित सम्प्रदायों की सम्मति से कोई नया निर्णय नही होता, तब तक लखनऊ के समझौते की सब बातें बदस्तूर बनी रहें। उन्होंने यह भी बताया कि उनका दल 'नेहरू रिपोर्ट' की संस्तुतियो का समर्थन करता है, और वह साम्प्रदायिक प्रश्न पर बातचीत के समय "जुलाई सन् १९३१ की काग्रेस की उस योजना पर काम करेगा, जिसे महात्मा गांधी ने गोलमेज कान्फरेन्स के सामने रखा था और जिसका समर्थन राष्ट्रीय विचार के देश के सभी मुसलमानो ने किया था।"[1]

इस वक्तव्य मे काग्रेस, नेहरू कमेटी, राष्ट्रीय मुस्लिम कान्फरेन्स के निर्णयो के, तथा माटेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट और साइमन कमीशन की रिपोर्टों के उन उद्धरणो को प्रस्तुत करते हुए, जिनमे पृथक् निर्वाचन के बजाय संयुक्त निर्वाचन पद्धति का समर्थन किया गया था, इस बात पर खेद प्रकट किया गया कि ब्रिटेन की राष्ट्रीय सरकार ने इन सब न्यायसगत विचारो की अवहेलना करते हुए केवल पृथक् निर्वाचन की रक्षा नही की, बल्कि उसके सिद्धान्त को कही-कही सम्बद्ध सम्प्रदायो की इच्छा के विरुद्ध भी नवीन ढग से और भी विस्तृत कर दिया।[2]

देश की जनता को पन्द्रह प्रकार के पृथक् निर्वाचन क्षेत्रो मे विभाजित कर देने की भर्त्सना करते हुए कहा गया कि पृथक् निर्वाचन पद्धति द्वारा बगाल और पंजाब में बहुसंख्यक सम्प्रदाय के लिए स्थान सुरक्षित करना साम्प्रदायिक निर्णय का सबसे अधिक आक्षेपपूर्ण अंग है। जैसा कि नेहरू रिपोर्ट में बताया गया है "बहुसंख्यको के लिए स्थान सुरक्षित रखना केवल उत्तरदायी शासन को ठुकराना ही नही है, बल्कि उस सिद्धान्त की, जिस पर उत्तरदायी शासन अवलम्बित रहता है, जड़ खोदना है।"[3]

अपने इस वक्तव्य मे सन् १९३२ के एकता सम्मेलन की चर्चा करते हुए मालवीयजी ने बताया कि यदि भारतमन्त्री सर सेमुअल होर अपनी घोषणा द्वारा उसके निर्णयो को मुसलमानो की दृष्टि में सारहीन नही बना देते, और बगाल-निवासी अंग्रेज सहयोग को तैयार होते, तो साम्प्रदायिक समस्या हिन्दू, मुसलमान और सिक्ख नेताओ के आपसी समझौते से हल हो सकती थी।

---

१ सीताराम चतुर्वेदी : महामना पंडित मदन मोहन मालवीय, खंड ३, पृ० १४२-१४७। २. वही। ३. वही।

मालवीयजी ने साम्प्रदायिक निर्णय के विरोध में बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश और पंजाब में बीमारी की हालत में दौरा किया। जब वे बिहार में थे, तब उनकी धर्मपत्नी प्रयाग में मर्मान्तिक आघात से पीडित थी, और वे स्वयं जाँघ में कार्बन्कल फोडे से परेशान थे, पर इस दोनो की उपेक्षा करते हुए वे अपने काम में संलग्न रहे।

मालवीयजी ने अपने भाषणो में प्रधान-मंत्री के साम्प्रदायिक निर्णय की कड़ी आलोचना करते हुए पृथक् निर्वाचन पद्धति की बुराइयो की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होने कहा कि स्वराज्य जनता द्वारा शासन है, वह सम्प्रदाय द्वारा शासन नही है। उनका कहना था कि स्वतन्त्र राज्य में चुनाव धर्म के आधार पर नही लडे जाते, पृथक् निर्वाचन द्वारा हिन्दू राज और मुस्लिम राज होगा, स्वराज्य नही होगा। उनकी धारणा थी कि "पृथक् निर्वाचन द्वारा ब्रिटिश सरकार हमें विभाजित रखते हुए सदा के लिए हमें अपने अधीन रखना चाहती है।" उनके विचार में पृथक् निर्वाचन पर आधारित सविधान हमे कभी स्वीकार नही करना चाहिए ।

कांग्रेस का बम्बई अधिवेशन

अक्तूबर सन् १९३४ में बम्बई मे राजेन्द्र प्रसादजी की अध्यक्षता में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। डाक्टर अन्सारी ने श्वेतपत्र, साम्प्रदायिक निर्णय, तथा आगामी चुनावो में भाग लेने के सम्बन्ध मे एक प्रस्ताव पेश किया। मालवीयजीने साम्प्रदायिक निर्णय के विरोध में सशोधन प्रस्तुत किया। उन्होने कहा कि प्रस्ताव की यह दलील कि श्वेतपत्र के साथ ही साम्प्रदायिक निर्णय समाप्त हो जायगा, गलत है, क्योकि ये दोनो अलग चीजें है। ब्रिटिश सरकार ने स्पष्ट कर दिया है कि साम्प्रदायिक निर्णय उनका अन्तिम निर्णय है, यद्यपि श्वेतपत्र में परिवर्तन हो सकता है। मालवीयजी ने कहा कि साम्प्रदायिक निर्णय के सम्बन्ध में कांग्रेस की अनिश्चित धारणा का अन्तिम परिणाम उसकी परोक्ष स्वीकृति ही होगा। उन्होने यह भी कहा कि सन् १९३२ में उन्होने एकता कांफरेन्स द्वारा साम्प्रदायिक समस्याओ के समाधान का प्रयत्न किया था, जो करीब-करीब सफल भी हो गया था, और वह अब भी विभिन्न सम्प्रदायो के बीच सर्वसम्मत समाधान निकालने के लिए प्रयत्न करने को तैयार है, क्योकि एकमात्र घरेलू मामले को निर्णय कराने के लिए किसी बाहरी व्यक्ति के पास जाना वह लज्जाजनक समझता है।[1] कांग्रेस का यह प्रस्ताव तो, उन्होने

---

१ लीडर, २९ अक्तूबर, सन् १९३४।

कहा, गाधीजी के उन विचारों के भी विपरीत है, जो उन्होने इस समस्या पर गोलमेज काफरेन्स में व्यक्त किये थे। नेशनलिस्ट मुसलमानो को सम्बोधित करते हुए मालवीयजी ने कहा : "यदि आप महसूस करते है कि वह (साम्प्रदायिक निर्णय) विषाक्त और राष्ट्रविरोधी है, तो आप उसे रद्द करने में आपत्ति क्यो करते है ?"[1] उन्होने यह भी कहा कि उन्होने रेमजे मेकडोनल्ड से व्यक्तिगत हैसियत से, न कि प्रधान-मंत्री की हैसियत से, साम्प्रदायिक समस्या को निपटाने को कहा था।[2]

अणे साहब ने मालवीयजी के संशोधन का अनुमोदन किया। सरदार गोपाल सिंह कौमी और मौलवी अब्दुल सलाम ने उसका समर्थन किया। सिंधवा आदि कई व्यक्तियो ने उसका कडा विरोध किया। सरदार पटेल ने कहा कि साम्प्रदायिक निर्णय किसे पसन्द है ? वह तो राष्ट्रविरोधी है, और देश में फूट डालने के लिए बनाया गया है। हम सब मालवीयजी का आदर करते है, उनकी भावना के प्रति हमारी सहानुभूति है, और हम चाहते है कि साम्प्रदायिक निर्णय रद्द हो। पर विभिन्न सम्प्रदायो को निकट ला कर ही वह बदला जा सकता है। साम्प्रदायिक निर्णय को रद्द करने की घोषणा करके यह सम्भव नही होगा। मालवीयजी के ढंग से तो वह स्थायी बन जायगा। सरदार पटेल ने कहा कि इस प्रश्न पर पृथक् पार्टी बनाना भारी गलती है। उन्होने मालवीयजी से अनुरोध किया कि वे नेशनलिस्ट पार्टी विघटित कर दे। डाक्टर आन्सारी ने कहा कि नेशनलिस्ट मुसलमान अपने पुराने विचारो पर दृढ है, और वे सब सम्प्रदायो के सहयोग से समस्या हल करने का प्रयत्न करेंगे। काग्रेस ने भारी बहुमत से मालवीयजी के संशोधन को नामंजूर करते हुए मूल प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

चुनाव

बम्बई अधिवेशन के बाद ही केन्द्रीय असेम्बली के सदस्यों का चुनाव था। यद्यपि बिहार, संयुक्त प्रान्त, पंजाब, महाराष्ट्र के बहुत से कार्यकर्ता साम्प्रदायिक निर्णय पर मालवीयजी जैसे विचार रखते थे, पर वे उस समय तक बंगाल में ही अपनी पार्टी का सघटन कर पाये थे। वहाँ उनकी पार्टी को चुनावो में काफी अच्छी विजय प्राप्त हुई। वहा करीब-करीब सभी सीटो पर नेशनलिस्ट पार्टी विजयी हुई। सतीशचन्द्र बोस, अखिल चन्द्र दत्त, माखन सेन, प्रभृति नेताओ ने पार्टी की ओर से विजय प्राप्त की। पंजाब में भी काग्रेस एक ही स्थान जीत सकी। बरार से अणे साहब निर्विरोध चुन लिये गये। युक्त प्रान्त

---

१ वही। २ वही।

से मालवीयजी की भी निर्विरोध चुने जाने की सम्भावना थी, पर मतदाताओ की सूची में उनका नाम न होने के कारण वे चुनाव के लिए प्रत्याशी नही हो सके। कुल मिला कर काग्रेस पार्टी ४४ स्थान, और नेशनलिस्ट काग्रेस पार्टी ११ स्थान प्राप्त कर सकी। इस चुनाव के बाद भी साम्प्रदायिक निर्णय के विरुद्ध मालवीयजी का प्रचार जारी रहा। पर जैसा कि पट्टाभि सीतारम्मैया ने स्वीकार किया है, केन्द्रीय असेम्बली में नेशनलिस्ट पार्टी "साम्प्रदायिक निर्णय के प्रश्न को छोड़ कर और सब मामलो में काग्रेस के साथ थी"।[1]

साम्प्रदायिक-निर्णय-विरोधी कांफरेन्स

मालवीयजी की प्रेरणा से २३-२४ फरवरी सन् १९३५ को दिल्ली में श्री० सी० वाइ० चिन्तामणि की अध्यक्षता में साम्प्रदायिक निर्णय के विरुद्ध एक सम्मेलन आयोजित हुआ। उन्होने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि साम्प्रदायिक निर्णय ब्रिटिश सरकार का निर्णय है, उसे पचनिर्णय नही समझा जा सकता। ब्रिटिश अफसरो का पक्षपातपूर्ण व्यवहार ही, उन्होने कहा, साम्प्रदायिक समस्या को इतना भयकर रूप देने को उत्तरदायी है, और स्वराज्य मिलने के बाद ही साम्प्रदायिक समस्या हल हो सकती है। साम्प्रदायिक निर्णय गलत है, क्योकि वह सिंध और सीमाप्रान्त तथा पजाब और बगाल में बहु-सख्यको के लिए पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था करता है, पजाब और बगाल के हिन्दुओ के लिए उनकी आबादी से भी कम स्थान सुरक्षित करता है, और उनकी इच्छा के विरुद्ध उन पर पृथक् निर्वाचन पद्धति लादता है, यूरोपियनो को बहुत ही अधिक स्थान प्रदान करता है। चिन्तामणिजी ने कहा कि साम्प्रदायिक निर्णय की तरह भावी सविधान की रूपरेखा भी निन्दनीय है।[2]

२४ फरवरी को काफरेन्स ने सर्वसम्मति से मालवीयजी द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए घोषित किया कि साम्प्रदायिक निर्णय निन्दनीय है, क्योकि वह हिन्दुओ और सिक्खो के लिए विशेपरूप से "अन्यायपूर्ण" है, उससे "साम्प्रदायिक कलह" बढेगी, वह "राष्ट्रविरोधी और लोकतन्त्रविरोधी" है, और उसके कारण "जनता की दशा को सुधारने के निमित्त विधान सभाओ

---

१. पट्टाभि सीतारमैया : हिस्ट्री आफ दी इंडियन नेशनल काग्रेस, जि० १, पृ० ५९४।

२. इडियन क्वाटरली रजिस्टर, सन् १९३५, जि० १, पृ० ३१५-३२४।

के लिए गैरसाम्प्रदायिक आधार पर काम करना बहुत कठिन होगा" और वह "भारत के ऊपर ब्रिटेन के आधिपत्य को दृढ़ करेगा"।[1]

इस प्रस्ताव को पेश करते हुए मालवीयजी ने कहा कि यह साम्प्रदायिक निर्णय "स्वशासन के वृक्ष को जड़ पकड़ने नही देगा, और इससे यूरोपियनो को छोड कर किसी दूसरे सम्प्रदाय का भला होनेवाला नही है। इसका विरोध हम सब का राष्ट्रीय कर्तव्य है"।[2]

कांफरेन्स ने मालवीयजी की अध्यक्षता में कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर, सर प्रफुल्लचन्द्र राय, श्री० सी० वाई० चिन्तामणि आदि बहुत से सुविख्यात सज्जनों की कमेटी गठित की, जिसने मालवीयजी के नेतृत्व में लन्दन को एक डेपुटेशन भेजने का निश्चय किया।

इस कांफरेन्स के जवाव मे बहुत से प्रतिष्ठित मुसलमानो ने १ मार्च को दिल्ली में ही नवाव ढाका की अध्यक्षता मे एक कांफरेन्स आयोजित की, जिसने निश्चय किया कि यद्यपि साम्प्रदायिक निर्णय पूरे तौर पर सन्तोषजनक नही हैं, क्योकि वह मुसलमानो की सब मांगो को पूरा नही करता, फिर भी यह कांफरेन्स उसे मंजूर करती है।

केन्द्रीय असेम्बली मे बहस

कांग्रेस पार्टी के नेता श्री भूला भाई देसाई ने असेम्बली मे प्रस्ताव प्रस्तुत किया कि ज्वाइन्ट पार्लियामेन्टरी कमेटी (संयुक्त संसदीय कमेटी) की रिपोर्ट की योजना के आधार पर कोई विधान तैयार न किया जाय। जिना साहब ने इस प्रस्ताव पर निम्नलिखित लम्बा संशोधन प्रस्तुत किया :—

१. यह कि असेम्बली साम्प्रदायिक निर्णय को स्वीकार करती है, जब तक कि विभिन्न सम्प्रदायों द्वारा उसके विकल्प के सम्बन्ध मे कोई समझौता नही होता।

२. प्रान्तीय सरकारो की योजना के सम्बन्ध में इस सदन की राय है कि वह बहुत ही असन्तोषजनक और निराशाजनक है, क्योकि उसमें बहुत से आपत्तिजनक तत्त्व सम्मिलित हैं, विशेषरूप से दूसरे सदनो की स्थापना, गवर्नरो के असाधारण और विशेष अधिकार, पुलिस नियमो, खुफिया सेवाओ और गुप्तचर विभागो के सम्बन्ध में व्यवस्था, जिन्होने कार्यपालिका और विधानपालिका के वास्तविक नियंत्रण और उत्तरदायित्व को प्रभावहीन बना दिया है, और इसलिए

१. वही, पृ० ३२४। २ वही, पृ० ३२४।

जब तक ये आपत्तिजनक तत्त्व दूर नही किये जाते, तब तक वह भारतीय जनमत के किसी वर्ग को सन्तुष्ट नही करेगी।

(३) केन्द्रीय सरकार की योजना के सम्बन्ध में जो अखिल भारतीय संघ के नाम से विख्यात है, इस सदन की निश्चित राय है कि वह बुनियादी तौर पर खराब है, और ब्रिटिश भारत की जनता को बिल्कुल ही मंजूर नहीं है, और इसलिए यह सदन भारत सरकार से संस्तुति करता है कि वह सम्राट् की सरकार को सलाह दे कि वह इस योजना के आधार पर कोई कानून न बनाये, और अनुरोध करता है कि वह विचार करे कि किस तरह ब्रिटिश भारत में वास्तविक और पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित किया जाये, और इस दृष्टि से बिना विलम्ब के भारतीय जनमत के परामर्श से सारी स्थिति पर विचार करने के लिए कार्रवाई करे।

इस संशोधन के पहले भाग पर कांग्रेस की ओर से यह संशोधन प्रस्तुत किया गया कि सदन साम्प्रदायिक निर्णय को न स्वीकार करता है और न रद्द करता है, पर इस सशोधन के पक्ष में केवल कांग्रेस पार्टी के ४४ सदस्यो ने वोट दिया, और इसलिए वह भारी बहुमत से गिर गया।

जिना साहब क अनुरोध पर सशोधन के पहले भाग पर अलग से वोट लिये गये। कांग्रेस पार्टी तटस्थ रही, नैशनलिस्ट कांग्रेस पार्टी ने इसके विरोध में राय दी। मुसलमानो और सरकारी सदस्यो की राय से जिना साहब का यह सशोधन स्वीकार हो गया। जिना साहब के संशोधन के अन्य दो खण्डो का सरकार के प्रवक्ताओ और समर्थको ने डट कर विरोध किया, पर कांग्रेस पार्टी, नैशनलिस्ट कांग्रेस पार्टी, तथा जिना साहब के समर्थको के वोटो से वे भी असेम्बली ने स्वीकार कर लिये। इस तरह जिना साहब का पूरा संशोधन स्वीकार हो गया।

जिना साहब की विजय पर भारतीय मुसलमान प्रसन्न थे, पर साम्प्रदायिक निर्णय के सम्बन्ध में असेम्बली के निश्चय से हिन्दू जनता क्षुब्ध थी। कांग्रेस ने अनुभव किया कि उसकी तटस्थता निरर्थक सिद्ध हुई। उसके सदस्य साम्प्रदायिक निर्णय के प्रश्न पर न तो हिन्दू जनता के भावो को, जिन्होने उन्हें वोट दिये थे, अभिव्यक्त कर सके, और न विशुद्ध राष्ट्रीय दृष्टिकोण को पुष्ट कर सके। अपनी इस नीति से कांग्रेस न तो मुसलमानो को अपनी ओर आकर्षित कर सकी, और न अपने को साम्प्रदायिक वादविवाद से अलग रख सकी।

जिना-राजेन्द्र बाबू वार्ता

२२ जनवरी सन् १९३४ को कांग्रेस के अध्यक्ष की हैसियत से राजेन्द्र प्रसादजी ने साम्प्रदायिक निर्णय के विकल्प की तलाश में जिना साहब से बातचीत शुरू की। बातचीत का सिलसिला १ मार्च तक चलता रहा। पर प्रयास सफल नही हुआ।

इस बातचीत के शुरू में ही राजेन्द्र प्रसादजी ने जिना साहब से कह दिया था कि "यदि वह मुसलमानो के लिए अलग चुनाव क्षेत्रो को कायम करने पर तुले होंगे, तो बातचीत की कोई गुंजाइश नही है, क्योकि हम अलग चुनाव को राष्ट्रीयता की दृष्टि से इतना घातक मानते है कि यदि वह रह जाय तो किसी समझौते से कोई काम न होगा। इसलिए बातचीत इसी आधार पर होगी कि वह अलग निर्वाचन क्षेत्र छोडने पर तैयार हो जाय। इस पर उनकी ओर से यह प्रश्न हुआ कि जो चीज मुसलमानो को मिल चुकी है और वे इसे कुछ दिनो से काम में लाते रहे हैं, इसके बदले में उनको जब तक कुछ निश्चित रूप में न मिले तब तक उनको मनाना और राजी करना सम्भव न होगा।"[१] राजेन्द्र प्रसाद जी ने मुसलमानो के लिए उतने ही स्थान मान लिये, जितने उनको साम्प्रदायिक निर्णय में मिले थे।[२] जिना साहब के आग्रह पर राजेन्द्र प्रसाद जी ने यह बात भी मान ली कि "मतदाताओ में उनकी संख्या आबादी के अनुपात में हो"।[३] राजेन्द्रप्रसादजी ने अपनी 'आत्मकथा' में लिखा है कि सिक्खो ने इसका जबर्दस्त विरोध किया, पंजाब के कुछ व्यक्तियो ने इसे मान लिया, पर बंगाल के हिन्दू किसी तरह पर मानने को राजी न हुए।[४] जब पडित मालवीयजी से बातें हुई, तब उन्होने सिक्खो और बंगाल के हिन्दुओं का हवाला देते हुए कहा कि जब तक वे नही मानेंगे, तब तक वह कुछ नही कर सकते।[५] इसके बाद राजेन्द्र प्रसादजी ने जिना साहब से बहस की कि वे इस माग पर न अडें, क्योंकि इसमें कोई तत्त्व की बात नही है। जहाँ मुसलमानो का बहुत बडा बहुमत है, वहाँ सैकड़े एक या दो की कमी से चुनाव के नतीजे पर कोई विशेष प्रभाव या फर्क नही पडेगा। पर वह इस पर राजी नही होते थे। कांग्रेस की ओर से मैं (राजेन्द्र प्रसाद) उसे मान लेने को भी राजी था। पर उन्होने इस पर जोर दिया कि पडित मालवीयजी की अनुमति भी आवश्यक है, क्योकि

१. राजेन्द्र प्रसाद . आत्मकथा, पृ० ४२५।
२. वही, पृ० ४२५। ३. वही, पृ० ४२६।
४. वही, पृ० ४२६। ५. वही, पृ० ४२६।

समझौता अगर हुआ भी, और पंडित मालवीयजी के नेतृत्व में साम्प्रदायिक निर्णय के विरुद्ध आन्दोलन होता ही रहा, तो मुसलमानो को इससे कोई लाभ न होगा।[1] जब मालवीयजी से फिर बातें हुईं तब उन्होने साफ कह दिया कि जितनी जगहें मुसलमानो को मिली है, विशेषकर बंगाल और केन्द्र में, उन्हें भी घटाना चाहिए, और जब तक वे घटायी न जायेंगी, तब तक वे राजी नही हो सकते। इधर श्री जिना साहब भी इस बात पर तुल गये कि जब तक पंडित मालवीयजी का हस्ताक्षर नही होगा तब तक वे राजी नही होंगे। अपनी ओर से वे कहते थे कि मुसलमान नेताओ की मंजूरी वह दे सकेंगे।[2]

राजेन्द्र प्रसाद जी ने अपनी 'आत्मकथा' मे लिखा है: "यद्यपि यह बातचीत कांग्रेस की ओर से मैंने शुरू की थी—और कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के अध्यक्षों के बीच ही यह चली थी, तथापि अन्त मे वह इसलिए टूट गयी कि मिस्टर जिना केवल कांग्रेस के साथ समझौता करने को राजी नही हुए और हिन्दू सभा की अनुमति जरूरी समझने लगे।"[3]

समझौता नही हो सका, इसका राजेन्द्र प्रसादजी को बहुत अफसोस रहा, क्योंकि वे समझते थे कि जिन शर्तों पर वे समझौता करना चाहते थे और जिन पर उन्होने जिना साहब को राजी कर लिया था वे शर्तें देश के लिए हितकर होती। इससे अधिक अफसोस इसलिए हुआ कि जिस कारण समझौता नही हो सका, वह ऐसी बात थी जिसका कोई विशेष महत्त्व नही था। उसको न मानना अथवा उस पर जिद् करना उनके खयाल में दोनो ही बेकार थे।[4]

सन् १९३५ में मालवीयजी और हिन्दू महासभा के अध्यक्ष भाई परमानन्द के विचारो मे इतना गहरा मतभेद था कि हिन्दू सभा की ओर से जिना साहब को कोई आश्वासन देना या किसी समझौते को स्वीकार करना मालवीयजी के लिए सम्भव नही था। वे कांग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी के नेता अवश्य थे और बंगाल मे सन् १९३४ के चुनाव में उनकी पार्टी की बहुत बडी जीत हुई थी, इसलिए बंगाल की जनता का प्रतिनिधित्व करने का उन्हें लोकतान्त्रिक अधिकार अवश्य था; पर बंगाल के उन नेताओ की अवहेलना कैसे की जा सकती थी जिन्होंने इसी प्रश्न पर चुनाव लडकर जनता का विश्वास प्राप्त किया था। इसीलिए मालवीयजी ने राजेन्द्र प्रसाद जी से कहा था कि वे बंगाल के लोगो से बात

१. वही, पृ० ४२६। २ वही, पृ० ४२६-४२७।
३. वही, पृ० ४२७। ४ वही, पृ० ४२७।

करें। सिक्खो से मालवीयजी के बहुत अच्छे सम्बन्ध थे। पर सिक्खो का प्रतिनिधित्व करने का या उनकी ओर से मुसलमानो से समझौता करने का उन्हें कोई अधिकार नही था। जिना साहब तो संयुक्त निर्वाचन पद्धति के पुराने समर्थक थे। पर हिज हाइनेस आगा खाँ, सर मुहम्मद शफी, सर फजले हुसेन आदि मुस्लिम नेताओ ने उनकी बात कभी नही मानी, और सन् १९३४ के चुनावो में, कोई ऐसी घटना नही घटी, जिसके आधार पर यह मान लिया जाय कि इस सम्बन्ध मे जिना साहब का समझौता सब मुसलमान नेता स्वीकार कर लेते। दूसरी तरफ सन् १९३४ के चुनावो मे काग्रेस को भारी विजय हुई थी और उसे भारतीय जनता का, विशेष रूप से हिन्दू मतदाताओ का, प्रतिनिधित्व करने का पूरा अधिकार था। वह जनता के नाम पर किसी विषय पर किसी से समझौता कर सकती थी। जिना साहब भी साम्प्रदायिक समस्या पर काग्रेस से समझौता कर सकते थे।

नेहरूजी की आलोचना

यद्यपि पंडित जवाहर लाल नेहरू नेशनलिस्ट मुसलमानो के दृष्टिकोण से तथा साम्प्रदायिक प्रश्न पर काग्रेस के निर्णय से असन्तुष्ट थे, और बगाल के हिन्दुओ की परेशानियो के प्रति पूरी सहानुभूति रखते थे, पर उन्हे काग्रेस का विरोध तथा उसके लिए काग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी का गठन असह्य था। उन्होंने अपनी 'आत्मकथा' मे लिखा है : "नेशनलिस्ट पार्टी और उससे भी अधिक हिन्दू महासभा और दूसरी साम्प्रदायिक संस्थाएँ सम्भवतः इस प्रदान (साम्प्रदायिक निर्णय) पर नाराज़ थी, पर उनकी समीक्षा उस निर्णय के समर्थको की तरह ब्रिटिश गवर्नमेंट के सिद्धान्तो पर आधारित थी, जिसने उन्हे एक विचित्र नीति को अभिग्रहण करने के लिए प्रेरित किया और कर रही है, जो सरकार को अवश्य ही खुश करनेवाली होगी। निर्णय से परेशान, वे दूसरे अत्यावश्यक विषयों में अपने विरोध को सरकार द्वारा निर्णय को अपने पक्ष में बदलवाने की आशा में हलका कर रहे हैं। हिन्दू महासभा इस मामले मे दूर तक चली गयी है।"[1]

जवाहर लालजी का यह विश्लेषण हिन्दू महासभा पर पूरे तौर पर लागू होता था, पर काग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी पर लागू नही होता था। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने इसी पुस्तक मे स्वीकार किया है कि जब तक मालवीयजी उसके

---

१ जवाहरलाल नेहरू, आटो बायोग्राफी, पृ० ५७५।

प्रमुख मनीषियों में से एक थे, तब तक हिन्दू महासभा अपनी साम्प्रदायिकता के बावजूद राजनीति में प्रतिक्रियावादी नही थी, और इस समय उसका नेतृत्व मालवीयजी के हाथ में नही था।[1] मालवीयजी की राजनीतिक समीक्षा धीरे-धीरे नरम पड जाने के बजाय अधिक कडी होती गयी।

यह ठीक है कि मालवीयजी और कांग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी की सन् १९३४ की घोषणाएँ पंडित जवाहरलाल नेहरू की समाजवादी धारणाओ पर आधारित नही थी, पर उन्हें तो कम से कम उस समय तक गांधीजी और कांग्रेस ने भी स्वीकार नही किया था। पर जवाहरलालजी का यह समझना कि कांग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी की धारणाएँ, उसका दृष्टिकोण गवर्नमेंट के सिद्धान्त पर आधारित था बिल्कुल गलत था। मालवीयजी और कांग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी की नीतिरीति और गतिविधि उन लोकतांत्रिक और स्वतंत्रता-संबन्धी सिद्धान्तों पर आधारित थी जिन्हें कांग्रेस और सम्भवत नेहरूजी भी पूरे तौर पर स्वीकार करते थे। अन्तर केवल इतना था कि जबकि कांग्रेस साम्प्रदायिक निर्णय पर गोल बातें करती थी, कांग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी लोकतान्त्रिक और स्वतन्त्रता सम्बन्धी सिद्धान्तो के आधार पर खुले तौर पर साम्प्रदायिक निर्णय का विरोध करती थी।

जवाहरलालजी ने यह भी लिखा है "तथाकथित कांग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी का व्यवहार मुझे विशेपरूप से शोचनीय प्रतीत हुआ। साम्प्रदायिक निर्णय के विरुद्ध उसका तीव्र विरोध एक आदमी समझ सकता है, पर अपनी पोजीशन को दृढ करने के लिए उन्होने उग्र साम्प्रदायिक सस्थाओ से अपने को सम्बद्ध कर लिया, सनातनियो से भी जिनसे अधिकतम प्रतिक्रियावादी ग्रुप, राजनीतिक और सामाजिक दृष्टि से हिन्दुस्तान में कोई दूसरा नही है, और बहुत ही बदनाम किस्म के बहुत से राजनीतिक प्रतिक्रियावादियो से।"[2]

नेहरू साहब की प्रतिक्रियावाद की व्याख्या कितनी व्यापक थी, इसका पता उनकी आत्मकथा के पढने से कुछ-कुछ चल सकता है। इस व्याख्या के अनुसार तो सम्भवत. वे सब जो कांग्रेस का विरोध करते थे, और कांग्रेस में उनकी विचारधारा का विरोध करते थे, किसी न किसी अंश मे प्रतिक्रियावादी थे। वे गाधीजी का बहुत आदर करते थे, उन्हें देश की सबसे बडी विभूति मानते थे, उनके नेतृत्व में काम करना अपने लिए बडे गौरव की बात समझते थे, पर नेहरू जी की प्रतिक्रियावाद की छाप से वे भी नही बच पाते थे। इस व्यापक व्याख्या

---

१. वही, पृ० ४५८। २. वही, पृ० ५७५।

से यदि मूल्यांकन किया जाय तो कांग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी के संगी-साथी ही क्या, सारी पार्टी स्वयं प्रतिक्रियावादी थी, और कांग्रेस के नेताओं में से भी कुछ ही अपने को प्रगतिशील या क्रान्तिकारी होने का दावा कर सकते थे। पर इस व्यापक व्याख्या को भुलाकर नेहरू साहब के वक्तव्य पर विचार किया जाय तभी नेहरू साहब के इस वक्तव्य की सही-सही जाच हो सकती है।

देश की साम्प्रदायिक संस्थाओं में हिन्दू महासभा मालवीयजी के सबसे निकट थी। वह चाहती थी कि मालवीयजी के साथ या उनसे मिलकर वह साम्प्रदायिक प्रश्न पर चुनाव लडे, पर मालवीयजी ने हिन्दू महासभा को कौंसिलो का चुनाव लड़ने के लिए कभी प्रोत्साहित नही किया, और काग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी ने चुनावो के सम्बन्ध मे हिन्दू महासभा से कोई गठबन्धन नही किया। इसका हिन्दू महासभा के अध्यक्ष भाई परमानन्द को बहुत दुःख था। हिन्दू महासभा के बहुत से सदस्यो और समर्थको ने, तथा काग्रेस की गतिविधि से रुष्ट बहुत से प्रतिक्रियावादी और उदारवादी तत्त्वो ने काग्रेसी प्रत्याशियो के विरुद्ध काग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी के उम्मीदवारो का समर्थन जरूर किया होगा। पर क्या काग्रेस कह सकती है कि सन् १९३४ में केवल क्रान्तिकारी और प्रगतिशील मतदाताओ ने ही उसे वोट दिये। यदि सन् १९३४ के चुनाव मे जिन लोगो को काग्रेस ने अपना उम्मीदवार बनाया था, और जिन मतदाताओ ने उन्हे वोट दिया था वे सब क्रान्तिकारी होते, तो उसी वर्ष भारत की राजनीतिक दशा कुछ की कुछ हो जाती। कौन कह सकता है कि काग्रेस पार्टी के नेता श्री भूलाभाई देसाई और उपनेता खान अब्दुल कय्यूम खा की तुलना मे नेशनलिस्ट पार्टी के नेता एम० एस० अणे तथा उसके सदस्य वी० एन० ससमल, अखिल चन्द्र दत्त, माखन सेन, सतीश चन्द्र बोस की देशसेवाएं नगण्य थी, और वे उनसे कम देशभक्त थे।

नेहरू साहब को दुःख था कि काग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी ने सनातनियो से भी, जो राजनीतिक और सामाजिक दोनो बातो में सबसे प्रतिक्रियावादी थे, सम्पर्क स्थापित किया। नेहरू साहब अज्ञेयवादी या नास्तिक थे, उनकी परिभाषा में सभी धर्मावलम्बी समाज के प्रतिक्रियावादी तत्त्व माने जाने चाहिए। फिर केवल सनातनियो को ही सबसे अधिक प्रतिक्रियावादी बताने का क्या अर्थ है?

जो भी हो, इस सम्बन्ध में मालवीयजी और अणेजी की पोजीशन बिलकुल साफ थी। वे दोनो सनातनधर्म पर दृढ आस्था रखते थे। सनातनियो से सम्पर्क

बनाये रखते हुए उनमें राजनीतिक और सामाजिक चेतना पैदा करना, और देश-भक्ति की भावना संचारित करना, तथा उन्हें देश की राजनीति में सक्रिय योगदान करने के लिए तथा देश-सेवा के लिए प्रोत्साहित करना वे अपना पुनीत कर्तव्य समझते थे। वे समझ नही सकते थे कि जिस देश मे करोडो अपने को 'सनातनी' कहते हो, उस देश में सनातनियो में राजनीतिक चेतना पैदा किये बिना लोकतन्त्र कैसे स्थापित किया जा सकता है? वे देशभक्ति को अपने धर्म का महत्त्वपूर्ण अंग मानते थे, और इस बात का उन्होने आजीवन प्रचार किया। वे देशोत्थान के निमित्त कतिपय पुरानी रूढियो और धार्मिक परम्पराओ में आवश्यक सुधार और संशोधन करने को भी तैयार थे। पर वे देशसेवा के लिए सनातन धर्म को छोडना, तथा सनातनियो से अपना सम्पर्क विच्छेद करना आवश्यक नही समझते थे।

कांग्रेस का लखनऊ अधिवेशन

अप्रैल सन् १९३६ मे कांग्रेस ने लखनऊ अधिवेशन मे नये राजनीतिक विधान की कडी आलोचना की, पर निश्चय किया कि आगामी प्रान्तीय चुनावो में हिस्सा लिया जाय। जवाहर लाल नेहरू ने अपने अध्यक्षीय भाषण में ब्रिटिश साम्राज्यशाही के कुचक्रो की भर्त्सना करते हुए कहा कि राष्ट्रीय लक्ष्य की सिद्धि के लिए कांग्रेस के सगठन को अधिक सुदृढ और उसके कार्यक्रम को अधिक व्यापक बनाया जाय, तथा देश की समस्याओ पर विश्व की परिस्थिति के सदर्भ में अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार किया जाय। उनकी धारणा थी कि ब्रिटिश साम्राज्यशाही का मुकाबला करने के लिए जरूरी है कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उन प्रगतिशील शक्तियों का समर्थन किया जाय जो साम्राज्यवादी और फासिस्टवादी शक्तियो का विरोध कर रही हैं। उन्होने कहा कि उनके विचार में समाजवाद ही विश्व की समस्या का समाधान है, और कांग्रेस को किसानो और मजदूरो के हितो की पुष्टि करते हुए स्वतन्त्रता सघर्ष के लिए उनका समर्थन और सहयोग प्राप्त करना चाहिए। उनकी धारणा थी कि साम्प्रदायिक मनोवृत्ति से समझौता करके किसी पैक्ट द्वारा साम्प्रदायिक समस्या हल नही हो सकती। उसके लिए, उनकी राय में, व्यापक राष्ट्रीय दृष्टिकोण से आर्थिक कार्यक्रम के आधार पर जनता से सम्पर्क स्थापित करना होगा, मुस्लिम जनता को समझाना होगा कि हिन्दू और मुस्लिम जनता के आर्थिक हित समान हैं और उन दोनो के सयुक्त प्रयासो द्वारा ही उन आर्थिक हितो की पुष्टि और वृद्धि सम्भव है।

कांग्रेस की चुनाव घोषणा

अगस्त सन् १९३६ में काग्रेस ने अपनी चुनाव घोषणा में, जिसे काग्रेस के अध्यक्ष पडित जवाहरलाल नेहरू ने स्वयं तैयार की थी, १९३५ की शासन व्यवस्था के साथ साथ साम्प्रदायिक निर्णय को भी रद्द करने की घोषणा की। चुनाव घोषणा में कहा गया—"पूरे शासन-विधान को अलग रखकर साम्प्रदायिक निर्णय कबूल नही हो सकता, क्योकि वह स्वाधीनता और लोकतान्त्रिक शासन के सिद्धान्तो के विरुद्ध है। इसके कायम रहने से देश को छिन्न-भिन्न करने-वाली और वाधक शक्तियाँ पैदा होगी, आर्थिक प्रश्नों का स्वाभाविक विकास रुक जायगा, समाज की प्रगति कुन्द हो जायेगी। राष्ट्रीय विकास में बाधा उपस्थित होगी, और हिन्दुस्तान की एकता पर कुठाराघात होगा। इससे हिन्दुस्तान के किसी सम्प्रदाय या जाति को कोई वास्तविक लाभ नही होगा, क्योकि इससे कुछ लोगो को लाभ होगा, वह हानि की अपेक्षा तुच्छ होगा। वल्कि इसका अन्तिम परिणाम उस जाति के लिए भी हानिकर होगा जिसके लाभ के खयाल से यह बनाया जा रहा है। इससे उस तीसरे दल को लाभ होगा जो हम पर शासन कर रहा है और हमें लूट रहा है"[1]। आगे चल कर यह भी कहा गया—"इस साम्प्रदायिक निर्णय से जो स्थिति पैदा हो गयी है, उसका उचित ढग से मुकाबला करने के लिए हमें अपनी स्वाधीनता के सग्राम को और भी संगीन बनाना चाहिए और साथ ही साथ इस समस्या को सुलझाने के लिए कोई ऐसा उपाय ढूँढ निकालना चाहिए जो सभी जातियो और सम्प्रदायो को कबूल हो, और जिससे भारत की एकता की नीव मजबूत हो"।[2] इस अवसर पर काग्रेस ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि उसके सदस्य साम्प्रदायिक निर्णय के विरुद्ध आवश्यक होने पर वोट करेंगे।

मालवीयजी की गतिविधि

कांग्रेस की यह घोषणा मालवीयजी की महत्त्वपूर्ण विजय थी। सम्भवतः सघर्ष यही खत्म कर देना उचित था। शायद मालवीयजी तो, जैसा कि प्रिंसिपल दीवानचन्दजी ने अपने सस्मरण मे लिखा है, काग्रेस के अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू के साम्प्रदायिक-निर्णय-विरोधी वक्तव्य पर ही पार्टी के बनाने के विचार को छोडने को तैयार थे,[3] पर उनके सामने उनके साथियो की मनोभावना और राजनीतिक भविष्य का प्रश्न था।

---

१ काल टू दि नेशन, पृ० ६। २ वही।

३. महामना मालवीय जी बर्थ सेन्टिनरी कोमिमोरेशन वाल्यूम, पृ० ७१८।

युक्त प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष रफी अहमद किदवई साहब ने मालवीयजी से यह समझौता किया कि चूंकि कांग्रेस पार्टी और कांग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी के राजनीतिक लक्ष्य एक ही है, इसलिए राजनीतिक मामलो में ये दोनो पार्टिया एक ही नेता को अपना नेता मान कर काम करेंगी, परन्तु साम्प्रदायिक निर्णय (कम्युनल अवार्ड) या उसके प्रासंगिक विषयो पर नेशनलिस्ट पार्टी अपना नेता चुन कर उसी नेता के आदेशानुसार काम करेगी।[1]

रफी साहब ने कुछ स्थान भी मालवीयजी के समर्थको के लिए छोड दिये। पर कांग्रेस के कतिपय उच्च स्तरीय नेताओ को यह समझौता पसन्द नही आया। उन्होने रफी साहब की कडी आलोचना करते हुए इसे तो स्वीकार कर लिया, पर मालवीयजी से और कही किसी प्रकार का समझौता करने से इनकार कर दिया। फिर भी बंगाल कांग्रेस कमेटी के नेताओ ने अनौपचारिक ढंग से बंगाल में विधान सभा के स्थानो के सम्बन्ध में कांग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी के नेताओं से समझौता कर लिया। अन्य प्रान्तो में कोई समझौता नही हुआ। युक्त प्रान्त में मालवीयजी ने समझौते के अनुसार कांग्रेस के उम्मेदवारो का समर्थन किया, विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रो मे जाकर उनके पक्ष में भाषण किये। सन् १९३७ के चुनाव अभियान में यही उनका मुख्य काम था।

इन संघर्षों के बीच में ही मालवीयजी ने २८ दिसम्बर सन् १९३५ को सबसे वृद्ध कांग्रेसी नेता की हैसियत से तेजपाल सस्कृत विद्यालय बम्बई में कांग्रेस स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर स्मृति शिला का उद्घाटन किया।

२९ दिसम्बर सन् १९३५ को पूना में हिन्दू महासभा के सत्रहवें अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए मालवीयजी ने कहा, "प्रत्येक भारतीय को संकल्प कर लेना चाहिए कि प्राणो की बाजी लगा कर हम स्वराज्य लेंगे, और तब तक प्राणपण से इसके लिए प्रयत्नशील रहेंगे जब तक हमारे दम में दम है।" इन्होने इस अवसर पर हिन्दू महासभा को हरिजनोद्धार पर अपनी सारी शक्ति केन्द्रित करने की सलाह दी। पर जब हिन्दू महासभा के अन्य नेता इसके लिए राजी नही हुए, तब वे हिन्दू महासभा से अलग हो गये, यद्यपि सम्भवतः इसकी घोषणा उन्होंने कभी नही की। उन्हे वीर सावरकर, डाक्टर मुजे और भाई परमानन्द की नीति-रीति पसन्द नही थी।

जनवरी सन् १९३६ में अखिल भारतीय सनातन धर्म महासभा का कार्यक्रम निश्चित करते समय "हिन्दुओ के विभिन्न सम्प्रदायो का सगठन करना एव

---

१. मालवीयजी—जीवन झलकियाँ, पृ० १६८।

उनमें धार्मिक तितिक्षा तथा एकता का भाव बढाना, और देश के भिन्न-भिन्न धर्मो को माननेवाले भाइयो में सद्भावना और मेल बढ़ाना" मालवीयजी ने उसका विशिष्ट कार्य निर्धारित किया।

उसके कुछ दिन बाद जब एक समय बातचीत करते हुए इस पुस्तक के लेखक ने मालवीयजी का ध्यान इस बात पर आकृष्ट किया कि डाक्टर मुंजे हिन्दू राष्ट्र के सिद्धान्त को मानते है, तब उन्होने बडे ऊँचे स्वर में कहा "मैं इसे नही मानता।" मालवीयजी हिन्दू समाज की रक्षा के लिए आततायियो का विरोध और अत्याचार का दमन अनिवार्य रूप से आवश्यक समझते थे, पर वे यह भी सदा याद रखना जरूरी समझते थे कि "भारतवर्ष केवल हिन्दुओ का देश नही, यह तो मुसलमानो, ईसाइयो और पारसियो का भी देश है। यह देश तभी समुन्नत और शक्तिशाली हो सकता है, जब भारतवर्ष की विभिन्न जातिया और यहा के विभिन्न सम्प्रदाय पारस्परिक सद्भावना और एकात्मकता के साथ रहे, और स्वशासित संयुक्त राष्ट्र का निर्माण करें।"

●

२४. अन्तिम दस वर्ष

(१९३७-१९४६)

डी० ए० वी० कालेज

मालवीयजी की सनातनधर्म पर दृढ निष्ठा थी और आर्यसमाज द्वारा उसकी कड़ी आलोचना उन्हें बुरी लगती थी। पर वे आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द को विद्वान्, तपस्वी और राष्ट्र-निर्माता मानते थे। मालवीयजी ने अक्तूबर सन् १९३६ में डी० ए० वी० कालेज, लाहौर के जुबली समारोह की अध्यक्षता करते हुए कहा : "स्वामी दयानन्दजी ने ऐसे समय पर अपना काम प्रारम्भ किया, जब सब ओर अविद्या का अंधकार फैला हुआ था। यह उनकी तपस्या और देश-प्रेम का ही फल था कि उन्होंने जीते जी वैदिक सभ्यता के दर्शन किये, क्योंकि वैदिक सभ्यता ही संसार की सबसे पुरानी सभ्यता है।"

फैजपुर अधिवेशन

दिसम्बर सन् १९३७ में कांग्रेस के फैजपुर अधिवेशन में मालवीयजी ने कहा : "हम अंग्रेजी राज्य सहन नही कर सकते। हम अपना शासन अपने आप कर सकते हैं। शासन करने की हमारी वह शक्ति क्षीण नही हो गयी है, जो हमारे पूर्वजो में थी। संसार के सभी देशो ने यहां तक कि मिस्र ने भी स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है। क्या कोई भी भारतीय ऐसा है, जिसका हृदय भारत की दुर्दशा देखकर बार-बार न रोता हो? सामर्थ्य और बुद्धि रखते हुए भी हम लोग अंग्रेजो के गुलाम हैं, क्या हमें लज्जा नही आती? हम ब्रिटेन से मित्रता चाहते हैं। यदि ब्रिटेन हमारी मित्रता चाहता है, तो हम तैयार हैं, किन्तु यदि वह हमें अपने अधीन रखना चाहता है, तो हम उसकी मित्रता नही चाहते। आप स्मरण रखें कि अंग्रेज जब तक आप से डरेंगे नही, तब तक यहां से नही भागेंगे। अपनी कायरता को दूर भगा दो, बहादुर बनो, और प्रतिज्ञा करो कि आजाद होकर ही हम दम लेंगे।" इस अवसर पर उन्होंने यह भी कहा कि "मैं पचास वर्ष से कांग्रेस के साथ हूं। संभव है, मैं बहुत दिन तक न जिऊँ और अपने जी में यह कलक लेकर मरूँ कि भारत अभी भी

पराधीन है। फिर भी मैं यह आशा कर सकता हूँ कि मैं इस भारत को स्वतंत्र देख सकूँगा।"

सन् १९३७ में चुनावो के वाद कांग्रेसी विधायको की सभा में मालवीयजी ने उन्हें सलाह दी कि चुनावो में की गयी प्रतिज्ञा को तथा नयी व्यवस्था की कमियो को ध्यान में रखकर उन्हें मन्त्रिमण्डल वनाकर शासन का उत्तरदायित्व ग्रहण नही करना चाहिए। पर जब कांग्रेस विधायको ने उनकी यह वात नही मानी, तव मालवीयजी ने एक नये विवाद का उत्तरदायित्व ग्रहण करने के वजाय पचास वर्ष से अधिक राष्ट्र की सेवा करने के वाद अपनी आयु के छिहत्तरवें वर्ष मे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की वैठक में नवयुवक कांग्रेसी कार्यकर्ताओ को आशीर्वाद देते हुए सक्रिय राजनीति से छुट्टी ले ली। विश्वविद्यालय के प्रवन्ध का उत्तरदायित्व फिर भी वना रहा। वहुत सी अन्य संस्थाओ के सचालन की चिन्ता भी वनी रही।

कायाकल्प

१६ जनवरी सन् १९३८ को मालवीयजी ने तपसी वावा की देखभाल में, रामवाग (शिवकोटि, प्रयाग) में कायाकल्प का प्रयोग आरम्भ किया। ४० दिन विधिवत् एक कुटी मे विश्राम करने के वाद २४ फरवरी सन् १९३८ को वाहर निकले। उस समय उनका वजन ६ पौंड वढ गया था, सिर के कुछ वाल भी काले हो गये थे, नेत्रों की रोशनी भी कुछ वढ गयी थी, और चेहरे पर भी वुढापे के चिह्न कुछ कम हो गये थे। पर शीघ्र ही शरीर काफी शिथिल हो गया, और कायाकल्प का प्रयोग विफल सिद्ध हुआ। इस सम्वन्ध में मालवीयजी का कहना था कि उन्होने कायाकल्प के नियमो का ठीक तौर पर पालन नही किया, इसी से उनको पूर्ण सफलता प्राप्त नही हुई। पण्डित राधाकान्त मालवीय का विचार था कि आयुर्वेदाचार्य वाग्भट्ट ने तो आयु के मध्य भाग अर्थात् ४० वर्ष की आयु में कायाकल्प की सलाह दी थी, मालवीयजी की जैसी वृद्धावस्था मे उसका प्रयोग वेकार था। पंडित गोविन्द मालवीय का निष्कर्ष था कि कायाकल्प-कुटी मे विना कार्य लेटे रहना मालवीयजी के लिए अस्वाभाविक था, उसने उनकी जीवनधारा वदल दी, उनके परिश्रम की शक्ति को खत्म कर दिया।

विश्वविद्यालय

चाहे जो भी हो, कायाकल्प के वाद किसी भारी उत्तरदायित्व को वहन करना उनके लिए असम्भव था। काशी विश्वविद्यालय के प्रवन्ध का भार किसी

मदन मोहन मालवीय
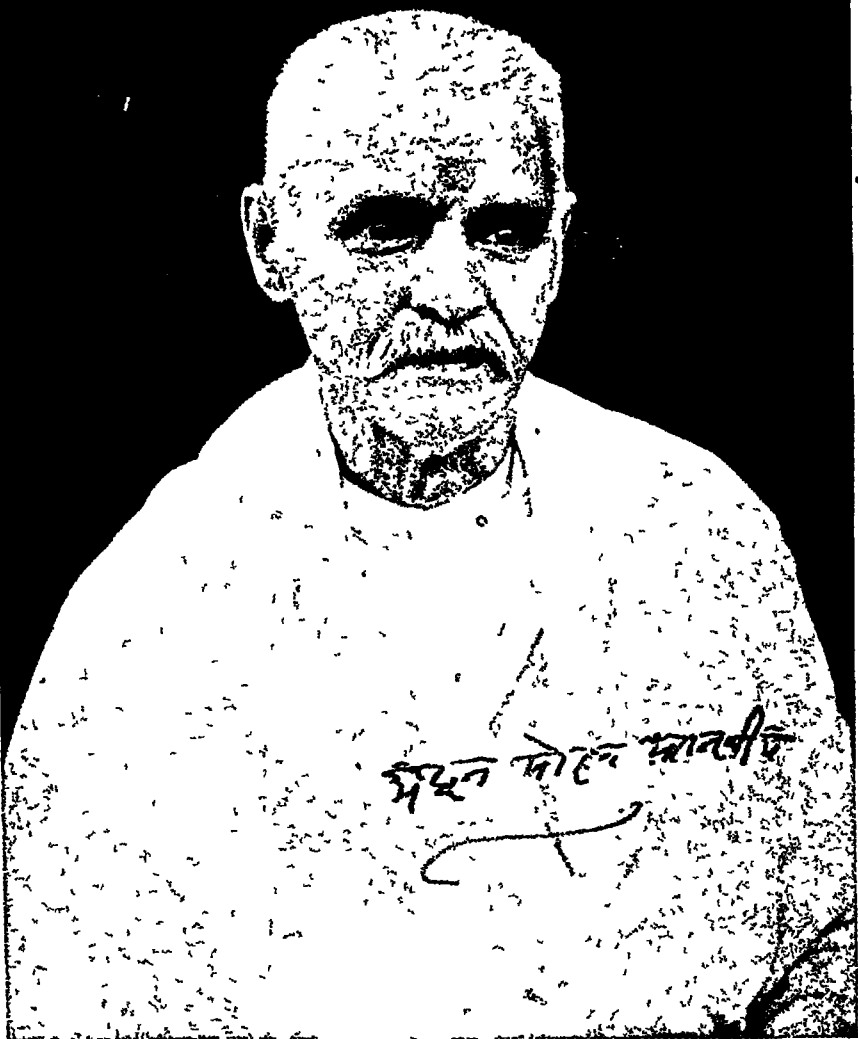
दूसरे को सौंपना अनिवार्य था। वे यह उत्तरदायित्व पण्डित हृदयनाथ कुंजरू को सौंपना चाहते थे। उन्हें कुंजरू साहब की योग्यता, कार्यक्षमता, कर्तव्य-परायणता, तथा सेवा भावना पर पूरा विश्वास था। वही वास्तव में मालवीयजी के सर्वोत्तम उत्तराधिकारी हो सकते थे। बहुत संकोच के बाद बहुत आग्रह पर कुंजरू साहब कुछ राजी भी हो गये थे, पर सर्वेंट आफ इंडिया सोसाइटी के अधिकांश सदस्य यह नही चाहते थे कि कुंजरू साहब इस उत्तरदायित्व को वहन कर राजनीति में अपना योगदान कम कर दें। अतः मालवीयजी को किसी दूसरे व्यक्ति की खोज करनी पडी। अन्त में डाक्टर राधाकृष्णन् विश्वविद्यालय के उपकुलपति बनने को राजी हो गये।

सितम्बर सन् १९३९ में विश्वविद्यालय के कोर्ट ने मालवीयजी का त्यागपत्र स्वीकार करते हुए डाक्टर राधाकृष्णन् को विधिवत् उपकुलपति निर्वाचित किया।

प्रबन्ध के भार से मुक्त हो जाने के बाद भी विश्वविद्यालय से उनका सम्बन्ध बना रहा, और इसके साथ ही उसके अभ्युदय की चिन्ता भी उन्हें बनी रही। मालवीयजी अपने पुराने निवास-स्थान से ही विश्वविद्यालय की शुभ कामना करते रहे। यद्यपि विश्वविद्यालय के प्रबन्ध में उनका योगदान करीब-करीब ख़त्म हो गया, फिर भी परामर्श किसी मात्रा में बना रहा। जब डाक्टर राधाकृष्णन् कलकत्ता से वाराणसी आते, तो वे सबसे पहले मालवीयजी से मिलते और विश्वविद्यालय के सम्बन्ध में उनसे बात करते थे। यह सिलसिला उस समय तक चलता रहा, जब तक डाक्टर साहब कलकत्ता छोड कर स्थायी रूप से वाराणसी नही रहने लगे। इसके बाद भी दोनो में बातचीत होती ही रहती थी।

इस समय विश्वविद्यालय के सम्बन्ध में जिस बात की उन्हें सबसे अधिक चिन्ता थी, वह धन की कमी थी। वे चाहते थे कि वे किसी तरह इतने स्वस्थ हो जायें कि एक बार देश का दौरा लगाकर चन्दा जमा कर सकें, विश्वविद्यालय की आर्थिक कठिनाई दूर कर सकें, अपनी अपूर्ण योजनाओ को पूरी कर सकें। वे इस बात की अपने डाक्टर से बार-बार चर्चा भी करते थे, पर वह लाचार था, उन्हें इस योग्य कैसे बना सकता था।

मंदिर का निर्माण, धर्मोपदेशक विद्यालय की स्थापना, एक हजार वृत्तियो का प्रबन्ध, सस्कृत कालेज के भवन का निर्माण तथा विद्यार्थियो के आवास के लिए तीन-चार छात्रालयो के निर्माण, की व्यवस्था उनकी चिन्ता के विषय थे।

अस्वस्थ होते हुए भी वे विद्यार्थियो की जितनी सहायता कर सकते और उन्हें जितना अनुप्राणित कर सकते थे करते रहते थे। वे नियमित रूप से प्रति सप्ताह रविवार को गीता प्रवचन में जाते थे, पर वहा उसके प्रति छात्रो की उपेक्षा देख कर उन्हें दुःख होता था। वे बहुधा शिवाजी हाल जाते, कसरती नवयुवको के हृष्ट-पुष्ट शरीर को देख कर प्रसन्न होते, उन्हे आशीर्वाद देते थे। वास्तव में इस समय शरीर-सम्पत्ति की रक्षा और वृद्धि उनके उपदेश का विशेष विषय बन गया था। जो विद्यार्थी उनसे मिलता, उसे वे कसरत करने की प्रेरणा प्रदान करते थे। विद्यार्थियो के प्रति उनका स्नेह अतुलनीय था। छात्रो के दुर्व्यवहार तथा परेशानियो के समाचार उन्हें अवश्य दु खी करते थे। उनके प्रति उपेक्षा इस दुःख और चिन्ता से उनको रक्षा किसी अश में अवश्य कर सकती थी। पर स्नेह ही वास्तव में उनकी संजीवनी थी, यही उनके जीवन का मूलाधार था। विश्वविद्यालय के ऊँचे-ऊँचे भवन तथा वहा के प्राकृतिक सौन्दर्य के दृश्यो से कही अधिक छात्रो की चहल-पहल उन्हें आनन्दित करती थी। शारीरिक कष्ट और मानसिक चिन्ता के बीच वे ही उनकी आशा की किरण, उनके सन्तोष का स्रोत थे।

सक्रिय राजनीति तथा विश्वविद्यालय के प्रबन्ध से अवकाश ले लेने के बाद भी मालवीयजी का सनातनधर्म सभा से पुराना सम्बन्ध बना रहा। उनके निवास-स्थान पर ही सभा का कार्यालय था, यहीं से साप्ताहिक "सनातन धर्म" प्रकाशित और वितरित होता था, धर्मोपदेश में संलग्न पंडितो को पुरस्कार और प्रोत्साहन प्राप्त होता था, तथा गौरक्षा और गोवर्धन का काम होता था।

महारुद्रयाग

८ अगस्त सन् १९४० को द्वितीय विश्वयुद्ध के जमाने में विश्व-शान्ति के निमित्त उन्होने महारुद्रयाग का अनुष्ठान किया। यह यज्ञ १० दिन तक चलता रहा। इसके प्रबन्ध की देख-भाल महामहोपाध्याय पडित प्रमथनाथ तर्कभूषण के सुपुर्द थी। इस बीच में गवर्नर से भेंट करने के लिए वे तीन दिन बाहर गये। पर बाकी रोज प्रतिदिन सायकाल वे स्वय यज्ञस्थल पर जाते और डेढ घंटा वहा बैठते थे। ज्यादा देर तक बैठे रहने के कारण उनकी जाघें और पीठ जकड जाती थी, उसमे काफी पीडा होने लगती थी। पर डाक्टरो के मना करने पर भी दोपहर तक जाघ, घुटने और पीठ में दवा की मालिश कराने के बाद वे सायंकाल को वेद का सस्वर पाठ सुनने, तथा सुगधित यज्ञ-धूम का

सेवन करने यज्ञशाला चले ही जाते थे। अन्तिम दिन अर्थात् १७ अगस्त को उन्होंने यज्ञदेवता से प्रार्थना की कि—

(१) संसार में शान्ति, न्याय और धर्म का राज्य स्थापित हो,

(२) भारत को स्वराज्य प्राप्त हो, और

(३) हिन्दुओं को हिन्दुस्तान में उचित गौरव और मान से रहने की स्वतंत्रता प्राप्त हो।[1]

जनसेवा

अवकाश ग्रहण करने के बाद भी मालवीयजी दिन भर जनता से घिरे रहते थे। श्री रामनरेश त्रिपाठी जी ने, जो सन् १९४० में तीस दिन उनके साथ रहे, अपनी पुस्तक में उनकी दिनचर्या का चित्र खींचते हुए लिखा है. "मिलने वाले सात बजे से घर घेरने लगते हैं। कोई सनातन धर्म-सभाओं की बात लेकर आता है, तो कोई हिन्दू संघटन के समाचार लाता है। महाराज सब की बातें बड़े ध्यान से सुनते हैं, और जरूरी आदेश देते हैं। 'गाँव गाँव जाओ, घर घर जाओ, जन जन से मिलो, सबको धर्म की बातें बताओ और हिन्दुओं को संगठित करो', यही आदेश देकर वे उनको विदा करते हैं। कोई धर्मोपदेशक वेतन लेने आता है, उसे वे वेतन दिलाते हैं। कोई विद्यार्थी कोर्स की पुस्तकों के अभाव में अपनी पढ़ाई की रुकावट का कष्ट लेकर आता है, वह दो रुपये, चार रुपये, पाँच रुपये जैसी आवश्यकता होती है, ले जाता है। कोई अपनी गरीबी सुनाने आता है, वह भी कुछ ले जाता है। कोई स्वरचित कविता सुनाने आता है, कोई श्लोक बनाकर लाता है, और कोई गाना सुनाने आता है। महाराज सब की सुन लेते हैं, और सब को स्वदेश के लिए, स्वजाति के लिए कविता करने और गाना सुनाने का आदेश करते हैं। कितने ही पण्डित और कितने ही कोट पैण्ट वाले भी आते हैं। महाराज सबसे मिलते हैं, किसी को निराश वापस नहीं जाने देते। दिन के दूसरे पहर में वे एक घण्टा मालिश कराते हैं, फिर घण्टा-डेढ़ घण्टा भोजन और विश्राम में लगता है। बाकी दिन भर का उनका सारा समय देश और धर्म की चर्चा और भरसक दूसरों की सहायता में बीतता है। शाम को रेडियो सुनते हैं। उसके बाद भोजन होता है। फिर वही देश के भविष्य की चिन्ता, हिन्दू-संगठन और धर्म प्रचार की

---

१. रामनरेश त्रिपाठी : मालवीयजी के साथ तीस दिन, पृ० ४०-४२।

उत्कंठा आ घेरती है। इस तरह दस बजे के लगभग यह वृद्ध तपस्वी अपने अरमानो में लिपटा हुआ सो जाता है।"[1]

इस प्रकार की दिनचर्या एक स्वस्थ नवयुवक के लिए भी कष्टदायक सिद्ध हो सकती है, फिर एक ऐसे वयोवृद्ध व्यक्ति के लिए जिसका सारा शरीर ढल गया हो, जो ४०-५० कदम भी चल न सकता हो, तीन चार व्यक्तियो से भी ठीक आवाज से बात न कर सकता हो, जिसके सब अङ्ग पीड़ा से ग्रसित हो, इस प्रकार की दिनचर्या कितनी कष्टदायक होगी, इसका अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है। पर स्वयं कष्ट सहकर दूसरो के कष्ट को दूर करना—यही तो मालवीयजी का जीवन था। इसी में तो वे उसकी सार्थकता अनुभव करते थे।

पारिवारिक शोक

इस जमाने में उन्हें बहुत से पारिवारिक शोक भी सहन करने पडे। सन् १९४० में उनकी धर्मपत्नी का, सन् १९४१ में उनके सबसे बडे भतीजे पण्डित कृष्णकान्त मालवीय का, जिनका देश, जाति और भाषा की सेवा में भरपूर योगदान था, तथा उनकी विधवा बहिन का निधन हुआ। १८ फरवरी सन् १९४३ को उनके सबसे बडे पुत्र पण्डित रमाकान्त मालवीय का, जो शील और योग्यता में भी सब भाइयो में वरिष्ठ थे, निधन हुआ। इसी वर्ष जनवरी में उनके पुराने स्नेही पंडित बलदेव राम दवे का, तथा फरवरी में विश्वविद्यालय के चान्सलर महाराजा सर गंगा सिंह का निधन हुआ। सन् १९४४ में उनके छोटे भाई श्याम सुन्दर का निधन हुआ। इसके अतिरिक्त उन्हें कई अन्य पारिवारिक अशोभनीय और दुःखद घटनाओ का भी सामना करना पडा। इन सबका उनके कोमल हृदय पर अवश्य ही कष्टदायक प्रभाव पडा।

परिवार

इन सब कष्टदायी घटनाओ में ज्येष्ठ पुत्र रमाकान्तजी का निधन सबसे अधिक कष्टदायक था। वे आयु में ही नही, शील और योग्यता में भी सब भाइयो में वरिष्ठ थे। उन्होने सेवा समिति, सनातनधर्म महासभा, हिन्दू महासभा, तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संचालन में मालवीयजी के साथ काफी काम किया। उन्होने सिरोही राज्य के दीवान, उदयपुर में नाथद्वारा के प्रमुख

---

१. रामनरेश त्रिपाठी . वही, ।

प्रबन्धक, तथा उत्तर प्रदेश की विधान परिषद के अध्यक्ष की हैसियत से भी समाज की सेवा की। अपने निधन के समय वे काशी विश्वविद्यालय के कोषाध्यक्ष का महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व वहन कर रहे थे।

इस दुःखद स्थिति में उनके पुत्र गोविन्दजी, उनकी पुत्रवधु आशाजी, उनकी पुत्री मालतीजी, उनके पौत्र श्रीधर और गिरधर की सेवा-भक्ति उनका जीवन-प्राण था। मालवीयजी और गोविन्दजी के स्वभाव और दृष्टिकोण में बहुत अन्तर था। फिर भी पिता का पुत्र पर विशेष स्नेह था, और पुत्र ने भी पिता की काफी सेवा की। गोविन्दजी ने मालवीयजी के राजनीतिक, शैक्षिक और सामाजिक कार्यों में काफी योगदान किया, तथा कई अवसरो पर उनके निजी सचिव के रूप में उनकी सेवा की। गोविन्दजी ने स्वतन्त्रता संघर्षों में डटकर भाग लिया, और जेल की यातनाए सही। पुत्रवधू आशादेवी तो शील और आशा की मूर्ति थी। वे बहुत धैर्य के साथ अपने कुटुम्ब, पतिदेव और स्वसुर की सेवा करती रहती थी। उन्होने भी सन् १९३२ के सविनय अवज्ञा आन्दोलन में कई मास जेल के कष्टो को बहुत साहस के साथ सहन किया। रमाकान्तजी के ज्येष्ठ पुत्र श्रीधर और गोविन्दजी के सुपुत्र गिरधर पर मालवीयजी के शील और देशप्रेम की भावना की गहरी छाप थी। सौजन्य और देश-सेवा के प्रति अभिरुचि उनके सद्गुण थे। सुपुत्री मालतीजी पर भी मालवीयजी के शील और सदुपदेशो की गहरी छाप थी। वे सदा सच बोलती, कडवे सत्य को कहने से परहेज करती, तथा छलमिश्रित सत्य को बुरा समझती थी। वे अपने बच्चो को मालवीयजी के शील में दीक्षित करती, तथा उनसे मालवीयजी की महत्त्वपूर्ण सेवाओ की चर्चा करती। वे अपने बच्चो को श्रीमद्भागवत, श्रीमद्भगवद्गीता और महाभारत के वे श्लोक सुनाती जो मालवीयजी को बहुत प्रिय थे, और यह भी बताती कि उनके सम्बन्ध मे मालवीयजी के क्या विचार थे। उनके बच्चो को ऐसा प्रतीत होता मानो उनकी माता तो 'मालवीयजी की आध्यात्मिक उत्तराधिकारिणी' ही है।

कार्य

इस स्थिति में ही मालवीयजी ने सन् १९४१ में गोरक्षा मंडल की स्थापना कर उसकी विधिवत् रजिस्टरी करायी, और नवम्बर में पण्डित यज्ञनारायण उपाध्याय को उसका उपमन्त्री नियुक्त किया। इस मडल द्वारा बिहार, युक्तप्रान्त और मध्य प्रदेश में गोरक्षा के प्रचार तथा गोशाला के सगठन का तथा कार्त्तिक शुक्ल प्रतिप्रदा से लेकर अष्टमी तक गोसप्ताह मनाने का प्रयत्न किया गया।

शिवपुर में च्यवन आश्रम में गोशाला की स्थापना और उसका प्रबन्ध इस संस्था का मुख्य कार्य था।

सम्वत् २००० विक्रमी की पूर्ति के समय विक्रमादित्य की स्मृति में 'अखिल भारतीय विक्रम परिषद्' स्थापित की गयी। ग्रन्थो का प्रकाशन तथा कालिदास जयन्ती समारोह और विक्रम-महोत्सव का आयोजन इसके मुख्य कार्य निश्चित हुए। पूर्व निश्चय के अनुसार कार्तिक शुक्ला नवमी (अक्षय नवमी, सम्वत् २०००) को काशी के चित्राभवन में हरिद्वार के महन्त शान्तानन्द नाथजी की अध्यक्षता में विराट उत्सव हुआ, जिसमे विद्वानों के भाषण हुए। एक वर्ष बाद 'कालिदास ग्रन्थावली' प्रकाशित हुई, जिसे अल्पमूल्य मे विद्वानो और छात्रो में वितरित किया गया। इस संस्था की ओर से कई वर्ष अक्षय नवमी के दिन कालिदास जयन्ती महोत्सव मनाया जाता रहा, तथा विशिष्ट ग्रन्थो का प्रकाशन होता रहा। इसके तत्त्वावधान में महाकवि कालिदास के नाटको का भी अभिनय किया गया, कवि सम्मेलन भी आयोजित हुए।

देश की राजनीतिक गतिविधि

सन् १९३७ के चुनावो में मद्रास, युक्त-प्रान्त, विहार, मध्य-प्रदेश और उडीसा की विधान सभाओ में कांग्रेस को बहुमत प्राप्त हो गया। बम्बई और सीमाप्रान्त में भी कुछ स्वतंत्र सदस्यो के सहयोग से कांग्रेस पार्टी बहुसख्यक पार्टी बन गयी। कुछ गतिरोध के बाद इस आश्वासन पर कि गवर्नर मन्त्रि-मण्डलो के प्रबन्ध में हस्तक्षेप करना नही चाहते, और विशेष अधिकारो का प्रयोग इस तरह होगा कि उससे गवर्नर और मन्त्रिमण्डल के पारस्परिक सम्बन्धो में कड़वाहट पैदा न हो, कांग्रेस पार्टिया उन सात प्रान्तो में शासन का उत्तरदायित्व वहन करने को तैयार हो गयी। सन् १९३८ में कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष सुभाषचन्द्र बोस के आदेश और अनुमति तथा सरदार पटेल की सहमति से कांग्रेस पार्टी के नेता बरदोलाई ने आसाम में भी सयुक्त मन्त्रि-मण्डल गठित कर लिया। ये मंत्रिमण्डल अक्तूबर सन् १९३९ तक काम करते रहे, और उन्होने अपने व्यवहार और क्षमता से सिद्ध कर दिया कि भारत के राजनीतिज्ञ उत्तरदायी शासन के सचालन की क्षमता और योग्यता रखते है। कांग्रेस मन्त्रिमण्डलो ने वित्तीय साधनो की कमी होते हुए भी समाज-कल्याण के क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया। नशाबन्दी के अतिरिक्त साक्षरता और शिक्षा का विस्तार, अस्पृश्यता का निवारण, हरिजनो की दशा मे सुधार, जनता के मौलिक अधिकारो की रक्षा, भूमिव्यवस्था में संशोधन, तथा किसानो के हितो

की रक्षा और वृद्धि काग्रेसी मन्त्रिमण्डलो के मुख्य काम थे। भूमि व्यवस्था के सुधार के लिए कई अधिनियम पास किये गये। जमीदारो के आधिपत्य और शोषण पर नियंत्रण, लगान में कमी, बेदखलियो पर रोक, किसानों के अधिकारो और हितो की पुष्टि उनके मुख्य उद्देश्य थे। करीब-करीब सभी विधान सभाओ में जमीदारो के हितो का समर्थन करते हुए मुस्लिम लीग ने इन अधिनियमो का विरोध किया। उत्तर प्रदेश मे तो चौधरी खलीकुज्जमा और नवाबजादा लियाकत अली खा के नेतृत्व में मुस्लिम लीग पार्टी ने अपने विरोध की हद कर दी। उसने भूमिव्यवस्था के सुधार की योजनाओ को मुस्लिम सस्कृति पर भारी आघात घोषित किया, और उन्हें मुसलमानो के विरुद्ध हिन्दुओ की साजिश बताया। अधिनियम तो पास हो गये, पर उनके कारण काग्रेस के प्रति मुस्लिम लीग में कडवाहट अधिक पैदा हो गयी।

मुस्लिम लीग ने काग्रेस पर आरोप लगाना शुरू किया कि काग्रेस एकमात्र हिन्दुओ की राजनीतिक सस्था है, वह देश मे हिन्दुओ का राजनीतिक आधिपत्य स्थापित करना चाहती है। उसकी सारी योजनाएँ हिन्दुत्व की भावनाओ से प्रेरित और हिन्दू धारणाओ पर आधारित होती है, और उन्हें चालू करते समय दूसरे सम्प्रदायो के धार्मिक और सास्कृतिक मान्यताओ का कोई ध्यान नही रखा जाता। इस सम्बन्ध मे मुस्लिम लीग ने मध्य प्रदेश की विद्यामन्दिर की योजना की, तथा गाधीजी की बुनियादी शिक्षा की विशेष रूप से निन्दा की। मुस्लिम लीग ने काग्रेस मंत्रिमण्डलो पर यह भी दोष लगाया कि वे मुसलमानो के साथ निष्कपट पक्षपात-रहित व्यवहार नही कर रहे है। उसने कहा कि मुसलमानो की स्वतत्रताओ और अधिकारो पर बेजा तौर पर प्रतिबन्ध लगाये जा रहे है। उन्हें अपमानित किया जा रहा है, उनकी जान-माल की रक्षा का समुचित प्रबन्ध नही हो रहा है। मुस्लिम लीग की ओर से उत्तर प्रदेश और बिहार में की गयी ज्यादतियो की रिपोर्टें भी तैयार करके प्रकाशित की गयी। सन् १९३८ में ही उसने अपने वार्षिक अधिवेशन मे काग्रेस मंत्रिमण्डलो के विरुद्ध सीधा सघर्ष (डाइरेक्ट एक्शन) करने का निश्चय किया। तनाव को शान्त करने के लिए गाधीजी, जवाहरलाल नेहरू, और सुभाषचन्द्र बोस ने जिना साहब से बात-चीत करके समझौता करने की कोशिश की। पर मुस्लिम लीग उस समय तक काग्रेस से कोई समझौता करने को तैयार नही थी, जब तक काग्रेस अपने को एकमात्र हिन्दुओ की संस्था, और मुस्लिम लीग को मुसलमानो की एकमात्र राजनीतिक संस्था मानने को तैयार न हो। चूकि काग्रेस इस बात को मानने को तैयार नही था, इसलिए बातचीत नही चल पायी। काग्रेस मुस्लिम लीग के

आरोपो को बेबुनियाद समझता था, और फेडरल कोर्ट के चीफ जज द्वारा उनकी जाच कराने को तैयार था। पर जिना साहब इसके लिए तैयार नही हुए। काग्रेस मन्त्रिमण्डलो ने गवर्नरो से अनुरोध किया कि अल्पसंख्यको के हितो की रक्षा के निमित्त वे जब आवश्यक समझें, तब अपने विशेष अधिकारो का प्रयोग करें, पर गवर्नरो ने मन्त्रिमण्डलों के आदेशो और व्यवहारो में हस्तक्षेप करने की जरूरत महसूस नही की। जिना साहब ने गवर्नर-जनरल लार्ड लिनलिथगो से अत्याचारो की शिकायत करते हुए उनसे अनुरोध किया कि इनके सम्बन्ध में वे उचित कार्रवाई करें। पर लार्ड लिनलिथगो ने भी महसूस किया कि शिकायतो में कोई विशेष तथ्य नही है, काग्रेस मन्त्रिमंडलों पर मुसलमानो के विरुद्ध पक्षपात का दोष आरोपित नही किया जा सकता, दो-चार शिकायतें ठीक हो सकती है, पर उनकी सम्भावना पर व्यापक जाच कैसे करायी जा सकती है। इस तरह मुस्लिम लीग की शिकायतो और आरोपो की कोई आधिकारिक जाँच नही हो सकी, पर मुस्लिम लीग उनका प्रचार करती रही, जिससे राजनीतिक तनाव बढ़ता चला गया।

विश्व-युद्ध

अप्रैल सन् १९३९ में भारत सरकार ने अदन की सैनिक शक्ति को मजबूत बनाने के लिए वहाँ एक सैन्य दल भेजा, और ब्रिटिश पार्लियामेण्ट ने सन् १९३५ के विधान में एक नयी धारा जोडकर केन्द्रीय सरकार को अधिकार दिया कि युद्ध या युद्ध के खतरे की स्थिति में वह प्रान्तीय सरकारो को आदेश दे सकती है कि उनके शासन का संचालन किस तरह हो, और केन्द्रीय विधायक शक्ति को अधिकार दिया कि वह प्रान्तीय क्षेत्रो में ऐसे कानून बना सकेगी जिनके द्वारा प्रान्तीय सरकार के शासन अधिकार केन्द्रीय सरकार या उसके कर्मचारियो को सौपे जा सकें। ३ सितम्बर सन् १९३९ को यूरोप मे युद्ध शुरू हो गया। वाइसराय ने दूसरे दिन भारत की ओर से भी युद्ध की घोषणा कर दी, और उनके आदेश पर गवर्नरो ने जिलाधिकारियों को गुप्त आदेश जारी कर दिये।

गाधीजी, नेहरूजी आदि काग्रेसी नेताओ को ब्रिटेन के प्रति सहानुभूति थी। वे युद्ध के जमाने में ब्रिटेन को परेशान करना नही चाहते थे। पर उन्हें ब्रिटिश सरकार और वाइसराय की ये बातें पसन्द नही थी। उनकी दृढ धारणा थी कि भारतीय जनता और उनके प्रतिनिधियो की रजामन्दी के बिना भारत को युद्ध में शामिल करना सर्वथा अनुचित और अन्याय है।

वे हिटलरशाही के विरोधी तथा लोकतन्त्र के समर्थक थे, पर उनकी राय में संसार में लोकतान्त्रिक स्वतंत्रता स्थापित करने के लिए फासिस्टवाद और नाजीवाद के विनाश के साथ-साथ साम्राज्यशाही का विलीनीकरण भी नितान्त आवश्यक था। उनकी यह भी धारणा थी कि भारतीय जनता का सहयोग प्राप्त करने के लिए भारत की स्वतन्त्रता की घोषणा भी जरूरी है।

इन सब बातो को ध्यान में रखते हुए काग्रेस कमेटी ने माँग की कि ब्रिटेन युद्ध के उद्देश्यो को घोषित करे। हिन्दुस्तान में लोकतंत्र स्थापित किया जाय, और उसे बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के अपना सविधान तैयार करने का अधिकार दिया जाय। कमेटी ने यह स्पष्ट कर दिया कि भारत फासिस्टवाद, नाजीवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध लोकतान्त्रिक ससार से सहयोग के लिए युद्ध में शामिल हो सकता है।

ब्रिटिश सरकार को काग्रेस की ये बातें मंजूर नही थी। वह यह वायदा करने को तैयार थी कि जर्मनी और इटली को पराजित कर ब्रिटेन अपने साम्राज्य का विस्तार करना नही चाहता, पर ब्रिटिश साम्राज्यशाही का विलीनीकरण करने की घोषणा करने को वह तैयार नही थी। वह केन्द्रीय शासन परिषद् में भारतीय सदस्यो की सख्या बढाने को राजी थी, पर भारत के भावी सविधान के सम्बन्ध में वह लार्ड अर्विन की सन् १९२९ की घोषणा से आगे बढाने को तैयार नही थी।

इसलिए १७ अक्तूबर को वाइसराय लार्ड लिनलिथगो ने एक वक्तव्य द्वारा स्पष्ट किया कि ब्रिटेन युद्ध से अपने लिए कुछ नही चाहता, बल्कि सच्ची अन्तर्राष्ट्रीय नीति और शान्ति चाहता है। उन्होने डोमिनियन स्टेटस की उपलब्धि को भारत की राजनीति का अन्तिम लक्ष्य बताते हुए वायदा किया कि युद्ध के बाद सम्राट् की सरकार भारत के विभिन्न सम्प्रदायो, दलो और हितो के प्रतिनिधियो से और भारतीय नरेशो से राजनीतिक सुधारो के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करेगी। उन्होने यह भी घोषित किया कि युद्ध के प्रयासो में भारत का अधिक निकट सहयोग प्राप्त करने के लिए भारतीय नरेशों का तथा ब्रिटिश भारत के प्रमुख दलों का एक सलाहकार प्रतिनिधि-मंडल गठित किया जायगा।

काग्रेस वर्किंग कमेटी ने २४ अक्तूबर को इस वक्तव्य की कडी आलोचना करते हुए घोषित किया कि ऐसी स्थिति में ब्रिटेन को किसी प्रकार का सहयोग देना साम्राज्यवादी नीति का समर्थन करना होगा। उसने असहयोग की नीति

निर्धारित करते हुए कांग्रेस मन्त्रिमण्डलो को इस्तीफा देने का आदेश किया, और कुछ दिन के अन्दर इन सब नें इस्तीफा दे दिया।

कांग्रेस और मुस्लिम लीग से वाइसराय का विचार-विमर्श चार मास तक चलता रहा। पर समस्या सुलझने के बजाय उलझती चली गयी। वाइसराय ने कहा कि केन्द्रीय कार्यपरिषद् का विस्तार तभी हो सकता है, जब कांग्रेस और मुस्लिम लीग में प्रान्तीय विषयो के सम्बन्ध मे भी कोई समझौता हो जाय। जिना साहब ने माग की कि (१) प्रान्तो मे संयुक्त मन्त्रिमण्डल गठित किये जायें, (२) मुसलमानो को प्रभावित करनेवाला कोई कानून लागू न किया जाय, अगर विधान सभा के दो-तिहाई मुसलमान सदस्य इसके विरुद्ध हो, (३) सार्वजनिक संस्थाओ पर कांग्रेस का झंडा न लगाया जाय, (४) बन्देमातरम् के प्रोग्राम के सम्बन्ध में समझौता हो, (५) मुस्लिम लीग को तोडनेवाली सब कार्रवाइयो को कांग्रेस बन्द कर दे। उन्होंने वाइसराय से अनुरोध किया कि (१) भारत की सवैधानिक समस्या पर नये सिरे से विचार किया जाय, (२) हिन्दुस्तान के दोनो प्रमुख सम्प्रदायो की रजामन्दी के बिना कोई नया संविधान नही वनाया जाय, (३) फिलस्तीन के अरबो की न्यायसगत राष्ट्रीय माग पूरी कराने के लिए ब्रिटिश सरकार प्रयत्न करे, (४) किसी मुस्लिम देश के विरुद्ध भारतीय सेना भारत के बाहर इस्तेमाल न की जाय। २२ दिसम्बर को मुस्लिम लीग के आदेश पर सारे हिन्दुस्तान के मुसलमानो ने कांग्रेस मन्त्रिमण्डलो के पदत्याग की खुशी में 'मुक्ति दिवस' मनाया। १३ मार्च सन् १९४० को जिना साहब ने वाइसराय से कहा कि यदि साम्प्रदायिक विवाद की समस्या का कोई समुचित समाधान नही होता, तो मुसलमान हिन्दुस्तान के बॅटवारे की माग करेंगे। वाइसराय के एक प्रश्न का उत्तर देते हुए जिना साहब ने कहा कि वे तो चाहेंगे कि मुस्लिम क्षेत्र मुसलमानो द्वारा ग्रेट ब्रिटेन के सहयोग से शासित हों। २० मार्च सन् १९४० को मुस्लिम लीग ने धर्म को राष्ट्रीयता का आधार बताते हुए 'मुस्लिम राष्ट्र के सिद्धान्त को पुष्ट किया, मुस्लिम बहुसख्यक प्रान्तों को पृथक् स्वतंत्र राज्यो मे गठित करने की माग की, तथा सब अल्पसंख्यकों के लिए उनके धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, प्रशासनिक अधिकारो की पर्याप्त रक्षा की आवश्यकता पर जोर दिया।

१९-२० मार्च सन् १९४० को कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ। मौलाना अबुल कलाम आजाद ने अपने अध्यक्षीय भाषण मे भारत की अखंडता पर जोर दिया, और कांग्रेस की माग को पुष्ट किया। कांग्रेस ने निश्चय किया
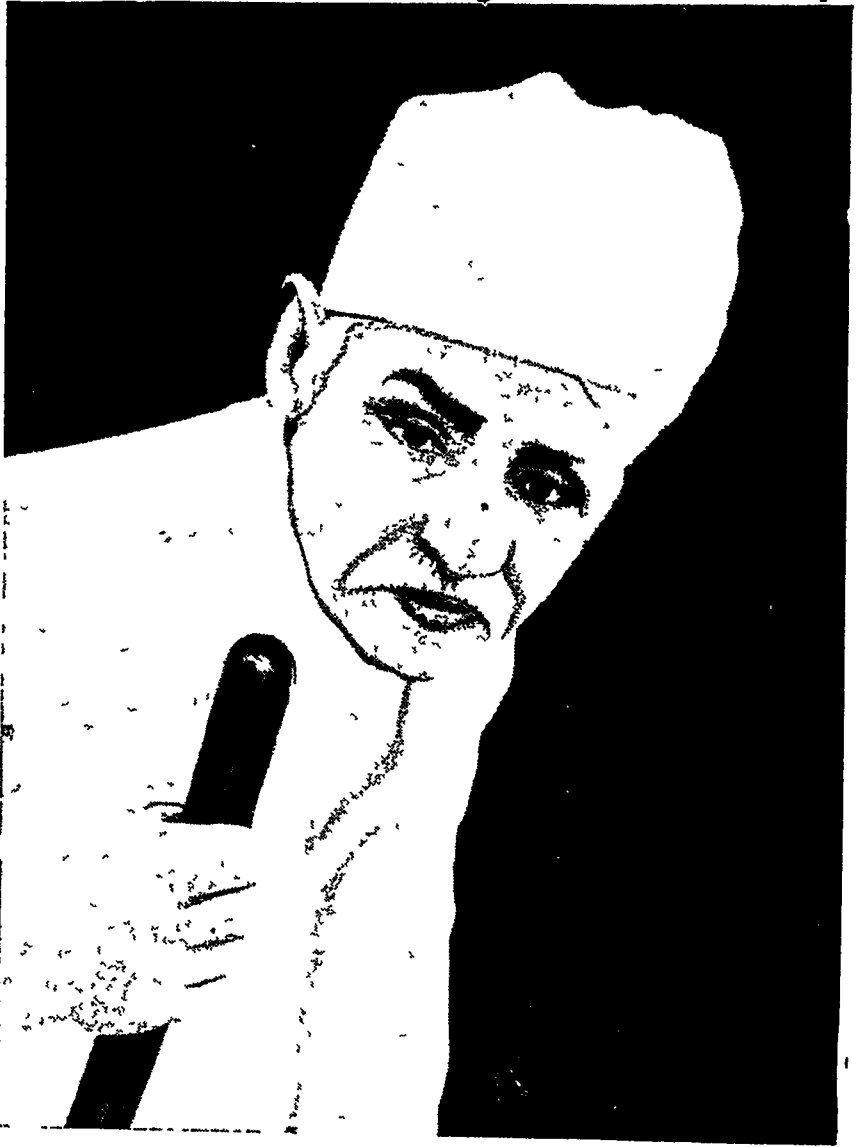
मालवीयजी वृद्धावस्थामें

कि गाधीजी के नेतृत्व में, जब वे उचित समझें, संघर्ष शुरू कर दिया जाय। उसने यह भी निश्चय किया कि पूर्ण स्वतत्रता से कम कोई भी बात कांग्रेस को स्वीकार नही होगी, और वयस्क मताधिकार पर निर्वाचित विधान सभा ही देश का संविधान तैयार करेगी, और संसार के दूसरे राष्ट्रो से भारत का सम्बन्ध निश्चित करेगी।

इसी अवसर पर किशन नगर मे सुभाष चन्द्र बोस ने समझौता-विरोधी सम्मेलन आयोजित किया। सम्मेलन ने समझौते की नीति का विरोध करते हुए संघर्ष करने की जनता से अपील की, और ६ अप्रैल को संघर्ष शुरू कर देने का निश्चय किया।

इस सब के बाद भी काग्रेस संघर्ष को टालती रही। इधर जून सन् १९४० में फ्रान्स के पराजित हो जाने पर युद्ध की स्थिति काफी गम्भीर हो गयी, और वाइसराय को भारतीय जनता से सहयोग की विशेष रूप से अपील करनी पडी।

उस समय जिना साहब ने मुस्लिम लीग की ओर से माग की कि मुस्लिम भारत की अनुमति के बगैर सविधान की कोई स्थायी या अन्तरिम योजना चालू नही की जायेगी, गवर्नर-जनरल की कौंसिल में तथा युद्ध सलाहकार कौंसिल में मुसलमान हिन्दुओ के बराबर होगे, यदि काग्रेस शामिल होने को तैयार होगी, अन्यथा मुसलमान बहुसख्यक होगे, उन प्रान्तो मे जहाँ दफा ९३ लागू है गैर-सरकारी सलाहकार नियुक्त किये जायेंगे, जिनमें आधे मुसलमान होगे, मुसलमान सलाहकारो और सदस्यो का भी चयन मुस्लिम लीग करेगी।

काग्रेस ने ७ जुलाई को समझौते की नयी शर्तें पेश की। उसने युद्ध के लक्ष्यो की माँग को छोडते हुए माँग की कि सरकार भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग स्वीकार करे, और युद्धकाल के लिए मौजूदा शासन व्यवस्था के अन्दर ही ऐसी राष्ट्रीय सरकार गठित करे, जिसका अध्यक्ष वाइसराय हो, और जिसका एक सदस्य कमाडर-इन-चीफ हो, पर जिसके अन्य सब सदस्य भारतीय हो।

८ अगस्त सन् १९४० को वाइसराय ने एक वक्तव्य प्रसारित किया, जिसमें उन्होने गवर्नर-जनरल की कौसिल के विस्तार का और युद्ध सलाहकार समिति गठित करने का वायदा दोहराते हुए घोषित किया कि युद्ध समाप्त होने के बाद यथाशीघ्र ब्रिटिश सरकार हिन्दुस्तान के प्रमुख दलो के प्रतिनिधियो की सभा बुलायेगी जो नये शासन-विधान का खाका तैयार करेगी, और उचित निर्णयो पर पहुँचने के लिए सरकार उसकी सहायता करेगी। उन्होने यह भी घोषित

किया कि अधिकार किसी ऐसी शासन-प्रणाली को हस्तान्तरित नही किये जायेंगे जिसे भारत के राजनीतिक जीवन के सब प्रमुख तत्त्व स्वीकार करने को तैयार न हो।

मुस्लिम लीग ने इस वक्तव्य पर सन्तोष प्रकट करते हुए कौंसिल के विस्तार के सम्बन्ध में वाइसराय से कुछ प्रश्न पूछे। पर कांग्रेस ने इस वक्तव्य पर असन्तोष प्रकट करते हुए गाधीजी के नेतृत्व में उनके बताये ढग पर व्यक्तिगत सत्याग्रह करने का निर्णय किया।

१७ अक्तूबर सन् १९४० को भाषण की स्वतंत्रता पर व्यक्तिगत सत्याग्रह प्रारम्भ हो गया। यह सत्याग्रह लगभग एक वर्ष तक चलता रहा। लगभग २०,००० नर-नारियो ने इसमें भाग लिया, और जेल की यातनाएँ सही।

इस आन्दोलन के प्रारम्भ होने के कुछ दिन बाद मालवीयजी ने गाधीजी से इसमें भाग लेने की इजाजत मांगी। पर गाधीजी ने मालवीयजी की आयु और स्वास्थ्य को देखते हुए उन्हे ऐसा करने की अनुमति नही दी।

यद्यपि गाधीजी व्यक्तिगत सत्याग्रह के नैतिक प्रभाव से सन्तुष्ट थे, कांग्रेस के बहुत से कार्यकर्ता संघर्ष को सामूहिक सत्याग्रह का रूप देने के पक्ष में थे।

दिसम्बर मे सब सत्याग्रही छोड दिये गये, और जापान युद्ध में कूद पडा। इस स्थिति मे कांग्रेस ने सरकार के साथ इस शर्त पर सहयोग करने का निर्णय किया कि ब्रिटेन ऐसी स्थिति पैदा करे जिसमे भारत स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र के लिए युद्ध मे सम्मानपूर्वक भाग ले सके।

काफी हिचकिचाहट के बाद राष्ट्रपति रूजवेल्ट के आग्रह पर प्रधानमन्त्री चर्चिल ने मार्च के अन्तिम सप्ताह में सर स्टेफर्ड क्रिप्स को भारतीय राजनीतिज्ञो से विचार-विमर्श के लिए भारत भेजा। उन्होने ब्रिटिश सरकार की ओर से वक्तव्य प्रसारित किया, जिसमे इस बात का वायदा किया गया कि युद्ध के बाद प्रान्तीय विधान-सभाओ के चुनाव कराये जायेंगे, और उनके नवनिर्वाचित सदस्यो द्वारा चुने सदस्य और राजाओ द्वारा मनोनीत सदस्य मिल कर संविधान-सभा गठित करेंगे जो भारत यूनियन का संविधान तैयार करेगी और इस संविधान के आधार पर भारत यूनियन को ब्रिटिश कामनवेल्थ में डोमीनियन का स्टेटस प्राप्त होगा। पर इस वक्तव्य में यह भी स्पष्ट कर दिया गया था कि यदि कोई प्रान्त या रियासतें भारत यूनियन में शामिल न होना चाहें, तो वे अपने को स्वतन्त्र यूनिटो में गठित कर सकते हैं, और इन यूनिटो को भी कामनवेल्थ में डोमीनियन स्टेटस प्राप्त होगा।

भावी संविधान की यह योजना भारतीय राजनीतिज्ञो को पसन्द नही थी। मुस्लिम लीग को यह योजना मजूर नही थी, क्योकि यद्यपि इसमें प्रान्तो का आत्मनिर्णय स्वीकार किया गया था, पर मुसलमानो को आत्मनिर्णय का अधिकार नही दिया गया था, और यह सम्भव था कि मुस्लिम वहुसंख्यक प्रान्तो के ग़ैरमुसलमान प्रतिनिधि थोडे से मुसलमान प्रतिनिधियो की मदद से मुसलमान वहुसख्यको की राय के विरुद्ध उन प्रान्तो को भारत यूनियन में शामिल कर दें। अन्य दलो के नेताओ को यह योजना नामंजूर थी, क्योकि वह विभाजन और विघटनकारी शक्तियो को प्रोत्साहित करती थी। उनकी धारणा थी कि प्रस्तावित प्रक्रिया भारत की एकता और रक्षा के लिए घातक सिद्ध हो सकती है।

फिर भी युद्ध की गम्भीर स्थिति का ध्यान करके काग्रेस पार्टी सरकार के साथ इन शर्तों पर सहयोग करने को तैयार थी कि (१) गवर्नर-जनरल की कौसिल एक कैबिनेट की हैसियत से काम करेगी, (२) भारतीय रक्षा-सदस्य को सेना के प्रवन्ध में प्रभावकारी अधिकार प्राप्त होगे। प्रधानमत्री चर्चिल और वाइसराय लिनलिथगो, इन दो में से एक वात भी मानने को तैयार नही थे। इसलिए कोई समझौता नही हो सका। इसके बाद क्रिप्स ने जो वक्तव्य प्रसारित किया उससे कडवाहट वढ़ गयी।

क्रिप्स-मिशन की विफलता ने गतिरोध पैदा कर दिया। उसे दूर करने के लिए राजगोपालाचारी का सुझाव था कि मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की माग को सिद्धान्त रूप में स्वीकार करके नेशनल सरकार के गठन के सम्बन्ध में उससे समझौता किया जाय, पर काग्रेस के अधिकाश नेता और कार्यकर्ता विभाजन का सिद्धान्त स्वीकार करने को तैयार नही थे।

मौलाना आजाद और पण्डित नेहरू सरकार के व्यवहार से क्षुब्ध थे, पर वे युद्ध की गम्भीर स्थिति मे कोई संघर्ष छेडना उचित नही समझते थे। लेकिन गाधीजी ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध देशव्यापी सघर्ष नितान्त आवश्यक समझते थे। उनकी धारणा थी कि भारत मे ब्रिटिश सत्ता का अस्तित्व जापान को भारत पर आक्रमण करने के लिए निमंत्रण है। उनका विचार था कि भारतीय जनता में अंग्रेजो के प्रति इतनी कटुता है कि उनके रहते वह जापान की विजय के दुष्परिणामो को सोचने को भी तैयार नही है। यदि ब्रिटिश सत्ता यहाँ बनी रही, तो भारत की दशा भी दक्षिणपूर्वीय एशिया की तरह की हो सकती है। अंग्रेजो के चले जाने पर वहुत संभव है कि जापान भारत पर आक्रमण करने

का विचार छोड़ दे। पर यदि इसके बाद भी जापान ने आक्रमण किया, तो उसके साम्राज्यिक स्वरूप को पहचान कर भारतीय जनता अहिंसात्मक असहयोग द्वारा जापानी आक्रमण का डटकर मुकाबला कर सकती है।

८ अगस्त को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने भारत से ब्रिटिश सत्ता उठा लेने की मांग करते हुए देशव्यापी अहिंसात्मक संघर्ष प्रारम्भ करने का निर्णय किया।

इस प्रस्ताव के पास हो जाने के बाद गांधीजी वाइसराय से एक बार फिर मिलना और बातचीत करना चाहते थे। पर सरकार ने ९ अगस्त को प्रातःकाल ही गांधीजी तथा कांग्रेस के दूसरे बहुत से नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। इस तरह संघर्ष शुरू हो गया। यह संघर्ष आजादी के दूसरे संघर्षों से अधिक व्यापक और भीषण था। सरकार तो कांग्रेस के सभी नेताओं और प्रमुख कार्यकर्ताओं को जल्दी से गिरफ्तार करके आन्दोलन को तीन-चार दिन के अन्दर ही समाप्त कर देना चाहती थी, पर नेताओं की गिरफ्तारी ने जनता के रोष को शान्त करने के बजाय प्रज्वलित कर दिया। जनता के विद्रोह ने भयंकर भूमिगत संघर्ष का रूप धारण कर लिया। जान और माल के मौलिक भेद को ध्यान में रखते हुए मानव जीवन के प्रति अहिंसात्मक व्रत का पालन करते हुए तोड़-फोड़ के जरिये ब्रिटिश साम्राज्यशाही के राजतन्त्र को ठप करना, तथा उसके युद्धसम्बन्धी प्रयत्नों में बाधा पहुँचाना ही इस भूमिगत आन्दोलन का मुख्य स्वरूप था।

सरकार ने आन्दोलन को दबाने के लिए काफी नियोजित ढंग से भद्रता, इनसानियत और न्याय को ताक पर रखकर सख्ती से काम लिया। उसने न्याय-विहीन अध्यादेशों का तथा अपनी पाशविक शक्ति का व्यापक प्रयोग कर आतंक का राज स्थापित कर दिया। सुरक्षा और सुव्यवस्था को पुनः स्थापित करने के नाम पर पुलिस और फौज ने अशान्त क्षेत्रों में घुसकर निर्दोष व्यक्तियों पर भी अत्याचार किये। छोटे-छोटे बच्चों को सताया गया, नवयुवकों को निर्दयता से बेतों से पीटा गया, बूढ़ों को लहूलुहान किया गया, सम्मानित घरों की पर्दा-नशीन स्त्रियों को भी अपमानित और परेशान किया गया। सरकार की अपनी रिपोर्ट से पता चलता है कि ३१ दिसम्बर सन् १९४२ तक पुलिस ने ६०१ बार और फौज ने ६८ बार गोली चलायी। पुलिस की गोली से ७६३ आदमी मारे गये और १९४१ घायल हुए। फौज की गोली से २९७ आदमी मरे और २३८ आदमी घायल हुए। इस रिपोर्ट में यह स्वीकार किया गया कि ५ बार हवाई जहाज से

से मिलते और उनसे अपनी व्यथा कहते, पुलिस के अत्याचारो का रोना रोते, अपने संगी-साथियो पर बीती बताते। मालवीयजी उन सबकी बातें सुनते, उन्हें धैर्य बधाते, सेक्रेटरी को आदेश देते कि सब बात विस्तार से लिख ली जायें। पर जबकि वे पीडितो को धैर्य रखने का उपदेश देते, स्वय उनके दुःख में दुःखी हो रो पडते, स्त्रियो के अपमान तथा बच्चो की पीडा का समाचार सुन कर क्रोधित हो जाते। एक दिन एक बूढा आया। उसने अपने कपडे उतार कर उन्हें अपनी पीठ दिखायी कि उसे किस बुरी तरह पीटा गया है। उसे देख कर मालवीयजी जोर-जोर से रोने लगे। यह सिलसिला कई सप्ताह तक चलता रहा। इसे रोकना असम्भव था, क्योंकि वे इस बात को बर्दाश्त ही नही कर सकते थे कि कोई मीलो चल कर आवे और वे उसकी बात भी न सुनें, उनके कर्मचारी उन्हें उनसे मिलने भी न दें। यह सब देख कर लेखक की अन्तरात्मा तो पुकार उठी कि यह महामना देश के नेता ही नही, सारे राष्ट्र के कौटुम्बिक है, जिस तरह एक कुटुम्ब का पिता सारे कुटुम्ब से अपने जीवन को आत्मसात कर प्रत्येक बच्चे की पीडा में स्वय पीडा अनुभव करता है, अपने घर की बहू-बेटियो के अपमान की बात सुन कर विह्वल और क्रोधित हो जाता है, उसी तरह इस राष्ट्रपिता ने सारे राष्ट्र से अपने को ऐसा आत्मसात कर लिया है कि उनकी पीड़ा और अपमान में वह सहज रूप से दुःखी, क्रोधित और विह्वल होता है।

उस परिस्थिति मे पीडितो की ठीक-ठीक सहायता करना तो मालवीयजी की शक्ति के बाहर था, पर जो कुछ भी सहायता की जा सके, उसके लिए उन्होने अपनी अध्यक्षता में एक कमेटी गठित की, तथा कुछ धन जुटा कर वितरित किया। उन्होंने जौनपुर, गाजीपुर, बलिया आदि जिलो में किये गये अत्याचारो का एक सक्षिप्त विवरण तैयार कराके एक पंजाबी सज्जन द्वारा जो सम्भवत. सनातन धर्म सभा के कार्य से उनसे मिलने आये थे, दिल्ली में केन्द्रीय विधान मंडल के सदस्य पडित हृदयनाथ कुंजरू और श्री के० सी० नियोगी के पास भिजवा दिया, ताकि अगस्त की घटनाओ पर असेम्बली और राजसभा में वाद-विवाद के समय उसका प्रयोग हो सके। असेम्बली मे गृह-सदस्य मेक्सवेल ने कांग्रेस को उपद्रवो के लिए उत्तरदायी ठहराते हुए बहुत ही अतिरजित ढंग से उनका विवरण उपस्थित किया। इस समाचार को विस्तार से सुनकर मालवीयजी विह्वल और क्रोधित हो गये। जोर से बडे तीखे स्वर मे वे कहने लगे—सब मर गये, किसी ने भी जवाब नही दिया। अत्याचारो का जिक्र नही किया। उन्हे शान्त करने के लिए इस पुस्तक के लेखक ने उनसे कहा—"महाराज, आपने

सारा जीवन असेम्बली में गुजारा है। जब एक सज्जन बोलता हो, तब दूसरा कैसे बोलता !" यह सुन कर वे चुप हो गये। दूसरे दिन समाचारपत्रो मे पण्डित हृदयनाथ कुजरू, श्री के० सी० नियोगी आदि राष्ट्रवादी सदस्यो के भाषण थे, जिनमें उन्होंने पुलिस और फौज के अत्याचारो के उदाहरण देते हुए कडे शब्दो में सरकार की भर्त्सना की थी। जब मालवीयजी द्वारा भेजी गयी घटनाओं की चर्चा पंडित कुजरू ने राज्य-सभा मे शुरू की, तब एक सरकारी सदस्य ने पूछा कि क्या उन्होंने इसकी जाँच की है, तथाकथित पीडितो से बयान लिये हैं। इसके उत्तर मे कुजरू साहब ने कहा कि ये सब तथ्य मुझे एक ऐसे सज्जन ने मेरे पास भेजे है जिसकी सच्चाई और ईमानदारी पर मुझे पूरा भरोसा है। श्री के० सी० नियोगी ने भी कुजरू साहब की तरह अत्याचारो के लिए सरकार को खरी-खोटी सुनायी। यह सब समाचार सुन कर मालवीयजी ने अनुभव किया कि भारतीय सदस्य उस परिस्थिति मे जो कर सकते थे, वह उन्होने किया। इस पर उन्हें अधिक सन्तुष्ट करने के लिए लेखक ने उनसे कहा कि पंडित कुजरू और नियोगी साहब की आपने उनके चुनावो में मदद की थी, निर्वाचको से उन्हें चुनने की अपील की थी, आपने उन पर जो विश्वास किया था, उन्होने अपने को आपके विश्वास के योग्य सिद्ध कर दिया, आपका विश्वास बिलकुल सही साबित हुआ। सभवत. उन्हें भी इसका सन्तोष था।

इसी जमाने मे एक दिन पुलिस ने डाक्टर मगल सिंह के यहा, जो यूनिवर्सिटी के एक आवास मे रहते थे, तलाशी ली। उनके पास कोई आपत्तिजनक चीज पुलिस को नही मिली। पर वह उन्हे गिरफ्तार करके ले गयी। उस समय इस बात की जोरो से खबर थी कि पुलिस मालवीयजी और लेखक की भी तलाशी लेना चाहती है। पर कोई ऐसी घटना नही घटी। सायकाल को नियमानुसार लेखक मालवीयजी के पास गया, तब उन्होने कहा—"मुकुट बिहारी, अगर कोई मेरे पास आया तो मैं कह दूँगा कि आज कल मेरे पास कोई प्राइवेट सेक्रेटरी नही है। प्रोफेसर मुकुटविहारी लाल ही सेक्रेटरी का काम कर रहे हैं"। लेखक ने कहा—"जरूर कह दीजिये"। पर न कोई उनके पास आया, न लेखक से किसी ने कोई पूछताछ की।

एक दिन जबकि आन्दोलन बहुत ठडा पड गया था, मालवीयजी ने लेखक से पूछा—"मुकुट विहारी, अब क्या होगा ?" उसने कहा—"महाराज आपकी और महात्माजी की तपस्या व्यर्थ थोडे ही जायेगी। स्वराज्य तो मिलेगा ही। गाधीजी के नेतृत्व में स्वराज्य लेने का प्रयत्न हो रहा है। यदि इससे सफलता

नही मिली, तो किसी दूसरे नेतृत्व द्वारा उसे प्राप्त करने का प्रयत्न किया जायगा।" इस पर मालवीयजी ने कहा "जय प्रकाश।" इस पुस्तक का लेखक जानता था कि मालवीयजी महाराज को जयप्रकाश की योग्यता और कर्तव्य-परायणता पर बहुत विश्वास है। पर वह यह नही जानता था कि जयप्रकाश ने वयोवृद्ध नेता मालवीयजी को अपनी प्रतिभा से इतना आकृष्ट कर लिया है कि वह उसे एक नया नेतृत्व प्रदान करने के योग्य समझने लगे हैं। जयप्रकाश जी, उस समय हजारीबाग जेल की चहार-दीवारी फाँद कर बाहर आने पर गुप्त रूप से गुरिल्ला सघर्ष के लिए नवयुवको के दस्ते तैयार करने में सलग्न थे।

इस जमाने में ही एक दिन प्रयाग के एडवोकेट सुरेन्द्रनाथ वर्मा सर तेज बहादुर सप्रू और डाक्टर सच्चिदानन्द सिन्हा के साथ-साथ मालवीयजी से मिले और उन्होने मालवीयजी से पूछा : "महाराज! इस (१९४२ के) आन्दोलन में हिसा का जो प्रदर्शन हुआ, क्या वह गाधीजी के अहिसात्मक विचारो के अनुरूप था, और क्या इसके लिए वे जिम्मेदार नही है?" मालवीयजी ने तपाक से उत्तर दिया—"हाँ, गाधीजी अवश्य ही सारी बातो के लिए जिम्मेदार है। जो कुछ हुआ, उसकी न 'केवल नैतिक जिम्मेदारी उन पर है बल्कि सम्पूर्ण है, किन्तु यदि यही आन्दोलन सफल हो जाता तो दुनिया कहती और इतिहास में भी लिखा जाता कि भारत ने क्रान्ति द्वारा अपनी स्वतत्रता प्राप्त कर ली। आन्दोलन असफल हो गया तो इसी का नाम 'शान्तिमय विद्रोह' या जो चाहो दे सकते हो।"[1]

श्री सुरेन्द्र नाथ वर्मा के इसी संस्मरण से पता चलता है कि मालवीयजी नैराश्य का वातावरण मिटाने के लिए, देश में चेतना लाने के लिए कुछ करना चाहते थे, और इसी उद्देश्य से उन्होने प्रयाग में अपने निवास-स्थान पर सर तेज बहादुर सप्रू और डाक्टर सच्चिदानन्द सिन्हा को बुलाया था, तथा उनसे बात चीत की थी। पर बात क्या हुई और तय क्या हुआ, यह श्री सुरेन्द्रनाथ वर्मा जी ने नही बताया। हो सकता है कि उस समय उस निर्दलीय कांफरेन्स की चर्चा चली हो और बात तय हुई हो, जिसे आगे चल कर सर तेजबहादुर सप्रू ने आमन्त्रित और आयोजित किया।

मन:स्थिति

उस समय की उनकी मन स्थिति का पता कुछ संस्मरणो से लग सकता है। गोस्वामी गणेण दत्त जी अपने एक संस्मरण में लिखते है कि एक दिन

---

१. मालवीयजी—जीवन झलकियाँ, पृ० ७।

एक महाराजा साहब मालवीयजी से मिलने काशी आये और जब मिले तो पचास हजार रुपये का एक चैक उन्हें देते हुए बोले—"महाराज, ये रुपये आप के व्यक्तिगत कार्यों के लिए हैं, जैसे चाहें, आप खर्च करें।" मालवीयजी की आँखों में आँसू छलछला आये, और उन्होने महाराजा साहब को धन्यवाद देते हुए उस चैक को व्यक्तिगत कार्यों के लिए लेना अस्वीकार कर दिया। महाराजा ने बहुत आग्रह किया, पर मालवीयजी माने नही। अन्त में महाराजा साहब ने कहा—"महाराज! आप तो विद्वान् शास्त्रज्ञ है। दिया हुआ दान कही वापस लिया जाता है? मैं यह चैक अब कैसे वापस ले सकता हूँ?" मालवीयजी ने "मुझे बुलाया और चैक मुझे देते हुए बोले—इसे सनातनधर्म महासभा के खाते में जमा कर दो। आधा सभा के लिए है और आधा धर्मग्रन्थो को सस्कृत से हिन्दी में प्रकाशित करने के लिए।"[1]

पण्डित अम्बादत्त भट्ट साहित्याचार्य ने एक संस्मरण में लिखा है. "८४ वर्ष की अवस्था मे महामना अपनी खटिया पर लेटे हुए एक मित्र को एक पत्र लिखा रहे थे। सहसा आवाज आयी—च्यवनाश्रम से। च्यवनाश्रम एक स्थान का नाम है, जहाँ पर गोशाला बनी है। महामना जी ने कहा—'देखो, बाहर कौन है? कोई च्यवनाश्रम से आया हैं। बुलाओ उसे।' च्यवनाश्रम से आने वालो में छोटे लाल नाम का एक गोरक्षक तथा श्री यज्ञनारायण उपाध्याय एम० एल० ए० थे। उनकी बातचीत से पता चला कि गायें भूसे के बिना भूँखी मर रही हैं। कही से कोई प्रवन्ध नही हो रहा है। महामना जी ने दो-तीन जगह फोन करवाया, पर जब शीघ्र किसी प्रकार प्रवन्ध की आशा न दिखायी दी तो महामनाजी ने अपने मूडी नामक सेवक को बुलाया और कहा—'वे रुपये ले आओ जो अभी गोविन्द (मालवीयजी के सबसे छोटे पुत्र) ने दिये है।' अशिक्षित किन्तु अनन्य सेवक मूडी ने पूछा—काहे जरूरत है? चारे के लिए। गैया भूँखी मर रही हैं—मालवीयजी ने उत्तर दिया। मूडी ने कहा—ऊ रुपया भैया जी फल का और खद्दर भडार का कपडा का दिहिन है। महामनाजी ने तुरन्त कहा न हम फल खाइब और न कपडा पहनब। तू रुपया दे दे। मूडी मेरी तरफ देख कर कहता गया—'कितने दिन से फल नही ले रहे है। कुरता फट गई हैं। आज भैयाजी से रुपया लिया हैं तो वह भी दिला दे रहे है।' महामनाजी ने इतना सुनते ही एक और डाट दी और वह सब रुपया उनके सामने रख कर

---

१ मालवीयजी-जीवन झलकियाँ, पृ० ४९।

चला गया। महामनाजी ने अपने हाथ से रुपये उठाये और उनमें से १०१) रुपये उस छोटेलाल गोरक्षक को दे दिये।"[1]

पडित अम्बादत्त भट्टजी ने अपने इसी संस्मरण मे यह भी लिखा है कि एक बार जबकि मालवीयजी किसी महत्त्वपूर्ण विषय पर सभा कर रहे थे एक गंगापुत्र धाराप्रवाह गालिया देता वहा पहुँचा। तब मालवीयजी ने बहुत ही मधुर वाणी में उससे पूछा—"क्या मैं जान सकता हूँ कि मेरा अपराध क्या है?" गंगा-पुत्र ने बताया कि विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने उसकी नौका को कितनी क्षति पहुँचायी है। सुनते ही मालवीयजी ने कहा—"भगवन्, वास्तव में आपकी बडी क्षति हुई है। ये छात्र आपके ही पुत्र है। इन्हे क्षमा कर दो। आपकी नौका ठीक करा दी जायगी।"[2]

प्रोफेसर राधेश्याम शर्मा ने इस पुस्तक के लेखक को बताया कि जब सन् १९४६ के जाडो मे वे मालवीयजी से मिले और उन्होने उनसे अनुरोध किया कि उनके पक्ष में चुनाव-अपील लिख दें, तब मालवीयजी ने उनसे कहा कि 'अब तो स्वराज्य मिल गया।' इस पर राधेश्यामजी ने कहा कि 'महाराज, अभी तो ब्रिटेन की प्रतिक्रियावादी शक्तियो के विरुद्ध सघर्प करना होगा'। इस पर मालवीयजी ने पूछा कि तो फिर तैयार हो, और जब उन्हे बताया गया कि तैयारी के साथ संघर्ष होगा, तब मालवीयजी ने राधेश्याम को पास बुला कर उनकी पीठ ठोकी।

डाक्टर शिवनाथ काटजू अपने एक संस्मरण मे लिखते है कि "एक बार मालवीयजी अपने निधन से कुछ ही दिनो पहले प्रयाग आये, और उन्होंने उनसे कहा—गंगाजी की धारा को अविच्छिन्न रखने के लिए मुझे बहुत प्रयत्न करने पड़े है। हरिद्वार मे केवल ६ फुट का छेद बाध में रह गया है। हो सकता है कि मेरे बाद यह समस्या फिर कभी खडी हो, उस ६ फुट के छेद को भी बन्द करने का प्रयत्न किया जाय। यदि ऐसा कभी हो तो तुम से मैं कह जाता हूँ कि तुम इसका विरोध करना और जैसे भी हो, ऐसा होने मत देना।"[3]

श्री भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव' अपने संस्मरण में लिखते है कि जब उन्होंने मालवीयजी को नोआखाली के हिन्दुओ पर आयी महाविपत्ति की कथा सुनायी तब वे "काप उठे—फूट-फूट कर रो पडे! मेरा प्रश्न था कि 'क्या बलात् धर्म

---

१. वही, पृ० १०६-१०७।
२. मालवीयजी-जीवन झलकियाँ, पृ० १०६।
३. मालवीयजी-जीवन झलकियाँ, पृ० ३१।

परिवर्तन को स्वीकार कर सहसा सहस्र हिन्दुओं का परित्याग कर दिया जाय ?' इस पर मालवीयजी महाराज का अन्तर्हृदय उद्वेलित हो उठा और उन्होंने अपने बंगले पर काशी के मूर्धन्य पण्डितों की एक सभा बुलायी और सबने एक स्वर से स्वीकार किया और व्यवस्था दी कि बलात् मुसलमान बनाये गये हिन्दुओ को वापस लेने के लिए किसी प्रकार की शुद्धि प्रक्रिया की आवश्यकता नही है—एक मात्र गगाजल और राम नाम पर्याप्त है। मालवीयजी महाराज बहुत थक गये थे, उनके मुंह के पास मैंने कान लगाया तो सुन सका—राम नाम, गंगा जल—बस"।[1]

वक्तव्य

चार-पाच दिन मेहनत करके मालवीयजी ने एक वक्तव्य तैयार कराया। इस वक्तव्य मे उन्होंने लिखा कि "धर्म परिवर्तन बन्द होना चाहिए।" "जो जबरदस्ती मुसलमान बनाये गये है और फिर हिन्दू बनना चाहते है, उन्हें फिर हिन्दू समाज में प्रवेश करने की सुविधा मिलनी चाहिए। हिन्दुओ की आत्मरक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए।" "स्वयं जीवित रहना और दूसरो को जीवित रखना उसका उद्देश्य हो।" "मैं अपने हिन्दू भाइयो से यह नही कहता कि जहा मुसलमान कमजोर या कम हो, वहा वे उन पर आक्रमण करें, पर मै हिन्दुओ को यह अवश्य कह रहा हू कि जहा वे दुर्बल है वहा सबल बनें, जहा उनकी सख्या कम है, वहा वे सफलतापूर्वक अपनी रक्षा करें।" उन्होने लिखा कि "यदि मुसलमान तथा अन्य जाति या धर्म के माननेवाले लोग...हिन्दुओ के साथ शान्ति से रहना चाहते है, तो उन्हें हिन्दुओ के धर्म का आदर करना पडेगा। वे हिन्दुओ के पूजागृहो, मन्दिरो को भ्रष्ट नही कर सकेंगे, और धार्मिक स्वतन्त्रता, जीवन की पवित्रता एवं स्त्रियो के सतीत्व का उन्हें अवश्य सम्मान करना होगा।" उनका यह भी कहना था कि "हिन्दुओ की तथा अन्य जातियो की राजनीतिक उन्नति कांग्रेस के हाथो में सुरक्षित हो सकती है। पर हिन्दुओ के विरुद्ध साम्प्रदायिक प्रश्नो पर, तथा धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति के प्रश्नो पर अन्तिम निर्णय देने का अधिकार निश्चय ही किसी हिन्दू-सस्था को ही है, जो इसकी ओर से बोलने तथा कार्य के लिए प्रतिनिधित्व करती हो।" उनकी धारणा थी कि "सामाजिक सगठन के आधार पर निर्मित अराजनीतिक सस्थाओ के अभाव ने राष्ट्रीयता के मोर्चे को दुर्बल बना दिया है"

१. महामना मालवीयजी बर्थ सैनटिनरी कोमिमोरेशन वाल्युम, पृ० २३२।

तथा "खुश करने की राजनीतिक नीति तथा मुस्लिम लीग की असम्भव मागो को जन्म दिया है ।" वे चाहते थे कि "आत्मसम्मान और आत्मरक्षा के लिए हिन्दू स्वयंसेवको की संस्थाएं कायम की जायें । हिन्दू हिन्दुओ की रक्षा करें, और मुसलमानो के अत्याचारो का दृढता से मुकावला करें ।"

इस वक्तव्य की भापा वहुत कडी और कडवी थी । इसमें मालवीयजी के अपने सन्तुलन और धैर्य की कमी थी । पर यह वक्तव्य मुस्लिम नेताओं की नीतिरीति तथा कलकत्ता और नोआखाली में किये गये अत्याचारों की प्रतिक्रिया थी । वक्तव्य मूलरूप से रक्षात्मक था, उसका उद्देश्य न तो हिन्दू साम्प्रदायिकता के आधार पर मुस्लिम लीग की तरह को किसी राजनीतिक संस्था को कायम करना था, और न आक्रमणशील हिन्दुत्व को प्रोत्साहित करना था । नोआखाली की प्रतिक्रिया में विहार में उपद्रव हुए, जिनमे मुसलमानो के जान-माल की वहुत क्षति हुई । उन्हें कष्टो का सामना करना पडा । इन उपद्रवो के सम्वन्ध में मालवीयजी का वक्तव्य अवश्य ही महत्त्वपूर्ण होता । पर वे तो नोआखाली से सम्वन्धित वक्तव्य देने के दो-चार दिन वाद ही इतने वीमार हो गये कि स्वस्थ चित्त से कोई काम करना उनके लिए सम्भव ही नही था । पर सन् १९२३ और सन् १९३१ में इस प्रकार के उपद्रवो के सम्वन्ध में मालवीयजी ने जो कहा था उससे यह स्पष्ट है कि विहार की घटनाओ ने उन्हें वहुत दुःखी किया होगा। अप्रैल सन् १९२३ में उन्होने कहा था—"हिन्दू वलवान् होकर मुसलमानो को तकलीफ दें, ऐसी मेरी स्वप्न में कल्पना नही है ।" उन्होने यह भी कहा था कि "अगर कोई हिन्दू किसी मुसलमान को मुसलमान होने के कारण हानि पहुँचावे, और कोई मुसलमान किसी हिन्दू को हिन्दू होने के कारण दु ख दे, तो हमारी गणना संसार की सभ्य जातियो में कभी नही हो सकती ।" अगस्त सन् १९२३ में उन्होने हिन्दू महासभा के अधिवेशन में कहा था—"अपना आचरण ऐसा बना लो कि किसी मुसलमान या किसी ईसाई को वेजा शिकायत न हो ।" सन् १९३१ में उन्होने कहा था : "मैं मनुष्यत्व के सामने जांत-पांत नही मानता । हिन्दू और मुसलमान, इन दोनो में जव तक प्रेम-भाव उत्पन्न नही होगा, तब तक किसी का कल्याण नहीं होगा।"

अस्वस्थ

वक्तव्य के तीन चार दिन वाद गोपाष्टमी को संध्या समय वे ७-८ मील दूर शिवपुर गोशाला के उत्सव में गये । यह गोशाला उनके प्रयत्न और प्रेरणा से तैयार हुई थी । उत्सव में उन्होने गोरक्षा पर छोटा-सा भाषण किया।

विश्वविद्यालय को लौटते-लौटते काफी रात हो गयी। रास्ते में ठण्ढ लग जाने से शरीर में पीड़ा हो गयी। एक दो दिन कुछ ख्याल नही किया। जब ज्वर का प्रकोप बहुत बढने लगा, तब आयुर्वेदिक औषधियो का प्रयोग शुरू किया। पर दशा बिगडती ही गयी। देश की कारुणिक दशा की चिन्ता करते हुए वे बेहोश से हो गये और इस दशा में वे महात्मा गाधी और पडित जवाहरलाल नेहरू का नाम लेते रहे। इस समय भी उनमें इतनी चेतना थी कि जब उनके दौहित्र शिवकुमार ने उन्हें पुरुषसूक्त सुनाते हुए कुछ गलती की, तब उन्होने शिवकुमार जी को रोक कर शुद्ध उच्चारण बताया। इसी तरह जब डाक्टर घाण्डेकर ने रक्त की परीक्षा के लिए रक्त लेने का प्रयत्न किया, तब यह समझ कर कि उन्हें इंजेक्शन दिया जा रहा है, सूई चुभोने से रोक दिया। जब गोविन्दजी ने बताया कि इजेक्शन नही दिया जा रहा है, रक्त निकाला जायगा, तब वे चुप हो गये। इसी तरह जब दशा इतनी बिगडी की ऊर्ध्व-श्वास चलने लगा, तब चिकित्सको ने आक्सीजन देने का निश्चय किया। मालवीयजी को यह बुरा लगा। इस पर उनकी पुत्री मालतीजी ने कहा कि आक्सीजन कोई ऐलोपैथिक दवा नही है, और यदि आप इसका प्रयोग स्वीकार करेंगे तो हम सब को सुख मिलेगा, तो वे राजी हो गये। उर्ध्व-श्वास का प्रकोप बढता गया। ज्वर भी १०५ ६ डिग्री हो गया। उर्ध्व-श्वास तीन दिन तक चलता रहा। सहसा तापमान १०५ ६ पर से घट कर १०५ पर आ गया, और उनकी शान्ति गम्भीर होने लगी—श्वास की गति मन्द हो चली। बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन ने, जो वहाँ उस समय उपस्थित थे, कहा—"अब वे जा रहे है।" 'हरे राम हरे राम' 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' की ध्वनि सब ने ऊँची कर दी। उन्हें शय्या पर से उठा लिया गया, भीतर चौकी पर ले जा कर रक्खा गया। उनके मुख में तुलसीदल और गंगाजल छोडा गया। वहाँ पर गोबर से लिपी भूमि पर अपनी स्वाभाविक शान्तमुद्रा में उन्होने १२ नवम्बर सन् १९४६ को प्राण छोड दिये।

शोक और श्रद्धांजलि

मालवीयजी के निधन से हिन्दू विश्वविद्यालय के साथ-साथ सारी वाराणसी में शोक छा गया। विश्वविद्यालय दस दिन के लिए बन्द कर दिया गया। नगर की अन्य शैक्षिक सस्थाएं भी एक दिन के लिए बन्द कर दी गयी। व्यापारियो ने भी उस दिन अपना कारोबार बन्द कर दिया। शवयात्रा में विश्वविद्यालय के अध्यापको, विद्यार्थियो और कर्मचारियो के अतिरिक्त सब जाति और सम्प्रदाय के नागरिको की अपार भीड थी। काग्रेस और हिन्दू सभा के अतिरिक्त बहुत

से दूसरे सम्प्रदायों के प्रतिनिधि भी उसमें शामिल थे। सडक के दोनो ओर बहुत से नागरिक दर्शनार्थ खडे थे। जब अर्थी गुरुद्वारे के पास पहुँची, तब सिक्खों ने अपने जातीय झंडे से शव का सम्मान किया, रेशमी वस्त्र अर्पण किये और फूलो की वर्षा की। कई घटो के बाद मणिकर्णिका घाट पर बिल्व-चन्दन की चिता पर उनका विधिवत् दाहसंस्कार हुआ।

काशी मे कई दिन तक जनता तथा विभिन्न संस्थाओ की ओर से शोक सभाओ मे मालवीयजी को श्रद्धाञ्जलिया अर्पित की गयी। प्रयाग, लखनऊ, कानपुर तथा सुल्तानपुर, बलिया आदि युक्त प्रान्त के नगरो के अतिरिक्त बगलौर, मद्रास, पटना, मुजफ्फरपुर, लाहौर, अमृतसर, नागपुर, आदि नगरो मे भी एक दिन के लिए बाजार बन्द करके शोक सभाए की गयी। देश के बहुत से प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने मालवीयजी के निधन पर अपनी सम्वेदना के साथ उनके व्यक्तित्व और उनकी सेवाओं के सम्बन्ध में वक्तव्य प्रकाशित किये।

श्रद्धाञ्जलि

उनके निधन पर गाधीजी ने जो उस समय नोआखाली के गाँवो में भ्रमण कर रहे थे, लिखा : 'मालवीयजी अमर है" प्रारम्भिक यौवन से लेकर परिपक्व बुढापे तक परिश्रम ने उन्हें अमर बना दिया है। वे अपने अनुयायियो के सेवक थे समझौते की भावना उनके स्वभाव का अंग था।" उनका आन्तरिक जीवन पवित्रता का मूर्तिमान था। वे करुणा और कोमलता के निधान थे। धार्मिक ग्रन्थो का उनका ज्ञान वृहद् था।" महात्माजी ने तो सन् १९३१ में एक सदेश में लिखा था : "आज मालवीयजी के साथ देशभक्ति में कौन मुकाबला कर सकता है। यौवन काल से प्रारम्भ करके आज तक उनकी देशभक्ति का प्रवाह अविच्छिन्न चलता आया है।"

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा "हमें अत्यन्त शोक है कि अब हम उस उज्ज्वल नक्षत्र का दर्शन नही कर सकेंगे जिसने हमारे जीवन में प्रकाश दिया, बालकाल से ही प्रेरणा दी तथा भारत से प्रेम करना सिखाया"।[1]

डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद ने लिखा . "एक महान् व्यक्तित्व आज संसार से उठ गया। पंडित मालवीयजी के काम और उनके नाम से भावी पीढी को यह प्रेरणा मिलेगी कि दृढ भक्ति से मनुष्य के लिए सब कुछ सम्भव है। मालवीयजी

१. आज १५ नवम्बर सन् १९४६।
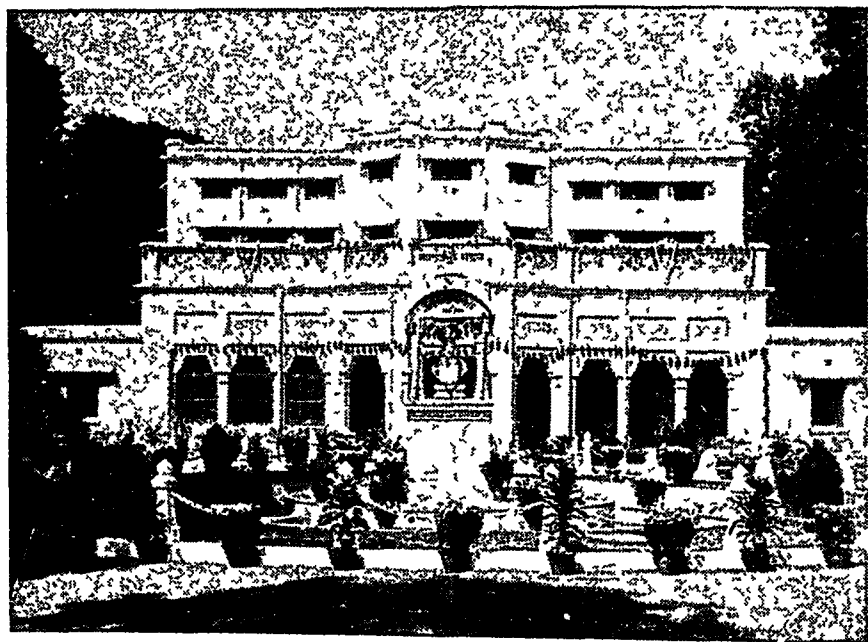
मालवीय भवन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

की सेवाए बहुत ऊंची हैं और कुछ शब्दो में उसका वर्णन नही किया जा सकता। मालवीयजी के रिक्त स्थान की पूर्ति नही हो सकती। वे सच्चे देशभक्त थे"।[1]

सन् १९६१ मे डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद ने एक सस्मरण मे लिखा: "देशभक्ति की वह चिनगारी जिसने उन्हें काग्रेस के एक शुरू के अधिवेशन में लब्धप्रतिष्ठित बना दिया था वह दूसरो के मार्गदर्शन के लिए अग्निशिखा बन गयी, और उनके जीवन के अन्तिम दिनो तक, उस समय भी जबकि आयु के कारण वह दुर्बल हो गये थे, जलती रही। आयु के भार ने देशप्रेम को और देश की प्रगति से सम्बन्धित हर चीज की चिन्ता को कम नही किया। उन्होने बहुत से क्षेत्रो में, जिनमें उन्होने बडे-बडे काम प्रारम्भ और पूरे किये, देश के लिए समर्पित सेवा और बलिदान की मूल्यवान् बपौती हमें छोडी है। उनकी याद हमें और नवयुवक पीढी को प्रोत्साहित और अनुप्राणित करती रहेगी"।[2]

सर तेजबहादुर सप्रू ने मालवीयजी के निधन पर काफी बडा वक्तव्य प्रकाशित किया जिसका आशय था कि मालवीयजी के निधन से एक महान् व्यक्ति उठ गया। उनकी सेवाओ का इतिहास देश की प्रगति का इतिहास है। उनका निकृष्टतम निंदक भी उनके आदर्शों और उनके लक्ष्यों की उच्चता के विरुद्ध एक शब्द भी नही कह सकता। सम्भवत. मालवीयजी हम लोगो के समय मे प्राचीन हिन्दू सस्कृति और दर्शन के सर्वोत्तम प्रतिनिधि थे।[3]

पडित हृदयनाथ कुंजरू ने कहा: "मालवीयजी ने ६० वर्ष तक जिस श्रद्धा, लगन, तथा नि स्वार्थ भाव से राष्ट्र की सेवा की है, वह किसी भी देश के इतिहास मे अद्‌भुत और स्मरणीय है"।[4]

आचार्य नरेन्द्रदेव ने फैजाबाद की सभा में अध्यक्षता करते हुए कहा: "मालवीयजी भारत के गौरव स्तम्भ थे। उनकी देशभक्ति और सेवा भारतीयो को नया उत्साह देती रहेगी। देश की पुकार पर उन्होने अपनी वकालत छोड दी। देश मे शिक्षा का प्रचार कर उन्होने अमूल्य सेवा की है। हिन्दू विश्वविद्यालय उनका सर्वोत्तम स्मारक है"।[5]

श्री श्रीप्रकाशजी ने बनारस की शोक सभा में बोलते हुए कहा "मालवीय जी बडे ही निर्भीक, सत्यनिष्ठ और परम्परानुसार चलने वाले थे। उन्होने

१ वही,

२. महामना मालवीयजी वर्थ सेनटिनरी कोमिमोरेशन वाल्यूम।

३ आज १५ नवम्बर सन् १९४६।

४. वही, ५ वही,

अपने जीवन में कभी किसी की बुराई नही की, और यह मिसाल रख दी कि आदमी ईमानदारी, सच्चाई और हिम्मत से अपने उद्देश्य को पूरा कर सकता है।[1]

मिस्टर रफी अहमद किदवई ने कहा . "मालवीयजी के निधन से देश ने एक महान् निर्माता खो दिया है"।[2] सरदार अब्दुलरबनिश्तर ने कहा: "मालवीयजी की मृत्यु से भारतीय रंगमंच से एक महान् व्यक्ति उठ गया। वे महान् विधान वादी ही नही, अपितु एक महान् शिक्षाप्रचारक और सुधारक थे"।[3]

●

---

१. वही, २. वही, १६ नवम्बर सन् १९४६।
३. आज १५ नवम्बर सन् १९४६।

२५. मालवीयजी का व्यक्तित्व

धर्मनिष्ठ जीवन

ईश्वरभक्ति और देशभक्ति मालवीयजी के जीवन के दो मूल मन्त्र थे। इन दोनो का उत्कृष्ट संश्लेषण, ईश्वरभक्ति का देशभक्ति में अवतरण, तथा देशभक्ति की ईश्वरभक्ति में परिपक्वता उनके व्यक्तित्व का विशिष्ट सद्गुण था। उनकी धारणा थी कि "मनुष्य के पशुत्व को ईश्वरत्व में परिणत करना ही धर्म है। मनुष्यत्व का विकास ही ईश्वरत्व और ईश्वर है",[1] और निष्काम भाव से प्राणिमात्र की सेवा ही ईश्वर की सच्ची आराधना है। इन सब की साधना ही उनकी जीवनचर्या थी, इसकी सिद्धि ही उनका जीवनलक्ष्य था। उनका सारा जीवन मनुष्यत्व की भावना से अनुप्राणित, ईश्वरत्व की भावना से ओत-प्रोत था। उनकी देशसेवा निष्काम उपासना की भावना, तथा लोक-कल्याण की कामना से समन्वित और अलंकृत थी। वे नि सन्देह मनुष्यता की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति थे।

मालवीयजी उच्चकोटि के तपस्वी थे। सात्त्विक तप के सब सद्गुण उनमें विद्यमान थे। वे श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित कायिक, वाचिक और मानसिक तप के साधक थे। सब प्रकार के द्वन्द्वों को सहन करते हुए निष्काम भाव से, फल की इच्छा त्याग कर शम-दम से सम्पन्न होकर, श्रद्धा और धैर्य के साथ मन, वाणी और शरीर से प्राणिमात्र की सेवा मे सदा सलग्न रहना ही उनकी तपश्चर्या थी। काम-क्रोध-लोभ-मोह से बचना, सदा शुद्ध संकल्पयुक्त रहना, किसी विषय-वृत्ति के कारण विक्षिप्त हो जाने पर उस पर विजय प्राप्त करना, व्यवहार काल में छल-कपट, धोखा और फरेब से अपने को दूर रखना, उनका मानसिक तप था। असत्य, दु खदायी, अप्रिय और खोटे शब्दो का त्याग, तथा प्रिय, सत्य, मीठे और मधुर शब्दो का प्रयोग उनका वाचिक तप था। दूसरो की सहायता और सेवा करना, देश और जाति के लिए अपने शरीर के दुःख और कष्ट की परवाह न करना उनका शारीरिक तप था।

मालवीयजी धर्मनिष्ठ धर्मज्ञ थे। धर्म मे उनकी अचल श्रद्धा थी, धर्म के मूल सिद्धान्तो का उन्हें अच्छा ज्ञान था, वे ही उनके जीवन के आधार थे। वे

१. अभ्युदय, १९ मई, सन् १९१२।

नित्य विधिपूर्वक पूजा पाठ करते, शास्त्रविहित आचार का पालन करते, श्रीमद्भागवत तथा श्रीमद्भगवद्गीता आदि ग्रन्थो का अध्ययन करते, पारलौकिक विषयो पर भी समय मिलने पर चिन्तन-मनन करते, धर्म का प्रसार करते, तथा सदा लोककल्याण में एवं देश के अभ्युदय में संलग्न रहते। उन्हें स्वर्ग और मोक्ष दोनो पर विश्वास था। पर वे इन दोनों में से किसी की कामना नही करते थे। वे तो चाहते थे कि वे तप्त प्राणियो के कष्टो का निवारण करें, सत्य और न्याय को प्रतिष्ठित करें, एवं देश की सेवा करें, और इन सबके लिए फिर जन्म लें।

देशभक्त

मालवीयजी उच्च कोटि के देशभक्त थे। वे अनेक प्रकार के दुःखो, संकटो और कष्टों को सहन करते हुए तथा नाना प्रकार के विघ्नो का मुकाबला करते हुए सदा देशसेवा में लगे रहते थे। देश की स्वतन्त्रता, राष्ट्र के गौरव की वृद्धि, तथा जनता का सर्वाङ्गीण उत्कर्ष उनकी देशसेवा के मुख्य लक्ष्य थे। वे सब जातियो, सम्प्रदायो और प्रान्तो के भारतीयो को मिलाकर भारतीय राष्ट्र का निर्माण करना चाहते थे। वे एक ही समय में विभिन्न प्रकार के सेवा-कार्यों में संलग्न रहते थे।

उनका कार्यक्षेत्र नि सन्देह बहुत ही विस्तृत और व्यापक था। समाजसेवा का कौन ऐसा काम होगा जो उन्होने न किया हो। सनातन धर्म का प्रचार, प्राचीन संस्कृति का समर्थन, हिन्दू हितो की रक्षा, हिन्दी का प्रसार, देश की स्वतंत्रता, गौ की सेवा, सामाजिक कुरीतियो का विरोध, स्वयंसेवको का संगठन, नाना ज्ञान-विज्ञान की वृद्धि, शिक्षा का विस्तार, मल्लशालाओ का उद्घाटन, दीनो के कष्टों का निवारण, स्त्रियो का उत्कर्ष, हरिजनो का उत्थान, समाज की आर्थिक उन्नति, लोकतान्त्रिक मर्यादाओ की प्रतिष्ठा, देशप्रेम पर आश्रित राष्ट्रीय भावना की पुष्टि, प्रगतिशील सिद्धान्तो का प्रतिपादन, देश कालानुकूल संस्कृति का विकास, नवयुग का निर्माण आदि सभी क्षेत्रो में उन्होने महत्त्वपूर्ण योगदान किया। दैवी सम्पत्तियो से विभूषित जीवन को उन्होने समाजसेवा मे लगाया, और समाजसेवा द्वारा उन्होने अपने जीवन को उठाया, अपने व्यक्तित्व का विकास किया।

उनका विचार था कि जो मनुष्य अपने व्यक्तित्व को समाज के पीछे रखता, समाजसेवा करते समय निजी हित की दृष्टि से कोई ऐसा काम नही करता जिससे समाज की हानि हो, वह समाज को ऊंचा उठाता है, और समाज की

उन्नति के साथ-साथ अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। पर जो मनुष्य अपने को समाज के आगे रखता है, अपने निजी हित पर समाज के हित को न्यौछावर करता है, उसका नैतिक पतन होता है, उसका व्यक्तित्व नीचे गिरता है। उनकी धारणा थी कि जो काम "अविवेक से दूसरो को हानि पहुँचाने, दिल दुखाने, द्वेष और शत्रुता से किया जाता है, वह तामसी है",[1] "जो काम अपनी स्तुति, पूजा, प्रतिष्ठा और मान के लिए किया जाता है, वह राजसी है।"[2] इस प्रकार के कामो से, उनके विचार में, लाभ के बजाय हानि होती है, कार्यकर्ताओ में ईर्ष्या और द्वेष उत्पन्न होता है, और कार्य संभलने के बजाय बिगड जाता है, उनके नैतिक जीवन का विकास भी अवरुद्ध हो जाता है। पर ईर्ष्या और द्वेष से मुक्त निष्काम भावना से की गयी सेवा कार्यकर्ताओ के जीवन को निर्मल करती है, ऊँचा उठाती है, तथा सामाजिक कार्यों की समुचित सफलता मे सहायक होती है। मालवीयजी नि सन्देह निःस्वार्थ समाजसेवी थे।

सात्विक सार्वजनिक जीवन

निष्काम भाव से अनुप्राणित मालवीयजी के कार्य का ढग भी निराला था। वे सदा सार्वजनिक कामों में लगे रहते, और उन सबको बड़े पैमाने पर करते थे। पर जैसा कि पुरुषोत्तम दास टडनजी ने बताया, "यश की उन्हे चाह नही थी", वे "काम स्वयं करते थे", पर कीर्ति और यश के लिए दूसरो को आगे कर देते थे।[3] वे दूसरो की समाजसेवा का आदर करते, और समाज की सेवा में उनकी हिम्मत बढाते थे। अपने साथियो पर वे सदा विश्वास करते, उनके प्रति सद्भावना रखते, और उनके सहयोग और परामर्श की कद्र करते थे। उनका बहुत-सा समय साथियो के साथ विचार-विमर्श मे ही खर्च होता था। वे छोटो की बात को भी धीरज और ध्यान से सुनते, और उनकी बतायी अच्छी बात को खुशी-खुशी ग्रहण करते, और उसके लिए उनकी सराहना करते थे। वे समाज सेवको के यश से खुश होते थे, और सबके साथ मिलकर काम करते थे। वे सात्विक विरोध का आदर करते, पर बेकार के कटाक्ष और तिरस्कार की उपेक्षा करते थे। वे वितडावाद से कोसो दूर भागते थे। किसी की निन्दा करना या किसी के अपयश का बखान करना वे बुरा समझते थे। वे विपक्षी के साथ भी प्रेम, धैर्य और नम्रता से बात करते, विरोधियो के अपशब्द को

---

१. अभ्युदय, १४ जनवरी, सन् १९०९।

२. वही।

३. मालवीयजी—जीवन झलकियाँ पृ० ३।

सुनकर भी उनके लिए कोई बुरी बात कहे बिना विरोध का मुकाबला करते, और यदि कोई दूसरी बुरी बात कहता, तो उसे मना करते थे। इस तरह वे अपनी ओर से वाद-विवाद और विरोध को व्यक्तिगत द्वेष और ईर्ष्या का स्वरूप न देकर मतभेद के स्तर तक सीमित रखते थे। वे वास्तव में विरोध के समय भी मेल का दरवाजा खुला रखते थे। विरोध पक्ष की अच्छी बातों को भी ग्रहण करने को तैयार रहते थे, उसकी समाज-सेवा की भी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते थे। यदि किसी एक बात में वे किसी का विरोध करते, तो दूसरी बात में उसके साथ मिलकर काम करने मे उन्हें कोई हिचक नही होती थी। जैसा कि स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने एक संस्मरण में कहा है : "दलबन्दी कर नेता बनने की इच्छा से वे (मालवीयजी) कोसों दूर थे। वह जो कुछ करते, उसमें देशभक्ति और सेवाभाव सर्वोपरि रहता था।"[१] उनकी तबियत ऐसी थी कि जब "राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय विचारो को धक्का लग रहा हो, तब वह उसको बर्दाश्त नही कर सकते थे।"[२]

जनसाधारण की सेवा

जमीदार, व्यापारी, राजे-महराजे सभी मालवीयजी का आदर करते, उन्हे पूजनीय समझते, और उनके निर्माण कार्यों में उनकी सहायता करते थे। वे भी उन सबसे प्रेम से मिलते थे, उनका भला चाहते थे। पर उनका हृदय दीन-दुःखी जनता के साथ था। जनता का उत्थान वे राष्ट्र की उन्नति के लिए आवश्यक समझते थे, और उसके लिए सब कुछ करने को तैयार थे। राजाओ को उनकी यही सलाह थी कि वे अपनी प्रजा की समुचित रक्षा और कल्याण-वृद्धि को ही अपना कर्तव्य समझें, कालानुसार अपनी शासन-व्यवस्था में सुधार करके संवैधानिक व्यवस्था प्रतिष्ठित करें, तथा सम्पूर्ण भारत से अपने सम्बन्ध दृढ़ करें। रजवाडो में संवैधानिक सरकार प्रतिष्ठित करने की चर्चा जब कभी मालवीयजी करते थे, तब ब्रिटेन की शासन-प्रणाली की तरह शासन-व्यवस्था की स्थापना ही उनका लक्ष्य होता था। वे चाहते थे कि राजे-महराजे अपनी इच्छा से अपने अधिकारो को सीमित कर जनता के प्रतिनिधियो को शासन का उत्तरदायित्व हस्तान्तरित कर दें, राजकोष के एक निश्चित सीमित अंश का ही अपने निजी खर्च में प्रयोग करें, जनता के प्रतिनिधियो द्वारा स्वीकृत संविधान द्वारा न्याय का शासन प्रतिष्ठित करें, जनता के मौलिक अधिकारो की रक्षा

---

१. वही, पृ० १०।

२. वही, पृ० ४ (पुरुषोत्तमदास टंडन)।

की समुचित व्यवस्था करें, तथा प्रजा की अभिवृद्धि ही शासन का लक्ष्य निर्धारित करें।

इसी तरह सेठ साहूकारो से घनिष्ठ सम्बन्ध कायम रखते हुए भी उन्हे जनता के हितो तथा सार्वजनिक जीवन की पवित्रता का सदा ध्यान रहता था। इन बातो को ध्यान में रखते हुए जहाँ उन्होने देश की औद्योगिक उन्नति के लिए देशज उद्योगो के लिए वित्तीय संरक्षण का समर्थन किया, वहाँ मजदूरो के हितो और अधिकारो की समुचित व्यवस्था की माँग को पुष्ट किया, प्रतिज्ञा-बद्ध श्रम-प्रणाली का विरोध किया, इकरारनामे के उल्लंघन पर श्रमिको तथा तथा कर्जदारो को कैद की सजा देने की व्यवस्था की कडी आलोचना की, तथा सन् १९२९ मे सेठ साहूकारो को चेतावनी दी कि यदि श्रमिक जनता के कल्याण की ओर समुचित ध्यान नही दिया गया तो कम्यूनिज्म के प्रभाव को कानून द्वारा नही रोका जा सकेगा। जब सन् १९३० में सरकार के दबाव पर बम्बई के औद्योगिको ने आयात शुल्क विधेयक की उन धाराओ को भी स्वीकार कर लिया जिन्हे मालवीयजी राष्ट्र-हित-घातक समझते थे, और उनका ध्यान आकृष्ट किया गया कि बम्बई से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को बहुत आर्थिक सहायता प्राप्त होती है, तब उन्होने केन्द्रीय असेम्बली मे स्पष्ट तौर पर कह दिया कि वे राष्ट्रहित पर सौ विश्वविद्यालय न्योछावर करने को तैयार हैं, पर राष्ट्र-हित-विरोधी बात को धन के लोभ से स्वीकार करने को तैयार नही।[1] इसी तरह जब एक रईस ने उन्हें पचास हजार रुपये की हुडी भेजकर उनसे अनुरोध किया कि वे सरकार से उसका कोई स्वार्थ सिद्ध करा दें, तब उन्होने उस हुडी को लौटाते हुए कहला भेजा कि 'मैं वही करूँगा जो उचित होगा।'[2]

उन्होने मालगुजारी के स्थायी बन्दोबस्त का समर्थन करने के साथ ही साथ जमीदारो के व्यवहारो पर प्रतिबन्ध लगा कर किसानो के अधिकारो की रक्षा तथा उनके हितो की वृद्धि पर जोर दिया। उनकी धारणा थी कि "इस देश में हमारी सहानुभूति का किसानो से अधिक कोई हक़दार नहीं।"[3] उन्होने माग की कि किसानो पर लगान का बोझ कम किया जाय, लगान की व्यवस्था को भी स्थायी बनाया जाय, और उनकी दयनीय दशा को सुधारने का प्रयत्न किया

१. लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स, १९३०, जि० ३, पृ० २६२६।

२. रामनरेश त्रिपाठी मालवीयजी के साथ तीस दिन, पृ० ३०।

३ गवर्नर जनरल की कौंसिल (विधान), सन् १९१५, जि० ५३, पृ० ६३७।

जाय।[1] 'अभ्युदय' के सम्पादकीय विभाग को उनकी हिदायत थी कि "उसमें किसानो के हितो की बातें अधिक हो, किसान बडे ही दु:खी है और उनके दु:खो के आगे जमीदारो का जरा भी लिहाज न करो"।[2] मालवीयजी चाहते थे कि किसानो को काग्रेस मे शामिल होने के लिए प्रेरित किया जाय, उनके प्रतिनिधियो को विना शुल्क काग्रेस के अधिवेशनो मे शामिल किया जाय, उनमें राजनीतिक चेतना पैदा की जाय। जैसा कि जवाहरलाल नेहरू ने अपने भाषण में बताया, "मालवीयजी और गाधीजी का ध्यान हमेशा जाता था किसानो की तरफ, और उनकी तरफ जो सबसे नीचे तबके के लोग हैं—क्योकि जैसा ये लोग कहते थे कि अगर हिन्दुस्तान में स्वराज्य आ गया और लोग तैयार न हुए तो वह निकल भी जायगा, रहेगा नही। लोग तैयार है तो स्वराज्य आ ही जायगा और कायम भी रहेगा।"[3] जनजीवन का उत्थान, पीडितो के कष्टो का निवारण, जनता के अधिकारो की रक्षा और वृद्धि मालवीयजी के सार्वजनिक कार्यों का अवश्य ही एक प्रमुख लक्ष्य था।

करुणा और सौहार्द

करुणा और सौहार्द मालवीयजी के जीवन के जौहर थे। अपने भृत्यो और पार्श्ववर्तियो के प्रति भी उनका व्यवहार कोमल, मधुर और अनुग्रहपूर्ण होता था। वे बहुत कष्ट सहते हुए भी अपने नौकरो के आराम का ध्यान रखते, तथा अपने कारण उन्हें कष्ट नही होने देते थे। इस सम्बन्ध मे पण्डित रामनरेश त्रिपाठी ने बताया कि एक बार पटना के प्रसिद्ध वैद्य पडित व्रजविहारी चौबेजी ने मालवीयजी को एक काढा पीने की सलाह दी। उसे तैयार करके ठीक समय पर पिलाने के लिए नौकर को प्रातःकाल चार बजे उठना पड़ता था। उसे इतना कष्ट देना अनुचित समझ मालवीयजी ने काढा पीना ही बन्द कर दिया। जब दस-पन्द्रह दिन के बाद नौकर को कारण का पता चला, तब उसने उसका प्रबन्ध किया। रामनरेशजी के एक प्रश्न के उत्तर मे मालवीयजी ने उनसे कहा कि "रामनरेशजी, हम तो गरीब आदमी है। इससे गरीब के प्रति हमारी सहानुभूति स्वाभाविक है। नौकरो को मैं कुटुम्ब से भिन्न नही समझता। मेरे यहाँ नौकर के साथ जैसा व्यवहार होता है, वैसा धनी परिवारो में भी नही

---

१. वही, सन् १९१४, जि० ५२, पृ० ६०३-६०४।

२. मालवीयजी-जीवन झलकियाँ, पृ० ७५।

३. वही, पृ० झ।

होता"।[1] रामनरेशजी ने स्वयं लिखा है : "मुझे घूमने का तो बहुत मौका मिला है, और मेरा परिचय राजा से लेकर साधारण गृहस्थ तक प्राय. हरेक श्रेणी और हरेक सुरुचि के लोगो से है, पर नौकरो के प्रति जैसी आत्मीयता मैंने मालवीय जी में देखी, वैसी यहा के पहले कही देखी नही थी। प्रायः अधिकाश मालिक अपने नौकरो के प्रति उदासीन और कही-कही क्रूर दिखाई पडे और कही तो नौकर ही मालिक बन बैठे हैं। पर यहाँ स्वामी और नौकर का अद्भुत् ही रूप देखा।"[2]

मालवीयजी के सुपुत्र गोविन्दजी ने एक बार डाक्टर आनन्द कृष्ण को एक साधारण पडोसी के प्रति मालवीयजी के सौहार्द और करुणा की एक अद्भुत् बात बतायी। गोविन्दजी ने बताया कि जब मालवीयजी भारती भवन में रह कर ही वकालत करते थे, तब एक सज्जन जो बगल मे रहते थे अपना मकान बेचने के लिए मालवीयजी के पास आये। पर उन्होने मकान खरीदने के बजाय उसे कुछ रुपये उधार दे दिये। व्यापार में अधिक घाटा हो जाने के कारण उस पड़ोसी को अपना मकान मालवीयजीके हाथ बेचना ही पडा। फिर भी मालवीय जी ने उस मकान पर अपना अधिकार न जमा कर उसे उसके पुराने मालिक के कब्जे में रहने दिया। पर पड़ोसी को यह बात ठीक नही लगी। उसने मकान खाली करके मालवीयजी को उसका कब्जा देने की ठान ली। उसके आग्रह पर कब्जे की तिथि निश्चित हो गयी। तब मालवीयजी की धर्मपत्नी मकान देखने गयी। वहाँ उन्होने देखा कि एक स्त्री सामान बाधती जा रही है, साथ-साथ रोती भी जा रही है। रोने का कारण पूछने पर उसने बताया कि "बहिन, अपना घर है, छोडते दु ख होता है"। जब धर्मपत्नीजी ने मालवीयजी से इसकी चर्चा की, तब उन्होने मकान के पुराने मालिक को बुलाकर कहा कि तुम्हारा मकान तुम्हारे पास ही रहेगा। इस पर उसने इनकार किया, पर मालवीयजी टस से मस नही हुए और मकान उसके पास ही बना रहा।

मालवीयजी की करुणा नौकरो और पडोसियो तक ही सीमित नही थी। सभी गरीब समान रूप से उसके अधिकारी थे। उनके घर पर दीन-दुखियो की भीड-सी लगी रहती थी। उन सबके लिए उनका दरबार सदा खुला रहता था। उन्हे उनके पास आने से कौन रोक सकता था? यदि उनका कोई पुत्र रोकने का प्रयत्न करता, तो वे कहते कि जब तक वे इस घर में है, तब तक

१. रामनरेश त्रिपाठी मालवीयजी के साथ तीस दिन, पृ० १६३।
२ वही, पृ० १६९।

तो दीन-दु.खी इस घर में आयेंगे ही। यदि बाबू शिवप्रसाद गुप्त कमरे पर पहरा लगा देते या स्वयं पहरा देने लगते, तो मालवीयजी पेड़ के नीचे जाकर बैठ जाते, और वहाँ सबसे मिलने लगते। आखिर इन सब पहरेदारो को हार माननी पडती। ऐसा लगता था मानों उन्होने गजेन्द्रमोक्ष की कथा को अपने जीवन में पूरे तौर पर चरितार्थ कर लिया था। यदि उनके सामने कोई असह्य संकट उपस्थित होता, तो वह गजेन्द्र की तरह विलाप करते हुए उससे छुटकारे के लिए भगवान् से प्रार्थना करते, और वे स्वयं कृष्ण की तरह दु:खियो के कष्टों को दूर करने के लिए दौडते फिरते। उनका सारा जीवन इस प्रकार की घटनाओ से भरा पडा है।

बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन ने अपने संस्मरण में लिखा है कि "प्रयाग में गंगा तट पर माघ का मेला था। कडाके की सर्दी थी। रात का समय था। पानी बरसने वाला था जिसके कारण बहुत से साधनहीन यात्रियो को बड़ा कष्ट होने की सम्भावना थी। बस, मालवीयजी टण्डनजी को लेकर टाल पर पहुँचे, लकडियाँ खरीदी, कुछ उन्होनें अपने कन्धे पर रखी और अपने दूसरे साथियो की सहायता से बहुत-सी लकडियाँ मेले में ले जाकर वे "साधुओ के यहाँ, गरीबो के यहाँ, जिनके पास सहारा नही था, उनको बांटने लगे।"[1] इसी तरह एक दूसरे अवसर पर माघ मेले में ही जैसे ही मालवीयजी खाना खाने बैठे थे कि उन्हें मेले में आग लगती दिखाई दी। वह तुरत ही धोती पहने ही आग बुझाने दौड पडे। इस भावना से अनुप्राणित मालवीयजी सन् १९१९ में पंजाब हत्याकाण्ड के तुरत बाद पंजाब गये और वहाँ उन्होने कई मास दु.खी जनता की सेवा की, उन्हें ढाडस बँधाया, साहस प्रदान किया।

स्वामी श्रद्धानन्दजी ने अपने संस्मरण मे लिखा कि सन् १९१९ मे अमृतसर काग्रेस के अवसर पर एक दिन इतनी वर्षा हुई कि प्रतिनिधियो को तम्बुओ मे नही टिकाया जा सका। उनका प्रवन्ध नगर-निवासियो के घरो में करना पडा, और उन्हे स्टेशन से घरो में पहुँचाते-पहुँचाते दो बज गये। इस अवसर पर "रेलवे पर हमारे विनम्र और सीधे सादे नेता पण्डित मदन मोहन मालवीय बराबर बने रहे, भूखप्यास की चिन्ता न कर एक घोडा की तरह उस समय तक काम करते रहे, जब तक कि अन्तिम मेहमान भी अपने नियत स्थल पर रवाना नही हो गया।"[2]

---

१. मालवीयजी—जीवन झलकियाँ पृ० ४।

२. मालवीयजी—जीवन झलकियाँ, पृ० १०।

उच्चकोटि के वक्ता

मालवीयजी "अद्वितीय वक्ता" थे। उनके भाषणो में जैसा कि सच्चिदानन्द सिन्हा ने बताया : "अनमोल वाक्शक्ति के साथ-साथ प्रभावकारी माधुर्य और गम्भीरता का अनुपम सम्मिश्रण रहता था।"[1] वे सदा व्यक्तिगत कटाक्ष से निर्मुक्त तथा युक्तियुक्त विचारो, सद्भावनाओं और सदादर्शों से परिपूर्ण होते थे। ऐतिहासिक तथ्यो और प्रमाणो से परिपुष्ट, तथा साहस और सौजन्य, विवेक और मनुष्यता, करुणा और शौर्य, एवं युक्तियुक्त तर्क और भाषा की पवित्रता से अलंकृत उनके बहुत से भाषण वाग्मिता के उच्च उदाहरण थे। अंग-विक्षेप के बिना घंटो धारा-प्रवाह के साथ भावनाओ से परिपूर्ण प्रभावशाली भाषण देते रहना मालवीयजी की वाग्मिता का विलक्षण गुण था। उनकी आकर्षक आकृति, उनका शील और सुमधुर स्वर, उनकी निर्भीकता और स्पष्टवादिता, उनका देशप्रेम, सत्य के प्रति उनकी दृढ निष्ठा, एवं उनकी निष्कपट भावुकता सोने पर सुहागे का काम करती थी, उनकी वाक्पटुता को चमत्कृत कर देती थी। उन्होने अपने लम्बे सार्वजनिक जीवन में अपनी वाक्शक्ति को कभी भी अपने सार्वजनिक प्रतिद्वन्द्वियों की वैयक्तिक निन्दा में नही लगाया। प्रभावशाली व्याख्यान द्वारा प्रतिद्वन्द्वी के यश और कीर्ति को मिट्टी में मिला देने की बात उन्होने कभी सोची ही नही। हानिकर नीतियो और कार्यों की निर्भीक और कडी आलोचना के साथ ही साथ सबके प्रति सद्भावना तथा सौहार्दवृद्धि की कामना उनकी वाग्मिता का लक्षण था। "उनके मुख से दूसरो के लिए सदा मिठास टपकती थी।"[2] सन् १८८६ में पच्चीस वर्ष की आयु में कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन में प्रतिनिधि-प्रथा के पक्ष में दिया गया उनका भाषण निःसन्देह उच्चकोटि की वाग्मिता का उच्चतम उदाहरण है। इसी तरह जैसा कि डाक्टर सच्चिदानन्द सिन्हा ने कहा है, "पंजाब हत्याकाण्ड के सम्बन्ध में दिये गये मालवीयजी के भाषण वास्तव में बहुत ही उच्चकोटि की विवेचना शक्ति के उत्कृष्ट उदाहरण है।"[3] श्री एन० सी० केलकर ने जो मालवीयजी के साथ सन् १९२४ से सन् १९३० तक केन्द्रीय असेम्बली के सदस्य थे, ठीक ही कहा है कि "वाग्मिता और वाक्पटुता में वह (मालवीयजी) कभी-कभी उस ऊँचाई पर पहुँच जाते थे जिसकी असेम्बली का कोई दूसरा सदस्य आकाक्षा भी नही कर सकता था।"[4]

---

१. वही, पृ० ४३।
२. महामना मालवीयजी बर्थ सेनटिनरी कोमिमोरेशन वाल्यूम (पुरुषोत्तम दास टण्डन का वक्तव्य)।
३. मालवीयजी—जीवन झलकियाँ, पृ० ४३।
४. मालवीयजी कोमिमोरेशन वाल्यूम, १९३२, पृ० १०३०।

फिर भी यद्यपि जनता उनके लम्बे भाषणो को भी बहुत उत्सुकता से सुनती थी, सुविज्ञ राजनीतिज्ञो की सभा में सुपरिचित बातो का विस्तृत विश्लेपण उनकी वाक्पटुता की गम्भीरता को कम कर देता था।

सद्भावना

लोक-सेवा में संलग्न सहयोगियो के प्रति सद्भावना तथा विश्वासपूर्ण व्यवहार उनके चरित्र का विशिष्ट सद्गुण था। वे सदा उनकी प्रतिष्ठा का ध्यान रखते थे और उनके व्यवहार या व्यक्तित्व की कडी आलोचना उन्हे व्यथित करती थी। वे गोपनीय विचार-विमर्श को गुप्त रखना मानव का पुनीत कर्तव्य, तथा विश्वासघात उसका घोर अपराध मानते थे। यो तो उनका सारा सार्वजनिक जीवन ही इस सद्भावना और विश्वासपूर्ण व्यवहार का उच्चतम उदाहरण है, पर कुछ परिस्थितियो और अवसरो पर उनके व्यवहार उसकी उच्चता और श्रेष्ठता के निःसन्देह अत्युत्तम दृष्टान्त हैं। वंगभंग के जमाने में हिन्दू बोर्डिंग हाउस के बहुत से प्रबन्धक एक विद्यार्थी के उग्र राष्ट्रवादी व्यवहार से इतने असन्तुष्ट थे कि वे उसे बोर्डिंग हाउस से जहा वह रहता था निकाल देना चाहते थे। मालवीयजी इसे ठीक नही समझते थे। पर बहुमत से बात तय हो गयी, और वह विद्यार्थी बोर्डिंग हाउस से निष्कासित कर दिया गया। मालवीयजी को यह बात इतनी बुरी लगी कि उन्होने कहा कि ऐसे विद्यार्थियो के लिए उन्हें एक विश्वविद्यालय बनाना होगा। पर उस समय भी जबकि वह विद्यार्थी और उसके समर्थक इस निष्कासन के लिए मालवीयजी को ही मुख्य रूप से दोषी बताते थे, उन्होने "अन्तरंग सभा की बात को नही खोला, और सारी बदनामी अपने ऊपर ओढ ली।"[1]

जब सन् १९१० मे गोखले साहब ने प्रेस विधेयक का समर्थन और मालवीयजी ने इसका विरोध किया, और इस कारण समाचारपत्रो ने मालवीयजी की बहुत प्रशंसा और गोखले साहब की भर्त्सना की, तब मालवीयजी "बहुत दु खी थे।" उन्होने बहुत ही "वेदना" के साथ मुशी ईश्वरशरण से कहा "गोखले कायर है और मैं बहादुर हूँ—यह कहा जा रहा है। कितने परिताप की बात है! यह हृदय-विदारक बात है।"[2] इसी तरह जब सन् १९२२ में देश के बहुत से नेता गाधीजी की आलोचना कर रहे थे कि उन्होने सरकार से समझौता नही किया, मालवीयजी चुप रहे और जब बात बढ जाने पर उन्होने वक्तव्य

१. मालवीयजी, जीवन झलकिया, पृ० १९।
२. वही, पृ० २३-२४।

दिया, तव अपने प्रयास की विफलता का रोना रोने के वजाय और उसके लिए गाधीजी को दोषी ठहराने के वजाय उनकी कठिनाइयो की ओर ही संकेत किया।

मालवीयजी का सारा जीवन संघर्ष करते गुजरा। पर उन्होने कभी किसी का अनहित नही चाहा। एक बार उनके सम्बन्धी व्रजमोहनजी व्यास ने उनसे कहा कि महाकवि माघ ने राजनीति की व्याख्या की है कि "अपना उदय और शत्रु का नाश"। यह सुनकर मालवीयजी की मुस्कान घृणा मे परिवर्तित हो गयी, वह बोले, "छिः, टुच्ची राजनीति है। दूसरो का भी अपने साथ-साथ अभ्युदय हो, यही सच्ची श्लाघनीय राजनीति है।"[1] एक दूसरे अवसर पर उन्होने व्यासजी ही को उपदेश दिया "अभ्युदय की ही कामना करना, किसी को नीचा दिखलाने की नही।"[2]

निर्माण ही मालवीयजी के सघर्ष और क्रियाकलापो का उद्देश्य था। जैसा कि प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा है : "वे महान् क्रान्तिकारी थे, इसमें कोई शक नही। लेकिन उनके सामने हमेशा बनाने की वात रहती थी, बनाने के सिलसिले में चीजें टूट भी जाती थी, और वे हटा दी जाती थी। वे इससे घवडाते नही थे—किसी के टूटने में या झाड़ू देकर साफ कर देने में। लेकिन उनका खास ध्यान हमेशा बनाने की ओर रहा। खाली यही नही कि संस्थाएँ वनायी हो, बहुत सारी बनायी उन्होने, बल्कि उन्होने भारत के लोगो को बनाया। वे चाहते थे कि भारत के लोगो में हिम्मत पैदा हो, उनका सिर ऊँचा हो, उनमें अपने ऊपर भरोसा हो।"[3]

प्राणिमात्र के प्रति प्रेम

मानवता के प्रतीक मालवीयजी का प्रेम मानवसमाज तक ही सीमित नही था। वह प्राणिमात्र के लिए था। गोसेवा में उन्हें विशेष आनन्द आता था। उन्होने आजीवन गौ की सेवा की, उसके कल्याण के लिए प्रयत्न किया। पर उनका प्रेम गौ तक ही सीमित नही था। कुत्ते आदि जीवो पर भी उनकी दया वनी रहती थी। शिवरामजी वैद्य ने अपने एक संस्मरण में लिखा है कि जब मालवीयजी नवयुवक थे, तव उन्होने जख्म के दुःख से तडपते सडक पर पड़े एक कुत्ते की वेदना से दुःखी हो उस कुत्ते की सेवा की, स्वयं उसके जख्म पर

१. मालवीयजी—जीवन झलकिया, पृ० १५।
२. वही, पृ० १५।
३. वही, पृ० छ।

दवा लगायी। इस पुस्तक के लेखक को भी एक बार मालवीयजी की समदर्शिता देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अपने से थोड़ी दूर पर शीतल छाया में बैठे एक कुत्ते को देखकर वे प्रेम और आनन्द में मग्न हो कहने लगे कि "इसमें जो आत्मा है, वही मुझमें है। जिस प्रकार मुझे इस स्थान पर बैठे शीतल वायु सेवन करने में आनन्द आ रहा है, इस कुत्ते को भी आ रहा है।"

मालवीयजी जीवमात्र से कितना स्नेह करते थे, उससे समता का अनुभव करते थे, इसका पता इस रोचक घटना से भी अच्छे तौर पर लगता है जिसे उन्होंने स्वयं पण्डित रामनरेश त्रिपाठी को सुनाई थी। त्रिपाठीजी लिखते हैं कि मालवीयजी ने उनसे कहा—"बिछौने पर एक चींटी चढ़ आयी थी, उसे पकड़ कर मैं उसे नीचे उतार देना चाहता था, पर वह हाथ आती ही न थी। इधर पकड़ने जाता तो उधर भाग जाती। अपने बचाव के लिए उसका प्रत्येक बार प्रयत्न बड़ा ही प्रिय लग रहा था। एक चींटी में भी जीवन-रक्षा का वैसा ही उद्योग है, जैसा प्रत्येक प्राणी में है। सब में समान जीव है। जब कोई चींटी को लापरवाही से मार देता है, तब मुझे बड़ा कष्ट होता है।"[1]

शील

मालवीयजी सात्त्विक कर्ता, तथा उच्च कोटि के नेता थे। उनकी सेवाएँ विस्तृत, व्यापक और महान् थी। पर उनका बहुगुण-सम्पन्न व्यक्तित्व उन सबसे कहीं अधिक महान् था। उनकी मनुष्यता, शिष्टता, सज्जनता बेजोड़ थी। वे प्रेम, शान्ति, दया, उदारता, विनय, क्षमा और करुणा के अवतार थे। वे संयमी, निर्भीक और गम्भीर थे, उत्साही, साहसी, और सहनशील थे। उनका जीवन अहंकार, दम्भ, पैशुन आदि दुर्गुणों से निर्मुक्त था। वे मृदुता, मुदिता तथा मैत्री की भावना से सम्पन्न थे। उनका सौजन्य स्नेह से परिपूर्ण था, उनकी विद्वत्ता विनय से सम्पन्न थी। वे गुणग्राहक थे। राष्ट्रीय कर्तव्य का निर्वाह, मानव व्यक्तित्व का सम्मान, लोककल्याण की कामना उनके सद्‌गुण थे। उनका शौर्य और साहस मनुष्यता से अलंकृत था। सत्कार्यों में सहयोग, सौम्यता, भावों की संशुद्धि, सिद्धान्तों और जीवनादर्शों की रक्षा उनके शील के अन्य सद्‌गुण थे। सभा में राष्ट्रकल्याण की पुष्टि, लोकन्याय का अनुसरण, सदादर्शों से सम्पन्न युक्तियुक्त भाषण, मतभेदों में तितिक्षा, सदा भद्रता का पालन उनका लोकशील था।

मालवीयजी शील के बहुत पक्के थे। उसका उन्हें सदा ध्यान रहता था। जब कभी उनसे उसका उल्लंघन हो जाता, तब उन्हें उसका बहुत सन्ताप होता,

---

१. रामनरेश त्रिपाठी : मालवीयजी के साथ तीस दिन, पृ० ८१।

और वे संबंधित व्यक्ति से तुरन्त क्षमा प्रार्थना करते। वे अपनी गलतियो को याद रखते, और पाँचवें छठे वर्ष हरिद्वार जाकर विधिवत् सर्व-प्रायश्चित करते, और इस तरह अपने जीवन को निर्मल बनाये रखने का सदा प्रयत्न करते रहते थे।

मालवीयजी का सार्वजनिक सौजन्य बहुत ही उत्कृष्ट था। उनकी स्वच्छता और श्रेष्ठता, उनकी सरलता और विनम्रता, उनकी कोमलता और भद्रता, उनके शिष्टाचार और आतिथ्य सत्कार ने उन सबको, जिन्हे उनके सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, अपना प्रिय बना लिया था। वे सदा बडो का आदर करते, हाथ जोड कर उनका स्वागत करते, तथा वयोवृद्ध विद्वानों और संबंधियो की यथावत प्रणाम-वन्दना करते थे। उनका सबके साथ आत्मीयता का व्यवहार था। वे जिससे पहली बार मिलते उससे भी ऐसी बातें करते मानो वह चिर-परिचित है, उसे भी परकीय होने का अनुभव नही होने देते। घर में कोई अतिथि टिका होता तो जब तक वह भोजन नही कर लेता, चाहे वह साधारण श्रेणी का ही क्यो न हो, तब तक वे स्वयं भोजन नही करते थे। अतिथि के आराम की क्या व्यवस्था है इस बात की जांच वे कई बार नौकरो से करते रहते थे।

वे बचपन के अपने साथियो और सहपाठियो से, फिर वे चाहे किसी श्रेणी के हो, कृष्ण-सुदामा की तरह स्नेह और आत्मीयता से बातचीत करते थे। श्री सन्त शरण मेहरोत्रा ने बहुत ही मार्मिक ढग से एक कुबी जाति के सहपाठी से मालवीयजी के मिलने का एक संस्मरण का वर्णन किया है। उन्होने लिखा है कि एक दिन सन् १९४२ मे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की रजत जयन्ती के उत्सव के पहले वे मालवीयजी के दर्शन करने गये, तब "एक बूढा ग्रामीण, जिसकी कमर प्राय झुक गयी थी, लाठी टेकता दरवाजे पर आया। अपनी पगडी उतार कर उसने साष्टाग दडवत किया, तब मालवीयजी की दृष्टि भी उस पर पड़ी। दृष्टि पडते ही जो दृश्य देखा गया वह स्वर्गीय था। दोनो के ही नेत्रो से प्रेमाश्रु गिर रहे थे, और किसी से बोला नही जाता था। कुछ समय बाद स्वस्थ होने पर कुशल क्षेम, उलहने आरम्भ हुए। 'एतने दिन कहाँ रहल ? काहे नाही खबर लेहल ? तोहई काहे नाही खोज लेहल ?' आदि आदि। आँसू बह रहे है, बोला जाता नही, कण्ठ भरा आता है। बोलने की इच्छा भी दोनो ओर बडी प्रबल! बात बात में यह तय हुआ कि गले लगकर जैसे हम लोग गाया करते थे, आज गावें। मालवीयजी से तो गद्गद कण्ठ से बोला ही नही

जाता था। उन्होंने इशारा किया कि 'गाओ'। वह उनके पैर पकड़ कर गाने लगा। मुँह में दाँत नही, पर उसने प्रेम का वातावरण उपस्थित कर दिया। महात्मा जी (गांधी जी) के पास जाने का प्रस्ताव हुआ। इस सबके बाद वे महाशय वही अतिथि हुए।"[1]

मालवीयजी मतभेद को व्यक्तिगत विद्वेष या शत्रुता का स्वरूप देना अनुचित ही नही, मूर्खता समझते थे। इस द्वेषरहित भावना के कारण जैसा कि मुंशी ईश्वर शरण ने कहा, मालवीयजी ने "कभी कोई शत्रु बनाया ही नही।" जो उनसे रुष्ट होता, उससे भी वे भद्रता का व्यवहार करते, और अन्त में वह भी उनका गुणगान करने लगता था। कहा जाता है कि सर राजेन्द्र मुखर्जी को जब यह पता चला कि मालवीयजी इंडस्ट्रियल कमीशन (औद्योगिक आयोग) की रिपोर्ट पर एक असहमति नोट लिखना चाहते हैं, तब उन्होंने मालवीयजी को बहुत बुरा-भला कहा। मालवीयजी चुप रहे। कुछ समय के बाद एक दिन वे सर राजेन्द्र मुखर्जी के घर गये। उन्हें देखकर मुखर्जी साहब ने चकित होकर पूछा . "आप मेरे घर कैसे आये, मैंने तो आपको बुरा-भला कहा था?" यह सुनकर मालवीयजी ने कहा—"देश के काम मे हम सब एक है। इसके बाद सर राजेन्द्र ने उन्हें उनके कामो मे काफी सहायता दी।"[2] वास्तव में "वे लोग भी जो सार्वजनिक प्रश्नो पर उनसे (मालवीयजी से) मतभेद रखते थे उनके व्यक्तिगत गुणो के साक्षी थे, और उनके आत्मत्याग तथा देशहित के प्रति उनकी निष्ठा के लिए उनसे प्यार और उनका आदर" करते थे।[3] यद्यपि कुछ सरकारी अफसर उनसे क्षुब्ध हो उन्हें 'घास में छिपा सांप' समझते थे, पर बहुत से उच्चस्तरीय अधिकारी उनकी 'मधुर विवेकशीलता' के कायल थे। उनकी सच्चाई पर विश्वास करते थे, स्वीकार करते थे कि 'निर्दोष जीवन के श्वेत पुष्प' से विभूषित मालवीयजी को न डराया जा सकता है, और न प्रलोभनो द्वारा तोडा जा सकता है, पर उनके सौजन्य और सद्भावना पर विश्वास किया जा सकता है। इन सब बातो को देखते हुए पंडित हृदयनाथ कुंजरू ने कहा कि मालवीयजी ने कभी किसी के लिए "भूल कर कटुशब्द का प्रयोग नही किया", और "वह अजात-शत्रु" थे।[4]

---

१. मालवीयजी—जीवन झलकियाँ, पृ० ७३।

२. रामनरेश त्रिपाठी: मालवीयजी के साथ तीस दिन, पृ० २७४-२७५।

३. मालवीय कोमिमोरेशन वाल्यूम, पृ० १०५१।

४. मालवीयजी—जीवन झलकिया, पृ० ३८।

विनोद, साहित्य, संगीत

मालवीयजी विनोदप्रिय थे। उन्हें संस्कृत, हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी के बहुत से पद याद थे, जिन्हें वे प्रसंगानुसार अपने भाषणो और लेखो में उद्धृत करते रहते थे। कभी-कभी अपने विचारो और आन्तरिक भावो को व्यक्त करने के लिए वे बात चीत में भी सहज रूप से कुछ पद सुना देते थे। ये सभी पद शिक्षाप्रद होते थे, ऊँचे धार्मिक सिद्धान्तो, नैतिक आदर्शों, सामाजिक विचारो या भगवद्भक्ति की भावना से विभूपित होते थे। पर मनु और व्यास तथा तुलसी, मीरा और सूरदास आदि के पदो के साथ विहारी और कालिदास आदि के उच्चकोटि के साहित्यिक दोहे और छन्द भी उन्हें याद थे, जिन्हें वे प्रौढ और वृद्ध अवस्था में भी छोटी-सी अन्तरंग साहित्य गोष्ठी में सुना देते थे।

उन्हें ग्रामगीत भी बहुत पसन्द थे। कुछ गीत उन्होने याद भी कर रखे थे। इन ग्रामगीतो को सुनने-सुनाने में वे बहुत आनन्द का अनुभव करते थे। पडित रामनरेशजी त्रिपाठी तो, जिन्होने ग्रामगीतो का अच्छा संग्रह किया था, मालवीयजी से जब मिलते तब वे उनसे उन्हें सुनते थे।

पडित वलदेव उपाध्यायजी ने अपने एक सस्मरण मे लिखा है कि एक वार एकान्त मे मालवीयजी की पंडित वटुकनाथजी से साहित्य की चर्चा चल गयी, तब मालवीयजी ने उन्हें बहुत शृङ्गारिक पद्य समुचित अभिनय के साथ कह सुनाये। एक बार काशी विश्वविद्यालय में पण्डित प्रमथनाथ तर्कभूपण की अध्यक्षता में कविवर कालिदास पर सगोष्ठी हुई थी, जिसमें कुछ विद्वानो ने उनके काव्य पर कुछ शकाए उपस्थित की थी, जिनका समाधान मालवीयजी ने बहुत उत्तम ढंग से कालिदास के ग्रन्थो के अवतरणो द्वारा किया था।

पर मालवीयजी अश्लील शृङ्गार के प्रति रुचि को बुरा समझते थे। उन्होने इसके विरोध में १४ वर्ष की आयु में लिखा था—

यह रस ऐसो है बुरो, मत को देत बिगारि।
याते पास न आवहु, जेते अहौ अनारि॥

विद्यार्थी जीवन में उन्हें कविता करने का भी शौक था, और उन्होने उस समय कुछ ऐसी रचनाएँ की थी, जिन्हें वे कभी-कभी बुढापे में भी नवयुवको के विनोद के लिए श्रावण मास में अपने अंतरंग कक्ष में आठ-दस पुराने छात्रो की छोटी-मोटी अन्तरंग गोष्ठियो में सुना दिया करते थे। अपने धार्मिक और सामाजिक विचारो के प्रसार के निमित्त इस वयोवृद्ध नेता ने सरल संस्कृत में कुछ श्लोको और हिन्दी मे कुछ छन्दो की भी रचना की थी।

मालवीयजी का स्वर मधुर, सुरीला, सुनम्य और संगीतात्मक था, तथा उनकी प्रकृति कलात्मक थी। अपने पिता की तरह वे भी बचपन से ही संगीत में विशेष अभिरुचि रखते थे। विद्यार्थी-जीवन-काल में ही वे बहुत भावात्मक ढंग से बहुत सुरीले स्वर में सूर और मीरा के पदो को गाने-बजाने लगे थे। इस जमाने में ही उन्होने सितार बजाने का काफी अभ्यास कर लिया था। पर संगीत मे पूरी सुविज्ञता प्राप्त करने के लिए जितने अभ्यास की आवश्यकता होती है, उतनी उन्हे कहा फुर्सत थी? फिर भी कम से कम कठ संगीत मे उन्होने इतनी निपुणता अवश्य प्राप्त कर ली थी कि विभिन्न रागो में गायको और सगीतज्ञो की परीक्षा लेते हुए उसकी त्रुटियां सुधारी जा सकें। पण्डित रामनरेश त्रिपाठी ने अपने संस्मरण मे लिखा है कि एक बार मालवीयजी ने एक गायक से मालकोश, भीमपलासी, केदारा और बिहाग गाने को कहा और अन्त में सोहनी में कुछ गाने को कहा, पर जब वे गायक महाशय इस अन्तिम राग को ठीक तौर पर नही गा सके, तब मालवीयजी अपनी अस्सी वर्ष की आयु मे स्वयं एक सोहनी, जो उन्हे याद थी, गाने लगे। उसके पद इस प्रकार थे—

नीद तोहे वेचोगी, जो कोउ गाहक होय।
आये रे ललना, फिर गये अंगना, मैं पापिनि रही सोय।
जो कोउ गाहक होय।

पण्डित रामनरेश त्रिपाठी अपने सस्मरण मे यह भी लिखते है कि जब एक बार वह स्वय मालवीयजी को कुछ ग्रामगीत गा कर सुना रहे थे, तब एक गीत को सुनकर वे उठ बैठे और यह कहकर कि—रामनरेश जी, यह मल्हार है, इस तरह गाया जाता है—स्वयं गाने लगे, और उन्होने उसे उसी "स्वर" में गाया जिस स्वर में सुलतानपुर जिले के गाँव पापर की एक जीर्ण शीर्ण बुढिया, भवाई के मेले में जाती हुई गा रही थी।[1]

इस मल्हार गीत के पद निम्नलिखित थे —

धीरे बहु नदिया तै धीरे बहु सैयाँ मोरा उतरइगे पार।
धीरे बहु नदिया।
काहेन की तोरी नैया रि काहे की करुवारि।
को तेरा नैया खेवैया रे को धन उतरहू पार॥
धरमै कै मोरी नैया रे सत कै लगी करुवारि।
सैयाँ मोरा नैया खेवैया रे, हम धन उतरब पार॥
धीरे बहु नदिया तै धीरे बहु॥

---

१. मालवीयजी—जीवन झलकियाँ, पृ० ६५-६६।

वाद्य संगीत और कंठ संगीत, दोनो ही मालवीयजी को प्रिय थे। दोनो ही उन्हें अनुप्राणित और आनन्दित करते थे, तथा उनको थकावट और परेशानी में स्वास्थ्यवर्धक औषधि का काम करते थे। वे जानते थे, जैसा कि उन्होने मुंशी ईश्वर शरण से कई बार कहा भी था, कि यदि वे प्रतिदिन आधा घंटा अच्छा संगीत सुन सकें तो उनका स्वास्थ्य बहुत कुछ सुधर सकता है। पर दूसरे सामाजिक कार्यों में व्यस्त मालवीयजी स्वास्थ्य के निमित्त भी घंटा आधा घंटा नही निकाल पाते थे। कभी-कभी तो संगीत गोष्ठी का आयोजन करते-करते किसी सार्वजनिक कार्य मे संलग्न हो जाते और योजना यो ही पडी रह जाती थी। पर फिर भी कभी-कभी महादेव कत्थक या गायनाचार्य शिवप्रसादजी आदि की गोष्ठी हो जाती थी, और मालवीयजी समुचित मनोयोग से सगीत का रसास्वादन कर पाते थे।

आहार-विहार

मालवीयजी के रहने-सहने तथा खाने-पीने का ढंग सादा, सरल, स्वच्छ था। वे प्रात काल सन्ध्योपासना के उपरान्त मिश्री और दूध तथा कोई फल, मध्याह्न को भोजन के वाद गाय के दूध का मट्ठा, सायकाल को कुछ फल तथा रात्रि को भोजन के कुछ देर वाद गौ के दूध का सेवन करते थे। गर्मी की ऋतु में सायंकाल को बिना भाँग की ठंढाई, तथा रात्रि को चूसे जानेवाले आमो का भी सेवन करते थे। अन्न में गेहूँ के आटे के हलके फुल्के और थोडा-सा बारीक चावल का भात, तथा अरहर या मूँग की दाल, तरकारी में परवल-लौकी, नेनुआ, भिंडी, पालक जैसे सुपाच्य पदार्थों का ही वे सेवन करते थे। टमाटर भी उन्हें अच्छे लगते थे। आलू खाना उन्होने छोड़ दिया था। पिताजी के श्राद्ध के दिन उन्हें बाग से मँगा कर वे खा लेते थे, क्योकि उनके पिता को वह बहुत पसन्द थे। मालवीयजी ने पण्डित रामनरेश त्रिपाठी को वताया कि उन्हें घर पर वनी अरहर की दाल, "वहुत पसन्द" थी। उन्होने कहा : "अरहर की दाल को पहले घी में भूनकर फिर उसे खौलते पानी में डाल दिया जाता था। जब वह अधपकी हो जाती थी, तब उसमें फिर घी डाला जाता था, जिसमें वह मलाई की तरह मुलायम हो जाती थी और बहुत स्वादिष्ट लगती थी।" बुढापे में तो उन्होंने पहले अरहर की दाल का, और वाद में मूँग की दाल का भी सेवन वन्द कर दिया था, चावल खाना भी वन्द कर दिया था। युवावस्था में वे सायं-काल के समय ३०-४० वादाम पिसवा कर पी लिया करते थे। मीठी तथा खट्टी चरपरी चीजो में उन्हें विशेष रुचि नही थी। युवावस्था तक वे दूध की वनी

मिठाई खा लेते थे, पर आगे चलकर उन्होने उसे भी छोड दिया था। फलो में उन्हें सेब बहुत पसन्द था। उसकी तरकारी तथा उसके रस का सेवन वे बहुत रुचि से करते थे। जैसे-जैसे बुढापा बढता जाता था, आहार की मात्रा घटती जाती थी, पर दूध और मक्खन की पुरानी मात्रा बुढापे में भी बनी रही। वे अपनी माता के आदेशानुसार एक सेर दूध तथा आधी छटाँक मक्खन का सेवन करते थे। (उनका कहना था कि "बुढापे का जिउ, दूध और घिउ।" अस्सी वर्ष की आयु में भी वे प्रातःकाल दवा के साथ मक्खन और दूध, दोपहर और रात्रि को भोजन के साथ मक्खन या घी, सायंकाल को थोडा-सा दूध और सोते समय दवा के साथ दूध पीते थे।)

यात्रा में वे बहुधा रसोइये की अनुपस्थिति में स्वयं खिचडी पका कर उसका सेवन कर लेते थे। रेल की लम्बी यात्रा में वे बहुधा दूध में गुंधे आटे की घी की पूड़ियाँ तथा मोहनभोग का प्रयोग करते थे। बहुत निश्चित व्यक्तियो द्वारा समाचार मिलने पर गौ के दूध के साथ इस प्रकार के भोजन का या फलाहार का प्रबन्ध स्टेशन पर कर दिया जाता था। पर कभी-कभी समुचित प्रबन्ध न होने पर उन्हें उपवास भी कर लेना पडता था।

(उनके शाकाहारी भोजन मे चाय, काफी, लहसुन, प्याज, मादक द्रव्य तथा गैस मिश्रित पेय पदार्थों का कोई स्थान नही था। वे तो मिर्च, मसाला तथा पान का भी सेवन नही करते थे। भोजन के बाद सुपारी की थोडी सी डली प्रायः मुख में डाल लिया करते थे। मालवीयजी चाय को बडी ही हानिकर वस्तु समझते थे। उन्होने पण्डित रामनरेश त्रिपाठी जी को बताया कि उन्होने एन्ट्रेन्स और एफ० ए० की परीक्षाओ के समय कुछ दिनो तक चाय का प्रयोग किया था, पर उसका उनके स्वास्थ्य पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ा। बहुत से सार्वजनिक कार्यों में घिरे रहने के कारण भोजन में उन्हें प्रायः बहुत विलम्ब हो जाता था।

मालवीयजी के परिवार में पहले सिर पर पंडताऊ टोपी, कलीदार अंगरखा, और देशी जूता पहनने का चलन था। उनकी पोशाक भी पहले यही थी। मऊ (जिला आजमगढ) की बनी हुई रेशमी किनारे की बारीक और चौडे पनहे की धोती उनको बहुत पसन्द थी। लम्बी बन्ददार अचकन, सिर पर भली-भाँति संवारा हुआ विशेष प्रकार का साफा, गले में घुटनो तक लटकता हुआ दुपट्टा, एवं ललाट पर मलयागिरि चंदन उनके सुघर और गौर वर्ण पर विशेष शोभा देते थे। पगडी और दुपट्टे के सँवारने में वे काफी सावधानी रखते थे। वे समयानुकूल धोती और पैजामा दोनो का प्रयोग करते थे। अधिक वृद्ध हो

जाने पर उन्होने पगडी के स्थान पर पंडताऊ टोपी का प्रयोग भी प्रारम्भ कर दिया था। मध्यवय में ही उन्होने चमड़े के जूतो के बजाय रवर की तली के जूते पहनना शुरू कर दिये थे। जाडो की ऋतु में वे ऊनी लवादे का तथा शाल (चादर) का भी प्रयोग करते थे। पूजा पाठ के समय, कथा सुनाते समय, तथा भोजन करते समय वह शुद्ध रेशमी वस्त्र का प्रयोग करते थे। उनके वस्त्र स्वदेशी और शुभ्ररंग के होते थे। सत्रह वर्ष की आयु में ही उन्होने स्वदेशी का व्रत ले लिया था। सन् १९२० के वाद वे खद्दर का प्रयोग विशेष रूप से करने लगे थे।

त्रुटियाँ

वहुगुणसम्पन्न मालवीयजी के कतिपय सद्गुणो ने उनके लिए काफी कठिनाइयाँ भी पैदा कर दी थी। गाधीजी कहा करते थे कि "मालवीयजी की दया उनका दुश्मन वन गयी है।" दया के पात्र और कुपात्र उन्हें सदा घेरे रहते थे। अपने सच्चे और वनावटी कष्टो की अतिरजित वातो से वे उन्हे दु.खी करते रहते थे। मानव स्वभाव के प्रति उनकी उदार भावना भी उनके लिए कठिन पहेली वन गयी थी। इस उदारता के कारण उनके लिए मनुष्यो की आन्तरिक भावनाओ का सही मूल्याकन करना वहुधा कठिन हो जाता था। मनुष्यो के सम्वन्ध में उनका अनुमान प्रायः यथातथ्य से अधिक उदार होता था, जिसके कारण उन्हें वाद को कभी-कभी कठिन समस्याओ का सामना करना पड जाता था। दूसरो की भावनाओ के प्रति आदर भावना ने भी उनकी जीवनचर्या को किसी अंश में अव्यवस्थित और उनके जीवन को कष्टमय बना दिया था। उनका शील-संकोच उन्हें वक्त वेवक्त लोगो से मिलने को मजवूर करता था, जिसके कारण वे न ठीक समय पर भोजन कर पाते थे, और न ठीक से आराम कर पाते थे। पूर्व निश्चित सार्वजनिक काम करने में भी उन्हें देर हो जाती थी। उनकी समाजसेवा की भावना ने भी उन पर उत्तरदायित्व का इतना वोझ लाद दिया था, जिसका ठीक-ठीक निर्वाह उन जैसे कर्मठ समाज सेवी के लिए भी असम्भव हो रहा था। दिन-रात काम में लगे रहने पर भी काम अधूरा रह जाता था, उनके सहयोगियो को उनसे शिकायत वनी रहती थी। उन्हें भी उसकी चिन्ता सदा वनी रहती थी। समाजसेवा की चिन्ता से वे अपने को कभी भी मुक्त नही कर सके। पचपन वर्ष से अधिक समाजसेवा करने के बाद भी सेवा की उत्कट इच्छा वनी रही, अपनी वड़ी-वडी योजनाओ के अपूर्ण अंशो की याद उन्हें मरते दम तक परेशान करती रही। आत्मोत्सर्ग और आत्मसमर्पण की

भावनाओ ने उन्हें अपने स्वास्थ्य के प्रति भी बहुत हद तक उपेक्षित बना दिया था। उन जैसा विनोद-प्रिय व्यक्ति भी जीवन में मनोरजन के महत्त्व को भूल-सा गया था। स्वास्थ्यवर्धक संगीत के लिए भी वे आधा घण्टा नियमित रूप से नही निकाल पाये। पीछे की चीजो को पकड़े रहने की प्रवृत्ति से उनको चिढ थी, फिर भी समाज-सुधार के प्रश्नो पर उन्होने शास्त्रो की रस्सी इस तरह पकड़ रक्खी थी कि इस क्षेत्र में बहुत आगे बढ कर काम करना उनके लिए कठिन हो रहा था। वे मानवता के व्यापक सिद्धान्तो के आधार पर समाज-सुधार की कोई योजना जनता के सामने प्रस्तुत नही कर सके। श्री नरसिंह चिन्तामणि केलकर जैसे व्यक्ति भी, जिन्होने स्वयं हरविलास शारदा द्वारा प्रस्तुत हिन्दू बालविवाह विधेयक पर मालवीयजी के साथ वोट किया था, उन्हें प्रचलित अर्थों में समाजसुधारक कहने को तैयार नही थे। उनकी तितिक्षा, दूसरो के विचारों और भावनाओ का आदर करने की उनकी प्रवृत्ति, प्रत्येक विषय के सब पक्षों पर विचार करने की उनकी आदत के कारण भी बहुधा महत्त्वपूर्ण विषयो पर कोई निर्णय लेने में उन्हें बहुत समय लग जाता था, और कभी-कभी तो समझौते की प्रबल इच्छा के कारण या तो उनके लिए निर्णय लेना ही असम्भव हो जाता था, या समझौते की छाप के कारण निर्णय की स्पष्टता या निदेशकता धूमिल हो जाती थी। पर कभी-कभी उनकी दृढता जिद का रूप धारण कर लेती थी, उन्हें व्यावहारिकता से विलग कर देती थी। फिर भी प्रायः उनके जिस विचार को दूसरे लोग अव्यावहारिक कल्पना या जिद समझते थे, उसे वह कार्यरूप में परिणत कर उसकी व्यावहारिकता और सार्थकता सिद्ध कर देते थे। काशी विश्वविद्यालय इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। प्रायः मालवीयजी के जिस विचार को उग्रगामी निरर्थक, गतिरोधात्मक समझते थे, वह परिस्थिति विशेष में देश की अधिकाश जनता का मार्गदर्शन करने में, उसका नेतृत्व करने में, उसे आगे बढ़ाने में सहायक सिद्ध होता था। रूढिवादियो को भी सुधार की ओर प्रवृत्त करना उनके नेतृत्व का गुण था।

अद्वितीय व्यक्तित्व

उनके व्यक्तित्व की सर्वतोमुखी प्रतिभा, साहस एवं उत्साह और त्याग, तथा राष्ट्र-सेवा में उनकी निष्ठा और लगन अतुलनीय थी। उनका व्यक्तित्व निश्चय ही अद्भुत था। वे निःसन्देह उच्चकोटि के जननायक तथा राष्ट्र-निर्माता थे। राष्ट्र के नेताओ मे उनका बहुत ऊँचा स्थान था। गाधीजी का कहना था कि मालवीयजी के साथ देशभक्ति में कौन मुकाबला कर सकता है ? राजर्षि

पुरुषोत्तमदास टण्डन के विचार में मालवीयजी "आदर्श मनुष्य थे", जिन्होंने "राजनीति और शिक्षा दोनो क्षेत्रों में युग परिवर्तक और प्रवर्तक का काम किया।"[1] प्रिन्सिपल दीवानचन्द के विचार में "मालवीयजी पवित्र आत्मा थे। उनके व्यक्तित्व की मनोहरता का उनके लाखो समकालीन लोगो पर उदात्त प्रभाव था।"[2] बंगाल के सुप्रसिद्ध देशभक्त वैज्ञानिक सर प्रफुल्लचन्द्र रॉय का विचार था कि "गाधीजी के बाद कोई दूसरा ऐसा मनुष्य मिलना कठिन है जिसने इतना अधिक त्याग किया हो, और बहुमुखी कार्यों का ऐसा प्रमाण प्रस्तुत किया हो जैसा मालवीयजी ने"।[3] लिबरल पार्टी के प्रमुख नेता श्री सी० वाई० चिन्तामणि का भी विचार है कि "मालवीयजी ही एक ऐसे व्यक्ति है जो साबरमती के मनीषी (गाधी जी) के कोष्ठक में रखने योग्य है।"[4] दूसरे उदार-दलीय नेता पंडित हृदयनाथ कुंजरू का विचार है कि "गाधीजी को छोडकर उनसे बड़ा भारतीय कोई नही हुआ।"[5] मुंशी ईश्वर शरण का कहना है कि "हम दूसरे सार्वजनिक पुरुषो की योग्यता और व्यवहार-कौशल को स्वीकार करते है, पर महात्मा गाधी को छोडकर कोई दूसरा हमारा हृदय उस प्रकार आकर्षित नही करता जैसा मालवीयजी"।[6] उन्होने यह भी कहा कि यह उनका "अटल विश्वास है कि जब तक भारत गाधीजी और मालवीयजी जैसे व्यक्तियो को जन्म देता रहेगा, तब तक भारत जीवित बना रहेगा।"[7] भर्तृहरि ने महात्मा के प्रकृतिसिद्ध लक्षणो का वर्णन करते हुए कहा है—

> विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा, सदसि वाक्पटुता युधि विक्रम।
> यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ, प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्॥

अर्थात् विपत्ति में धैर्य, सम्पत्ति में क्षमा, सभा में वाक्पटुता, युद्ध में विक्रम, यश में रुचि, शास्त्र में लगन—ये गुण महात्माओं में स्वभाव से ही होते है।

ये सभी गुण मालवीयजी में स्वभावत विद्यमान थे, और वे नि.सन्देह बहुगुण-सम्पन्न महात्मा तथा सात्विक कर्ता थे।

●

---

१. महामना मालवीयजी : बर्थ सेनटिनरी कोमिमोरेशन वाल्यूम।
२. वही, पृ० २१५।
३. मालवीय कोमिमोरशन वाल्यूम, पृ० १००५।
४. वही, पृ० १०१२।
५. मालवीयजी—जीवन झलकिया, पृ० ४८।
६. मालवीय कोमिमोरशन वाल्यूम, पृ० १०५१।
७. वही।

२६. संयुक्त स्वशासित भारतीय राष्ट्र

मालवीयजी साम्प्रदायिकता के वजाय राष्ट्रीयता के आधार पर राजनीतिक जीवन का निर्माण करना चाहते थे। उन्होने सन् १९०९ में एक ओर मुस्लिम लीग की साम्प्रदायिक राजनीति का तथा साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की मांग का विरोध किया, दूसरी ओर पजाव हिन्दू महासभा की साम्प्रदायिक राजनीति की भर्त्सना करते हुए हिन्दू जनता से काग्रेस का समर्थन करने का अनुरोध किया। वे कई वर्ष तक हिन्दू महासभा से अलग रहे, और जब सन् १९२२ में उन्होने अखिल भारतीय हिन्दू महासभा का नेतृत्व स्वीकार किया, तब हिन्दू समाज की रक्षा तथा हिन्दुओ के सामाजिक संगठन को दृढ करना, उसकी कुरीतियो को दूर करना, तथा भारतीय राष्ट्र की पुष्टि के लिए अन्य धार्मिक जातियो से मित्रता वढाना उसका लक्ष्य निश्चित कराया। उन्होने हिन्दू महासभा के मंच से हिन्दू संघटन के साथ-साथ स्वराज्य की मांग पर, तथा स्वतंत्रता के लिए हिन्दू-मुस्लिम एकता पर जोर दिया, साम्प्रदायिकता के वजाय व्यापक राष्ट्रीयता का समर्थन किया, और घोषित किया कि हम अपने संगठन द्वारा अपने धर्म और मान की रक्षा करना चाहते है, किसी को चोट पहुँचाना नही चाहते, किसी के ऊपर प्रभुत्व या अधिकार भी नही चाहते है, चाहते हो तो परमात्मा हमें दण्ड दे।[1] वे तो उस समय भी यही चाहते थे कि "हिन्दू और मुसलमान भाई जिन कामो में मिलकर काम कर सकते हो करें, शहर नगर की रक्षा में, नागरिक दलो में सब मिलकर एक साथ काम करें।"[2] उनकी यही कामना थी कि "दोनो साथ-साथ रहें और प्रेम से रहें और सोलह आने राष्ट्रवादी वनने का उपाय करें, जिससे देश अपने पुराने वैभवयुक्त स्थान को प्राप्त कर सके और भारत भारतवासियो का ही हो जाय।"[3] दिसम्बर सन् १९२७ में हिन्दू महासभा के मद्रास अधिवेशन में मालवीयजी ने हिन्दू महासभा के उद्देश्यो की व्याख्या करते हुए कहा, "राष्ट्रीयता हिन्दू सभा का उतना ही लक्ष्य है, जितना हिन्दुत्व।"[4] उन्होने बताया कि हिन्दू सभा के दो उद्देश्य है—(१) हिन्दू समाज के सब वर्गों में अधिक से अधिक एकता

---

१. हिन्दू महासभा, सन् १९२३, अध्यक्षीय भाषण।

२. वही।

३. हिन्दू महासभा, दिसम्बर १९२४, वेलगाव अधिवेशन।

४. इंडियन क्वाटरली रजिस्टर, सन् १९२७, जि० २, पृ० २५३।

और संहति बैठाना, और उन्हें एक सूत्र में सगठित करना, तथा (२) हिन्दुओ और हिन्दुस्तान के दूसरे सम्प्रदायो में सद्भावनाओ को प्रोत्साहित करना और संयुक्त स्वशासित भारतीय राष्ट्र की उपलब्धि के निमित्त उनके साथ मैत्री-पूर्वक ढंग से वर्ताव करना ।[1]

मालवीयजी हिन्दूराष्ट्र और मुस्लिमराष्ट्र, तथा हिन्दूराज्य और मुस्लिमराज्य के सिद्धान्तो के विरोधी थे। वे तो सब भारतवासियो को भारतीय राष्ट्र का अंग स्वीकार करते थे, और देशवन्धुता और देशप्रेम के आधार पर भारतीय राष्ट्रीयता को सुदृढ करते हुए उसकी बुनियाद पर भारतीय राज्य प्रतिष्ठित करना चाहते थे। वे देश में एक ऐसा भारतीय प्रशासन स्थापित करना चाहते थे जिसके संचालन में सब जाति, सम्प्रदाय और प्रान्त के सदस्यो का सहयोग हो, जिसके द्वारा समान रूप से सबके अधिकारो और हितो की समुचित रक्षा हो। वे प्रधानमंत्री मेकडोनल्ड के साम्प्रदायिक निर्णय के इसलिए विशेष रूप से विरोधी थे कि उसके द्वारा विभिन्न प्रान्तो मे भारतीय शासन के बजाय हिन्दू प्रशासन और मुस्लिम प्रशासन कायम हो जायेंगे, जो राष्ट्र की प्रगति और साम्प्रदायिक सौहार्द के लिए घातक होगे, और जिनके द्वारा अल्पसंख्यकों के हितो की रक्षा असम्भव होगी। उन्होने तो सन् १९२४ में कह दिया था कि "राष्ट्रीय सरकार और जातिगत शासन दोनो एक साथ चल नही सकते। राष्ट्रवाद और जातिवाद एक साथ ठहर नही सकते।"[2] सन् १९४१ में प्रयाग विश्वविद्यालय के छात्रसंघ को सबोधित करते हुए उन्होने कहा था कि "हिन्दू राज्य और मुस्लिम राज्य के दिन लद गये। हमे अब भारतीय राज्य की बात ही सोचनी चाहिए"। वे चाहते थे कि सब हिन्दू इस बात का ध्यान रखें कि "वे पहले भारतवासी है, बाद को हिन्दू है,"[3] और देशभक्त पारसियो, मुसलमानो, ईसाइयो, यहूदियो आदि से मिलकर देश की उन्नति करना उनका कर्तव्य है। वे मानते थे कि जबतक हम यह निश्चय नही कर लेते कि हमारे सब सम्बन्ध देशप्रेम पर स्थापित हो, तब तक हम अपने उद्देश्य में सफल नही हो सकते।[4]

राष्ट्रीयता की व्याख्या करते हुए उन्होने लिखा था कि "राष्ट्रीयता उस भावना का नाम है जो देश के सम्पूर्ण निवासियो के हृदय में देश-हित की लालसा

१. वही।

२. हिन्दू महासभा, दिसम्बर १९२४, बेलगाव अधिवेशन।

३. हिन्दू महासभा, गया अधिवेशन, १९२२।

४ लाहौर में भाषण, जून सन् १९२३।

में व्याप रही हो, जिसके आगे अन्य भावो की श्रेणी नीची ही रहती हो।"[१] देशभक्ति की महिमा का वखान करते हुए उन्होते लिखा था : "गाढ देशभक्ति से एकता उत्पन्न होती है, एकता से राष्ट्रीयता का भाव, और राष्ट्रीयता के भाव से देश की उन्नति होती है"।[२] उन्होने वताया कि जिस तरह भगवद्भक्त वे होते है जो अपने समस्त कार्यों को भगवान को अर्पण कर देते है, और एकाकी लगन से भगवान् का घ्यान और उपासना करते है, सच्चे देशभक्त वे है जो "कुछ करे धरें, सव कुछ देश ही के लिए हो, और देश के कार्य में प्रतिक्षण तत्पर रहें, और एकाकी लगन से देश की सेवा में लगे रहें।[३]

इन सव से यह स्पष्ट है कि मालवीयजी चाहते थे कि "देश ही समस्त देशवासियो के प्रेम और भक्ति का विपय वन जाय," "मतभेद, वर्गभेद, ज़ातिभेद के होते हुए भी राष्ट्रीयता का श्रेष्ठ भाव देशव्यापी हो जाय, और इतना वढ जाय कि उसके आगे अन्य भावो का दर्जा नीचे गिर जाय"।[४]

भारतीय राष्ट्र की भावना को सुदृढ करने के लिए मालवीयजी प्रत्येक विद्यार्थी को देशप्रेम और नागरिकता की ऐसी शिक्षा देना चाहते थे जो साम्प्रदायिकता को जलमग्न कर दे।[५] वे चाहते थे कि प्रत्येक भारतीय कौटम्विक तथा धार्मिक स्तर पर अपनी पुरानी सास्कृतिक मान्यताओ का पालन करते हुए सार्वजनिक और राष्ट्रीय स्तर पर नागरिकता की सर्वमान्य मान्यताओ का पालन करे, तथा लोकतन्त्र की पृष्ठभूमि में प्राचीन हिन्दू और मुस्लिम सस्कृतियो के विश्वजनीन सजीव तत्त्वो के संश्लेषण से सर्वमान्य मर्यादाएं विकसित की जायें।

मालवीयजी की राष्ट्रीय भावना मानवता से विभूपित थी। वे मानवमात्र की एकता पर विश्वास करते थे, और संकीर्ण आक्रमणशील राष्ट्रीयता के विरोधी थे। वे राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए संघर्प करना आवश्यक समझते थे, पर किसी दूसरे राष्ट्र की स्वतंत्रता का अपहरण अमानुषिक समझते थे। वे न किसी के साथ अन्याय करना चाहते थे, और न किसी का अन्याय सहन करने को तैयार थे। वे चाहते थे कि देश का प्रत्येक नवयुवक अपने जीवन को

---

१. मालवीयजी के लेख, पृ० ९९।
२. वही, पृ० १००।
३. वही, पृ० १०८।
४ वही, पृ० ९९।
५. बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी, दीक्षान्त भाषण, सन् १९२९।

शौर्य से विभूषित करे, अपने में अपने राष्ट्र और समुदाय की रक्षा की शक्ति पैदा करे। पर वे शौर्य को मनुष्यता और न्यायनिष्ठा से अलंकृत करना भी आवश्यक समझते थे। मनुष्यता से समन्वित शौर्य ही उनके विचार में, न्याय और मानवकल्याण का आधार बन सकता है, मनुष्यता-विहीन शौर्य तो दमन, क्रूरता, अन्याय का ही उपकरण हो सकता है। उनकी धारणा थी कि "ईश्वर की सृष्टि में मनुष्य मनुष्य में कोई भेद नही है," यद्यपि "लोग पुरुष और स्त्री में भेद करते हैं, लेकिन जहाँ तक ईश्वर की ज्योति का सम्बन्ध है उनमें बिल्कुल भेद नही।"[१]

मालवीयजी राष्ट्रपति विलसन के चौदह सूत्रीय कार्यक्रम पर विश्वास करते थे, और चाहते थे कि उनके आधार पर संसार में विश्वन्याय और शान्ति प्रतिष्ठित की जाय। कतिपय अन्तर्राष्ट्रीय शर्तो के साथ समुद्रो की स्वतंत्रता, राष्ट्रीय रक्षा की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय सेना और युद्ध सामग्रियो में कटौती, सब शान्तिप्रिय राष्ट्रो में व्यापार की समानता, जनता की प्रभुसत्ता और कल्याण के आधार पर सब औपनिवेशिक प्रश्नो का समाधान, पराजित राज्यो की भूमि से विजयी राष्ट्रो का निष्कासन, बडे-छोटे राज्यो की राजनीतिक स्वतन्त्रता और भौमिक अखण्डता, उसकी गारंटी के लिए सब राष्ट्रो के संघ का सगठन—ये मालवीयजी के कतिपय अन्तर्राष्ट्रीय सिद्धान्त थे।[२]

मालवीयजी निरकुशता और परतन्त्रता के विरोधी, तथा वयस्क मताधिकार पर आधारित लोकतान्त्रिक व्यवस्था के समर्थक थे। उनके विचार में निरंकुशता तथा विदेशी शासन एक "ऐसा घोर अभिशाप है जो जनता के पुरुषत्व को नष्ट कर देता है, और उसकी नैतिक प्रकृति को बुरी तरह विकृत कर देता है।" उनका कहना था कि पराधीनता से "जेता और विजित दोनो समुदायो में से मनुष्यत्व दूर भागता है—स्वतन्त्रता का न होना, उन्नति के अवसरो को खोना है, उन्नति के अवसरो को खोना अधःपतन है, और अध. पात मृत्यु के तुल्य है।"[३]

दमन, अन्याय और परतन्त्रता का विरोध वे मानव का पुनीत कर्तव्य समझते थे, और वे स्वयं जीवन भर इसी काम में संलग्न रहे। न्याय, स्वतन्त्रता

१. काग्रेस का वार्षिक अधिवेशन, सन् १९२८, अध्यक्षीय भाषण।
२. वही।
३. अभ्युदय : १९ मई सन् १९१२।

और जनकल्याण की प्रतिष्ठा ही उनका जीवन लक्ष्य था। इसके लिए वे जन-जागृति, जनसंगठन, जनान्दोलन तथा जनकल्याण की भावना नितान्त आवश्यक समझते थे। न्याय के प्रति दृढ निष्ठा, तथा सब कामो में उसका सदा अनुसरण, वे एक सार्वजनिक कार्यकर्ता का कर्तव्य समझते थे। कार्य की सफलता के लिए वे साहस, उत्साह, लगन और शौर्य के साथ-साथ धैर्य, सयम तथा दुर्भावनाओ पर नियंत्रण भी आवश्यक समझते थे। उनका अपना सार्वजनिक जीवन इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। वे आजीवन अन्याय और अत्याचार से संघर्ष करते रहे, पर विषम से विषम परिस्थिति में भी उन्होने दुर्भावनाओ को अपने ऊपर हावी नही होने दिया, सदा सज्जनता और मनुष्यता का पालन किया, किसी का अनहित नही चाहा।

समाज का परिशोधन तथा राष्ट्र का पुनर्निर्माण ही वे रचना और संघर्ष दोनो का लक्ष्य समझते थे। वे संघर्ष को साध्य के बजाय रचना की प्रक्रिया का अनिवार्य अंग स्वीकार करते थे, और उनके सब संघर्ष रचना की भावना से अनुप्राणित, रचनात्मक कार्य से समन्वित, तथा व्यक्तिगत कटाक्ष से निर्मुक्त होते थे। वे सार्वजनिक जीवन में लोकतान्त्रिक शील और मर्यादाओ का पालन आवश्यक समझते थे, और उन्होने सदा सब परिस्थितियो में स्वयं उसका पालन किया। मालवीयजी चाहते थे कि अन्याय का विरोध भी यथासंभव संवैधानिक ढग से कानून की सीमा में रहते हुए किया जाय, पर वे अहिंसात्मक शान्तिमय सविनय अवज्ञा और सत्याग्रह को भी संवैधानिक स्वीकार करते थे, और आवश्यकता पडने पर उनका उपयोग भी उचित समझते थे। परतन्त्रता के विरुद्ध तो सुसगठित हिसात्मक विद्रोह को भी वे न्यायसंगत मानते थे, और उपयुक्त परिस्थितियो में उसका प्रयोग उचित समझते थे। आत्मरक्षा के निमित्त आततायी का हिंसात्मक प्रतिरोध भी वे न्यायसंगत समझते थे, पर वे आतक, उद्दण्डता, और तोड-फोड की प्रक्रिया को ठीक नही मानते थे।

मालवीयजी वयस्क मताधिकार, तथा संयुक्त निर्वाचन पद्धति द्वारा चुनी जनता की सरकार को ही सर्वोत्तम समझते थे। वे जाति, सम्प्रदाय, या सम्पत्ति को मताधिकार का आधार स्वीकार करने को तैयार नही थे। उनके विचार में आय और सम्पत्ति का स्वामित्व अनिवार्य रूप से योग्यता और चरित्र का परिचायक नही है, न ही सम्पत्ति का अभाव सम्मान की कमी का सूचक समझा जा सकता है।[1] एक निर्धन व्यक्ति भी सदाचारी, लोकसेवक तथा जनविश्वास

१. कांग्रेस का अध्यक्षीय भाषण, सन् १९०९

ने अपने हाथो से सूर्य की किरणों के रूप में ही मनुष्य स्वभाव पर अंकित कर दिये हैं जो किसी मानव की शक्ति से मिटाये नही जा सकते।"[1] उनके विचार में नागरिक स्वतंत्रता मानव के प्राकृतिक अधिकारों पर आश्रित मानव के नैतिक अधिकार हैं जिनकी मान्यता और रक्षा राज्य का कर्तव्य है।

मालवीयजी के विचार मे वही राज्य सुव्यवस्थित है जिसमें सब जाति और सम्प्रदाय के नागरिको को मौलिक अधिकारों के उपभोग की पूरी स्वतंत्रता हो। वे धार्मिक स्वतंत्रता को मानव का मौलिक अधिकार स्वीकार करते थे, पर धर्म-ग्रन्थों, धर्मगुरुओ और उपास्यदेवो और उपास्य-स्थलों का आदर प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य समझते थे। राज्य द्वारा अन्तःकरण का नियंत्रण नि सन्देह अमानुषिक है। किसी एक धर्म को राष्ट्र-धर्म की मान्यता प्रदान कर दूसरे धर्मों की उपेक्षा अवश्य ही अन्याय है, धार्मिक विद्वेष और कलह का हेतु है। वे अन्तः करण की स्वतंत्रता तथा धार्मिक तितिक्षा और सद्भावना के महत्त्व को स्वीकार करते थे। वे धर्मनिरपेक्ष राज्य के समर्थक थे। वे चाहते थे कि धार्मिक स्वतंत्रता को नागरिक स्वतंत्रता का महत्त्वपूर्ण अंग स्वीकार करते हुए संविधान द्वारा उसे ठीक तौर पर इस तरह सुरक्षित किया जाय कि बहुसंख्यक सम्प्रदाय अपने बहुमत के बल पर अल्पसंख्यक सम्प्रदाय की स्वतंत्रता अपहरण न कर सके। वे चाहते थे कि भारतीय लोकतांत्रिक राज्य में सब नागरिको को अपने-अपने विश्वास के अनुकूल धार्मिक जीवन व्यतीत करने की, धार्मिक कृत्यो को करने की, तथा अपने धार्मिक विचारो के प्रशिक्षण और प्रसार करने की स्वतंत्रता हो। धर्म के आधार पर किसी व्यक्ति के अधिकार पर कोई प्रतिबन्ध न लगाया जाय। न कोई राज्य-धर्म हो, और न राज्य की ओर से किसी धर्म का प्रचार किया जाय। धार्मिक विश्वास या आचरण के कारण किसी के साथ पक्षपात नही किया जाय। धार्मिक आचरण या विश्वास तथा मत का सरकारी नौकरी या अधिकार पर कोई प्रभाव नही पड़े।

मालवीयजी स्वीकार करते थे कि युद्ध कहे जाने योग्य फसादो की स्थिति में तथा व्यापक राजविद्रोह की स्थिति में मार्शल-ला (फौजी कानून) लागू किया जा सकता है, और नागरिको के मौलिक अधिकारो पर प्रतिबन्ध लगाये जा सकते हैं। पर उनकी राय में इस स्थिति में भी फौजी अदालतो और फौजी कानून की मर्यादाओ और सीमाओ का ध्यान रखना नितान्त आवश्यक है। इस स्थिति में

---

१. प्रोसीडिंग इण्डियन लेजिस्लेटिव कौंसिल, सन् १९१९, जि० ५८,।

भी सरकार द्वारा उतने ही बल का प्रयोग किया जा सकता है जितना शान्ति स्थापित करने के लिए आवश्यक हो, विधि-व्यवस्था प्रतिष्ठित करने के नाम पर निरर्थक हत्याओ और प्रतिबन्धो द्वारा आतंक स्थापित नही किया जा सकता। फौजी कानून अर्थात् मार्शल-ला तभी तक जारी रखा जा सकता है जब तक वह नितान्त आवश्यक हो, उसके बाद उसे जारी रखना अत्याचार और अन्याय है। हत्याओ और आग लगाने के अपराधो की जाँच ही फौजी अदालतो में हो सकती है। राजविद्रोह और व्यापक फसादों की स्थिति में सरकार का उत्तरदायित्व अवश्य बढ जाता है, और उसके साथ ही उनके अधिकारो मे भी वृद्धि हो जाती है, पर न्याय का पालन करना उनका कर्तव्य बना रहता है।[1]

मालवीयजी की दृढ धारणा थी कि मार्शल-ला के जमाने में किये गये सरकारी अत्याचारो की निष्पक्ष आधिकारिक जाँच नितान्त आवश्यक है। उस जमाने में भी निर्दयतापूर्ण व्यवहार अन्याय है, और प्रत्येक सरकारी कर्मचारी इस प्रकार के व्यवहार के लिए व्यक्तिगत हैसियत से उत्तरदायी और दण्डनीय है, पीडित उसके विरुद्ध दीवानी और फौजदारी अदालत में मुकदमा दायर कर सकता है। मालवीयजी का कहना था कि "नागरिको की तरह सैनिको का भी यह अधिकार है कि वे शस्त्र से शस्त्रधारी का सामना करे और जानमाल की रक्षा के लिए उचित उपायो का प्रयोग करें, पर यदि सैनिक निहत्थे और विरोध न करनेवाले मनुष्यो की हत्या करेगा, तो वह हत्या का दोषी होगा और उस पर कानून के अनुसार मुकदमा चलाया जा सकता है। क्षमा अधिनियम द्वारा दोषी अफसरो को दोष के उत्तरदायित्व से किसी हद तक मुक्त किया जा सकता है। पर इस प्रकार का कानून पास करने से पहले विधान सभा को सन्तुष्ट होना होगा कि शान्ति और व्यवस्था को पुन प्रतिष्ठित करने के लिए मार्शल-ला लागू करना नितान्त आवश्यक था। कानून के अन्दर क्षमा की सीमाओ को भी निर्धारित करना होगा। हर प्रकार के अत्याचारो और दोषो को क्षमा नही किया जा सकता। वही व्यवहार क्षमा किये जा सकते हैं जो व्यक्तिगत द्वेष से प्रेरित न हो, और उचित सावधानी के बावजूद हो गये हो, या जो ईमानदारी के साथ इस विश्वास मे किये गये हो कि शान्ति और व्यवस्था को स्थापित करने के लिए ऐसा करना जरूरी था।"[2]

यद्यपि मालवीयजी मानव के मौलिक अधिकारो की रक्षा तथा व्यक्तित्व के स्वतंत्र विकास की समुचित व्यवस्था लोकतन्त्र का महत्त्वपूर्ण कार्य समझते थे, फिर

१ प्रोसीडिंग इण्डियन लेजिस्लेटिव कौसिल, सन् १९१९, जि० ५ ।
२. वही ।

भी वे उन विचारको से सहमत नही थे जो व्यक्तिवाद को लोकतंत्र का अनिवार्य अंग स्वीकार करते थे। वे तो व्यक्तिवाद के विरोधी, तथा सामाजिकता और जनकल्याण राज्य के समर्थक थे। वे सामाजिकता को मानव स्वभाव का महत्त्वपूर्ण लक्षण और सद्गुण मानते थे, और मानवव्यक्तित्व के विकास के लिए मानव स्वतंत्रताओ की रक्षा के साथ साथ मानव समाज की पुष्टि और विकास आवश्यक समझते थे। उनकी दृढ धारणा थी कि "भारत के प्राचीन धर्म की शिक्षा है कि प्रत्येक मनुष्य अपने को एक बडी समष्टि की इकाई समझ कर उसके हित के लिए जीवित रहे और काम करे, लोककल्याण और लोकसंग्रह को परम पुरुषार्थ समझे।"[1] उनके विचार में स्वतंत्रता और सामाजिक उत्तरदायित्व का सामंजस्य ही नैतिक और सामाजिक जीवन का मूलाधार है। उत्तरदायित्व से रहित स्वतंत्रता उच्छृखलता है, और स्वतन्त्रता-विहीन उत्तरदायित्व दासता है।

जनकल्याण की वृद्धि के लिए सतत प्रयत्न वे राज्य का परम कर्तव्य समझते थे। उनके विचार में "जनता की स्थिति मे सुधार ही अच्छी सरकार की कसौटी है", और इस कर्तव्य का निर्वाह करके ही कोई सरकार "सभ्य सरकार" होने का दावा कर सकती है।[2] वे चाहते थे कि विधितन्त्र, राजकोष तथा वित्तीय नीति द्वारा जनकल्याण की पुष्टि और वृद्धि की जाय, वही कानून बनाये जायें जिनसे जनता को स्वतंत्रता की रक्षा हो, सामाजिक न्याय की पष्टि हो, श्रमिक जनता (किसान मजदूर) का अभ्युदय हो। वे चाहते थे कि सरकार द्वारा ऐसी वित्तनीति अपनायी जाय जिससे देश के आर्थिक हितो की रक्षा और उसकी समृद्धि की वृद्धि हो। वे चाहते थे कि सरकार दुर्गति की स्थिति में जनता की सहायता करते हुए अपनी शक्ति और साधनो को जनता की शक्ति के निर्माण में, लोगो के मस्तिष्क को ज्ञान से प्रदीप्त करने में, उनके घरो के प्रतिवेश के सुधारने में, तथा आमदनी के नये स्रोतो को अपनाने की उनमें क्षमता पैदा करने में लगाये ताकि वे सभ्य संसार में सुखी गौरवपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकें।[3]

जनकल्याण राज्य की उनकी कल्पना किसी अंश में आपस्तम्ब, नारद और भीष्म के विचारो पर, और किसी अंश मे ब्रिटेन के समकालीन विचारको की धारणाओ पर आधारित थी। वे नि.सन्देह सामाजिक उदारवाद के पोषक थे, जो किन्ही सामाजिक परिस्थितियो मे सामाजिक न्याय पर आश्रित उदारवादी समाजवाद (लिबरल सोशलिज्म) का रूप धारण कर सकता था।

---

१. सन् १९०४ में विश्वविद्यालय की योजना का प्रारूप।
२. प्रान्तीय कौंसिल मे भाषण, सन् १९०७।
३. प्रान्तीय कौंसिल मे भाषण, सन् १९०८।

२७. जनकल्याण और सामाजिक न्याय की वृद्धि

सामाजिक न्याय, जनकल्याण और राष्ट्रहित मालवीयजी के आर्थिक मीमासा के मूलमन्त्र थे। वे चाहते थे कि हमारी आर्थिक व्यवस्था सामाजिक न्याय पर आश्रित हो, जनकल्याण और राष्ट्रहित की वृद्धि उसका लक्ष्य हो, न्यासिता की भावना से वह अनुप्राणित हो।

उनके कुछ आर्थिक विचार प्राचीन भारतीय विद्वानो के आदेशो पर आश्रित थे, पर बहुत से विचार आधुनिक थे। वे मनुस्मृति द्वारा प्रतिपादित नियमो के अनुकूल ऋण व्यवस्था का नियमन करना चाहते थे।[1] उनकी कृषिनीति भी कुछ अशो में प्राचीन विचारो से प्रभावित थी। पर उनकी औद्योगिक नीति मूलत आधुनिक थी।

मालवीयजी का कहना था कि भारत में अग्रेजो का आधिपत्य प्रतिष्ठित होने से पहले हमारा देश कृषि-प्रधान और व्यवसाय-प्रधान दोनो था, और अग्रेज शासको की आयात, निर्यात तथा अन्य दोषपूर्ण वित्त-नीतियो एव आर्थिक गतिविधि के कारण ही भारत एकमात्र कृषि-प्रधान देश बन गया। व्यावसायिक क्षति के कारण व्यवसायशील जातिया बरबाद हो गयी, खेती पर देश की निर्भरता बढती चली गयी, तथा अकाल की परिस्थिति का सामना करने की हमारी समर्थ्य कम होती गयी।[2]

सन् १८५४ और १९०० के बीच में दुर्भिक्ष के कारण सवा दो करोड से अधिक भारतीय मौत के शिकार हो गये। सन् १८७८ में अकाल कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में स्वीकार किया कि "भारतीय जनता की घोर दरिद्रता तथा अकाल की विपत्ति, दोनो का कारण यही है कि अधिक जनसंख्या की जीविका केवल खेती से चलती है, और तब तक इन विपत्तियो से छुटकारा पाने का उपाय नही हो सकता, जब तक कि भिन्न-भिन्न प्रकार के उद्योगो का प्रसार नही किया जाता, जिनके द्वारा अधिक जनसख्या खेती के अतिरिक अन्य व्यवसायो और उद्योगो से भी अपनी जीविका चला सके।" कमीशन का सुझाव था कि "खेती के अतिरिक्त अन्य व्यवसायो की उन्नति की जाय, जिनपर ऋतुओ के परिवर्तन

---

१ प्रोसीडिंग इण्डियन लेजिस्लेटिव कौसिल, सन्।

२ इडस्ट्रियल कमीशन रिपोर्ट, सन् १९१८, मालवीयजी का नोट।

का कुछ भी प्रभाव न पड़ता हो"। सरकार ने कमीशन की सिफारिश की उपेक्षा करते हुए स्वतंत्र व्यापार की नीति के नाम पर उन आर्थिक नीतियो को चालू रखा जो भारत के औद्योगिक विकास में बाधक थी। पर मालवीयजी प्रभृति राष्ट्रीय नेताओ ने कमीशन की इस समीक्षा और सुझाव की सत्यता स्वीकार की।[१]

मालवीयजी की धारणा थी कि "शुद्ध कृषिप्रधान देश व्यवसायी और उद्योग-धन्धी देश की अपेक्षा कभी अधिक समुन्नत और आत्मसंरक्षण के योग्य नही हो सकता।" पर वे वैज्ञानिक वैरन लिविंग के इस विचार से भी सहमत थे कि "सर्वांगपूर्ण कृषि सभी व्यापार तथा व्यवसाय की जननी है तथा राज्य की समृद्धि का आधार है", और स्वीकार करते थे कि "भारत की आर्थिक उन्नति का कृषि-व्यवसाय की उन्नति से गहरा सम्बन्ध है।" इस तरह वे औद्योगिक विकास और कृषि-व्यवसाय की उन्नति, दोनो चाहते थे।[२] उन्हें अपने देश के पुराने शिल्पकारो की कारीगरी पर गर्व, तथा पुराने कुटीर उद्योगो की क्षति पर दु:ख था। वे उनका पुनरुज्जीवन करना चाहते थे। पर उनकी धारणा थी कि उनके पुनरुत्थान से ही काम नही चल सकता। इस मशीनयुग में वे मशीनों द्वारा सचालित वडे उद्योगों को स्थापित करना देश की आर्थिक प्रगति के लिए नितान्त आवश्यक समझते थे। इस तरह न्यायाधीश महादेव गोविन्द रानडे की तरह मालवीयजी भी एक ऐसी सन्तुलित आर्थिक नीति और व्यवस्था के पक्ष मे थे जिसके द्वारा कृषि-व्यवसाय समृद्ध हो, पुराने कुटीर उद्योगो का पुनरुत्थान हो, तथा आधुनिक औद्योगिक तकनीक के आधार पर देश का उद्योगीकरण हो सके। वे इस देश को फिर से कृषि-प्रधान और उद्योग-प्रधान, दोनो वना देना चाहते थे।

उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम चरण में न्यायाधीश रानडे ने अंग्रेज अर्थशास्त्रियो के स्वतंत्र व्यापार के सिद्धान्त को अपरिवर्तनशील और निर्विवाद वैज्ञानिक सिद्धान्त स्वीकार करने से इनकार कर दिया। उन्होने अर्थतन्त्र का ऐतिहासिक विश्लेषण करते हुए वताया कि आर्थिक नियम समाज की ऐतिहासिक परिस्थितियो से संबंधित होते है। वे देशकालानुकूल निर्धारित होते हैं। प्रत्येक राष्ट्र का अपना अर्थतन्त्र होता है, उसे अपनी स्थिति के अनुकूल आर्थिक नीति और व्यवस्था निर्धारित करनी होती है। स्वतंत्र व्यापार की सार्थकता भी

१. प्रान्तीय कौंसिल में भाषण, सन् १९०६।
२. वही, सन् १९०७।

परिस्थिति पर निर्भर होती है, हर स्थिति में वह लाभदायक सिद्ध नही हो सकती। किन्ही परिस्थितियो में आर्थिक उत्थान के लिए सरकार द्वारा उद्योगो का संरक्षण और प्रोत्साहन आवश्यक और लाभप्रद हो सकता है।

मालवीयजी इस विश्लेपण को मूलत. स्वीकार करते थे। उन्होने सन् १९०७ में रूस के तत्कालीन अर्थ-सचिव काउण्ट डिविटे के कतिपय वाक्यो को उद्धरित करते हुए इसकी पुष्टि की। उन्होने बताया कि काउण्ट के विचार में "समस्त संसार के लिए प्रवेश मार्ग को उन्मुक्त कर स्वतत्र व्यवसाय जनता को विशेष प्रकार से सस्ता माल प्रदान करता है, किन्तु राष्ट्रो की आर्थिक उन्नति का इतिहास कठिनता से ऐसा उदाहरण उपस्थित करता है, जहाँ इस प्रकार की नीति ने राष्ट्र की उत्पादक शक्ति में प्रगति प्रदान की हो। इंग्लैड ने स्वय कडे संरक्षणो द्वारा अपना व्यवसाय स्थापित किया है, और जव इस उपाय से वह अन्य राष्ट्रो की अपेक्षा व्यापार और व्यवसाय में सबल हो गया और उसे किसी प्रतिस्पर्धा का भय नही रह गया, तव उसने स्वतंत्र व्यवसाय नीति का अवलम्वन किया।"[1] मालवीयजी ने जान स्टूअर्ट मिल के इस विचार को भी दोहराते हुए कि किन्ही परिस्थितियो में उन नये उद्योगो को अस्थायी सरक्षण दिया जा सकता है जिनके निर्माण के लिए देश में पर्याप्त प्राकृतिक साधन उपलब्ध हो, उद्घोपित किया कि "सिद्धान्त की वात अलग रखिये, न तो सरक्षण, न स्वतत्र व्यवसाय ही प्रत्येक देश के लिए प्रत्येक दशा मे उन्नति के लिये आवश्यक है। जहाँ इग्लैंड जैसे उद्योग धन्धो में समुन्नत देश के लिए स्वतत्र व्यवसाय अनुकूल है, वहाँ "व्यवसाय में अनुन्नत भारत के समान देश के लिए संरक्षण की नीति बुद्धिमानी और रक्षा की नीति है"।[2] इस तरह आर्थिक विकास के लिए मालवीयजी आयात प्रतिरोधक शुल्क द्वारा भारतीय उद्योगो के संरक्षण के पक्ष में थे।

वे आयात प्रतिरोधक शुल्क के अतिरिक्त दूसरे सम्भव उपायो द्वारा भी देश के उद्योग, व्यवसाय और व्यापार का सरक्षण और संवर्धन सरकार का कर्तव्य समझते थे। वे चाहते थे कि सरकार सक्रिय रूप से देश की आर्थिक उन्नति को प्रोत्साहित करे, तथा कृषको, औद्योगिको और व्यापारियो की यथोचित सहायता कर प्रगति में वाधक कठिनाइयाँ दूर करे, एवं जनकल्याण की रक्षा और वृद्धि के लिए आर्थिक व्यवस्था और क्रियाकलापो का नियमन और नियंत्रण करे।[3]

---

१ प्रान्तीय कौंसिल में भाषण, सन् १९०७।
२. प्रोसीडिंग इण्डियन लेजिस्लेटिव कौंसिल सन् १९११।
३ वही सन् १९१५।

रेलो का राष्ट्रीयकरण, राज्य द्वारा सिचाई के साधनों का विस्तार, कानून द्वारा श्रमिको के हितो का संरक्षण, और सुखसुविधाओ का प्रबन्ध, ऊँची से ऊँची कृषि शिक्षा तथा व्यापारिक शिक्षा और आधुनिक शिल्पविज्ञान की शिक्षा की राज्य द्वारा व्यवस्था, देश के आर्थिक उत्कर्ष के निमित्त विश्वविद्यालयों में व्यावसायिक और वैज्ञानिक अनुसंधान का समुचित प्रवन्ध, सहकारी सस्थाओ द्वारा जनोपयोगी सेवाओ का विस्तार, राज्य द्वारा स्टेट बैंक की स्थापना, रिजर्व बैंक का शेयर-होल्डर बैंक के बजाय स्टेट बैंक के रूप मे गठन, और उसके द्वारा राजकोष का औद्योगिक उन्नति में उपयोग, तथा राष्ट्रहित में सम्पत्ति का नियमन—मालवीयजी के कतिपय महत्त्वपूर्ण आर्थिक सिद्धान्त थे ।

वे कम्यूनिजम के सिद्धान्त को "सत्य, न्याय, धर्म तथा प्राकृतिक नियम के विरुद्ध" मानते थे[1], पर वे कम्यूनिस्टो के इस विचार से सहमत थे कि समाज का ऐसा निर्माण किया जाय कि समाजसेवा में संलग्न सब श्रमिक उचित ढंग से सुखपूर्वक जीवन विताने योग्य पारिश्रमिक प्राप्त कर सकें, सवको जीवनोत्कर्ष की सुविधाएं प्राप्त हो ।[2] उनकी धारणा थी कि आर्थिक अन्याय, दमन और शोषण को मिटाकर ही, जनसाधारण की आर्थिक दशा सुधार कर ही, उनके जीवनस्तर को ऊँचा करके ही कम्यूनिजम से राष्ट्र की रक्षा की जा सकती है ।[3]

वे सविधान द्वारा सम्पत्ति के अधिकार का संरक्षण आवश्यक समझते थे । उनके विचार में सम्पत्ति की ऐसी व्यवस्था हो कि कोई व्यक्ति सरकार द्वारा मनमाने ढंग से अपनी निजी सम्पत्ति से, अपने न्यायसंगत अधिकार से, वंचित न किया जा सके , राष्ट्रहित में पारित कानून द्वारा ही निजी सम्पत्ति का नियमन हो सके, सरकार उसे अधिग्रहण कर सके ।[4]

इस तरह मालवीयजी सामाजिक न्याय के आधार पर मिश्रित अर्थतन्त्र द्वारा जनहितकारी औद्योगिक व्यवस्था प्रतिष्ठित करना चाहते थे । उनकी इच्छा थी कि देश की आर्थिक उन्नति के निमित्त निजी देशज उद्योगों का आयात शुल्क द्वारा संरक्षण हो, भारतीय पूंजीपतियो और शिल्पकारो को नये नये उद्योगों को चालू करने के लिए प्रोत्साहित किया जाय, श्रमिको के हितो और अधिकारों की समुचित रक्षा की जाय, उन्हें माननोचित वेतन दिलाने का प्रबंध किया

१. भारतीय लेजिस्लेटिव असेम्बली में भाषण, सन् १९२८ ।
२. भारतीय लेजिस्लेटिव असेम्बली में भाषण सन् १९२९ ।
३ वही ।
४. सर्वदलीय कांफरेन्स, कलकत्ता अधिवेशन सन् १९२८ ।

जाय, देशहित की दृष्टि से यथावश्यक निजी व्यापार के क्षेत्र में सहकारीकरण प्रोत्साहित किया जाय, सार्वजनिक क्षेत्र में बृहद् उद्योगो तथा अन्य वित्तीय संस्थानो का गठन किया जाय, तथा उद्योगीकरण के निमित्त सरकार द्वारा समुचित व्यवस्था की जाय, एवं आर्थिक व्यवस्था से संबंधित सभी लोग न्यासिता की भावना से अनुप्राणित हो, देश के सारे भौतिक वैभव को राष्ट्र की सम्पत्ति और धरोहर समझ सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वाह करें, वही करें जो राष्ट्रहित में हो। वे चाहते थे कि "धनी लोग यह समझें कि ईश्वर ने जो धन दिया है, वह मेरा नही है, किन्तु उसी का है, और उसी के प्राणियो की सहायता के लिए उसे व्यय करना चाहिए।"[1]

मालवीयजी के विचार व्यक्तिवादी पूंजीपतियो और समाजवादी विचारको, दोनो से भिन्न थे। वे पूंजीपतियो के मुक्त-व्यापार (फ्री इण्टरप्राइज) के सिद्धान्त को मानने को तैयार नही थे। उनकी राय में राष्ट्रहित, श्रमिक क्षेम, और जनकल्याण की दृष्टि से निजी उद्योगो और व्यवसायो का सरकार द्वारा नियंत्रण और नियमन अनिवार्य और आवश्यक है। मालवीयजी मजदूर नेता श्री एन० एम० जोशी से सहमत थे कि निजी उद्योगो के संरक्षण के निमित्त आयात शुल्क का प्रबन्ध करते समय केन्द्रीय असेम्बली को मजदूरो के हितो के सरक्षण की भी व्यवस्था करनी चाहिए। वे चाहते थे कि छोटे-छोटे बच्चो और स्त्रियो के हितो की रक्षा का विशेष प्रबन्ध किया जाय, और अर्धदासता की स्थिति से मजदूरो को तुरन्त मुक्त किया जाय।

मालवीयजी कम्यूनिस्टो और समाजवादियो की इस धारणा से सहमत थे कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सब आवश्यकताओ की समुचित पूर्ति के अनुरूप पुरस्कार मिलना चाहिए, जब तक वह व्यक्ति अपनी योग्यताओ के अनुसार और ईमानदारी के साथ समाज के लिए काम करता है।[2] वे मजदूरो को उनके व्यक्तित्व और क्षमता के विकास की पूरी सुविधा दिये जाने के भी समर्थक थे। उनकी धारणा थी कि अन्य व्यक्तियो और जन-समूहो की तरह मजदूरो को भी संस्था संगठित करने का, सभा और प्रदर्शन आयोजित करने का, अपने विचारो को प्रकाशित करने तथा भाषण देने का, और अपने साथियो के साथ हडताल करने का न्यायसंगत और युक्ति-संगत अधिकार है।[3]

---

१. अभ्युदय, २६ मार्च सन् १९०९।

२. भारतीय लेजिस्लेटिव असेम्बली में भाषण, सन् १९२९।

३ वही।

रिजर्व बैंक की भावी व्यवस्था के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए मालवीयजी ने कहा था कि 'स्टेट बैंक' भारत की सारी जनता का बैंक होगा, भारत की सम्पूर्ण जनता उसकी पूँजी की मालिक होगी, जो कुछ नफा उसे प्राप्त होगा, वह सरकार द्वारा भारत की सारी जनता में विभाजित किया जायगा। जबकि शेयर होल्डर्स बैंक मुट्ठी भर धनियो की सम्पत्ति होगा, उनके हित में ही उसका संचालन होगा।[1]

सन् १९१८ में इस बात पर आग्रह करते हुए कि भारत सरकार सब रेलों का प्रबन्ध अपने हाथ में ले, मालवीयजी ने कहा कि कम्पनी की तुलना में राज्य द्वारा प्रबन्ध अधिक लाभदायक होगा, क्योकि वह भारत सरकार के अधीन होगा, जिसे जनता के प्रतिनिधि प्रभावित कर सकेंगे, राज्य का प्रबन्ध जनता के हित में होगा, जबकि मुनाफा ही कम्पनी के प्रबन्ध का लक्ष्य है, राज्य द्वारा प्रबन्धित रेलवे में जो नफा होगा वह जनता के लाभ के लिए या करो के घटाने में खर्च होगा, कम्पनियों की विवेकहीन बातों और हुज्जतो से छुटकारा मिलेगा और राज्य प्रबन्ध निष्पक्ष और सस्ता होगा।[2]

इन सबसे यह स्पष्ट है कि मालवीयजी मुट्ठी भर पूँजीपतियो के एकाधिपत्य, पूँजीवादी इजारादारी के विरोधी थे, और उनकी तुलना में राष्ट्रीयकरण को अधिक जनहितकारी समझते थे। पर इसका यह अर्थ नही कि वे कम्यूनिज्म या समाजवाद की सब मूलभूत धारणाओ को स्वीकार करते थे। उन्हें कम्यूनिस्टो द्वारा प्रतिपादित इतिहास की भौतिक व्याख्या, सर्वहारा वर्ग की तानाशाही की धारणा, तथा हिंसात्मक ढंग से पूजीपतियो की निजी पूँजी और सम्पत्ति का अपहरण ठीक नही जंचते थे। उनके विचार में राष्ट्रहित की दृष्टि से कानून द्वारा मुआवजा देकर विधिवत् निजी सम्पत्ति या उद्योगो का अधिकरण ही न्याय-संगत और उचित है। इसी तरह वे मजदूरो के हड़ताल के अधिकार को स्वीकार करते थे, पर वर्ग-संघर्ष को तीव्र करने के बजाय समझौते द्वारा मजदूरो के हितो को पुष्ट करना ही वे उचित समझते थे। समाजवादियो की लोकतान्त्रिक धारणा तथा व्यक्ति-स्वातंत्र्य के प्रति उनकी निष्ठा मालवीयजी स्वीकार करते थे, पर पूंजीपतियो के सभी निजी उद्योगो के राष्ट्रीयकरण की कल्पना उन्हें अव्यावहारिक और अनुचित प्रतीत होती थी। वे राष्ट्रीयकृत उद्योगो

---

१ भारतीय लेजिस्लेटिव असेम्बली में भाषण, सन् १९२८।

२ भारतीय लेजिस्लेटिव कौंसिल प्रोसीडिंग्स, सन् १९१८, जि० ५६, पृ० १०९।

और निजी उद्योगो का सन्तुलित विकास ही राष्ट्र के हित में समझते थे। वे चाहते थे कि भारतीय पूजीपति भी न्यासिता की भावना से अनुप्राणित हो, अपने कौशल और क्षमता द्वारा देश के आर्थिक विकास में समुचित योगदान करें।

मालवीयजी चाहते थे कि भारतीयो द्वारा भारत के हित में, भारत के गौरव और समृद्धि की वृद्धि के निमित्त ही देश का औद्योगिक विकास हो।[1] उनकी इच्छा थी कि भारतीय उद्योग मूलतः भारतीय औद्योगिको, विशेषज्ञों तथा अधिकारियो द्वारा भारतीय पूंजी और श्रमिको के सहयोग से संचालित हो, विदेशी पूंजी और विदेशी विशेषज्ञो का योगदान यथासंभव गौण हो। उनका कहना था कि यथावश्यक विदेशी पूंजी तथा विदेशो विशेषज्ञो का प्रयोग एक बात है, और देश के औद्योगिक जीवन को विदेशियो के हाथ मे सौंप देना दूसरी वात है।[2] जहाँ किसी स्थिति मे पहली चीज अनिवार्य और लाभप्रद है, वहाँ दूसरी चीज निश्चय ही भयावह और हानिकर है। इस भय से कि कही वित्तीय सरक्षण से लाभ उठाकर विदेशी व्यापारी इस देश में अपना औद्योगिक आधिपत्य न स्थापित कर लें, मालवीयजी चाहते थे कि विदेशी पूजी के प्रवेश, और विदेशी पूंजोपतियो के औद्योगिक और वित्तीय प्रयासो पर भारत सरकार का समुचित नियमन और नियंत्रण हो। जिस अश में और जिन शर्तो के साथ ये प्रयास भारत के हित में हो, उन्ही के साथ उनका योगदान स्वीकार किया जाय।

मालवीयजी भारत में चालू विदेशी उद्योग व्यापार के सम्वन्ध में यह आश्वासन दिये जाने के पक्ष मे थे कि कोई ऐसा कानून या आदेश जारी नही किया जायगा जो समान रूप से भारतीय उद्योगो और व्यापारो पर लागू न हो। पर वे यह आश्वासन देने को तैयार नही थे कि किसी प्रकार का भेदमूलक कानून पारित नही किया जायगा। उनका कहना था कि "भारत में व्यापार करनेवाले विदेशी और अंग्रेज अपने व्यापारो की रक्षा मागने के हकदार हैं, पर वे भारत में भारतीय देशज उद्योगो के समान सहायता और संरक्षण के अधिकारी नही हैं।"[3] उनका कहना था कि देशी उद्योगो को प्रोत्साहित करने के लिए जो भी सहायता दी जाती है, उसका भार जनता को वहन करना होता है जिसे वह राष्ट्र के हित में वहन कर सकती है, पर विदेशी उद्योगो को वही सहायता देकर भारतीय जनता को विदेशियो के हित में भार वहन करने को बाध्य नही किया जा सकता।[4]

---

१. इंडस्ट्रियल कमीशन रिपोर्ट, मालवीयजी का नोट।
२. राउंड टेबिल काफरेन्स के दूसरे सत्र में भाषण।
३. वही। ४. वही।

भूमि-व्यवस्था के सम्बन्ध में मालवीयजी के विचार किसी हद तक समकालीन कांग्रेसी नेताओ के विचारो के अनुकूल थे। अन्य नेताओ की तरह मालवीयजी भी मालगुजारी के स्थायी बन्दोवस्त के पक्ष में थे। पर वे बंगाल के ढंग के स्थायी बन्दोवस्त के पक्ष मे नही थे। मालवीयजी किसानों के अधिकारो और हितों की समुचित रक्षा पर जोर देते थे। वे चाहते थे कि किसानो पर से लगान का बोझ कम किया जाय, उसे पच्चीस तीस प्रतिशत घटा दिया जाय, ताकि किसान अपने श्रम के लाभ का अधिक उपभोग कर सकें, तथा घटाये हुए लगान के आधार पर लगान व्यवस्था का तथा किसानो के अधिकारो का स्थायी बन्दोवस्त किया जाय. और इस तरह किसानो के हितों की पूरी तौर पर रक्षा करते हुए मालगुजारी का स्थायी बन्दोवस्त किया जाय।[1]

मालवीयजी को यह उत्कट इच्छा थी कि किसानो में आत्मसम्मान, आत्मनिर्भरता और मानवगौरव की भावना पुष्ट की जाय। सरकारी अफसरो और कर्मचारियो तथा जमीदारो और उनके कारिंदो की ओर मुंह उठाकर देखने की उनमें शक्ति पैदा की जाय। उन्हे वताया जाय कि उन्हे नागरिकता के वे सब अधिकार प्राप्त है जो उनसे अधिक सम्पन्न भारतीय नागरिको को प्राप्त हैं।[2] मालवीयजी की इच्छा थी कि किसान स्वयं अनुभव करें कि राष्ट्रकल्याण की पुष्टि और वृद्धि में उनका योगदान महत्त्वपूर्ण है, उन्हें समाज में सम्मानित स्थान प्राप्त करने का तथा सुखी उत्कृष्ट जीवन विताने का नैतिक अधिकार है, और अपने लोकतान्त्रिक अधिकारो का प्रयोग कर वे अपने न्यायसंगत हितो की पुष्टि और वृद्धि कर सकते हैं, अपने भाग्य के विधाता और राष्ट्र के निर्माता बन सकते है। यद्यपि मालवीयजी ने जमीदारी-उन्मूलन की कोई चर्चा स्वय कभी नही की पर दिसम्वर सन् १९२८ मे सर्वदलीय सम्मेलन के कलकत्ता अधिवेशन में उन्होने स्वीकार किया कि भारतीय विधान सभाएं यदि चाहें तो न्याय की प्रतिष्ठा तथा देश के हित में कानून द्वारा मुआवजा देकर जमीदारी का उन्मूलन कर सकती है।[3]

●

---

१. प्रान्तीय कौंसिल में भाषण, सन् १९०८।

२. एग्रीकल्चरल कमीशन के सामने गवाही, सन् १९२७।

३. सर्वदलीय कान्फरेन्स कलकत्ता अधिवेशन, सन् १९२८।

२८. जीवन का सर्वांगीण विकास

जीवन का सर्वांगीण विकास मालवीयजी की शिक्षा-पद्धति का मूलमन्त्र था। वे चाहते थे कि विद्यार्थियो के लिए शिक्षा का ऐसा प्रवन्ध हो कि वे अपनी शारीरिक, बौद्धिक तथा भावात्मक शक्तियो को परिपुष्ट और विकसित कर सकें, और आगे चल कर किसी व्यवसाय द्वारा सच्चाई और ईमानदारी से अपना जीवन निर्वाह कर सकें, कलापूर्ण और सौन्दर्यमय जीवन व्यतीत कर सकें, समाज में आदरणीय और विश्वासपात्र बन सकें, तथा देशभक्ति से, जो मनुष्य को उच्चकोटि की सेवा करने की ओर प्रवृत्त करती है, अपने जीवन को अलकृत कर राष्ट्र की समुचित सेवा कर सकें।

मालवीयजी शिक्षा को मानव मात्र का अधिकार, तथा उसका समुचित प्रवन्ध राज्य का कर्तव्य समझते थे। वे चाहते थे कि राष्ट्रीय प्रणाली के आधार पर प्रारम्भिक और माध्यमिक स्कूलो में सर्वसाधारण के लिए शिक्षा नि.शुल्क दी जाय, जो अनिवार्य भी हो। उनका कहना था कि सब स्तर पर शिक्षा का ऐसा प्रवन्ध हो कि कोई बच्चा निर्धन होने के कारण उससे वचित न रह पाये[1]। वे बम्बई के भूतपूर्व गवर्नर एलफिन्स्टन की इस बात से सहमत थे कि "गरीबो की सुख शान्ति वहुत हद तक शिक्षा पर निर्भर है। इसके जरिये ही वे विवेक और आत्मसम्मान का स्वभाव प्राप्त कर सकते है जिससे सब गुण विकसित होते हैं।"[2] उनकी धारणा थी कि शिक्षा का व्यापक विस्तार समाज में फैली बहुत-सी विषमताओ और कुरीतियो को दूर करके छोटी जातियो का जीवन स्तर ऊँचा उठा देगा, और समाज में सम्मानित स्थान प्राप्त करना उनके लिए सुलभ हो जायगा। उन्होने सन् १९२७ में असेम्बली में लाला लाजपतराय के इस सुझाव का समर्थन किया था कि राजकोष से प्रतिवर्ष एक करोड रुपया हरिजन विद्यार्थियो की शिक्षा पर खर्च किया जाय, और अपने काशी विश्वविद्यालय में उन्होने प्रारम्भ से ही हरिजन विद्यार्थियो के लिए शिक्षा नि शुल्क कर दी थी।

मालवीयजी स्त्री-शिक्षा का समुचित प्रवन्ध भी समाज का पुनीत कर्तव्य समझते थे। उनका कहना था कि पुरुषो की शिक्षा से स्त्रियो की शिक्षा अधिक

---

१. भारतीय लेजिस्लेटिव कौंसिल में भाषण।

२. प्रान्तीय लेजिस्लेटिव कौंसिल में भाषण, सन् १९०४।

महत्त्वपूर्ण है, क्योकि वे ही भारत की भावी सन्तानो की माताएँ हैं। वे हमारे भावी राजनीतिज्ञो, विद्वानो, तत्त्वज्ञानियो, व्यापार तथा कलाकौशल के नेताओ आदि की प्रथम शिक्षिकाएँ है। वे चाहते थे कि एक राष्ट्रीय कार्यक्रम के आधार पर स्त्रियो को इस तरह शिक्षित किया जाय कि उनमें "प्राचीन तथा नवीन सभ्यताओ के सभी सद्गुणो का समन्वय हो, और जो अपनी शिक्षा द्वारा भावी भारत के पुनर्निर्माण में पुरुषो से पूर्णरूप से सहयोग कर सकें।" सन् १९११ में गोखले के विधेयक पर बोलते हुए उन्होने कहा था, "समाज के आधे भाग को ज्ञान की ज्योति से तथा उस उत्कृष्ट जीवन से जो ज्ञान द्वारा सम्भव है, वंचित रखना बहुत दुःखदायी बात होगी।"[1]

उनके विचार में विद्यार्थियो का चरित्रगठन शिक्षा का प्राथमिक लक्ष्य है। सज्जनताविहीन ज्ञान, उनकी दृष्टि में, निरर्थक है। वे जीवनोत्कर्ष और राष्ट्र की उन्नति, दोनो के लिए चरित्रगठन को बौद्धिक तथा व्यावसायिक विकास से कही अधिक आवश्यक समझते थे। उनकी तो धारणा थी कि "पारस्परिक सद्भाव तथा सहयोग के बिना व्यावसायिक उन्नति हो ही नही सकती, और जीवन मे सद्भाव और सहयोग को विकसित करने के लिए चरित्र का गठन आवश्यक है।" उनके विचार में चरित्र ही मनुष्य को बनाता है, सदाचार मनुष्य का परम धर्म है, उसकी रक्षा मनुष्य का पुनीत कर्तव्य, तथा उसकी वृद्धि उसका परम पुरुषार्थ है। मालवीयजी का कहना था कि "राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को आचार के ही शासन से सदा शासित तथा प्रभावित रहना चाहिए, तभी उनमें विश्वास, मृदु भाषण तथा व्यवहार की सच्चाई और सद्गुणो का विकास हो सकता है।"

आचरण की शुद्धि, पुष्टि और परिपक्वता के लिए मालवीयजी धर्म, नागरिकता और नैतिकता की शिक्षा आवश्यक समझते थे। उनकी धर्म की व्याख्या नैतिकता से ओतप्रोत और नागरिकता से समन्वित थी। वे देशभक्ति को धर्म का महत्त्वपूर्ण अङ्ग स्वीकार करते थे।[2] उनकी नैतिकता बहुत अंशो में धर्मग्रन्थो में प्रतिपादित नैतिक आदेशो पर आश्रित थी। आत्मोपम्य व्यवहार तथा निःस्पृही लोकसेवा उसके सर्वोत्तम सद्गुण थे, और ये दोनो श्रीमद्भगवत्गीता द्वारा प्रतिपादित समत्व, निष्काम सेवा तथा ईश्वरार्पण सत्कर्म के सिद्धान्तो पर आधारित थे। उनकी नागरिकता की व्याख्या

---

१. गवर्नर-जनरल की कौंसिल, जि० ४९, पृ० ४६९।
२. अभ्युदय

लोकतान्त्रिक थी। वह पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रतिपादित लोकतान्त्रिक सिद्धान्तो पर आधारित थी। उनके विचार जड़ता से रहित और आधुनिकता से प्रभावित और समन्वित थे। उनकी मूलधारणाएँ निर्विवाद थी। सद्भावनाओ से अनुप्राणित, सदाचार से विभूषित जीवन ही आत्मोत्कर्ष और जनकल्याण का उत्तम साधन हो सकता है। देशप्रेम की शिक्षा ही राष्ट्र का उद्धार कर सकती है। निःस्पृह देशभक्त ही राष्ट्र की सच्ची ठोस सेवा कर सकता है। लोकतान्त्रिक नागरिकता के मूल सिद्धन्तो पर आधारित लोकतान्त्रिक चरित्र और व्यवहार ही लोकतन्त्र को स्थायी, सुदृढ और जनोपयोगी बना सकता है।

मालवीयजी के विचार में मानव के सर्वांगीण विकास तथा उत्कृष्ट आनन्दमय जीवन के लिए विकासोन्मुखी व्यापक शिक्षा तथा चरित्रगठन के साथ-साथ स्वस्थ निर्मल जीवन, ज्ञान-विज्ञान का विस्तार, ललित कलाओ के प्रति अभिरुचि, तथा सुख साधन की भौतिक सुविधाएँ भी आवश्यक हैं। स्वास्थ्य की रक्षा, शारीरिक शक्ति की पुष्टि वे मानव का पुनीत कर्तव्य मानते थे। वे शरीर की रक्षा और पुष्टि के लिए "युक्त आहार विहार" तथा "ब्रह्मचर्य" और व्यायाम आवश्यक समझते थे। वे चाहते थे कि प्रत्येक विद्यार्थी पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करे, तथा नित्य नियमित रूप से व्यायाम करे। उनका कहना था कि "ब्रह्मचर्य ही हमें वह आत्मबल देता है जिसके द्वारा हम संसार में सब कष्टो और बाधाओ का साहस के साथ सामना कर सकते है।"[1] वे प्रत्येक विद्यालय में व्यायाम के साधनो का समुचित प्रबन्ध आवश्यक समझते थे। उनके विचार में कतिपय प्राचीन और अर्वाचीन क्रीडा और व्यायाम के उपकरण स्वास्थ्य की रक्षा और शरीर की पुष्टि के साथ-साथ मनोरंजन तथा पारस्परिक सद्भाव और सहयोग की क्षमता की वृद्धि के उत्तम साधन भी बन सकते है, और उनका प्रबन्ध विशेष रूप से वाञ्छनीय है।

मालवीयजी यह भी चाहते थे कि विद्यालयो में संगीत, काव्य, नाट्यकला, चित्रकला, वास्तुकला तथा मूर्ति-कला आदि ललित कलाओ की शिक्षा का भी प्रबन्ध हो, और उनमें से कम से कम किसी एक कला में विद्यार्थी अवश्य ही दिलचस्पी ले। उनके विचार में कला-विहीन जीवन शुष्क और नीरस है, जबकि ललित कलाओं का ज्ञान, उनको परखने की क्षमता, तथा शुद्ध भावनाओ के साथ उनके प्रति अभिरुचि, और समयानुकूल उनका अभ्यास जीवन को सरस और आनन्दमय बनाता है।

मालवीयजी को अपने पूर्वजों की सास्कृतिक देन पर गर्व था। वे चाहते थे कि भारतीय संस्कृति, इतिहास, साहित्य, दर्शन तथा अन्य भारतीय विद्याओ के अध्ययन, अध्यापन तथा अनुसन्धान का समुचित प्रवन्ध हो, तथा सब विद्यार्थियो को उनकी रूपरेखा की जानकारी करायी जाय। उनकी धारणा थी कि वह शिक्षा-पद्धति अपूर्ण ही नही, निरर्थक और हानिकर है जिसके द्वारा नवयुवक को अपने देश और समाज की वौद्धिक समृद्धि की ठीक ठीक जानकारी न हो सके। उनके विचार में वह व्यक्ति क्या शिक्षित है, जिसका जीवन अपने पूर्वजो के सद्‌गुणो से अनुप्राणित नही, जिसे अपने पूर्वजो की महत्त्वपूर्ण देन का कोई ज्ञान नही, जिसे अपने देश के इतिहास की सही-सही जानकारी नही, जिसमें अपने जीवन को जनता से आतमसात करने की क्षमता नही। यद्यपि मालवीयजी भारतीय वाङ्मय का अध्ययन अध्यापन, पूर्वजो की कीर्ति की रक्षा और पुष्टि सामाजिक उन्नति के लिए आवश्यक समझते थे, उनका सास्कृतिक दृष्टिकोण, उनकी वौद्धिक मान्यताएँ व्यापक और उदार थी। वे ज्ञान को किसी विशिष्ट जाति या देश की वपौती नही समझते थे। वे यह कभी नही मानते थे कि हमारे पास सब कुछ है, हमें दूसरो से कुछ लेना नही है। वे स्वीकार करते थे कि हमारे पूर्वजो की तरह दूसरे देश के विद्वानो ने भी अपनी प्रतिभा और योग्यता से ससार को अलंकृत किया है। सव विद्वानो का आदर तथा ज्ञान का आदान-प्रदान वे मानव प्रगति और राष्ट्र की उन्नति के लिए आवश्यक समझते थे। वे दूसरे देशो के विद्वानो के युक्तियुक्त समाजोपयोगी विचारो को ग्रहण करने को सदा तैयार रहते थे। वे मनु, भीष्म, वशिष्ठ, शुक्र आदि विद्वानों के इस विचार से सहमत थे कि हमे अपने गुरुओ और पूर्वजो के सद्‌गुणो को ग्रहण करते हुए सव विद्वानो के युक्तियुक्त विचारो को, शुभ ज्ञान को विनयपूर्वक स्वीकार करना चाहिए, उनका अध्ययन अध्यापन करना चाहिए।

इस तरह मालवीयजी भारतीय विद्यार्थियो के लिए प्राचीन भारतीय दर्शन, साहित्य, संस्कृति और अन्य विद्याओ के साथ-साथ अर्वाचीन नीतिशास्त्र, समाज-विज्ञान, मनोविज्ञान, विधिविज्ञान, अर्थशास्त्र और राजनीति का अध्ययन आवश्यक समझते थे। वास्तव में वे इन सब विषयो के प्राचीन भारतीय और अर्वाचीन पाश्चात्य विद्वानो के विचारों का तुलानात्मक और समन्वयात्मक अध्ययन आवश्यक समझते थे। वे विश्वज्ञान का समन्वय, तथा विश्व के विद्वानों के सहयोगात्मक प्रयासो को मानव उन्नति के लिए आवश्यक समझते थे।

मालवीयजी विज्ञान के प्रयोगात्मक और व्यावहारिक पक्ष के बहुत प्रशसक थे। उन्हें इस बात की खुशी थी कि विज्ञान के विद्यार्थियो को शब्द-प्रमाण

के आधार पर पाठ्यपुस्तको द्वारा ही विज्ञान की शिक्षा नही दी जाती, बल्कि प्रचलित सिद्धान्तो और संचित अनुभवो की सच्चाई प्रयोगशाला में वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा सिद्ध करवायी जाती है, और निजी अनुभवो द्वारा उन सिद्धान्तो को संशोधित तथा नये सिद्धान्तो को प्रतिपादित करने के लिए विद्यार्थियो को प्रोत्साहित किया जाता है। वे हारवर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर विलियम जेम्स से सहमत थे कि इस विधि से "लेबरेटरी वर्क और शाप वर्क प्रेक्षण का अभ्यास, यथार्थता और अस्पष्टता के अन्तर का ज्ञान, तथा प्रकृति की पेचीदगी की और वास्तविक तथ्य के सब शाब्दिक विवरणो की गलतियो की पूरी जानकारी पैदा करते है, जो एक बार बुद्धि में बैठ जाने पर आजीवन जम जाता है"।[1] ये यथार्थता प्रदान करते हैं। ये ईमानदारी देते है। ये आत्म-निर्भरता का अभ्यास (आदत) पैदा करते है। ये विद्यार्थी को उसके युग के स्वत. प्रसूत हितो से बहुत ही उचित ढग पर सलग्न कर देते है। वह उसमें तल्लीन हो जाता है और उस पर टिकाऊ और गहरा प्रभाव डाल देता है। उस युवक की तुलना में, जो इस ढग से पढाया जाता है, वह नवयुवक जो केवल पुस्तको पर पढाया लिखाया गया है, जीवन में वास्तविकता से कुछ दूर रहता है। वह एक तरह से घेरे से बाहर रहता है और इसका अनुभव करता है, और बहुधा उदासी और चिन्ता से पीडित होता है, जिससे वह अधिक वास्तविक शिक्षा द्वारा बचाया जा सकता था[2]। मालवीय जी चाहते थे कि वैज्ञानिक ढंग की शिक्षा अपने देश मे भी चालू की जाय, और प्रयोगशाला तथा वर्कशाप में विद्यार्थियो को अपने हाथो के प्रयोग का अभ्यास कराया जाय। उनके ज्ञान को प्रयोगात्मक और व्यावहारिक बनाया जाय। उनमे प्रेक्षण की शक्ति पैदा की जाय। उनके ज्ञान को यथातथ्य तथा जीवनोपयोगी बनाया जाय। उनकी धारणा थी कि भारत अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त करने मे तब तक सर्वथा असमर्थ है, जब तक वह वर्तमान वैज्ञानिक अन्वेषण का अध्ययन नियमित और अनिवार्य नही बनाता।[3] वे चाहते थे कि प्रारम्भिक विज्ञान की शिक्षा को प्राथमिक शिक्षा-पद्धति का अनिवार्य अग बना दिया जाय, तथा माध्यमिक शिक्षालयो, कालेजों और विश्वविद्यालयो में विज्ञान और वैज्ञानिक शिल्पविद्या की उच्चस्तरीय शिक्षा का समुचित प्रबन्ध किया जाय ताकि हमारा देश बौद्धिक विकास तथा व्यावसायिक उन्नति में दूसरे प्रगतिशील देशो के समकक्ष बन सके।

---

१. प्रान्तीय कौंसिल में भाषण, सन् १९०७।
२. वही।
३. सीताराम चतुर्वेदी · महामना पडित मदन मोहन मालवीय खण्ड ३, पृ० ११४।

मालवीयजी चाहते थे कि प्रत्येक जिले या कम से कम प्रत्येक कमिश्नरी में ऐसी माध्यमिक स्तर की औद्योगिक शिक्षा संस्थाएँ खोली जायें जिनमें बुनाई, रंगाई, धुलाई, वस्त्र-छपाई, लोहारी, बढईगिरी, मीनाकारी आदि की शिक्षा का प्रबन्ध हो। इन संस्थाओ में फोरमैन और उनके सहायकों के प्रशिक्षण का भी प्रबन्ध हो। वे यह भी चाहते थे कि प्रत्येक प्रान्त में एक उच्चस्तरीय औद्योगिक शिक्षा महाविद्यालय खोला जाय, जिसमें शिल्पविज्ञान सम्बन्धी विषयों की उच्चस्तरीय शिक्षा दी जाय।[1]

मालवीयजी जापान की कृषि-शिक्षा की व्यवस्था के वहुत प्रशंसक थे। उनका कहना था कि जापान में कई सौ कृषि स्कूल हैं जिनमें प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त विद्यार्थियो को खेती की प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती है, और वहुत सी माध्यमिक कृषि-शिक्षा संस्थाएं हैं जिनमें भावी कृपको को कृपि-सम्बन्धी वैज्ञानिक और व्यावहारिक शिक्षा दी जाती है। मालवीयजी चाहते थे कि इस प्रकार के कृषि-स्कूल और माध्यमिक कृषि शिक्षा-संस्थाए काफी संख्या में सारे देश में खोली जायें। वे यह भी चाहते थे कि प्रत्येक प्रान्त में टोकियो के कृषि महाविद्यालय की तरह के महाविद्यालय खोले जाये जिनमें योग्य विद्यार्थियो को कृषि विज्ञान की उच्चस्तरीय शिक्षा दी जाय, वडे पैमाने पर खेती से सम्वन्वित समस्याओ पर अनुसंधान किया जाय, तथा कृषि-शिक्षक तैयार किये जाये। वे चाहते थे कि ये कृषि महाविद्यालय विश्वविद्यालयो से सम्वन्धित हो, और कृपि-विशेषज्ञ और दूसरे विधान-विशेपज्ञ मिलकर काम करें।[2]

मालवीयजी यह भी चाहते थे कि सरकार की ओर से आधुनिक चिकित्सा विज्ञान और आयुर्वेद दोनो की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध हो, और आयुर्वेदिक औषधियों का वैज्ञानिक परिक्षण कर उनका सदुपयोग किया जाय।

अन्य देशी भापाओ के साथ-साथ सस्कृत भाषा का समुचित अध्ययन, अध्यापन भी वे आवश्यक समझते थे। उनका कहना था कि "संस्कृत भाषा संसार की समस्त भाषाओ में सर्वोत्कृष्ट है", तथा "मनुष्य के उच्चातिउच्च विचारो को सुन्दर तथा सुचारु रूप में प्रगट करने के लिये सर्वथा उपयुक्त है। वह हमारी अधिकाश देशी भाषाओ की जननी है, और उसके द्वारा ही देशी भाषाएं परिपुष्ट और समृद्ध की जा सकती है। भारतीय संस्कृति, सभ्यता और धर्म की समुचित जानकारी के लिए संस्कृत साहित्य का अध्ययन आवश्यक है।

१ प्रान्तीय कौंसिल में भाषण, सन् १९०७।
२ वही।

हिन्दुओ के लिये तो यह अनिवार्य ही है। मालवीयजी चाहते थे कि संस्कृत भाषा के अध्ययन का क्रम इतना विस्तृत कर दिया जाय कि शिक्षार्थी उसके द्वारा जाति के चरित्र को उच्च बना सकें, राष्ट्र के मानसिक विकास में सहयोग दे सकें, तथा समाजसेवा आदि कर्तव्यो को अत्यन्त सुगमता पूर्वक कर सकें ताकि संस्कृत देश के सब भागो के पठित समाज की फिर वैसी ही भाषा बन जाय जैसी वह "प्राचीन समय" में थी।

मालवीयजी चाहते थे कि 'सब प्रान्तो में अपने अपने प्रान्त की भाषा की उन्नति हो। सभी भाषाएँ शोभा के साथ प्रौढ और दृढ बनें' पर हिन्दी भाषा राष्ट्रीय भाषा के तौर पर उपयुक्त की जाए।[1] सब भाई बहिन राष्ट्रीय भाषा के गौरव को मान कर अपनी अपनी भाषा के साथ प्रत्येक बालक को हिन्दी का ज्ञान अवश्य करावें।[2]

मालवीयजी का कहना था कि "साहित्य और देश की उन्नति अपने देश की भाषा द्वारा ही हो सकती है[3]। जनता का राजकाज जनता की भाषा में ही सुचारु रूप से चल सकता है। जनभाषा ही लोकतन्त्र की भाषा हो सकती है। उस भाषा में ही जनसाधारण ठीक तौर पर ज्ञान प्राप्त कर सकते है, अपने विचार और भाव व्यक्त कर सकते हैं, राज के क्रियाकलापो में समुचित सक्रिय भाग ले सकते है। इसलिये जिस देश की जो भाषा है, उसी मे उस देश के न्याय कानून, राजकाज, कौंसिल इत्यादि का कार्य होना चाहिए"[4], और वही भाषा शिक्षा का माध्यम होना चाहिए। अतः मालवीयजी के विचार में हमें केवल स्कूलो में ही नही बल्कि विश्वविद्यालयो तथा उच्च श्रेणियो में भी देशी भाषाओ के माध्यम द्वारा शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए।[5] पर उनका यह विचार कदापि नही था कि "हम अंग्रेजी भाषा को सर्वथा त्याग दें", उनका तो कहना था कि "हमारे युवकों को विदेशी भाषाएं सीखने की आवश्यकता है और कोई विदेशी भाषा हमारे लिए उतनी लाभदायक नही हो सकती जितनी अंग्रेजी"[6]। अतः सुव्यवस्थित शिक्षा प्रणाली में अंग्रेजी को उचित स्थान मिलना

१. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, सन् १९१९, अध्यक्षीय भाषण।
२, वही।
३. वही।
४ वही।
५. काशी हिन्दू विश्वविद्यालय दीक्षान्त भाषण, सन् १९२०।
६ वही।

चाहिए।[1] किन्तु अंग्रेजी दूसरी भाषा की तरह पढाई जानी चाहिए, और उसके द्वारा युवको को शिक्षा देने की व्यवस्था बदल देनी चाहिए।[2]

जब हम किसी भाषा के विषय में कुछ कहते है तब हमें उस भाषा की लिपि का विचार स्वभावतः आ जाता है। मालवीयजी का विचार था कि हिन्दी भाषा रोमन या फारसी लिपि के बजाय नागरी लिपि में ही लिखी जाय। उनका कहना था : "भारतवासियो को अपनी भाषा विदेशी अक्षरो में लिखने को कहना वैसा ही है जैसा कि अंग्रेजो से अपनी भाषा को नागरी अक्षरो में लिखने को कहना"।

मालवीयजी सरल हिन्दी के पक्ष में थे। उनका कहना था कि "हिन्दी में फारसी-अरबी के बडे-बडे शब्दो का व्यवहार जैसा बुरा है, हिन्दी को अकारण ही संस्कृत शब्दो से गूंथ देना भी वैसा ही बुरा है। जहा तक हो हिन्दी में हिन्दी ही रखी जाय। अनावश्यक शब्दों को हिन्दी से अलग कीजिये। उर्दू और हिन्दी दोनो भाषाओ के रूप गठ बन गये है। अब इन दोनो का यथासंभव एक स्थान में लाइए। इस बात के लिए यत्न करना जैसा हिन्दुओ के लिए जरूरी है वैसा ही मुसलमानो के लिए भी आवश्यक है। दोनो ओर से यत्न होने से हम भाषा के क्रम को बहुत कुछ एक कर सकते है"।[3] वे कहते थे : "हम स्वच्छ भाषा में हिन्दी लिखें—जब भाषा में शब्द न मिलें, तब संस्कृत से लीजिए या बनाइए—हिन्दी मे जो उर्दू फारसी के शब्द आ गए है उनका व्यवहार कीजिए"।[4] मालवीयजी "अंग्रेजी भाषा और देशी भाषा दोनो भाषाओ के ग्रन्थो का हिन्दी में अनुवाद कर हिन्दी साहित्य के भण्डार को भरना चाहते थे। उनका कहना था कि हमें जगह-जगह से और विभिन्न भाषाओ से अच्छे-अच्छे विचारो को चुनना चाहिए"।[5]

मालवीयजी के विचार में विश्वविद्यालयो की तुलना हम वृक्षों से कर सकते है जिनकी जडें प्रारम्भिक पाठशालाओ की गहराई तक पहुँचती है, और जो अपना रस और शक्ति द्वितीय श्रेणी के स्कूलो से ग्रहण करते है।[6] अतः अच्छी ऊँची शिक्षा के लिए वे प्रारम्भिक तथा माध्यमिक शिक्षा की अच्छी व्यवस्था आवश्यक

---

१. वही।
२. वही।
३. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, अध्यक्षीय भाषण, १९१०।
४. वही।
५. वही।
६. काशी विश्वविद्यालय दीक्षान्त भाषण, १९२९।

समझते थे।[1] उनका सुझाव था कि इण्टरमीडियेट कक्षा के दो वर्ष की पढ़ाई सब हाई स्कूलो में की जाय, और बी० ए० की शिक्षा की अवधि तीन वर्ष कर दी जाय।[2] वे विश्वविद्यालयो को विश्व की सारी विद्याओ का ऐसा उच्चस्तरीय शिक्षा केन्द्र बनाना चाहते थे कि वहा विभिन्न विषयो के विद्यार्थी एक साथ रहते हुए पारस्परिक सम्पर्क और विचार-विमर्श द्वारा तथा विशेषज्ञो के सुबोध भाषणो द्वारा अपने विषय के अतिरिक्त अन्य विषयो का सरल ज्ञान प्राप्त करें, प्राच्य और अर्वाचीन ज्ञान का तुलनात्मक और समन्वयात्मक अध्ययन करें, तथा विभिन्न विशेषज्ञो के सहयोग से उच्चकोटि का अनुसन्धान करें, और जहाँ सम्भव हो वहा प्रयोगशालाओं में अपने विचारो की सच्चाई की परख करें एवं प्रयोगात्मक ढंग से अपने ज्ञान को वास्तविक और ठोस बनायें, उन्हे व्यवहार में लाने की अपने में क्षमता पैदा करें।

मालवीयजी का अपना काशी विश्वविद्यालय एक प्रकार से उनकी अपनी कल्पना का प्रतीक था। वह प्राच्य और अर्वाचीन विद्याओ का संगम, विश्वज्ञान का विद्या-मन्दिर था। वर्तमान सभ्यता की अनुकरणीय तथा लाभदायक बातो के साथ भारतीय सभ्यता का उचित सामजस्य उसका उद्देश्य था। प्राचीन भारतीय आयुर्वेद के साथ अर्वाचीन शल्यशास्त्र की शिक्षा का मेल, आयुर्वेदिक औषधियो का वैज्ञानिक परीक्षण तथा उनपर अनुसन्धान, विभिन्न विषयो पर प्राच्य और अर्वाचीन ज्ञान का तुलनात्मक और समन्वयात्मक अध्ययन, प्राचीन भारतीय संस्कृति, दर्शनशास्त्र, साहित्य और इतिहास के गम्भीर अध्ययन अध्यापन के साथ-साथ आधुनिक मनोविज्ञान, नीतिविज्ञान, दर्शनशास्त्र, अर्थशास्त्र राजनीति विज्ञान आदि का अध्ययन अध्यापन, वेद, वेदाग तथा सस्कृत साहित्य और वाङ्मय की शिक्षा के अतिरिक्त आधुनिक ज्ञान विज्ञान, धातुविज्ञान, खनन विज्ञान, विद्युत इंजीनियरी, यान्त्रिक इंजीनियरी, कृषि विज्ञान का अध्ययन इसकी विशेषता थी। यहाँ ईश्वरभक्ति के साथ साथ देशभक्ति की शिक्षा दी जाती थी, और विद्यार्थियो को राष्ट्र के जीवन का ज्ञान कराया जाता था, उन्हे समाज की सेवा के लिए प्रोत्साहित किया जाता था। मालवीयजी की कामना थी कि उनका विश्वविद्यालय जीवन और ज्योति का केन्द्र बने, और वहाँ के विद्यार्थी ज्ञान में संसार के दूसरे प्रगतिशील देशो के विद्यार्थियो के समान हो, तथा उत्कृष्ट जीवन विताने के योग्य बनें, देशभक्ति और भगवद्भक्ति से अपने जीवन को अनुप्राणित कर समाज की सेवा करे।

---

१. इडियन लेजिस्लेटिव कौसिल, सन् १९१४, जि० ५२, पृ० १०३२।
२. वही।

मालवीयजी अध्यापक को समाज का 'सर्वश्रेष्ठ सेवक' स्वीकार करते थे। उनकी धारणा थी कि अगर वह देशभक्त है, राष्ट्रीयता से उसे प्रेम है और अगर वह अपने उत्तरदायित्व को समझता है, तो वह देशभक्त पुरुषो और स्त्रियो की जाति उत्पन्न कर सकता है, जो स्वभावतः देश को किसी ऐसी श्रेणी पर पहुँचा देंगे जहाँ राष्ट्रहित के सामने जातीय स्वार्थ और द्वेष का लेश भी नही रहेगा।[1] वे चाहते थे कि अध्यापक अपने जीवन को देशभक्ति तथा राष्ट्रीयता की भावना से विभूषित कर इस भूमि से अशिक्षा को हटा दें, अपने नवयुवकों में नागरिकता की शिक्षा तथा प्रेम की भावना का ऐसा विस्तार कर दें कि राष्ट्रीयता रूपी सूर्य के सामने साम्प्रदायिकता कभी टिक नही सके,[2] अपने विद्यार्थियो में सद्गुणो तथा सज्ज्ञान का प्रसार करें, उन्हें इस योग्य बना दें कि वे दूसरे देशो के स्नातकों से टक्कर ले सकें, उनमें इतनी क्षमता पैदा कर दें कि वे अपने देश की शक्ति का निर्माण कर सकें, उसे समृद्ध ज्ञान-सम्पन्न और गौरवान्वित कर सकें।

मालवीयजी चाहते कि जिस तरह प्राचीनकाल में भारत में गुरु सर्वसम्मानित था, उसी तरह अब भी सरकार, अधिकारी और विद्यार्थी गुरुओ के मान की रक्षा तथा उनके गौरव की वृद्धि अपना कर्तव्य समझें। इसके बिना शिक्षा की सुव्यवस्था असम्भव है।

मालवीय जी का विद्यार्थियो को उपदेश था—

सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया।
देशभक्त्यात्मत्यागेन सम्मानर्हः सदाभव ॥

अर्थात् सत्य, ब्रह्मचर्य, व्यायाम, विद्या, देशभक्ति, आत्मत्याग द्वारा अपने समाज में सम्मान के योग्य बनो।

वे चाहते थे कि विद्यार्थी सदा सत्य का आचरण करें, ब्रह्मचर्य और व्यायाम द्वारा अपनी जीवन शक्ति को परिपुष्ट करें, नियमित रूप से विद्याध्ययन कर अपनी बौद्धिक शक्ति का विकास करें, अपने में अपने कुटुम्ब तथा अपने राष्ट्र की सेवा करने की क्षमता पैदा करें, सदा शुद्धता से रहें और शील का पालन करें, अपने सद्व्यवहार से अपने विद्यालय का गौरव बढायें, गुरुजनो का आदर करें, सहपाठियो के साथ सौहार्दपूर्ण व्यवहार करें, छोटे कर्मचारियो के साथ सहानुभूति और प्रेम का व्यवहार करें, अपने से छोटो की सेवा अपना कर्तव्य समझें, दूसरो के प्रति कोई भी ऐसा आचरण न करें जिसे वह अपने प्रति किया जाना अनुचित समझें, उन कार्यों से डरें जो निष्कृष्ट और त्याज्य है, मातृभूमि से प्रेम करें,

१. सन् १९२९ का दीक्षांत भाषण।
२. वही।

जनता की सुखवृद्धि करें, जहाँ कही भी अवसर मिले भलाई करें। वे चाहते थे कि विद्यार्थी अपने अवकाश तथा छुट्टियो में गावो मे जाकर गांव वालो के साथ काम करें, अविद्या रूपी अन्धकार को जो हमारी अधिकांश जनता को आच्छादित किए हुए है ज्ञान के प्रकाश से दूर कर दें। वे चाहते थे कि भारतीय शिक्षित सहनशीलता, क्षमा, तथा निःस्वार्थ सेवा के भाव को अपने जीवन में विकसित कर अपने छोटे भाइयो के उत्थान के लिए अधिक से अधिक अपना समय तथा शक्ति लगावें, उनके साथ मिलकर काम करे, उनके शोक तथा आनन्द में उनका हाथ बटावें, और उनके जीवन को दिनोदिन सुखमय बनाने का प्रयत्न करें। वे तो वास्तव में यह भी चाहते थे कि हम ईश्वर का स्मरण रक्खें, तथा यह विश्वास रखते हुए कि ईश्वर सभी प्राणियो में विद्यमान है अपने अन्य जीवधारी भाइयो से अपना सच्चा सम्बन्ध प्रतिष्ठित करें।

२१. धर्माधृत मानवता

मालवीयजी की भागवत पर दृढ निष्ठा थी। भागवत में प्रतिपादित अद्वैतवाद और ईश्वरवाद का, तथा भक्ति और निष्काम सेवा का सामंजस्य उन्हें स्वीकार था। ईश्वर पर उनकी अचल अगाध श्रद्धा थी। नित्य नियमित रूप से उसकी आराधना, तथा सदा उसका स्मरण वे प्रत्येक मानव का पुनीत कर्तव्य समझते थे। वे ईश्वर को सम्पूर्ण सृष्टि का "कर्ता, नियन्ता, तथा व्यवस्थापक", सारे विश्व का "साक्षात्कार" समझते थे। उनके विचार में यह "अद्वितीय शक्ति" निःसन्देह "अविनाशी, सर्वव्यापक", "सत्यज्ञानस्वरूप" एवं "अनन्त" है। वह सभी धर्मों का मूलाधार तथा आराध्यदेव है। वे "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए "ब्रह्मा, विष्णु, महेश" को इस ब्रह्म की तीन संज्ञाएं मानते थे, और इन देवी देवताओं को उसकी विभूतियाँ समझते थे। वे वेदव्यास की इस बात को स्वीकार करते थे कि "ज्योतिरात्मनि नान्यत्र समं तत्सर्वजन्तुषु" अर्थात् यह ज्योति अपने भीतर ही है, अन्यत्र नही है, और सब जीवधारियो मे एक सम है। वे चाहते थे कि हम यह समझ कर कि "वह सभी में विद्यमान है", अपने अन्य जीवधारी भाइयो से अपना "सच्चा सम्बन्ध" स्थापित करें। इस तरह वे "सर्वभूतेष्वात्मदेवता बुद्धि." के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए प्राणिमात्र के साथ "आत्मौपम्य व्यवहार" ही न्यायसगत, तथा धर्मनिष्ठो का पुनीत कर्तव्य समझते थे। वे इस सम्बन्ध मे श्रीमद्भगवद्गीता के इस श्लोक को बार-बार दुहराते थे :—

> आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
> सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मत.॥[1]

हे अर्जुन, जो व्यक्ति, 'चाहे दु ख हो चाहे सुख, सब स्थितियो में अपनी उपमा से सबको समान देखता है, वह परम योगी है।'

समत्व के सिद्धान्त को वे सनातन-धर्म का ऐसा मूल मन्त्र स्वीकार करते थे जिसकी सिद्धि को ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, मनोयोग, नीतिशास्त्र सबने निःश्रेयस अर्थात् आत्मोत्कर्ष और मोक्ष के लिए आवश्यक बताया है। समदृष्टा ही ज्ञानी, योगी, भक्त और सत्यनिष्ठ हो सकता है।

१. श्रीमद्भगवद्गीता ६.३२।

कतिपय विद्वान् दृष्टि और व्यवहार के अन्तर पर जोर देते हुए भेदमूलक व्यवहार तथा वैषम्ययुक्त परम्पराओ को न्यायसंगत तथा शास्त्रानुकूल बताते है। पर मालवीयजी कहते थे कि समत्व की आध्यात्मिक कल्पना कोरा सिद्धान्त नही है, वह तो साधना का मूल मन्त्र तथा लक्ष्य है, जीवन में उसका अवतरण सिद्धि के लिए आवश्यक है। आत्मौपम्य निष्पक्ष व्यवहार, तथा प्राणिमात्र के प्रति सद्भावना उसका व्यावहारिक पक्ष तथा सामाजिक लक्ष्य है, जिसके बिना एक सामाजिक व्यक्ति के लिए समत्व की सिद्धि असम्भव है। मालवीयजी जात्यहंकार, वंशाभिमान तथा पार्थक्य की भावना को समत्व की सिद्धि के लिए घातक समझते थे, तथा विश्ववन्धुत्व की भावना तथा सौहार्दपूर्ण व्यवहार को उसका धर्मसंगत नैतिक और सामाजिक साधन स्वीकार करते थे। अपनी इस समीक्षा को वे सर्वथा शास्त्रानुकूल समझते थे, और इसके समर्थन में शास्त्रो के प्रमाण प्रस्तुत करते रहते थे।

वे हमें बताते थे कि शास्त्रो में कहा गया है —

यद्यदात्मनि चेच्छेत तत्परस्यापि चिन्तयेत्।[1]

'जो जो वात मनुष्य अपने लिए चाहता है, उसे चाहिए कि वही-वही बात औरो के लिए भी सोचे।'

महर्षि वेदव्यासजी ने कहा है—

श्रूयता धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम्।
आत्मन प्रतिकूलानि परेपा न समाचरेत्॥[2]
न तत्परस्य संदध्यात् प्रतिकूल यदात्मनः।
एप सामासिको धर्म. कामादन्य प्रवर्तते॥[3]

'सुनो धर्म का सर्वस्व और सुनकर इसके अनुसार आचरण करो। जो अपने को प्रतिकूल जान पडे, जिससे अपने को पीडा पहुँचे, उसको दूसरो के प्रति न करो।'

'दूसरो के प्रति हमको वह काम नही करना चाहिए, जिसको यदि दूसरा हमारे प्रति करे तो हमको बुरा मालूम हो या दु.ख हो। संक्षेप में, यही धर्म है, इसके अतिरिक्त दूसरे सब धर्म किसी वात की कामना से किये जाते हैं।

१. महाभारत : शान्तिपर्व, ५९.२२।
२. विष्णुधर्मोत्तर ३.२५५.४४।
३. महाभारत, अनुशासन पर्व, ११३.८।

श्रीमद्भागवत में भक्त-शिरोमणि प्रह्लाद् कहते हैं—

तती हरौ भगवति भक्ति कुरुत दानवा. ।
आत्मौपम्येन सर्वत्र सर्वभूतात्मनीश्वरे ॥[1]

'अतएव हे दानवो, सबको अपने समान सुख दु.ख होता है, ऐसी बुद्धि धारण करके सब प्राणियों के आत्मा और ईश्वर भगवान् श्रीहरि की भक्ति करो ।'

इस प्रकार के शास्त्रो के प्रमाण के आधार पर मालवीयजी कहते है कि "मनुष्यमात्र को विमल भक्ति के साथ घट-घट-व्यापी उस एक परमात्मा की उपासना करनी चाहिए, और यह ध्यान करके कि वह प्राणिमात्र में व्याप्त है, प्राणिमात्र से प्रीति करनी चाहिए" ।[2]

मालवीयजी पूजापाठ के विधि-विधान पर तथा शास्त्रो द्वारा प्रतिपादित कर्मकाण्ड पर विश्वास करते थे, तथा धर्म-जिज्ञासुओ के लिए उनकी थोड़ी बहुत व्याख्या भी करते रहते थे। पर उन्हें पशुबलि आदि हिंसात्मक प्रयोगों पर विश्वास नही था। वे उसे तामसिक प्रक्रिया समझते थे। समत्व और निष्काम लोकसेवा पर आश्रित कर्मयोग, एव ईश्वर को सब सत्कर्मों का समर्पण, और उनके द्वारा भगवान् की आराधना ही उनको सर्वप्रिय थी। उनकी दृष्टि मे भक्तियुक्त लोकसेवा ही अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि का सर्व श्रेष्ठ मार्ग है। सब में समान रूप से अवस्थित ईश्वर की "सर्वोत्तम पूजा यही है कि हम प्राणिमात्र में ईश्वर का भाव देखें, सब में मित्रता का भाव रखें, और सबका हित चाहे।"[3] वे चाहते थे कि हम "दीन निर्धन देशवासियो की सेवा द्वारा ईश्वर की उपासना करें, तथा सार्वजनीन प्रेम से इस सत्य ज्ञान के प्रचार से ईश्वरीय शक्ति का संगठन और विस्तार करें, जगत् से अज्ञान को दूर करें, अन्याय और अत्याचार को रोकें, और सत्य, न्याय और दया का प्रचार कर मनुष्यो में परस्पर प्रीति, सुख और शान्ति बढावे।"[4]

वे कर्मकाण्ड और नैतिकता दोनो को धर्म का अंग स्वीकार करते थे, और उन्हें दोनों ही प्यारे थे। फिर भी धर्मविहित नैतिकता का प्रसार, तथा उसके आधार पर सामाजिक व्यवहार का, और वैयक्तिक चरित्र का परिशोधन और नवनिर्माण ही उनका मुख्य काम था। अपने चरित्र और उपदेशो द्वारा इसका विस्तार ही उनकी जीवनचर्या थी। उनका अपना चरित्र और व्यवहार निःसन्देह

१. श्रीमद्भागवत, ७ ७.५३ ।
२. सीताराम : महामना पंडित मदन मोहन मालवीय खंड ३ पृ० १० ।
३. वही, पृ० २३ । ४. वही, पृ० १३ ।

भारतीय नैतिकता का उत्कृष्ट उदाहरण है, जिसका अनुकरण अवश्य ही एक हिन्दू नवयुवक के जीवन को ऊँचा उठा सकता है, उसे समाज-सेवी सत्पुरुष बना सकता है। उनकी नैतिकता की व्याख्या धर्मसंगत, तथा मनुष्यता की भावना से अनुप्राणित, एव समाजोत्कर्ष और जीवनोत्थान की कामना और क्षमता से परिपूर्ण थी।

मालवीयजी बार-बार कहते थे कि मनु के अनुसार—

धृति' क्षमा दमोऽस्तेय शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

('धैर्य, क्षमा, बुरी वृत्तियो का दमन करना, चोरी न करना, शौच, आत्म-निग्रह, विवेक, विद्या, सत्य, क्रोध न करना—ये धर्म के दश लक्षण हैं।')

तप की व्याख्या करते हुए मालवीयजी लिखते हैं—"तप अपने उद्देश्य, प्रयोजन या गरज से अच्छा या बुरा, ऊँचा या नीचा, तामसिक, राजसी और सात्त्विक एवं कायिक, वाचिक और मानसिक कहलाता है।...जो काम निष्काम भाव से, फल की इच्छा त्याग कर, शम-दम से सम्पन्न हो कर, श्रद्धा और धैर्य के साथ मन, वाणी या शरीर से किया जाता है, वह 'सात्त्विक तप' कहलाता है। मन को जीतना अर्थात् काम-क्रोध-लोभ-मोह से बचना और शुद्ध संकल्प-युक्त रहना, किसी विषय-वृत्ति के कारण विक्षिप्त हो कर फिर भी उस पर विजय प्राप्त करना, व्यवहार काल में छल-कपट, धोखा और फरेब से मन को दूर रखना, मन को सात्त्विक बनाना—यह 'मन द्वारा सात्त्विक तप' करना है। 'वाणी का सात्त्विक तप' यह है कि जो वाक्य असत्य, दुःखदायी, अप्रिय और खोटा हो उसको किसी समय, किसी भी अवस्था में मुँह से न निकालना, बल्कि प्रिय, सत्य, मीठे और मधुर वचन बोलना—यह वाणी द्वारा सात्त्विक तप करना है। शरीर से अर्थात् शरीर के अवयवो से, हस्तपादादि कर्मेन्द्रियो के द्वारा दूसरो की सहायता और सेवा करना, गिरे हुओ को उठाना, देश और जाति के लिए, अपने शरीर के दुःख और कष्ट की परवाह न कर, बल्कि यदि आवश्यकता हो तो धर्म और परोपकारार्थ प्राण अर्पण कर देना—यह 'काया का सात्त्विक तप' है। परन्तु अपनी स्तुति, मान, पूजा, सत्कार, प्रतिष्ठा, और नाम या भोग-विलास के लिए इन्ही सब कामो को मन, वाणी या शरीर द्वारा करना इनको 'राजसी' बना देता है। जो तप अविवेक से, दूसरो को हानि पहुचाने, दिल दुखाने, द्वेष और शत्रुता से किया जाता है—वह 'तामसी' है"।[1] उन्होने लिखा: "इन रूपों का भिन्न-

१ अभ्युदय, १५ जनवरी, सन् १९०९।

भिन्न वर्णन करने से अभिप्राय यह है कि लोग अपनी-अपनी मन, वाणी, शरीर की परीक्षा करें, और सात्त्विक तपो को ग्रहण करते हुए राजसी और तामसी को त्याग दें।"[1]

वे कहते थे :—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीरा ॥

('नीति में निपुण लोग निन्दा करें वा प्रशंसा करें, लक्ष्मी जाय या रहे, आज ही मृत्यु हो या युगान्तर में हो, परन्तु धीर पुरुष न्याय के मार्ग से विचलित नही होते।')

सदाचार की महिमा का वर्णन करते हुए वे कहते थे—

वाञ्छा सज्जनसंगमे परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता ।
विद्यायां व्यसनं स्वयोषिति रतिः लोकापवादाद् भयम् ॥
भक्तिश्चक्रिणि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले ।
ये ऽप्येते निवसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः ॥

('सज्जनो के सत्संग में इच्छा, पराये के गुणो से प्रीति, गुरु के साथ नम्रता, विद्या में व्यसन, अपनी स्त्री मे प्रीति, लोकनिन्दा से भय, विष्णु की भक्ति, आत्म-दमन की शक्ति, दुष्टो के संसर्ग से मुक्ति, ये निर्मल गुण जिनमें बसते हैं, उन पुरुषो को नमस्कार है।')

भारतीय शास्त्रो द्वारा प्रतिपादित नैतिक नियमो तथा सदाचार की महिमा का विस्तृत दिग्दर्शन कराते हुए वे कहते थे कि ("सदाचार के सेवन से, सत्कर्म करने से, शूद्र भी द्विजत्व को पहुच सकता है, और दुराचार अर्थात् बुरे कर्म करने से ब्राह्मण भी नीचे गिर कर शूद्रता को पहुच सकता है।[2]")

मालवीयजी ने बताया कि महाभारत में कहा गया है—

वर्णोत्कर्षमवाप्नोति नर. पुण्येन कर्मणा ।
यथाऽपकर्षं पापेन इति शास्त्र निदर्शनम् ॥[3]

---

१. वही। २. अन्त्यजोद्धार विधि।

३. महाभारत, शान्तिपर्व, १९२।

शूद्रोऽपि शीलसम्पन्नो गुणवान् ब्राह्मणो भवेत् ।
ब्राह्मणोऽपि क्रियाहीनः शूद्रात् प्रत्यवरो भवेत् ॥[1]

सत्यं दानं क्षमा शीलमानृशस्यं तपो दया ।
दृश्यन्ते यत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥[2]

यस्तु शूद्रो दमे सत्ये धर्मे च सतोतित्थतः ।
तं ब्राह्मणमह मन्ये वृत्तेन हि भवेद् द्विजः ॥[3]

'मनुष्य पुण्य कर्म से वर्ण के उत्कर्ष को तथा पाप कर्म से अपकर्ष को अर्थात् पतन को प्राप्त करता है, यह शास्त्र का निर्देश है।'

'शील-सम्पन्न शूद्र भी गुणवान् ब्राह्मण के समान हो जाता है, क्रियाहीन ब्राह्मण भी शूद्र से गिरा हो जाता है।'

'सत्य, दान, क्षमा, शील, कटुता का अभाव, तप और दया जहा दिखाई दे, नागेन्द्र, वह ब्राह्मण है,—ऐसा स्मृतियो का कहना है।'

जो शूद्र आत्मसंयम, सत्य, धर्म में सदा प्रगति करता हुआ है, उसे मैं ब्राह्मण मानता हूं। सदाचरण से ही द्विज होता है।'

श्रीमद्‌भागवत मे भी सातवें स्कन्ध में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के अलग-अलग गुणो का वर्णन करते हुए नारदजी ने कहा है—

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम् ।
यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत् ॥[4]

जिस पुरुष को जो वर्ण का प्रकट करनेवाला लक्षण कहा है, जहा दूसरो में भी वह लक्षण दिखाई दे तो उसको उसी गुणवाले वर्ण के नाम से बताना चाहिए।'

मालवीयजी के विचार में "इन वचनो से यह स्पष्ट है कि यदि जन्म से ब्राह्मण होनेवाला भी अपने धर्म से रहित हो जाय या कुकर्म करने लगे, तो वह शूद्र से भी नीचे गिर जाता है, और नीच से नीच शूद्र भी यदि अच्छे आचरणो को ग्रहण करे और ऊँचा पवित्र जीवन व्यतीत करने लगे तो वह भी ब्राह्मण के समान मान पाने के योग्य हो जाता है।"[5]

---

१ महाभारत, वनपर्व । २. वही ।
३. वही । ४ श्रीमद्‌भागवत ।
५ अन्त्यजोद्धार विधि ।

मालवीयजी शील की तरह कतिपय पौराणिक मन्त्रों और भगवद्भक्ति को भी जीवनोद्धार का उपाय बताते हुए कहते है कि "ब्राह्मण से लेकर अन्त्यज पर्यन्त सभी सनातन-धर्मानुयायी पुरुषो और स्त्रियो को मन्त्रदीक्षा लेकर मन्त्रजाप करने का तथा भगवान् की भक्ति करने का पूर्ण अधिकार है।"[1] 'अन्त्यजोद्धार विधि' में वे बहुत से पौराणिक प्रमाणो से अपने विचारो की पुष्टि करते हुए सब वर्णों और जातियो के नर-नारियो से अनुरोध करते है कि वे विधिपूर्वक मन्त्र-दीक्षा लेकर, शास्त्रविहित शील का पालन करते हुए नियमित रूप से मन्त्रो का जाप करें, तथा विधिवत् भगवान् की आराधना करें। वे चाहते थे कि देवमन्दिरो के पुजारी तथा अधिकारी भगवद्भक्ति में सबका समान अधिकार स्वीकार करते हुए भेदबुद्धि त्यागकर अन्त्यज पर्यन्त सब धर्मनिष्ठ हिन्दुओ के लिए समानरूप से देवदर्शन की व्यवस्था कर दें, तथा धर्मज्ञ विद्वान् पुराणो द्वारा प्रतिपादित मन्त्र महिमा को स्वीकार करते हुए अन्त्यज पर्यन्त सब श्रद्धालु नरनारियो को विधिवत् मन्त्रदीक्षा लेने को प्रोत्साहित करें।

मालवीयजी ने इसी पुस्तक में बहुत-सी कथाओ और महात्म्यो का उदाहरण देते हुए लिखा है कि इन सबका तात्पर्य यही है कि "मनुष्य चाहे पहले कैसा ही स्वाभाविक या नैमित्तिक दोषो से युक्त क्यो न हो, यदि वह मन्त्रदीक्षा, भक्ति-भावना और सदाचार से सम्पन्न हो जाता है, तो वह दोषनिर्मुक्त होकर सम्मान्य, आदरणीय और स्ववर्ग का सामाजिक साधारण धर्माधिकारी हो जाता है। इतना ही नही, बल्कि उसकी बीजसम्बन्धी और शरीरसम्बन्धी अपवित्रता चली जाती है।"[2]

मालवीयजी यह भी चाहते थे कि "सार्वजनिक स्थानो से वर्ण भेद का प्रश्न हटा दिया जाय"[3], और हरिजनो को दूसरे नागरिको की तरह उन स्थानो के प्रयोग का समानरूप से अधिकार हो। उनका हमें आदेश था कि हम उनसे प्रेम का व्यवहार करें, और उन्हें अपना भाई समझ छूत-छात को दूर करें[4], उनसे 'हिल मिल कर' काम करें, उनके उत्थान का उपाय सोचें[5]। उनकी धारणा थी कि हरिजन हिन्दू समाज के अङ्ग है, वे भी हमारी ही तरह हिन्दू सभ्यता तथा संस्कृति

---

१. अन्त्यजोद्धारविधि। २. वही।

३. हिन्दू महासभा, पूना १९३५।

४. हिन्दू महासभा, गया अधिवेशन, सन् १९२२, में भाषण।

५. हिन्दू महासभा, पूना अधिवेशन, सन् १९३५।

के उत्तराधिकारी हैं[1], उनकी उन्नति करना, उन्हें सामान्य और धार्मिक शिक्षा देना, और दूसरे अङ्गो के समान उनकी रक्षा करना, और उनको आगे बढाना हमारा कर्तव्य है।

उनका कहना था कि "वे हमारी परमावश्यक सेवा करते हैं। इसलिए उनका उपकार करना हमारा धर्म है। दूसरे यह कि वे हमारे सधर्मी हैं। जिस सनातन-धर्म को हम मानते हैं, उसी को वह भी मानते हैं। बहुत-सा भय और बहुत-सा लालच दिखाये जाने पर भी, और बहुत-सा क्लेश सहने पर भी उनकी श्रद्धा आजतक इस धर्म में बनी है। वे हमारे हैं और हमारा कर्तव्य है कि हम उनके साथ अच्छा बर्ताव करें। उनके साथ विशेष रूप से उदारता का व्यवहार करें।"[2]

इस तरह यद्यपि मालवीयजी जन्म को ही चातुर्वर्ण-व्यवस्था का आधार स्वीकार करते थे, और रोटी-बेटी के सम्बन्ध में केवल समान शीलसम्पन्न उपजाति का अन्तर दूर करने की ही बात करते थे, पर वर्णाश्रम धर्म की उनकी व्याख्या प्रचलित मान्यताओ और परम्पराओ से कही अधिक उदार थी। उन्होने प्रयाग में ब्राह्मण सम्मेलन कर निर्णय कराया कि समान शीलसम्पन्न विभिन्न ब्राह्मण जातियो में विवाह हो सकता है, और अपनी पौत्रियो का विवाह गौड़ तथा सनाढ्य ब्राह्मणों से किया। उन्होने पचास वर्ष की आयु मे जीविकोपार्जन का धन्धा छोड दिया, और इस तरह गृहस्थाश्रम से वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश किया, पर वन में जाकर एकान्त में घोर तपस्या करने के बजाय समाज में रहते हुए एकमात्र लोकसेवा अपना धर्म निश्चित किया, और दूसरे वानप्रस्थियो को ऐसा करने का ही उपदेश दिया। वे तो इसी तरह यह भी चाहते थे कि ब्राह्मण शारीरिक श्रम के महत्त्व को स्वीकार करें, शूद्र सेवा के अतिरिक्त व्यवसाय द्वारा भी जीविकोपार्जन करें, सब लोग राष्ट्र की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझें, सब जातियो और वर्णों को सैनिक शिक्षा दी जाय, और सेना मे भरती किया जाय, ऊँची से ऊँची शिक्षा प्राप्त करने का सबको अधिकार हो, स्त्रियाँ भी सुशिक्षित हो, लोककल्याण के निमित्त वे सार्वजनिक कार्यों में योगदान करें, जन्मजात अस्पृश्यता दूर हो, हरिजन भी द्विजत्व अर्थात् द्विज समान श्रेष्ठता प्राप्त करें।

---

१. हिन्दू महासभा, कानपुर अधिवेशन, सन् १९२५।
२. हिन्दू महासभा, प्रयाग अधिवेशन।

हिन्दू धर्म के प्रति मालवीयजी की दृढ निष्ठा थी। वे अपने सनातन-धर्म को सर्वश्रेष्ठ समझते थे, पर उनकी निष्ठा सहिष्णुता से समन्वित थी। वे समान रूप से सब धर्मों, धर्मग्रन्थो, धर्मगुरुओ का आदर करना सब धर्मनिष्ठ व्यक्तियों का कर्तव्य समझते थे। वे "मन्दिर, गुरुद्वारा, मस्जिद, गिरजा सबको सम्मान के काबिल" समझते थे, और कहते थे कि "जब मैं किसी गिरजा या मस्जिद के पास से गुजरता हूँ, तब मेरा सिर सम्मान से झुक जाता है।"[१] यद्यपि उन्होने शुद्धि आन्दोलन को प्रोत्साहित किया, अपने धर्म का व्यापक प्रसार और प्रचार शास्त्रसंगत तथा हिन्दुओ का कर्तव्य बताया, फिर भी उन्होने कभी किसी दूसरे धर्म, धर्मगुरु या धर्म-ग्रन्थ की निन्दा नही की। उनका कहना था कि "मैं सदैव अपने धर्म का दृढ विश्वासी और पाबन्द हूँ, परन्तु किसी के धर्म का अपमान करने का खयाल तक मेरे दिल मे कभी नही आया"[२]। वे चाहते थे कि धर्मप्रचार का काम बहुत शाति और धैर्य से होना चाहिए।[३] वह इस रीति से करना चाहिए कि जिससे किसी को क्लेश न पहुँचे। एक दूसरे को कटुवचन कहने से रोकना चाहिए, और ऐसे उपाय सोचने चाहिए जिनसे प्रीति और मित्रता बढे।[४] उन्होने अपने धर्म की कतिपय प्रचलित पद्धतियो की यदा-कदा समीक्षा भले ही की हो, पर उन्होने किसी दूसरे धर्म की आलोचना कभी नही की। उन्होने धर्म-समन्वय के लिए कभी कोई प्रयत्न नही किया, पर वे यह स्वीकार करते थे कि सत्य और ईश्वर की आराधना सब धर्मों का मूलाधार है, कतिपय मूलभूत सद्गुण सभी धर्मों में विद्यमान हैं, जीवनसिद्धि के अनेक मार्ग है, मानव अपनी रुचि और परम्परा के अनुकूल अपना मार्ग निश्चित कर दृढ़ निष्ठा से उस पर चल कर सद्गति प्राप्त कर सकता है। वे चाहते थे कि हिन्दू 'पक्का हिन्दू' और मुसलमान 'पक्का मुसलमान' बने, दोनो 'ईश्वर भक्त हो', सब अपने धर्म के सिद्धान्तो को अच्छे तौर पर समझें।[५] उनकी धार्मिक सहिष्णुता ने वास्तव में धार्मिक सद्भावना का ऐसा अपूर्व रूप धारण कर लिया था कि उन्होने सत्तर वर्ष की आयु में समुद्र-यात्रा करते हुए जहाज में बाइबिल हाथ में लेकर पूर्ण निष्ठा के साथ ईसाइयो की उपासना में नि.संकोच भाग लिया।[६] वे मनुष्यता को जाँतिपाँति और साम्प्रदायिक भेदो से ऊँचा समझते थे।[७]

---

१. लाहौर में भाषण, २८ जून सन् १९२३।
२. वही। ३. पंजाब हिन्दू सम्मेलन, सन् १९२४।
४ लाहौर मे भाषण, सन् १९२३।
५. पंजाब हिन्दू सम्मेलन, सन् १९२४।
६ बिडलाजी की डायरी।
७. कानपुर मे भाषण, सन् १९३१।

मालवीयजी स्वीकार करते थे कि शास्त्रविहित विधियो का यन्त्रवत् अनुकरण निःसन्देह हानिकर है,[1] तथा हमारे नित्यकर्मों मे कई ऐसी प्रथाओ का समावेश हो गया है जो किसी प्रकार शास्त्रविहित नही है ।[2] वे परम्पराओ का परिशोधन तथा प्रगति का नियमन समाजोत्थान और जीवनोत्कर्ष के लिए परमावश्यक समझते थे । पर उनके विचार में आधुनिक सामाजिक परिस्थिति के संदर्भ में शास्त्रो का गूढ अध्ययन करने पर प्रचलित परम्पराओ को शास्त्र के आधार पर भी बहुत हद तक संशोधित किया जा सकता है, और उन्होने स्वयं सुधार के काम मे इसी प्रथा का सदा अनुसरण किया । उनका कहना था कि "मैं शास्त्र की रस्सी थाम कर चलता हूँ, और मैं जो कुछ कहता हूँ शास्त्र के आधार पर कहता हूँ"[3] । उनकी धारणा थी कि प्राचीन भारतीय सस्कृति के विश्वजनीन आदेशो का अनुसरण प्राचीन परम्पराओ की जडताओ को दूर कर सकता है, जीवन को मानवीय, प्रगतिशील और समाजोपयोगी बना सकता है ।

मालवीयजी की धार्मिक धारणाएं मानवकल्याण की भावना से अनुप्राणित थी । कल्याण की वृद्धि वे सब वर्णों और आश्रमो का लक्ष्य स्वीकार करते थे । उनके विचार मे निष्काम भाव से समाज की सेवा ही परम तप और परम धर्म है । निष्काम भाव के महत्त्व की व्याख्या करते हुए वे कहते थे कि "जो लोग निष्काम भाव से काम नही करते—उन लोगो में परस्पर ईर्ष्या और द्वेष उत्पन्न हो जाते है और कार्य सफल नही होने पाता । किन्तु जहा निष्काम भाव से कार्य होता है, वहाँ लोग दूसरे की सफलता देख कर प्रसन्न होते है, और एक दूसरे के प्रति प्रेम और सहानुभूति का भाव उत्पन्न होता है, और कार्य में शीघ्र ही सफलता प्राप्त होती है । सकाम भाव से काम करनेवालो को विपत्तिया काम करने से विमुख कर देती है, किन्तु निष्काम भाव से काम करनेवाले लोग यह समझ कर कि जो काम हम कर है, वह ईश्वर का काम ही है, और इसमें ईश्वर हमारा सहायक है, किसी विघ्न या वाधा से पीछे नही हटते ।"[4]

तप की व्याख्या करते हुए उन्होने कहा कि सच्चे तप का भाव उस देशभक्त में है जो अपने देश एवं अपनी जाति के गौरव और प्रतिष्ठा, कीर्ति और मान, सम्पत्ति और ऐश्वर्य की वृद्धि और उन्नति के लिए दृढ़ इच्छा रखता है । अनेक

१. अभ्युदय, १ मई, सन् १९०८ ।
२. वही ।
३. पंजाब हिन्दू सम्मेलन, सन् १९२४ ।
४. अभ्युदय, २६ मार्च, सन् १९०९ ।

प्रकार के दुःखो, संकटो और कष्टो को सहन करने, कठिन से कठिन मेहनत और श्रम को उठाने और विघ्नो का मुकाबला करने के लिए उद्यत रहता है। सच्चे देश-प्रेमी देशानुरागी कल्याण की इच्छा करते, तप का अनुष्ठान करते, आत्मा और मन को धर्माचरण रूपी प्रचण्ड अग्नि मे दग्ध करके अपने और अपने देश की अपवित्रता, मलिनता और अन्य अशुद्धियो को दूर कर जाति को आरोग्यता एवं सुख-सम्पत्ति को योग्यता प्रदान करते है।[1]

मालवीयजी देशभक्ति को धर्म का महत्त्वपूर्ण अंग स्वीकार करते थे। उनका कहना था "सच्चा तप यह है कि अपने भाइयो के ताप से तपा जाय। सच्चा यज्ञ यह है जिसमें अपने स्वार्थ की आहुति दी जाय। सच्चा दान वह है जिसमें परमार्थ किया जाय, और सच्ची ईश्वर-सेवा यह है कि उसके दु'खी जीवो की सहायता की जाय। परमात्मा सबके हृदय में व्यापक है, इसलिए जितने प्राणियो को हम प्रसन्न करेंगे, उतने ही गुना ईश्वर को प्रसन्न करेंगे। यह सच्चा धर्म देशभक्ति द्वारा प्राप्त है।"[2] मालवीयजी को विश्वास था कि देशभक्ति का संचार हमारे हृदय से दुर्भाव निकाल कर फेंक देगा, हम अदूरदर्शी, स्वार्थी और खुशामदियो की तरह ऐसे काम कदापि न करेंगे, जिनसे देशवासियो को हानि पहुँचे, वल्कि दूरदर्शी, परमार्थी, सत्यशील और दृढताप्रिय आत्माओ की भाति असंख्य कष्ट उठाते हुए वही करेंगे, जिससे देश का भला हो तथा निर्धन धनवान्, निर्वल बलवान् और मूर्ख भी वुद्धिमान् हो जायें। प्रत्येक प्रकार के सामाजिक दुःख मिटें और दुर्भिक्ष आदि विपत्तियाँ दूर होकर लाखो विलविलाती हुई आत्माओ को सुख पहुँचे।[3] उनका कहना था कि "देशभक्ति द्वारा इतने धर्मो का सम्पादन हुआ देख कर भी यदि कोई धर्म के आगे देशभक्ति को कुछ नही समझता, उस पुरुष को जान लीजिये कि वह धर्म के पहले तत्त्व को नही पहचानता, वह 'धर्म' शब्द गा रहा है, पर यह नही जानता कि धर्म क्या वस्तु है।"[4]

मालवीयजी चाहते थे कि भारतवासी स्वार्थभक्ति छोडकर देश-भक्ति अपनायें जिसके आगे हम अपने को भूल जायें, देश की उन्नति में ही अपनी उन्नति समझें, देश के यश में अपना यश समझे, देश के ही जीवन में अपना जीवन समझें, और देश की मृत्यु मे ही अपनी मृत्यु समझें।[5]

---

१. अभ्युदय, १५ जनवरी, सन् १९०९।

२ अभ्युदय, भाद्रपद शुक्ल ६, सम्वत् १९६४।

३. वही। ४ वही।

५. अभ्युदय।

इस तरह मालवीयजी का सामाजिक चिन्तन 'धर्माधृत सामाजिक मनुष्यता' पर आश्रित था। वही उनका मूल मन्त्र था। वही उनकी जीवनचर्या और उनके लोकशील का मूलाधार था। वेदान्त का अद्वैत, भागवत धर्म द्वारा प्रतिपादित ईश्वरार्पित निष्काम लोकसेवा द्वारा भगवान् की आराधना, श्रीमद्भगवद्गीता का सात्त्विक कर्ता, मनु द्वारा प्रतिपादित धर्म के दश लक्षण, हिन्दू शास्त्रों में वर्णित सात्त्विक शील, ज्ञान का व्यापक प्रसार, विभिन्न मतमतान्तरों के प्रति हिन्दू धर्म की उदार भावना मालवीयजी के विश्वजनीन चिन्तन के आधार थे। मेत्सनी की उदार राष्ट्रीयता, इंग्लैंड की लोकतान्त्रिक वैधानिकता, वुड्रो विलसन की अन्तर्राष्ट्रीयता, मानव की स्वाभाविक साधुता पर उन्नीसवीं शताब्दी के बुद्धिवादी मनोवैज्ञानिकों का दृढ़ विश्वास, यूरोपीय विद्वानों के लोकोपयोगी वैज्ञानिक आविष्कार, समाजवादियों की सामाजिक न्याय की धारणा, उदारवादियों के नागरिकता के सिद्धान्त, आधुनिक शिल्पवैज्ञानिक प्रगति द्वारा औद्योगिक विकास—इन सब का भी उनके मानवीय समाजदर्शन में भरपूर समावेश था। इस तरह उनका दर्शन समाजोत्कर्षोन्मुख, लोकसेवापरक, तथा मानवचिन्तन की उत्कृष्ट उपलब्धियों का समन्वय था।[1]

---

१. अभ्युदय, भाद्रपद शुक्ल १४, सम्वत् १९६४।

३०. निष्कर्ष

विचारो की विभिन्नता तथा नाना प्रकार के सिद्धान्तो और नियमो का प्रतिपादन और अनुसरण स्वतत्र लोकतान्त्रिक समाज का महत्त्वपूर्ण लक्षण है। विभिन्न हितो, आकाक्षाओ और विचारो का समन्वय एक लोकतान्त्रिक नेता और पार्टी का काम होता है, पर कोई नेता या पार्टी पूर्ण समन्वय नही कर पाती है। विभिन्नता बनी रहती है, और उसकी स्वतंत्रता लोकतान्त्रिक जीवन के उत्कर्ष के लिए आवश्यक समझी जाती है। इस तरह लोकतन्त्र में कोई भी नेता कभी भी अपने को सारे समाज का एक-मात्र नेता होने का दावा नही कर सकता। वह यह नही कह सकता कि उसके सिद्धान्तो और विचारो में सब वर्गों के हितो का तथा सब विचार-धाराओ के मूलभूत तत्त्वो का सर्वांगीण समन्वय है। इस तरह एक लोकतान्त्रिक नेता किसी विशिष्ट विचारधारा का प्रतिनिधित्व ही करता है, और उसके सिद्धान्त तथा विचारो का दूसरी विचारधारा से टकराव होता ही रहता है। पर एक उच्चकोटि का लोकतान्त्रिक नेता विशिष्ट विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हुए भी अपने चरित्र, अपने वैयक्तिक और सार्वजनिक जीवन की स्वच्छता द्वारा सारे समाज का आदर और विश्वास प्राप्त कर सकता है। (लोकतन्त्र में उत्कृष्ट नेता वही है जो अपने उत्तरदायित्वपूर्ण सद्व्यवहार से सारे समाज का सम्मान प्राप्त करते हुए अपने विश्वास के अनुसार सारे राष्ट्र के हित मे ईमानदारी के साथ किन्ही विशिष्ट सिद्धान्तो और नीतियो को प्रतिपादित करता है, और लोकतान्त्रिक ढग से सब प्रकार की विघ्न बाधाओ का मुकाबला करते हुए उन्हें कार्यान्वित करने का यत्न करता है।)

इस दृष्टि से भारत के इस लोकतान्त्रिक युग के लिए मालवीयजी का वैयक्तिक और सार्वजनिक जीवन लोकतान्त्रिक कार्यकर्ताओ के लिए अवश्य ही अनुकरणीय है। उनकी तत्परता, दृढता, भद्रता, तितिक्षा और कर्तव्य-परायणता, तथा निर्भीकता और निःस्वार्थ सेवा-भावना का अनुकरण अवश्य ही इस देश के लोकतान्त्रिक जीवन को ऊँचा उठा सकता है, देश के सार्वजनिक जीवन की बहुत-सी विषमताओ को दूर कर सकता है। इस तरह मालवीयजी का जीवन आज भी हमारे लिए उतना ही प्रासंगिक है, जितना वह स्वतंत्रता के पहले था।

मालवीयजी इस देश मे स्वतंत्र लोकतांत्रिक संघीय व्यवस्था प्रतिष्ठित करना चाहते थे। उन्होने अपने ५० साल के लम्वे सार्वजनिक जीवन में विभिन्न समस्याओ और परिस्थितियो के सन्दर्भ में लोकतान्त्रिक सिद्धान्तो को प्रतिपादित किया। उनके वहुत से लोकतान्त्रिक सिद्धान्त भारत के इस लोकतान्त्रिक युग के लिए सर्वथा प्रासंगिक है। उन्होने जिस ढंग से प्रान्तीय और केन्द्रीय विधान-सभाओ में काफी विषम परिस्थितियो मे कार्य किया, उसका अध्ययन अवश्य ही लाभप्रद हो सकता है। जिस प्रकार वे लम्वे-लम्वे व्याख्यान वहाँ देते थे, उस तरह से आधुनिक विधान-सभाओ में विधायको को व्याख्यान देने का अवसर तो नहीं मिल सकता, और उन्हे वरवस सीमित समय में ही अपने विचारो को व्यक्त करने की क्षमता पैदा करना होगी, और मालवीयजी से कही अधिक अपना सम्पर्क अपने चुनाव-क्षेत्र की जनता से वनाये रखना होगा। पर उन्होने जिस तरह संसदीय भद्रता का विधान-सभाओ में पालन किया और जिस भावना से उन्होने निरर्थक व्यक्तिगत आक्षेप तथा वितण्डावाद की उपेक्षा करते हुए दृढता पर भद्रता के साथ विवेकपूर्ण ढंग से तथ्यो और प्रमाणो को उपस्थित करते हुए देशहित मे निःस्वार्थ भावना से अपने विचारो को विधान-सभा के सामने प्रस्तुत किया, वह अवश्य ही विधायको के लिए एक उत्कृष्ट अनुकरणीय उदाहरण है। उनका संवैधानिक व्यवहार अवश्य ही इस लोकतान्त्रिक युग के लिए प्रासगिक और अनुकरणीय है।

मालवीयजी के धार्मिक और सास्कृतिक विचारो के सम्वन्ध मे इस युग में भी काफी मतभेद हो सकता है। उनके विचारो के प्रति प्राचीन भारतीय संस्कृति में निष्ठावान् व्यक्तियो की विभिन्न प्रतिक्रियाए हो सकती है। कुछ विद्वान् पुरानी परम्पराओं और मर्यादाओ का अक्षरश. अनुकरण ही हिन्दू समाज का कर्तव्य समझ सकते है। उनकी यह धारणा हो सकती है कि हमें किसी से न कुछ लेना है और न नयी परिस्थिति के सन्दर्भ मे पुरानी वातो मे परिवर्तन करने की जरूरत है। इस प्रकार के विद्वानो के लिए मालवीयजी के धार्मिक विचार आज भी उतने ही निरर्थक हैं, जितने कि वे उनके जीवनकाल में थे। हिन्दू राष्ट्र पर दृढ विश्वास रखने वाले विचारक भी मालवीयजी के विचारो को स्वीकार नही कर सकते। उन्हे मालवीयजी की व्याख्या ठीक नही जच सकती। देश में कुछ ऐसे विचारक भी हो सकते हैं जो किसी अंश में भी धर्म तथा प्राचीन भारतीय संस्कृति की सार्थकता स्वीकार करने को तैयार न हो. और समझते हो कि संसार की आधुनिक विचारधाराओ के समुचित प्रयोग द्वारा ही देश का उत्थान सम्भव है। उनके लिए भी मालवीयजी के धार्मिक और सांस्कृतिक विचारों की कोई

सार्थकता नही है। देश मे बहुत से ऐसे व्यक्ति हैं जो हिन्दू धर्म के बजाय किसी अन्य धर्म पर विश्वास करते है, और अपने धार्मिक और सास्कृतिक मान्यताओं में किसी प्रकार का हेरफेर करने को तैयार नही हैं। उनके लिए मालवीयजी के धार्मिक और सांस्कृतिक विचारो की कोई उपयोगिता नही हो सकती।

पर देश में बहुत से ऐसे विचारक होंगे जो राष्ट्र की प्रगति के लिए भारतीय संस्कृति के सार्वजनीन, सर्वमान्य सजीव तत्त्वों का आधुनिक विचारधारा के प्रगतिशील तत्त्वो मे समन्वय राष्ट्र के निर्माण में आवश्यक समझते है, और जो या तो धर्म के प्रति स्वय निष्ठावान् है या जनसाधारण की निष्ठा को देखते हुए धर्म के उदात्त विचारों का देश में प्रसार आवश्यक समझते है। उनके लिए मालवीयजी के विचार आज भी प्रासंगिक और सार्थक हैं।

इस तरह से मालवीयजी के धार्मिक और सांस्कृतिक विचार यदि सारे समाज के चिन्तन का प्रतिनिधित्व करने का दावा नही कर सकते, तो भी वे एक विशिष्ट विचारधारा का प्रतिनिधित्व अवश्य करते है, और उस विचारधारा के माननेवालो का मार्गदर्शन अवश्य कर सकते हैं।

आधुनिक भारत के आर्थिक जीवन में मालवीयजी के कतिपय आर्थिक विचारों की कोई सार्थकता नही है, और इस समय देश के सामने कई ऐसी आर्थिक समस्याएँ है जिनके ऊपर मालवीयजी को अपने विचार व्यक्त करने का कोई अवसर ही नही मिल पाया, तथापि लोककल्याण और सामाजिक न्याय पर आश्रित उनके आर्थिक विचार आज भी बहुत हद तक सार्थक हैं, और उनकी विचारधारा के आधार पर एक आर्थिक कार्यक्रम अवश्य तैयार किया जा सकता है।

मालवीयजी शिक्षा को सब सुविधाओ का मूलाधार समझते थे। शिक्षा के क्षेत्र में उनका कार्य अवश्य ही बहुत महत्त्वपूर्ण था। शिक्षा के सम्बन्ध में उनके विचार परिपक्व, उदात्त और बहुत हद तक परिपूर्ण हैं। वे अवश्य ही आज भी प्रासगिक है। उनका अनुसरण कर एक अच्छी शिक्षा-पद्धति देश में प्रतिष्ठित की जा सकती है। उनके उपदेशो का अनुसरण करके शिक्षक और विद्यार्थी अपने जीवन को अवश्य ही काफी ऊँचा उठा सकते है, तथा पारस्परिक वैमनस्य का निराकरण कर एक स्वस्थ सौहार्दपूर्ण वातावरण प्रतिष्ठित कर सकते हैं।

●

तिथिसूची

मालवीयजी के जीवन से सम्बन्धित मुख्य तिथियों की सूची

२५ दिसम्बर सन् १८६१	प्रयाग में मदन मोहन मालवीय का जन्म
सन् १८७८	कुन्दन देवीजी से मालवीयजी का विवाह
सन् १८८४	कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी० ए० परीक्षा में मालवीयजी उत्तीर्ण
जुलाई सन् १८८४	इलाहाबाद जिला स्कूल में अध्यापक
दिसम्बर सन् १८८५	मध्यभारत हिन्दू समाज के समारोह के आयोजन में मालवीयजी का सक्रिय सहयोग
दिसम्बर सन् १८८६	कलकत्ते में दादा भाई नौरोजी की अध्यक्षता में कांग्रेस का दूसरा अधिवेशन—कौंसिलों में प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर मालवीयजी का भाषण। उसके बाद आजीवन कांग्रेस से मालवीयजी का घनिष्ठ सम्बन्ध
जुलाई सन् १८८७	कालाकाकर में 'हिन्दुस्थान' पत्र का सम्पादन कार्य प्रारम्भ
सन् १८८७	भारत धर्म महामंडल का स्थापना सम्मेलन। १५ वर्ष तक उसके काम में मालवीयजी का सक्रिय योगदान। उसके बाद सम्बन्ध विच्छेद
सन् १८८९	हिन्दूस्थान पत्र का सम्पादन छोड़कर प्रयाग में वकालत की पढाई प्रारम्भ
सन् १८९१	वकालत की परीक्षा पास करके जिला अदालत में वकालत प्रारम्भ करना
दिसम्बर सन् १८९३	मालवीयजी का प्रयाग हाईकोर्ट में वकालत करना
मार्च सन् १८९८	पश्चिमोत्तर प्रान्त मौजूदा उत्तर प्रदेश के लेफ्टिनेंट गवर्नर को हिन्दी के सम्बन्ध में मेमोरंडम
सन् १९०२-१९०३	मालवीयजी के प्रयास से प्रयाग में हिन्दू बोर्डिंग हाउस का निर्माण
सन् १९०३-१९१२	प्रान्तीय कौंसिल की सदस्यता—मालवीयजी द्वारा कौंसिल में प्रान्त की महत्त्वपूर्ण सेवा

सन् १९०४	काशीनरेश प्रभुनारायण सिंह की अध्यक्षता में वाराणसी में मालवीयजी का विश्वविद्यालय की स्थापना पर भाषण
जनवरी सन् १९०६	कुम्भ के अवसर पर प्रयाग में मालवीय जी द्वारा आयोजित सनातन धर्म महासभा का अधिवेशन। उदार सनातन धर्म का प्रचार। काशी में भारतीय विश्वविद्यालय खोलने का निर्णय
सन् १९०७	मालवीयजी के सम्पादकत्व में "अभ्युदय" का प्रकाशन, लोकतान्त्रिक सिद्धान्तो और उदार हिन्दू धर्म का प्रसार।
सन् १९०८	मालवीयजी की अध्यक्षता मे लखनऊ में प्रान्तीय राजनीतिक कान्फरेन्स का दूसरा अधिवेशन
सन् १९०८	विकेन्द्रीकरण कमीशन के सामने मालवीयजी की गवाही, संघीय व्यवस्था का समर्थन
सन् १९०९	प्रयाग मे मालवीयजी के सम्पादकत्व में 'लीडर' पत्र का प्रकाशन
दिसम्बर १९०९	पंजाब हिन्दू सभा का प्रस्ताव कि हिन्दू-हितों की रक्षा के लिए कांग्रेस से पृथक् मुस्लिम लीग जैसी हिन्दू राजनीतिक संस्था स्थापित की जाय।
,,	मालवीयजी की अध्यक्षता मे लाहौर में कांग्रेस का अधिवेशन, अध्यक्षीय भाषण मे पंजाब हिन्दू सभा के विचार का खण्डन, तथा साम्प्रदायिक राजनीति और पृथक् निर्वाचन पद्धति की कडी समालोचना। मार्ले-मिन्टो सुधार की कडी आलोचना।
सन् १९१०-१९२०	भारतीय विधान कौंसिल मे मालवीयजी की सदस्यता तथा योगदान
सन् १९१०	कौंसिल में मालवीयजी द्वारा प्रेस विधेयक और राजद्रोह-सभा विधेयक का विरोध
अक्तूबर सन् १९१०	हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन में मालवीयजी का अध्यक्षीय भाषण
नवम्बर सन् १९१०	मिंटो द्वारा प्रयाग में घोषणा स्तम्भ का शिलान्यास
जनवरी सन् १९११	केन्द्रीय कौंसिल मे राजनीतिक सुधारो के सम्बन्ध में मालवीयजी का प्रस्ताव
११ अक्तूबर सन् १९११	काशी विश्वविद्यालय की योजना के सम्बन्ध में मालवीयजी और महाराजा दरभंगा की लार्ड हारडिंग से भेंट, लार्ड हारडिंग का प्रोत्साहन

२८ नवम्बर सन् १९११	हिन्दू यूनिवर्सिटी सोसाइटी का गठन
४ दिसम्बर सन् १९११	सोसाइटी की ओर से वाइसराय को डेपुटेशन
दिसम्बर सन् १९११	पचास वर्ष की आयु होने पर मालवीयजी का वकालत का त्याग, सारा जीवन राष्ट्र की सेवा में बिताने का दृढ संकल्प, काशी विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए विशेष प्रयत्न करने का निर्णय
१२ मार्च सन् १९१२	गोखले द्वारा प्रस्तावित प्रारम्भिक शिक्षा विधेयक का मालवीय जी द्वारा समर्थन
२३ मार्च सन् १९१३	इस्लिंगटन कमीशन के समक्ष उनकी गवाही
फरवरी सन् १९१५	मालवीयजी की अध्यक्षता में प्रयाग सेवा समिति का संगठन
अक्तूबर सन् १९१५	बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी बिल पारित
फरवरी सन् १९१६	बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी का शिलान्यास
मार्च सन् १९१६	प्रतिज्ञावद्ध कुली प्रथा के विरुद्ध कौंसिल में मालवीय जी का प्रस्ताव
सन् १९१६-१९१८	इन्डस्ट्रियल कमीशन के सदस्य की हैसियत से उसके काम में मालवीयजी का योगदान, औद्योगिक ह्रास के कारणो पर तगडा नोट
सन् १९१६	हरिद्वार में गंगा की धारा के सम्बन्ध में मेमोरंडम
अक्तूबर सन् १९१६	असेम्बली के उन्नीस सदस्यो का राजनीतिक सुधारो के सम्बन्ध मे मेमोरंडम
दिसम्बर-सन् १९१६	कांग्रेस-लीग सुधार योजना
सन् १९१७	कांग्रेस लीग योजना के समर्थन में मालवीयजी का प्रचार। विधान कौंसिल में योजना का समर्थन तथा इस्लिंगटन कमीशन की संस्तुतियो का विरोध
२० अगस्त सन् १९१७	भावी राजनीतिक लक्ष्य के सम्बन्ध में भारत मत्री की घोषणा
सन् १९१८	सेवा समिति द्वारा स्काउट असोसिएशन का गठन, मालवीय जी चीफ स्काउट
सन् १९१८	मांटेगू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट। मालवीयजी की आलोचना
२९-३१ अगस्त सन् १९१८	बम्बई में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन, गरम दल और नरम दल में सहयोग बनाये रखने के लिए मालवीयजी का प्रयत्न
दिसम्बर सन् १९१८	मालवीयजी की अध्यक्षता में दिल्ली में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन

फरवरी सन् १९१९	रौलेट बिल पर कौंसिल में बहस। कौंसिल से मालवीयजी का इस्तीफा ।
मार्च-अप्रैल सन् १९१९	रौलेट एक्ट के विरुद्ध गाधीजी का आन्दोलन
अप्रैल-जून सन् १९१९	पंजाब के पाच जिलो में मार्शल ला। सरकारी अफसरों के अत्याचार, मालवीयजी की अध्यक्षता में आयोजित काग्रेस कमेटियो द्वारा अत्याचारो की निन्दा और निष्पक्ष जाँच की माग
१९ अप्रैल सन् १९१९	बंबई में मालवीयजी की अध्यक्षता में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन
जुलाई-दिसम्बर १९१९	पंजाब में पीडित जनता की सहायता
सितम्बर सन् १९१९	केन्द्रीय कौसिल में मालवीयजी द्वारा क्षमा विधेयक का विरोध
नवम्बर सन् १९१९	मालवीयजी बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के उप-कुलपति। सितम्बर सन् १९३९ तक इस पद का उत्तरदायित्व वहन करते रहे।
सितम्बर सन् १९२०	कलकत्ते मे काग्रेस का विशेष अधिवेशन। गाधी जी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ
दिसम्बर सन् १९२१	काग्रेस और सरकार के बीच समझौता कराने का मालवीयजी का प्रयास
२१ दिसम्बर सन् १९२१	मालवीयजी के नेतृत्व में वाइसराय के पास शिष्ट-मंडल
जनवरी सन् १९२२	मालवीयजी द्वारा आयोजित सर्वदलीय कांफरेन्स
अप्रैल-मई १९२२	मालवीयजी का आसाम और पंजाव में दौरा
सितम्बर सन् १९२२	मुलतान में साम्प्रदायिक उपद्रव; मालवीयजी, हकीम अजमल खाँ और राजेन्द्र प्रसादजी द्वारा स्थिति की जाँच।
१६ सितम्बर सन् १९२२	लाहौर में मालवीयजी का हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द पर भाषण
३१ दिसम्बर सन् १९२२	मालवीयजी की अध्यक्षता में गया में हिन्दू महासभा का विशेष अधिवेशन
अगस्त सन् १९२३	मालवीयजी की अध्यक्षता में काशी में हिन्दू महासभा का अधिवेशन। उसके बाद सन् १९२७तक मालवीयजी द्वारा हिन्दू महासभा का नेतृत्व।
सन् १९२४	प्रयाग में संगम पर मालवीय जी का सत्याग्रह

जनवरी सन् १९२४ — असेम्बली में मालवीयजी और जिना द्वारा इंडिपेंडेंट पार्टी का गठन। उसके बाद स्वराज्य पार्टी से मिलकर नेशनलिस्ट पार्टी का गठन।

फरवरी सन् १९२४ — असेम्बली मे राजनीतिक सुधारो के सम्बन्ध में मोतीलाल नेहरू का सशोधन, मालवीयजी का तगड़ा भाषण, टेरिटोरियल फोर्स और आकजलरी फोर्स के एकीकरण पर असेम्बली में मालवीयजी का भाषण।

मार्च सन् १९२४ — वित्तविधेयक के विरुद्ध मालवीयजी का सुझाव, तथा फौलाद सरक्षण विधेयक पर कौंसिल में बहस, ब्रिटिश कम्पनियो को बाउन्डी देने का मालवीयजी द्वारा विरोध

जून सन् १९२४ — असेम्बली में मालवीयजी द्वारा ली कमीशन की संस्तुतियो का विरोध

सितम्बर सन् १९२४ — ली कमीशन की सस्तुतियो के विरोध में मालवीयजी और मोतीलालजी के संशोधन असेम्बली में स्वीकार

फरवरी सन् १९२५ — सेना के सम्बन्ध में असेम्बली में प्रस्ताव, मालवीयजी का सशोधन स्वीकृत।

सितम्बर सन् १९२५ — असेम्बली में मुडीमेन कमेटी की बहुसंख्यक रिपोर्ट की संस्तुतियो की कडी आलोचना। मोतीलाल द्वारा प्रस्तुत राष्ट्रीय माँग के प्रस्ताव का मालवीयजी द्वारा समर्थन। प्रस्ताव भारी बहुमत से स्वीकृत

अगस्त सन् १९२६ — मालवीयजी और लाजपतराय के नेतृत्व में कांग्रेस इंडिपेंडेंट पार्टी का गठन

नवम्बर-दिसम्बर सन् १९२६ — कौंसिलो का चुनाव, पजाब और उत्तर प्रदेश में कांग्रेस इंडिपेंडेंट पार्टी की भारी विजय।

जनवरी सन् १९२७ — कांग्रेस इंडिपेंडेंट पार्टी और रिस्पासविस्ट पार्टी द्वारा मिलकर नेशनलिस्ट पार्टी संगठित करना। लाला लाजपतराय नेता और मालवीयजी उपनेता।

फरवरी सन् १९२७ — कृषि आयोग के सामने मालवीयजी की गवाही।

फरवरी सन् १९२७ — अन्त्यजपरयन्त सब वर्णो के लोगो को मालवीयजी द्वारा मन्त्र दीक्षा। इसके बाद नासिक, काशी, कलकत्ता प्रयाग आदि में मन्त्र दीक्षा देना।

सन् १९२७-१९२८ — असेम्बली में सरकार द्वारा प्रस्तुत मुद्रा विधेयक, रिजर्व बैंक विधेयक तथा पब्लिक सेफ्टी बिल का मालवीयजी आदि राष्ट्रवादियो द्वारा विरोध। सेना के भारतीयकरण की माँग। मालवीयजी द्वारा सरकार की सेनानीति की कडी अलोचना।

नवम्बर सन् १९२७	साइमन कमीशन की नियुक्ति। मालवीयजी आदि नेताओ द्वारा उसके बहिष्कार की घोषणा। इस सम्बन्ध में मालवीयजी के लेख और वक्तव्य।
दिसम्बर सन् १९२७	डा० अन्सारी की अध्यक्षता में मद्रास में काग्रेस का वार्षिक अधिवेशन। साम्प्रदायिक समस्याओं पर एक लम्बा प्रस्ताव। मालवीयजी और मौलाना आजाद आदि नेताओ द्वारा उसका समर्थन।
फरवरी सन् १९२८	साइमन कमीशन के बाइकाट पर असेम्बली में लाला लाजपतराय का प्रस्ताव। मालवीयजी आदि सदस्यों द्वारा प्रस्ताव का समर्थन। बहुमत से स्वीकृत।
सन् १९२८	सर्वदलीय काफरेन्स—संविधान बनाने में सफल, साम्प्रदायिक समस्या सुलझाने में विफल—मालवीयजी का पूर्ण सहयोग।
सन् १९२८-१९२९	पब्लिक सेफ्टी बिल का विरोध। मालवीयजी का तगड़ा भाषण। काग्रेस पार्टी, नेशनलिस्ट पार्टी और इंडिपेंडेंट पार्टियो द्वारा समर्थित भारत सरकार के विरुद्ध निन्दा प्रस्ताव बहुमत से स्वीकृत।
जून सन् १९२९	स्वराज्य के सम्बन्ध में वाइसराय को मालवीयजी का पत्र
सितम्बर सन् १९२९	सैनिक शिक्षा के सम्बन्ध मे जयकर का प्रस्ताव, मालवीयजी का समर्थन
अक्तूबर सन् १९२९	राउड टेबिल कान्फरेन्स तथा भावी राजनीतिक सुधारो के सम्बन्ध में वाइसराय की घोषणा
दिसम्बर सन् १९२९	काशी विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में मालवीयजी का दीक्षान्त भाषण, विद्यार्थियों को देशसेवा और राष्ट्रीयता का उपदेश।
सन् १९३०	काग्रेस द्वारा पूर्णस्वराज्य की घोषणा, गोलमेज कान्फरेन्स का बहिष्कार तथा गाधीजी के नेतृत्व में नमक सत्याग्रह, राष्ट्रीय संघर्ष मे मालवीयजी का सहयोग
मार्च सन् १९३०	असेम्बली में मालवीयजी द्वारा टेरिफ बिल का विरोध
२ अप्रैल सन् १९३०	मालवीयजी का असेम्बली से इस्तीफा
३१ जुलाई सन् १९३०	बम्बई में श्रीमती हन्सा मेहता की अध्यक्षता में सत्याग्रह, मालवीयजी आदि की गिरफ्तारी
२० अगस्त सन् १९३०	दिल्ली में मालवीयजी और काग्रेस वर्किंग कमेटी के अन्य सदस्यो की गिरफ्तारी, छः मास की सजा

५ मार्च सन् १९३१	गाधी-अर्विन समझौता
५ अप्रैल सन् १९३१	कानपुर में हिन्दू-मुस्लिम एकता पर मालवीयजी का भाषण
जुलाई सन् १९३१	मालवीयजी और डाक्टर अन्सारी की सलाह से साम्प्रदायिक समस्या पर काग्रेस वर्किंग कमेटी का प्रस्ताव
सितम्बर-दिसम्वर सन् १९३१	लन्दन में गोलमेज कान्फरेन्स का दूसरा अधिवेशन, राष्ट्रीय माँग पर गाधीजी और मालवीयजी के तगडे भाषण।
४ जनवरी सन् १९३२	गाधीजी की गिरफ्तारी—दूसरा सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू।
२९ जनवरी सन् १९३२	मालवीयजी का वाइसराय को पत्र
२८ फरवरी सन् १९३२	मालवीयजी द्वारा सरकार के दमन की घटनाओं का उल्लेख करते हुए लन्दन को तार
मार्च सन् १९३२	वाराणसी में मालवीयजी की अध्यक्षता में अखिल भारतीय स्वदेशी संघ का संगठन
२० अप्रैल सन् १९३२	दमनचक्र पर मालवीयजी द्वारा लन्दन को तार
अप्रैल सन् १९३२	काग्रेस का दिल्ली अधिवेशन। मनोनीत अध्यक्ष मालवीयजी की गिरफ्तारी
८ अगस्त सन् १९३२	मेक्डोनल्ड द्वारा साम्प्रदायिक निर्णय की घोषणा
२०-२६ सितम्बर सन् १९३२	साम्प्रदायिक निर्णय द्वारा हरिजनो को पृथक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था के विरुद्ध गांधीजी का अनशन। हरिजनो से सवर्ण हिन्दुओ का समझौता। समझौते में मालवीयजी का योगदान।
२५ सितम्बर सन् १९३२	मालवीयजी की अध्यक्षता में बम्बई में अन्त्यजोद्धार पर सभा। अस्पृश्यता-निवारण पर प्रस्ताव
नवम्बर-दिसम्बर सन् १९३२	प्रयाग में मालवीयजी द्वारा आयोजित एकता कान्फ्रेन्स, सरकार द्वारा श्वेत पत्र का प्रकाशन
अप्रैल सन् १९३३	कलकत्ते में काग्रेस का अवैध अधिवेशन, मनोनीत अध्यक्ष मालवीयजी की आससोल में गिरफ्तारी
मई सन् १९३४	पटना में काग्रेस कमेटी द्वारा सत्याग्रह स्थगित, काग्रेस पार्लियामेन्टरी बोर्ड का गठन
जून सन् १९३४	श्वेत पत्र और साम्प्रदायिक निर्णय पर काग्रेस वर्किंग कमेटी के निर्णय। मालवीयजी का विरोध
अगस्त सन् १९३४	काशी में गाधीजी की सभा में मालवीयजी का हरिजनोद्धार पर भाषण

अगस्त सन् १९३४	कांग्रेस वर्किंग कमेटी द्वारा निर्णय कि वह साम्प्रदायिक निर्णय को न स्वीकार करती है और न उसे रद्द करती है। मालवीयजी और अणे का विरोध और इस्तीफे
अगस्त सन् १९३४	कलकत्ते में मालवीयजी के नेतृत्व में कांग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी का गठन
अक्तूबर सन् १९३४	बम्बई में कांग्रेस का अधिवेशन, साम्प्रदायिक निर्णय के सम्बन्ध में मालवीयजी का संशोधन नामंजूर
फरवरी सन् १९३५	मालवीयजी द्वारा आयोजित दिल्ली में साम्प्रदायिक निर्णय विरोधी कान्फरेन्स
जनवरी सन् १९३६	प्रयाग में मालवीयजी के नेतृत्व में सनातन धर्म महासभा का अधिवेशन, अन्त्यजोद्धार पर प्रस्ताव
सन् १९३६	कांग्रेस के चुनावघोषणा में साम्प्रदायिक निर्णय का विरोध, मालवीयजी और रफी अहमद किदवयी का समझौता
सन् १९३७	प्रान्तीय विधान सभाओ के चुनाव मे मालवीयजी का कांग्रेस को समर्थन—कांग्रेस की भारी जीत
सन् १९३७	फैजपुर कांग्रेस में मालवीयजी का भाषण
सन् १९३८	कायाकल्प।
सितम्बर १९३९	मालवीयजी का त्यागपत्र और उनके प्रस्ताव पर सर राधाकृष्णन् हिन्दू यूनिवर्सिटी के उपकुलपति
नवम्बर १९३९	मालवीयजी विश्वविद्यालय के आजीवन रेक्टर
सन् १९४०	विश्वशान्ति के लिए महारुद्र याग
सन् १९४१	गोरक्षा मंडल की स्थापना
जनवरी सन् १९४२	बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी की रजत जयन्ती, गांधी जी का दीक्षान्त भाषण
सन् १९४२	भारत छोडो आन्दोलन—मालवीयजी द्वारा पीडितो की सहायता, अखिल भारतीय विक्रम परिषद की स्थापना
१२ नवम्बर सन् १९४६	मालवीयजी का निधन

अनुक्रमणिका

प

फ

र

व

स

शुद्धिपत्र

पुस्तक में भाषा और प्रूफ की कुछ अशुद्धियाँ रह गयी है। उनको ठीक करते हुए पढने की कृपा की जाय। कुछ विशिष्ट अशुद्धियाँ नीचे दी जा रही हैं :—

पृष्ठ	पंक्ति संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
५	२८	१८६९	१८७९
२०	१७	विधानों	विधान सभाओ
२३	११	मसावी	मुसावी
४२	६	रूस के अतिरिक्त	रूस को छोड़कर
५०	२०	दो वर्ष	ढाई वर्ष
५३	२४	नापुनर्भवम्	नाऽपुनर्भवम्
५७	२७	काग्रेज	कांग्रेस
६२	१३	पराक्षा	परीक्षा
७०	१, ३	१९०४	१९०५
७५	१६	मुसलिम	मुस्लिम
७६	१८, १९,२०	मुसलिम	मुस्लिम
७७	१२	दो वर्ष	ढाई वर्ष
८५	२५	प्रस्तावित	अनुमोदित
१००	१२	या	मा
१३७	१	अस्पश्यो	अस्पृश्यो
१४०	२४	१९२६	१९१६
१६२	७	देशभक्त्यात्यागेन	देशभक्त्याऽऽत्मत्यागेन
१६२	७	सम्मानर्ह	सम्मानर्हः
१७८	६	१९१९	१९११
२१२	१९	वी० एम० शर्मा	वी० एन० शर्मा
२३५	७	कार्य पारिषद्	कार्यपरिषद्
२५६	१-२	पेश करना	पास कराना
२७०	१३, १६	टम्सन	थाम्पसन
२७१	१४,१८,१९	टाम्सन	थाम्पसन
२८३	नोट नं. २	पृ. १९०	जि. १ पृ. १९०

पृष्ठ	पंक्ति संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
२८८	२९	असहयोग	करवन्दी, असहयोग
२९१	४	अव्बुल	अबुल
२९४	१६, २१	कान्फ्रेन्स	कांफरेन्स
२९५	७; १२	,,	,,
२९६	नोट नं० २	पृ० २२६	जि० १ पृ० २२६
२९९	४	५ फरवरी को	चौरीचौरा में ५फरवरी को
३१९	२७	१९२५	१९२४
३२६	१५	हिन्दू सहति	हिन्दू सहति
३३३	१२	जमैयतुल उलमा	जमीयतुल उलेमा
३४४	२४	,,	,,
३४८	८	मदरास	मद्रास
३५०	२५	मेगनाकार्टी	मेगनाकार्टा
३६७	४	खडगसिंह	खड़कसिंह
३७९	नोट नं० १	जि० २	जि० १
३८६, ३९५	नोट न० १	नेहरुजी	नेहरूज
३८६	नोट नं० २	काग्रेस	काग्रेस जि० १
३९६	नोट नं० १	वही	लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स
४००	२४	औद्योगिक इब्राहीम	औद्योगिक फजल इब्राहीम
४१४	१	शीध्र	शीघ्र
४२०	२३	आधात	आघात
४३१	२४	समस्याओ पर काग्रेस	समस्याओ पर श्री एन० एम० जोशी तथा काग्रेस
४४८	२	करेंगे	करें
४७४	२९	श्री एम०आर० जयकर	सर काउसी जहागीर
४७९	११	वे	रमसे मेकडोनल्ड
५०५, ५०७, ५०९, ५२६	नोट नं० १	क्वाटरली	ऐनुअल
५३६	२८	सतीश चन्द्र	सरद चन्द्र
५३७	नोट नं० २	क्वाटरली	ऐनुअल

पृष्ठ	पंक्ति संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
५३८	१७	अलेम्बली में प्रस्ताव	असेम्बली में सर नृपेन्द्र नाथ सरकार के प्रस्ताव पर संशोधन
५३९	१२	इस संशोधन के पहले भाग पर	साम्प्रदायिक निर्णय पर
५३९	१५	गिर गया	गिर गया। देसाई साहब के संशोधन का पहला भाग भी गिर गया
५४०	२	१९३४	१९३५
५४०	नोट १	आत्त्मकथा	आत्मकथा
५४४	२२	सतीश चन्द्र	सरदचन्द्र
५५९	१८	बढाने को	बढने को
५७५	नोट नं० २	कोमिमोरेशक	कोमिमोरेशन
६०१	नोट नं० १	सन् १९२८	सन् १९१८
६०७	१६	समर्थ्य	सामर्थ्य
६०७	नोट नं० १	सन्	सन् १९१७
६१२	९	अर्घान	अधीन
६१५	१९	कुरातियो	कुरीतियो
६१८	१०	जनता से	जनता के जीवन से
६३२	१४	महालम्यो	माहात्म्यो
६४१	७	दिसम्बर सन् १८८५	अक्टूबर सन् १८८५
६४७	२०	८ अगस्त	१७ अगस्त